प्रकाशक :
मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद

मूल्य
तीस रुपये

मुद्रक
श्री वीरेन्द्रनाथ घोष
माया प्रेस प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद,

श्री गुरु नानक

समर्पण

अपने पिता एवं आध्यात्मिक गुरु

पण्डित रामचन्द्र मिश्र

को

श्रद्धापूर्वक

समर्पित

कृतज्ञताप्रकाश

हिन्दी भाषा के अनन्य सेवक एवं पुजारी राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' के अध्ययन में मेरी अभिरुचि देख कर मुझे उस पवित्र ग्रन्थ के अनुवाद करने की प्रेरणा सन् १९५ ई० में ही दी थी। उस समय मैं 'ग्रन्थ साहिब' के दार्शनिक-सिद्धान्त के शोध कार्य में अत्यधिक व्यस्त था, अतएव उनके आदेश का पालन न कर सका। शोध-कार्य की समाप्ति के अनन्तर, सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने भी मुझे गुरु नानक देव की वाणी के अनुवाद करने की प्रेरणा इन शब्दों में दी, "हिन्दी-साहित्य में गुरु नानक की वाणी का ले आना नितान्त आवश्यक है। मेरा पूरा विश्वास है कि आप उसे क्षमतापूर्वक कर लेंगे।" दोनों ही पूज्य महानुभावों का मैं अत्यधिक आभारी हूँ, क्योंकि इन्हीं की प्रेरणा से मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका।

अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी शान्तानन्दजी सरस्वती अपने उपदेश द्वारा मुझे निष्काम कर्मयोग में निरन्तर प्रवृत्त करते रहे और कहते रहे, "प्राचीन ऋषिगण एकान्त स्थान में रहकर सदैव स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन और ग्रन्थ रचना किया करते थे।" मैं श्री महाराज जी के इन उदात्त शब्दों से बहुत ही प्रेरित हुआ हूँ और बार बार उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

मैं अपने पूज्य पिता जी को प्रायः गुरु नानक के पद सुनाता और वे उन पदों को बड़े ध्यान से सुनते और मुझे बराबर प्रेरणा देते रहते कि उन्हें हिन्दी साहित्य में अवश्य लाया जाय। श्रद्धेय गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा एवं डॉ० हरदेव बाहरी मुझे इस कार्य में निरन्तर प्रेरित करते रहे। मैं उनके स्नेहपूर्ण आशीर्वाद का अत्यन्त आभारी हूँ।

भाई भुवनेश्वर चतुर्वेदी के प्रोत्साहन एवं मेरे स्वजन श्री रामनरेश त्रिपाठी तथा ब्रजमोहन अवस्थी के आग्रह के फलस्वरूप 'नानक-वाणी' शीघ्रता से समाप्त हो सकी। अतएव इन तीनों व्यक्तियों के प्रति मैं अपना प्रेम जताता हूँ।

श्री ब्रह्मनिवास
७ अलोपीबाग, प्रयाग।
गुरु-पूर्णिमा
संवत् २ १८ वि

जयराम मिश्र

ग्रंथ के सम्बन्ध में

श्री गुरु नानक देव जी महाराज हमारे देश के महान् दार्शनिक और विचारक के रूप मे पूजित हैं। संत परम्परा में नानक देव जी का स्थान अग्रणी है। वह मंत्रद्रष्टा और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक हैं। श्री नानक देव जी की वाणियों एवं विचारधारा से अनुप्राणित होकर हमारे देश के एक विशिष्ट समुदाय ने सिक्ख धर्म ग्रहण किया और धीरे-धीरे सारे देश में इसका प्रसार और विस्तार हो गया।

मध्यकालीन धर्म-संस्थापकों में श्री गुरु नानक देव का महत्व इसलिए और भी बढ़ गया कि उन्होंने भक्ति, कर्म, ज्ञान के साथ ही तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का भी सम्यक् अनुशीलन एवं विश्लेषण किया। सबसे सुस्पष्ट देशभक्ति की स्रोतस्विनी भी उनकी वाणियों से फूट निकली।

श्री गुरु नानक देव की वाणी में जहाँ एक ओर गुरु गाम्भीर्य और ज्ञान-वैराग्य-भक्ति का अमृत-मंथन है, वहीं उनकी भाषा में अद्भुत भाव और शक्ति है। उनकी रचनाशैली मे काव्य का लालित्य, माधुर्य, विचार-सम्पन्नता-सब कुछ है। उनकी वाणी की सरलता-सुबोधता का क्या कहना! उसमें साहित्य, संगीत एवं कला के विभिन्न गुणों का अद्भुत सहज समन्वय है। फलतः उनकी वाणी हृदय और मस्तिष्क को स्पर्श ही नहीं करती, प्रत्युत उन्हें अनुप्राणित भी करती है।

श्री गुरु नानक देव की संपूर्ण वाणी का यह संग्रह व्याख्या एवं अनुवाद के साथ प्रथम बार हिन्दी संसार के सामने आ रहा है। हमारी राष्ट्रभाषा की शोभा और संपन्नता इस ग्रंथ के प्रकाशन के कारण बढ़ेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

डाक्टर जयराम मिश्र ने बड़े परिश्रम से इस ग्रंथ की वाणियों का संग्रह, अध्ययन, अनुशीलन एवं अनुवाद किया है। उन्होंने श्री गुरु नानक देव के दार्शनिक विचारों का गम्भीर अध्ययन किया और उन्हें आत्मसात् करने की चेष्टा की। श्री नानक देव की समस्त वाणी सिक्खों के पूज्य धर्म ग्रंथ 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित है। यह संकलन श्री गुरु अर्जुन देव ने सन् १६०४ ई० में किया था। सिक्खों का पूज्य धर्म ग्रंथ होने के कारण श्री गुरु ग्रंथ साहिब के पाठ की पंक्ति-पंक्ति और शब्द-शब्द की बड़ी सावधानी से रक्षा की गयी है। फलतः सन् १६०४ ई० से आज तक श्री गुरु नानक देव की वाणी के पाठ में कोई भी परिवर्तन, परिवर्द्धन नहीं होने पाया है। अमृतसर की 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' ने देवनागरी लिपि मे 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' की प्रति प्रकाशित की है। उसी प्रति से संगृहीत श्री गुरु नानक देव की वाणी प्रस्तुत ग्रंथ में प्रकाशित की जा रही है। अतः प्रस्तुत का मूल पाठ शुद्ध है, प्रामाणिक है। विद्वान् लेखक ने इस ग्रंथ मे वाणी का संकलन-क्रम भी वही रखा है जो 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में है। वाणी का वर्गीकरण रागों के आधार पर हुआ है।

डाक्टर जयराम मिश्र ने परिश्रम, सावधानी, सतर्कता और ईमानदारी के साथ 'नानक वाणी' का अनुवाद किया है। यदि श्री गुरु नानक देव ने किसी विशेष अवसर पर कोई वाणी उच्चरित की है तो उसकी चर्चा 'विशेष' शीर्षक के अन्तर्गत कर दी गयी है। परिशिष्ट मे

नाम बाणी — पृष्ठ

पवन होम पून तप — ६९६

असटपदी

आतम महि रामु राम — ६९८

रागु बसंत

सबद

माहा माहु मुमारखी — ७

रुति आइले सरस — ७ १

सुहवे का चउका — ७ २

मगम भवन तेरी — ७ ३

मेरी सखी सहेली — ७ ४

आपे कुदरति करे — ७ ४

सालगाम बिप पूजि — ७ ५

साहुरड़ी वथु सभु किछु — ७ ६

राजा बालक नगरी काची — ७ ७

साचा साहु गुरू सुखदाता — ७ ८

असटपदीआं

जगु कऊआ नामु — ७

मनु भूलउ भरमसि — ७१

दरसन की पिआस — ७१२

चचल चीतु न पावै — ७१३

मतु भसम अंधूल — ७१५

दुबिधा दुरमति अधुली — ७१६

आपे भवरा फूल — ७१७

नउ सत चउदह — ७१८

रागु सारंग

सबद

अपने ठाकुर की हउ — ७२

हरि बिनु किउ रहीऐ — ७२१

हरि माही मेरो प्रभु — ७२१

असटपदीआं

हरि बिनु किउ जीवा — ७२२

हरि बिनु किउ धीरै — ७२४

वार

म मीगै गगी (आदि) — ७२५

रागु मलार

सबद

खाणा पीणा हसणा — ७४४

करउ बिनउ गुर अपने — ७४५

साची सुरति नामि — ७४६

जिन धन पिर का सादु — ७४७

परदारा पर धनु — ७४८

पवणै पाणी जाणै — ७४९

दुखु विछोड़ा इकु — ७५

दुखु महुरा मारण — ७५

बापे कापड़ बोलै — ७५१

असटपदीआं

चकवी नैन नीद — ७५२

जागतु जागि रहै — ७५४

चातृक मीन जल ही — ७५६

अमली ऊठी घन — ७५७

मरण मुकति गति — ७५९

वार

हेको पाखह हेकु (आदि) — ७६

रागु परभाती बिभास

सबद

नाइ तेरै तरणा — ७७६

तेरा नामु रतनु — ७७७

जै कारणि बेद — ७७८

जाकै रूपु नाही — ७७९

ताका कहिआ दरि — ७७९

अमृत नीरु गिआनि — ७८

गुर परसादी विदिआ — ७८१

आवतु किनै न राखिआ — ७८१

दिसटि बिकारी बधनि — ७८२

मनु माइआ मनु — ७८३

जागतु बिगसै मूठो — ७८४

मसटि करउ मूरखु — ७८५

खाइआ मैलु वधाइआ — ७८६

गीत नाद हरख — ७८७

अंतरि देखि सबदि — ७८८

बारह महि रावल — ७८९

सता की रेणु — ७९०

असटपदीआं

दुबिधा बउरी मनु — ७९१

माइआ मोहि सगल — ७९२

निवली करम भुअगम — ७९३

गोतम तपा अहलिआ — ७ ५

आखणा सुनणा नामु — ७९७

राम नामि जपि — ७९९

दखि भुरि बकसि — ८

सलोक सहसक्रिती

पड़ि पुसतक संधिआ (आदि) — ८ २

सलोक वारां ते वधीक

उतगी पैओहरी (आदि) — ८ ४

भूमिका

श्री गुरु नानक देव का भारतीय धर्म-संस्थापकों एवं समाज-सुधारकों में गौरवपूर्ण स्थान है। मध्ययुग के संत कवियों में उनकी विशिष्ट और निराली धर्म-परम्परा है। वह उस धर्म के संस्थापक हैं जिसके आन्तरिक पक्ष में विवेक, वैराग्य, भक्ति, ज्ञान, योग, तितिक्षा और आत्म-समर्पण की भावना निहित है और बाह्य पक्ष में सदाचार, संयम, एकता, भ्रातृभाव आदि पिरोए हुए हैं। गुरु नानक मध्ययुग के मौलिक चिन्तक, क्रान्तिकारी सुधारक, अद्वितीय युग-निर्माता, महान् देशभक्त, दीन-दुखियों के परम हितैषी तथा दूरदर्शी राष्ट्र-निर्माता थे। हिन्दी में इनकी वाणी का अध्ययन न किया जाना खटकने की बात है। हिन्दी के कुछ उद्भट विद्वानों ने गुरु नानक के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया है कि 'सन्त कबीरदास की निर्गुण-उपासना का प्रचार उन्होंने पंजाब में आरम्भ किया।" मेरी समझ में उनकी यह धारणा समीचीन नहीं। वास्तव में गुरु नानक स्वतः कबीरदास की ही भाँति मौलिक चिंतक थे। उन्होंने कबीरदास की निर्गुण उपासना का प्रचार नहीं किया बल्कि अपने मौलिक विचारों का प्रचार और प्रसार किया। एकाध हिन्दी के विद्वानों ने गुरु तेगबहादुर जी के पदों को गुरु नानक का पद बतलाया है। उसका कारण यह है कि गुरु तेगबहादुर ही नहीं बल्कि सिक्खों के सभी गुरुओं की वाणी के अन्त में 'नानक' शब्द आता है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के सिक्ख गुरुओं के सभी पदों के अन्त में 'नानक' शब्द के आ जाने से इस भ्रम का होना स्वाभाविक है। इस भ्रम के निवारणार्थ वाणी के प्रारम्भ में 'महला १' 'महला २' 'महला ३' 'महला ४' 'महला ५' तथा 'महला ९' दिया गया है। 'महला १' का अभिप्राय सिक्खों के आदि गुरु नानक से है। इसी प्रकार 'महला २' का तात्पर्य गुरु अंगद देव से, 'महला ३' का गुरु अमरदास से, 'महला ४' का गुरु रामदास से, 'महला ५' का गुरु अर्जुन देव से तथा 'महला ९' का अभिप्राय गुरु तेगबहादुर से है। वास्तव में वाणियों की रचना करते समय सभी गुरुओं ने अपने को 'नानक' गुरु में मिला दिया था। इसी से वे वाणी के अन्त में 'नानक' का ही नाम देते थे।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब' १४३० पृष्ठों का बृहत्काय ग्रन्थ है। उसका संकलन सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने सन् १६०४ ई० में किया था। गुरु अर्जुन देव ने प्रथम पाँच सिक्ख गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त बहुत से प्रभावशाली भक्तों की वाणियाँ भी संगृहीत कीं। हाँ, उनके संग्रह में एक बात अवश्य है कि वे वाणियाँ सिक्ख-गुरुओं की विचारधारा के अनुकूल हैं। जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, परमानन्द, सधना, बेनी, रामानन्द, धन्ना, पीपा, सैन, कबीर, रविदास अथवा रैदास, मीराबाई, फरीद, भीखन, सूरदास (मदनमोहन) की भी वाणियाँ हैं। भक्तों के अतिरिक्त कुछ भट्टों की भी रचनाएँ हैं। भट्टों के नामों की संख्या में विद्वानों में मतभेद है। ट्रम्प ने १९ भट्टों के नामों की सूची दी है[1]। गोकुलचन्द नारंग ने ट्रम्प के नामों की दी हुई तालिका की पुनरावृत्ति की है[2]। मोहन सिंह ने केवल १२ नाम गिनाए

१. आदि ग्रंथ, ट्रम्प भूमिका, पृष्ठ ११
२. ट्रान्सफॉर्मेशन ऑफ सिक्खिज्म, गोकुलचन्द नारंग, पृष्ठ ११

है[1]। साहब सिंह के मत से उनकी संख्या ११ है[2]। मोहनसिंह ने १७ नाम गिनाए हैं[3]। इसके अतिरिक्त सुन्दर का 'रामकली सद' मरदाना की बाणी और सत्ता बलवंड की वार भी 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संग्रहीत है। गुरु तेगबहादुर, महला ९ (नवें गुरु) के पद बाद में, पाँचों गुरुओं के बाद रखे गए।

पिनकाट के अनुसार 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी' में ३३८४ शब्द और १५५७५ बन्द हैं। इनमें से ६२०४ बन्द पाँचवें गुरु (अर्जुन देव), महला ५' द्वारा २९४९ बन्द आदि गुरु नानक देव 'महला १' द्वारा २५२२ बन्द तीसरे गुरु, अमरदास 'महला ३' द्वारा, १७३० बन्द चौथे गुरु, रामदास 'महला ४' द्वारा ११६ बन्द नवम गुरु तेगबहादुर, 'महला ९' द्वारा और ५७ बन्द द्वितीय गुरु अंगद देव 'महला २' द्वारा रचे गए हैं। भक्तों में कबीर के बन्द सबसे अधिक और मरदाना के सबसे कम हैं[4]।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में निम्नलिखित ३१ रागों के प्रयोग हुए हैं—

१. सिरी रागु, — २. रागु माझ,
३. रागु गउड़ी — ४. रागु आसा
५. रागु गूजरी — ६. रागु देवगंधारी
७. रागु बिहागड़ा — ८. रागु वडहंसु,
९. रागु सोरठि — १०. रागु धनासरी
११. रागु जैतसिरी — १२. रागु टोडी
१३. रागु बैराड़ी — १४. रागु तिलंग
१५. रागु सूही — १६. रागु बिलावलु,
१७. रागु गोंड — १८. रागु रामकली
१९. रागु नट नाराइन — २०. रागु माली गउड़ा
२१. रागु मारू — २२. रागु तुखारी
२३. रागु केदारा — २४. रागु भैरउ
२५. रागु बसंतु — २६. रागु सारंग,
२७. रागु मलार, — २८. रागु कानड़ा
२९. रागु कलिआनु, — ३०. रागु प्रभाती

३१. रागु जैजावंती

उपर्युक्त ३१ रागों में से गुरु नानक देव की बाणी में निम्नलिखित १९ रागों के प्रयोग मिलते हैं—

१. सिरी रागु, — २. रागु माझ
३. रागु गउड़ी — ४. रागु आसा
५. रागु गूजरी, — ६. रागु वडहंसु,
७. रागु सोरठि, — ८. रागु धनासरी

---

१. हिस्टरी आफ पंजाबी लिटरेचर, मोहन सिंह पृष्ठ ३३
२. [illegible], [illegible] सिंह, पृष्ठ ६०
३. [illegible] आफ [illegible] [illegible] सिंह, पृष्ठ ३०
४. [illegible] (पंजाब), [illegible]

९. रागु तिलंगु — १० रागु सूही
११ रागु बिलावलु, — १२. रागु रामकली
१३. रागु मारू — १४ रागु तुखारी
१५. रागु भैरउ — १६ रागु बसंतु,
१७ रागु सारंगु, — १८ रागु मलार,
१९ रागु प्रभाती।

'सिहरफे राग' में केवल चार मात्र हैं। अतः इनकी गणना रागों के साथ नहीं की गयी है।

गुरु ग्रन्थ साहिब में उपर्युक्त ३१ रागों के अतिरिक्त किसी-किसी स्थान पर किसी किसी शब्द में दो मिले रागों का प्रयोग हुआ है—

१ गउड़ी-माझ, — २ गउड़ी-दीपकी
३. आसा-काफी (काफी स्वतन्त्र राग नहीं है। यह लय का एक रूप है)।
४ तिलंग-काफी — ५. सूही-काफी
६ सूही-ललित — ७ बिलावलु-गोंड
८ मारू-काफी, — ९. बसंतु-हिंडोल
१० कलिआन-भोपाली — ११ प्रभाती-बिभास,
१२ आसा-आसावरी।

इस प्रकार ऊपर ३१ रागों के अतिरिक्त निम्नलिखित ६ रागों के और प्रयोग हुए हैं—

१ ललित — २ आसावरी
३. हिंडोल — ४ भोपाली
५. बिभास — ६ दीपकी।

किन्तु ये ६ राग स्वतन्त्र नहीं हैं। प्रधानता तो उसी राग की है, जो पहले प्रयुक्त है। उदाहरणार्थ सूही-ललित में सूही की ही प्रधानता है। गायन के लिए ललित का भी सहारा लिया गया है।

'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में गुरु नानक देव जी की जो 'बाणियाँ' संगृहीत हैं, उनमें १६०४ ई० के पश्चात् निश्चित रूप से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे ज्यों की त्यों उसी रूप में हैं। यह निश्चित है कि गुरु नानक जी पढ़े-लिखे और मननशील थे। उनमें परमात्मा-प्रदत्त असाधारण कवित्व-शक्ति विद्यमान थी। वे अपनी वाणियों के संग्रह के प्रति जागरूक थे। जब उन्होंने लोक-कल्याण के निमित्त सांसारिक सुखों का परित्याग किया और लोगों का दुःख दूर करने के लिए दूर-दूर देशों की यात्राएँ कीं तो उनके मन में अपनी वाणियों के संग्रह की भावना निश्चित रूप से जगी होगी। यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि अनजान प्रदेश वाले लोग उनकी वाणियाँ लिखते। गुरु नानक के सहगामी सिक्ख मरदाना यदि इतने पढ़े-लिखे नहीं थे कि उनकी वाणी लिख सकते। यह भी असंगत प्रतीत होता है कि गुरु नानक सदैव संगीतमय वाणी में ही उपदेश देते रहे। उनकी कुछ वाणियाँ उदाहरणार्थ 'जपु जी' 'सिध गोसटि' तथा ओअंकार आदि असमान रूप से लम्बी हैं। क्या वे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक गायी गयी थीं? यदि गायी गयी थीं तो कितना समय लगा होगा। इन परिस्थितियों में यह बिल्कुल सम्भ

है कि गुरु नानक देव ने अपनी वाणियाँ स्वयं लिखी थीं और वे उन्होंने इसलिए लिखी थीं कि भावी पीढ़ी उनसे लाभ उठाये।[१]

'नानक-वाणी' में वाणियों का क्रम

'नानक-वाणी' में गुरु नानक जी की वाणियाँ ठीक उसी क्रम से रखी गई हैं, जिस क्रम से 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में रखी गई हैं। प्रत्येक राग में वाणी का क्रम साधारणतः इस प्रकार है—

(क) सबद (शब्द) (ख) असटपदीआं (अष्टपदियाँ), (ग) छंत (छंद) और (घ) वारां (वारें)[२]। यदि किसी राग में 'सबद' नहीं हैं, तो असटपदियाँ पहले रक्खी गई हैं। यदि असटपदियाँ भी नहीं हैं, तो छंत रखे गए हैं। दोनों नहीं हैं तो वारें हैं।

सबदों, असटपदियों छंतों और वारों के अतिरिक्त कुछ रागों में कुछ वाणियाँ खास खास नामों से सम्बोधित हैं। उनका क्रम इस प्रकार है —

१ सिरी रागु में 'पहरे' नामक वाणी है। इसका क्रम अष्टपदियों के बाद तथा वार के पहले है। इस राग में गुरु नानक देव का कोई भी छंत नहीं है।

२ रागु आसा में 'सबदों' के प्रारम्भ में एक वाणी का नाम 'सोदरु' है और इसी राग में गुरु नानक द्वारा एक 'पट्टी' भी लिखी गई है, इसमें ३५ पउड़ियाँ हैं। यह 'पट्टी' असटपदियों के बाद और छंतों के पहले रखी गई है।

३ रागु वडहंसु में गुरु नानक द्वारा रचित एक वाणी "अलाहणीआ" है। यह छंतों के बाद तथा वारों के पहले रखी गई है। इसकी गणना छंतों में की गयी है।

४ रागु 'धनासरी' में एक वाणी का नाम 'आरती' है यह 'सबदों' में रखी गयी है। इसकी गणना 'सबदों' में ही की गई है।

५. रागु 'सूही' में 'कुचजी' और 'सुचजी' दो वाणियाँ गुरु नानक द्वारा रची गई हैं। ये दोनों वाणियाँ 'असटपदियों' की समाप्ति के पश्चात् तथा छन्दों के प्रारम्भ के पूर्व दर्ज हैं।

६ रागु 'बिलावलु' में नानक जी की एक वाणी ऐसी है, जो 'थिती' (तिथि) कहलाती है। यह वाणी असटपदियों के बाद और छंतों के पूर्व दर्ज की गई है।

७ रागु 'रामकली' में गुरु नानक द्वारा रचित 'ओअंकारु' और 'सिध गोसटि'— ये दो वाणियाँ क्रमशः अष्टपदियों के बाद और छंतों के पूर्व रखी गई हैं। 'ओअंकारु' में ५४ पउड़ियाँ हैं और 'सिध गोसटि' में ७३। इन दोनों ही वाणियों में गुरु नानक के दार्शनिक सिद्धान्तों का बहुत सुन्दर निरूपण प्राप्त होता है।

८ रागु 'मारू' में गुरु नानक की एक विशेष वाणी 'सोलहे' के नाम से विख्यात है। इसमें उनके २२ 'सोलहे' हैं। ये अष्टपदियों के पश्चात् और वारों के पहले रखे गए हैं।

---

१. गुरु और दार्शनिक लेख—[illegible] पृष्ठ १—२१

२. वार :—उस कविता को कहते हैं जिसमें किसी योद्धा के शौर्य की कोई प्रसिद्ध कहानी कही जाती है। पंजाब में वारों का एक प्रकार प्रचार था, जैसे उत्तर प्रदेश में 'आल्हखंड' का प्रचार है। ये रचनाएँ वीर रस में होती थीं। [illegible] प्रचार साधारण जनता में बहुत अधिक था। गुरु नानक देव ने जनता में भक्ति-भावना के प्रचार के लिए वारों का प्रयोग किया।

९ 'तुखारी' रागु में एक बाणी का नाम 'बारह माहा' है। इसकी गणना छंदों में है और इसमें १७ पउड़ियाँ हैं।

१० 'सलोक सहसकृती' में गुरु नानक देव के ४ सलोक हैं, जो ३१ रागों की समाप्ति के पश्चात् रखे गए हैं।

११ गुरु नानक जी के जो 'सलोक' वारों की पउड़ियों के साथ रखने से बच गए थे वे 'सलोक वारां ते वधीक' शीर्षक के अंतर्गत रखे गए हैं। इनकी संख्या ३२ है। ये सबसे अन्त में रखे गए हैं।

'नानक-वाणी' में इसी प्रकार वाणियों का क्रम है।

राजनीतिक स्थिति

कदाचित् संत कवियों में गुरु नानक देव ही ऐसे कवि हैं जिनकी देश की दुर्दशा के ऊपर पैनी दृष्टि थी। उन्होंने देश की राजनीतिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। उस समय देश में मुसलमानों का राज्य पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। उदार से उदार मुसलमान शासक में धर्मान्धता कूट-कूट कर भरी थी। 'तारीख-ए-दाऊदी' के लेखक ने सिकन्दर लोदी की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है, 'सुल्तान सिकन्दर अत्यन्त यशस्वी शासक था। उसका स्वभाव अत्यन्त उदार था। वह अपनी उदारता कीर्ति और नम्रता के लिए प्रसिद्ध था। उसे तड़क भड़क बनाव-शृंगार में कोई रुचि नहीं थी। धार्मिक और गुणी व्यक्तियों से वह सम्बन्ध रखता था।' किन्तु श्री बनर्जी के अनुसार सिकन्दर की यह न्यायप्रियता और उदारता संकीर्णता से युक्त थी। उसकी यह न्यायप्रियता और उदारता अपने सहधर्मियों तक ही सीमित थी[१]। भाई गुरदास जी ने भी इस बात का संकेत किया है कि काजियों में रिश्वत का बोल बाला था।[२]

गुरु नानक के शब्दों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अनुमान कीजिए—

'कलियुग में लोग कुत्ते के मुँह वाले हो गए हैं और उनकी खाद्यवस्तु मुरदे का मांस हो गई है। अर्थात् इस युग में लोग कुत्ता के समान लालची हो गये हैं और रिश्वत तथा बेईमानी से पले जाते हैं। वे झूठ बोल-बोल कर भूँकते हैं।'[३]

गुरु नानक देव ने तत्कालीन राजाओं और उनके कर्मचारियों का चित्रण इस भाँति किया है—

> राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइन बैठे सुते ॥
> चाकर नहदा पाइन्हि घाउ। रतु पितु कुतिहो चटि जाहु ॥
> जिथै जीआं होसी सार। नकीं वढीं लाइतबार ॥[४]

अर्थात्, 'इस समय राजागण सिंह के समान (हिंसक) तथा चौधरी कुत्ते के समान (लालची हो गए हैं)। वे सोती हुई प्रजा को जगाकर (उसका मांस भक्षण कर रहे हैं)। (राजाओं के) नौकर अपने तीव्र नाखूनों से घाव करते हैं और लोगों का खून कुत्तों (मुकदमों)

१. इवोल्यूशन आफ द खालसा, भाग १, इंदुभूषण बनर्जी पृष्ठ ९९
२. भाई गुरदास की वार, वार १, पउड़ी ३
३. "कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु" 'नानक वाणी' सारंग की वार, सलोक ३८.
४. 'नानक-वाणी' मलार की वार, सलोक १९.

के द्वारा चाट जाते हैं। जिस स्थान पर प्राणियों के कर्मों की छानबीन होगी, वहां उन नाक़तवारों की नाक काट ली जायगी।"

एक स्थल पर गुरु नानक देव ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का बड़ा सूक्ष्म ग्राही वर्णन किया है—

कलि काती राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ।
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ॥
हउ भालि विकुंनी होई। आधेरै राहु न कोई॥
विचि हउमै करि दुखु रोई। कहु नानक किनि बिधि गति होई॥१२॥
(माझ की वार महला १ सलोकु १५)

अर्थात्, "कलियुग (यह बुरा समय) छुरी है, राजे कसाई हैं, धर्म अपने पंखों पर (न मालूम कहाँ) उड़ गया है, झूठ रूपी अमावस्या (की रात्रि) है। (इस रात्रि में) सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ है ? (वह) दिखलाई नहीं पड़ता। मैं (उस चन्द्रमा को) ढूंढ ढूंढ कर व्याकुल हो गई हूं, अन्धकार में (सृष्टि) अहंकार के कारण दुखी होकर रो रही है। हे नानक (इस भयावह दुखद स्थिति से) किस प्रकार छुटकारा हो ?"

उपर्युक्त पद में समय की भयावहता तत्कालीन जागीरदारों की नृशंसता और कपटा झूठ की प्रबलता लोगों की कारुण्य-भावना का मार्मिक चित्रण मिलता है।

इतिहास में बाबर के आक्रमण प्रसिद्ध हैं। सन् १५२१ ई० में उसने ऐमनाबाद पर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। स्त्रियों की दुर्दशा की गई। गुरुनानक ने ऐमनाबाद के आक्रमण को स्वयं देखा था। उन्होंने उस रोमांचकारी दृश्य का हृदयग्राही चित्रण किया है —

'जिन स्त्रियों के सिर की माँग में पट्टी थी और उस माँग में (शृंगार के लिए) सिन्दूर डाला गया था (उनके) उन सिरों (की केशराशि) कैंची से मूंड़ दी गई है और धूल उड़-उड़ कर उनके गले तक पहुँचती है। (जो स्त्रियाँ) महलों के अन्तर्गत निवास करती थीं उन्हें अब बाहर भी बैठने का स्थान नहीं मिलता है। वे स्त्रियाँ विवाहिता थीं और अपने पतियों के पास सुशोभित थीं। वे उन पालकियों पर बैठकर आई थीं जो हाथीदांत के टुकड़ों से जड़ी थीं। उन स्त्रियों के ऊपर पानी छिड़का जाता था और हीरे-मोती से जड़े हुए पंखे उनके पास चमकते थे। एक लाख रुपये तो उनके खड़े होने पर और एक लाख रुपये उनके बैठने पर न्यौछावर किए जाते थे। जो स्त्रियाँ गरी-छुहारे खाती थीं और सेजों पर रमण करती थीं उनके गले में रस्सी पड़ी हुई है और उनके मोती की लड़ियाँ टूट रही है।"

(देखिए, रागु आसा असटपदी ११)

आसा रागु की १२ वीं अष्टपदी में गुरु नानक ने युद्ध के परिणामों को भी दिखलाया है—

'तुम्हारे वे खेल अस्तबल और घोड़े आदि कहाँ हैं ? तुम्हारे नगाड़े और शहनाइयाँ भी नहीं दिखाई पड़ रही हैं। वे सब कहां हैं ? तलवारों की म्यानें तथा रथ कहा हैं ? वे दर्पण और वे सुन्दर मुख कहाँ हैं ? यहाँ तो वे सब नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। तुम्हारे वे घर, दरवाजे मंडप और महल कहाँ हैं ? तुम्हारी सुखदायिनी सेज और उस सुशोभित करने वाली

कामिनी कहाँ है ? वे पान देने वाली तंबोलिनें और परदों में रहने वाली स्त्रियाँ कहाँ है ? वे सब तो माया की छाया के समान विलीन हो गई है।'

इसी अष्टपदी म आगे यह भी बताया गया है कि बाबर के आक्रमण होने पर बहुत स पीरों ने उसे रोकने के लिए टोने-टुटके के प्रयोग भी किए किन्तु कुछ भी परिणाम न निकला।

मुगलों और पठानों की लड़ाई का भी चित्रण इसी अष्टपदी में मिलता है, "मुगलों और पठानो में घमासान युद्ध हुआ। रण मे तलवारें खूब चलाई गई। मुगलों ने ताक-ताक कर तुपकें चलाई और पठानो ने हाथी उत्तेजित करके आगे बढाया।" इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुगलो की जीत का प्रमुख कारण तुपको का प्रयोग था।

गुरु नानक देव ने इसी अष्टपदी म यह भी बताया है कि मुगलो ने हिन्दुओं अथवा मुसलमानो किसी को भी नही छोड़ा —

'जिन स्त्रियो की दुर्दशा मुगलो ने की उनमे से कुछ तो हिन्दुवानियाँ कुछ तुरकानियाँ कुछ भाटिनें और कुछ ठकुरानियाँ थीं। इनमें कुछ स्त्रियाँ अर्थात् तुरकानियों के बुरके सिर से पैर तक फाड़ दिए गए और कुछ को अर्थात् हिन्दू स्त्रियों को श्मशान मे निवास मिला अर्थात् मार डाली गई। जिनके सुन्दर पति घर नही लौटे उन बेचारियों ने अपनी रातें किस प्रकार काटी ?"

इस प्रकार गुरु नानक देव सच्चे अर्थ मे देश भक्त थे। देश का निवासी चाहे हिंदू रहा हो, चाहे मुसलमान सभी के लिए उनके हृदय में महान् प्रेम सहानुभूति और अनुराग था। सभी की दुर्दशा पर उन्होंने आँसू बहाया।

राग आसा के ३९ वें 'सबद' में गुरु नानक देव का अपूर्व राष्ट्र प्रेम मुखरित हो उठा है। उस पद को पढने से यह प्रतीत होता है कि वे राजनीतिक परिस्थिति से कितने क्षुब्ध थे। वे प्रारब्ध की आड मे सारी बुराइयो और अच्छाइयों को परमात्मा के सिर पर थोप कर अपने नैतिक कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व से मुक्ति नही पाना चाहते थे। उन्हाने साहस दृढ़ता और धैर्य के साथ परमात्मा से उसी भाँति प्रश्न किया है, जिस भाँति कोई सरल बालक अपने पिता से किसी रहस्यमय बात का समाधान चाहता है —

(हे परमात्मा), (बाबर ने) खुरासान पर शासन किया किन्तु खुरासान को अपना समझ कर तूने बचा रक्खा और बेचारे हिन्दुस्तान को (बाबर के आक्रमण द्वारा) आतंकित किया। हे कर्ता पुरुष, (तू इन सब बेकों का जिम्मेदार है) पर अपने ऊपर दोष न लेने के लिए मुगलो को यम रूप में बनाकर (हिन्दुस्तान पर) आक्रमण कराया। इतनी मारकाट हुई कि लोग करुणा से चीख उठे, किन्तु हे प्रभु, तुम्हें क्या (जरा भी) दर्द नही उत्पन्न हुआ ? (हे स्वामी) तू तो सभी का कर्ता है, (केवल मुगलों का नही हिन्दुओ का भी है)। यदि कोई शक्तिशाली किसी शक्तिशाली को मारता है, तो मन में क्रोध नही उत्पन्न होता।

उसी स्थल पर गुरु नानक देव ने तत्कालीन बादशाह को भी चुनौती दी है, उसे भी अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए सचेत किया है—'यदि शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के झुण्ड पर (आक्रमण कर) उन्हें मारता है, (तो उन पशुओं के) स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखलाना चाहिए। [यहाँ निरपराध पशुओं से तात्पर्य निरीह प्रजा से है और उसके

स्वामी का अभिप्राय लोदी-पठान शासकों से है] । इन कुत्तों ने हीरे (के समान हिन्दुस्तान) को बिगाड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। [तात्पर्य यह कि पठान शासक मुग़लों के सामने भले नहीं और हिन्दुस्तान ऐसा बहुमूल्य देश अपनी अकर्मण्यता से गँवा बैठे]।

इस प्रकार गुरु नानक देव ऐसे पहले धार्मिक सन्त हैं, जो राजनीतिक दुर्व्यवस्था को सहन न कर सके। उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठायी।

सामाजिक स्थिति

राजनीतिक धर्मान्धता का सामाजिक संघटन पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। मुसलमान शासकों ने धर्मपरिवर्तन के कई ढंग निकाले जिनमें यात्रा कर, तीर्थयात्रा कर, धार्मिक मेलों, उत्सवों और जुलूसों पर कठोर प्रतिबन्ध नये मन्दिरों के निर्माण तथा जीर्ण मन्दिरों के पुनरुद्धार पर रोक हिन्दू-धर्म और समाज के नेताओं का दमन मुसलमान होने पर बड़े-बड़े पुरस्कार देने आदि मुख्य थे। इन्हीं ढंगों के द्वारा वे लोग हिन्दू धर्म को सर्वथा मिटा देना चाहते थे।[१]

इन अत्याचारों का परिणाम तत्कालीन जनता पर बहुत अधिक पड़ा। हिन्दुओं का अनुदार वर्ग और भी अधिक अनुदार हो गया। वे अपनी सामाजिक स्थिति के रक्षण के प्रति और भी अधिक सचेष्ट हो गए। इसका परिणाम हिन्दू जाति के लिए अत्यन्त भयावह सिद्ध हुआ। हिन्दुओं का उच्च वर्ग असहिष्णु, अनुदार और संकीर्ण हो गया। अपने को विधर्मी प्रभावों से बचाना उसका उद्देश्य हो गया। पुन धर्म लोक धर्म से पराङ्मुख हो आचारवादी, रूढ़ियों के कवच से अपने को सुरक्षित रखना यही उनका सबसे बड़ा प्रयास था। उनकी यह पराङ्मुखता अन्य धर्मावलम्बियों तक सीमित नहीं रही, बल्कि अपने सहधर्मियों के साथ भी व्यापक रूप म परिलक्षित हुई। इसी कारण सामाजिक व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। हिन्दुओं का वर्णाश्रम धर्म कहने मात्र को रह गया। ब्राह्मण अपनी वैदिक सभ्यता को त्याग कर धर्म के बाह्य रूप में अनुरक्त हो गए। इसी प्रकार क्षत्रियों ने भी अपने क्षात्र धर्म को त्याग दिया। वे अपनी भाषा और संस्कृति के अभिमान को त्याग कर उदरपोषण के निमित्त अरबी-फारसी के अध्ययन में रत हुए। गुरु नानक देव ने इस परिस्थिति का बड़ा सुन्दर आभास दिया है—

> अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसारु ॥१॥ रहाउ ॥
> आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ।
> मगर पाछै कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ ॥२॥
> खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही।
> सृसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही ॥३॥
> (रागु धनासरी सबद ८)

अर्थात्, "(पाखण्डी ब्राह्मण) संसार के ठगने के निमित्त आँख बन्द करके नाक पकड़ते हैं, (जैसे कि समाधि द्वारा प्राणायाम में स्थित हो रहे हैं)। अगूठे और पास की दो अंगुलियों की सहायता से नाक पकड़ते हैं (और यह दम्भ करते हैं कि प्राणायाम द्वारा समाधि मे स्थित होकर मुझे) 'तीनों लोकों का ज्ञान है' किन्तु पीछे (की रखी हुई) वस्तु उन्हें सुझाई

१. दी लोकप्रिय आफ द बाबर, भाग १, ईश्वरीप्रसाद बनर्जी, पृ० ३१

नहीं पड़ती। यह (कैसा मनोखा) पद्मासन है। क्षत्रियों ने (म्लेच्छ की भाषा पढ़कर अपना) धर्म त्याग कर दिया। सारी सृष्टि एकवर्ण—वर्णसंकर हो गई है, (तात्पर्य यह कि लोग तमोगुणी हो गए हैं उन्हें अपने कर्म-धर्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है)।

सारंग की वार के २२ वें 'सलोक' में गुरु नानक देव ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति की वास्तविक झाँकी प्रस्तुत की है—

'स्त्रियाँ मर्द हो गई हैं और पुरुष शिकारी—जालिम हो गए हैं। शील संयम और पवित्रता तोड़कर साथ अखाद्य खाने लगे हैं। शरम उठकर अपने घर चली गई है। उसके साथ प्रतिष्ठा भी उठ कर चली गई है। तात्पर्य यह कि लोगों में से लज्जा और प्रतिष्ठा की भावना लुप्त हो चुकी है।

हिन्दू जन पर केवल मुसलमानों का ही अत्याचार नहीं था, बल्कि सवर्ण हिन्दुओं का अत्याचार उससे भी अधिक था। शूद्रों को नीच समझा गया। उच्च वर्ण वालों ने उन्हें सारे अधिकारों से वंचित कर दिया। वेदों और शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए त्याज्य बताया गया। अन्त्यजों की दशा तो और भी अधिक शोचनीय हो गई। वे मन्दिरों में देवताओं के दर्शन से भी बहिष्कृत किए गए। उनकी छाया के स्पर्श मात्र से उच्च वर्ग के हिन्दुओं का शरीर अपवित्र हो जाता था। गुरु नानक की वाणी से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि उस समय जातिगत अहंकार का प्राबल्य कितना अधिक था। उन्होंने इसका संकेत इस भाँति किया है—

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न है ॥१॥ रहाउ ॥

(राग आसा, महला १ सबद ३)

अर्थात्, "मनुष्य मात्र में स्थित परमात्मा की ज्योति ही को समझने की चेष्टा करो। जाति-पाँति के टंटे-बखेड़े में मत पड़ो। यह निश्चित समझ लो कि आगे (वर्णव्यवस्था के निर्माण के पूर्व) कोई भी जाति-पाँति नहीं थी।

"मुसलमानों के शासन काल में भारतीय नारियों के ऊपर अत्याचार तो अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। यह परम शोचनीय बात थी कि उनका सम्मान उनके परिवार में ही समाप्त हो गया। अमरत्व प्राप्ति की साधना के सारे अधिकारों से वे वंचित कर दी गई थीं। उनका कोई निजी कर्म ही न रह गया। वे आध्यात्मिक उत्तरदायित्व से हीन थीं। उनका कोई अधिकार भी न रह गया। वेदों-शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए वर्जित था। गृह-परिचर्या ही उनकी साधना थी और इसी में उन्हें सन्तोष करना पड़ता था।"[१]

इतना ही नहीं सन्त-महात्माओं की दृष्टि में भी वे हेय समझी जाने लगीं। नारी नरक का मूल मानी जाने लगी। सामाजिक दृष्टि से उनका तिरस्कार किया जाने लगा। लोग उनकी निन्दा करने में भी नहीं चूकते थे। सारंग की वार के २२वें 'सलोक' में गुरु नानक ने इसका संकेत किया है कि "स्त्रियाँ मूर्ख और पुरुष शिकारी—जालिम हो गए हैं।"

गुरु नानक देव ने हिन्दू-जाति के उपेक्षित नारी-समाज को गौरव के आसन पर बिठाने की चेष्टा की। उन्होंने उनके गौरव का सम्पूर्ण रूप से समर्थन किया —

१. वेन इन सिक्खिज्म—तेजासिंह पृष्ठ १९-२६

यह तमाशा देखकर वे अपने-अपने घर चले जाते हैं। रोटी के निमित्त वे रासधारी ताल पूरी करके नाचते हैं और अपने माथ को पृथ्वी पर पछाड़ते हैं। इस प्रकार रासलीला में वे गोपी और कृष्ण बनकर गाते हैं। कभी-कभी सीता तथा राम का स्वांग बनाकर भी गाते हैं।'

(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक १)

इसी 'सलोक' के अंत में वे रासलीला और उसके नृत्य आदि का तर्कपूर्ण खण्डन करते हैं— (नाचने और फेरा लगाने से जीवन का उद्धार नहीं हो सकता। बहुत-सी वस्तुएं तथा जीव सदैव चक्कर लगाते रहते हैं किन्तु इस चक्कर से क्या लाभ होता है ? क्या उनकी मुक्ति हो जाती है) ? कोल्हू चरखा चक्की (कुम्हार की) चाक रेतीले मैदानों के बहुत से बवण्डर लट्टू मथानी अन्न दाबने वाले फल्हे सदैव घूमते रहते हैं। पक्षी और भँमीरियाँ एक साँस में उड़ती रहती हैं। व त से जानवरों को शूल चुभो कर घुमाया जाता है। इस प्रकार हे नानक चक्कर लगाने वाले जीवों और वस्तुओं का अन्त नहीं है। वह प्रभु जीवों को माया के बन्धनों में जकड़कर घुमाता रहता है। सभी जीव अपने किए हुए कर्मों के अनुसार नाचते रहते हैं। जो जीव नाच-नाच कर हँसते हैं, वे अन्त में रो-रो कर इस संसार से विदा होते हैं। नाचने कूदने से वे उड़ नहीं जाते तात्पर्य यह कि नाचने-कूदने से उनकी गति-मुक्ति नहीं हो जाती और न व सिद्ध ही हो जाते हैं। अतएव नाचना-कूदना तो मन की उमंग है। हे नानक प्रेम केवल उन्हीं के मन में है, जिनके मन में परमात्मा का भय है।"

(नानक-वाणी आसा की वार सलोक १)

अपनी वाणी में गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर मूर्तिपूजा का निषेध किया है—

'हिन्दू बिलकुल भूले हुए कुमार्ग पर जा रहे हैं। जो नारद ने कहा है वही पूजा करते हैं। उन अंधों और गू गों के लिए घनघोर अंधकार है। वे मूर्ख और गंवार पत्थर लेकर पूज रहे हैं। हे भाई, जिन पत्थरों की तुम पूजा करते हो यदि वे स्वयं ही पानी में डूब जाते हैं, तो उन्हें पूज कर तुम संसार-सागर से किस प्रकार तर सकते हो ?

(नानक-वाणी बिहागड़े की वार, सलोक २)

बहुत से लोग धर्म का प्रदर्शन मात्र करते थे। उस धर्म पर आचरण नहीं करते थे। गुरु नानक देव ने इस प्रकार के प्रदर्शनों का स्थान स्थान पर संकेत किया है और उसकी निन्दा भी की है—

"पड़ि पुसतक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं॥
मुखि झूठ बिभूखण सारं।"

(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक २८)

अर्थात्, "पुस्तकें पढ़ते हैं, संध्या करते हैं। किन्तु उस संध्या के वास्तविक रहस्य को नहीं समझते। पांडित्य-प्रदर्शन के निमित्त वाद-विवाद में रत रहते हैं। पाषाण की पूजा करते हैं और बगुले की भाँति झूठी समाधि लगाते हैं। सच्ची समाधि के आनन्द से बहुत दूर हैं। दिखावा मात्र समाधि लगाने का दम्भ करते हैं। मुख से झूठ बोलकर लोहे के गहनों को सोने का दिखाते हैं अर्थात् झूठ के बल पर बुरी वस्तु को अच्छी बनाकर दिखाना चाहते हैं।

तत्कालीन मुसलमान धर्म के ग्रन्थ का विवरण भी नानक जी ने दिया है —"कलियुग में तात्पर्य यह कि इस युग में कुरान ही प्रामाणिक ग्रंथ है। पोथी पंडित और पुराण दूर हो

गए हैं । हे नानक इस युग में परमात्मा का नाम भी 'रहमान' पड़ गया है" ॥७॥१॥

(नानक-वाणी राग रामकली १ली अष्टपदी)

गुरु नानक जी ने धर्म को बाह्याडम्बरों और रूढ़ियों से मुक्त करना चाहा । यही कारण है कि जो व्यक्ति जिस स्थिति में था उसे उसी स्थिति से ऊपर उठाना चाहा । उन्होंने धर्म के आन्तरिक भावों को ग्रहण करने के निमित्त बल दिया । उन्होंने उन गुणों को अपनाने के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया जिससे मानवता का कल्याण हो भ्रातृभाव बढ़े सहृदयता सहिष्णुता की भावना का प्रसार हो लोग सत्य संयम दया सच्चा आदि गुणों की ओर आकृष्ट हों । उदाहरणार्थ उन्होंने माझ की वार, के १ वें ११ वें और १२ वें श्लोकों में सच्चा मुसलमान बनने की विधि बताई है —

'प्राणियों के ऊपर दया भावना को मस्जिद बनाओ और श्रद्धा को मुसल्ला । हक की कमाई को कुरान और बुरे कर्मों के प्रति लज्जा को सुन्नत मानो । शील-स्वभाव को रोजा बनाओ हे भाई इस विधि से मुसलमान बनो । शुभ कर्मों को रोजा सच्चाई को पीर, सुन्दर और दयापूर्ण कर्म को ही कलमा और नमाज बनाओ । जो बात खुदा को अच्छी लगे उसी को मानना तुम्हारी तसबीह हो । हे नानक खुदा ऐसे ही मुसलमान की लज्जा रखता है ।"

(नानक-वाणी माझ की वार, श्लोक १)

इसी प्रकार आसा की वार में उन्होंने द्विजों के लिए आध्यात्मिक जनेऊ धारण करने को कहा है, वह जनेऊ, जिसकी कपास दया हो जिसका सूत संतोष हो जिसकी गाँठ संयम हो जिसकी पूरन सत्यगुण हो हे पंडित यदि तुम्हारे पास इस प्रकार का जनेऊ हो तो मेरे गले में पहना दो । ऐसा जनेऊ न तो टूटता है, न मैला होता है, न जलता है और न कभी नष्ट होता है । हे नानक वे मनुष्य धन्य हैं, (जो) अपने गले में ऐसा जनेऊ पहनकर (परलोक) जाते हैं ।

(नानक-वाणी आसा की वार, श्लोक २६)

गुरु नानक देव ने धर्म के बाह्याडम्बरों को त्याग कर उसका वास्तविक स्वरूप अपनाने के लिये बल दिया है । उन्होंने संयम के ऊपर बहुत जोर दिया है । उन्होंने सभी प्रकार के धर्म साधकों को संयम-निर्वाह की अत्यधिक महत्ता बताई है । उदाहरणार्थ उन्होंने योगियों को इस प्रकार उपदेश दिया है—

"हे योगी तू जगत् को तो उपदेश देता है किन्तु अपनी पेट-पूजा के निमित्त मठ बनाता है । स्वयं तो सदोलता के आसन को त्याग बैठा है, भला सत्य कैसे पा सकता है ? तू ममता मोह और स्त्री का प्रेमी है । तू न तो त्यागी है और न संसारी ही है । हे योगी अपने स्वरूप में स्थिर हो जाओ जिससे तेरे द्वैतभाव और दुःख दूर हो जावें । तुझे घर-घर माँगते हुए लज्जा नहीं लगती ? तू अलख निरंजन का गीत तो गाता है किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता । तेरा लगा हुआ परिताप किस प्रकार दूर हो ? हे योगी गुरु के शब्दों में अपने मन का प्रेम में अनुरक्त कर सहज ही सहजावस्था की भिक्षा विचार पूर्वक ला । तू भस्म लगाकर पाखण्ड करता है, माया और मोह में पड़कर यमराज के डंडे सहता है । तेरा हृदय रूपी खप्पर फूट गया है जिसमें भाव-रूपी भिक्षा उसमें नहीं पाती । तू माया के बंधनों में बाँधा जाकर इस संसार-चक्र में आता-जाता रहता है । तू वीर्य की तो रक्षा नहीं करता, फिर

भी 'पती' कहलाता है। तीनों गुणों में लुब्ध होकर माया माँगता है। तू दयारहित है, अतएव परमात्मा की ज्योति का प्रकाश तेरे अन्तःकरण में नहीं होता। तू नाना प्रकार के सांसारिक धंधों में डूबा हुआ है। तू नाना प्रकार के वेश बनाता है और बहुत प्रकार के स्वांग साजता है। मदारी की भाँति अनेक प्रकार के झूठे खेलों को खेलता है। तेरे हृदय में चिन्ता की अग्नि बड़े वेग से जल रही है। बिना शुभ कर्मों के तू संसार-सागर से कैसे पार हो सकता है?"

(नानक-वाणी रामकली, अष्टपदी २)

मध्यकालीन धर्म-सुधारकों में गुरु नानक देव का स्थान

मध्यकालीन उत्तरी भारत की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थिति बड़ी ही विषम थी। तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर धर्म-सुधारकों का एक ऐसा दल समाज के सामने आया जो समाज और धर्म में सुधार करने के लिए प्रगतिशील हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हिन्दू धर्म में सुधार की भावना बड़े जोरों से अग्रसर हुई। प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम के अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सिक्खों के इतिहास' में लिखा है, "इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू-मस्तिष्क प्रगतिहीन और स्थिर न रह सका। मुसलमानों के संघर्ष से वह उद्वेलित होकर परिवर्तित हो उठा और नवीन प्रगति के लिए उत्तेजित हो उठा। रामानन्द और गोरख ने धार्मिक एकता का उपदेश दिया। चैतन्य ने उस धर्म का प्रतिपादन किया जिससे जातियाँ सामान्य स्तर पर आईं। कबीर ने मूर्तिपूजा का निषेध किया और अपना संदेश लोकभाषा में सुनाया। वल्लभाचार्य ने अपने उपदेशों में भक्ति और कर्म का सामंजस्य स्थापित किया। पर वे महान् सुधारक जीवन की क्षणभंगुरता से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनकी दृष्टि में समाजोद्धार का उद्देश्य नगण्य-सा था। उनके प्रचार का लक्ष्य केवल ब्राह्मण-वर्ग के प्रभुत्व से छुटकारा दिलाना, मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की न्यूनता प्रदर्शित करना मात्र था। उन्होंने वैराग्यवाद् और शान्त पुरुषों का पवित्र संघटन तो किया और आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया पर वे अपने भाइयों को सामाजिक और धार्मिक बन्धनों को तोड़ने का उपदेश न दे सके। उन्होंने अपने मतों में तर्क-वितर्क वाद-विवाद पर तो विशेष बल दिया पर ऐसे उपदेश नहीं दिये जो राष्ट्र-निर्माण में बीजारोपण का कार्य कर सकें। यही कारण है कि उनके सम्प्रदाय विकसित न हो सके और जहाँ के तहाँ ही रह गए।[1]"

उपर्युक्त सुधारकों की असफलता के दो प्रमुख कारण हैं।[2] इसका पहला कारण यह है कि गुरु नानक के पूर्व जितने भी धर्म-सुधार-संबंधी आन्दोलन हुए थे वे प्रायः सभी साम्प्रदायिक और पारस्परिक वाद-विवाद में रत थे। उदाहरणार्थ रामानंद जी उत्तरी भारत के महान् सुधारक थे। उन्होंने ही भक्ति मार्ग सर्व-सुलभ बनाया और साधारण जनता में यह भावना भरी 'जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि-को भजै सो हरि का होई।' उन्होंने अवतारवाद को स्वीकार करके रामोपासना की प्रथा चलाई। इसका परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक अहंमन्यता बढ़ी। रामानन्द जी के अनुगामी रूढ़ियों और बाह्याचारों के बन्धन से मुक्त न हो

१. हिस्ट्री आफ द सिक्खस जे० डी० कनिंघम पृष्ठ ४०

२. ह्यूमनाइजेशन आफ रिलिजन—श्री ...चन्द्र भाटिया पृ ९५, ९६, ९७

सके। उनके पहनने के वस्त्र विशेष ढंग के थे उनकी माला भी विशेष प्रकार की थी। वे रामानंद के अनुयायी किसी के साथ भाव से भय खाते थे और सबसे पृथक् रहते थे। इस प्रकार रामानंद जी का मत विकसित होने के बजाय संकीर्ण होता गया।

गोरखनाथ जी ने भी बाह्याचारों और प्रदर्शनों का उन्मूलन योगक्रिया के गुप्त साधनों द्वारा करना चाहा, परन्तु वे भी सम्प्रदाय के संकीर्ण प्रभावों से मुक्त न हो सके। आगे चलकर उनका धर्म भी बाह्याडम्बरों में परिणत हो गया। नाथ योगी सैकड़ों की संख्या में मेखला, शृंगी सेली गूदरी खप्पर, कर्ण-मुद्रा, झोली आदि चिह्नों से युक्त सड़कों, तीर्थ स्थानों मे घूमते हुए देखे जाने लगे।[1] गुरु नानक देव की 'सिध गोसटि" मे गोरखपंथियों की वेशभूषा का सुन्दर चित्रण मिलता है। इसी प्रकार अन्य धार्मिक आन्दोलनों के प्रति भी थोड़ी या अधिक बातें कही जा सकती है। इन सभी आन्दोलनों के मूल मे साम्प्रदायिकता निहित थी। सभी के अपने आचारात्मक और बाह्य नियम थे और वे सब उसमें बुरी तरह जकड़े थे।

'इन आन्दोलनों से राष्ट्रीय उत्थान क्यों न हुआ ?'—इस प्रश्न का दूसरा उत्तर यह है कि प्राय: सभी सुधारक त्याग और वैराग्य को जीवन का परम लक्ष्य मानते थे। एकाध इसके अपवाद अवश्य है, उदाहरणार्थ वल्लभाचार्य। रामानंद जी के अनुयायी तो वैराग्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा मे भी त्याग आवश्यक अंग समझा जाता था हालांकि उनके अनुयायी गृहस्थ भी थे। कबीर यद्यपि विवाहित थे और गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते थे फिर भी वैराग्य पर बहुत जोर देते थे। संतो के त्याग के इस भाषण ने लोगों में अकर्मण्यता की भावना भर दी। लोक-संग्रह के निमित्त कर्म करने का आदर्श लोग भूल गए। लोग हाथों पर हाथ रखकर भाग्यवादी बन गए और काल कर्म तथा भाग्य पर मिथ्या दोष आरोपित करने लगे। इस प्रकार इस अकर्मण्यता से हमारे समाज का कर्म पंगु हो गया ज्ञान चंचु ज्ञान मात्र रह गया और भक्ति आडम्बरयुक्त हो गई।

गुरु नानक देव अपूर्व धर्म-सुधारक, महान् देशभक्त प्रबल रूढ़ि-विरोधी और अद्भुत युग-पुरुष थे। इसके साथ ही उनके हृदय में वैराग्य और भक्ति की मन्दाकिनी सदैव प्रवाहित होती रहती थी तथा मस्तिष्क मे विवेक और ज्ञान का मार्तण्ड अहर्निश प्रकाशित रहता था। वे अपूर्व दूरदर्शी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह समझ लिया था कि वर्तमान परिस्थितियों में कौन सा धर्म भारत के लिए और यह भी विशेषत पंजाब के लिए मंगलकर होगा। इसी विचार से उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा 'सिक्ख धर्म' की संस्थापना की। यद्यपि मध्ययुग में भारतवर्ष में अनेक धर्म-सुधारक हुए, पर उन्हें वह सफलता नहीं प्राप्त हुई जो गुरु नानक देव को प्राप्त हुई। कनिंघम महोदय के इस कथन से हम अक्षरश: सहमत हैं "यह सुधार ने गुरु नानक के लिए अवशिष्ट था। उन्होंने सुधार के सच्चे सिद्धान्तों का सूक्ष्मता से साक्षात्कार किया और ऐसे व्यापक आधार पर अपने धर्म की नींव डाली जिसके द्वारा गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने देशवासियों का मस्तिष्क नवीन राष्ट्रीयता से उत्तेजित कर दिया और उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिया कि छोटी और बड़ी जाति तथा उनके धर्म समान हैं। इसी भांति राज नीतिक सुविधाओं की प्राप्ति में भी सभी की समानता है।[2]

---

१. नाथ-सम्प्रदाय: हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १०

२. हिस्टरी आफ द सिक्खस: जे० डी० कनिंघम पृष्ठ १०—११

इस प्रकार मध्ययुग के धर्म-सुधारकों में गुरु नानक देव का महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान है। उन्होंने देशवासियों के दुःखों, क्लेशों, अधर्मों का व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने युग की नाड़ी पहचान कर, तदनुरूप उसका निदान किया। सुभीते के लिए गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म की विशेषताओं को दो भागों में विभाजित कर और उनके अध्ययन करने के उपरान्त उनका महत्त्व आँका जा सकता है। वे विभाग निम्नलिखित हैं—

(१) व्यावहारिक पक्ष और (२) सैद्धान्तिक पक्ष।

व्यावहारिक पक्ष

राधाकृष्णन् का कथन है कि प्रत्येक मौलिक धर्म-संस्थापक अपनी व्यक्तिगत समाजगत तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने धार्मिक संदेश देता है।[1] गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म में हम उपर्युक्त कथन की अक्षरशः पुष्टि पाते हैं। उत्तरी भारत में मध्ययुग में बहुत से धर्म-संस्थापक हुए किन्तु विषम राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण किसी ने भी नहीं किया। किसी में भी यह जिज्ञासा नहीं उत्पन्न हुई कि वह अपने आराध्य-देव से यह प्रश्न कर सके—

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ।
..
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ॥
(नानक-वाणी, आसा, सबद ३९)

अतएव गुरु नानक के धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रवृत्तिमूलक है और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति भी जागरूक है।

गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें पाखण्डों और बाह्याडम्बरों का जोरदार खण्डन प्राप्त होता है चाहे वह पाखण्ड हिन्दू ब्राह्मणों का हो चाहे जैनों का हो चाहे योगियों का हो और चाहे मुल्लाओं और काजियों का हो। बाह्याडम्बर ही लड़ाई झगड़े और संकीर्णता के कारण होते हैं। धर्म के आन्तरिक स्वरूप में तो बहुत कम लड़ाई झगड़े की गुंजाइश होती है।

गुरु नानक के धर्म की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें समाज के कल्याण के प्रति उदात्त विचार प्राप्त होते हैं। जातिगत प्रथा की आन्तरिक कुरूपता को समझकर उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठाई —

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे ॥१॥ रहाउ ॥१॥
(नानक-वाणी रागु आसा सबद १)

उन्होंने हिन्दू-जाति के उपेक्षित नारी-समाज को फिर से प्रतिष्ठा एवं गौरव के आसन पर बिठाया। उन्होंने आसा की वार में स्त्रियों के अधिकारों का तर्कपूर्ण समर्थन किया। आध्यात्मिक साधनों में स्त्रियों की महत्ता स्वीकार करके राष्ट्र के कमजोर पक्ष को सबल बनाने की चेष्टा की।

---

१ द हिन्दू व्यू आफ लाइफ—राधाकृष्णन, पृष्ठ ४७

गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म की चौथी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने धर्म को किसी निश्चित परम्परा में नहीं बाँधा। इसकी विकासोन्मुखी प्रवृत्ति को रोका नहीं। यही कारण है कि कम से कम दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी तक इसकी विकासोन्मुखी प्रवृत्ति अक्षुण्ण बनी रही। यदि गुरु नानक जी अपने धर्म को निश्चित परम्पराओं में बाँध बैठे तो वह भी कबीर-पंथ, दादू-पंथ अथवा रैदास-पंथ की भाँति एक सीमा में केन्द्रीभूत हो गया होता। किन्तु इसके विपरीत गुरु नानक के अनुयायी अन्य सिक्ख गुरुओं ने धर्म के आन्तरिक सिद्धान्तों को कस कर पकड़े रखा, किन्तु वे बाह्याचारों अथवा धर्म के बाह्य रूपों में परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन करते गए।

गुरु नानक के धर्म की पाँचवीं विशेषता यह है कि उन्होंने भक्तिमार्ग को उसके दोषों से बचा रखा। भक्ति मार्ग के तीन दोष मुख्य हैं—पहला तो यह कि इष्टदेव के नाम-भेद के कारण पारस्परिक झगड़े हो जाया करते हैं।[१] दूसरा दोष यह है कि अंध श्रद्धा के कारण लोग प्रायः इष्टदेवों की मर्जी पर इतने अधिक निर्भर हो जाते हैं कि व्यवहार में भी स्वावलम्बी बनना छोड़कर एक-दम आलसी और निकम्मे से रहते हैं तथा अपनी कमजोरियों और आपत्तियों का दोष अपने अपने इष्टदेवों के मत्थे मढ़कर चुप हो जाया करते हैं।[२] तीसरा दोष यह है कि अन्धविश्वास का प्राबल्य कभी कभी इतना अधिक हो जाता है कि लोग दम्भियों के चक्कर में पड़कर दुःख भी भुगत उठाते हैं।[३]

गुरु नानक जी ने भक्ति के उपर्युक्त तीनों दोषों को अत्यंत सतर्कता से दूर किया। पहले दोष को मिटाने के लिए तो उन्होंने यह उपाय किया कि परमात्मा को रूप और आकार की सीमा से परे माना। उन्होंने ऐसे इष्टदेव की कल्पना की जो 'अकाल मूरति' 'अजूनी' (अयोनि) तथा सैभं' (स्वयंभू) है। दूसरे दोष को मिटाने के लिए गुरु नानक देव ने यह किया कि धर्म में प्रवृत्ति और लोक-संग्रह को महत्ता प्रदान की। तभी तो बाबर के आक्रमण करने पर परमात्मा से यह प्रश्न किया "इतनी मारकाट हुई और इतनी करुणा व्याप्त हुई किन्तु हे प्रभु, तुम्हें कुछ भी दर्द नहीं हुआ? इसी कारण उन्होंने अपने धर्म में सेवा-भाव पर बहुत अधिक बल दिया। तीसरे दोष के परिहार के निमित्त उन्होंने बाह्याडम्बरों की महत्ता समाप्त की तथा आन्तरिक प्रेम और भक्ति की मर्यादा प्रतिष्ठापित की।

उनके सिक्ख धर्म की छठी विशेषता यह है कि उन्होंने जनता की निराशावादिता को दूर कर उसमें आशा विश्वास और पौरुष की भावना जागृत की। उन्होंने निराशों में यह भावना भरी कि उनका शरीर परमात्मा के रहने का पवित्र स्थान है। उन्होंने गीता के 'युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु' को चरितार्थ कर दिया। गुरु नानक की इन्हीं शिक्षाओं का यह परिणाम था कि उनके अनुयायियों ने राष्ट्र निर्माण और राष्ट्र-सेवा में अनुपम योग दिया। उनके अनुयायी सिक्ख 'अहंभाव' को त्यागकर लोक-संग्रह और मानव-सेवा के माध्यम द्वारा परमात्म-चिन्तन में प्रवृत्त हुए।

गुरु नानक के धर्म की सातवीं विशेषता यह है कि उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है। गुरु नानक देव यह भलीभाँति जानते थे कि हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक मनोमालिन्य को दूर करने के लिये सहज मार्ग यही है कि

१, २, ३. गुरमति-दर्शन [illegible], पृ० [illegible]

इन दोनों की पारस्परिक अच्छाइयों को ग्रहण करके उनके बाह्याडम्बरों को दूर किया जाय। कदाचित् पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष सबसे अधिक था। इसीलिए उन्होंने यहाँ एक ओर सच्चे मुसलमान बनने की विधि बताई—

> मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
> सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु॥
>
> (नानक-वाणी, माझ की वार सलोक १)

वहाँ दूसरी ओर सच्चे ब्राह्मण बनने की भी विधि बताई—

> 'सो ब्राह्मणु जो ब्रहमु बीचारे। आपि तरै सगले कुल तारि ॥१॥ ५। ७॥
>
> (नानक-वाणी धनासरी सबद ७)

इस धर्म की षष्ठी विशेषता यह है कि यह निर्माणकारी प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है। जो यह समझते हैं कि इसमें विध्वंसक प्रवृत्तियाँ हैं वे गुरु नानक देव के व्यक्तित्व को समझने में भूल करते हैं। उन्होंने किसी भी धर्म को बुरा नहीं कहा बल्कि उसमें पनपी हुई बुराइयों को बुरा कहा। उनकी इतनी उदार दृष्टि थी कि जो व्यक्ति हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों में विभेद नहीं करता वही धर्म-मर्मज्ञ एवं पारखी है—

> राह दोवै इकु जाणै सोई सिझसी।
>
> (नानक-वाणी वार माझ की १६वीं पउड़ी)

उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों की निन्दा इसलिए नहीं की कि उनके धर्म बुरे थे बल्कि उनकी निन्दा इसलिए की कि वे वास्तविक मार्ग को भूलकर कुराह पर जा रहे थे। उन्होंने क्षुब्ध होकर दोनों की मूर्खताओं की तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने कहा है, "मनुष्य-भक्षक (मुसलमान) नमाज पढ़ते हैं और छुरा भी छुरी चलाने वाले (हिन्दू) जनेऊ धारण करते हैं।" —

> माणस खाणे करहि निवाज। छुरी वगाइनि तिन गलि ताग।'
>
> (नानक-वाणी आसा की वार, सलोक १४)

गुरु नानक की उपर्युक्त भर्त्सना का यही आशय प्रतीत होता है कि हिन्दू-मुसलमान अपनी-अपनी कमजोरियों को समझें और उन्हें दूर करके अपने धर्मों का ठीक ठीक पालन करें।

गुरु नानक के धर्म की अन्तिम और सातवीं विशेषता यह है कि इसमें सभी धर्मों के प्रबल व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त उदारतापूर्वक संगृहीत हैं। मुसलमानों के भाईचारे और एकता का सिद्धान्त जितना इस धर्म में दिखाई पड़ता है, उतना भारत के अन्य किसी भी धर्म में नहीं है। बौद्धों की संगठन-भावना भी इस धर्म में पूर्ण रूप से व्याप्त है। इसी भाँति वैष्णवों की सेवा भावना भी इस धर्म का प्रधान अंग है। गोरखनाथ और कबीर के जाति-विरोध संबंधी क्रान्तिकारी विचारों से भी गुरु नानक का धर्म ओतप्रोत है।

सैद्धान्तिक पक्ष

गुरु नानक देव ने परमात्मा का साक्षात्कार किया और प्रत्यक्षानुभूति प्राप्त की। उसी अनुभूति को उन्होंने लोक भाषा के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया। आंतरिक अनुभूतियों की एकता के संबंध में 'मिस अण्डरहिल' का यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है, 'कोई भी व्यक्ति सच्चाई से यह

बात नहीं कह सकता कि वस्तुतः मुझे और ईसाई रहस्यवादियों में कोई महान् अंतर है।'[१] अतएव गुरु नानक के उपदेश में वही अनुभूति है जो हिन्दुओं के प्रस्थानत्रयी—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता—, मुसलमानों के कुरान और ईसाईयों के धार्मिक ग्रंथ बाइबिल में मिलती है। संसार में जितने भी पैगम्बर हुए हैं, सभी अपने अपरोक्ष ज्ञान के बल पर मनुष्यों को उपदेश देते हैं। इसी से उनकी वाणी में चुम्बक-शक्ति होती है। गुरु नानक देव ने परम सत्य परमात्मा को बतलाया और उसी को जनता के सम्मुख रक्खा। उस समय भारतवर्ष के पढ़े-लिखे दार्शनिक तो परमात्मा का अव्यक्त स्वरूप मानते थे किन्तु जनपदों में अनेक देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित थी।[२] गुरु नानक देव ने परमात्मा को 'अव्यक्त' 'निर्गुण' स्वरूप में प्रतिष्ठित किया और लोकभाषा के माध्यम से उसे सर्वग्राह्य बनाया। उन्होंने अवतारवाद का खण्डन करके एकेश्वरवाद का स्वरूप प्रतिष्ठित किया। परमात्मा के स्वरूप-निर्धारण के संबंध में गुरु नानक देव के विचार उपनिषदों की विचारधारा से साम्य रखते हैं। जीव, आत्मा मनुष्य के सम्बन्ध में भी उनके निजी विचार हैं। परमात्मा ने अपने आप बिना किसी अन्य सहायता के सृष्टि रची। उनके अनुसार सृष्टि-रचना का समय अनिश्चित है। कहीं कहीं सृष्टि और परमात्मा के बीच अभिन्नता दिखलाई है और यह बतलाया है कि परमात्मा ही स्वयं सृष्टि के रूप में परिवर्तित हुआ है। इस दृष्टि से उनकी विचारधारा योगवाशिष्ठ की विचारधारा के अनुकूल है। गुरु नानक देव ने सृष्टि को मिथ्या न मानकर सत्य माना है और माया को स्वतंत्र न मानकर परमात्मा के अधीन माना है। उनकी वाणी में स्थान स्थान पर माया के प्रबल स्वरूप का चित्रण मिलता है। पारम्परिक रूपकों द्वारा उन्होंने माया की मोहनी शक्ति का चित्रण किया है। अंत में माया के तरने के लिए विविध उपाय भी बताए हैं।

गुरु नानक देव ने अहंकार और हउमै का विशद निरूपण किया है। अहंकार के विविध स्वरूपों तथा उसके होने वाले परिणामों की ओर उनकी व्यापक दृष्टि पड़ी है। उन्होंने अहंकार नाश के विविध उपायों को भी बताया है। अहंकार और मन के संबंध की भी चर्चा उन्होंने की है। मन के विविध स्वरूप उसकी प्रबलता और चंचलता की भी विवेचना गुरु नानक की वाणी में प्राप्त होती है।

उन्होंने परमात्मा-प्राप्ति ही जीवन का परम पुरुषार्थ और फल माना है। उसकी प्राप्ति में कर्म ज्ञान योग और भक्ति सबकी सार्थकता बताई है। गुरु नानक द्वारा निरूपित कर्ममार्ग योगमार्ग तथा ज्ञानमार्ग भक्ति के अधीन बताए गए हैं। उनके योग एवं हठयोग में विभिन्नता है। उन्होंने अपने योग को 'राजयोग' की संज्ञा दी है। उनके इस योग में कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का विचित्र सामंजस्य है। ज्ञानयोग के प्रति गुरु नानक देव की पूरी आस्था है। यत्र-तत्र इसकी व्याख्या भी मिलती है। अद्वैतवाद की अनुभूति ही 'ज्ञान' अथवा 'ब्रह्मज्ञान' है, चाहे उसकी प्राप्ति का जो भी माध्यम हो। अद्वैतवाद को सिद्ध करने के लिए गुरु नानक देव ने कहीं-कहीं जीव और ब्रह्म की एकता मानी है, हालांकि व्यावहारिक दृष्टि से वे जीव और परमात्मा को भिन्न मानते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों में भेद नहीं मानते। उन्होंने

---

१. द [illegible], पृ० १४

२. ट्रान्सफार्मेशन आफ सिखिज्म ([illegible]), पृ० ९

मतवाद की पुष्टि के लिए स्थान-स्थान पर शास्त्र और श्रुति की उपेक्षा भी प्रदर्शित की है। ज्ञान-प्राप्ति के साधनों का भी गुरु नानक की वाणी में उल्लेख प्राप्त होता है।

गुरु नानक देव ने भक्ति मार्ग पर सबसे अधिक बल दिया है। भक्ति की प्रशान्त मन्दाकिनी उनके प्रायः सभी पदों में प्रवाहित हुई है। उनका सारा जीवन ही भक्तिमय था। उन्होंने वैधी और रागात्मिका भक्ति में से अन्तिम भक्ति को ही प्रधानता दी। गुरु नानक देव ने रागात्मिका भक्ति के स्वरूप और साधनों को भी बतलाया है। उन्होंने रागात्मिका भक्ति के विविध प्रकारों तथा उपकरणों की भी चर्चा की है।

इस प्रकार व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टियों से गुरु नानक देव का मध्यकालीन धर्म सुधारकों में मौलिक एवं विशिष्ट स्थान है। उनके सुधार देश काल और परिस्थिति के अनुरूप थे। यही कारण है कि उनका धर्म शक्तिशाली धर्म में विकसित हुआ और इतने बड़े जन-समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर सका। गुरु नानक देव में यदि संकीर्णता होती, तो उनका भी धर्म 'कबीर पंथ', 'दादू पंथ' अथवा 'रैदास पंथ' के समान एक निश्चित सीमा में आबद्ध हो गया होता।

नानक-वाणी का काव्य-पक्ष

काव्य को मोटे रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) धार्मिक काव्य, (२) लौकिक काव्य और (३) लौकिक धार्मिक काव्य। मध्यकालीन काव्य को लौकिक काव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। मध्ययुग के समस्त काव्य को धार्मिक अथवा लौकिक-धार्मिक श्रेणी में रखा जा सकता है। उसमें गुरु नानक देव अथवा संत कबीर के काव्य पूर्ण रूप से धार्मिक काव्य हैं। हाँ यह बात दूसरी है कि गुरु नानक के काव्य में यत्र-तत्र सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की ओर भी संकेत मिल जाता है। पर ऐसे स्थल कम हैं। गुरु नानक की वाणी में परमात्मा के स्वरूप, सृष्टिक्रम परमात्मा के हुक्म, अहंकार के स्वरूप, उसके भेद, अहंकार के परिणाम माया एवं उसके स्वरूप, उसकी प्रबलता एवं व्यापकता, जीव मनुष्य, आत्मा मनुष्य-योनि की श्रेष्ठता मनुष्य-जीवन की विविध अवस्थाओं मनुष्य का परमात्मा से वियोग और उसके कारण, मनुष्य से परमात्मा के मिलन के उपकरण, आत्मोपलब्धि के साधन मन के स्वरूप, उसके विविध रूप मनोमारण का महत्व मनोमारण की विधि, हरि प्राप्ति के विभिन्न मार्ग—कर्ममार्ग योगमार्ग भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग—सद्गुरु और नाम आदि का विशद निरूपण प्राप्त होता है। अतएव यह विशुद्ध धार्मिक काव्य है।

गुरु नानक की वाणी प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती। काव्य के प्रकारों को ध्यान में रखने से उनकी वाणी 'मुक्तक' अथवा 'गीत' के अंतर्गत आ सकती है। 'मुक्तक' ऐसी रचनाओं को कहा गया है, जिनमें विशिष्ट काव्य रस का आस्वादन बिना उसके पहले या पीछे के पदों की अपेक्षा किए भी किया जा सके। इसी प्रकार 'गीत' वे कहलाते हैं जिनकी रचना स्वर, लय एवं ताल को भी ध्यान में रखकर की गई रहती है और जो, इसी कारण गेय भी हुआ करती है। ऐसी कविताएं अपना पूरा भाव प्रकट करने में स्वतः समर्थ रहा करती हैं और इन्हें किसी प्रकार के अनुबंध की आवश्यकता नहीं पड़ती जहाँ प्रबन्ध-काव्य के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह सानुबन्ध हो।[8]

८. कबीर-साहित्य की परख परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ [illegible]

गुरु नानक की अधिकांश रचनाएं काव्योचित गुणों से परिपूर्ण हैं। उन्होंने भावावेश में पदों का उच्चारण किया। या तो वे पद उनके आन्तरिक प्रेम की अभिव्यक्ति थे अथवा किसी के निमित्त सदुपदेश के रूप में थे। गुरु नानक के अधिकांश पद भावयुक्त हैं। यही कारण है कि उनकी वाणी में अधिकांश रसों का समावेश स्वतः हो गया है। वे रस बड़े स्वाभाविक रूप में पाठकों अथवा श्रोताओं का हृदय रस से आप्लावित कर देते हैं। गुरु नानक की वाणी में निम्नलिखित रस प्राप्त होते हैं —

शान्त रस—गुरु नानक देव की वाणी में शान्त रस की प्रधानता है। उनकी वाणी ज्ञान वैराग्य भक्ति और योग से परिपूर्ण है। शान्त रस में निर्वेद अथवा शम स्थायी भाव है। हर्ष विषाद धृति स्मृति एवं निर्वेद आदि संचारी भावों की प्राप्ति मिल जाती है। संसार की अनित्यता का भान प्रभुगुण कीर्तन और ईश्वर चिन्तन इसके आलम्बन विभाव हैं। वृद्धावस्था, व्याधि मरण सत्संग और हितोपदेश आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच मोक्षसाधन ईश्वर की भक्ति में रत होना तथा संसार से विरक्त होना आदि इसके अनुभाव हैं।

उदाहरणार्थ—

(१) मनहठो अनहदु वाजे सण धुनि कारे राम।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम॥
अनदिनु राता मनु बैरागी सुन मंडलि घरु पाइआ।
आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतिगुरि अलखु लखाइआ॥
आसणि बैसणि थिरु नाराइणु तितु मनु राता वीचारे।
नानक नामि रते बैरागी अनहद रुण झुण कारे॥१॥२॥

(नानक-वाणी आसा महला १ छंत २)

(२) मेरा मनो मेरा मनु मानिआ नामु सखाई राम।
हउमै ममता माइआ संगि न जाई राम॥
माता पित भाई सुत चतुराई संगि न संपै नारे।
साइर की पुत्री परहरि तिआगी चरण तलै वीचारे॥
आदि पुरखि इकु चलतु दिखाइआ जह देखा तह सोई।
नानक हरि की भगति न छोडउ सहजे होइ सु होई॥२॥३॥७॥३॥

(नानक-बाणी आसा महला १ छंत ३)

(३) जिन कउ सतिगुरि थापिआ तिन मेटि न सकै कोइ।
ओना अंदरि नामु निधानु है नामो परगटु होइ॥
नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ अखंड सदा सचु होइ॥१॥८॥

(नानक-बाणी सिरी रागु सबद ८)

(४) मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि।
जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि॥१॥रहाउ॥
जोती-जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु।

हिसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु ॥
गुरमुखि जिसु हरि मनि वसै तिसु मेले गुर संजोगु ॥२॥२ ॥
(नानक-बाणी सिरी रागु, सबद २)

(५) सबदि रंगाए हुकमि सबाए । सची दरगह महलि बुलाए ।
सचे दीन दइआल मेरे साहिबा सचे मनु पतीआवणिआ ॥१॥
हउ वारी जीउ वारी सबदि सुहावणिआ ।
अंम्रित नामु सदा सुखदाता गुरमती मंनि वसावणिआ ॥१॥रहाउ॥
(नानक-बाणी रागु माझ, असटपदी १)

(६) ना मनु मरै न कारजु होइ । मनु वसि दूता दुरमति दोइ ।
मनु मानै गुर ते इकु होइ ॥१॥३॥
(नानक-बाणी, रागु माझ, असटपदी १)

(७) साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआणा ।
एथै धंधा कूड़ा चारि दिहा आगै सरपर जाणा ॥
आगै सरपर जाणा जिउ मिहमाणा काहे गारबु कीजै ।
जितु सेविऐ दरगह सुखु पाईऐ नामु तिसै का लीजै ॥
आगै हुकमु न चलै मूले सिरि सिरि किआ विहाणा ।
साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआणा ॥२॥१॥
(नानक-बाणी रागु वडहंसु, अलाहणीआ, १)

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

शृङ्गार रस—श्री गुरु नानक देव ने अपनी रागात्मिका अथवा प्रेमा भक्ति में परमात्मा के साथ विविध सम्बन्ध स्थापित किए हैं जिनमें से प्रधान निम्नलिखित हैं—

(१) माता-पिता और पुत्र का सम्बन्ध
(२) स्वामि-सेवक भाव का सम्बन्ध
(३) सखा भाव का सम्बन्ध,
(४) दाता-भिखारी का सम्बन्ध तथा
(५) पति-पत्नी का सम्बन्ध

उपर्युक्त पाँच प्रकार के सम्बन्धों से पति-पत्नी के सम्बन्ध में जो एकतानता तदाकारिता और तन्मयता है, वह किसी अन्य सम्बन्ध में नहीं। कान्तासक्ति में द्वैतभाव के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

गुरु नानक का शृङ्गार रस लौकिक नहीं दिव्य है। पति-परमात्मा के साक्षात्कार करने पर जो जीवात्मा रूपी स्त्री को दिव्य आनन्द प्राप्त होता है, वही उसका स्थायी भाव 'रति' है। उनके शृङ्गार रस में निर्वेद ग्लानि शंका, चिंता, मोह विषाद दैन्य असूया श्रम उत्कण्ठा स्वप्न निद्रा, वितर्क और स्मृति संचारी भाव पाये जाते हैं। वर्षा ऋतु आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं।

एक पद में गुरु नानक देव ने जीवात्मा रूपी स्त्री की चार अवस्थाएँ चित्रित की हैं। पहली अवस्था तो वह है, जिसमें जीवात्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति से अनभिज्ञ रहती

है। उसे यह नहीं ज्ञात रहता कि परमात्मा रूपी पति का क्या पता-ठिकाना है ? दूसरी अवस्था में उसे यह बोध होता है कि मेरा प्रियतम है और वह एक है। वह (गुरु की अलौकिक कृपा से) मिल सकता है। तीसरी अवस्था वह है, जब ससुराल में पहुँचकर उसे अपने प्रियतम का पूर्ण ज्ञान होता है कि यही मेरा प्रियतम है। गुरु की कृपा होती है, तब कामिनी (जीवात्मा) पति (परमात्मा) को अच्छी लगती है। चौथी और अन्तिम अवस्था वह है, जब भय और भाव का शृंगार करके वह प्रियतम के पास जाती है। प्रियतम उसके शृङ्गार पर आकृष्ट होकर उसे सदैव के लिए अपना बना लेता है और सदैव उसके साथ रमण करता है।"

पेवकड़ै धन खरी इआणी।

.. ..

सद ही सेजै रवै भतार ॥४॥२७॥

(नानक-बाणी रागु आसा सबद २७)

गुरु नानक जी द्वारा निरूपित शृंगार रस में एकाध स्थान पर प्रियतम हरी के स्वरूप का सुहावना चित्रण मिलता है —

तेरे बंके लोइण दंत रीसाला।
सोहणे नक जिन लंमड़े वाला॥
कंचन काइआ सुइने की ढाला ॥७॥

..

तेरी चाल सुहावी, मधुराड़ी बाणी।
कुहकनि कोकिला, तरल जुआणी ॥८॥२॥

(नानक-बाणी, रागु वडहंसु, छंत २)

गुरु नानक जी के काव्य में शृङ्गार रस के दोनों पक्ष मिलते हैं, (१) वियोग अथवा विप्रलंभ शृङ्गार (२) संयोग शृङ्गार।

वियोग शृंगार के बड़े ही मार्मिक प्रसंग गुरु नानक द्वारा उपस्थित किए गए हैं —

(१) सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए।
मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए॥
पिरु घरि नहीं आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए॥
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ॥६॥

(नानक-बाणी तुखारी, बारहमाहा)

(२) नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खटु मासा॥

(नानक बाणी तुखारी, बारहमाहा)

गुरु नानक देव का 'एक घड़ी खटु मासा' मीराबाई के 'भई छमासी रैन' की स्मृति दिलाता है।

(१) बैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह।
भोला वैदु न जाणई, करक कलेजे मांहि॥

(नानक-बाणी, मलार की वार, सलोक ४)

(४) एक न भरीआ गुण करि धोवा ।
मेरा सहु जागै हउ निसि भरि सोवा ॥१॥
इउ किउ कंत पिआरी होवा ?
सहु जागै हउ निसि भरि सोवा ॥१॥रहाउ॥
आस पिआसी सेजै आवा ।
आगै सह भावा कि न भावा ॥२॥
किआ जाना किआ होइगा री माई ?
हरि दरसनु बिनु रहनु न जाई ॥१॥रहाउ॥
प्रेमु न चाखिआ, मेरी तिस न बुझानी ।
गइआ सु जोबनु, धन पछुतानी ॥३॥

(नानक-वाणी आसा सबद २१)

प्रियतम हरी से मिलने के लिए, जीवात्मा रूपी स्त्री के लिए वे शृंगार भी आवश्यक हैं, जिनसे वह संतुष्ट होकर उससे मिले। इसके लिए गुरु नानक देव ने उन शृङ्गारों की चर्चा की है—

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी ।
.. .. ..
पिआरा राउ जब पेखै धनि ता नानक भोगु करेई ॥७॥१॥३५॥

(नानक-वाणी आसा सबद ३५)

तथा —

फूल माला गलि पहिरउगी हारो ।
मिलैगा प्रीतमु तब करउगी सीगारो ॥२॥१॥३४॥

(नानक-वाणी आसा, सबद, ३५)

प्रियतम हरी के मिलन का सुख 'संयोग' शृंगार के माध्यम द्वारा अनेक स्थलों पर चित्रित किया गया है —

(१) बाबीहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीआ ।
साधन सभि रस चोलै अंकि समाणीआ ॥
हरि अंकि समाणी जा प्रभ भाणी सा सोहागणि नारे ।
नव घर थापि महल घर ऊचउ निजघरि वासु मुरारे ॥२॥

(नानक-वाणी तुखारी छंत बारह माहा)

(२) माघि पुनीत भई तीरथु अंतरि जानिआ ।
साजन सहजि मिले गुण गहि अंकि समानिआ ॥
प्रीतम गुण अंके सुणि प्रभ बंके तुधु भावा सरि नावा ।
गंग जमुन तह बेणी संगम सात समुंद समावा ॥१५॥

(नानक-वाणी तुखारी छंत बारहमाहा)

(३) जिनि सीगारी तिसहि पिआरी मेलु भइआ रंगु माणए ।
घरि सेज सुहावी जा पिरि रावी गुरमुखि मसतकि भागो ।
नानक अहिनिसि रावै प्रीतम हरि वरु थिरु सोहागो ॥१७॥
(नानक-वाणी, तुखारी छंत बारहमाहा)

(४) सतिगुर सबदे मिलै विछुंनी, तनु मनु आगै राखै ।
नानक अंम्रित बिरखु महा रस फलिआ मिलि प्रीतम रसु चाखै ॥ ॥४॥
(नानक-वाणी तुखारी छंत ४)

करुण रस —जिस रस के आस्वादन से हृदय में शोक का आविर्भाव हो उसे करुण रस कहते हैं । गुरु नानक की वाणी में संसार के विभवों, सुखों, भोगों की नश्वरता स्थान स्थान पर दिखाई गई है । जो लोग सत्य शाश्वत अमृत अदम्य-भावों, परमात्मा को त्याग कर क्षणभंगुर और अल्पास्था विषयों में अनुरक्त हैं, वे सचमुच करुणा के पात्र हैं । गुरु नानक द्वारा निरूपित करुण रस में विषाद और निर्वेद संचारी भावों का आधिक्य है । इसका स्थायी भाव वैराग्यमूलक शोक है । इसके आलम्बन विभाव विषयासक्त, मायाग्रस्त परमात्मा-विमुख मनुष्य हैं । वैराग्यपूर्ण वचन संसार की असारता एवं क्षणभंगुरता ही इसके उद्दीपन विभाव हैं । सांसारिक विषय रत प्राणी के प्रति दुःख प्रकट करना ही इसका अनुभाव है ।

गुरु नानक देव ने विविध अन्योक्तियों के माध्यम द्वारा विषयासक्त प्राणी की दशा का कारुणिक दृश्य उपस्थित किया है । निम्नलिखित पद में हरिण, भ्रमर, मछली और लहर की अन्योक्तियों द्वारा यह बताया गया है कि परमात्मा से बिछुड़े हुए प्राणियों की बड़ी करुणापूर्ण अवस्था होती है । जिस प्रकार हरिण मीठे फल के लोभ में फँसकर मारा जाता है, उसी प्रकार मनुष्य विषयों के चक्कर में फँसकर लोक-परलोक से भ्रष्ट हो जाते हैं । जिस प्रकार भँवरा पुष्पों की आसक्ति में पड़कर अत्यधिक दुःख पाता है, उसी प्रकार सांसारिक प्राणी मायिक पदार्थों के रस में पड़कर महान् कष्ट उठाते हैं । यमराज के दूतों द्वारा बाँधे जाकर, उनकी चोटें खाकर आर्तनाद करते हैं । जिस प्रकार मछली अपने प्रियतम जल से बिछुड़ कर, जाल में पड़कर आँखें भर-भर कर रोती है, उसी प्रकार जीवात्मा आनन्द स्वरूप परमात्मा से बिछुड़ कर, माया के जाल में पड़कर रोता है । जिस प्रकार, लहर नदी से बिछुड़कर प्रलाप करती है, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा से पृथक होकर असह्य यंत्रणाएं सहनकर कारुण्य-प्रलाप करती है —

तू सुणि हरणा कालिआ, की वाड़ीऐ राता राम ।
बिखु फलु मीठा चारि दिन फिरि होवै ताता राम ॥
फिरि होइ ताता खरा माता नाम बिनु परतापए ।
ओहु जेव साइर देइ लहरी बिजुल जिवै चमकए ॥
हरि बाझु राखा कोइ नाही सोइ तुझहि बिसारिआ ।
सचु कहै नानक चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ ॥१॥

भवरा, फूलि भवंतिआ दुखु अति भारी राम ।
मै गुरु पूछिआ आपणा साचा बीचारी राम ॥

बीचारि सतिगुरि मुमै पुछिमा, मवर बेली रहमो ।
सुरत्नु चड़िमा, पिरु पड़िमा, ठेमु ठावसि रहमो ॥
कम मनि बाबा बाहि चोटा सबद बिनु बेतालिमा ।
सनु कहै नानक चेति रे मन मरहि मवरा कालिमा ॥२॥

मेरे जीमड़िमा परदेसीमा किनु पवहि जंजाले राम ।
साचा साहिबु मनि वसै की फासहि जम जाले राम ॥
मछुली विछुनी नैण रूनी जालु बधिकि पाइमा ।
संसार माइमा मोहु मीठा अंति भरमु चुकाइमा ॥
भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोडि मनहु अंदेसिमा ।
सचु कहै नानकु चेति रे मन जीमड़िमा परदेसीमा ॥३॥

नदीमा वाह विछुनिमा मेला संजोगी राम ।
जुगु जुगु मीठा विसु भरे को जाणै जोगी राम ॥
कोई सहजि जाणै हरि पछाणै सतिगुरू जिनि चेतिमा ।
बिनु नामु हरि के भरम भूले पचहि मुगध अचेतिमा ॥
हरि नामु भगति न रिदै साचा से अंति धाही रुंनिमा ।
सचु कहै नानकु सबदि साचै मेलि चिरी विछुंनिमा ॥४॥१॥५॥

(नानक-बाणी, राग़ु मासा, छंत ५)

इसी प्रकार 'तुखारी' राग के दूसरे छंत मे गुरु नानक देव ने मनुष्य की मायु चार प्रहरों में विभाजित करके संसार की मसारता प्रदर्शित कर उसके करुणायुक्त परिणाम पर दृष्टि डाल कर मनुष्य को सजग रह कर हरि भक्ति-प्राप्ति के लिये चेतावनी दी है—

पहिलै पहरै नैण सलोनड़ीऐ रैणि अंधिआरी राम ।
. . . .
नानक दुबीमा दुख चारे बिनु नाम हरि के मन बसे ॥४॥

(नानक-बाणी तुखारी छंत २)

गुरु नानक देव ने अनेक स्थलो पर इस बात का संकेत किया है कि मनुष्य के सौन्दर्य, वास्तविक भोग्य वस्तुएं नहीं रह जाती हैं। मवगुणो के कारण नंगे होकर 'दोजख' (नरक) जाना पड़ता है।

पउड़ी कपड़ रूपु सुहावणा छडि दुनीमा अंदरि जावणा ।
मंदा चंगा मापणा मापे ही कीता पावणा ॥
हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै मगे जावणा ।
नंगा दोजकि चालिमा ता दिसै खरा डरावणा ॥
करि मउगण पछोतावणा ।

(नानक-बाणी राग़ु मासा की वार पउड़ी १४)

सांसारिक संबंधों को स्थान-स्थान पर बंधन का हेतु बता कर, उनके कारणिक . . . की मोर संकेत किया है—

बंधन मात पिता संसारि।
बंधन सुत कनिआ अरु नारि ॥२॥१ ॥
(नानक-बाणी आसा रागु असटपदी १)

धन यौवन, आमोद-प्रमोद सभी नश्वर और क्षणभंगुर हैं —
धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि।
(नानक-बाणी, सिरी रागु, सबद २४)

वीर रस : गुरु नानक की वाणी में स्थान-स्थान पर अपूर्व उत्साह पाया जाता है। यह उत्साह ही 'वीर रस' का स्थायी भाव है। साधक को निर्भय बनाने के लिये वे आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करते हैं। उनकी वाणी में अद्भुत ओज और उत्साह पाया जाता है। इसमे सन्देह नहीं कि साधक ऐसी वाणी को पढ़ कर उत्साह से भरकर अपूर्व धैर्य और आशा से अध्यात्म-पथ पर अग्रसर होता है —

देही अंदरि नामु निवासी। आपे करता है अबिनासी॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई हे ॥१२॥६॥
(नानक-बाणी मारू सोलहे ६)

साधक को निर्भय वीर और उत्साही बनाने के लिए नानक देव कहते हैं कि परमात्मा को छोड़ अन्य स्थान तो है ही नहीं। डरा तो तब जाय जब परमात्मा के भय के अतिरिक्त कोई अन्य भय हो। अन्य भयों से भयभीत होना तो केवल मन की आशंका मात्र है। वास्तव में जीव न तो मरता है, न डूबता है। वह मुक्त स्वरूप है —

तुधु बिनु दूजी नाही जाइ। जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ ॥१॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु। डरि डरि डरणा मन का सोरु ॥१॥रहाउ॥
न जीउ मरै न डूबै तरै। ॥२॥
(नानक-बाणी गउड़ी सबद २)

सच्चा साधक वीर सैनिक की भाँति शरीर द्वार में शब्द रूपी धनुष को चढ़ा कर पंच बाणों—सत्य संतोष दया धर्म और धैर्य से—यमराज को मार डालता है। इस प्रकार वह गुरु के उपदेश द्वारा वीरतापूर्वक संसार-सागर से तर जाता है—

इहु भवजलु जगतु सबदि गुर तरीऐ।
अंतर की दुबिधा अंतरि जरीऐ॥
पंच बाण ले जम कउ मारै गगनंतरि धणखु चड़ाइआ ॥१॥४॥२१॥
(नानक-बाणी, मारू, सोलहे २१)

रौद्र रस : गुरु नानक देव अत्यंत संयमी विनम्र और मृदुभाषी होते हुए भी समाज धर्म एवं राजनीति में कुव्यवस्था एवं अनाचार होते देख कर अपने आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त किए बिना रोक न सके। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने परमात्मा के प्रति भी अपना रोष एवं क्षोभ प्रकट किया। बाबर के आक्रमण से खिन्न होकर वे परमात्मा से कहते हैं 'हे प्रभु, हिन्दुस्तान पर इतनी मार पड़ी, जनता को इतना कष्ट हुआ, इतनी मार-काट हुई, किन्तु तुम्हें जरा भी दर्द नहीं हुआ ?'

एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ ।

(नानक-वाणी, आसा राग, सबद ३९)

इसी 'सबद' में उन्होंने यह कह कर अपना रोष प्रकट किया है कि 'यदि शक्तिशाली सिंह शक्तिशाली सिंह को मारता है, तो मन में रोष उत्पन्न नहीं होता। किन्तु यदि शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के झुण्ड पर आक्रमण करता है, तो उनके स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखलाना चाहिए।"

जे सकता सकते कउ मारे, ता मनि रोसु न होई ॥१॥रहाउ॥

सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई ॥२॥

(नानक-वाणी, आसा राग, सबद ३९)

जब उन्होंने परमात्मा के प्रति भी अपना रोष प्रकट किया तब अन्य लोगों की बात ही क्या है? उन्होंने सरकारी कर्मचारियों तथा छोटे-छोटे राजाओं के प्रति उनके अत्याचारों एवं अनाचारों पर स्थल-स्थल पर अपना रोष प्रकट किया है। यथा—

(१) राजे सीह मुकदम कुते ।

जाइ जगाइन बैठे सुते ॥

(नानक-वाणी मलार की वार)

(२) सबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु ।

कामु नेबु सद पुछीऐ बहि-बहि करे बीचारु ॥

अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु ।

(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक २१)

(३) कलि काती, राजे कासाई, धरमु पंखु करि उडरिआ ।

कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ ॥

(नानक-वाणी माझ की वार, सलोक १५)

इसी भाँति उन्होंने बाह्याचारों एवं रूढ़ियों में पड़े हुए धार्मिकों के प्रति भी अपना रोष प्रकट किया है, उदाहरणार्थ—

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई ।

(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक १६)

तथा—

माणस खाणे करहि निवाज । छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ॥

(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक १४)

भयानक रस गुरु नानक की वाणी में 'भयानक रस' दो रूपों में पाया जाता है पहले रूप में तो परमात्मा का भय सभी तत्वों देवी-देवताओं सिद्धों बुद्धों नाथों पुरुषों एवं मनुष्यों के ऊपर है। तात्पर्य यह कि उसी के भय में समस्त सृष्टि अपनी मर्यादा में स्थिर रहती है। भय का दूसरा रूप विषयासक्त मायासक्त परमात्मा-विमुख प्राणियों की यमित दशा के विषय में प्राप्त होता है। ऐसे प्राणियों की बड़ी दुर्दशा होती है। यमराज के दरबार में

बांध कर उन्हें नारकीय यंत्रणाएँ दी जाती हैं। वे क्रन्दन-विलाप करके विलाप करते हैं। साकत यमराज के पाशों और बन्धनों में पड़ कर अनन्त दुःख भोगते हैं।

भय के प्रथम रूप का उदाहरण लीजिए—

भै विचि पवणु वहै सद वाउ।
भै विचि चलहि लख दरीआउ॥
भै विचि अगनि कढै वेगारि।
भै विचि धरती दबी भारि॥
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि।
भै विचि राजा धरम दुआरु॥
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु।
कोह करोड़ी चलत न अंतु॥
भै विचि सिध बुध सुर नाथ।
भै विचि आडाणे आकास॥
भै विचि जोध महाबल सूर।
भै विचि आवहि जावहि पूर॥
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु।
नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु॥

(नानक-बाणी आसा की वार सलोक ७)

'भय' के दूसरे रूप में मायाग्रस्त विषयासक्त प्राणियों की भयावह परिस्थिति का चित्रण इस प्रकार मिलता है—

अंतरि चोर मुहै ग्रिह मंदर इनि साकति दूतु न जाता हे॥७॥
दुंदर दूत भूत भीहाले। खिंचोताणि करहि बेताले॥
सबद सुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता हे॥८॥
कूडु कलरु तनु भसमै ढेरी। बिनु नावै कैसी पति तेरी॥
बाधे मुकति नाही जुग चारे जमकंकरि कालि पराता हे॥९॥
जमदरि बाधे मिलहि सजाई। तिसु अपराधी गति नही काई॥
करण पलाव करे बिललावै जिउ कुंडी मीनु पराता हे॥१०॥
साकतु फासी पड़ै इकेला। जम वसि कीआ अंधु दुहेला॥
राम नाम बिनु मुकति न सूझै आजु कालि पचि जाता हे॥११॥१॥११॥

(नानक-बाणी, मारू सोलहे ११)

गुरु नानक देव ने निर्भय परमात्मा की प्राप्ति एवं भय से निवृत्त होने के लिए जीवात्मा रूपी स्त्री को 'भय का सुरमा' लगाने के लिए कहा है —

भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो॥

(नानक-बाणी रागु तिलंग सबद ४)

बीभत्स रस एकाध स्थल पर गुरु नानक देव ने बीभत्स रस का भी निरूपण किया है। उदाहरणार्थ "जैनी सिर के बाल लुचवा कर गंदा पानी पीते हैं और जूठी वस्तुएँ माँग माँग कर खाते हैं। वे अपना मल फैला देते हैं और मुँह में गंदी साँस लेते हैं और पानी देख कर सहमते हैं।

सिरु खोहाइ, पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही॥
(नानक-वाणी, माझ की वार, सलोक ४१)

एकाध स्थल पर यह भी कहा है कि मनमुखों का मन के अंदर निवास है। अतः वे परमात्मा के सहज सुख को नहीं जान सकते हैं। यथा —

मनमुख सदा कूड़िआर भरमि भुलाइआ।
विसटा अंदरि वासु सादु न पाइआ॥
(नानक-वाणी मारू की वार, पउड़ी ६)

अद्भुत रस परमात्मा आश्चर्य रूप है, उसकी सृष्टि भी आश्चर्यमयी है और उसके कार्य भी आश्चर्यजनक हैं वह 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं' समर्थ है। अतः आश्चर्य का होना स्वाभाविक है। परमात्मा की सृष्टि के नाद वेद जीव जीवों के अनन्त प्रकार, सृष्टि के विभिन्न रूप-रंग वायु, जल अग्नि और उसके विविध खेल धरती विभिन्न स्वाद संयोग-वियोग क्षुधा भोग, स्तुति एवं प्रशंसा, कुराह और सुराह, समीपता- ये सभी आश्चर्यमय हैं।—

विसमादु नाद विसमादु वेद। विसमादु जीअ विसमादु भेद॥

.. .. ..

वेखि विडाणु रहिआ विसमादु। नानक बुझणु पूरै भागि॥
(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक ५)

यह क्या कम आश्चर्यमय है कि प्रभु ही सब कुछ बना है, और वही समस्त वस्तुओं में बरत रहा है। जो इस तत्त्व को समझता है, उसे महान् आश्चर्य होता है —

आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तूं।
एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू॥
(नानक-वाणी मलार की वार सलोक २४)

उस प्रभु का सभी लोग सुन-सुन कर ही वर्णन करते हैं। वह कितना बड़ा है, इसे किसी ने भी नहीं देखा है। उसकी कीमत वर्णन नहीं की जा सकती। कथन करनेवाले उसी में समाहित हो जाते हैं—

सुणि वडा आखै सभु कोई। केवडु वडा डीठा होई॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ। कहणै वाले तेरे रहे समाइ॥
(नानक-वाणी रागु आसा सबद १)

परमात्मा की सृष्टि रचना के निश्चित समय का कथन करना भी आश्चर्यमय है। उस समय धुन्ध निगुण रूपी अपने आप में निवास किए था तात्पर्य यह कि वह अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित था।

आदि कउ बिसमादु बीचार कथीअले सुंन निरंतरि वासु लीआ,

(नानक-वाणी रामकली, सिध गोसटि, २३वीं पउड़ी)

परमात्मा अघटित घटनाओं को घटित कर सकता है। उसकी इस अलौकिक शक्ति में आश्चर्य का होना स्वाभाविक है। गुरु नानक देव का कथन है कि "यदि प्रभु चाहे, तो सिंह बाज शिकरा तथा कुही ऐसे मांसाहारी पक्षियों को घास खिला दे। तात्पर्य यह कि उनकी मांसाहारी वृत्ति को परिवर्तित कर दे। जो घास खाते हैं, उन्हें वह मांस भक्षण करा दे। इस प्रकार वह प्रभु विरोधी वृत्तियों को प्रदान कर सकता है। यदि उसकी इच्छा हो, तो नदियों के बीच टीला दिखा दे और स्थलों को अथाह जल के रूप में परिवर्तित कर दे कीड़े को बादशाही तख्त पर स्थापित करदे और बादशाहों की सेना को खाक कर दे। संसार में जितने भी जीव जीते हैं, सभी सांस के द्वारा जीते हैं, किन्तु यदि प्रभु की इच्छा हो तो वह उन्हें बिना सांस के भी जिला सकता है। नानक कहता है कि जैसे जैसे प्रभु की मर्जी है वैसे वैसे जीवों को रोजी देता है।

सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह।
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह ॥
नदीआ विचि टिबे देखाले थली करे असगाह।
कीड़ा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह ॥
जेते जीअ जीवहि लै साहा, जीवाले ता कि असाह।
नानक जिउ जिउ सचे भावै तिउ तिउ देइ गिराह ॥

(नानक-वाणी माझ की वार, सलोक ११)

हास्य रस —गुरु नानक जी बहुत ही हास्यप्रिय एवं विनोदी थे। उन्होंने हंसी हंसी में बहुतों को उपदेश दिये। उन्होंने समय समय पर बाह्याचार-रत एवं आडम्बर युक्त धार्मिकों की मीठी चुटकी ली। ऐसी चुटकियों में संयत एवं मर्यादापूर्ण हास्य रस मिलता है। एक स्थल पर रासधारियों पर व्यंग कसते हुए कहा है,—"रासों में चेले बाजे बजाते हैं और गुरु नाचते हैं। नाचते समय गुरु पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं। पैरों के पटकने से धूल उड़ उड़ कर उनके बालों में पड़ती है। दर्शक गण उन्हें नाचते हुए देख कर हंसते हैं। उनका यह तमाशा देख कर वे लोग अपने अपने घर चले जाते हैं। रोटी के निमित्त वे रासधारी ताल पूरी करके नाचते हैं और अपने आपको पृथ्वी पर पछाड़ते हैं। इस प्रकार रासलीला में वे गोपी और कृष्ण बन कर नाचते गाते हैं। कभी कभी सीता तथा राम का स्वांग बना कर भी गाते हैं। —

वाइनि चेले नचनि गुर। पैर हलाइनि फेरन्हि सिर ॥
उडि उडि रावा झाटै पाइ। वेखै लोकु हसै घरि जाइ ॥
रोटीआ कारणि पूरहि ताल। आपु पछाड़हि धरती नालि ॥
गावनि गोपीआ गावन्हि कान्ह। गावनि सीता राजे राम ॥

(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक १)

इसी प्रकार एक स्थान पर पाखण्डी ब्राह्मणों की मीठी चुटकी ली है —

अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसार ॥

(राग धनासरी सबद ८)

बीभत्स रस एकाध स्थल पर गुरु नानक देव ने बीभत्स रस का भी निरूपण किया है। उदाहरणार्थ "जैनी सिर के बाल नुचवा कर गंदा पानी पीते हैं और जूठी वस्तुएँ माँग माँग कर खाते हैं। वे अपना मल फैला देते हैं और मुँह से गंदी साँस लेते हैं और पानी देख कर सहमते हैं।

सिरु खोहाइ, पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही॥
(नानक-वाणी, माझ की वार, सलोक ४५)

एकाध स्थल पर यह भी कहा है कि मनमुखों का मल के अंदर निवास है। अतः वे परमात्मा के सहज सुख को नहीं जान सकते हैं। यथा —

मनमुख सदा कूड़िआर भरमि भुलाइआ।
विसटा अंदरि वासु सादु न पाइआ॥
(नानक-वाणी माझ की वार, पउड़ी ६)

अद्भुत रस परमात्मा आश्चर्य रूप है, उसकी सृष्टि भी आश्चर्यमयी है और उसके कार्य भी आश्चर्यजनक हैं वह 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं' समर्थ है। अतः आश्चर्य का होना स्वाभाविक है। परमात्मा की सृष्टि के नाद वेद जीव जीवों के अनन्त प्रकार, सृष्टि के विविध रूप-रंग वायु, जल अग्नि और उसके विविध खेल धरती विविध खान संयोग-वियोग भूख भोग, स्तुति एवं प्रशंसा, कुराह और सुराह, समीपता- ये सभी आश्चर्यमय हैं।—

विसमादु नाद विसमादु वेद। विसमादु जीअ विसमादु भेद॥

वेखि विडाणु रहिआ विसमादु। नानक बुझणु पूरै भागि॥
(नानक-वाणी आसा की वार, सलोक ५)

यह क्या कम आश्चर्यमय है कि प्रभु ही सब कुछ बना है, और वही समस्त वस्तुओं में बरत रहा है। जो इस तत्व को समझता है, उसे महान् आश्चर्य होता है —

आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तूं।
एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू॥
(नानक-वाणी मलार की वार सलोक २४)

उस प्रभु का सभी लोग सुन-सुन कर ही वर्णन करते हैं। वह कितना बड़ा है, इसे किसी ने भी नहीं देखा है। उसकी कीमत वर्णन नहीं की जा सकती। कथन करनेवाले उसी में समाहित हो जाते हैं—

सुणि वडा आखै सभ कोई। केवडु वडा डीठा होई॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ। कहणै वाले तेरे रहे समाइ॥
(नानक-वाणी रागु आसा, सबद १)

परमात्मा की सृष्टि रचना के निश्चित समय का कथन करना भी आश्चर्यमय है। उस समय शून्य निगुण हरी अपने आप में निवास किए था तात्पर्य यह कि वह अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित था।

आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले सुंन निरंतरि वासु लीआ
(नानक-बाणी रामकली, सिध गोसटि, २३वीं पउड़ी)

परमात्मा असंभव घटनाओं को घटित कर सकता है। उसकी इस अलौकिक शक्ति में आश्चर्य का होना स्वाभाविक है। गुरु नानक देव का कथन है कि "यदि प्रभु चाहे, तो सिंह बाज शिकरा तथा कुही ऐसे मांसाहारी पक्षियों को घास खिला दे। तात्पर्य यह कि उनकी मांसाहारी वृत्ति को परिवर्तित कर दे। जो घास खाते हैं, उन्हें वह मांस भक्षण करा दे। इस प्रकार वह प्रभु विरोधी वृत्तियों को प्रदान कर सकता है। यदि उसकी इच्छा हो, तो नदियों के बीच टीला दिखा दे और स्थलों को अथाह जल के रूप में परिवर्तित कर दे कीड़े को बादशाही तख्त पर स्थापित करदे और बादशाहों की सेना को खाक कर दे। संसार में जितने भी जीव जीते हैं, सभी सांस के द्वारा जीते हैं, किन्तु यदि प्रभु की इच्छा हो तो वह उन्हें बिना सांस के भी जिला सकता है। नानक कहता है कि जैसे जैसे प्रभु की मर्जी है, वैसे वैसे जीवों को रोजी देता है।

सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह ।
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह ॥
नदीआ विचि टिबे देखाले थली करे असगाह ।
कीड़ा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह ॥
जेते जीअ जीवहि लै साहा जीवाले ता कि असाह ।
नानक जिउ जिउ सचे भावै तिउ तिउ देइ गिराह ॥
(नानक-बाणी माझ की वार, सलोक ११)

हास्य रस —गुरु नानक जी बहुत ही हास्यप्रिय एवं विनोदी थे। उन्होंने हंसी हंसी में बहुतों को उपदेश दिये। उन्होंने समय समय पर बाह्याचार-रत एवं आडम्बर युक्त धार्मिकों की मीठी चुटकी ली। ऐसी चुटकियों में संयत एवं मर्यादापूर्ण हास्य रस मिलता है। एक स्थल पर रासधारियों पर व्यंग कसते हुए कहा है,—"रासो में चेले बाजे बजाते हैं और गुरु नाचते हैं। नाचते समय गुरु पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं। पैरों के पटकने से धूल उड़ उड़ कर उनके बालों में पड़ती है। दर्शक गण उन्हें नाचते हुए देख कर हंसते हैं। इनका यह तमाशा देख कर वे लोग अपने अपने घर चले जाते हैं। रोटी के निमित्त वे रासधारी ताल पूरी करके नाचते हैं और अपने आपको पृथ्वी पर पछाड़ते हैं। इस प्रकार रासलीला में वे गोपी और कृष्ण बन कर नाचते गाते हैं। कभी कभी सीता तथा राम का स्वांग बना कर भी गाते हैं। —

वाइनि चेले नचनि गुर । पैर हलाइनि फेरन्हि सिर ॥
उडि उडि रावा झाटै पाइ । वेखै लोकु हसै घरि जाइ ॥
रोटीआ कारणि पूरहि ताल । आपु पछाड़हि धरती नालि ॥
गावनि गोपीआ गावन्हि कान्ह । गावनि सीता राजे राम ॥
(नानक-बाणी आसा की वार, सलोक १)

इसी प्रकार एक स्थान पर पाखण्डी ब्राह्मणों की मीठी चुटकी ली है —

अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसारु ॥
(रागु धनासरी सबद ८)

रूपक

गुरु नानक देव नैसर्गिक कवि थे। उनके काव्य म रूपको के प्रयोग का बाहुल्य है। इन रूपकों के प्रयोग मे वे अत्यधिक सजग और सचेष्ट रहे। गुरु नानक की वाणी में प्रयुक्त रूपक कवित्व से युक्त हैं। उन्होने जीवन के साधारण व्यापारों से रूपकों को चुन कर अपूर्व आध्यात्मिकता सांकेतिकता और गंभीरता भर दी है। रूपको के माध्यम से उन्होंने अध्यात्म के गूढाति गूढ एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यो को सुलझाने का प्रयत्न किया है। इन रूपका में उनके पाँडित्य अनुभव, कल्पना की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।

सिक्का ढालने (जपु जी की अन्तिम पउड़ी) सच्ची सिखावन (सिरी रागु, सबद ६) सच्चे भोजन (सिरी रागु, सबद ७), किसान (सिरी रागु, सबद २७) कीचड़ मेंढक कमल एवं भ्रमर (सिरी रागु सबद २७) साँझी (सिरी रागु सबद २१) दीपक-जलाने (सिरी रागु सबद ११) मन्दिर (सिरी रागु, असटपदी ७) अनुरक्ता (सिरी रागु की वार, सलोक ६) सच्चे मुसलमान बनने (माझ की वार, सलोक १) मन (गउड़ी असटपदी २) वृक्ष एव फल लगने (आसा सबद ११) वास्तविक योग (रागु आसा सबद १७ रागु सूही सबद ८ रामकली सिध गोसटि पउड़ी १) मदिरा बनाने (आसा सबद १८) रास (आसा की वार सलोक १) कपड़ा रंगने (आसा की वार, सलोक २) वास्तविक यज्ञोपवीत (आसा की वार, सलोक २६) सूतक (आसा की वार, सलोक १८) शरीर नगरी (गूजरी, असटपदी १ बन्द १) कृषि (सोरठि सबद २), सौदागर (सोरठि, सबद २) दूध जमाने एवं मथने, (रागु सूही सबद १), ज्ञान-दीपक (रागु रामकली सबद ७) माली (रामकली सबद ११ पद २) मनमुख की खेती (रामकली की वार, सलोक १२) गुरमुख की खेती (रामकली की वार, सलोक ११), मारुती (मलारी सबद ६) आदि के आध्यात्मिक रूपक बड़े ही हृदयग्राही अनुभवयुक्त, कवित्वपूर्ण एव कलायुक्त हैं। गुरु नानक के रूपको पर पृथक रूप से पुस्तिका लिखी जा सकती है। उदाहरण स्वरूप यहा कुछ रूपकों का स्पष्टीकरण किया जा रहा है जिससे उनकी अद्भुत काव्यशक्ति का परिचय प्राप्त होगा —

(१) गुरु का शब्द अथवा नाम रूपी सिक्का किस प्रकार ढालना चाहिये ? इसके लिये गुरु नानक जी निम्नलिखित विधि बताते हैं "संयम अथवा इन्द्रिय-दमन भट्टी हो और धैर्य सोनार हो। बुद्धि निहाई तथा गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान—वेद हथौड़ी हो। गुरु अथवा परमात्मा का भय धौंकनी हो और तपश्चर्या ही अग्नि हो। प्रेम ही पात्र हो और नाम रूपी अमृत गलाया हुआ सोना हो। इस प्रकार सच्ची टकसाल—गुरु आत्मा मे गुरु के शब्द रूपी सिक्के ढालने चाहिये।"—

> जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु । अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
> भउ खला अगनि तपताउ । भांडा भाउ अंमृत तितु ढालि ॥
> घड़ीऐ सबदु सची टकसाल । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥
>
> (नानक-वाणी जपु जी पउड़ी ३८)

उपर्युक्त रूपक में आध्यात्मिक मार्ग की प्राप्ति में सभी आवश्यक साधनों का समावेश हो गया है।

(२) वास्तविक किसान बनने की विधि निम्नलिखित श्लोक द्वारा बतलाई गई है,

शुभ कर्मों को धरती तथा परमात्मा के नाम को बीज बनाओ। सत्य को कांति के जल से उस पृथ्वी को निरन्तर सींचो। इस प्रकार के किसान बनकर ईमान (विश्वास) अंकुरित करो।

> अमलु करि धरती बीज सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी ॥
> होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी ॥
> (नानक-वाणी सिरी रागु, सबद २७ पहला पद)

(३) अमृत-रस वाली मदिरा बनाने की प्रणाली गुरु नानक ने निम्नलिखित श्लोक के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त की है, 'हे साधक परमात्मा के ज्ञान का गुड़ बनाओ ध्यान को महुआ और शुभ करणी को बबूल की छाल—इन सब को एक में मिला दो। श्रद्धा की भट्ठी और प्रेम को पोचा बनाओ। इस प्रकार अमृत रस वाली मदिरा चुआओ।'

> गुड़ करि गिआनु, धिआनु करि धावै करि करणी कसु पाईऐ।
> भाठी भवनु, प्रेम का पोचा इतु रसि अमिउ चुआईऐ ॥
> (नानक-वाणी रागु आसा सबद १८ पद १)

(४) सच्चे योगी बनने की विधि गुरु नानक ने इस प्रकार बतलाई है —

'हे योगी गुरु के शब्द को मन में बसाना मेरी मुद्रा है और क्षमा ही मेरा कथा है। परमात्मा के किए हुए को भला करके मानना मेरा सहज योग है। इसी योग के द्वारा मुझे अलौकिक निधि (सिद्धि) प्राप्त होती है। जो साधक परमात्मा से युक्त है वह युग-युगान्तरों से योगी है, क्योंकि उसका योग परमतत्व—ब्रह्म से हुआ है। उसने 'निरंजन' के अमृत रूपी नाम को प्राप्त कर लिया है। ज्ञान ही उसे शरीर में अमृत-रस के आस्वादन की प्रतीति कराता है। (मैं) शिव नगरी में आसन लगा कर बैठता हूँ। सारी कल्पनाएँ एवं समस्त वाद विवाद को मैंने त्याग दिया है। गुरु का शब्द—नाम मेरे लिए शृंगी का शाश्वत ध्वनि है, यह सुहावना और पूर्णतया अहर्निश होता रहता है।

"विचार ही मेरा खप्पर है। ब्रह्मज्ञान की अग्रगण्य वृत्ति ही मेरा डंडा है। परमात्मा को सर्वत्र विद्यमान समझना यही मेरी विभूति है। हरि की कीर्ति का गान यही मेरी परम्परा है तथा माया से अतीत रहना ही गुरुमुखों का पंथ है।

'समस्त वर्णों और रूपों में परमात्मा की सर्वव्यापिनी ज्योति ही हमारी झोली है। हे भरथरी नानक का कथन सुनो—वास्तविक योगी वही है जो परब्रह्म में ध्यान लगाता है।

> गुर का सबदु मनै महि मुंद्रा खिंथा खिमा हढावउ।
> जो किछु करै भला करि मानउ सहज जोग निधि पावउ ॥१॥
> बाबा जुगता जीउ जुगह जुग जोगी परम तंत महि जोगं।
> अंमृतु नामु निरंजनु पाइआ गिआन काइआ रस भोगं ॥१॥ रहाउ ॥
> सिव नगरी महि आसणि बैसउ कलप तिआगी बादं।
> सिंङी सबदु सदा धुनि सोहै, अहिनिसि पूरै नादं ॥२॥

घटु दीवार, गिम्रान मति ढंडा बरतमान बिमूर्त ।
हरि कीरति रहरासि हमारी गुरमुखि पंथु अतीत ॥१॥
सगली जोति हमारी संमिम्रा नाना वरन म्रनेकं ।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रहम लिव एकं ॥८॥३॥३७॥
(नानक-वाणी रागु म्रासा सबद, ३७)

(५) रास-नृत्य के रूपक के माध्यम द्वारा प्रकृति के निरंतर रास-नृत्य को समझाने की चेष्टा गुरु नानक देव ने इस भाँति की है, "सारी घड़ियाँ गोपियाँ हैं, (दिन के सारे) प्रहर कृष्ण हैं, पवन, पानी और आग ही आभूषण हैं, (जिन्हें उन गोपियों ने धारण किए हैं), (प्रकृति के रास-नृत्य में) चन्द्रमा और सूर्य दो अवतार हैं। सारी पृथ्वी (रास के रंगमंच का) धन और माल है। (जगत् के) सारे प्रपंच (रास के) व्यवहार हैं। हे नानक इस ज्ञान के बिना (सारी दुनिया) ठगी जा रही है और उसे यमकाल खाए जा रहा है।" —

घड़ीम्रा सभे गोपीम्रा, पहर कंन्ह गोपाल ।
गहणे पउणु पाणी बैसंतरु चंदु सूरजु म्रवतार ॥
सगली धरती मालु धनु, वरतणि सरब जंजाल ।
नानक मुसै गिम्रान विहूणी खाइ गइम्रा जमकालु ॥
(नानक-वाणी म्रासा की वार, सलोक ५)

(६) दूध जमाने एवं दही मथने के रूपक द्वारा गुरु नानक ने आध्यात्मिक साधकों का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। उनका कथन है, बरतन धोकर बैठ कर (उसमें) धूप दो, तब फिर दूध लेने के लिए जाओ। (भावार्थ यह कि मन को पवित्र करके रोकने से ही शुभ कर्मों का सम्पादन हो सकता है)। शुभ कर्म ही दूध है, फिर सुरति (दूध जमाने के लिए) जामन है, (संसार से) निष्काम होकर दूध जमाओ। इस मन को (नेती न बाँधने की) मुरली बनाकर (उसे) हाथ न पकड़ो। (अविद्या में) नींद न आना ही (मथानी की) नेती है जिह्वा से नाम जपना ही (वही) मथना हो। इस विधि से मक्खन रूपी अमृत प्राप्त करो। —

भाडा धोइ बसि धूपु देवहु तउ दूधै कउ जावहु ।
दूधु करम फुनि सुरति समाइणु होइ निरास जमावहु ॥१॥
... ...
इहु मनु ईटी हाथि करहु फुनि नेत्रउ नीद न आवै ।
रसना नामु जपहु तब मथीऐ इन बिधि अमृत पावहु ॥२॥
(नानक वाणी सूही रागु सबद १

उपर्युक्त पद में जीवन-निर्वाह के सामान्य व्यापार दूध-जमाने और दही मथ कर मक्खन प्राप्त करने के रूपक द्वारा गुरु नानक देव ने अध्यात्म की गूढ़ बातों को हृदयङ्गम क दिया है।

(७) गुरु नानक देव ने 'आरती' के रूपक द्वारा सगुण ब्रह्म के विराट् स्वरूप का ही मनोहर चित्रण किया है।

गगनमै थालु, रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे, सगल बनराइ फूलंत जोती ॥१॥

कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ।
अनहता सबद वाजंत भेरी ॥१॥ रहाउ ॥
(नानक वाणी राग धनासरी सबद ९)

अर्थात्, (हे प्रभु, तेरी विराट् आरती के निमित्त) आकाश रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामण्डल (उस थाल में) मोती के रूप में जड़े हैं। मलय पवन की सुगन्धि उस आरती की धूप है। वायु चँवर कर रहा है। हे ज्योतिस्वरूप (परमात्मा) वनों के खिले हुए समस्त पुष्प (तेरी आरती के निमित्त) पुष्प बने हैं। तेरी (सीमित) आरती कैसे हो सकती है? हे भवखण्डन तेरी आरती कैसे हो सकती है? (तेरी आरती में) अनाहत शब्द नगाड़े के रूप में बज रहा है।

गुरु नानक के काव्य में प्रकृति-चित्रण

गुरु नानक देव प्रकृति की गोदी में पले थे। इसलिए प्रकृति के प्रति उनका महान् आकर्षण था। प्रकृति की अनेकरूपता के सहारे उन्होंने परमात्मा की महत्ता बतलाई। उस हरी द्वारा निर्मित प्रकृति जब इतनी मोहक है, तो उसका निर्माता कितना सुन्दर होगा। यही कारण है विस्तृत नीलाकाश, उन्हें प्रभु की आरती का थाल, चन्द्रमा-सूर्य दीपक एवं तारागण मोती प्रतीत होते हैं। मलय पवन उस आरती की धूप तथा समस्त पुष्प-राशि उस आरती के निमित्त पुष्प हैं[1]। वायु, नदियाँ अग्नि, पृथ्वी, इन्द्र, धर्मराज, सूर्य चन्द्रमा, सिद्ध बुद्ध देवतागण आकाश आदि परमात्मा के भय से स्थित हैं[2]।

उन्होंने परमात्मा के प्रेम की अभिव्यक्ति वन-विहारिणी हरिणी भँवरादिकों में आनन्द मनानेवाली कोमल जल को जीवन समझने वाली मछली तथा धरती में बसी रहने वाली सर्पिणी के प्रेम के द्वारा अभिव्यक्त की है[3]। उन्होंने कहीं कहीं पर प्रकृति के उपमानों द्वारा परमात्मा के प्रेम की अगाधता की समता की है, "हे मन हरि से ऐसी प्रीति कर, जिस प्रकार कमल जल से प्रीति करता है, मछली नीर से चातक बादल से और चकवी सूर्य से[4]।"

गुरु नानक देव ने अपनी अनुभूति कल्पना के आधार पर उस अवस्था का चित्रण किया है, जब परमात्मा, शून्य हरी को छोड़कर कुछ भी अस्तित्व में नहीं था—"कई अरब तथा अरबों से परे—अगणित युगों तक अन्धकार ही अन्धकार था। उस समय पृथ्वी आकाश, दिन रात चन्द्रमा, सूर्य जीवों की चार खानियाँ पवन, जल उत्पत्ति विनाश जन्म-मरण खण्ड पाताल जल-सागर, नदियाँ स्वर्गलोक, मर्त्यलोक पाताल दोजख बिहिश्त क्षय काल नरक-स्वर्ग आनागमन ब्रह्मा, विष्णु महेश, कुल-मूल यती सतोगुणी वनवासी सिद्ध साधक जोगी जोगी जंगम भाष जप तप संयम, व्रत पूजा, शौच, तुलसी आदि की माला कृष्ण गोपियाँ

---

१. नानक-वाणी, रागु धनासरी, सबद   २. नानक-वाणी, आसा दी वार, सलोक ८
३. नानक-वाणी बसंतु-हिंडोल सबद ११ ४. नानक वाणी, सिरी रागु असटपदी ११

मास-वास, मौर्य, तंत्र, मन्त्र पाखण्ड, कर्मकाण्ड मायारूपी सखी, निन्दा-स्तुति, जीव-जन्तु, कुल, ज्ञान ध्यान, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ वर्णाश्रम वेशादिक, ब्राह्मण, क्षत्रिय देवता मन्दिर गौ-गायत्री यज्ञ-होम तीर्थस्नान वेश मायामय हाथी राजा-प्रजा, अहंकार, संसार, भाव भक्ति शिव-शक्ति, साजन, मित्र बीर्य रज कलेश, वेद शास्त्र, स्मृति, पाठ, पुराण, सूर्योदय और सूर्यास्त कुछ भी नहीं थे[१]।

गुरु नानक देव ने तुखारी राग के बारहमाहा म वर्ष के बारहवों महीनो का हृदयग्राही चित्रण किया है—

चैत्र महीने में बसन्त ऋतु के आगमन से वनराजि फूल पकडी है। अमराइयों म कोमल सुहावनी कोयल बोलती है। फूली हुई डालियों पर भँवरा चक्कर लगाता है। प्रियतम के वियोग में यह ऋतु बड़ी दुखदायिनी हो जाती है[२]।

वैशाख महीने मे वृक्षों की शाखाएं खूब वेश बनाती है। इस ऋतु मे जीवात्मा रूपी स्त्री पति-परमात्मा की प्रतीक्षा करती है[३]।

जेठ के महीने मे सारा संसार भार के समान तपता है[४]।

आषाढ़ के महीने मे सूर्य आकाश म तपता है। घोर उष्णता से पृथ्वी दुःख सहन करती है। यह निरन्तर सूखकर आग के समान तपती है। अग्नि रूपी धूप जल सुखा देता है बेचारा जल सुलग-सुलग कर मरता है, फिर भी निर्दयी सूर्य का काम जारी रहता है। वह अपने जलाने वाले स्वभाव से बाज नहीं आता। इस धूप का रथ निरन्तर चालू रहता है और स्त्री गर्मी से त्राण पाने के लिए छाया तलाशती है। वन मे टिड्डे वृक्षों के नीचे 'ची ची' करते है। भाव यह कि टिड्डे पानी के लिए तरसते है[५]।

सावन मे वर्षाऋतु आ गई है। बादल बरस रहे है। हे मेरे मन आनन्दित हो। ऐसे समय मे मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर परदेश चले गए है। वे घर नहीं आ रहे है। मैं शोक मे मर रही हूं। बिजली चमक कर मुझे डरा रही है। हे माँ मैं अपनी सेज पर अकेली हूँ और अत्यधिक दुःखी हूँ[६]।

भादों के महीने में जलाशयो और स्थलों में जल भर गया है। वर्षा हो रही है। लोग रंग मना रहे है। अंधेरी काली रात्रि को वर्षा की झड़ी और भयानक बना रही है। भला बिना प्रियतम के इस ऋतु मे स्त्री को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? मेढक और मोर बोल रहे है। पपीहा 'पी-पी' कह कर बोल रहा है। साँप प्राणियो को डसते फिरते है। मच्छर डंक मारते है। सरोवर लबालब भरे है। ऐसे समय मे स्त्री बिना प्रियतम हरी के कैसे सुख पा सकती है[७]?

आश्विन के महीने मे सरकण्डे और कास आदि फूल गए है। आगे आगे तो धूप (उष्णता) चली जा रही है और पीछे पीछे जाड़े की ऋतु (ठंडक) चली आ रही है। दसों दिशाओ मे

१. नानक-वाणी आसा बोलाई ५४
२. नानक वाणी रागु तुखारी बारहमाहा पउड़ी ५
३. नानक-वाणी, रागु तुखारी बारहमाहा, पउड़ी ६
४. नानक वाणी, रागु तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी
५. नानक-वाणी, रागु तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी ८
६. नानक-वाणी, रागु तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी ६
७. नानक-वाणी, रागु तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी १

शाखाएँ हरी हरी दिखलाई पड़ रही हैं। वृक्षों में लगे हुए फल सहज भाव से पक कर मीठे हो गए हैं[१]।

कार्तिक के महीने में विरह अति तीव्र हो जाता है और एक घड़ी छः महीने के समान हो जाती है[२]।

यदि हरि के गुण हृदय में समा जायें तो अगहन का महीना बहुत अच्छा हो जाय[३]।

पौष के महीने में तुषार पड़ता है। वन के वृक्षों और तृणों का रस सूख जाता है। हे प्रभु तू मेरे तन मन तथा मुख में बसा हुआ है, फिर क्यों नहीं मेरे समीप आता[४]।

माघ के महीने में जो ज्ञान के सरोवर में स्नान करता है, उसे गंगा यमुना, (सरस्वती) का संगम तथा त्रिवेणी—प्रयागराज और सातों समुद्रों के पवित्र तीर्थ अनायास प्राप्त हो जाते हैं[५]।

फागुन के महीने में, जिन्हें हरी का प्रेम अच्छा लग गया उनके मन में उल्लास रहता है[६]।

उपर्युक्त 'बारहमाहे' में जब आषाढ़ सावन भादों और आश्विन का साकार चित्रण गुरु नानक देव ने किया है। सावन भादों की झड़ी बिजली का चमकना जलाशयों का भर जाना अँधेरी-रात्रि में वर्षा के कारण भयंकरता का बढ़ जाना, मेंढक मोर, पपीहों का बोलना साँपों का डसना मच्छरों का डसना आदि में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण प्राप्त होता है। 'आश्विन महीने में धूप के पाले आगे जाने एवं ठंडक के पीछे पीछे आने' में कितनी सजीवता है।

यह तो हुआ प्रकृति के बाह्य पक्ष का चित्रण। गुरु नानक देव अन्तःप्रकृति के पूर्ण ज्ञाता थे। इसी से उन्होंने अपने काव्य के मानवी प्रकृति का भी सफल चित्रण किया है। उन्होंने अहंकारियों के अहंकार, साधुओं की साधुता गुणवती एवं सुहागिनी स्त्रियों के गुणों पातिव्रत धर्म और अपार प्रेम दुर्भागिनी स्त्रियों के दुर्गुणों एवं अहंमन्यता पाखण्डियों के पाखण्ड आक्रमणकारी की क्रूर भावना मुल्लाओं काजियों पंडितों ब्राह्मणों योगियों जैनियों के आडम्बर भाव तत्कालीन राजाओं और जागीरदारों की नृशंसता एवं क्रूरता बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

गुरु नानक की भाषा

जिस प्रकार गुरु नानक का व्यक्तित्व असाधारण एवं बहुमुखी है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी असाधारण एवं बहुरूपिणी है। वे अत्यधिक पर्यटनशील थे। जहाँ भी जाते थे उसी स्थान की भाषा में वहाँ के निवासियों को उपदेश देते थे। साधारणतः उनकी भाषा पूर्वी पंजाबी के अन्तर्गत रखी जा सकती है। किन्तु उस पर पश्चिमी पंजाबी भाषा का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। स्थान-स्थान पर खड़ीबोली ब्रजभाषा एवं रेख़ता के प्रयोग भी मिलते हैं। कहीं कहीं सिन्धी लहँदा बोली के भी पर्याप्त शब्द मिलते हैं। इस प्रकार उनकी भाषा बहुरूपिणी है। उसकी अनेकरूपता के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

---

१ नानक-वाणी, तुखारी बारहमाहा, पउड़ी १२
२ नानक-वाणी, तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी १३
३ नानक-वाणी, तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी १४
४ नानक-वाणी तुखारी बारहमाहा, पउड़ी १५
५ नानक-वाणी तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी १६
६ नानक-वाणी तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी १७

खड़ी बोली   खड़ी बोली का रूप अमीर खुसरो और कबीर की कविताओं में पाया जाता है। गुरु नानक की बाणी में स्थान स्थान पर खड़ी बोली का रूप दिखाई पड़ता है। यथा—

(१) कहु नानक धुरि सहमु विखाइआ।
मरता जाता नदरि न आइआ ॥४॥४॥
(नानक-बाणी रागु गउड़ी गुआरेरी, सबद ४)

(२) फूल माल गलि पहिरउगी हारो। मिलैगा प्रीतम तब करउगी सीगारो।
(नानक बाणी आसा सबद १४)

(३) करि किरपा जब महलु दिखाइआ।
नानक हउमै मारि मिलाइआ ॥४॥१॥
(नानक-बाणी, रागु गउड़ी गुआरेरी सबद १)

उपर्युक्त उदाहरणों में काले अक्षर के शब्द खड़ी बोली के प्रयोग हैं।

गुजराती एकाध स्थल पर गुजराती के शब्दों का प्रयोग भी दिखलाई पड़ता है। उदाहरणार्थ—

सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि।
(नानक-बाणी सिरी रागु सबद २४)

लहंदा गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर लहंदा का भी प्रयोग किया है—

(१) हभी थका हु मत्ती रोवा भीणी बाणि ॥२॥२४॥
(नानक-बाणी, सिरी रागु, सबद २४)

(२) मन कुचजी अंमावणि डोसड़े हउ किउ सहु रावणि जाउ जीउ।
इकदू इकि चड़ंदीआ कउणु जाणै मेरा नाउ जीउ ॥
(नानक-बाणी रागु सूही कुचजी)

(३) नानउ बमउ हुंमस्ती कियौ मित्र करेउ।
सा धनु ढोई न लहै वाढी जिउ धीरेउ ॥१॥
मैडा मनु रता आपनड़े पिर नालि ॥
(नानक-बाणी मारू काफी सबद १)

सिन्धी भार अठारह मेवा होवा गरुड़ा होइ सुभाउ।
(नानक-बाणी माझ की वार)

रेखता। रेखता बाणी में फारसी शब्दों का बाहुल्य होता है। पर यह वास्तविक फ़ारसी नहीं होती। हिन्दी एवं फारसी के मिश्रण को रेखता कहते हैं आगे चलकर इसी रेखता ने 'उर्दू' का रूप धारण किया। गुरु नानक देव के समय में 'उर्दू' का जन्म नहीं हुआ था। पर हिन्दी और फारसी के पृथक पृथक बाला बातचीत के सिलसिले में हिन्दी के ढाँचे में फ़ारसी शब्द अथवा फारसी के ढाँचे में हिन्दी शब्द भरत कर अपना काम चला लेते थे।[१] गुरु नानक ने अपनी बाणी में 'रेखता' का भी प्रयोग किया है—

१. जयरतन, श्री गुरु ग्रंथ साहिब की, तृतीय संस्करण पृष्ठ २१

यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बे ऐब परवदगार॥१॥
दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी॥१॥ रहाउ॥

(नानक-वाणी तिलंग सबद १)

ब्रजभाषा गुरु नानक ने अपनी वाणी में स्थान स्थान पर ब्रजभाषा के बड़े ही सुन्दर प्रयोग किए हैं, जैसे—

(१) आपि तरै संगति कुल तारै।

(नानक-वाणी आसा, सबद १४)

(२) हरि हरि नामु भगति प्रिअ प्रीतमु सुख सागर उर धारे।
भगतिवछलु जगजीवनु दाता मति गुरमति निसतारे॥१॥१६॥

(नानक-वाणी आसा सबद १६)

(३) तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुझ बिनु अवरु न कोइ हरे॥

(नानक-वाणी आसा सबद २२)

(४) काची गागरि देह दुहेली उपजै बिनसै दुखु पाई॥

(नानक-वाणी आसा सबद २२)

पूर्वी हिन्दी कुछ स्थलों पर पूर्वी हिन्दी के भी प्रयोग उनकी भाषा में मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ—

(१) भईसे उदासी रहउ निरासी

(नानक-वाणी आसा, सबद २६)

(२) तितु सरवरड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ।

(नानक-वाणी आसा सबद ६)

(३) 'पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले'
इस प्रकार गुरु नानक देव ने कई भाषाओं के प्रयोग किए हैं।

सामान्यतः गुरु नानक की भाषा में भावों के प्रकाशन की अद्भुत क्षमता है। उनकी भाषा कबीर की भाषा के समान [illegible] नहीं है।[1] उसमें अपूर्व गम्भीरता मर्यादा संयम और शिष्टता है। उनकी कठोर से कठोर भर्त्सनाएँ मर्यादापूर्ण हैं। एकाध स्थल की दूसरी बात है। उदाहरणार्थ—

(१) अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसार।

(नानक-वाणी रागु धनासरी सबद ८)

(२) सनीआ त धरम छोडिआ मलेछ भाखिआ गही।

(नानक-वाणी रागु धनासरी सबद ८)

---

१ कबीरदास—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ ११[illegible]

(३) आपे दाना आपे बीना । आपे आपु उपाइ पतीना ।
आपे पउणु पाणी बैसंतरु आपे मेलि मिलाई हे ॥३॥
आपे ससि सूरा पूरो पूरा । आपे गिआनि धिआनि गुरु सूरा ॥
कालु जालु जमु जोहि न साकै साचे सिउ लिव लाई हे ॥४॥

आपे भवरु फुलु फलु तरवरु । आपे जलु थलु सागरु सरवरु ॥
आपे मछु कछु करणी कर तेरा रूपु न लखणा जाई हे ॥६॥
आपे दिनसु आपे ही रैणी । आपि पतीजै गुर की बैणी ॥
आदि जुगादि अनाहदि अनदिनु घटि घटि सबदु रजाई ॥७॥

(नानक-वाणी मारू सोलहे, १)

(४) अनहदो अनहदु वाजै रुण झुणकारे राम ।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम ॥
अनदिनु राता मनु बैरागी सुंनि मंडलि घरु पाइआ ।
आदि पुरखु अपरंपर पिआरा सतिगुर अलखु लखाइआ ॥
आसणि बसणि थिरु नाराइणु तितु मन राता वीचारे ।
नानक नामि रते बैरागी अनहद रुण झुणकारे ॥२॥१॥

(नानक-वाणी, रागु आसा छंत २)

इस प्रकार के संगीतमय और नाद-सौन्दर्ययुक्त अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। मेरी तो यह निश्चित धारणा है कि संगीत की जो दिव्य-माधुरी गुरु नानक देव की वाणी में पाई जाती है, वह किसी अन्य संत कवि में नहीं प्राप्त होती।

गुरु नानक देव ने अपने काव्य में स्थान स्थान पर मुहाविरों एवं कहावतों के प्रयोग किए हैं, जिससे उनकी भाषा की व्यावहारिकता बढ़ गई है। उदाहरणार्थ —

(१) 'गूँगे का गुड़' —
जिन चाखिआ सेई सादु जाणनि जिउ गूंगे मिठिआई ।

(नानक वाणी सोरठि असटपदी १)

(२) 'स्वान की पूँछ'—
अपना आपु तू कबहु न छोडसि सुआन पूछि जिउ रे ॥४॥४॥

(नानक-वाणी रागु मारू सबद ४)

(३) 'बाँह पसार कर मिलना' —
घरबारि धारि मेरा सहु बस हउ मिलउगी बाहु पसारि

(नानक-वाणी गउड़ी सबद १६)

(४) 'कसौटी पर कसना' —
कसि कसवटी लाईऐ परखे हितु चितु लाइ ॥

(नानक-वाणी सिरी रागु, असटपदी ७)

(५) 'ठौर पाना' —
खोटे ठउर न पाइनी खरे खजाने पाइ ।
(नानक-वाणी सिरी रागु असटपदी ७)

(६) 'मुँह काला होना' तथा 'पति खोना' (प्रतिष्ठा खोना)—
भगती भाइ विहूणिआ मुहु काला, पति खोइ ।।
(नानक-वाणी सिरी रागु पहरे २)

(७) 'कंधे पर माना' तथा 'साँसों का अन्त होना —
मोड़कु आइआ तिन साहिआ वणजारिआ मित्रा,
जउ करवारणा कंमि ।।
(नानक-वाणी सिरी रागु पहरे २)

(८) 'जो बोना सो खाना'—
नानक जो बीजे सो खावणा करम सिरि पाइआ ।।
(नानक-वाणी सारंग की वार)

(९) जन्म गंवाना'—
झूठै लालचि जनमु गवाइआ ।
(नानक-वाणी प्रभाती असटपदी बिभास १)

(१) 'मन में बसाना' —
सचा नामु मंनि बसाए ।
(नानक-वाणी प्रभाती-बिभास असटपदी २)

(११) 'शीश पड़ना' —
मारे सदे सिर न होइ ।
(नानक-वाणी प्रभाती बिभास असटपदी ५)

गुरु नानक की वाणी से इस प्रकार के मुहावरों के सकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इससे उनकी भाषा अत्यधिक लोकोपयोगी और व्यावहारिक हो गई है।

गुरु नानक देव की काव्य भाषा की अनूठी विशेषता यह है कि उसके वाक्यांश अथवा कुछ पंक्तियां की सामान्य-जनता की सूक्तियों के रूप में प्रवेश पा चुके हैं।[१] जीवन के सभी क्षेत्र के व्यापार, आध्यात्मिक ज्ञान के सिद्धान्त प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण, सामाजिक और नैतिक जीवन के आदर्श इन सूक्तियों में समाविष्ट हैं। इनसे कवि की बहिदृष्टि और अन्तर्दृष्टि के व्यापक सूक्ष्म और चमत्कारपूर्ण ज्ञान का परिचय प्राप्त कर हमें आश्चर्यविभोर हो जाना पड़ता है। उदाहरण के रूप में कुछ सूक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं —

(१) अधी ताक विषा करे, पंछी विषा आकास ।
(नानक-वाणी माझ की वार)

(२) हंस हेत लोभ कोप चारे नदीया अगि ।
(नानक-वाणी माझ की वार)

---

१. गुरु ग्रंथ साहिब की साहित्यिक विशेषता- डा० जीवराज सिंह पृष्ठ १८९

(२०) देवणहारे कै हथि दानु।

(नानक-बाणी सिरीरागु सबद १२)

(२१) जेही धातु तेहा तिन नाम।

(नानक-बाणी सिरी रागु सबद १२)

(२२) धापि बोजि मारे हो गाइ।

(नानक-बाणी सिरी रागु सबद १२)

(२३) फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ॥

(नानक-बाणी सिरी रागु,)

(२४) सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।

(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी १)

(२५) विणु नावै नाही को थाउ॥

(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी १९)

(२६) विणु गुण कीते भगति न होइ।

(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी २१)

(२७) बहुता कहीऐ बहुता होइ॥

(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी २४)

(२८) ओड़ न ओड़कि मरणि न ओड़।

(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी ११)

(२९) रीटीआ कारम पूरनि ताम॥

(नानक-बाणी आसा की वार)

(१०) नदीआ वाह विछुंनिआ मेला संजोगी राम।

(नानक-बाणी आसा, छंत ५)

(११) हुकमु करहि मूरख गावार।

(नानक-बाणी बसंतु, सबद ३)

(१२) मूरख एको रुति अनेक।

(नानक-बाणी आसा, सबद ३)

(१३) मनु कंचनु काइआ उदिआनै।

(नानक-बाणी गउड़ी गुआरेरी असटपदी २)

(१३) काम क्रोधु काइआ कउ गालै।
जिउ कंचन सोहागा ढालै॥

(नानक-बाणी रामकली ओअंकार पउड़ी १८)

(१४) कंचन कोटु न रहई ठाइ।

(नानक-बाणी रामकली ओअंकार, पउड़ी ३३)

(१५) आदमा आदमा करि मुए आदमा किस न साथि॥

(नानक-बाणी रामकली, ओअंकार पउड़ी ४२)

(१६) कूड़ बोलि बोलि मउकना चूका धरम ...   (नानक-बाणी सारंग ...)

(१७) कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ॥   (नानक-बाणी आसा की वार)

सारांश यह कि गुरु नानक की भाषा इतनी व्यवहारोपयोगी थी कि पंजाब की जनता द्वारा सूक्तियों के रूप में अपना ली गई।

गुरु नानक देव के दार्शनिक सिद्धान्त[1]

परमात्मा —सृष्टि के अधिकांश धर्मों में परम तत्त्व परमात्मा को ही स्वीकार किया गया है। तर्क के द्वारा परमात्मा की अनुभूति होना असंभव है। परमात्मा की अनुभूति में श्रद्धात्मक भावना का बहुत बड़ा महत्त्व है। गुरु नानक देव ने अनुभूति श्रद्धा के बलपर अपने मूलमंत्र अथवा बीजमंत्र में परमात्मा के स्वरूप की इस भाँति व्याख्या की है।

'१ ओं सतिनामु करतापुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।'[2]

मोहनसिंह जी ने मूलमंत्र की व्याख्या इस ढंग से की है —

'वह एक है, सब्द अथवा वाणी है और इसी के द्वारा सृष्टि रचता है। वह सत्य नाम है। उसके अस्तित्व का वाचक केवल नाम है और वही सत्य है और शेष जितने नाम उसके गुणों के वाचक हैं। उसके प्रत्यक्ष गुण ये हैं —'वह कर्तार है, पुरियों का निर्माण करके उनके बीच निवास करने वाला है, महान् पौरुष और महान् शक्तियुक्त है। वह ... शक्तियों का स्वामी है।'—परमात्मा के निषेधात्मक गुण ये हैं —'वह भय से रहित है ... रहित है, मूर्तिमान् है, काल से रहित है योनि के अन्तर्गत नहीं आता त्रिपुटी से परे है।' ... 'वह स्वयंभू है ... प्रकार प्रत्यक्ष गुणों से प्रारम्भ करके फिर अप्रत्यक्ष गुणों में अन्त करते हैं। ... प्राप्त होने वाला है और उसकी प्राप्ति गुरु-कृपा से होती है।'"[3]

वास्तव में बीजमंत्र अथवा मूलमंत्र का अत्यधिक महत्त्व है। यदि हम गुरु नानक की समस्त वाणी को इसी बीजमंत्र का भाष्य कहें तो कुछ अनुपयुक्त न होगा।[4]

उपासक की चित्त-वृत्ति एवं मन की अवस्था के अनुसार परमात्मा के गुण भी ... और श्रीमद्भगवद्गीता में भिन्न भिन्न कहे गए हैं। गुरु नानक में भी उपासक की वृत्ति के अनुकूल ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण तीन प्रकार का मिलता है—(१) निर्गुण ... सगुण ब्रह्म और (३) सगुण-निर्गुण दोनों से मिश्रित—उभय विधि।

१ निर्गुण ब्रह्म —निर्गुण ब्रह्म का वर्णन तो असंभव है क्योंकि वहाँ ... पहुँच सकता है न वाणी न इन्द्रियाँ। उसका केवल संकेत मात्र किया जा सकता ... प्रतिपादन के लिए दो शैलियों का प्रयोग होता है—एक तो विधि वाली और दूसरी ...

---

१ विस्तृत विवेचन के लिये देखिये,—श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, जयराम मिश्र
२ सिक्खों का मूलमंत्र, नानक बाणी, पृ १
३ पंजाबी साहित्य का इतिहास, मोहन सिंह पृ १८, १९, ११
४ विस्तृत विवेचन के लिये देखिए, श्री गुरु-ग्रन्थ दर्शन जयराम मिश्र पृ ११—...

यली । गुरु नानक देव ने निर्गुण ब्रह्म के निरूपण में निषेधात्मक शैली का सहारा लिया है और सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन में विधि शैली का ।

उन्होंने निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन बड़ी ही रोचक, मौलिक शैली में किया है ।—

"अरबद नरबद धुंधूकारा ।

बेद कतेब न सिमृत सासत । पाठ पुराण उदै नही आसत ।

(नानक-वाणी, मारू सोलहे १५)

निर्गुण ब्रह्म के गुणगान का उल्लेख गुरु नानक में बहुत पाया जाता है । 'जपु जी' में एक स्थान पर उन्होंने कहा है —

ता कीआ गलीआ कथीआ न जाहि ।

जे को कहै पिछै पछुताइ ॥

(नानक-वाणी जपु जी पउड़ी ३६)

उस निर्गुण ब्रह्म में जल थल धरती और आकाश कुछ भी नहीं है । वह स्वयंभू अपने आप में प्रतिष्ठित है । वहाँ न माया है, न छाया है न सूर्य है न चन्द्रमा और न अपार ज्योति ही —

जल थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार ॥२॥

ना तदि माइआ मगनु न छाइआ न सूरज चन्द न जोति अपार ॥

(नानक-वाणी गूजरी असटपदी २)

श्री गुरु नानक देव एवं उपनिषदों की निर्गुण-प्रतिपादन-शैली में असाधारण साम्य है ।

२ सगुण ब्रह्म —सांख्य मतावलम्बी सृष्टि-रचना में प्रकृति का बहुत बड़ा हाथ मानते हैं । उनके अनुसार बिना प्रकृति की सहायता के सृष्टि रचना हो ही नहीं सकती । परन्तु गुरु नानक देव ने स्पष्ट रूप से इस बात को माना है 'निर्गुण ब्रह्म ने बिना किसी अवलम्बन के अपने आपको सगुण रूप में प्रकट किया' —

आपै आपु उपाइ निराला ॥

(नानक-वाणी मारू, सोलहे १६)

जगतु उपाइ खेलु रचाइआ ॥

(नानक-वाणी मारू सोलहे ११)

आपि उपाइआ जगतु सबाइआ ।

(नानक-वाणी, मारू, सोलहे ३)

परमात्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन गुरु नानक ने दो प्रकार से किया है (क) परमात्मा के विराट् स्वरूप के माध्यम द्वारा (ख) परमात्मा के अन्य गुणों के चित्रण द्वारा ।

विराट् स्वरूप का गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर चित्रण किया है । उस विराट स्वरूप के चित्रण में प्रभु का सगुण स्वरूप व्यंजित है । उदाहरणार्थ —

"गगनमै थालु रवि चन्दु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।

धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥

(नानक-वाणी धनासरी सबद ६)

विराट् स्वरूप के निरूपण में अनेक स्थलों पर यह कहा गया है कि प्रभु ही सब कुछ है। उदाहरणार्थ— 'परमात्मा आप ही पवन जल और वैश्वानर है। इनका मेल भी प्रभु ही करता है। आप ही शशि और आप ही पूर्ण सूर्य है' 'वह आप ही भ्रमर है, वही वृक्ष है और वही उस वृक्ष का फूल और फल है। वह आप ही मच्छ-कच्छ की करणी करता है और उसका रूप कुछ समझ मे नही आता। इस प्रकार वह स्वयं दिन और रात बना हुआ है।'

(नानक-बाणी माक सोलहे १)

जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म अनन्त है और उसका कथन नही किया जा सकता उसी भाँति सगुण ब्रह्म का विराट-स्वरूप भी कथन की सीमा से परे है। तभी तो गुरु नानक देव ने 'जपु जी' मे कह दिया है।

अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु ॥
अंत कारणि केते बिललाहि। ता के अंत न पाए जाहि ॥
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥

(नानक-बाणी जपु जी, पउड़ी २४)

गुरु नानक देव ने परमात्मा को स्थान-स्थान पर सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामिन्, सर्वशक्तिमान्, दाता भक्त-वत्सल पतितपावन परमकृपालु, सर्वप्रेरक कौतकक्ता सखा सहायक, माता-पिता स्वामी शरणदाता आदि विशेषणों से युक्त कर उसके सगुण स्वरूप का अभिव्यक्त किया है। हाँ उन्होंने स्थान-स्थान पर अवतारवाद का खण्डन किया है यथा —

'मन महि झूरै रामचन्दु सीता लछमणु जोगु ॥

(नानक-बाणी, सलोक वारां ते वधीक)

'अंधुले दहसिरि मूंड कटाइआ रावणु मारि किआ वडा भइआ ॥

...

जाकी अंतु न पाइओ ताका कसु छेदि किआ वडा भइआ ॥

(नानक-बाणी आसा राम सबद ७)

गुरु नानक ने रामादिक अवतारो के संबंध में एक स्थान पर कहा है कि एक परमात्मा ही निर्भय और निरंकार है रामादिक तो धूल के समान तुच्छ है —

नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवाल ॥

(नानक-बाणी आसा की वार)

उन्होने स्थान-स्थान पर जोरदार और स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि मेरा परमात्मा एक ही है। यही बात उपनिषदों मे भी पाई जाती है। इस्लाम का एकेश्वरवाद तो प्रसिद्ध ही है। गुरु नानक की उक्तियाँ ध्यान देने योग्य है —

साहिबु मेरा एको है। एको है भाई एको है ॥

(नानक-बाणी आसा राम सबद ५)

साहिबु मेरा एकु है अवरु नही भाई ॥

(नानक-बाणी आसा-काफी असटपदीआं १८)

निर्गुण और सगुण उभय-स्वरूप

परमात्मा के निर्गुण और सगुण स्वरूपों के अतिरिक्त गुरु नानक देव ने स्पष्ट रूप से उसके उभय स्वरूपों को माना है। उनके विचार में ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। इसके साथ ही साथ वह निर्गुण और सगुण दोनों ही एक साथ है। गुरु नानक देव ने 'सिद्ध गोष्ठी' में कहा है कि परमात्मा ने अव्यक्त निर्गुण व सगुण ब्रह्म को उत्पन्न किया और वह दोनों साथ ही है—

> अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ ॥
>
> (नानक-वाणी रामकली सिध गोसटि, पउड़ी २४)

सृष्टिक्रम

सृष्टि-क्रम भी अद्भुत पहेली है। विभिन्न दार्शनिकों और तत्ववेत्ताओं ने इस समस्या को अपने-अपने ढंग से सुलझाने का प्रयास किया। परन्तु फिर भी वह ज्यों की त्यों बनी रही। गुरु नानक देव ने सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में एक ऐसे समय की कल्पना की है, जब सृष्टि का नाम-निशान तक नहीं था। वे कहते हैं "अगणित युगों पर्यन्त महान् अन्धकार था। न तो पृथ्वी थी और न आकाश था। प्रभु का अपार हुक्म मात्र था। न दिन था न रात थी। न तो चन्द्रमा था, न सूर्य। 'पाठ-पुराण तथा सूर्योदय और सूर्यास्त भी न थे। वह अगोचर, वह अलख स्वयं अपने को प्रदर्शित कर रहा था।"

(नानक-वाणी मारू सोलहे १५)

गुरु नानक देव की उपर्युक्त विचारावली एवं ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की विचारधारा में असाधारण साम्य है[१]। तैत्तिरीय ब्राह्मण छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि में भी इसी प्रकार की कल्पना है[२]।

गुरु नानक देव ने परमात्मा के निर्गुण स्वरूप को कहीं कहीं शून्य कहा है और इसी से सब सृष्टि की उत्पत्ति मानी है[३]। पर इस शून्य का अर्थ 'कुछ नहीं' नहीं है। शून्यावस्था का तात्पर्य उस स्थिति से है जब संसार की उत्पत्ति के पूर्व सारी शक्तियाँ एक मात्र निर्गुण ब्रह्म में केन्द्रीभूत थीं।

सृष्टि के मूलारंभ के इस परम तत्व को गुरु नानक देव ने 'ओंकार' की संज्ञा से भी प्रतिष्ठित किया है और इसी 'ओंकार' को ब्रह्मादिक तथा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण माना है।[४]

गुरु नानक देव परमात्मा को ही सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण मानते हैं—

> आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥
>
> (नानक वाणी आसा की वार)

१. ऋग्वेद मण्डल १० १२९ सूक्त, ऋचा १ और २
२. इस विवेचन के लिये देखिये श्री दुर्गाशंकर-दर्शन बलराम मिश्र (सृष्टि-क्रम), पृ ११-२१
३. नानक वाणी, सुन कला अपरंपरि धारी। आदि, मारू सोलहे १
४. नानक-वाणी, "ओअंकारि ब्रहमा उतपति" रामकली, दखणी ओअंकार।

सांख्य मतानुसार सृष्टि-रचना के मूल कारण पुरुष और प्रकृति हैं। पर गुरु नानक को यह मत मान्य नहीं। वे परमात्मा को ही सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

गुरु नानक के अनुसार संसार की उत्पत्ति परमात्मा के 'हुकम' से होती है। यह 'हुकम' अनिर्वचनीय है —

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥

(नानक-वाणी जपु जी पउड़ी २)

गुरु नानक देव ने 'हुकम' की महत्ता का मारू राग में विशद विवेचन किया है —

हुकमे आइआ हुकमि समाइआ

हुकमे सिस सापिआ वीचारे॥

(नानक-वाणी मारू सोलहे ११)

सृष्टि-रचना का समय अज्ञात और अनिश्चित है। पंडित, काज़ी इत्यादि कोई भी सृष्टि-रचना का समय नहीं जानते। जिसने सृष्टि-रचना की है, वही इन सब बातों को जान सकता है —

कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।

जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई॥

(नानक-वाणी जपु जी, पउड़ी २१)

इसी प्रकार 'सिध गोसटि' (रामकली) की २४वीं पउड़ी में यह बतलाया है कि सृष्टि-रचना के प्रारम्भ में विचार करना आश्चर्यमय है।

सृष्टि के समस्त विस्तार परमात्मा के एक वाक्य से होते हैं —

"कीता पसाउ एको कवाउ"

(नानक-वाणी जपु जी पउड़ी १६)

ज्योंही 'हुकम' की उत्पत्ति होती है, त्योंही हउमै (अहंकार) की उत्पत्ति होती है। यही 'हउमै' जगत् की उत्पत्ति का मुख्य कारण है —

'हउमै विचि जगु उपजै'

(नानक-वाणी, सिध गोसटि, पउड़ी ६८)

यही हउमै बाह्य और आन्तरिक सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। तीनों गुण हउमै में ही क्रियाशील होते हैं और वे ही समस्त सृष्टि के कारण होते हैं। गुरु नानक देव के अनुसार परमात्मा 'अफुर अवस्था' में तो सबसे परे और अव्यक्त है किन्तु वही 'सफुर अवस्था' में सब व्यापी और सर्वान्तरात्मा है।[१]

१. [illegible]

योगवाशिष्ठ के अनुसार भी अहंकार ही स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि का कारण है।[1]

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि सृष्टि की उत्पत्ति जिस परमात्मा से होती है, उसी परमात्मा में वह विलीन भी हो जाती है। निम्नलिखित उदाहरणों से इसकी पुष्टि होती है—

जिसते उपजै तिसते बिनसै।

(नानक-वाणी सिरी रागु सबद १९)

जिनि सिरि साजी तिनि फुनि गोई॥

(नानक-वाणी आसा सबद २१)

तुझ ते उपजहि तुझ माहि समावहि॥

(नानक-वाणी मारू-सोलहे १४)

मुण्डकोपनिषद् में भी सृष्टि-रचना और लय का कारण परमात्मा ही बताया गया है (मुण्डक २, खंड १ मंत्र १ तथा मुण्डक १ खंड १ मंत्र ७)

गुरु नानक के अनुसार सृष्टि अनन्त है —

असंख नाव असंख थाव। अगंम अगंम असंख लोअ॥

(नानक-वाणी जपु जी पउड़ी १९)

इसी प्रकार जपु जी के 'ज्ञान खण्ड' में सृष्टि की अनन्तता का विशद चित्रण किया गया है। सृष्टि की अनन्तता पर उन्होंने आश्चर्य भी प्रकट किया है —

'विसमादु नादु विसमादु वेद

विसमादु रूप विसमादु रंगु।" आदि

(नानक-वाणी, आसा की वार)

गुरु नानक ने वेदान्तियों की भाँति जगत् को मिथ्या नहीं माना है और न इसे भ्रम कहा है। उन्होंने जगत को स्थान-स्थान पर सत्य कहा है —

सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड। सचे तेरे लोअ सचे आकार॥

(नानक-वाणी आसा की वार)

उन्होंने जहाँ कहीं सृष्टि को झूठा अथवा मिथ्या कहा है, उसका यही अभिप्राय है कि वह नश्वर और क्षणभंगुर है, वास्तव नहीं। अन्त में परमात्मा में ही यह सृष्टि लय हो जाती है —

तुधु भावै सृसटि सभ उपाई जी तुधु भावै सिरजि सभ गोई॥

(नानक-वाणी रागु आसा, सोदरु)

हउमै (अहंकार)

'अफुर' ब्रह्म में परमात्मा के 'हुकम' से क्रियाशीलता उत्पन्न होती है और यही क्रियाशीलता सगुण ब्रह्म बन जाती है। 'हुकम' की उत्पत्ति के साथ ही साथ हउमै (अहंकार) की

1. द योगवाशिष्ठ बी० एल० आत्रेय, पृष्ठ १००

उत्पत्ति होती है। यही हउमै अहंकार की उत्पत्ति का मुख्य कारण है —

हउमै विचि जगु उपजै।

(नानक-वाणी रामकली सिध गोसटि)

योगवासिष्ठ में भी अहंकार को ही सृष्टि उत्पत्ति का मूल कारण माना गया है।[१]

'हउमै' इतना भयानक रोग है कि मनुष्य मात्र ही इस रोग के वशीभूत नहीं है, बल्कि पवन, पानी बैसन्तर, धरती, सातों समुद्र नदियाँ खण्ड पाताल पद-वरण सभी पर इसका प्रभुत्व है। यहाँ तक कि विवेक भी इससे मुक्त नहीं है —

नानक हउमै रोग बुरे।

रोगी खट दरसन भेखधारी नाना हठी अनेका ॥

(नानक-वाणी भैरउ असटपदी १)

गुरु नानक द्वारा वर्णित अहंभाव की प्रवृत्तियों तथा श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय मे वर्णन की गई आसुरी प्रवृत्तियों मे अत्यधिक साम्य है। सांसारिक पुरुषों के सारे काम अहंकार ही मे हुआ करते है। जन्म-मरण देना-लेना, लाभ-हानि सत्य-असत्य पुण्य-पाप नरक स्वर्ग हँसना-रोना शौच-अशौच जाति-पाँति, ज्ञान-अज्ञान बन्धन-मोक्ष आदि सब कुछ 'हउमै' के द्वारा होते हैं। उनकी अन्य क्रियाएं भी हउमै के द्वारा ही होती है। गुरु नानक देव ने 'आसा की वार' मे इसका चित्रण किया है—

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ।

हउमै करि करि जत उपाइआ ॥

(नानक-वाणी आसा की वार)

सारांश यह कि हउमै' जीवात्मा की सांसारिक यात्रा का प्रमुख कारण है। रजोगुण तमोगुण एवं सत्वगुण के संयोग से नाना भाँति की सृष्टि रचना होती है। अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं। अनेक प्रकार के कर्म इसी 'हउमै' के कारण किए जाते है। इन कर्मों के प्रभाव और संस्कार जीवात्मा को सूक्ष्म शरीर द्वारा बाँधे रहते है। इस प्रकार जीव अनेक योनियों मे भटकता रहता है और जीव का आवागमन निरन्तर जारी रहता है।[२]

जिस प्रकार मनुष्य की वासनाएं अनन्त है, उसी प्रकार हउमै के भेद भी अनन्त हो सकते है। फिर भी स्थूल दृष्टि से गुरु नानक की वाणी मे हउमै के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं —

(१) धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार "मैं ध्यानी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ मैं तपस्वी हूँ, मैं योगी हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ। यही धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार है। यह अहंकार साधक को नीचे गिरा देता है। गुरु नानक देव ने स्पष्ट कर दिया है 'लखों मन्नाइआं लाखों पुण्य

१. द्र० योगवासिष्ठ, श्री० दया० ... पृष्ठ ...
२. गुरमति दर्शन : शेरसिंह पृष्ठ ...

कर्म तीर्थों मे स्नान तप जप में योगियों का सहज योग आदि आदि यदि अहंभाव से किए गए हैं, तो वे सब मिथ्या बुद्धि से किए गए हैं।

सच नेकीआ वंगिआईआ मल पुंना परवाणु

नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु ॥

(नानक-बाणी आसा की वार)

(२) विद्यागत अहंकार विद्यागत अहंकार आध्यात्मिक प्रगति में बहुत बड़ा बाधक है। गुरु नानक की पैनी दृष्टि इस पर थी। उन्होंने कहा है, "यदि पढ़-पढ़ कर काफिले भर दिए जायें पढ़ पढ़ कर नावें भर दी जायें पढ़ पढ़ कर गड्ढे भर दिए जायें और अध्ययन म ही सारे वर्ष सारे मास सारी आयु सारी साँसें व्यतीत कर दी जायें फिर भी नानक के हिसाब म यही बात ठीक है कि अध्ययन-संबंधी सारे अहंकार सिर खपाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।"—

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि 'आदि

(नानक-बाणी आसा की वार)

(३) कर्मकाण्ड और वेश संबंधी अहंकार बहुत से साधक इन्हीं के बल पर संसार म अपनी ख्याति चाहते हैं। किन्तु उन्हें आन्तरिक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती —

बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ

सहु वेजाणी महरी मसाणी। अंधु न जाणए फिरि पछुताणी

(नानक-बाणी आसा की वार)

गुरु नानक देव ने ऐसे बेशादिक अहंकार की विस्तार के साथ विवेचना की है। योगियों के भगवा-वेष कंथा झोली तीर्थ-भ्रमण विभूति-धारण धूनी रमाना संन्यासियों के मूँड मुड़ाने तथा कमण्डल धारण करने आदि बाह्य-वेषों एवं तद्गत अहंकारो की तीव्र भर्त्सना की है —

काली मेरू रंग चङाइआ वसत्र भेख भेखारी।

इतनी ठगि करि कामि विआपिआ फिरु चाहआ पर नारी ॥

(नानक-बाणी मारू असटपदी ७)

(४) जाति-सम्बन्धी अहंकार —"मैं ब्राह्मण हूँ मैं क्षत्रिय हूँ, मैं कुलीन हूँ" आदि का अहंकार मनुष्यों के बीच में ऐसी खाई खोद देता है कि वह शताब्दियों तक नहीं पटती। गुरु नानक देव ने जाति-संबंधी अहंकार को दूर करने के लिए अपने विचार इस भाँति प्रकट किए हैं — "जीव मात्र में परमात्मा की ज्योति समझो। जाति के संबंध में प्रश्न न करो क्योंकि आगे किसी भी प्रकार की जाति नहीं थी।"—

'जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे।"

(नानक-बाणी, आसा, सबद ३)

अगै जाति न जोरु है, अगै जीउ नवे ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

जाति महि जोति, जोति महि जाता अकल कला भरपूरि रहिआ ॥

(नानक-वाणी, माझ की वार)

(२) धन-सम्पत्ति सम्बन्धी अहंकार — धन-सम्पत्ति सम्बन्धी अहंकार मनुष्य को एकदम बेलगाम बना देते हैं। धन-सम्बन्धी अहंकार के वशीभूत होकर मनुष्य राक्षसी-कर्म करने में प्रवृत्त होता है। उसके सामने सम्पत्ति के अतिरिक्त कोई आदर्श नहीं रहता। उसे सदैव मेहर, मलूक, सरदार, राजा बादशाह, चौधरी, राउ कहलाने की वासना सताती रहती है। किन्तु ऐसे मनमुख अहंकारी की दशा ठीक वैसी ही होती है, जो दशा दावाग्नि में पड़कर तृण समूह की होती है —

सुइना रुपा संचीऐ मालु जालु जंजालु ।

सभु जगु काजल कोठड़ी तनु मनु देह सुआहि ॥

(नानक-वाणी सिरी रागु, असटपदी १६)

सोने-चाँदी का कितना ही संग्रह क्यों न किया जाय किन्तु यह सब कच्चा है, विष है, क्षार है —

सुइना रुपा संचीऐ धनु काचा बिखु छारु ॥

(नानक-वाणी, रामकली दखणी ओअंकार, पउड़ी ४८)

(३) परिवार-सम्बन्धी अहंकार —परिवार सम्बन्धी अहंकार प्रबल मोह के हेतु हैं। गुरु नानक देव कहते हैं कि जो सांसारिक व्यक्ति 'बहिन, भौजाई, सास, फूफी, नानी, मौसी' आदि में अहंबुद्धि रखते हैं, वे सचमुच ही मूर्ख हैं। स्मरण रखना चाहिए कि संसार का कोई भी सम्बन्ध अंत में हमारी सहायता नहीं कर सकता —

ना भैणा भरजाईआ ना से ससुड़ीआह ।

नाले दे मामणीआ बाहर बास ना जाउ ॥

(नानक-वाणी मारू-काफी सबद १)

जितने भी सांसारिक संबंध हैं, सभी बंधन के हेतु हैं —

बंधन मात पिता संसारि । बंधन सुत कंनिआ अरु नारि ॥

(नानक-वाणी, आसा, असटपदी १)

(४) रूप-यौवन सम्बन्धी अहंकार यह अहंकार सार्वभौमिक है। यह अहंकार धनी से लेकर दरिद्र तक में समान रूप से व्याप्त है। निर्धन से निर्धन और कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने रूप और यौवन पर अभिमान करता है। गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर इस अहंकार की प्रबलता बतलाई है। उन्होंने एक स्थल पर बतलाया है कि पाँच ठग संसार में अत्यन्त प्रबल हैं। वे हैं राज, माल, रूप, जाति और यौवन। इन पाँचों ठगों ने सारे संसार को ठग लिया है। उन्होंने किसी की भी लज्जा नहीं छोड़ी —

राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग ।
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज ॥

(नानक-वाणी मलार की वार)

उन्होंने यह भी बतलाया है कि रूप और काम का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इन दोनों की प्रबल मैत्री है —

रूपी कामै दोसती

(नानक-वाणी मलार की वार)

उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि रूप सम्बन्धी अहंकार की भूख कभी शान्त नहीं होती —

रूपी भुख न उतरै

(नानक-वाणी मलार की वार)

अहंकार के कारण बड़े-बड़े दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। सद्गुरु ही 'हउमै' के बन्धनों को तोड़ सकता है।

हउमै बन्धन सतिगुरि तोड़े चितु चंचलु चलणि न दीआ है ।

(नानक-वाणी मारू सोलहे ५)

माया

सृष्टि के प्रारम्भकाल में अव्यक्त और निर्गुण परब्रह्म जिस देशकाल आदि नाम-रूपात्मक सगुण शक्ति से व्यक्त अर्थात् दृश्य-सृष्टि रूप सा देख पड़ता है, उसी को वेदान्त-शास्त्र में 'माया' कहते हैं। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुसार नाम रूप और कर्म ये तीनों मूल में एक स्वरूप ही हैं। हाँ उसमें विशिष्टार्थक सूक्ष्म भेद किया जा सकता है कि 'माया' एक सामान्य शब्द है और उसके दिखावे को नाम, रूप तथा व्यापार को कर्म कहते हैं।[१]

वेदान्तियों की भाँति गुरु नानक देव ने माया का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं है। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि माया की रचना परमात्मा ही ने की— निरंजन परमात्मा ने स्वयं अपने आपको उत्पन्न किया है और समस्त जगत् में वही अपना खेल खेल रहा है। तीनों गुणों एवं उनसे सम्बद्ध माया की रचना उसी परमात्मा ने की। मोह की वृद्धि के साधन भी उसी ने उत्पन्न किए।

आपे आपि निरंजना जिनि आपु उपाइआ ।
आपे खेलु रचाइओनु सभु जगतु सबाइआ ॥
त्रैगुण आपि सिरजिअनु माइआ मोहु वधाइआ ।

(नानक-वाणी सारंग की वार)

गुरु नानक देव ने माया का 'कुदरत' नाम भी स्वीकार किया है—

---

१. गीता-रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र बाल गंगाधर तिलक, पृष्ठ ५४१

कुदरति कवण कहा वीचारु।

(नानक-बाणी, जपु जी पउड़ी १६)

आपणि कुदरति आपे जाणै।

(नानक-बाणी, सिरी रागु, असटपदी १)

माया की अति मोहिनी शक्ति है। इसी से इसका प्रभुत्व सारे संसार में व्याप्त है। यह नाना रूपों में व्याप्त है—

माइआ मोहि सगलु जगु छाइआ।
कामणि देखि कामि लोभाइआ॥
सुत कंचन सिउ हेतु वधाइआ॥१॥२॥

(नानक-बाणी, प्रभाती-विभास, असटपदी २)

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर इस बात का संकेत किया है कि ब्रह्मा, विष्णु महेश माया से उत्पन्न हुए हैं और वे त्रिगुणात्मक माया में बंधे हैं—

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु॥

(नानक-बाणी जपु जी, पउड़ी ३)

उन्होंने माया की प्रबलता स्थान-स्थान पर रूपकों द्वारा प्रदर्शित की है। एक स्थल पर गुरु नानक देव ने माया को उस बुरी सास के रूप में माना है जो जीवात्मा रूपी बहू को पति-परमात्मा से मिलने नहीं देती —

सासु बुरी घरि वासु न देवै पिर सिउ मिलण न देइ बुरी॥

(नानक-बाणी मासा सबद २२)

एक स्थल पर उन्होंने माया को ऐसी सर्पिणी माना है, जिसके विष के वशीभूत सारे जीव हैं —

इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा।

(नानक-बाणी, सिरी रागु, असटपदी १९)

गुरु नानक देव ने कहा है कि माया की सारी रचना धोखा है। इसमें कुछ सार नहीं है—

बाबा माइआ रचना धोहु॥१॥रहाउ॥

(नानक-बाणी सिरी रागु, सबद ४)

सत्-संगति सद्गुरु-प्राप्ति नाम-जप प्रेमाभक्ति से माया के बन्धन कट जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

जीव, मनुष्य और आत्मा

जीव परमात्मा की सृष्टि की सबसे चेतनशील शक्ति है। इसमें सुख-दुःख अनुभव करने की अद्भुत शक्ति तथा चेतना है। गुरु नानक देव के अनुसार जीव परमात्मा के 'हुकम' से उत्पन्न होते हैं —

हुकमी होवनि जीअ'

(नानक-बाणी जपुजी पउड़ी २)

'गउड़ी राग' के एक सबद में भी यही बात स्वीकार की गई है कि जीव परमात्मा के 'हुकम' से अस्तित्व में आते हैं और हुकम' से ही फिर उसी में लीन हो जाते हैं —

हुकमे आवै हुकमे जाइ। आगै पाछै हुकमि समाइ।

(नानक-बाणी गउड़ी सबद २)

जीव परमात्मा से उत्पन्न होते हैं और उनके अंतर्गत परमात्मा का निवास है, इसीलिए गुरु नानक देव ने अपनी वाणी में स्थान-स्थान पर जीव को अमर माना है —

देही अंदरि नामु निवासी। आपे करता है अबिनासी॥

ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई हे॥११॥६॥

(नानक-बाणी मारू सोलहे, ६)

न जीउ मरै न डूबै तरै॥

(नानक-बाणी गउड़ी सबद २)

जीव अनन्त हैं —

तिनके नाम अनेक अनंत।

(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी ३७)

जीवों का स्वामी परमात्मा है। उसी के अधीन समस्त जीव हैं —

जीअ उपाइ जुगति वसि कीनी।

(नानक-बाणी मलार, असटपदी २)

जीअ उपाइ जुगति हथि कीनी॥

(नानक-बाणी रागु आसा सबद ७)

जीउ पिंडु सभु तेरै पासि।

(नानक-बाणी सिरी रागु सबद ११)

गुरु नानक जी के अनुसार जीवों को उत्पन्न करके परमात्मा ही उनके भोजन आदि का प्रबंध करता है —

जीअ उपाइ रिजकु दे आपे॥

(नानक-बाणी मारू सोलहे २२)

किन्तु जीव जब अहंकारवश अपनी पृथक सत्ता समझने लगता है, तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती है —

जह जह देखा तह तह तू है, तुझते निकसी फूटि मरा॥

(नानक-बाणी सिरी राग सबद ११)

मायाग्रस्त होने के कारण जीव अनेक योनियों में भटकते रहते हैं। कभी वृक्ष-वृक्ष की योनि धारण करनी पड़ती है, कभी पक्षियों की योनि में जाना पड़ता है। और कभी सर्प योनि में जन्म धारण करना पड़ता है —

केते बन्न बिरख हम चीने केते पसू उपाए।
केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए ॥
(नानक-बाणी गउड़ी-चेती सबद १७)

सारांश यह कि जिस भाँति जाल में मछली पकड़ी जाती है, उसी भाँति मनुष्य भी माया के जाल में जकड़ा रहता है —

जिउ मछी तिउ माणसा पवै अचिंता जालु ॥
(नानक-बाणी सिरी रागु असटपदी ४)

अंत में जीव साधन-सम्पन्न होकर परमात्मा में ही विलीन हो जाता है —

तुझ ते उपजहि तुझ माहि समावहि।
(नानक-बाणी मारू-सोलहे, १४)

मनुष्य

इस लोक की जीव-सृष्टि का मनुष्य ही सर्वाधिक चेतनशील प्राणी है। बड़े भाग्य से मानव जन्म होता है।

माणसु जनमु दुलंभ गुरमुखि पाइआ।

गुरु नानक देव ने मानव-जीवन की आयु को— गर्भावस्था बाल्यावस्था यौवनावस्था वृद्धावस्था अति वृद्धावस्था मरणावस्था में—विभाजित करके यह बतलाया है कि उसकी सारी आयु व्यर्थ ही नष्ट हो रही है।[1]

एक स्थल पर गुरु नानक देव ने सारी आयु का निचोड़ निम्नलिखित ढंग से रखा है 'मनुष्य की दस वर्ष तक तो बाल्यावस्था रहती है। बीस वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते उसकी रमण की अवस्था आ पहुँचती है। तीस वर्ष तक सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। चालीस वर्ष तक प्रौढ़ावस्था आ जाती है और पचास वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते पैर खिसकने लगते हैं। साठ वर्ष तक पहुँचते पहुँचते वृद्धावस्था आ जाती है। सत्तर वर्ष की अवस्था में मनुष्य मति हीन हो जाता है। अस्सी वर्ष में वह व्यवहार के योग्य नहीं रह जाता। नब्बे वर्ष में वह मसनद का सहारा ले बैठता है और सर्वथा शक्तिहीन हो जाने के कारण कोई वस्तु जानता नहीं।

दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुन्दरु कहावै ॥ 'आदि
(नानक-बाणी मलार की वार)

मनुष्य में परमात्मा के वियोग और मिलन के उपादान दोनों ही विद्यमान रहते हैं। कमल वृत्ति वाले मनुष्य परमात्मा से मिल जाते हैं और मेढक वृत्ति वाले विषय रूपी सिवार का ही भक्षण करते हैं —

बिमल मझारि बससि निरमल जल पदमनि जावल रे ॥आदि ॥
(नानक-बाणी मारू सबद ५)

---

१ नानक-बाणी [illegible] आदि विशेषतः देखें।

मनुष्य अपनी मनमुखी और आत्म वृत्तियों के कारण ही परमात्मा से विमुख हो जाता है —

जम सिउ मूड़ प्रीति मनु बेधिआ जनसिउ बादु रचाई ।

जम दरि बाधा ठउर न पावै अपुना कीआ कमाई ॥

(नानक-बाणी सोरठि, सबद १)

मनुष्य यद्यपि प्रकाश और अन्धकार वृत्ति का अपूर्व सम्मिश्रण है, पर गुरु नानक देव ने मनुष्य को आध्यात्मिक शक्ति जगाने के लिए स्थान-स्थान पर बड़े जोरदार शब्दों में कहा है कि मनुष्य की काया परमात्मा के रहने का निवासस्थान है —

काइआ नगरु नगर गड़ अंदरि ।

साचा वासा पुरि गगनंदरि ॥

(नानक-बाणी मारू सोलहे ११)

परमात्मा रूपी अमृत मनुष्य क घट के भीतर ही है । उसे बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं है —

मन रे थिरु रहु, मतु कत जाही जीउ ।

बाहरि ढूढत बहुतु दुखु पावहि घरि अमृतु घट माही जीउ ॥

(नानक-बाणी सोरठि सबद ८)

शरीर के भीतर ही परमात्मा की अपार ज्योति रखी हुई है —

काइआ महलु मंदरु घरु हरि का तिसु महि राखी जोति अपार ।

(नानक-बाणी मलार, सबद ५)

परमात्मा की अपार ज्योति का अपने में साक्षात्कार करना ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है ।

आत्मा

वास्तव में आत्मा में परमात्मा और परमात्मा मे आत्मा का निवास है । वेदान्तवादी इसी से आत्मा परमात्मा में अभिन्नता प्रदर्शित करते हैं । गुरु नानक देव ने भी आत्मा और परमात्मा में अभिन्नता प्रदर्शित की है —

आतम महि रामु राम महि आतमु ॥

(नानक-बाणी भैरउ असटपदी १)

आतम रामु, रामु है आतम

(नानक-बाणी मारू सोलहे १०)

इसी से आत्मा सत्, चित् आनन्द-स्वरूप अजर, अमर नित्य शाश्वत है ।

मनुष्य का परम पुरुषार्थ आत्मा-परमात्मा के एकत्व-दर्शन में ही है —

आतमा परमातमा एको करै ।

(नानक-बाणी धनासरी सबद ४)

आत्मोपलब्धि में गुरु का बहुत बड़ा हाथ है —

आतम महि राम, राम महि आतमु चीनसि गुर बीचारा।

(नानक-वाणी भैरउ असटपदी १)

आत्म-साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य निरंकार परमात्मा ही हो जाता है —

आतमु चीन्हि भए निरंकारी।

(नानक-वाणी, माझ असटपदी ८)

आत्मोपलब्धि के प्रभाव वर्णनातीत हैं।

मन

जिसके द्वारा मनन करने का कार्य सम्पादित किया जाय वह मन है। उपनिषदों श्रीमद्भगवद्गीता योगवासिष्ठ में मन के स्वरूप की व्याख्या मिलती है।[९] भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने मन को डाटने-फटकारने पुचकारने-पुचकारने की चेष्टा की है।

गुरु नानक देव ने मन की उत्पत्ति पंच-तत्त्वों से मानी है —

इहु मनु पंच ततु ते जनमा।

(नानक-वाणी मारू असटपदी ८)

गुरु नानक देव ने मन के दो रूप माने हैं—(१) ज्योतिर्मय अथवा शुद्ध-स्वरूप मन और (२) अहंकारमय अथवा माया से आच्छादित मन।

इस ज्योतिर्मय मन में आध्यात्मिक रत्न निहित हैं —

मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथु हीरु ॥

(नानक-वाणी सिरी रागु, सबद २१)

अहंकारमय मन हाथी, शाक्त और अत्यन्त दीवाना है। ऐसा मन माया के वनखण्ड में मोहित तथा हैरान होकर फिरता रहता है और काल के द्वारा इधर-उधर प्रेरित किया जाता रहता है —

मनु मैगलु साकतु देवाना।
बनखंडि माइआ मोहि हैराना ॥
इत उत जाहि काल के चापे ॥

(नानक-वाणी आसा रागु, असटपदी ८)

अहंकारयुक्त मन काम क्रोध लोभ अहंकार, खोटी बुद्धि तथा द्वैतभाव के वशीभूत है। बिना इसके मारे आध्यात्मिक पथ में उन्नति नहीं होती।

ना मनु मरै न कारजु होइ।
मनु वसि दूता दुरमति दोइ ॥

(नानक-वाणी गउड़ी गुआरेरी असटपदी ६)

९. देखिए डा० गुरु-ग्रंथ-दर्शन जयराम मिश्र, पृष्ठ [illegible]

जब तक मन नहीं मरता, माया भी नहीं मरती —

ना मनु मरै न माइआ मरै ।

(नानक-वाणी प्रभाती-बिभास असटपदी १)

सांसारिक विषयों में वैराग्य भावना, दुष्ट जनों की संगति का त्याग सत्याचरण गुरु कृपा द्वारा अहंकारयुक्त मन ज्योतिर्मय मन के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। मन-निरोध में अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होता है। गुरु नानक देव ने मन-निरोध के परिणामों का विशद चित्रण किया है— 'हरि के बिना मेरा मन कैसे धैर्य धारण कर सकता है ? करोड़ों जन्मों के दुखों का नाश हो गया। परमात्मा ने सत्य को दृढ़ करा दिया और हमारी रक्षा कर ली। क्रोध समाप्त हो गया। अहंकार और ममत्व जल कर भस्म हो गए। शाश्वत और सदैव रहने वाले प्रेम की प्राप्ति हो गई। मन अत्यंत अनुरागी और निर्मल हो गया। मन को मार कर निमल पद को पहचान लिया और हरि रस में सराबोर हो गया। मन से मन मान गया जिससे वह शान्त और निश्चल हो गया उसकी सारी दौड़ समाप्त हो गई।' —

हरि बिनु किउ धीरा मेरी माई ।

तह ही मनु जह ही रखिआ ऐसी गुरमति पाई ॥

(नानक-वाणी सारंग असटपदी १)

हरि-प्राप्ति पथ

जो दिव्य ज्योति परमात्मा में हमारे अन्तगत रही है, उसी का साक्षात्कार करना उसी के साथ मिलकर एक हो जाना, मानव जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य है। तात्पर्य यह कि जिस निरंकार में हम उपजे हैं और जो सदैव हमारे साथ रम रहा है, किन्तु अज्ञानता और मोहवश जिसे हम नहीं समझ पाते उसी के साथ साधनों के बल पर एक हो जाना ही हरि-प्राप्ति-पथ है। मनुष्य की मानसिक अवस्था संस्कार, योग्यता क्षमता आदि को ध्यान में रखते हुए परमात्म-साक्षात्कार के भिन्न भिन्न मार्ग निकाले गए। मोटे रूप से हरि प्राप्ति के चार प्रधान मार्ग हैं —(क) कर्ममार्ग (ख) योगमार्ग (ग) ज्ञानमार्ग और (घ) भक्तिमार्ग।

(क) कर्ममार्ग

कर्म 'कृ' धातु से बना है जिसका अर्थ करना होता है। व्यष्टि एवं समष्टि के समस्त क्रिया-कलाप कर्म के अन्तगत रखे जा सकते हैं। व्यष्टि कर्म व्यक्तिपरक है। मोटे रूप में इसके तीन भेद हैं शारीरिक कर्म मानसिक कर्म और आध्यात्मिक कर्म। मनुष्य के शरीर के समस्त व्यापार,—हँसना बोलना उठना बैठना गमन करना, देखना सुनना खाना-पीना साँस लेना आदि शारीरिक कर्म के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। मनुष्य का सोचना स्मरण करना तर्क वितर्क करना कल्पना करना आदि मानसिक कर्म के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। समस्त जड़ चेतन के अन्तर्गत एक अविनाशी सत्ता अथवा सत चित् आनन्द ब्रह्म की अनुभूति के निमित्त किए कर्म आध्यात्मिक कर्म हैं। समस्त मानव जाति के महान् पुरुषों द्वारा की गई साधनाएं

अपने-अपने पूर्व जन्मों के किए हुए कर्मों से निर्मित स्वभाव (बुरे अथवा भले कर्म) द्वारा हम चलते जाते हैं'—

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंतु हरे॥
(नानक-वाणी मारू सबद १)

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर संकेत किया है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है, किन्तु फल भोगने में परतन्त्र है। उनके विचार से मनुष्य यदि अपने किए हुए शुभ कर्मों का सुख भोगता है अथवा अशुभ कर्मों का दुख भोगता है, तो उसे किसी को दोष नहीं देना चाहिये क्योंकि वह स्वयं कर्मों को करने वाला है। अतः यदि उसे अच्छे कर्मों का सुख मिलता है अथवा बुरे कर्मों का दुःख मिलता है, तो उसे काल-कर्म पर मिथ्या दोष नहीं मानना चाहिये बल्कि उसे उन कर्मों के फल को भोगना चाहिये —

सुखु दुखु पुरब जनम के कीए
सो जाणै जिनि दातै दीए॥
किस कउ दोसु देहि तू प्राणी सहु अपणा कीआ कराराहे।
(नानक-वाणी मारू सोलहे १)

यह भावना कि कर्म बिना किसी चेतन-शक्ति के सहयोग से स्वतः फल देते हैं, नितान्त भ्रामक और त्रुटिपूर्ण है। गुरु नानक के अनुसार सारे कर्म-धर्म परमात्मा के हाथ में हैं। वह परमात्मा अत्यन्त निश्चिन्त है और उसका भण्डार अनन्त है।

करमु धरमु सचु हाथि तुमारा।
वेपरवाह अखुट भंडारा॥
(नानक-वाणी मारू-सोलहे १९)

कर्म दो प्रकार के हैं—(१) बन्धन प्रद कर्म और (२) मोक्षप्रद कर्म। बन्धन-प्रद कर्म वे हैं जो अहंकार से किए जाते हैं और मोक्षप्रद कर्म वे हैं जो निष्काम-भावना से परमात्मा की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं।

बन्धन-प्रद कर्मों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है[१] —

(१) कर्म काण्ड युक्त कर्म (२) अहंकारयुक्त कर्म और (३) त्रैगुणी विविध कर्म।

गुरु नानक देव ने कर्मकाण्डयुक्त कर्मों का विस्तृत ब्योरा निम्नलिखित पद में दिया है —

बाचहि पुसतक वेद पुराना।

...

पाखंड धरमु प्रीति नही हरि सिउ गुर सबद महारसु पाइआ॥
(गुरु नानक-वाणी मारू-सोलहे, २२)

अहंभाव में पड़कर 'मैंपन' की भावना से ही अहंकारयुक्त कर्मों के सम्पादन होते हैं। अहंकारी व्यक्ति सदैव यही सोचता है कि "मैंने अमुक कर्म किया है अमुक करूँगा" आदि। ऐसे अहंकारी पंडितों को गुरु नानक देव ने चेतावनी दी है 'कर्मकाण्डी पण्डित अहंभावना

१. गुरमति अविष्कारक करम फिलासफी रचयिता सिंह गुरुबचन (विनोदिक सिंह द्वारा लिखित) भाग १

उदाहरणार्थ —

उलटिओ कमलु ब्रहमु बीचारि।
अंमृत धार गगनि दस दुआरि॥
(नानक-बाणी गउड़ी सबद ८)

अनहदु बाणि रहे लिव लाई।

तजि हठ सोभा एको जाता॥
(नानक-बाणी रामकली असटपदी १)

अनहदो अनहदु वाजै रुण झुणकारे राम।

नानक नामि रते बैरागी अनहद रुण झुणकारे॥
(नानक-बाणी आसा छंत २)

इस स्थल पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि योग के प्रति गुरु नानक देव की अपार श्रद्धा अवश्य है, पर उन्हें हठयोग की सारी क्रियाएँ मान्य नहीं। बिना भक्ति के हठयोग त्याज्य है। उनकी दृष्टि में प्राणायाम नेवली आदि क्रियाएँ बिना भक्ति के शारीरिक व्यायाम मात्र हैं। भक्तिहीन योग निष्प्राण और तत्वहीन है —

आसणि पवनु सिंघासनु कीजै।
निउली भरम खटु करम करीजै॥
राम नाम बिनु बिरथा सासु लीजै॥
(नानक-बाणी रामकली, असटपदी ५)

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर वेशधारी योगियों की तीव्र भर्त्सना की है[1]। उन्होंने कुछ आध्यात्मिक रूपकों द्वारा स्थान-स्थान पर वास्तविक योग के प्रति अपने उदात्त विचार प्रकट किए हैं। उदाहरणार्थ —

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति॥
(नानक-बाणी जपु जी पउड़ी २८)

'शून्य' शब्द का योग में बहुत महत्व है। गुरु नानक देव के अनुसार 'शून्य' वह तत्त्व है जो समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है। इस शून्य में मन नियोजित करना उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा योग है।[2] गुरु नानक देव का शून्य 'कुछ नहीं है' वाला शून्य नहीं है, बल्कि उनका शून्य वह शून्य है जो सबभूतान्तरात्मा है, घटघटव्यापी है और निराकार ज्योति के रूप में सभी के अन्तर्गत व्याप्त है।

गुरु नानक देव ने 'दसम द्वार' का भी स्थान स्थान पर वर्णन किया है। हमारे अन्तःकरण में जहाँ निरंकारी ज्योति का निवास है, वही 'दसम द्वार' है। किन्तु 'दसम द्वार' के सिलसिले में दो बातें उल्लेखनीय हैं। पहली तो यह कि हठयोग के अनुसार तो योगी दसम द्वार में पहुँचने

१. नानक बाणी, रामकली, असटपदी १
२. नानक-बाणी 'सुंन सुंनि' आदि, रामकली, सिध गोसटि, ५१, ५२ और ५३ पउड़ियाँ।

किन्तु हम शेरसिंह जी के चारो तर्कों से सहमत नही है। गुरु नानक देव ने स्थान स्थान पर जीव ब्रह्म की एकता स्वीकार की है। उदाहरणार्थ —

सागर महि बूँद बूँद महि सागरु ।

(नानक-बाणी रामकली सबद १)

आतम महि रामु राम महि आतम चीनसि गुर बीचारा ।

(नानक बाणी भैरउ असटपदी १)

इतना ही नहीं उन्होंने आत्मा-परमात्मा की एकता की अनुभूति के साधन पर भी बल दिया है—

आतमा परातमा एको करै ।

अंतरि दुबिधा अंतरि मरै ॥

(नानक-बाणी धनासरी सबद ४)

गुरु नानक देव के पदों में ब्रह्म और सृष्टि की एकता भी स्थापित की है —

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥

(नानक-बाणी आसा की वार)

अर्थात् "परमात्मा ने अपने आपको सृष्टि के रूप में साजा है और आप ही ने उसका नाम रचा है।" नाना नाम-रूप रंग-वर्ण प्रभु के ही स्वरूप हैं।

गुरु नानक देव की बाणी में एकाध स्थल पर सोऽहं की सम्भावना भी पाई जाती है—

ततु निरंजन जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जीउ ॥

(नानक-बाणी सोरठि सबद ११)

नानक सोहं हंसा जपु जापहि त्रिभवण तिसु समाहि ॥

(नानक-बाणी, माझ की वार)

शेरसिंह का चौथा तर्क कि शंकराचार्य मे भक्ति नही पायी जाती भी त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने 'चर्पटपंजरिका' मे भक्तिभाव के ऊपर बहुत बल दिया है —

"भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।"

गुरु नानक की बाणी मे ज्ञान प्राप्ति के निम्नलिखित साधन प्राप्त होते हैं —

(१) विवेक नानक बाणी मे कदाचित् ही कोई पृष्ठ ऐसा हो जिसमे विवेक के प्रति हमारी आस्था न उत्पन्न की गई हो। इसी विवेक से साधक ज्ञानमार्ग म आगे बढ़ता है।

(२) वैराग्य सांसारिक विषयो में वैराग्य-भावना ज्ञान-प्राप्ति का साधन है। धन-सम्पत्ति पर ऐश्वर्य नाम यश सभी के प्रति गुरु नानक देव ने वैराग्य भावना प्रदर्शित की है। गुरु नानक देव ने सांसारिक संबंधों के प्रति वैराग्य भावना दिखाते हुए कहा है कि सभी संबंध नश्वर है और साथ निभाने वाले नहीं है।[१]

(३) श्रद्धा गुरु नानक के पदों में श्रद्धा विश्वास और भक्ति की जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, वह बहुत कम ग्रंथों म पायी जाती है। इसी श्रद्धा के बल पर साधक अध्यात्म के सभी

१. नानक-बाणी, धनासरी असटपदी १

पैरों पर सरसतापूर्वक आगे बढ़ सकता है। उदाहरणार्थ गुरु के प्रति गुरु नानक देव ने इसी प्रकार की श्रद्धा प्रदर्शित की है —

(४) श्रवण ज्ञान-प्राप्ति के लिए श्रवण परमावश्यक साधन है। गुरु नानक देव ने 'जपु जी' की ८वीं ९वीं १ वीं पउड़ियों में श्रवण के माहात्म्य का विशद वर्णन किया है।

(५) मनन एवं निदिध्यासन श्रवण के आगे की स्थिति का नाम मनन है। अद्वितीय ब्रह्म का तदाकार भाव से चिन्तन ही मनन है। व्यवधान रहित ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिति ही निदिध्यासन है। गुरु नानक देव ने निदिध्यासन का पृथक नाम नहीं दिया है। पर मनन की परिपक्वावस्था निदिध्यासन का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार निदिध्यासन का स्वरूप मनन ही में अन्तर्हित है। 'जपु जी' की १२वीं १३वीं १४वीं और १५वीं पउड़ियों में मनन की महत्ता का हृदयग्राही चित्रण प्राप्त होता है।

(६) अहंकार-त्याग अहंकार का विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है।

(७) गुरु-कृपा एवं परमात्म-कृपा गुरु नानक देव ने ज्ञान के सभी साधनों में गुरु-कृपा एवं परमात्म-कृपा को सर्वोपरि साधन माना है। बीज मंत्र अथवा मूल मंत्र में ही इसकी महत्ता प्रदर्शित भी की गई है— गुर प्रसादि ।"[८] गुरु नानक देव जी का कथन है कि गुरु-कृपा से जब यह अद्वैत बुद्धि और ब्रह्ममयी दृष्टि साधक को प्राप्त होती है, तब वह सत्य-स्वरूप परमात्मा में समाहित हो जाता है —

गुर परसादी गुरमति खोई। जह देखा तह एको सोइ ॥

(नानक-वाणी आसा सबद ८)

ज्ञान-प्राप्ति परमात्मा की असीम कृपा से ही संभव है —

गिआनु न गलीई ढूढीऐ, कथना करड़ा सारु।

करमि मिलै ता पाईऐ, होर हिकमति हुकमु खुआरु ॥

(नानक-वाणी आसा की वार)

ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् साधक परमात्मा का स्वरूप हो जाता है—

जिनी आतम चीनिआ परमातमु सोई ॥

(नानक-वाणी आसा असटपदी २)

गुरु नानक देव ने बाह्यत्याग पर कभी नहीं बल दिया। उन्होंने गृहस्थ धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। नाम दान तथा स्नान पर श्रद्धा भाव से आरूढ़ रहने पर ईश्वर की भक्ति अवश्य जगती है —

इकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे।

नामु दानु इसनानु दृड़ हरि भगति सु जागे।

(नानक-वाणी आसा काफी असटपदी १४)

---

८. नानक-वाणी, बीजमंत्र

(ख) भक्तिमार्ग

भक्ति का सिद्धान्त बहुत ही प्राचीन है। उपनिषदों श्रीमद्भगवद्गीता श्रीमद्भागवत नारद-भक्ति-सूत्र आदि ग्रन्थों में भक्ति की विशद व्याख्या की गई है।[1] मोटे रूप से भक्ति के दो प्रधान भेद हैं—(१) वैधी भक्ति (२) रागात्मिका भक्ति अथवा प्रेमा भक्ति। वैधी भक्ति अनेक विधि-विधानों से युक्त होती है। इसका उद्देश्य रागात्मिका भक्ति को उद्दीप्त करना है। अतः परमेश्वर में निरतिशय और निर्हेतुक प्रेम ही रागात्मिका भक्ति है। तीव्र श्रद्धालु साधकों के लिए रागात्मिका भक्ति है।

भक्ति की अबाध मंदाकिनी गुरु नानक के ग्रन्थ प्रत्येक पद में प्रवाहित हुई है। गुरु नानक द्वारा निरूपित सभी पथ—कर्ममार्ग योगमार्ग और ज्ञानमार्ग भक्ति की धारा से सिंचित हैं। बिना परमात्मा की रागात्मिका भक्ति के कर्म पाखण्डपूर्ण और आडम्बरयुक्त हैं, ज्ञान बंधु-जाल मात्र है और योग शरीर का व्यायाम मात्र है।

गुरु नानक देव ने स्थान स्थान पर वैधी भक्ति का खण्डन किया है। उन्होंने वैधी भक्ति के विधि-विधानों—तिलक माला आदि—की निस्सारता स्थान स्थान पर प्रदर्शित की है—

> गलि माला तिलकु ललाटं। दुइ धोती बसत्र कपाटं॥
> जे जाणसि ब्रहमं करमं। सभि फोकट निसचउ करमं॥
> (नानक-वाणी आसा की वार)

प्रेमा भक्ति में मिलन के आनन्द और विरह की तड़पन—दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। गुरु नानक देव ने विरह की तड़पन का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है—

> नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खटु मासा।
> (नानक-वाणी तुखारी बारहमाहा पउड़ी १२)

गुरु नानक देव का 'एक घड़ी खट मासा' मीराबाई के 'भई छमासी रैन' की स्मृति दिलाता है।

उन्होंने एक स्थान पर कहा है—

> वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह।
> भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि॥
> (नानक-वाणी मलार की वार)

मीराबाई के 'कलेजे की करक' भी भोला वैद्य नहीं जान सका था।

गुरु नानक की प्रेमा भक्ति प्रेम के अनेक माध्यमों द्वारा व्यक्त हुई है—

(१) अपने को पुत्र तथा परमात्मा को पिता समझ कर उपासना करना।

(२) स्वामी-सेवक भाव की आराधना।

(३) परमात्मा को अपना सुहृद और सखा समझना।

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए श्री कृष्णचन्द्र ... बलराम मिश्र, पृष्ठ ...

(४) अपने को भिखारी तथा परमात्मा को दाता समझना।
(५) अपने को पत्नी तथा परमात्मा को पति समझना।[१]

परमात्मा के बिसरण से भयानक कष्ट होते हैं। परमात्मा की बिस्मृति भयानक रोग है —

इकु तिसु पिआरा बीसरै रोग बडा मन माहि ॥
(नानक-बाणी सिरी रागु सबद २)

वैसे तो भक्ति के अनेक उपकरण गुरु नानक द्वारा वर्णित हैं, पर जिनके ऊपर उनकी व्यापक दृष्टि गई है, वे निम्नलिखित हैं —

(१) सद्गुरु की प्राप्ति और उसकी कृपा तथा उपदेश।
(२) नाम।
(३) सत्संगति तथा साधु-संग।
(४) परमात्मा का भय और उसका हुकम
(५) दृढ़ विश्वास।
(६) आत्म-समर्पण भाव।
(७) दैन्य भाव
(८) परमात्मा का स्मरण और कीर्तन
(९) भगवत्-कृपा।[२]

प्रेमा भक्ति के उपर्युक्त उपकरणों के आधार पर परमात्मा का शाश्वत मिलन होता है।

नानक-वाणी में सद्गुरु और नाम

(अ) सद्गुरु

भारतीय धर्म-समाज में गुरु का स्थान बड़ा उच्च, गौरवपूर्ण और समादृत रहा है। उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीता में गुरु की अपूर्व महत्ता मानी गयी है। तंत्र-साधकों योगियों नाथपंथियों सहजयानियों वज्रयानियों तथा परवर्ती संतों ने गुरु की महिमा का अपार गुणगान किया है।

गुरु नानक की दृष्टि में सद्गुरु का स्थान धार्मिक साधना में सर्वोपरि है। मूलमंत्र में 'गुरि प्रसादि' से यह बात सिद्ध हो जाती है। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सद्गुरु की आवश्यकता पर गुरु नानक देव के पश्चात् अन्य गुरुओं के द्वारा बल दिया गया पर यह धारणा निर्मूल और निराधार है। गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर गुरु की महत्ता स्वीकार करके उसकी महिमा का गुणगान किया है। यथा रागु —

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ।
एहु जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए श्रीगुरु ग्रंथ दर्शन, जयराम मिश्र, पृष्ठ ९०–९१७
२. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए। श्रीगुरु ग्रंथ दर्शन, जयराम मिश्र, पृष्ठ २१२-२१९

सतिगुर जेवडु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ ।
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ही विचहु आपु गवाइआ ।
जिनि सचो सचु बुझाइआ । (नानक वाणी आसा की वार)

गुरु नानक देव ने कर्ममार्ग योगमार्ग ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग सभी मे गुरु का महत्व माना है। उन्होंने अपनी वाणी मे स्थान-स्थान पर सद्गुरु और परमात्मा में अभिन्नता दिखाई है। उदाहरणार्थ —

ऐसा हमरा सखा सहाई ।
गुर हरि मिलिआ भगति दृढाई ॥
(नानक-वाणी आसा, सबद २४)

करि अपराध सरणि हम आइआ ।
गुर हरि भेटे पुरबि कमाइआ ॥
(नानक-वाणी रामकली असटपदी ४)

किन्तु गुरु नानक देव ने असद् गुरु की तीव्र भर्त्सना की है। उनका कथन है कि ऐसे असद्गुरु झूठ बोलते हैं और हराम का खाते हैं। उनके स्वयं तो एक आचरण है, फिर भी दूसरों को उपदेश देते हैं। ऐसा गुरु स्वयं तो नष्ट ही होता है, पर अपने साथ ही दूसरों को भी नष्ट करता है। ऐसे असद् गुरु संसार मे अगुआ (गुरु) के नाम से प्रसिद्ध होते हैं"—

कूड बोलि मुरदारु खाइ ।
अवरी नो समझावणि जाइ ॥
मुठा आपि मुहाए साथै ।
नानक ऐसा आगू जापै ॥
(नानक-वाणी माझ की वार)

गुरु सेवा प्राप्त होने वाले फल असंख्य हैं। उनकी गणना की नहीं जा सकती। इन फलो मे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही सर्वोपरि है —

कहु नानक गुरि ब्रहमु दिखाइआ ।
मरता जाता नदरि न आइआ ॥
(नानक-वाणी गउड़ी, सबद ४)

(आ) नाम

मध्ययुग के लगभग सभी सन्तों मे नाम के प्रति अपूर्व श्रद्धा दिखलायी है। इस युग के सगुण और निर्गुण दोनो प्रकार के संतो मे नाम की महिमा खूब गाई है। नाम-माहात्म्य भागवत आदि ग्रन्थ सभी पुराणो मे पाया जाता है पर मध्ययुग के भक्तों मे इसका चरम विकास हुआ है।[१] कबीर दरियादेव दूलनदास, सहजोबाई, गरीबदास पलटू साहब आदि मे

१. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११

नाम के प्रति अपनी असीम श्रद्धा, भक्ति और विश्वास अभिव्यक्त किया है। सगुणवादी कवियों—सूरदास तुलसीदास आदि—में भी यही विश्वास पाया जाता है।

गुरु नानक देव ने नाम के प्रति अपार श्रद्धा अभिव्यक्त की है। उनकी दृष्टि में नाम नामी का प्रतीक है। सतिनामु ही कर्तापुरुष एक और ओंकार है। सारी सृष्टि की रचना नाम ही द्वारा हुई है। नाम ही समस्त स्थान बना हुआ है। अतः नाम के बिना स्थान का कोई महत्व नहीं है।

जेता कीता तेता नाउ। विणु नावै नाही को थाउ ॥

(नानक-वाणी जपु जी पउड़ी १९)

गुरु नानक की दृष्टि में नाम ही जप तप संयम का सार है।[१] लाखों करोड़ों कर्म और तपस्याएं नाम के सदृश नहीं।[२] सच्चे नाम की तिल मात्र बड़ाई भी वर्णनातीत है। चाहे कथन करते-करते थक भले ही जायें परन्तु नाम की कीमत का वर्णन नहीं हो सकता।

साचे नाम की तिलु वडिआई। आखि थके कीमति नही पाई ॥

(नानक-वाणी रागु आसा सबद २)

नामविहीन यज्ञ होम पुण्य, तप पूजा आदि सब व्यर्थ हैं। इनसे शरीर दुःखी रहता है और नित्य दुःख सहना पड़ता है। नाम के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती—

ऐसे अंधे गुरु एवं उनके शिष्य को ठौर-ठिकाना नहीं प्राप्त हो सकता—

गुर बिना का अगुला थेस नाही ठाउ।

(नानक-वाणी, सिरी रागु, असटपदी ८)

अंधा गुरु जो दूसरों को राह दिखाता है, सभी को नष्ट करता है—

नानक अंधा होइ कै दसे राहै सभसु मुहाए साथ।

(नानक-वाणी, माझ की वार)

असद्गुरु से बचने के लिए इसीलिए गुरु नानक देव ने सद्गुरु के लक्षण स्थान-स्थान पर बताए हैं—

सो गुरु करउ जि साचु द्रिड़ावै।
अकथु कथावै सबदि मिलावै ॥

(नानक-वाणी धनासरी, असटपदी २)

गुरु नानक के अनुसार गुरु और शिष्यों का संबंध समुद्र और नदियों के प्रेम के समान अन्योन्याश्रित है—

गुरु समुंदु नदी सभ सिखी ॥

(नानक-वाणी, माझ की वार)

---

१. नानक-वाणी करिनिथि राम राहु रीथे रखे धुरु जपु तपु संजमु धारा ॥
आसा-छोकी १

२. नानक-वाणी हठिमासि सुखि न हुवई के लख कोटी करम कमाइ ॥ आदि
सिरी रागु, असटपदी १४

गुरु नानक देव ने गुरु के 'सबद' की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है। 'सबद' का तात्पर्य 'वचन', 'उपदेश अथवा शिक्षा' आदि से है। गुरु नानक देव का कथन है कि 'जो व्यक्ति गुरु के सबद में मरता है, वह ऐसा मरता है कि उसे फिर मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिना गुरु के सबद के सारा जगत् भटक कर इधर-उधर घूमता फिरता है। बार बार मरता है और जन्म लेता है'—

सबदि मरै सो मरि रहै फिरि मरै न दूजी बार।
सबदै ही ते पाईऐ हरिनामे लगै पिआरु॥
बिनु सबदै जगु भूला फिरै मरि जनमै वारोवार॥
(नानक-वाणी, सिरी रागु, असटपदी ७)

सद्गुरु के बिना आत्मसमर्पण भाव किए आध्यात्मिक प्रगति नहीं होती। सद्गुरु में आत्मसमर्पण भाव मौखिक नहीं होना चाहिए, बल्कि अपना तन और मन गुरु को बेच देना चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो सिर के साथ मन भी सौंप देना चाहिए।

तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि॥
(नानक-वाणी सिरी रागु सबद १७)

बड़े भाग्य से गुरु की सेवा का अवसर प्राप्त होता है। गुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए गुरु की सेवा परमात्मा की ही सेवा है।

वडै भागि गुरु सेवहि अपुना भेदु नाही गुरदेव मुरार॥
(नानक-वाणी पूरबी असटपदी २)

जपन होम पूंन तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै।
राम नाम बिनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरमुखि लहै॥
(नानक-वाणी भैरउ सबद ८)

इसी प्रकार राम नाम के बिना न तृप्ति होती है और न शान्ति है। राम नाम के बिना मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

नानक बिनु नावै मोखु करे न होवै देखहु रिदै बीचारे।
(नानक-वाणी रामकली सिध गोसटि पउड़ी ६८)

गुरु नानक ने परमात्मा के 'निर्गुणी' और 'सगुणी' दोनों नामों के प्रयोग अपनी वाणी में किए हैं। 'पारब्रह्म' 'निरंकार' 'अयोनि' 'अकालमूर्ति' 'स्वयंभू' 'निरंजन' आदि निर्गुणी नाम प्रयुक्त हुए हैं। सगुणी नामों में 'माधव' 'मोहन' 'राम' 'मुरारी' 'केशव' 'गोविन्द' 'हरि' आदि नामों के व्यवहार हुए हैं। किन्तु इनका अर्थ 'अवतारवाद' के अर्थ में नहीं है। उन्होंने कहीं-कहीं 'अल्लाह' 'कादिर' 'करीम' 'रहीम' आदि मुसलमानी नामों के प्रयोग भी किए हैं।

अलाहु अलखु अगंम कादरु करणहारु करीमु।
सभ दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु॥
(नानक-वाणी सिरी रागु, असटपदी १७)

किन्तु यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी है कि गुरु नानक देव की वृत्ति प्रायः हरि' और 'राम' नाम में सबसे अधिक रमी है।

'वाहिगुरु' नाम सिक्खों में बहुत प्रचलित है। खालसा-निर्माण के साथ वाहिगुरु' नाम अधिक व्यापक हो गया और यह परमात्मा का विशिष्ट नाम समझा जाने लगा। परन्तु गुरु नानक देव का कदाचित् यह तात्पर्य नहीं था कि 'वाहिगुरु' को "परमात्मा" का विशिष्ट नाम बतलाया जाय। वास्तव में 'वहिगुरु' नाम म नाम की उतनी अधिक भावना नहीं है जितनी की आश्चर्यमयी अनुभूति की।[१] किसी आश्चर्यमयी वस्तु की अनुभूति में 'वाह-वाह' का निकलना अवसम्भावी है। इस प्रकार 'वाहिगुरु' बिलकुल नवीन शब्द है और यह सिक्ख की आन्तरिक अवस्था का प्रतीक है।

गुरु नानक की वाणी को ध्यान पूर्वक देखने से उसमे नाम-जप के तीन प्रकार मिलते हैं—१ साधारण जप २ अजपा जप ३ लिव जप।

(१) साधारण जप जिह्वा से होता है। जहाँ जहाँ जप की चर्चा की गई है, वहाँ वहाँ जिह्वा जप स अभिप्राय है। पहले पहल नाम-अभ्यास साधना में इसी जप का सहारा लेना पड़ता है। साधारण जप ही अजपा' एवं लिव' जप की नींव है।

(२) अजपा जप जब साधारण-जप अथवा जिह्वा-जप का पूरा पूरा अभ्यास हो जाता है, तब अजपा-जप' प्रारम होता है। अजपा जप में जिह्वा का काम समाप्त हो जाता है और स्वास-प्रश्वास की संचालन-गति के आधार पर जप प्रारंभ हो जाता है। गुरु नानक देव ने इस जप पर बहुत अधिक बल दिया है —

अजपा जापु जपै मुखि नाम ॥

(नानक-वाणी बिलावलु, थिती पउड़ी १६)

(३) लिव जप लिव-जप जप साधना का अन्तिम सोपान है। लिव जप में वृत्ति द्वारा जप होने लगता है। इस जप म शरीर, जिह्वा और मन एकनिष्ठ हो जाते हैं। यह जप अनुभूति मात्र है—

गुरमुखि जागि रहे दिन राती।
साचे की लिव गुरमति जाती ॥

(नानक-वाणी मारू, सोलहे ५)

यह जप परम दुर्लभ है और करोड़ों में किसी विरले ही साधक को प्राप्त होता है।

नाम-प्राप्ति के अनन्त फल हैं। सांसारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। संक्षेप में यह कि नामजप स विस्माद' अवस्था की प्राप्ति होती है। यह 'विस्माद' अवस्था अद्वैत स्थिति की द्योतिका है। इस अवस्था में ब्रह्म जीव और सृष्टि सभी 'विस्माद' हो जाते हैं। प्रभी के बीच एकता स्थापित हो जाती है। गुरु नानक देव को वेद नाम जीव जीवों को वे भव अनेक रूप रंग पवन पानी, अग्नि और अग्नि के अनेकात्मक वेश, खण्ड ब्रह्माण्ड संयोग-वियोग भूख-भोग सिफ़ति-सलाह, राह-कुराह, नेड़-दूरि, आदि म विस्माद — आश्चर्य दिखलाई पड़ता है।—

१. गुरमति दरशन: शेरसिंह, पृ० ९९१

गुरु नानक देव ने गुरु के 'सबद' की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है। 'सबद' का तात्पर्य 'वचन' 'उपदेश' अथवा शिक्षा आदि से है। गुरु नानक देव का कथन है कि 'जो व्यक्ति गुरु के सबद म मरता है वह ऐसा मरता है कि उसे फिर मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिना गुरु के सबद' के सारा जगत् भटक कर इधर-उधर घूमता फिरता है। बार बार मरता है और जन्म लेता है —

> सबदि मरै सो मरि रहै फिरि मर न दूजी बार।
> सबदै ही ते पाईऐ हरिनामे लगै पिआरु॥
> बिनु सबद जगु भूला फिर मरि जनमै वारोवार॥
>
> (नानक-वाणी, सिरी रागु, असटपदी ८)

सद्गुरु मे बिना आत्मसमर्पण भाव किए आध्यात्मिक प्रगति नही होती। सद्गुरु मे आत्मसमर्पण भाव मौखिक नही होना चाहिए, बल्कि अपना तन और मन गुरु को बेच देना चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो सिर के साथ मन भी सौंप देना चाहिए।

> तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिर नालि॥
>
> (नानक-वाणी सिरी रागु सबद १७)

बड़े भाग्य से गुरु की सेवा का अवसर प्राप्त होता है। गुरु और परमात्मा मे कोई अन्तर नही है। इसलिए गुरु की सेवा परमात्मा की ही सेवा है।

> वडै भाग गुर सेवहि अपुना भेदु नाही गुरदेव मुरार॥
>
> (नानक-वाणी गूजरी असटपदी २)

> जपन होम पुंन तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै।
> राम नाम बिनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरमुखि लहै॥
>
> (नानक-वाणी भैरउ सबद ८)

इसी प्रकार राम नाम के बिना न तृप्ति होती है और न शान्ति है। राम नाम के बिना मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

> नानक बिनु नावै मोखु कदे न होवै देखहु रिदै बीचारे।
>
> (नानक-वाणी रामकली सिध गोसटि पउड़ी ६८)

गुरु नानक ने परमात्मा के 'निर्गुणी' और 'सगुणी' दोनो नामो के प्रयोग अपनी वाणी मे किए हैं। 'पारब्रह्म' 'निरंकार' 'अयोनि अकालमूर्ति' स्वयंभु' 'निरंजन' आदि 'निर्गुणी' नाम प्रयुक्त हुए हैं। सगुणी नामो म 'माधव' 'मोहन' 'राम' 'मुरारी' 'केशव' गोविन्द' 'हरि' आदि नामो के व्यवहार हुए हैं। किन्तु इनका अर्थ 'अवतारवाद' के अर्थ म नही है। उन्होंने कहीं-कहीं अलाह कादिर' 'करीम' रहीम आदि मुसलमानी नामो के प्रयोग भी किए हैं।

> अलाहु अलखु अगंम कादरु करणहारु करीमु।
> सभ दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु॥
>
> (नानक-वाणी सिरी रागु, असटपदी १७)

किन्तु यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी है कि गुरु नानक देव की वृत्ति प्रायः 'हरि' और 'राम' नाम में सबसे अधिक रमी है।

'वाहिगुरु' नाम सिक्खों में बहुत प्रचलित है। खालसा-निर्माण के साथ 'वाहिगुरु' नाम अधिक व्यापक हो गया और यह परमात्मा का विशिष्ट नाम समझा जाने लगा। परन्तु गुरु नानक देव का कदाचित् यह तात्पर्य नहीं था कि 'वाहिगुरु' को 'परमात्मा' का विशिष्ट नाम बताया जाय। वास्तव में 'वाहिगुरु' नाम में नाम की उतनी अधिक भावना नहीं है जितनी की आश्चर्यमयी अनुभूति की।[1] किसी आश्चर्यमयी वस्तु की अनुभूति में 'वाह-वाह' का निकलना स्वाभाविक है। इस प्रकार 'वाहिगुरु' बिलकुल नवीन शब्द है और यह सिक्खों की आन्तरिक अवस्था का प्रतीक है।

गुरु नानक की वाणी का ध्यान पूर्वक देखने से उसमें नाम जप के तीन प्रकार मिलते हैं—१ साधारण जप २ अजपा जप ३ निज जप।

(१) साधारण जप — जिह्वा से होता है। जहाँ जहाँ जप की चर्चा की गई है, वहाँ वहाँ जिह्वा जप से अभिप्राय है। प्रारम्भ में नाम-अभ्यास साधना में इसी जप का सहारा लेना पड़ता है। साधारण जप ही अजपा एवं निज जप की नींव है।

(२) अजपा जप — जब साधारण-जप अथवा जिह्वा-जप का पूरा पूरा अभ्यास हो जाता है, तब 'अजपा-जप' प्रारम्भ होता है। अजपा जप में जिह्वा का काम समाप्त हो जाता है और श्वास-प्रश्वास की संचालन-शक्ति के आधार पर जप प्रारंभ हो जाता है। गुरु नानक देव ने इस जप पर बहुत अधिक बल दिया है —

अजपा जापु जपै मुखि नाम॥

(नानक-वाणी बिलावलु, थिती पउड़ी १६)

(३) निज जप — निज-जप जप साधना का अन्तिम सोपान है। निज जप में धुनि द्वारा जप होने लगता है। इस जप में शरीर जिह्वा और मन एकनिष्ठ हो जाते हैं। यह जप अनुभूति मात्र है—

गुरमुखि जागि रहै दिन राती।
साचे की लिव गुरमति जाती॥

(नानक-वाणी, माझ, माझ ७)

यह जप परम दुर्लभ है और करोड़ों में किसी विरले ही साधक को प्राप्त होता है।

नाम-प्राप्ति के अनन्त फल हैं। सांसारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। सबसे मुख्य है कि नामजप से 'विसमाद' अवस्था की प्राप्ति होती है। यह 'विसमाद' अवस्था सहज स्थिति की द्योतिका है। इस अवस्था में ब्रह्म, जीव और सृष्टि सभी 'विसमाद' हो जाते हैं। इन्हीं के बीच एकता स्थापित हो जाती है। गुरु नानक देव को वेद, नाद, जीव जंतुओं के भेद, अनेक रूप रंग, पवन पानी, अग्नि और अग्नि के अनेकात्मक खेल, धरती-आकाश, संयोग-वियोग, भूख-भोग, सिफति-सलाह, राह-कुराह, नेड़े-दूरि, आदि में विस्माद — आश्चर्य दिखाई पड़ता है—

---

१. [illegible]

विसमादु नादु विसमादु वेद

नानक बुझणु पूरै भागि ।

(नानक-वाणी आसा की वार)

उपर्युक्त 'विस्माद अवस्था'—आश्चर्यमयी अनुभूति 'नाम-जप' का ही परिणाम है ।

नानक-वाणी के पाठोच्चारण के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें

सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री अर्जुन देव ने 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' को जिस प्रणालीसे लिपिबद्ध किया था ठीक उसी प्रणाली मे 'शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' अमृतसर ने भी उसे देवनागरी लिपि में मुद्रित कराया है । 'नानक-वाणी' का पाठ उपर्युक्त देवनागरी वाली प्रति से निर्धारित किया गया है । उसमें किसी भी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया है ।

पाठोच्चारण के सम्बन्ध मे कुछ सामान्य बातों की जानकारी पाठकों के लिए आवश्यक है —

(१) मंगलाचरण में जहाँ '१ ओं' लिखा है उसका उच्चारण केवल 'एक ओं' नहीं है, बल्कि शुद्ध उच्चारण 'एकोंकार' है ।

(२) 'नानक-वाणी' में अनुस्वारों का प्रयोग बहुत कम किया गया है । अतः पाठकों से निवेदन है कि वे अनुस्वारों का प्रयोग समझ से कर लिया करें । उदाहरणार्थ 'जपु जी' की प्रथम पउड़ी की प्रथम पंक्ति में —

'सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार'

यद्यपि 'सोची' शब्द मे अनुस्वार का प्रयोग नहीं हुआ है, तथापि उसका उच्चारण 'सोंची' करना चाहिए । इसी 'पउड़ी' में आगे लिखा है— 'जे लाइ रहा लिवतार'। इसमे 'रहा' का उच्चारण 'रहां' होगा ।

(३) अनुस्वार की भाँति 'नानक-वाणी' में संयुक्ताक्षरों का भी बहुत कम प्रयोग किया गया है । किन्तु पाठकगण अपने अनुभव तथा अभ्यास से आवश्यकतानुसार उसका उच्चारण संयुक्ताक्षर करें । उदाहरणार्थ —

जपु जी की २९ वी पउड़ी में —

"आखहि ईसर आखहि सिध

आखहि केते कीते बुध"

में 'सिध' और 'बुध' का उच्चारण 'सिद्ध' और 'बुद्ध' होगा ।

(४) 'नानक-वाणी' मे स्थान-स्थान पर 'रागिआ' 'मागिआ' 'भाइआ' 'मागिआ' 'जागिआ' आदि इस प्रकार अनेक शब्द लिखे गए हैं । यद्यपि उनके लिखित रूप इसी प्रकार के हैं किन्तु उनके उच्चरित रूप क्रमशः 'राग्या' 'माग्या' 'भाया' 'माग्या' 'जाग्या' आदि होंगे । इस प्रकार जहाँ-जहाँ ऐसे शब्द 'नानक वाणी' में प्राप्त होंगे । उनका उच्चारण इसी ढंग से करना अपेक्षित है ।

/

नानक वाणी

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

उपर्युक्त वाणी सिक्खों का मूलमंत्र अथवा बीजमंत्र है। इसी में सिक्ख गुरुओं के समस्त आध्यात्मिक सिद्धान्त निहित हैं। प्रत्येक सिक्ख को दीक्षित होने तथा अमृतपान करते समय इस मंत्र की पाँच बार आवृत्ति करनी पड़ती है। यह मूलमन्त्र प्रत्येक राग के प्रारम्भ में प्रयुक्त होता है। इसका संक्षिप्त रूप '१ओ सतिगुर प्रसादि' भी है।

बीजमन्त्र का अर्थ इस भाँति है, 'वह एक है, ओंकार स्वरूप है (शब्द अथवा वाणी है) वह सत्य नाम वाला है, करतार है, आदि पुरुष है, भय से रहित तथा वैर से रहित है, वह सीमा काल से रहित स्वरूप वाला (मूर्ति) है। वह अयोनि और स्वयंभू (सैभं) है, और (उपर्युक्त गुणों वाला परमात्मा) गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

विशेष —आगे आने वाली वाणी का नाम 'जपु' है।

"आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥" आदि 'जपु जी' का मंगलाचरण रूप 'सलोक' है। वास्तविक 'जपु जी' 'सोचै सोचि न होवई' से प्रारम्भ होता है।

॥ जपु ॥

आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

'जपु जी" का मंगलाचरण "आदि सचु' से प्रारम्भ होता है। इसका अर्थ इस प्रकार है, (वह परमात्मा) आदि में (मूलकाल में) सत्य रूप से स्थित था युगों के प्रारम्भ में (वही) सत्य (विद्यमान था), अब भी (वर्तमान काल में) सत्य ही है आगे आने वाले समय में (भविष्य में) भी सत्य ही रहेगा।

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।
चुपै चुपि न होवई जे लाइ रहा लिवतार॥
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि॥

वह परमात्मा न तो स्थापित किया जा सकता है और न निर्मित। निरंजन आप ही सब कुछ है। जिन्होंने उसकी आराधना की है उन्होंने मान प्राप्त किया है। नानक गुणनिधान (परमात्मा) की स्तुति करता है। (उसी का) गुणगान करो, उसी का श्रवण करो और उसी का (अनन्य) भाव मन में रखो। (इस प्रकार) तुम्हारे सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे और सुख अपने घर ले जाओगे। गुरुवाक्य ही नाद है, गुरु का वाक्य ही वेद है, क्योंकि गुरु की रचना में परमात्मा समाया हुआ है। गुरु ही शिव (ईश्वर) है गुरु ही विष्णु (गोरख) है, वही ब्रह्मा और पार्वती माता है। (गुरु की महिमा मैं नहीं जान सकता) यदि मैं जानता भी होऊं तो मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि वह कथन द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। (हां) गुरु ने मुझे एक बात (भलीभांति) समझा दी है—(वह यह है कि) सभी प्राणियों का एक दाता है उसे मैं (किसी प्रकार) न भूलूं ॥ ५ ॥

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ।
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ।
मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ।
गुरा इक देहि बुझाई ।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥ ६ ॥

यदि (वे) मैं उसे अच्छा लगता हूँ तो मैंने तीर्थस्नान कर लिया। यदि मैं उसे अच्छा नहीं लगता तो नहा-धो कर क्या करूं ? जितनी सृष्टि रचना उस प्रभु ने की है और जिसे मैं देख रहा हूँ बिना कर्मों के क्या ले दे सकती है ? (कुछ भी नहीं)। यदि हम गुरु की शिक्षा सुनते हैं तो हमारी बुद्धि रत्न जवाहर, माणिक्य की निधि हो सकती है। गुरु ने मुझे एक बात (भली भांति) समझा दी है—(वह यह है कि) सभी प्राणियों का एक दाता है उसे मैं (किसी प्रकार) न भूलूं ॥६॥

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ।
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ।
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के ॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ।
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ।
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ॥ ७ ॥

यदि चारों युगों के बराबर किसी की आयु हो जाय (इतना ही नहीं) उससे भी दसगुनी आयु प्राप्त हो जाय यदि नव-खण्डों के लोग उसे जानते हों और लोग उसके साथ चलते हों यदि उसके नाम की जगत में परम प्रसिद्धि हो और उसका यश कीर्ति सारे जगत में व्याप्त हो, (यह सब कुछ हो जाने पर भी) यदि हम उसकी (अच्छी) दृष्टि में नहीं आते हैं, तो कोई बात भी नहीं पूछता है। (यदि परमात्मा चाहता है तो महान् से महान् व्यक्ति को) कीड़ों में कीड़ा बना सकता है और दोषी भी (उसे) दोषी बनाने लगते हैं। नानक कहते हैं कि (वह प्रभु) अवगुणियों को गुणी बना सकता है और गुणवानों को और भी गुणी बना सकता है। प्रभु

के बिना मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता जो किसी अन्य व्यक्ति में गुणों की उत्पत्ति कर सके। (हम में यह शक्ति नहीं है कि अपने में गुणों की उत्पत्ति कर सकें) ॥ ७ ॥

सुणिऐ सिध पीर सुरिनाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास ॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ८ ॥

विशेष —(इस पउड़ी से लेकर ग्यारहवीं पउड़ी तक श्रवण की महत्ता बतलाई गयी है। आध्यात्मिक साधना में श्रवण मनन निदिध्यासन का बहुत बड़ा महत्त्व है)।

श्रवण से (साधारण व्यक्ति) सिद्ध, पीर देवता तथा नाथ अथवा इन्द्र (सुरिनाथ) हो जाते हैं। श्रवण से ही धरती (उसका आधार) वृषभ (धवल) तथा आकाश स्थित हैं। श्रवण से ही (नाना) द्वीप (चौदह) लोक तथा पाताल थम रहे हैं। श्रवण से ही काल स्पर्श (पोहि) नहीं कर सकता। (मनुष्य आवागमन के चक्कर से मुक्त हो परमात्म-स्वरूप हो जाता है)। नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुखों तथा पापों का नाश हो जाता है ॥८॥

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु। सुणिऐ मुखि सालाहणु मंदु ॥
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ९ ॥

श्रवण से ही शिव (ईसर) ब्रह्मा और इन्द्र की पदवी पाते हैं। श्रवण से ही बुरे (मंदु) भी मुख से प्रशंसा योग्य बन जाते हैं। अथवा श्रवण से ही (ऋषिगण) मंत्र (मंदु) रचना करके (अपने) मुख से परमात्मा की स्तुति करते हैं। श्रवण से ही योग की युक्ति एवं शरीर के रहस्य (तनि भेद) ज्ञात होते हैं। श्रवण से ही शास्त्रों स्मृतियों वेदों का वास्तविक ज्ञान होता है। नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखों तथा पापों का नाश हो जाता है ॥९॥

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठसठि का इसनानु ॥
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ १० ॥

श्रवण से सत्य अथवा सत्यगुण (सतु), संतोष एवं ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की प्राप्ति होती है। श्रवण से अड़सठ तीर्थों के स्नान (का पुण्य) प्राप्त हो जाता है। श्रवण से ही पढ़ पढ़ कर मान प्राप्त होता है। श्रवण से ही सहजावस्था (तुरीयावस्था चतुर्थ पद) का ध्यान लगता है। नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखों और पापों का नाश हो जाता है ॥१०॥

सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ११ ॥

श्रवण से श्रेष्ठ गुणों की थाह मिल जाती है। श्रवण से ही (इस लोक में) शेख पीर और बादशाह बन जाते हैं। श्रवण के फलस्वरूप ही अंधे अपना मार्ग पा जाते हैं। श्रवण से ही अथाह (वस्तु) की थाह मिल जाती है अथवा श्रवण से ही उसकी (परमात्मा की) अथाह गति हाथ आती है। नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखों और पापों का नाश हो जाता है ॥११॥

मंनै की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
कागदि कलम न लिखणहारु। मंनै का बहि करनि वीचारु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ १२ ॥

विशेष १२ वीं पउड़ी से लेकर १५ वीं पउड़ी तक में मनन की महत्ता बताई गई है।

मनन की अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो इसे कहकर व्यक्त करना चाहता है, वह बाद में पश्चात्ताप करता है। (क्योंकि परमात्मा वर्णनातीत है)। (मनन की अवस्था को अभिव्यक्त करने के लिए न पर्याप्त) कागज है, न कलम है, न (सुयोग्य) लेखक ही है। (अतः कोई भी ऐसा नहीं है) जो स्थित होकर मनन की अवस्था पर सोच सके। वह नाम निरंजन (माया रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन जानता है वह मन ही मन (इसका रसास्वादन करता है) ॥१२॥

मंनै सुरति होवै मनि बुधि। मंनै सगल भवण की सुधि ॥
मंनै मुहि चोटा ना खाइ। मंनै जम कै साथि न जाइ ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ १३ ॥

(परमात्मा के) मनन से मन और बुद्धि में सुरति (स्मृति तन्मयता) उत्पन्न होती है। मनन से सारे भुवनों—लोकों का ज्ञान हो जाता है। मनन से मुँह में चोट नहीं खानी पड़ती। मनन से यम के साथ नहीं जाना पड़ता (आवागमन के चक्कर से छूट कर परमात्म-स्वरूप हो जाता है)। वह नाम-निरंजन (माया रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन जानता है, वह मन ही मन आनन्दित होता है ॥१३॥

मंनै मारगि ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ ॥
मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ १४ ॥

(परमात्मा के) मनन से मार्ग में रुकावट नहीं पड़ती। मनन करने से ही प्रतिष्ठा (पति) के साथ प्रकट रूप से (परमात्मा के पास) जाता है। मनन से ही मार्ग अथवा पंथ में (कठिनाई) नहीं आती। मनन के फलस्वरूप ही उसका सम्बन्ध धर्म से हो जाता है। वह नाम-निरंजन (माया-रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन करना जानता है, वह मन ही मन आनन्दित होता है ॥१४॥

मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु ॥
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ १५ ॥

(परमात्मा के) मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। मनन से ही (मनन करने वाला) अपने परिवार को आधार युक्त (साधार) बना लेता है अथवा मनन से ही परिवार को सुधार लेता है। मनन से ही गुरु स्वयं तरता है और अपने शिष्य को भी तार देता है। मनन से भिक्षा के निमित्त भ्रमण नहीं करना पड़ता। वह नाम-निरंजन (माया रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन करना जानता है, वह मन ही मन आनन्दित होता है ॥१५॥

पंच परवाण पंच परधानु । पंचे पावहि दरगहि मानु ॥
पंचे सोहहि दरि राजानु । पंचा का गुरु एकु धिआनु ॥
जे को कहै करै वीचारु । करते कै करणै नाही सुमारु ॥
धौलु धरमु दइआ का पूतु । संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ॥
जे को बुझै होवै सचिआरु । धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परै होरु होरु । तिस ते भारु तलै कवणु जोरु ॥
जीअ जाति रंगा के नाव । सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ । लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु । केती दाति जाणै कौणु कूतु ॥
कीता पसाउ एको कवाउ । तिस ते होए लख दरीआउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १६ ॥

(शुभ गुणों में) श्रेष्ठ व्यक्ति (पंच) (परमात्मा के यहाँ) प्रामाणिक (समझे जाते हैं) श्रेष्ठ ही प्रधान माने जाते हैं। श्रेष्ठ ही (परमात्मा के) दरवाजे पर मान पाते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति ही राजाओं के दरबार में शोभनीय होते हैं। श्रेष्ठ का ध्यान एक गुरु में केन्द्रित होता है।

[डा० मोहन सिंह ने इस का अर्थ इस प्रकार किया है—
पंच परवाण—शब्द, स्पर्श रूप रस गंध।
पंच परधान—आकाश वायु, अग्नि जल, पृथ्वी।
परमात्मा के दरवाजे पर पाँच मान पानेवाले—पंच ज्ञानेन्द्रियाँ।
राजाओं के दरबार में पाँच मान पानेवाले—पंच कर्मेन्द्रियाँ।
पाँच वे जिन्हें गुरु का ध्यान है—(पंच प्राण)—प्राण अपान व्यान, उदान और समान]

यदि कोई परमात्मा के सम्बन्ध में कथन करता है, तो पूर्ण रूप से सोच विचार कर ऐसा करे, (क्योंकि) कर्ता (परमात्मा) के कामों की गणना नहीं हो सकती। पृथ्वी को धारण करनेवाला कोई बैल (धौलु) है। (वास्तव में वह धर्म रूपी बैल पृथ्वी को धारण नहीं करता) बल्कि (परमात्मा का) धर्म ही बैल है और वह (परमात्मा की) दया का पुत्र है। (धर्म के साथ) संतोष की स्थापना करके (परमात्मा ने सारी सृष्टि-रचना) एक सूत्र में पिरो रखी है। जो कोई (इस रहस्य को) जानता है, वह सत्य स्वरूप ही हो जाता है। (भला बेचारे) बैल के ऊपर कितना भार है। (तात्पर्य यह कि बैल की क्या सामर्थ्य है कि वह पृथ्वी को धारण करे। उसे धारण करनेवाला तो परमात्मा ही है) पृथ्वियाँ बहुत सी हैं। उनसे भी परे

अनेक पृथ्वियाँ हैं (अनन्त हैं)। (भला बताइए) उनके भार के नीचे कौन सी शक्ति है ? (अर्थात् उनका क्या आधार है ?)। (परमात्मा की सृष्टि में) अनन्त जीव हैं, अनन्त जातियाँ हैं, अनन्त रंग हैं और अनन्त नाम हैं। (सभी के भाग्य) उसकी आज्ञा की लेखनी से लिखे गये हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो (परमात्मा के) इस लेखे को लिख सके ? यदि उन लेखों-जोखों का लेखा लगाया जाय, तो न मालूम कितने (लेख) हो सकते हैं ! (ऐ परमात्मा !) तेरी कितनी शक्ति (ताकत) है और कितना सुन्दर (सुभाविक) स्वरूप है ! (परमात्मा के) कितने दान हैं, इसे कौन जान सकता है और अनुमान (कूत) लगा सकता है ? (परमात्मा के) एक वाक्य से सारा प्रसार (सृष्टि-निर्माण) हुआ। उसी से लाखों नद उत्पन्न हुए। (हे परमात्मा तेरी) कुदरत प्रकृति अथवा शक्ति का किस प्रकार विचार करूँ ? (तेरी ऐसी आश्चर्यमयी सृष्टि है) कि एक बार नहीं (अनेक बार) न्यौछावर हुआ जाय (तो भी कम ही है)। जो तुझे अच्छा लगे वही अच्छा कर्म है। तू शाश्वत रहनेवाला और निरंकार स्वरूप है ॥१६॥

असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ॥
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार। असंख सती असंख दातार॥
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार॥ १७॥

विशेष—गुरु नानक देव ने इस पद में यह दिखाने की चेष्टा की है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए अनेक साधन किये जा रहे हैं। साथ ही इस पद से सृष्टि की अनन्तता का भी बोध कराया गया है —

(उस प्रभु की दर्शन-प्राप्ति के लिए, अथवा उसके बोध के निमित्त) अनन्त जप किये जाते हैं और अनन्त भावों से (उसकी आराधना और भक्ति) की जाती है। (उसकी प्राप्ति के निमित्त) असंख्य पूजाएँ और तपश्चर्याएँ की जाती हैं, मुखों से अनन्त धार्मिक ग्रन्थों एवं वेदों के पाठ किए जाते हैं, असंख्य प्रकार की योग-साधनाएँ की जाती हैं, (जिनके द्वारा सांसारिक विषयों से) मन उदासीन रखा जाता है। असंख्य भक्त (अपनी-अपनी प्रणाली के अनुसार) (परमात्मा के) गुणों का विचार करते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हैं। असंख्य (मनुष्य) सत्य-गुण और दान (द्वारा उस प्रभु तक पहुँचने में) तत्पर रहते हैं। असंख्य शूरवीर (उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए युद्धस्थल में) मुँह से लोहा भक्षण करते हैं, (तात्पर्य यह कि घनघोर युद्ध करते हैं)। (हे प्रभु) असंख्य मौनी (मौन-व्रत-धारी साधक) एकनिष्ठ हो तेरे ही ध्यान में निमग्न रहते हैं। (हे प्रभु, तेरी) कुदरत प्रकृति शक्ति अथवा माया का किस प्रकार विचार करूँ ? (तेरी ऐसी आश्चर्यमयी रचना है) कि एक बार नहीं (अनेक बार) न्यौछावर हुआ जाय (तो भी कम ही है)। जो तुझे अच्छा लगे वही अच्छा कर्म है। तू शाश्वत रहनेवाला और निरंकार-स्वरूप है ॥१७॥

असंख मूरख अंध घोर। असंख चोर हरामखोर॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलवढ हतिआ कमाहि॥

असंख पापी पापु करि जाहि । असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि । असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥
नानकु नीचु कहै वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १८ ॥

विशेष :—इस पद म गुरु नानक देव ने यह बतलाया कि परमात्मा की तमोगुणी सृष्टि भी अनन्त है। बहुत से ऐसे लोग हैं जो आसुरी वृत्ति म ही रहना पसंद करते हैं। उन्हें परमात्मा के अस्तित्व एवं धर्माधर्म का कुछ भी बोध नहीं रहता। इस प्रकार परमात्मा की सृष्टि में जहाँ एक ओर जपी तपी मौनी सूरमे, सतोगुणी दानी भक्त, ज्ञानी योगी इत्यादि हैं, वहाँ दूसरी ओर मूर्ख अनघोर तमोगुणी, हरामखोर, पराया द्रव्य अपहरण करनेवाले और निन्दक भी हैं। किन्तु ऐसी सृष्टि भी उसकी लीला का एक अंग है —

अर्थ :—असंख्य (प्राणी) मूर्ख एवं अनघोर तमोगुणी (अंधे) हैं। असंख्य चोर और हरामखोर हैं। असंख्य व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो जबरदस्ती अपना हुक्म (अमर) मनवाते हैं। असंख्य व्यक्ति गला काटनेवाले (गलवढ) और हत्या कमानेवाले हैं। असंख्य पापी ऐसे हैं जो पाप कर्म में ही सारी आयु समाप्त कर चल देते हैं। असंख्य झूठे (कूड़िआर) अपना झूठ लेकर स्थान-स्थान पर फिरते हैं। असंख्य म्लेच्छ (ऐसे) हैं जो अखाद्य वस्तुएं (मलु) भक्षण करते हैं (और खा जाते हैं)। असंख्य निन्दक (पराई निन्दा के पाप का भार अपने) सिर पर लादते हैं। (इस प्रकार) नानक अधमों का विचार करता है (वर्णन करता है)। (हे परमात्मा तेरी आश्चर्य मयी सृष्टि है उस पर) एक बार नहीं अनन्त बार न्यौछावर होना भी थोड़ा ही है। जो तुझे अच्छा लगे वही शुभ कर्म है। तू शाश्वत रहनेवाला निरंकार ब्रह्म है ॥१८॥

असंख नाव असंख थाव । अगंम अगंम असंख लोअ ॥
असंख कहहि सिरि भारु होइ ।
अखरी नामु अखरी सालाह । अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि । अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि । जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ । विणु नावै नाही को थाउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १९ ॥

(परमात्मा तेरे) असंख्य नाम हैं और असंख्य स्थान हैं। मन, वाणी बुद्धि स परे (अगंम) अनन्त लोक हैं। (वास्तविक बात तो यह है कि) असंख्य कहना भी सिर के ऊपर भार ही लादना है। अक्षर से ही नाम की प्राप्ति होती है, [अक्षर के तात्पर्य यहाँ कई हो सकते हैं —(क) जो क्षर न हो अर्थात् परमात्मा। (ख) परमात्मा की आज्ञा (ग) अक्षर] अक्षर से (परमात्मा की) स्तुति (सालाह) होती है। अक्षर स ज्ञान प्राप्त होता है तथा परमात्मा की गुण-गाथा के गीत गाये जाते हैं। अक्षर से ही लिखना और वाणी बोलने का काम होता है। अक्षर द्वारा ही (मनुष्य) के भाग्य (सिरि) का संयोग अंकित किया रहता है (वर्णित)। जिस परमात्मा ने अक्षर की रचना की है वह इनके अधीन नहीं है। (वह तो

सर्वशक्तिमान् है) वह जैसी आज्ञा देता है, उसी प्रकार मनुष्य पाता है। जो कुछ भी रचना हुई है, वह सब तेरा नाम ही है। (परमात्मा के) नाम बिना कोई स्थान नहीं है। (हे प्रभु, तेरी) प्रकृति शक्ति अथवा महिमा का किस प्रकार विचार करूँ ? (तेरी ऐसी आश्चर्यमयी शक्ति है कि उस पर) एक बार नहीं अनन्त बार न्योछावर होना भी थोड़ा ही है। जो तुझे अच्छा लगे, वही शुभ कर्म है। तू शाश्वत रहनेवाला, निरंकार ब्रह्म है ॥१९॥

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
पुंनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु ॥ २ ॥

यदि हाथ, पैर और शरीर के अन्य अंगों में धूल लगी हो तो पानी से धोने से वह धूल साफ हो जाती है। यदि मूत्र (आदि) से कपड़े अशुद्ध हों तो साबुन लगा कर उन्हें धो लो। (इसी प्रकार यदि) बुद्धि पापों से भरी हो तो वह नाम के प्रेम (रंग) से शुद्ध की जा सकती है। कहने मात्र से न कोई पुण्यात्मा हो जाता है और न कोई पापी, जो जो कर्म हम करते हैं, वे (परमात्मा के दूतों द्वारा) लिख लिये जाते हैं। (इस प्रकार) मनुष्य स्वयं ही बोता है और स्वयं ही खाता है। परमात्मा के हुक्म के अनुसार आना-जाना (जन्म-मरण का चक्र) लगा रहता है ॥२ ॥

तीरथु तपु दइआ दतु दानु। जे को पावै तिल का मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मलि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥
कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु ॥
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ॥
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥
किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा।
नानक आखणि सभु को आखै इक दू इकु सिआणा ॥
वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै।
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ॥ २१ ॥

तीर्थयात्रा, तपश्चर्या, दया, पुण्य (अथवा) दान (आदि करने से) तिल मात्र मान प्राप्त होता है। (क्योंकि इन सब साधनों से स्वर्गादिक की प्राप्ति क्षणभंगुर है)। किन्तु जो कोई परमात्मा का श्रवण मनन करके मन में भाव (प्रेम) उत्पन्न करता है, वह आन्तरिक तीर्थ में

मस मस कर स्नान करता है (और पापों को धो डालता है) । ऐ परमात्मा सभी गुण तुझ में हैं, मुझ में कुछ भी नहीं है। बिना गुणों को धारण किए (कीते), भक्ति नहीं (उत्पन्न) होती (परमात्मा तू) धन्य है (धाथि), जिसकी बाणी से ब्रह्माण्डों (बरमाउ) की उत्पत्ति हुई। उसकी सत्ता (सति) की शोभा वर्णन करने के लिए बारबार मन में चाव उत्पन्न होता है। वह कौन सी वेला थी, कौन समय था, कौन तिथि थी कौन वार था कौन सी ऋतु थी, कौन महीना था, जिस समय सृष्टि-रचना हुई ? (गुरु नानक जी का उत्तर है कि सृष्टि रचना की निश्चित घड़ी कोई भी नहीं जानता) । पंडितों को (सृष्टि-रचना के समय का) पता नहीं है, (क्योंकि) यदि वे जानते होते तो पुराणों में प्रबन्ध लिखते। काजियों को भी (सृष्टि रचना के) वक्त का पता नहीं है, (क्योंकि यदि वे जानते होते) तो कुरान में इस बात का अवश्य उल्लेख करते। (इस प्रकार सृष्टि-रचना की) तिथि और वार को योगी भी नहीं जानते। कोई भी (सृष्टि रचना की) ऋतु अथवा महीना नहीं जानता। जो कर्त्ता सृष्टि को साजता है वही (इस रहस्य को) जान सकता है। (ऐ परमात्मा तुझे) किस प्रकार सम्बोधित करके तेरी किस प्रकार स्तुति करें किस प्रकार वर्णन करें और कैसे जानूँ ? नानक कहते हैं, (ऐ परमात्मा,) सभी लोग तथा एक से एक चतुर व्यक्ति तेरा वर्णन करते हैं। वह साहब महान् (बड़ा) है, उसका नाम भी महान् है। उसी का किया हुआ (कीता) सब कुछ है। गुरु नानक कहते हैं जो कोई (परमात्मा को छोड़ कर) अपने आप को कुछ जानता है, वह आगे जाकर (परलोक में गमन कर) शोभा नहीं पाता ॥२१॥

पाताला पाताल लख आगासा आगास।
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात ॥
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ॥
नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु ॥ २२ ॥

(सृष्टि में) लाखों पाताल हैं और लाखों आकाश। (लोग) उसका अंत (ओड़क) खोजते खोजते थक गए (पर अन्त पाए नहीं)। वेद एक ही बात कहते हैं ('नेति नेति' अर्थात् उसका अन्त नहीं है)। कतेबों [१ तुरेत २ जंबोस ३ कुरान तथा ४ जंबूर] का कथन है कि अठारह हजार आलम (दुनिया, सृष्टि) है। किन्तु वास्तव में (असुलू) एक ही सत्ता है, (जो सृष्टि का सृजन पालन एवं संहार कर रही है)। यदि (परमात्मा) का लेखा (हिसाब गणना) हो तो लेखा करो' सारे लेखे-जोखे नश्वर ही हैं। नानक कहते हैं कि वह (अनन्त) महान् है। वह अपने का आप ही जान सकता है, (अन्य कोई नहीं) ॥२२॥

सालाही सालाहि एती सुरति न पाइआ।
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि ॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥ २३ ॥

(परमात्मा के) प्रशंसक उसकी प्रशंसा करते हैं, किन्तु उन्हें (उसकी पूर्णता की) स्मृति (बुद्धि) नहीं प्राप्त हुई। नदी और नाले समुद्र में गिरते हैं किन्तु (वे समुद्र को) नहीं जान

सकते (कारण यह कि समुद्र में मिलकर वे समुद्रवत् हो जाते हैं)। समुद्र के समान बादशाह और सुल्तान जिनके पास पहाड़ों (गिरह) के समान धन-धान्य हो, उस कीड़े की समता नहीं कर सकते जिसे तू मन से नहीं बिसराता (अर्थात् तेरा अनन्य भक्त सर्वश्रेष्ठ है, उसकी समता न धनी कर सकते हैं, न बादशाह और न सुल्तान) ॥२३॥

अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु॥
अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु॥
अंत कारणि केते बिललाहि। ता के अंत न पाए जाहि॥
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होइ॥
वडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि। नानक नदरी करमी दाति॥ २४॥

(परमात्मा के) गुणों का अंत नहीं है और न (उन गुणों के) कथन करनेवालों का ही अन्त है। न तो उसके कर्तापन का अन्त है और न उसके दानों का ही। न तो (उस प्रभु के) देखनेवालों का अंत है और न उसको श्रवण करनेवालों का ही। उसके मन में क्या मन्तव्य (रहस्य) है उसका भी अन्त जाना नहीं जा सकता। उसके किए हुए सृष्टि-प्रसार (आकार) का अंत भी ज्ञात नहीं हो सकता। (सृष्टि-विस्तार) का आदि-अन्त भी नहीं जाना जा सकता। न मालूम कितने उसका अन्त जानने के लिए बिलखते रहते हैं, किन्तु उसका अंत नहीं पाया जाता। कोई भी उसका अन्त नहीं जानता। जितना अधिक हम उसका कथन करते जाएँ उतना ही अधिक वह बढ़ता जाता है। साहब (स्वामी प्रभु) महान है। उसका (स्थान बहुत ही) ऊँचा है (हमारी पहुँच से परे है) स्थान से ऊँचा उसका नाम है। यदि उतना ऊँचा कोई हो तो उस ऊँचे (परमात्मा) को जान सकता है। जितना बड़ा वह है आप ही अपने द्वारा अपनी महत्ता जान सकता है। नानक कहते हैं कि परमात्मा की देन उसी के ऊपर होती है, जिसके ऊपर उसकी कृपा-दृष्टि होती है ॥२४॥

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ। वडा दाता तिलु न तमाइ॥
केते मंगहि जोध अपार। केतिआ गणत नही वीचारु॥
केते खपि तुटहि वेकार।
केते लै लै मुकरु पाहि। केते मूरख खाही खाहि॥
केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भी दाति तेरी दातार॥
बंदिखलासी भाणै होइ। होरु आखि न सकै कोइ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ। ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ॥
आपे जाणै आपे देइ। आखहि सि भि केई केइ॥
जिस नो बखसे सिफति सालाहु। नानक पातिसाही पातिसाहु॥ २५॥

(उस दाता के) दानों का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह दाता महान् है उसमें तिल भर भी (रंच मात्र भी) लालच (तमाइ) नहीं है। कितने ही योद्धा—अनगिनती योद्धा

(उससे) माँगते हैं। (परमात्मा से माँगनेवाले) कितने हैं, इसकी गणना का अनुमान (बीचारु) नहीं लगाया जा सकता। कितने ही विकारी पुरुष (विषयों में ही) खप जाते और नष्ट हो जाते हैं। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो (परमात्मा से) ले ले कर मुकर जाते हैं। कितने ही मूर्ख इस प्रकार के हैं, जो (परमात्मा से पा पा कर) खाते हो चले जाते हैं। कितने ऐसे हैं, जिन पर सदैव ही दुख और भूख की मार पड़ती रहती है। हे दाता ये भी तेरे ही दान हैं (अर्थात् दुःख-सुख भी तेरे ही दिए हुए हैं)। बन्धन-मोक्ष तेरी ही आज्ञा से होते हैं। (तेरी आज्ञा के संबंध में) कोई कुछ कह नहीं सकता। जो कोई गप्पी (खाइक—फारसी) (परमात्मा के संबंध में) यह डींग मारे (कि वह इस प्रकार देता है, इस प्रकार नहीं देता) है, तो उसे अपनी मूर्खता का अच्छी तरह पता तब लगता है, जब उसके मुह पर चोटें पड़ती हैं। (प्रभु) आप ही जानता है और आप ही देता है। जो व्यक्ति (सत्यस्वरूप परमात्मा का सच्चाई से) वर्णन करते हैं, वे कोई ही कोई होते हैं। (परमात्मा) जिसे भी चाहे, अपने गुणों की प्रशंसा करने की शक्ति प्रदान कर सकता है। नानक कहते हैं कि (वह प्रभु) बादशाहों का बादशाह है ॥२५॥

अमुल गुण अमुल वापार। अमुल वापारीए अमुल भंडार॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि। अमुल भाइ अमुला समाहि॥
अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु। अमुलु तुलु अमुलु परवाणु॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु। अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ। आखि आखि रहे लिव लाइ॥
आखहि वेद पाठ पुराण। आखहि पड़े करहि वखिआण॥
आखहि बरमे आखहि इंद। आखहि गोपी तै गोविंद॥
आखहि ईसर आखहि सिध। आखहि केते कीते बुध॥
आखहि दानव आखहि देव। आखहि सुरि नर मुनि जन सेव॥
केते आखहि आखणि पाहि। केते कहि कहि उठि उठि जाहि॥
एते कीते होरि करेहि। ता आखि न सकहि केई केइ॥
जेवडु भावै तेवडु होइ। नानक जाणै साचा सोइ॥
जे को आखै बोलुविगाड़ु। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु॥ २६॥

(हे प्रभु, तेरे) गुण अमूल्य हैं व्यापार (क्रिया-कलाप) भी अमूल्य है। तेरे व्यापारी अमूल्य हैं और तेरा भाण्डार भी अमूल्य है। जो (तुमसे) आते हैं, वे भी अमूल्य हैं (और) (तुमसे) जो लोग ले जाते हैं, व भी अमूल्य हैं। (उस परमात्मा के यहाँ से आने वाले अमूल्य हैं और उसके गुणों को ग्रहण कर उसके पास जाने वाले भी अमूल्य हैं)। परमात्मा के दिए हुए भाव अमूल्य हैं और उसको दी हुई समाधि (समाहि) भी अमूल्य है। परमात्मा द्वारा प्रदत्त धम और दरबार अमूल्य हैं। प्रभु के दिए हुए तोल और तोलाई (परवाणु) दोनों ही अमूल्य हैं। परमात्मा की बख्शिश और उसके दिए हुए चिह्न (निशान) अमूल्य हैं। (ऐ परमात्मा तेरी) कृपा अमूल्य है और (तेरी) आज्ञा अमूल्य है। तू अमूल्यों में अमूल्य है, तेरा वर्णन नहीं किया जा सकता। कितने ही व्यक्ति तेरी असीमता का वर्णन करते-करते ध्यान-निमग्न होते रहे हैं। वेदों और पुराणों को पढ़-पढ़ कर कितने ही व्यक्ति तेरा वर्णन करते हैं। बहुत से

लोग (शास्त्रों को) पढ़-पढ़ कर तेरे सम्बन्ध में व्याख्यान देते हैं, (प्रवचन करते हैं)। ब्रह्मा, इन्द्र गोपी और कृष्ण ईश्वर (शिव), सिद्धगण बहुत से बुद्ध अथवा बुद्धिमान पुरुष दानव देवता सुर, नर, मुनि, सेवक जन (जन सेव) आदि तेरा ही वर्णन करते हैं। कइयों को (परमात्मा के स्वरूप के वर्णन करने का) पूरा अवसर प्राप्त हो जाता है और वर्णन करते ही करते उठ कर चल देते हैं (काल के वशीभूत हो जाते हैं)। (प्रभु ने जितने व्यक्तियों की) रचना कर दी है, उतने ही बहु और निर्माण कर दे तो भी कोई उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता। (वह स्वयं ही अपनी महिमा को जानता है)। तू जितना ही बड़ा बनना चाहता है, उतना ही बड़ा बन जाता है। सच्चा परमात्मा ही अपने वास्तविक स्वरूप को जान सकता है। जो कोई उसके वर्णन करने का दम्भ भरता है, वह अपनी वाणी हो बरबाद करता है और उसकी गणना गँवारों के बीच गँवार (अति गँवार) में होनी चाहिए ॥ २६ ॥

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।
गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे॥
गावहि चितुगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे॥
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे।
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले॥
गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले।
गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे।
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे॥
सेई तुधनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले।
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥ २७॥

विशेष—इस पउड़ी में गुरु नानक देव ने परमात्मा की अनन्तता का वर्णन किया है परमात्मा की अनन्त सृष्टि के अनन्त प्राणी उसका गुणगान अनन्त समय से करते आ रहे हैं पर कोई भी उसका पूर्ण गुणगान न कर सका और न कर सकेगा।

अर्थ —(ऐ परमात्मा) तेरा (वह) दरवाजा कहाँ है और (तेरा) घर कहाँ है, जहाँ बैठ कर सभी (प्राणिमात्र) की संभाल करता है? (तेरे दरवाजे पर) अनेक असंख्य नाद हो रहे हैं; असंख्य बजाने वाले (तेरे गुणों के संगीत विविध राग-रागिनियों में) बजा रहे हैं। असंख्य गायक (तेरे गुणों के गीत) अनन्त राग रागिनियों (परी) द्वारा [सिउ=से द्वारा] गा रहे हैं। (हे प्रभु तेरा यश) पवन जल अग्नि सभी गा रहे हैं धर्मराज भी तेरे दरवाजे पर बैठ कर तेरा गुणगान कर रहे हैं। चित्रगुप्त जो सभी के पाप-पुण्य को लिखते हैं और उनके धर्म के अनुसार विचार करते हैं, वे भी तेरा गुणगान कर रहे हैं। ईश्वर (शिव), ब्रह्मा देवी (जो तुझ द्वारा) सुन्दर रूप में बनाए गए हैं, वे भी तेरे यश का गीत गा रहे हैं। देवताओं के साथ इन्द्रासन पर बैठे हुए इन्द्र भी तेरे दरवाजे पर बैठे हुए गुणानुवाद कर रहे हैं। सिद्धगण समाधि के अन्तर्गत तुझे ही गा रहे हैं, साधु पुरुष भी ध्यान में (विचारे) तेरा ही गुणगान कर रहे हैं। यती सत्यगुणी संतोषी, महान् (करारे) शूरवीर तेरे ही यश का गीत गा रहे हैं। युग-युगान्तरों से वेदों के अध्ययन द्वारा पंडित एवं ऋषीश्वर (तेरी ही महत्ता का) गुणगान करते आए हैं। मन को मोहनेवाली स्वर्ग में अप्सराएँ (मोहणीआँ) तथा पाताल में स्थित मच्छ-कच्छादिक तेरी ही प्रशंसा कर रहे हैं। तेरे उत्पन्न किए हुए (चौदह) रत्न तेरा यश गाते हैं। साथ ही (नाले) अड़सठ तीर्थ भी तेरा गुणगान करते हैं। बड़े-बड़े महाबली शूरवीर योद्धागण तथा चार प्रकार की योनियों (अंडज जेरज उद्भिज स्वेदज) के जीव तेरा यश गाते हैं। जिन खण्ड मण्डल ब्रह्माण्डादिक की रचना करके अपने-अपने स्थान पर धारण कर रखा है, वे भी तेरे गीत गा रहे हैं। जो तुझे अच्छे लगते हैं और तुझमें अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तेरी यश-गाथा गा रहे हैं। गुरु नानक देव कहते हैं कि हे प्रभु, और कितने ही लोग तेरा यशगान कर रहे हैं; वे सब मेरे चित्त में नहीं आ सकते (अनुमान नहीं कर सकता)। मैं क्या विचार करूँ? (क्या गणना करूँ?)। वही वह है सदैव सच है, सच्चा साहब है और सच्चे नाम वाला है। (वही परमात्मा) (वर्तमान में) है (भूत में) था और (भविष्य में) रहेगा; जिसने यह अनन्त रचना रची है वह न जा सकता है और न जायगा। जिसने रंग-रंग की भाँति भाँति की माया की वस्तुएँ (जिनसी) उत्पन्न की है वह अपनी की हुई रचना और उसकी महत्ता देख-देख कर (प्रसन्न हो रहा है।) जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वह उसी को करता है उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। वह बादशाह, बादशाहों का भी बादशाह है। उसकी मर्जी के भीतर ही रहना चाहिए॥ २७॥

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु।
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥ २८॥

विशेष—कहते हैं कि नाथ-सम्प्रदाय के सिद्ध योगियों ने गुरु नानक देव जी से योगी का वेश बना कर गुरु गोरखनाथ जी को 'आदेश' करने को कहा। 'आदेश' नाथ-पंथी योगियों के प्रणाम करने की प्रणाली है। 'मुद्रा' 'झोली' 'विभूति' 'कंथा' 'डंडा' आदि धारण

करना योगियों के बाह्य चिह्न हैं। गुरु नानक देव जी ने २८ २९, ३ और ३१ पउड़ियों में उन योगियों को यह उत्तर दिया है कि बाह्य वेषादिक की आन्तरिक साधना के लिए कोई आवश्यकता नहीं। वेष से योगी नहीं बनना चाहिए, बल्कि आध्यात्मिक कर्मों के सम्पादन से आन्तरिक योगी बनना चाहिए।

अर्थ —(हे योगी) संतोष एवं श्रम अथवा लज्जा [सरमु—(१) श्रम (२) लज्जा] को (कान में पहनने की दो) मुद्रा बनाओ प्रतिष्ठा (पतु) की झोली (धारण करो) (परमात्मा के) ध्यान को (शरीर में मलने के लिये) विभूति बनाओ। काल के वशी भूत हो जाने वाले शरीर को ही कंथा (खिंथा) बना कर धारण करो। इसे कुमारी की भाँति पवित्र रक्खो। युक्ति एवं विश्वास का ही डंडा बनाओ। सारी जमात (जमा समूह) को एक समझना यही तुम्हारा आई पंथ हो। (आई पंथ योगियों के बारह पंथों में से एक है)। मन को जीतना ही (तुम्हारा) जगत जीतना हो। यदि आदेस' ही करना हो तो उसे (परमात्मा को) 'आदेस' करो (बाहरी लोगों को नहीं)। (वह परमात्मा) आदि है, वर्ण-रहित है (अनीलु) अनादि है, अनाहत है तथा युग-युगान्तरों में एक ही वेष वाला (अविनाशी) है। (उसी परमात्मा को आदेस'— नमस्कार करो)। ॥ २८ ॥

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ।
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ।
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥ २९ ॥

(हे योगी) ब्रह्मज्ञान को ही भोग—भुक्ति (भुगति) बनाओ। दया ही भण्डारी हो। यदि नाद ही सुनना हो तो (शृंगी आदि का नाद मत सुनो बल्कि) घट-घट के भीतर जो अनाहत नाद हो रहा है, उसी को सुनो। (परमात्मा को ही) नाथ समझो उसी ने समस्त संसार नाथ रक्खा है (अपने वशीभूत किए हैं)। ऋद्धियाँ सिद्धियाँ तो अन्य स्वाद हैं—सांसारिक स्वाद हैं। (वास्तविक ऋद्धि-सिद्धि तो परमात्मा में अनन्य भक्ति ही है)। संयोग और वियोग ये दोनों सृष्टि का समस्त कार्य चलाते हैं और अपने-अपने भाग्यानुसार इनकी प्राप्ति होती है। अतएव यदि आदेस'—प्रणाम करना हो तो उसी को कर। वह परमात्मा ही आदि है वर्ण-रहित है, अनादि है, अनाहत है तथा युग-युगान्तरों से एक ही वेषवाला (अविनाशी) है ॥ २९ ॥

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥ ३ ॥

(हे योगी) एक माया ने युक्ति से तीन प्रामाणिक (परवाणु) चेलों —पुत्रों को उत्पन्न किया। (उन तीनों में स) एक तो संसार का निर्माता अर्थात् ब्रह्मा है, एक भण्डारी पोषक अर्थात् विष्णु है और एक दीवान लगाने वाला (प्रलय करने वाला) महेश है। वह प्रभु (त्रिगुणात्मक माया एवं उसके तीनों पुत्रों—ब्रह्मा विष्णु महेश को) अपने आदेशानुसार, अपनी इच्छा के अनुसार चलाता है। वह प्रभु तो (त्रिगुणातीत होने के कारण) उन्हें देखता रहता है, पर उनकी दृष्टि में वह नहीं आता यह बहुत ही आश्चर्यजनक है। (उसी परमात्मा को) आदेस'—प्रणाम करो। वह आदि है, वर्ण-रहित है, अनादि है, अनन्त है तथा युग युगान्तरों से एक ही वेशवाला (परिवर्तन रहित अविनाशी है।) ॥ ३ ॥

आसणु लोइ लोइ भंडार। जो किछु पाइआ सु एका वार॥
करि करि वेखै सिरजणहारु। नानक सचे की साची कार॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥ ३१॥

(हे योगी) (वह प्रभु) प्रत्येक लोक में आसन लगा कर विराजमान है और (साथ ही साथ) प्रत्येक लोक में उसका भण्डार है। जिसे जो कुछ भी पाना था, उसने एक बार ही में पा लिया। सृष्टि-रचयिता समस्त सृष्टि-रचना करके उसे देखता रहता है (उसकी-योग क्षेम लेता रहता है)। नानक कहते हैं कि सच्चे परमात्मा की सच्ची कारगरी (सृष्टि-रचना) है। (उसी परमात्मा को) 'आदेस'—प्रणाम करो। वह आदि है वर्ण-रहित है अनादि है, अनन्त है तथा युग-युगान्तरों में एक ही वेशवाला (परिवर्तन-रहित अविनाशी) है॥ ३१॥

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस॥ ३२॥

यदि एक जीभ से लाख जीभें हो जायें और लाख से बीस लाख हो जायें (तो मैं) उन सारी जीभों से लाख लाख बार एक जगदीश (परमात्मा) का नाम जपूंगा। पति (परमात्मा) के मार्ग की यही सीढ़ियाँ हैं। (इन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ कर साधक बीस से) इक्कीस हो जाता है (अर्थात् श्रेष्ठ और प्रामाणिक हो जाता है)। नाम द्वारा भक्तों की उस उच्च पद की प्राप्ति की बात (तथा आकाश की) सुन कर हम लोग जो कीट हैं, उन्हें भी स्पर्द्धा हो गई। नानक कहते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति उसकी कृपादृष्टि (नदरी) से होती है। झूठा तो झूठी डींगें ही मारता है॥ ३२॥

आखणि जोरु चुपै नह जोरु। जोरु न मंगणि देणि न जोरु॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु। जोरु न राजि मालि मनि सोरु॥
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि। जोरु न जुगती छुटै संसारु॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ। नानक उतमु नीचु न कोइ॥ ३३॥

न तो बहुत कथन में यह शक्ति (जोर) है (कि जिससे परमात्मा की प्राप्ति हो जाय) ीन में है, न माग कर खाने में है और न दानी बन कर दान देने में है। न जीवन में न म में न राज्य-सम्पत्ति में न मन में संकल्प-विकल्प (शोर) में न स्मृति (सुरति) में ज्ञान में न विचार में न युक्ति में वह जोर— शक्ति है जिससे संसार के बन्धनों से छुटकारा ाह हो (और परमात्मा की प्राप्ति हो)। (संसार से छुटकारा दिलाने की) वास्तविक शक्ति ो उस परमात्मा के हाथ में है। वही सृष्टि रचना करके देखता है (और प्रसन्न होता है)। ानक कहते हैं कि (उस परमात्मा की सृष्टि में) न कोई ऊँच है और न कोई नीच। (चेतन-सत्ता सब में समान रूप से विराजमान है) ॥ ३३ ॥

राती रुति थिती वार । पवण पाणी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग । तिनके नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु । सचा आपि सचा दरबारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमि पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ॥ ३४ ॥

विशेष —गुरु नानक देव ने ३४वीं पउड़ी में 'धर्म खण्ड' का ३५वीं में 'ज्ञान खण्ड' का ३६वीं में 'सरम खण्ड' का तथा ३७वीं पउड़ी में 'करम खण्ड' और 'सच खण्ड' का वर्णन किया है। उपर्युक्त पाँचों खण्ड पंच भूमियाँ अथवा भूमिकायें हैं। इस प्रकार परमात्मा की समस्त सृष्टि 'धर्म से ज्ञान' से 'सरम' से 'करम' से और 'सच्च' से चल रही है।

'धरम' प्रकृति के नियमों के समूह को कहते हैं।

अर्थ —(परमात्मा ने) रात्रि ऋतुएँ, तिथियाँ वार पवन जल अग्नि पाताल आदि की रचना की। उन सब के बीच में पृथ्वी को धर्मशाला रूप में स्थापित किया। (अर्थात् पृथ्वी धर्मबद्ध है, धर्म-आश्रित है)। उस पृथ्वी में अनेक जीवों के विधान (युगति) और अनेक जातियाँ किस्म (रंग) निर्मित की। उन जीवों के (असंख्य रूप और) अनन्त नाम हैं। (देश काल नाम रूप का यह जगत्) प्रत्येक के कर्मानुसार चल रहा है और प्रत्येक के कर्मानुसार (परमात्मा) विचार करता है, (अर्थात् फल देता है)। फलदाता परमात्मा सच्चा है और उसका दरबार भी सच्चा है। उसके दरबार में पंच तन्मात्रायें (पंच परमाणु—पंच तत्त्वों के सूक्ष्म रूप) सुशोभित हैं। परमात्मा की कृपा एवं दया से उसका निशान (चिह्न) प्राप्त होता है। इस धरम खण्ड में कच्चे लोग (धर्म अग्नि द्वारा) पकाए जाते हैं। नानक कहते हैं कि वहाँ पहुँचने पर ही (लोग) देखे जायेंगे ॥ ३४ ॥

धरम खंड का एहो धरमु । गिआन खंड का आखहु करमु ॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस ।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस ॥
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस ।
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ॥

केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥ ३५ ॥

(इस प्रकार) धर्म-खण्ड का यह क्रम है—(जहाँ अपने लोग अपने कर्मानुसार पकाए जाते हैं)। (अब) ज्ञान-खण्ड की दशा (करम) का वर्णन किया जाता है। (ज्ञान-खण्ड की भूमिका में स्थिति होने पर प्रभु की शक्तियों का ज्ञान उत्पन्न होता है। यह भौतिक खण्ड नहीं मानसिक मण्डल है)। ज्ञानखण्ड में कितने ही वायु-देव वरुण-देव (पानी) अग्नि-देव कृष्ण महेश हैं। कितने ही ब्रह्मा हैं जो अनेक रचना रचते हैं तथा नाना रूप रंग के वेश उत्पन्न करते हैं। इसमें न मालूम कितनी कर्मभूमियाँ हैं कितने सुमेरु पर्वत हैं, कितने ही ध्रुव हैं जो ज्ञान उपदेश देते हैं। कितने ही इन्द्र हैं, चन्द्रमा हैं सूर्य हैं, कितने ही मण्डल और देश हैं। कितने ही सिद्ध बुद्ध नाथ देवी देवता दानव मुनि रत्न तथा समुद्र (उस ज्ञान खण्ड में) स्थित हैं। कितनी ही खानियाँ (उद्भिज अण्डज जेरज पिंडज) कितने प्रकार की वाणियाँ कितने ही बादशाह और राजे हैं। कितनी ही श्रुतियाँ हैं और कितने ही सेवक हैं। नानक कहते हैं कि इस प्रकार ज्ञान-खण्ड की सृष्टि का) अन्त नहीं है, अन्त नहीं है—'नेति-नेति' है ॥ ३५ ॥

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु । तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु ॥
सरम खंड की बाणी रूपु । तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ता कीआ गला कथीआ ना जाहि । जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि । तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥ ३६ ॥

ज्ञानखंड में ज्ञान की प्रचंडता रहती है। (ज्ञानखंड में ज्ञानीजन) नाद में अनुरक्त रहते हैं, विनोद कौतुक (कोड) आनन्द में निमग्न रहते हैं। 'सरम खंड' ('सरम' का तात्पर्य है लज्जा' प्रतिष्ठा के प्रति ध्यान) का साधन वाणी है अर्थात् 'सरम खंड' का स्वरूप वाणी है। (गुरुवाणी से ही इस भूमिका की प्राप्ति होती है)। उस भूमिका में (वाणी द्वारा) वस्तुओं की अनुपम रचना होती है। उस भूमिका की बातें कही नहीं जा सकतीं—अकथनीय हैं। जो कोई व्यक्ति कथन करने का प्रयास करता है, वह पीछे पछताता है (क्योंकि वह भूमिका कथन से परे है)। वहीं सुरति (स्मृति) मति मन एवं बुद्धि की रचना होती है। उसी स्थान पर देवताओं एवं सिद्धों की स्मृति की भी रचना होती है ॥ ३६ ॥

करम खंड की बाणी जोरु । तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महा बल सूर । तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि । ताके रूप न कथने जाहि ॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि । जिनकै रामु वसै मन माहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ । करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सच खंडि वसै निरंकारु । करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड । जे को कथै त अंत न अंत ॥

तिथै लोअ लोअ आकार । जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु । नानक कथना करड़ा सारु ॥ ३७ ॥

करम खंड की बाणी शक्ति है । [अर्थात् स्मरण द्वारा ही (साधक वृत्ति) शक्ति—परमात्मा की शक्ति—प्राप्त करती है] । करम खंड (कृपा खंड) में परमात्मा की शक्ति को छोड़ कर कुछ नहीं है । उस खंड में महाबली शूरवीर ही निवास करते हैं । उन सब में राम ही समाया हुआ है । वहाँ उसकी महिमा में सीता ही सीता है । उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता । जिनके मन में राम निवास करते हैं न वे मरते हैं और न (माया द्वारा) ठगे जाते हैं । वहाँ ऐसे भक्तों के कितने ही लोक बसे हैं । ऐसे भक्त सदैव आनन्द ही करते हैं क्योंकि सच्चा नाम उनके मन में बसा हुआ है ।

निरंकार परमात्मा का सच खंड में निवास है । अपनी कृपा-दृष्टि (नदरि) से वह (भक्तों को) देखता रहता है और (उन्हें) निहाल (प्रसन्न) करता है । 'सच खंड' में अनन्त खंड 'मंडल' और 'ब्रह्माण्ड' हैं । उन खण्डों मण्डलों और ब्रह्माण्डों का कोई भी अन्त नहीं है । ऐसा कोई नहीं है, जो उसके अन्त का कथन कर सके । वहाँ अनन्त लोक आकारवत हैं । किन्तु सब के सब उसके 'हुकम' के अनुसार अपने-अपने काम करते हैं । (शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति परमात्मा की इस अनन्तता को) देख-देख कर विचार करता है और प्रसन्न होता है । नानक कहते हैं कि (परमात्मा की इस अनन्त सृष्टि का) कथन करना उतना ही कठिन है जितना कि कठोर लोहे को चबाना ॥ ३७ ॥

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु । अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खला अगनि तपताउ । भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसालु । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।
नानक नदरी नदरि निहाल ॥ ३८ ॥

(हे साधक) संयम अथवा इन्द्रिय-दमन भट्ठी है और धैर्य सोनार है । बुद्धि निहाई है और गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान (वेद) हथौड़ी है । (गुरु अथवा परमात्मा का) भय ही धौंकनी है और तपस्या ही अग्नि है । प्रेम ही पात्र है, अमृत (भगवान् का नाम) (गलाया हुआ सोना) है । इस प्रकार सच्ची टकसाल (शुद्ध आत्मा) में गुरु के शब्द (सिक्के) ढालो । पर यह कर्म वे ही करते हैं, जिनके ऊपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है । नानक कहते हैं कि (परमात्मा की) एक कृपा-दृष्टि मात्र से (साधक) निहाल हो जाता है ।

विशेष —उपर्युक्त रूपक का भाव इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है —जैसे कभी सुनार इन्द्रिय दमन को भट्ठी बनावे । भट्ठी में आग होती है । काम-क्रोधादिक के रोकने से तेज उत्पन्न होता है । यही तेज अग्नि है । सुनार के पास निहाई होती है । उसी निहाई पर रख कर वह गरम सोने को हथौड़ी से कूटता है । साधक की निहाई यह बुद्धि है और उसकी हथौड़ी परमात्मा द्वारा प्रदत्त दिव्य ज्ञान है । सोनार धौंकनी से अग्नि को प्रदीप्त करता है । साधक की अग्नि प्रदीप्त करने की धौंकनी परमात्मा का भय है । अपने मन को विषयों से रोकना ही अग्नि का ताप है ।

सुनार के पास पात्र रहता है जिसमें वह गलाए हुए सोने को डाल देता है, जिससे वह सोने की मुहर तैयार हो जाती है । साधक का पात्र भाव अथवा प्रेम है और गलाया हुआ

सोना ही प्रसूत है। इस प्रकार जो अन्तःकरण में 'सच' को धारण करता है उसकी अन्तरात्मा टकसाल बन जाती है और उस टकसाल में सच्ची वाणी के पवित्र शब्द गढ़े जाते हैं।

पर यह सच्ची वाणी पवित्र शब्द गढ़ने का काम उन्हीं को करने को मिलता है, जिनके ऊपर उस परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है। गुरु नानक देव का कथन है कि परमात्मा की एक कृपा-दृष्टि से साधक निहाल हो जाता है ॥ ३८ ॥

सलोकु

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि।
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥ १ ॥

विशेष —यह सलोकु 'माझ की वार' में गुरु अंगद जी (महला २) द्वारा रचित लिखा गया है। केवल एकाध शब्दों का ही अन्तर है।

अर्थ — पवन गुरु है जल पिता है, महान् धरती माता (महत् ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ) है। दिन और रात दोनों ही दाई-दाया हैं। ('दाई' का लिंग दाया-दाई का पुल्लिङ्ग')। सारा जगत् (ब्रह्माण्ड इसी विराट् रचना में) खेल खेल रहा है। जो अच्छाइयाँ और बुराइयाँ (शुभ कर्म और मन्द करनी) की जाती हैं वे धर्म (परमात्मा के नियम) द्वारा बाँची जाती हैं (अर्थात् शुभ और अशुभ कर्मों के शुभ और अशुभ फल कर्मानुसार मिलते हैं)। सभी जीव अपने कर्मानुसार कर्म कर रहे हैं। कोई समीप है और कोई दूर है, (परमात्मा के लिए दूरी और समीपता का कोई प्रश्न ही नहीं है, वह सर्वज्ञ है)। (इस सृष्टि में जो व्यक्ति उसके आज्ञानुसार) नाम स्मरण करते हैं परिश्रम करते हैं, उनके मुख उजले होते हैं। गुरु नानक देव कहते हैं (कि ऐसे व्यक्ति स्वयं तो मुक्त ही होते हैं) किन्तु कितनों को ही (अपने प्रभाव से) मुक्त कर देते हैं ॥ १ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि

रागु सिरी रागु, महला पहिला १, घरु १

[१]

सबद

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ।
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ ।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥१॥
हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ ।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाउ ।
मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ ।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ २ ॥
सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ।
गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ ३ ॥
सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ ।
हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ ।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ ४ ॥ १ ॥

विशेष —तालों या सुरों के टिकाने के निमित्त गुरुवाणी मे १ से १७ घर दिए गए हैं। ये घर संगीतज्ञों के लिए गमन के संकेत है।

अर्थ ।—मोती के घर बनाए गए हों और उनमे रत्न जड़े गए हों। कस्तूरी केसर अगर और चन्दन आदि (सुगन्धित द्रव्यों) से इस प्रकार लिपे हों जिससे मन मे प्रसन्नता प्राप्त होती हो। (ऐ परमात्मा), ऐसे (मकानों को देख कर) मैं कहीं भुलावे अथवा धोखे मे न पड़ जाऊँ जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त मे न आवे ॥१॥

हरि के प्रेम के बिना यह जीव जल-बल जाय (नष्ट हो जाय)। मैंने अपने गुरु से यह भलीभांति पूछ कर देख लिया है कि (परमात्मा को छोड़ कर) कोई अन्य स्थल (मेरे लिए) नहीं है ॥१॥ रहाउ ॥

(इतना ऐश्वर्य हो कि) पृथ्वी हीरा और लालों से जड़ी हो और पलंग भी लाल से जड़े हो। मन को मोहित करने वाली (अति सुन्दरी स्त्री) हो जिसके मुख पर मणियाँ सुशोभित हों और वह आनन्द का प्रसार कर रही हो (अर्थात् प्रेम में नाना प्रकार के हाव भाव करती हो)। (किन्तु ऐ परमात्मा इन सब भोगों के होने पर भी) मैं कहीं भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आए ॥२॥

(मैं) सिद्ध बन जाऊँ और (सिद्धियों का चमत्कार लोगों के सामने) ला दूँ—प्रत्यक्ष कर दूँ—और साथ ही ऋद्धियों को आज्ञा दूँ कि मेरे पास आओ (और वे मेरी आज्ञा को सुन कर सामने उपस्थित हो जायें) मैं। (अपनी चमत्कारिणी शक्ति से इच्छा करने पर) गुप्त हो कर बैठ जाऊँ और फिर प्रकट हो जाऊँ। (इस प्रकार आश्चर्यकारिणी शक्ति देखकर) लोग मेरी श्रद्धा करने लगें। (किन्तु ऐ प्रभु, इन सब अलौकिक ऋद्धियों-सिद्धियों के होने पर भी) मैं कहीं भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ, जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आए ॥३॥

मैं सुल्तान हो जाऊँ लश्कर (फौज सेना) एकत्र कर लूँ और राज्य-सिंहासन (तख्त) पर पैर रक्खूँ (उसी पर) हुक्म करूँ और महसूल वसूल करने बैठूँ, किन्तु नानक कहते हैं (कि हे प्रभु, तेरे बिना यह सब ऐश्वर्य) हवा ही है (अर्थात् पवनवत क्षणभंगुर है)। (हे परमात्मा इन सब लौकिक और अलौकिक ऐश्वर्यों के प्राप्त करने पर भी मैं) कहीं भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आए ॥४॥१॥

[२]

कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ ।
चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ १ ॥
साचा निरंकारु निज थाइ ।
सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
कुसा कटीआ वार-वार पीसणि पीसा पाइ ।
अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ २ ॥
पंखी होइ कै जे भवा सै असमानी जाउ ।
नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ३ ॥
नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ ।
मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ॥ ४ ॥ २ ॥

(यदि मेरी आयु करोड़ों वर्ष की हो जाय और खाना-पीना भी वायु ही हो ऐसी कन्दरा बीच बैठूँ कि चन्द्रमा और सूर्य भी न देख सकें और सोने को स्वप्न में भी स्थान न मिले (अर्थात् निरन्तर जागता ही रहूँ) फिर भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) नहीं आँकी जा सकती। तेरे नाम को मैं कितना बड़ा बताऊँ ? ॥१॥

४]

ऐ बाबा (इस प्रकार की वाणी) बोलिए, जिससे प्रतिष्ठा प्राप्त हो। (परमात्मा के)
दरवाजे पर उत्तम (पुरुष) उत्तम कहे जाते हैं। (जो व्यक्ति) बुरा कर्म करते हैं, (वे उसके
दरवाजे के बाहर) बैठकर रोते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

सोने का रस (मोग) है, चाँदी का रस है, सुन्दरी स्त्री का रस (भोग) है, चंदन
आदि की सुगंधि का रस है, घोड़े का रस है, सेजों का रस है, (आलीशान) मकानों का रस है,
मांस का मीठा रस है। (इस प्रकार) शरीर के इतने रस (भोग) हैं। (शरीर इन्हीं भोगों में
अहर्निश रस लेता रहता है)। (भला बताओ,) किस प्रकार शरीर में नाम का निवास हो ? ॥२॥

जिस (प्रकार के) बोलने से प्रतिष्ठा प्राप्त हो, वही बोली प्रामाणिक है। ऐ मनजान
मूर्ख मन सुन फीका बोलने से (मनुष्य) नष्ट हो जाता है। जो (लोग) उसे (उस परमात्मा
को) अच्छे लगते हैं, वे ही अच्छे हैं। और (अन्य व्यक्ति) क्या कह सकते हैं ? ॥३॥

(वास्तव में) उन्हीं के (पास) बुद्धि है उन्हीं के प्रतिष्ठा है, उन्हीं के पास धन है,
जिनके हृदय में (परमात्मा) समाया हुआ है। उनकी क्या प्रशंसा की जाय ? (उनके बिना)
कोई अन्य व्यक्ति भी सुन्दर हो सकते हैं ? नानक कहते हैं कि बिना उसकी कृपा के (लोगों को)
न दान मिलता है न (प्रभु का) नाम ॥४॥४॥

[५]

अमलु गलोला कूड़ का दिता देवणहारि ।
मती मरणु विसारिआ खुसी कीती दिन चारि ॥
सचु मिलिआ तिन सोफीआ राखण कउ दरवारु ॥१॥
नानक साचे कउ सचु जाणु ।
जितु सेविऐ सुखु पाईऐ तेरी दरगह चलै माणु ॥१॥ रहाउ॥
सचु सरा गुड़ बाहरा जिसु विचि सचा नाउ ।
सुणहि वखाणहि जेतड़े हउ तिन बलिहारै जाउ ॥
ता मनु खीवा जाणीऐ जा महली पाए थाउ ॥२॥
नाउ नीरु चंगिआईआ सतु परमलु तनि वासु ।
ता मुखु होवै उजला लख दाती इक दाति ।
दूख तिसै पहि आखीअहि सूख जिसै ही पासि ॥३॥
सो किउ मनहु विसारीऐ जा के जीअ पराण ।
तिसु विणु सभु अपवित्रु है जेता पैनणु खाणु ॥
होरि गलां सभि कूड़ीआ तुधु भावै परवाणु ॥४॥ ५॥

देनेवाले द्वारा नशे का झूठा गोला दे दिया गया है (अर्थात् परमात्मा ने माया के
झूठे आकर्षणों में सारे प्राणियों को बाँध रक्खा है,), (जिसके फलस्वरूप) उनकी बुद्धि ने
मरणावस्था भुला दी है और (वे लोग) चार दिन की खुशियाँ मना रहे हैं। उन सूफियों को
सत्य दिया गया ताकि (वे सत्य के बल पर) (परमात्मा का दरबार) रख सकें। (अर्थात्
परमात्मा के निकट रह सकें ॥१॥

नानक कहते हैं कि सच्चे को सच्चा ही समझो। जिसकी आराधना करने से मुख की प्राप्ति होती है और (परमात्मा के) दरवाजे पर (व्यक्ति) मान से जाता है, (ऐ प्राणी, तू उसी परमात्मा की आराधना कर।) ॥१॥ रहाउ ॥

सच्य रूपी शराब म गुड़ नहीं पड़ता, (बल्कि गुड़ के स्थान पर) उसमे सच्चे नाम का (रस) रहता है। जो लोग इसे सुनते हैं, इसकी प्रशंसा करते हैं मैं उनकी बलैया लेता हूँ। मन को मस्त तभी जानना चाहिए, जब (उसे) (परमात्मा के) महल मे स्थान प्राप्त हो जाय ॥२॥

(जब) नाम रूपी जल (से स्नान करे) शुभ कर्म और सत्य के चन्दन से शरीर सुगन्धित करे, तभी मुख उज्ज्वल (पवित्र) होता है। यह देन लाखों देनों में एक ही है, (जो मनुष्य मात्र को ग्रहण करने योग्य है)। दुःख भी उसी (दाता से) निवेदन करना चाहिए, जिसके पास (अनन्त) सुख है ॥३॥

उसे मन से कैसे भुलाया जाय, जिसके समस्त जीव और प्राण हैं? उसके बिना जितना भी पहनना और खाना है, सब अपवित्र है। (हे हरी), जो तुझे अच्छा लगे वही प्रामाणिक है, अन्य सभी बातें झूठी हैं ॥४॥५॥

[६]

जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु ।
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु ॥
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु ॥१॥
बाबा एहु लेखा लिखि जाणु ।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु ॥१॥ रहाउ ॥
जिथै मिलहि वडिआईआ सद खुसीआ सद चाउ ।
तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाउ ॥
करमि मिलै ता पाईऐ नाही गली वाउ दुआउ ॥२॥
इकि आवहि इकि जाहि उठि रखीअहि नाव सलार ।
इकि उपाए मंगते इकना वडे दरवार ॥
अगै गइआ जाणीऐ विणु नावै वेकार ॥३॥
भै तेरै डरु अगला खपि खपि छिजै देह ।
नाव जिना सुलतान खान होदे डिठे खेह ॥
नानक उठी चलिआ सभि कूड़े तुटे नेह ॥४॥६॥

विशेष गुरु नानक देव जी जब गोपाल पंडित के पास पढ़ने गए, तो उन्होंने पंडित से कहा, 'पंडित जी मुझे वह विद्या पढ़ाइये जो परलोक में सुखदायिनी सिद्ध हो।' पंडित जी ने आश्चर्यान्वित होकर गुरु नानक देव जी से पूछा, 'वह विद्या कैसी है?" इस पर उन्होंने निम्नलिखित 'शबद' का उच्चारण किया।

अर्थ —मोह को जला कर (उसे) घिस कर स्याही बनाओ; बुद्धि को ही श्रेष्ठ कागज बनाओ; प्रेम की कलम बनाओ और चित्त को लेखक। गुरु से पूछ कर विचार पूर्वक

सिखो। नाम सिखो (नाम की) स्तुति सिखो और (साथ ही यह भी) सिखो (कि उस परमात्मा का) न तो अंत है और न सीमा ॥ १ ॥

अरे बाबा यही लेखा लिखना जानो। (क्योंकि) जहाँ (तुम्हारे कर्मों का) लेखा माँगा जायगा, वहाँ सही दस्तख़त भी किया जायगा (कि तुम्हारा लेखा ठीक और प्रामाणिक है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(लेखा ठीक होने पर) वहाँ (परमात्मा के यहाँ) बड़ाई होगी सदैव खुशी (होगी) और शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा। (परमात्मा के यहाँ) उन्हीं के मुख पर (प्रामाणिकता) के तिलक समाए जायँगे जिनके मन में सच्चा नाम है। प्रभु-कृपा हो तभी उसकी प्राप्ति होती है) व्यर्थ की इधर-उधर की बातों से नहीं ॥ २ ॥

कुछ तो (इस संसार में) आते हैं और कुछ 'सरदार' नाम रखवा कर उठ कर चल देते हैं। कुछ तो भिखारी उत्पन्न हुए हैं और कुछ (ऐसे उत्पन्न हुए हैं जिनके) बड़े-बड़े दरबार (लगते) हैं। आगे जाने पर ही (वास्तविकता) जानी जाती है। बिना नाम के (परमात्मा के दरबार में सारे ऐश्वर्य) व्यर्थ सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु) तेरे भय से मुझे बहुत अधिक भय है। (उसी भय में) मेरा शरीर खप खप कर छीज रहा है। जिनके नाम 'सुल्तान' और 'खान' थे (वे भी) खेह (राख) होते देखे गए। नानक कहते हैं कि (यहाँ से) उठ कर चलने पर सभी झूठे प्रेम टूट जाते हैं।

[७]

सभि रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे ।
खट तुरसी मुखि बोलणा मारण नाद कीए ।
छतीह अंम्रित भाउ एकु जा कउ नदरि करेइ ॥१॥
बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ।
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ॥
रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु ।
नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु ।
कमरबंदु संतोख का धनु जोबनु तेरा नामु ॥ २ ॥
बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु ।
जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ १ ॥ रहाउ ॥
घोड़े पाखर सुइने साखति बूझणु तेरी वाट ।
तरकस तीर कमाण सांग तेगबंद गुण धातु ॥
वाजा नेजा पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति ॥ ३ ॥
बाबा होरु चड़णा खुसी खुआरु ॥
जितु चड़िऐ तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ॥
घर मंदर खुसी नाम की नदरि तेरी परवारु ॥
हुकमु सोई तुधु भावसी होरु आखणु बहुतु अपारु ।
नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु ॥४॥

बाबा होर सउणा खुसी खुआरु ॥
जितु सुतै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ १ ॥ रहाउ ॥४॥ ७॥

(नाम के) मनन में सभी मीठे रस (प्राप्त हो जाते हैं) श्रवण म सलोना रस (नमकीन) मिल जाता है; मुख से उच्चारण करने में (सारे) खट्टे रसों (की प्राप्ति हो जाती है) और कीर्तन करने मे मसाले पड़ जाते हैं। (परमात्मा में) एक भाव—अनन्य प्रेम करने में छत्तीस प्रकार के अमृत सदृश भोजन की प्राप्ति हो जाती है। (परन्तु यह सब उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है) जिस पर उसकी कृपा होती है ॥ १ ॥

ऐ बाबा अन्य भोजन की खुशी बरबाद करनेवाली है जिनके खाने से शरीर पीड़ित होता है और मन मे विकार उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मन को (परमात्मा के चरणों में) अनुरक्त कर देना लाल पोशाक है। सत्य और दान सफेद पोशाक है, (हृदय की कालिमा) को दूर करना ही नीली पोशाक है तथा (हरी के चरणों का) ध्यान बड़ा जामा है। संतोष ही कमरबन्द और (हे हरी) तुम्हारा नाम ही धन और यौवन है ॥ २ ॥

ऐ बाबा अन्य पहनावे की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिनके पहनने से शरीर को पीड़ा होती है और मन में विकार होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तेरे मार्ग का ज्ञान होना ही घोड़े की काठी और सोने की म्यान है। (शुभ) गुणों की ओर दौड़ना ही तरकश बाण धनुष बरछी और तलवार की म्यान है। प्रतिष्ठा के साथ प्रकट होकर रहना ही बाजा और भाला है और तुम्हारी कृपा ही मेरी जाति है ॥ ३ ॥

ऐ बाबा अन्य प्रकार की सवारियों की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिन पर चढ़ने से शरीर को पीड़ा होती है और मन में विकार होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नाम की प्रसन्नता मेरा घर और महल है। तेरी कृपा-दृष्टि ही मेरा परिवार है। जो तुझे अच्छा लगे वही हुक्म है (हालांकि) अन्य बहुत से कथन हो सकते हैं। नानक कहते हैं कि सच्चा बादशाह (किसी अन्य से) पूछ कर विचार नहीं करता, (वह तो अपनी इच्छा से ही सारी बातें करता है) ॥ ४ ॥

ऐ बाबा अन्य प्रकार के सोने की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिस सोने से शरीर को पीड़ा होती है और मन में विकार होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

कुंगू की कांइआ रतना की ललिता अगरि वासु तनि सासु ।
अठसठि तीरथ का मुखि टिका तितु घटि मति विगासु ।
ओतु मती सालाहणा सचु नामु गुणतासु ॥ १ ॥
बाबा होर मति होर होर ।
जे सउ वेर कमाईऐ कूड़ै कूड़ा जोरु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
पूज लगै पीरु आखीऐ सभु मिलै संसारु ।
नाउ सदाए आपणा होवै सिधु सुमारु ॥
जा पति लेखै ना पवै सभा पूज खुआरु ॥ २ ॥

जिन कउ सतिगुरि थापिआ तिन मेटि न सकै कोइ ।
ओना अंदरि नामु निधानु है नामो परगटु होइ ॥
नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ अखंडु सदा सचु सोइ ॥ ३ ॥
खेहू खेह रलाईऐ ता जीउ केहा होइ ॥
जलीआ सभि सिआणपा उठी चलिआ रोइ ॥
नानक नामि विसारिऐ दरि गइआ किआ होइ ॥ ४ ॥ ८ ॥

केसर का शरीर हो और रत्नों की जीभ हो, तथा शरीर की साँस से अगर की सुगन्ध (निकल रही) हो, मुख के ऊपर अड़सठ तीर्थों की टीका हो। (तात्पर्य यह कि सारे तीर्थों का चक्कर लगा कर हर स्थान से टीका लगवा कर आया हो) और उसमें बुद्धि का (सुन्दर) विकास हो। गुणों के भण्डार (परमात्मा) के सच्चे नाम की प्रशंसा—स्तुति इस प्रकार की बुद्धि से करनी चाहिए ॥ १ ॥

ऐ बाबा (नाम के न समझने वाली) बुद्धि और हो और तरह की होती है। (यदि पूरी भावना से) सौ बार भी अभ्यास किया जाय तो झूठ की प्रबलता बढ़ती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पूजा होती हो (लोग पूजते हों), पीर कहलाते हों और सारा संसार मिलने के लिए आता हो (अपना) नाम खूब प्रसिद्ध किए हो सिद्धों में गणना की जाती हो, (किन्तु) यदि उसकी प्रतिष्ठा (परमात्मा) के लेखे में नहीं आती तो सारी पूजा व्यर्थ है ॥ २ ॥

जिन्हें सद्गुरु ने स्थापित कर दिया है, उन्हें कोई भी मेट नहीं सकता। उनके अन्तर्गत नाम का खजाना है और नाम ही (बाहर भी) प्रकट होता है। (ऐसे व्यक्ति) निरन्तर नाम की ही पूजा करते हैं, नाम का ही मनन करते हैं और सत्य में ही (रमण करते हैं) ॥ ३ ॥

(देहान्त हो जाने पर) धूल से धूल मिल जाती है, तो (ऐसी स्थिति में) जीव का क्या होता है? (यदि मनुष्य नाम से रहित है तो) उसकी सारी चतुराई भस्म हो जाती है और वह उठ कर रोता हुआ चल देता है। नानक कहते हैं कि नाम के भुलाने पर (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर क्या होगा? ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

गुणवंती गुण वीथरै अउगुणवंती झूरि ।
जे लोड़हि वरु कामणी नह मिलीऐ पिर कूरि ॥
ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना पाईऐ पिरु दूरि ॥ १ ॥
मेरे ठाकुर पूरै तखति अडोलु ।
गुरमुखि पूरा जे करे पाईऐ साचु अतोलु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
प्रभु हरिमंदरु सोहणा तिसु महि माणक लाल ।
मोती हीरा निरमला कंचन कोट रीसाल ॥
बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ गुर हरि धिआन निहाल ॥ २ ॥
गुरु पउड़ी बेड़ी गुरू गुरु तुलहा हरि नाउ ।
गुरु सरु सागरु बोहिथो गुरु तीरथु दरीआउ ॥
जे तिसु भावै ऊजली सतसरि नावणु जाउ ॥ ३ ॥

पूरो-पूरो आखीऐ पूर तखति निवास ।
पूरै थानि सुहावणै पूरै आस निरास ॥
नानक पूरा जे मिलै किउ घाटै गुणतास ॥ ४ ॥ ९ ॥

गुणवती स्त्री अपने गुणों का विस्तार करती है, किन्तु अवगुणोंवाली स्त्री दुखी होती है। हे कामिनी यदि तू प्रियतम (पति) से मिलने की इच्छा करती है, तो वह झूठे साधनों से नहीं प्राप्त होगा। प्रियतम दूर है; (तेरे पास) न नाव है, न छोटी किश्ती (अतएव तू) उस तक नहीं पहुँच सकेगी ॥ १ ॥

मेरा पूर्ण ठाकुर (परमात्मा) अपने तख्त पर अडोल है। यदि पूर्ण गुरु यो करे (अर्थात् युक्ति बतावे) तो सच्चे और अडोल (परमात्मा) की प्राप्ति हो सकती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मेरे) प्रभु का हरि-मंदिर (बड़ा ही) सुहावना है उसमें (नाना प्रकार के) माणिक्य और लाल हैं। उसके सोने के सुन्दर दुर्ग में (असंख्य) मोती और निर्मल हीरे हैं। (प्रश्न यह है—) बिना सीढ़ी के उस कोट पर किस प्रकार चढ़ूँ? (इसका उत्तर यह है—) गुरु का हरी का ध्यान (करो) (इससे सीढ़ी प्राप्त हो जायगी और) (तू हरी को) देख लेगा ॥२॥

गुरु ही सीढ़ी है गुरु ही नाव है, गुरु ही छोटी नाव है और हरि नाम है। गुरु ही सरोवर है, सागर है जहाज है गुरु ही तीर्थ है (और) समुद्र है। यदि (जीवात्मा रूपी स्त्री को परमात्मा) प्यारा लगता है, तो (वह) बहुत ही उज्ज्वल है (और) वह सच्चे सरोवर में स्नान करने वाली है ॥ ३ ॥

वह पूर्ण (परमात्मा) पूर्ण कहा जाता है और उसका निवास भी पूर्ण तख्त पर है। (उसका) स्थान पूर्ण और सुहावना है, वह निराश (व्यक्तियों की) आशा भी पूरी करता है। नानक कहते हैं कि यदि (किसी को) पूर्ण (परमात्मा) मिल जाता है, तो (उसके) गुण क्यों घटेंगे? (उसके गुण तो नित्य-नित्य बढ़ेंगे।) ॥ ४ ॥ ९ ॥

[१०]

आवहु भैणे गलि मिलह अंकि सहेलड़ीआह ।
मिलि कै करह कहाणीआ संम्रथ कंत कीआह ।
साचे साहिब सभि गुण अउगुण सभि असाह ॥ १ ॥
करता सभु को तेरै जोरि ।
एकु सबदु बीचारीऐ जा तू ता किआ होरि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जाइ पुछहु सोहागणी तुसी राविआ किनी गुणी ।
सहजि संतोखि सीगारीआ मिठा बोलणी ॥
पिरु रीसालू ता मिलै जा गुर का सबदु सुणी ॥ २ ॥
केतीआ तेरीआ कुदरती केवड तेरी दाति ।
केते तेरे जीअ जंत सिफति करहि दिन राति ॥
केते तेरे रूप रंग केते जाति अजाति ॥ ३ ॥
सचु मिलै सचु ऊपजै सच महि साचि समाइ ॥

सुरति होवै पति ऊगवै गुरबचनी भउ खाइ।
नानक सचा पातिसाहु आपे लए मिलाइ ॥ ४ ॥ १० ॥

(मेरी) बहनो (मेरी) सहेलियो आओ गले लग कर आलिंगन करो। (मुझसे) मिलकर (मेरे) समर्थ कंत (प्रियतम परमात्मा) की कहानियाँ कहो। (मेरे) सच्चे स्वामी में सभी गुण हैं, हम में तो सभी अवगुण ही हैं ॥ १ ॥

हे कर्त्ता सभी (प्राणियों) का तेरा ही जोर है। एक बात विचार कीजिए—यदि तू है तो अन्य क्या है ? (यदि सर्वशक्तिमान् किसी ने तुम्हारा आश्रय ले लिया तो उसे अन्य आश्रयों की क्या आवश्यकता है) ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जाकर उस सोहागिनी से पूछो कि तुम किन गुणों द्वारा (अपने प्रियतम से) रमण की गई ? (इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें यही मिलेगा।)

'सहजावस्था एवं संतोष रूपी शृङ्गार एवं मीठी बोली से (मैंने प्रियतम के साथ रमण किया है)। रसिक प्रियतम तभी मिलता है जब गुरु का उपदेश (शब्द) सुना जाय।" ॥ २ ॥

(हे प्रभु,) तेरी कुदरत कितनी (महान्) है ? तेरे दान कितने बड़े हैं ? (हे प्रभु, तुम द्वारा रचे गए) कितने जीव-जंतु हैं, जो दिन-रात तेरी प्रशंसा करते हैं ? (तुम द्वारा निर्मित) कितने रूप रंग और कितनी जातियाँ-अजातियाँ हैं ? (अर्थात् उनकी गणना नहीं की जा सकती। वे अनन्त हैं) ॥ ३ ॥

सत्य (परमात्मा) के मिलने पर ही गुण (मनु) प्रसन्न होता है। (इस प्रकार) सच्चा (साधक) सच्चे (परमात्मा) में ही समा जाता है। जब (साधक) गुरु के वचनों द्वारा (परमात्मा से) भय खाता है, तो (उसे) सुरति प्राप्त होती है और (परमात्मा के यहाँ) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। नानक कहते हैं कि सच्चा बादशाह (प्रभु) स्वयं अपने में (साधक को) मिला लेता है ॥ ४ ॥ १ ॥

[११]

भली सरी जि उबरी हउमै मुई घराहु।
दूत लगे फिरि चाकरी सतिगुर का वेसाहु ॥
कलप तिआगी बादि है सचा वेपरवाहु ॥ १ ॥
मन रे सचु मिलै भउ जाइ।
भै बिनु निरभउ किउ थीऐ गुरमुखि सबदि समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
केता आखणु आखीऐ आखणि तोटि न होइ।
मंगण वाले केतड़े दाता एको सोइ ॥
जिसके जीअ पराण हहि मनि वसिऐ सुखु होइ ॥ २ ॥
जगु सुपना बाजी बनी खिन महि खेलु खेलाइ।
संजोगी मिलि एकसे विजोगी उठि जाइ ॥
जो तिसु भाणा सो थीऐ अवरु न करणा जाइ ॥ ३ ॥
गुरमुखि वसतु वेसाहीऐ सचु वखरु सचु रासि।

जिनी सचु वणजिआ गुर पूरे साबासि ॥
नानक वसतु पछाणसी सचु सउदा जिसु पासि ॥ ४ ॥ ११ ॥

(यह) भली बात हुई जो मैं बच गई और शरीर से अहंता मर गई। सद्गुरु का विश्वास—भरोसा हो गया तो (मन के) दूत उलट कर मेरी चाकरी करने लगे। जब सच्चे बेपरवाह (परमात्मा की प्राप्ति हो गई) तो मैंने (सारी) कल्पनाओं और वाद-विवाद का परित्याग कर दिया ॥ १ ॥

अरे मन (जब) सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति हो जाती है, (तो सारे) भय चले जाते हैं। (साधक) बिना भय के निर्भय पद कैसे प्राप्त कर सकता है? (अर्थात् निर्भय पद प्राप्ति के लिए गुरु अथवा परमात्मा का भय आवश्यक है) गुरु द्वारा दिए गए उपदेश से ही (शिष्य) 'शब्द' में समा जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(प्रभु के सम्बन्ध में) कितना ही कथन क्यों न किया जाय (किन्तु) कथन से उसमें कमी नहीं आ सकती। माँगनेवाले तो कितने ही हैं, (किन्तु) दाता अकेला वही है। जिसके (समस्त) जीव और प्राण हैं (उसी के) मन में बसने से सुख होता है ॥ २ ॥

जगत् स्वप्न है (और यहाँ) खेल की बाजी लगी है क्षण मात्र में (परमात्मा) खेल खिलाता है। संयोग के नियमानुसार (जीव परमात्मा से) मिलते हैं, और (उससे) वियोग होने पर उठ कर चल देते हैं। जो उसे अच्छा लगता है, वही होता है, (उसके अतिरिक्त) अन्य (वस्तुएँ) नहीं की जा सकतीं ॥ ३ ॥

गुरमुख द्वारा वस्तु (नाम रूपी वस्तु) खरीदी जाती है। (यह वस्तु) सच्चा सौदा है और सच्ची पूँजी (रासि) है। जिन्होंने सत्य का व्यापार किया है, (उनके ऊपर) गुरु की (पूर्ण) प्रसन्नता होती है। नानक कहते हैं जिनके पास सच का सौदा है वे ही (असली) वस्तु पहचानते हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥

[१२]

धातु मिलै फुनि धातु कउ सिफती सिफति समाइ ।
लालु गुलालु गहबरा सचा रंगु चड़ाउ ।
सचु मिलै संतोखीआ हरि जपि एकै भाइ ॥ १ ॥
भाई रे संत जना की रेणु ।
संत सभा गुरु पाईऐ मुकति पदारथु धेणु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
ऊचउ थानु सुहावणा ऊपरि महलु मुरारि ।
सचु करणी दे पाईऐ दरु घरु महलु पिआरि ॥
गुरमुखि मनु समझाईऐ आतम रामु बीचारि ॥ २ ॥
त्रिबिधि करम कमाईअहि आस अंदेसा होइ ।
किउ गुर बिनु त्रिकुटी छुटसी सहजि मिलिऐ सुखु होइ ।
निज घरि महलु पछाणीऐ नदरि करे मलु धोइ ॥ ३ ॥
बिनु गुर मलु न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु ।

धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोधु ॥
करमि मिलै सचु पाईऐ गुरमुखि सदा निरोधु ॥ ३ ॥
सची कारै सचु मिलै गुरमति पलै पाइ ।
सो नरु जमै ना मरै ना आवै ना जाइ ॥
नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाइ ॥ ४ ॥ १४ ॥

विशेष —कहते हैं कि गुरु नानक देव ने एक मृत व्यक्ति को देख कर इस शब्द का उच्चारण किया।

अर्थ —(यदि शरीर से) जीव निकल जाता है, तो (यह) देह सूनी और डरावनी हो जाती है। जलती हुई अग्नि बुझ जाती है (जीवन की सत्ता नष्ट हो जाती है) और कुछ भी धुँआ नहीं निकलता (प्राण समाप्त हो जाते हैं)। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, त्वचा एवं रसना) अथवा शरीर के पंच तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी) दुःख से भरे हुए रोने लगे। [पंच सम्बन्धी ये हैं—माता, पिता, भाई, स्त्री एवं पुत्र]। (वे) द्वैत भाव में पड़ने से नष्ट हो गए ॥ १ ॥

हे मूर्ख ! गुणों को संभालते हुए राम जपो। हउमै (अहंकार) और ममता सभी को मोह रही है। सारी (सृष्टि) अहंकार में ठगी गई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने दूसरे कार्यों में लगकर नाम भुला दिया (वे) द्वैतभाव में पड़कर जल कर मर जाते हैं (उनके) अंतर्गत तृष्णा की अग्नि (जलती रहती है)। (जिनकी) गुरु रक्षा करता है, वे ही बचते हैं, अन्य लोग (सांसारिक) धन्धों में पड़ कर धोखा खाते हैं और ठग लिए जाते हैं ॥ २ ॥

(सांसारिक) प्रीति मर जाती है (सांसारिक) प्यार भी समाप्त हो जाता है (और) वैर-विरोध भी मर जाते हैं, (सांसारिक) धंधे थक जाते हैं अहंता मर जाती है (और) ममता, माया, क्रोध भी (दूर हो जाते हैं)। (परमात्मा की) कृपा से ही सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति होती है (और) गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) सदैव (विषयों से मन का) निरोध करता रहता है ॥ ३ ॥

सत्य कर्मों से सत्य परमात्मा मिलता है और गुरु की मति द्वारा (शिष्य) के पल्ले (परमात्मा) पड़ जाता है। ऐसा नर न जन्म लेता है न मरता है और न (कहीं) आता जाता है। (वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है)। नानक कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति (परमात्मा के) दरबार पर प्रधान हो जाता है (और) वह (वहाँ) दरबार पर प्रतिष्ठा के वस्त्र पहनाया जाता है। ॥ ४ ॥ १४ ॥

[१५]

तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूरु ।
अउगुण फिरि लागू भए कूरि वजावै तूरु ॥
बिनु सबदै भरमाईऐ दुबिधा डोबे पूरु ॥ १ ॥
मन रे सबदि तरहु चितु लाइ ।
जिनि गुरमुखि नामु न बूझिआ मरि जनमै आवै जाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तनु सूचा सो आखीऐ जिसु महि साचा नाउ ॥
भै सचि राती देहुरी जिहवा सचु सुआउ ॥
सची नदरि निहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ॥ २ ॥
साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ ।
जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि-घटि जोति समोइ ॥
निरमलु मैला ना थीऐ सबदि रते पति होइ ॥ ३ ॥
इहु मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि ।
पंच भूत सचि भै रते जोति सची मन माहि ॥
नानक अउगुण वीसरे गुरि राखे पति ताहि ॥ ४ ॥ १५ ॥

शरीर जल-जल कर मिट्टी हो गया है, मन माया में मोहित होकर मोर्चा भी लग हो गया है। अवगुण फिर से पीछे पड़ गए हैं और झूठ तुरही बजाने लगा है। (इस प्रकार) बिना (गुरु के) शब्द के (मनुष्य) भटकता फिरता है। द्वैतभाव नाव के बोझे को डुबो डालता है ॥१॥

अरे मन, (गुरु के) शब्द द्वारा पार उतर जाओ। जिसने गुरु के मुख द्वारा नाम नहीं समझा (वह बारम्बार) मरता और जन्मता है और आता जाता रहता है ॥ १॥ रहाउ ॥

वही पवित्र (सूचा) शरीर कहलाता है, जिसमें सच्चा नाम (रहता) है। (ऐसा) शरीर (परमात्मा के) भय और सत्य में अनुरक्त रहता है और जीभ को सच्चा स्वाद आता है। (ऐसा व्यक्ति) सच्ची कृपा-दृष्टि से देखा जाता है (और वह) फिर ताप नहीं पाता ॥ २ ॥

सत्य (परमात्मा) से पवन उत्पन्न हुआ और पवन से जल की उत्पत्ति हुई। जल से त्रिलोक (आकाश, पाताल, मर्त्यलोक) का निर्माण किया गया। (इस प्रकार) प्रत्येक घट में (उसी सत्यस्वरूप परमात्मा की) ज्योति व्याप्त है। निर्मल (व्यक्ति) (कभी) अपवित्र (मैला) नहीं होता, शब्द में रत होने से प्रतिष्ठा होती है। ३ ॥

(यदि परमात्मा अपनी) कृपादृष्टि इसके ऊपर कर दे (तो) यह मन सत्य में संतुष्ट हो जाता है। पंच भूत (पंच भूत निर्मित शरीर) सत्य स्वरूप परमात्मा के भय में रत हो जाते हैं और मन में सच्ची ज्योति (का निवास हो जाता है)। नानक कहते हैं कि उसके सारे अवगुण भूल जाते हैं; जिसकी गुरु रक्षा करता है, उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ ४ ॥ १५ ॥

[१६]

नानक बेड़ी सच की तरीऐ गुर वीचारि ।
इकि आवहि इकि जावही पूरि भरे अहंकारि ॥
मनहठि मती बूडीऐ गुरमुखि सचु सु तारि ॥ १ ॥
गुर बिनु किउ तरीऐ सुखु होइ ।
जिउ भावै तिउ राखु तू मै अवरु न दूजा कोइ ॥ रहाउ ॥
आगै देखउ डउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु ।
जिस ते उपजै तिस ते बिनसै घटि घटि सचु भरपूरि ॥
आपे मेलि मिलावही साचै महलि हदूरि ॥ २ ॥
साहि साहि तुझु संमला कदे न विसारेउ ।

जिउ जिउ साहिबु मनि वसै गुरमुखि अम्रितु पेउ ॥
मनु तनु तेरा तू धणी गरबु निवारि समेउ ॥ ३ ॥
जिनि एहु जगतु उपाइआ त्रिभवणु करि आकारु ।
गुरमुखि चानणु जाणीऐ मनमुखि मुगधु गुबारु ॥
घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु ॥ ४ ॥
गुरमुखि जिन्ही जाणिआ तिन कीचै साबासि ।
सचे सेती रलि मिले सचे गुण परगासि ॥
नानक नामि संतोखीआ जीउ पिंड प्रभ पासि ॥ ५ ॥ १६ ॥

नानक कहते हैं कि गुरु के ध्यान से सत्य की नाव पर (बैठ कर) (भवसागर को) पार हो जाओ । पूर्ण अहंकार से भरे हुए कुछ लोग (इस संसार में) आते हैं और कुछ चले जाते हैं । मनमानी बुद्धि से (काम करने वाले लोग) डूब जाते हैं, गुरु के सच्चे उपदेशानुसार (कार्य करनेवाले व्यक्ति) तर जाते हैं ॥ १ ॥

गुरु के बिना कैसे तरा जाय और कैसे सुख प्राप्त किया जाय ? (हे हरी) जैसा तुम्हें अच्छा लगे वैसा रख मेरे तो (तुम्हें) छोड़कर और कोई दूसरा नहीं है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आगे देखता हूँ तो दावाग्नि जल रही है और पीछे (देखता हूँ) तो अंकुर हरे हो रहे हैं । जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी में विलीन हो रहे हैं। घट-घट में वह सत्य परिपूर्ण है । (अपने) सच्चे महल में स्वयं (प्रभु ही) मेल मिलाता है (और अपने) समीप (रखता) है ॥ २ ॥

साँस-साँस में मैं तुम्हें स्मरण करूँ और कभी न भूलूँ । जैसे-जैसे साहब मन में बसता जाता है, वैसे-वैसे गुरमुख अमृत रस (हरि-प्रेम रूपी अमृत) पीता है । तू स्वामी है (यह) मन तन तेरा ही है । (मेरे) गर्व को नष्ट करके अपने में मिला ले ॥ ३ ॥

जिसने इस जगत् की उत्पत्ति की है, (उसी ने) त्रिभुवन की भी रचना की है । गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) उस प्रकाश (हरी) को जानता है; मूर्ख मनमुख को तो अंधेरा ही रहता है । घट-घट में उस शाश्वत ज्योति को, उस तत्त्व को गुरु की शिक्षा द्वारा ही शिष्य जानता है ॥ ४ ॥

गुरु के उपदेश द्वारा जिन्होंने (उस परम तत्त्व को) जान लिया, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए । (वे) सत्य (परमात्मा) से मिल कर एक हो गए हैं और सच्चे ही गुणों का प्रकाश करते हैं । नानक कहते हैं वे नाम से संतुष्ट हो जाते हैं (और उनका) जीव और शरीर सब प्रभु के पास है—(प्रभु की सेवा में अर्पित है) ॥ ५ ॥ १६ ॥

[१७]

सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु वेला है एहु ।
जब लगु जोबनि सासु है तब लगु इहु तनु देहु ॥
बिनु गुण कामि न आवई ढहि ढेरी तनु खेहु ॥ १ ॥
मेरे मन लै लाहा घरि जाहि ।
गुरमुखि नामु सलाहीऐ हउमै निवरी भाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ लिखि पड़ि बुझहि भारु ।

त्रिसना अहिनिसि अगली हउमै रोगु विकारु ॥
ओहु वेपरवाहु अतोलवा गुरमति कीमति सारु ॥ २ ॥
लख सिआणप जे करी लख सिउ प्रीति मिलापु ।
बिनु संगति साध न ध्रापीआ बिनु नावै दूख संतापु ॥
हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि चीनै आपु ॥ ३ ॥
तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि ।
त्रिभवणु खोजि ढंढोलिआ गुरमुखि खोजि निहालि ।
सतगुरि मेलि मिलाइआ नानक सो प्रभु नालि ॥ ४ ॥ १७ ॥

विशेष :—यह शब्द गुरु नानक देव ने भाई लहना (बाद में गुरु अंगद देव, सिक्खों के दूसरे गुरु) से उस समय सुनाया जब वे गुरु नानक देव से पहले-पहल मिले थे।

अर्थ :—ऐ प्यारे मित्र, सुनो प्रियतम से मिलो यही उसके (मिलन की) वेला है। जब तक यौवन है, साँस है (जीवन है) तभी तक यह शरीर है, देह है। बिना गुणों के (यह शरीर) काम नहीं आता यह तन ढह-ढह कर खाक हो जाता है ॥ १ ॥

हे मेरे मन लाभ प्राप्त कर घर जाओ। गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) (जब) नाम की प्रशंसा करता है, (तो) उसके अहंकार की अग्नि निवृत्त हो जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(सांसारिक प्राणी) सुन-सुनकर उधेड़-बुन में लगा रहता है और लिख-लिख कर, पढ़-पढ़ कर समझ-समझ कर (विद्याओं का) भार (लादता है)। (परन्तु फिर भी) तृष्णा रात-दिन बढ़ती ही रहती है और अहंकार का रोग विकार (उत्पन्न करता है)। वह चिन्तारहित (परमात्मा) अतोल है, गुरु की शिक्षा द्वारा उसकी वास्तविक कीमत मिलती है ॥ २ ॥

चाहे मैं लाखों चतुराइयाँ करूँ और लाखों (मनुष्यों) से प्रीति तथा मेल करूँ (तथापि) बिना साधु-संगति के सन्तोष नहीं प्राप्त होता और बिना नाम के दुःख और संताप (बने रहते हैं)। हरि-जप से ही जीव का छुटकारा होता है—मुक्ति होती है, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) अपने को पहचानता है ॥ ३ ॥

तन और मन गुरु के पास बेच देना चाहिए। (साथ ही गुरु के चरणों में) मन के साथ सिर भी दे देना चाहिए। (जिसे मैं) तीनों भुवनों में ढूँढ-ढूँढ कर खोजता था उसे (मैंने) गुरु के द्वारा खोज कर प्रत्यक्ष देख लिया। नानक कहते हैं कि उस प्रभु के साथ सद्गुरु ने ही मिलाप कराया ॥ ४ ॥ १७ ॥

[१८]

मरणै की चिंता नही जीवण की नही आस ।
तू सरब जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास ॥
अंतरि गुरमुखि तू वसहि जिउ भावै तिउ निरजासि ॥ १ ॥
जीअरे राम जपत मनु मानु ।
अंतरि लागी जलि बुझी पाइआ गुरमुखि गिआनु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
अंतर की गति जाणीऐ गुर मिलीऐ संक उतारि ।
मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि ॥

अनहद सबद सुहावणो पाईऐ गुर वीचारि ॥ २ ॥

अनहद बाणी पाईऐ तह हउमै होइ बिनासु ।
सतगुरु सेवे आपणा हउ सद कुरबाणै तासु ॥
खड़ि दरगह पैनाईऐ मुखि हरिनाम निवासु ॥ ३ ॥

जह देखा तह रवि रहे सिव सकती का मेलु ।
त्रिहु गुण बंधी देहुरी जो आइआ जगि सो खेलु ॥
बिजोगी दुखि विछुड़े मनमुखि लहहि न मेलु ॥ ४ ॥

मनु बैरागी घरि वसै सच भै राता होइ ।
गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होइ ॥
नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुखु न होइ ॥ ५ ॥ १८ ॥

(मुझे) न मरने की चिन्ता है और न जीने की आशा । (हे परमात्मा), तू सभी जीवों का भरण-पोषण करता है । (सारे जीवों के) श्वास और ग्रास का लेखा तेरे पास है । (सारी आयु के श्वास तेरे हिसाब में हैं) । गुरु द्वारा तू हमारे अंतर्गत आकर निवास करता है, जिस प्रकार तुझे अच्छा लगता है उसी प्रकार निर्णय करता है ॥ १ ॥

अरे जीव राम जपने से ही मन मानता है—स्थिर होता है । (जब) गुरु के उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्त हो जाता है, (तो) अंतर की लगी हुई जलन बुझ जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे शिष्य जो गुरु) अन्तर की व्यथा जानता है, उस गुरु से भ्रम त्याग कर मिलो । जिस घर (अवस्था) में मरकर पहुँचना होता है, (उस अवस्था की प्राप्ति के लिए) जीवित ही (अंध वासनाओं को) मार कर मरो । सुहावने अनहद शब्द की प्राप्ति (गुरु के उपदेश पर) विचार करने से होती है ॥ २ ॥

यदि अनहद वाणी (शब्द) की प्राप्ति हो जाती है, तो हउमै (अहंकार) का नाश हो जाता है । (जो व्यक्ति) सद्गुरु की सेवा करता है, (मैं) उसके ऊपर कुरबान हो जाता हूँ । जिनके मुख में हरिनाम का निवास है, (उन्हें) परमात्मा के दरवाजे पर खड़ा करके प्रतिष्ठा की पोशाक पहनाई जाती है ॥ ३ ॥

जहाँ देखता हूँ, वहीं शिव और शक्ति (पुरुष-प्रकृति) का मेल है; (अतएव उस मेल से रची हुई सृष्टि के अंतर्गत भी) परमात्मा व्याप्त है । (समस्त) शरीर तीन (सत्व रज तम) गुणों के अंतर्गत बँधे हुए हैं, जो भी (इस संसार में) आता है वह (इसी सीमा में) खेलता है । (जो) मनमुख हैं वे वियोग (का मार्ग पकड़े हुए हैं) (अतएव) दुख में (परमात्मा के व्यापक होते हुए भी) बिछुड़े रहते हैं उन्हें संयोग का मार्ग मिलता ही नहीं ॥ ४ ॥

(यदि) वैरागी मन सत्य और (परमात्मा के) भय में अनुरक्त हो जाय (और इधर-उधर के भटकने को त्याग कर) अपने घर (आत्म स्वरूप) में स्थित हो जाय तो वह ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) के महारस को भोगता है और उसे फिर (सांसारिक) भूख नहीं लगती । नानक कहते हैं कि (ऐ साधक) इस मन को मारो (और परमात्मा से) मिलो (इससे तुम्हें) कभी फिर दुख न होगा ॥ ५ ॥ १८ ॥

[१९]

एहु मनो मूरखु लोभीआ लोभे लगा लोभानु।
सबदि न भीजै साकता दुरमति आवनु जानु॥
साधु सतगुरु जे मिलै ता पाईऐ गुणी निधानु॥ १॥
मन रे हउमै छोडि गुमानु।
हरिगुरु सरवरु सेवि तू पावहि दरगह मानु॥ १॥ रहाउ॥
रामनामु जपि दिनसु राति गुरमुखि हरि धनु जानु॥
सभि सुख हरि रस भोगणे संत सभा मिलि गिआनु॥
निति अहिनिसि हरि प्रभु सेविआ सतगुरि दीआ नामु॥ २॥
कूकर कूड़ु कमाईऐ गुरनिंदा पचै पचानु।
भरमे भूला दुखु घणो जमु मारि करै खुलहानु॥
मनमुखि सुखु न पाईऐ गुरमुखि सुखु सुभानु॥ ३।
एथै धंधु पिटाईऐ सचु लिखतु परवानु॥
हरि सजणु गुरु सेवदा गुर करणी परधानु॥
नानक नामु न वीसरै करमि सचै नीसाणु॥ ४॥ १९।

यह मन मूर्ख और लोभी है और लोभ में लुभायमान हो रहा है। यह शाक्त (शक्ति—माया का उपासक) (गुरु के) शब्द में भी नहीं भीगता (अनुरक्त होता) है। (वह अधर्मी) दुर्मति से बारम्बार आता और जाता रहता है (आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है)। यदि साधु सद्गुरु से मिल जाय तो गुणों के निधान (परमात्मा) की प्राप्ति होती है॥ १॥

ऐ मन हउमै (अहंकार) और गुमान को छोड़ दो। हरिगुरु रूपी सरोवर की सेवा (उपासना) करो, (जिससे) तुम (परमात्मा के) दरवाजे पर मान प्राप्त करो॥ १॥ रहाउ॥

गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) दिन रात 'राम नाम' जप कर हरि रूपी धन को जान लेता है। हरि रस के आस्वादन से सारे सुखों (की प्राप्ति हो जाती है); संतों की सभा में (ही) ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) (प्राप्त होता है)। जिसे सद्गुरु ने (कृपा करके) (परमात्मा का) नाम दे दिया है, (वह) शिष्य अहर्निश प्रभु हरी की उपासना करता रहता है॥ २॥

(मनमुख) कुत्ते की तरह झूठ ही कमाता है। (वह) गुरु निन्दा करके नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। (वह) भ्रम में भटकता रहता है और महान् दुःख (पाता रहता है) और अन्त में यम (उसे) मार कर खलिहान कर देता है (चूर-चूर कर देता है)। मनमुख को सुख नहीं प्राप्त होता है। गुरु के उपदेश द्वारा पवित्र बने (शिष्य) को सुख मिलता है॥ ३॥

(मनमुख) यहाँ (इस संसार में) तो धंधे में लगा रहता है, (जिससे नष्ट होता है)। किन्तु वहाँ (परमात्मा के दरवाजे पर) सच्ची (करनी) की लिखावट ही प्रामाणिक समझी जाती है। (सच्चा साधक) हरि के मित्र गुरु की ही सेवा करता है; उसके लिए गुरु की करनी ही सबसे प्रधान (साधना) है। नानक कहते हैं (जो) नाम नहीं भूलता है, (उसके ऊपर) परमात्मा की कृपा से सच्चा निशान लगता है। (अर्थात् वह प्रामाणिक समझा जाता है)॥ ४॥ १९॥

[२०]

इकु तिलु पिआरा वीसरै रोगु वडा मन माहि ।
किउ दरगह पति पाईऐ जा हरि न वसै मन माहि ॥
गुरि मिलिऐ सुखु पाईऐ अगनि मरै गुण माहि ॥ १ ॥
मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि ।
जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जोती जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु ॥
हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु ॥
गुरमुखि जिसु मनि हरि वसै तिसु मेले गुरु संजोगु ॥ २ ॥
काइआ कामणि जे करी भोगे भोगणहारु ।
तिसु सिउ नेहु न कीजई जो दीसै चलणहारु ॥
गुरमुखि रवहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतारु ॥ ३ ॥
चारे अगनि निवारि मरु गुरमुखि हरि जलु पाइ ।
अंतरि कमलु प्रगासिआ अंम्रितु भरिआ अघाइ ॥
नानक सतगुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाइ ॥ ४ ॥ २ ॥

(यदि) प्रियतम एक तिल (रंच मात्र) भी विस्मृत हो जाता है (तो मेरे) मन में बड़ा रोग (उत्पन्न हो जाता है)। जिसके मन में हरि नहीं निवास करता (उसे भला) (परमात्मा के) दरवाजे पर किस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है ? गुरु से मिलने पर ही सुख की प्राप्ति होती है और (परमात्मा के) गुण में (तृष्णा की) अग्नि शान्त हो जाती है ॥ १ ॥

अरे मन अहर्निश परमात्मा के गुणों को स्मरण करो। ऐसे व्यक्ति संसार में विरले ही हैं, जिन्हें क्षण और पल भर भी नाम नहीं विस्मृत होता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि) (जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की ज्योति से) मिला दी जाय और (जीवात्मा की) सुरति (गुरु की) सुरति से संयुक्त कर दी जाय तो हिंसा और अहंकार नष्ट हो जाते हैं तथा संशय और शोक भी नहीं रहते। गुरु के उपदेश के अनुसार जिसके मन में हरि बसता है, गुरु उसका संयोग (परमात्मा से) जोड़ देता है ॥ २ ॥

यदि मैं अपनी काया को सुन्दरी स्त्री के समान कर दूँ (तो) भोगनेवाला (परमात्मा) (उसे) भोगेगा ही। जो चलनेवाली— नश्वर (वस्तु) (दिखलाई पड़ती) है, उससे स्नेह नहीं करना चाहिए। गुरु की शिक्षा द्वारा सोहागिनी (स्त्री) उस प्रभु के साथ रमण करती है, जो शैय्या का भर्ता है (अंतःकरण का स्वामी है) ॥३॥

(हे साधक) गुरु की शिक्षा द्वारा परमात्मा रूपी जल डाल कर चारों अग्नियों का निवारण कर दो (और जीवित ही) मर जाओ, (जीवन्मुक्त हो जाओ)। [चार अग्नियाँ निम्नलिखित हैं—हिंसा मोह, लोभ और क्रोध— 'हंसु हेतु लोभु, कोपु चारे नदीआ अगि' वार माझ महला १] (फिर तुम्हारे) अंतःकरण में कमल प्रस्फुटित हो जायगा (और तुम) अमृत से भर कर तृप्त हो जाओगे। नानक कहते हैं कि सद्गुरु को मित्र बनाओ इससे (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर सत्य को ही पाओगे ॥ ४ ॥ २ ॥

[२१]

हरि हरि जपहु पिआरिआ गुरमति ले हरि बोलि ।
मनु सचु कसवटी लाईऐ तुलीऐ पूरै तोलि ॥
कीमति किनै न पाईऐ रिद माणक मोलि अमोलि ॥ १ ॥
भाई रे हरि हीरा गुर माहि ।
सतसंगति सतगुरु पाईऐ अहिनिसि सबदि सलाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
सचु वखरु धनु रासि लै पाईऐ गुर परगासि ।
जिउ अगनि मरै जलि पाईऐ तिउ त्रिसना दासनिदासि ॥
जम जंदारु न लगई इउ भउजलु तरै तरासि ॥ २ ॥
गुरमुखि कूड़ु न भावई सचि रते सचि भाइ ।
साकत सचु न भावई कूड़ै कूड़ी पाइ ॥
सचि रते गुरि मेलिऐ सचे सचि समाइ ॥ ३ ॥
मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथु हीरु ।
सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु ॥
नानक गुरमुखि पाईऐ दइआ करे हरि हीरु ॥ ४ ॥ २१ ॥

हे प्यारे, 'हरि-हरि' जपो, गुरु से दिक्षा लेकर 'हरि' ही कहो। मन को सच की कसौटी पर कसो और (उसे) पूरी तौल भर तौलो। हृदय का माणिक मूल्य में अमूल्य है और उसकी कीमत कोई भी नहीं आँक सकता ॥ १ ॥

अरे भाई, हरि रूपी हीरा गुरु में है। (और उस) सद्गुरु की प्राप्ति सत्संगति से होती है। गुरुवाणी द्वारा (परमात्मा की) स्तुति अहर्निश करनी चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सच का सौदा (लेकर) (अपार) धनराशि (परमात्मा) को लो (यह अपार धनराशि) गुरु के प्रकाश द्वारा प्राप्त की जा सकती है। जिस प्रकार जल डालने से अग्नि शान्त हो जाती है उसी प्रकार दासानुदास (बनने की भावना से) तृष्णा शान्त हो जाती है। (ऐसे व्यक्ति को) यम के दूत अथवा जल्लाद नहीं लगते। इस प्रकार (वह स्वयं) संसार सागर में तर जाता है (और दूसरों को भी) तारता है ॥ २ ॥

गुरु के उपदेश से (शिष्य को) झूठ अच्छा नहीं लगता। जो सत्य में अनुरक्त है, (उसे) सत्य ही भाता है (अच्छा लगता है)। शाक्त (माया के उपासक) को सत्य नहीं रुचता, झूठे की बुनियाद [पाइ=पाया, बुनियाद] झूठी ही होती है। गुरु के मिलाप से (शिष्य) सत्य में अनुरक्त होते हैं। (इस प्रकार) सच्चे (व्यक्ति) सत्य में समाहित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

मन में ही माणिक्य और लाल है, नाम ही रत्न है (वही वास्तविक) पदार्थ है (और वही) हीरा है। सच्चा सौदा और धन नाम ही है, वह अथाह और गम्भीर (प्रभु) घट-घट में (रम रहा है)। नानक कहते हैं कि (यदि) परमात्मा दया करे तो गुरु के उपदेश से (शिष्य को) (नाम रूपी) हीरे की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ २१ ॥

[२२]

भरमे भाहि न विझवै जे भवै दिसंतर देसु ।
अंतरि मैलु न उतरै ध्रिगु जीवणु ध्रिगु वेसु ॥
होरु कितै भगति न होवई बिनु सतगुर के उपदेस ॥ १ ॥
मन रे गुरमुखि अगनि निवारि ।
गुर का कहिआ मनि वसै हउमै त्रिसना मारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
मनु माणकु निरमोलु है रामनामि पति पाइ ।
मिलि सतसंगति हरि पाईऐ गुरमुखि हरि लिव लाइ ॥
आपु गइआ सुखु पाइआ मिलि सललै सलल समाइ ॥ २ ॥
जिनि हरि हरि नामु न चेतिओ सु अउगुणि आवै जाइ ।
जिसु सतगुरु पुरखु न भेटिओ सु भउजलि पचै पचाइ ॥
इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदलै जाइ ॥ ३ ॥
जिंना सतगुरु रसि मिलै से पूरे पुरख सुजाणु ।
गुर मिलि भउजलु लंघीऐ दरगह पति परवाणु ॥
नानक ते मुख उजले धुनि उपजै सबदु नीसाणु ॥ ४ ॥ २२ ॥

यदि (कोई) दिशा-दिशान्तरों और (अनेक) देशों में भ्रमण करता है, (तो) उस भ्रमण से (उसकी तृष्णा की) अग्नि नहीं बुझती । (यदि) आंतरिक मैल नहीं उतरती (पाप की निवृत्ति नहीं होती) तो (उस फकीरी) जीवन को धिक्कार है और (फकीरी) वेष को भी धिक्कार है । बिना सद्गुरु के उपदेश के और किसी भी प्रकार भक्ति नहीं (प्राप्त) हो सकती ॥ १ ॥

अरे मन गुरु के उपदेश द्वारा (आन्तरिक) अग्नि का निवारण करो । गुरु के उपदेश को मन में बसा कर अहंकार और तृष्णा को मार डालो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे मन (नाम) अमूल्य माणिक्य है; राम नाम से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । सत्संगति में मिलकर हरि पाया जाता है (और) गुरु की शिक्षा द्वारा ही हरि में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लगती है । अपनापन चले जाने पर सुख प्राप्त हो गया (और परमात्मा के साथ मिल कर इस प्रकार एक हो गया जिस प्रकार) जल जल से मिलकर एक हो जाता है ॥ २ ॥

जिसने 'हरि हरि' नाम को नहीं चेता (ध्यान में लाया), वह बारम्बार अवगुणों में आता और जाता है (अवगुणों में जन्मता और मरता रहता है) । जिसने सद्गुरु पुरुष से मिलाप नहीं किया वह संसार-सागर में नष्ट होता रहता है । यह जीवन अमूल्य माणिक है, (किन्तु) यह कौड़ी के बदले चला जा रहा है ॥ ३ ॥

जिन्हें सद्गुरु प्रसन्न होकर मिलता है वे पूर्ण पुरुष हैं और सयाने हैं । गुरु से मिलकर (उनके द्वारा) संसार-जल लाँघ लिया जाता है (और वे) (परमात्मा के) दरबार पर प्रतिष्ठा तथा प्रामाणिकता प्राप्त करते हैं । जिनके अंतःकरण में शब्द रूपी नगाड़ा (बजता है) (और परमात्मा के नाम की) ध्वनि उठती है, उनके मुख (सचमुच ही) उज्ज्वल हैं ॥ ४ ॥ २२ ॥

[२३]

वणजु करहु वणजारिहो वखरु लेहु समालि।
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि॥
अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि॥१॥
भाई रे रामु कहहु चितु लाइ।
हरि जसु वखरु लै चलहु सहु देखै पतीआइ॥१॥ रहाउ॥
जिना रासि न सचु है किउ तिना सुखु होइ।
खोटै वणजि वणंजिऐ मनु तनु खोटा होइ॥
फाही फाथे मिरग जिउ दूखु घणो नित रोइ॥२॥
खोटे पोतै ना पवहि तिन हरि गुर दरसु न होइ॥
खोटे जाति न पति है खोटि न सीझसि कोइ॥
खोटे खोटु कमावणा आइ गइआ पति खोइ॥३॥
नानक मनु समझाईऐ गुर कै सबदि सालाह।
राम नाम रंगि रतिआ भारु न भरमु तिनाह॥
हरि जपि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह॥४॥२३॥

हे व्यापारियो व्यापार करो सौदे को (भलीभाँति) सँभाल लो। ऐसी वस्तु खरीदो जो साथ साथ निबह सके। आगे (परलोक में) बड़ा सयाना साहु (परमात्मा) है, (वह) बहुत सँभाल कर वस्तु (सौदे) को लेगा॥१॥

अरे भाई चित्त लगा कर 'राम नाम' कहो। हरि-यश रूपी सौदे को लेकर चलो (जिससे) स्वामी (उस सौदे को) देख और (तुम्हारा) विश्वास करे॥१॥ रहाउ॥

जिनके पास सत्य की पूँजी नहीं है, उन्हें किस प्रकार सुख हो सकता है? खोटा सौदा करने से तन और मन (दोनों ही) खोटे होते हैं। (खोटे सौदे वाले को) जाल में फँसे हुए मृग की भाँति अत्यधिक कष्ट होता है और सदैव रोना पड़ता है॥२॥

खोटे व्यक्ति (खोटे सिक्कों की भाँति) (परमात्मा रूपी) खजाने में नहीं लिये जाते उन्हें हरि रूपी गुरु का भी दर्शन नहीं होता। खोटों की न जाति होती है और न पति। खोटों में कोई कार्य भी नहीं सिद्ध होता। खोटे (व्यक्ति) खोटा ही (कर्म) करते हैं वे (इस संसार में) आते हैं (जन्म लेते हैं) और जा कर प्रतिष्ठा खो देते हैं॥३॥

नानक कहते हैं कि गुरु के शब्दों की प्रशंसा द्वारा मन को समझाओ। जो राम-नाम के रंग में रंगे हैं, उन्हें (पाप का) बोझ और भ्रम नहीं (व्यापता)। हरि के जपने से महान् लाभ है (और) निर्भय हरी मन में (बस जाता है।)॥४॥२३॥

महला १, घरु २ [२४]

धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि।
पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि जुमणहार॥१॥
रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नउ हुला॥

दिन थोड़ड़े थके भइआ पुराणा चोला ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि ।
हं भी वंञा डुमणी रोवा झीणी बाणि ॥ २ ॥

की न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ ।
लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ ॥ ३ ॥

नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संन्हि ।
गुणा गवाई गंठड़ी अवगण चली बंन्हि ॥ ४ ॥ २४ ॥

धन यौवन और फूल चार दिन के मेहमान हैं; (ये सब) पद्मिनी के पत्र के समान मुरझा और सूख कर नष्ट हो जानेवाले हैं ॥ १ ॥

ऐ प्यारे, जब तक नवीन यौवन (चढ़ती जवानी) है, तब तक रस रंग मना ले (जवानी के) थोड़े दिन (शीघ्र ही) समाप्त हो जाते हैं (और यह) चोला पुराना हो जाता है) (शरीर वृद्ध और जीर्ण हो जाता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

रंगरलियाँ करनेवाले मेरे मित्र कब्रिस्तान में जाकर सो गए। मैं दोमनी— दुखिनी (दो मन—चित्त वाली) भी (उसी स्थान में) जाऊँगी (वहाँ से उनके) रोने की धीमी आवाज (आ रही है) ॥ २ ॥

ऐ गोरी (सुन्दरी स्त्री) तू अपने कानों से क्यों नहीं (यह शब्द) सुनती कि तुझे (अन्त में) ससुराल चले जाना है, नित्य मैके (इस संसार में) में ही नहीं रहना है ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि जो स्त्री मैके में बेवक्त संध्या काल (गोधूलि) में सोई हुई है, (उसे यह) समझो कि (उसने) अपने गुणों की गठरी गँवा दी और अवगुण (का गट्ठर) बाँध कर चली है ॥ ४ ॥ २४ ॥

[२५]

आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु ।
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु ॥ १ ॥

रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु ।
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु ॥ २ ॥

आपे बहुबिधि रंगुला सखीए मेरा लालु ।
नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु ॥ ३ ॥

प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हंसु ।
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु ॥ ४ ॥ २५ ॥

स्वयं (परमात्मा) ही रसिक है, स्वयं ही रस और स्वयं ही (उस रस को) भोगनेवाला है। स्वयं ही स्त्री है और स्वयं ही सेज का पति है ॥ १ ॥

मेरा साहब (प्रभु) रंग (आनन्द) में अनुरक्त है (और वह) पूर्ण रूप से (सर्वत्र) रम रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मेरा प्रभु) स्वयं ही मांझी (मल्लाह) है, स्वयं ही मछली है, स्वयं ही जल है और स्वयं ही जाल है। स्वयं ही जाल का मनका है [जाल को भारी करने के लिए, उसमें लोहे के 'मनके' बाँध दिए जाते हैं ताकि वह जल में डूबा रहे] और वह स्वयं भीतर का (पुरानी मछली के भीतर कभी-कभी पाया जाने वाला) लाल है ॥ २ ॥

ऐ सखियो मेरा लाल—प्रियतम स्वयं ही विविध भाँति के रंग—विनोद करने वाला है। वह सोहागिनी स्त्रियों से नित्य रमण करता है किन्तु (मुझ दुहागिनी की) दशा तो देखो (मेरे निकट भी नहीं आता) ॥ ३ ॥

नानक विनती के साथ कहते हैं कि (हे प्रभु) तू ही सरोवर और तू ही (उसमें निवास करनेवाला) हंस भी है। तू ही कमल है और तू ही कुमुदिनी है और उन्हें देख-देख कर स्वयं ही प्रसन्न भी होता है ॥ ४ ॥ २५ ॥

महला १, घरु ३   [२६]

इहु तनु धरती बीजु करमा करो सलिल आपाउ सारिंगपाणी ।
मनु किरसाणु हरि रिदै जमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी ॥ १ ॥
काहे गरबसि मूड़े माइआ ।
पित सुतो सगल कालत्र माता तेरे होहि न अंति सखाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
बिखै बिकार दुसट किरखा करे इन तजि आतमै होइ धिआई ।
जपु तपु संजमु होहि जब राखे कमलु बिगसै मधु आसमाई ॥ २ ॥
बीस सपताहरो बासरो संग्रहै तीनि खोड़ा नित कालु सारै ।
दस अगार मै अपरपरो चीनै कहै नानकु इव एकु तारै ॥ ३ ॥ २६ ॥

(हे साधक) इस शरीर को धरती तथा शुभ कर्मों को बीज बनाओ सारंगपाणि (परमात्मा) को सींचने के लिए जल (बनाओ)। मन ही किसान हो और हरि को अपने हृदय में जमा लो। (इस प्रकार तुम) निर्वाण पद (पद) को प्राप्त कर लोगे ॥ १ ॥

ऐ मूर्ख माया (सांसारिक ऐश्वर्य) का अभिमान क्या कर रहे हो ? (तुम्हारे) पिता सारे पुत्र स्त्री माता अंत में तुम्हारे सहायक नहीं होंगे ॥१॥ रहाउ ॥

(साधक) दुष्ट विषय-विकारों को (बल पूर्वक) खींच कर बाहर निकाल कर इनका त्याग करे और आत्मस्थित होकर ध्यान करे। जब (इन्द्रियपूर्वक) संयम रखा जाता है, तभी जप-तप होते हैं, (हृदय) कमल प्रस्फुटित होता है और मधु टपकता है (आनन्द की वर्षा होती है) ॥ २ ॥

(साधक) बीस (पंच महाभूत पंच तन्मात्राएँ, पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय) तथा सात (पंचप्राण मन और बुद्धि) के निवास स्थान (बासरो), अर्थात् शरीर को एकत्र (वशीभूत) करे और तीनो अवस्थाओं (बाल्यावस्था युवावस्था तथा वृद्धावस्था अथवा जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति) में नाम का स्मरण करे; दस (छः शास्त्र तथा चार वेद) और अठारह (पुराणों) में पारंपार परमात्मा को पहचाने। नानक कहते हैं कि इस प्रकार (ऐसे साधक को) एक (परमात्मा) तार देगा ॥ ३ ॥ २६ ॥

[२७]

अमलु करि धरती बीजु सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी ।
होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी ॥ १ ॥
मतु जाणसहि गली पाइआ ।
माल कै माणै रूप की सोभा इतु बिधी जनमु गवाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
ऐब तनि चिकड़ो इहु मनु मीडको कमल की सार नही मूलि पाई ।
भउरु उसतादु नित भाखिआ बोले किउ बूझै जा नह बुझाई ॥ २ ॥
आखणु सुनणा पउण की बाणी इहु मनु रता माइआ ।
खसम की नदरि दिलहि पसिंदे जिनी करि एकु धिआइआ ॥ ३ ॥
तीह करि रखे पंज करि साथी नाउ सैतानु मतु कटि जाई ।
नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कित कू संजिआही ॥ ४ ॥ २७ ॥

हे प्राणी, शुभ कर्मों को धरती तथा (परमात्मा के) नाम को बीज बनाओ सत्य की कीर्ति व जल से (उस पृथ्वी को) नित्य सींचो। (इस प्रकार के) किसान बन कर ईमान (विश्वास) को अंकुरित करो। हे मूर्ख बिहिश्त (स्वर्ग) और दोज़ख (नरक) को इस प्रकार समझो—॥१॥

यह मत समझो कि (स्वर्ग की प्राप्ति केवल) बातों से हो जायगी। ऐश्वर्य तथा रूप-सौन्दर्य के अभिमान में इसी प्रकार (अमूल्य) जीवन नष्ट कर दिया जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

शरीर में (स्थित) अवगुण ही कीचड़ है यह मन मेंढक है, जिसे पास ही स्थित कमल (सर्वव्यापक परमात्मा) का तनिक भी पता नहीं है। गुरु भ्रमर है (जो) नित्य उपदेश देता रहता है किन्तु यदि (गुरु का उपदेश) नहीं समझ में आता तो (उस समय को किस प्रकार समझा जाय ? ॥ २ ॥

(क्योंकि) यह मन माया म लगा हुआ है (अतएव इसके लिये) कहना और सुनना वायु की ध्वनि की (तरह व्यर्थ है)। जो परमात्मा का एकनिष्ठ होकर ध्यान करते हैं, हैं, उन्हीं के ऊपर पति (प्रभु) की कृपा होती है और वे ही उसे हृदय से प्रिय होते हैं ॥ ३ ॥

(तुम) तीस रोजे रक्खो पाँच नमाजों को साथी बना कर पढ़ो (पर इतना स्मरण रक्खो कि) जिसका नाम शैतान है, (वह तुम्हारे सारे शुभ कर्मों के प्रभाव को) काट न दे। (भाव यह कि जब तक आंतरिक बुराई नहीं छूटेगी तब रोज़ा, नमाज से कुछ लाभ न होगा)। नानक कहते हैं कि (अन्त में तुम्हें मृत्यु के) मार्ग पर ही चलना है फिर धन-दौलत का क्यों संग्रह कर रहे हो ? ॥ ४ ॥ २७ ॥

महला १, घरु ४

[२८]

सोई मउला जिनि जगु मउलिआ हरिआ कीआ संसारो ।
आब खाकु जिनि बंधि रहाई धंनु सिरजणहारो ॥ १ ॥
मरणा मुला मरणा । भी करतारहु डरणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥
ता तू मुला ता तू काजी जाणहि नामु खुदाई ।

जे बहुतेरा पड़िआ होवहि को रहै न भरीऐ पाई ॥ २ ॥
सोई काजी जिनि आपु तजिआ इकु नामु कीआ आधारो ।
है भी होसी जाइ न जासी सचा सिरजणहारो ॥ ३ ॥
पंज वखत निवाज गुजारहि पड़हि कतेब कुराणा ।
नानकु आखै गोर सदेई रहिओ पीणा खाणा ॥ ४ ॥ २८ ॥

वही मालिक है, जिसने जगत् को प्रफुल्लित किया है और संसार को हरा भरा बनाया है। (सृष्टि-रचना में) जिसने जल और पृथ्वी को बाँध कर—जोड़ कर रखा है वह स्वामी धन्य है ॥ १ ॥

मर जाओगे ऐ मुल्ला, मर जाओगे। कर्तार से भय करो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तभी तुम मुल्ला हो, तभी तुम काजी हो, जब तुम परमात्मा का नाम समझ लो। कोई चाहे कितना ही पढ़ा लिखा क्यों न हो, यदि उसके साँसों की पनवाड़ी भर जायगी (तो वह संसार में) नहीं रहता ॥ २ ॥

वही (सच्चा) काजी है, जिसने अपनत्व का त्याग कर दिया है और नाम को ही एक मात्र आधार बना लिया है। (वही परमात्मा वर्तमान में) है, (भूतकाल में) था और (भविष्यत् काल में) रहेगा। (सृष्टि के) नष्ट होने पर भी सच्चा सिरजनहार नष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥

पाँच वक्त नमाज गुजारते हैं और कतेब-कुरान पढ़ते हैं, किन्तु नानक का कथन है कि जिस समय कब्र बुलाती है उस समय (सारे) खाने-पीने (यहीं) रह जाते हैं ॥ ४ ॥ २८ ॥

[२९]

एकु सुआनु दुइ सुआनी नालि । भलके भउकहि सदा बइआलि ॥
कूड़ु छुरा मुठा मुरदारु । धाणक रूपि रहा करतार ॥ १ ॥
मै पति की पंदि न करणी की कार । हउ बिगड़ै रूपि रहा बिकराल ॥
तेरा एकु नामु तारे संसारु । मै एहा आसा एहो आधारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
मुखि निंदा आखा दिनु राति । पर घरु जोही नीच सनाति ॥
कामु क्रोधु तनि वसहि चंडाल । धाणक रूपि रहा करतार ॥ २ ॥
फाही सुरति मलूकी वेसु । हउ ठगवाड़ा ठगी देसु ॥
खरा सिआणा बहुता भारु । धाणक रूपि रहा करतार ॥ ३ ॥
मै कीता न जाता हरामखोरु । हउ किआ मुहु देसा दुसटु चोरु ।
नानकु नीचु कहै बीचारु । धाणक रूपि रहा करतार ॥ ४ ॥ २९ ॥

(मेरे) साथ एक (लोभ रूपी) कुत्ता है (और) दो (आशा और तृष्णा रूपी) कुतियाँ हैं। (ये) प्रतिदिन तड़के सबेरे ही भूँकते हैं। (मेरे पास) झूठ का छुरा है और इसी का मांस मुरदार (शिकार) है। (इस प्रकार) हे कर्तार मैं अहेरी (धानुकी) के रूप में हूँ ॥ १ ॥

मैंने प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाली न कोई शिक्षा ही ग्रहण की है और न कोई करने योग्य कार्य ही किया है। मैं (बहुत ही) कुरूप और विकराल हूँ। (मुझे केवल एक ही विश्वास

जा के रुख बिरख आराउ । जेही धातु तेहा तिन नाउ ॥
फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ । आपि बीजि आपे ही खाइ ॥ २ ॥
कची कंधु कचा विचि राजु । मति अलूणी फिका सादु ॥
नानक आणे आवै रासि । विणु नावै नाही साबासि ॥ ३ ॥ १२ ॥

(परमात्मा का) बनाया हुआ जीव (अपने) मन में क्या अभिमान कर सकता है? देनेवाले (परमात्मा) के हाथ में ही (सारे) दान हैं। (उसे) अच्छा लगे तो देता है (और न अच्छा लगे) तो नहीं देता। (भला परमात्मा द्वारा) बनाए गए (जीव) के कहने से क्या हो सकता है? ॥ १ ।

(वह कर्तार) स्वयं सत्य है (और) उसे सत्य ही अच्छा लगता है। अंधा (तमोगुण का उपासक) कच्चों में कच्चा है (अर्थात् बहुत ही गिरा हुआ है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिसके (जिस परमेश्वर के) रुख वृक्ष हैं, (उसी का) बाग भी है। [आराउ< आराम=उपवन बाग उद्यान]। (जिस रुख-वृक्ष की) जो किस्में होती हैं, उसका वही नाम होता है। फूल के भाव के अनुसार फल भी लिखे जाते हैं [मनुष्य के जीवन रूपी वृक्ष में जिस प्रकार के अच्छे-बुरे कर्मों के फूल लगते हैं, उसी के अनुसार उनके फल भी होते हैं] (मनुष्य) स्वयं ही (जो) बोता है, (वही) खाता है ॥ २ ॥

जो राज कच्चा (नासमझ) होता है (उसके द्वारा बनाई गई) दीवाल भी कच्ची होती है, (बुरों के बुरे कर्म होते हैं)। (यदि) बुद्धि अलोनी (बिना नमक की) होती है, है, तो उसका स्वाद भी फीका होता है [भाव यह कि यदि बुद्धि में परमात्म रस का स्वाद नहीं है, तो उसकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हैं]। नानक कहते हैं कि (जिसे परमात्मा स्वयं) सँवारता है, उसी को रस आता है। बिना (परमात्मा) के नाम के (परमात्मा के यहाँ) शाबाशी—प्रशंसा नहीं मिलती ॥ ३ ॥ १२ ॥

महला १, घरु ४   [३३]

अछल छलाई नह छलै नह घाउ कटारा करि सकै ।
जिउ साहिबु राखै तिउ रहै इसु लोभी का जिउ टलपलै ॥१॥
बिनु तेल दीवा किउ जलै ॥१॥ रहाउ ॥
पोथी पुराण कमाईऐ । भउ वटी इतु तनि पाईऐ ॥
सचु बूझणु आणि जलाईऐ ॥२॥
इहु तेलु दीवा इउ जलै । करि चानणु साहिब तउ मिलै ॥१॥ रहाउ॥
इतु तनि लागै बाणीआ । सुखु होवै सेव कमाणीआ ॥
सभ दुनीआ आवण जाणीआ ॥३॥
विचि दुनीआ सेव कमाईऐ । ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥
कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥४॥३३॥

निश्छल (छलरहित मनुष्य) को छलवाली (माया) नहीं छल सकती (यम की) कटार भी (उसे) घाव नहीं कर सकती। (वह निश्छल व्यक्ति) उस भाँति

रहता जैसे साहब उसे रखता है (किन्तु) इस जोगी का चित्त तो चलने-फिरने में पड़ा रहता है ॥ १ ॥

बिना तेल के दिया कैसे जलेगा? [यह प्रश्न है, इसका उत्तर आगे आने वाली पंक्तियों में दिया गया है] ॥ १ ॥

धार्मिक पोथियों का अध्ययन करना ही (तेल है)। (परमात्मा के) भय की बत्ती इस शरीर में डाली जाय। सत्य के ज्ञान की अग्नि लाकर (उसे जलाया जाय) तब आध्यात्मिक जीवन का दीपक जलता है ॥ २ ॥

(इस प्रकार उपर्युक्त) तेल से और (उपर्युक्त विधि से आध्यात्मिक जीवन का) दीपक जलता है। (इस भाँति) प्रकाश करने से साहब (निश्चय ही) मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

इस शरीर में (जब) गुरु का उपदेश लगता है, तभी सुख होता है (और) गुरु की सेवा की कमाई होती है। सारी दुनिया आने-जाने वाली है (नश्वर है) ॥ ३ ॥

(यदि) इस दुनिया में (गुरु की) सेवा की कमाई की जाय तभी (परमात्मा के) दरवाजे पर बैठने को मिलता है। नानक कहते हैं (तभी प्रसन्नता में) बाँह हिलाई जाती है ॥ ४ ॥ ११ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सिरी रागु, महला १, घरु १,

असटपदीआ [१]

आखि आखि मनु वावणा जिउ जिउ जापै वाइ ।
जिसु नो वाइ सुणाईऐ सो केवडु कितु थाइ ॥
आखणवाले जेतड़े सभि आखि रहे लिव लाइ ॥१॥
बाबा अलहु अगम अपारु ॥
पाकी नाई पाक थाइ सचा परवदिगारु ॥१॥ रहाउ ॥
तेरा हुकमु न जापी केतड़ा लिखि न जाणै कोइ ।
जे सउ साइर मेलीअहि तिलु न पुजावहि रोइ ।
कीमति किनै न पाईआ सभि सुणि सुणि आखहि सोइ ॥२॥
पीर पैकामर सालक सादक सुहदे अउर सहीद ।
सेख मसाइक काजी मुला दरि दरवेस रसीद ॥
बरकति तिन कउ अगली पड़दे रहनि दरूद ॥३॥
पुछि न साज पुछि न ढाहे पुछि न देवै लेइ ।
आपणी कुदरति आपे जाणै आपे करणु करेइ ॥
सभना वेखै नदरि करि जै भावै तै देइ ॥४॥

थावा नाव न जाणीअहि नावा केवडु नाउ ।
जिथै वसै मेरा पातिसाहु सो केवडु है थाउ ॥
अंबड़ि कोइ न सकई हउ किस नो पुछणि जाउ ॥५॥
वरना वरन न भावनी जे किसै वडा करेइ ।
वडे हथि वडिआईआ जै भावै तै देइ ।
हुकमि सवारे आपणै चसा न ढिल करेइ ॥६॥
सभु को आखै बहुतु बहुतु लैणै कै वीचारि ।
केवडु दाता आखीऐ दे कै रहिआ सुमारि ॥
नानक तोटि न आवई तेरे जुगह जुगह भंडार ॥७॥१॥

(परमात्मा का) कथन कर-कर के मन बाबा बना रहा है, (अर्थात् आनन्दित हो रहा है) जैसे-जैसे (परमात्मा की महत्ता का) ज्ञान होता है, वैसे-वैसे (मन) बनाया जा रहा है। जिसे बना कर सुनाया जाता वह कितना बड़ा है और किस स्थान पर है ? जितने सभी कथन करनेवाले हैं, सब (उसका) कथन करते करते गम्भीर ध्यान (लिव) में निमग्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

मेरे बाबा अल्लाह अगम और अपार है। वह सच्चा पालनकर्ता पवित्र नाम और पवित्र स्थान वाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) यह बात नहीं कि तेरा हुक्म कितना (महान्) है और न उसे कोई लिख ही सकता है। यदि सौ शायर (कवि) एकत्र किए जाय तो वे रो रो कर (खप-खप कर) तिल मात्र (तेरी महत्ता) का वर्णन नहीं कर सकते। तेरी कीमत किसी ने भी नहीं पाई है, सभी (लोग) सुन-सुन कर ही वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

(असंख्य) पीर पैगम्बर मार्ग-प्रदर्शक (सालिक) श्रद्धावान् (सादक), सीधे-सादे फकीर (सुहदे) तथा शहीद (धर्म के लिए बलिदान होने वाले) शेख तपस्वी (मलाइक) काजी मुल्ला तथा परमात्मा के दरवाजे पे पहुँचे हुए फकीर—(आदि के ऊपर) परमात्मा की बड़ी कृपा है, (जिससे वे) दुआ पढ़ते रहते हैं [दरूद—नमाज के पीछे जो दुआ पढ़ी जाती है] ॥ ३ ॥

(परमात्मा) बिना (किसीके) पूछे ही रचना करता है बिना पूछे ही नाश करता है (और) बिना पूछे ही लेता-देता है। अपनी कुदरत—शक्ति—माया वह स्वयं ही जानता है, (दूसरा कोई नहीं) वह स्वयं ही करण और कर्ता है (वह) सभी के ऊपर दृष्टि डाल कर देखता रहता है (और उसे) जो अच्छा लगता है उसी को (वह) देता है ॥ ४ ॥

(उसके) स्थानों का नाम नहीं जाना जा सकता (और न यही पता है कि नामों में (उसका) नाम कितना बड़ा है। वह स्थान कितना बड़ा है जहाँ मेरा बादशाह निवास करता है ? (वहाँ तक) कोई नहीं पहुँच सकता मैं किससे पूछने जाऊँ ? ॥ ५ ॥

(यदि) वह किसी को बड़ा बनाता है (तो उसमें वर्णाश्रम ऊँची अथवा नीची जाति) का भाव नहीं रखता। (वास्तव में) बड़े (परमात्मा) के हाथ में ही बड़ाई (गौरव) है, जो (उसे) अच्छा लगता है उसे (वह) देता है। वह अपने हुक्म को सँवारता है (किन्तु वह) रंचमात्र भी ढिलाई नहीं करता ॥ ६ ॥

देने के विचार में सभी कोई (परमात्मा का) बहुत-बहुत कथन करते हैं। उस दाता का कितना बड़ा कहा जाय? उसके देने की गणना नहीं की जा सकती। नानक कहते हैं कि (हे प्रभु तेरे भण्डारों में किसी प्रकार की भी) कमी नहीं आती (क्योंकि) तेरे भण्डार युग युगान्तरों से (भरे पड़े हैं) ॥ ७ ॥ १ ॥

[२]

सभे कंत महेलीआ सगलीआ करहि सीगारु ।
गणत गणावणि आईआ सूहा वेसु विकारु ॥
पाखंडि प्रेमु न पाईऐ खोटा पाजु खुआरु ॥१॥
हरि जीउ इउ पिरु रावै नारि ॥
तुधु भावनि सोहागणी अपणी किरपा लैहि सवारि ॥१॥ रहाउ ॥
गुरसबदी सीगारीआ तनु मनु पिर कै पासि ।
दुइ कर जोड़ि खड़ी तकै सचु कहै अरदासि ॥
लालि रती सच भै वसी भाइ रती रंगि रासि ॥२॥
प्रिअ की चेरी कांढीऐ लाली मानै नाउ ।
साची प्रीति न तुटई साचे मेलि मिलाउ ॥
सबदि रती मनु वेधिआ हउ सद बलिहारै जाउ ॥३॥
सा धन रंड न बैसई जे सतिगुर माहि समाइ ।
पिरु रीसालू नउतनो साचउ मरै न जाइ ॥
नित रवै सोहागणी साची नदरि रजाइ ॥४॥
साचु धड़ी धन माडीऐ कापड़ु प्रेम सीगारु ।
चंदनु चीति वसाइआ मंदरु दसवा दुआरु ॥
दीपकु सबदि विगासिआ राम नामु उर हारु ॥५॥
नारी अंदरि सोहणी मसतकि मणी पिआरु ।
सोभा सुरति सुहावणी साचै प्रेमि अपार ॥
बिनु पिर पुरखु न जाणई साचे गुर कै हेति पिआरि ॥६॥
निसि अंधिआरी सुतीए किउ पिर बिनु रैणि विहाइ ।
अंकु जलउ तनु जालीअउ मनु धनु जलि बलि जाइ ॥
जा धन कंति न रावीआ ता बिरथा जोबनु जाइ ॥७॥
सेजै कंत महेलड़ी सूती बूझ न पाइ ।
हउ सुती पिरु जागणा किस कउ पूछउ जाइ ॥
सतिगुरि मेली भै वसी नानक प्रेमु सखाइ ॥८॥२॥

सभी कंत की सहेलियाँ हैं (और) सभी शृङ्गार करती हैं। (सभी अपने अपने शृङ्गारों की) गिनती गिनाती (किन्तु) उनके लाल वेश व्यर्थ हैं। [अर्थात् दिखावे कर्म चाहे कितने ही अच्छे हों किन्तु परमात्मा की दृष्टि में बुरे ही हैं]। पाखण्ड से प्रेम की प्राप्ति नहीं होती (ऐसी स्त्रियों के) खोटे दिखावे (उन्हें) बरबाद करते हैं ॥ १ ॥

हरि जी, प्रियतम (अपनी) पत्नी के साथ इस प्रकार रमण करता है—(हे हरी तुम्हें) सुहागिनी स्त्रियाँ अच्छी लगती हैं; तू अपनी कृपा से (उन्हें) सँवार लेता है। (अच्छी बना लेता है)॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो जीवात्मा रूपी स्त्री) गुरु के शब्द द्वारा सँवारी गई है (उसका) तन और मन प्रियतम (परमात्मा) के पास है। (वह) दोनों हाथ जोड़ कर खड़ी रहती है (और प्रियतम को) ताकती रहती है, और अरदास (विनती—प्रार्थना) करती है। (वह अपने) सत्य में अनुरक्त है, सत्य भय में निवास करती है नाम में रँगी और (उसके) प्रेम में सँवारी गई है ॥ २ ॥

वह प्रिय की चेरी और दासी (मानी) कहलाती है और (प्रियतम परमात्मा के) नाम को ही मानती है। (यदि) सच्चा (परमात्मा) अपने मेल में मिला लेता है, (तो उसकी) सच्ची प्रीति (कभी नहीं) टूटती। (जो गुरु के) शब्द में रँगी हुई है और (जिसका) मन (उसी में) बिंध गया है, मैं सदैव उस पर न्यौछावर हो जाता हूँ ॥ ३ ॥

जो सद्गुरु में (बिलकुल) समा गई है ऐसी स्त्री रांड़ (स्त्री) की भाँति (प्रियतम से अलग) नहीं बैठती। (वह तो प्रियतम के साथ सदैव एक रहती है)। (उसका प्रियतम) रसिक नवीन यौवनवाला और सच्चा है वह न मरता है (और न कहीं) जाता है। (वह अपनी) सोहागिनी स्त्री से नित्य रमण करता है और (उस पर अपनी मर्जी) से सच्ची कृपा-दृष्टि रखता है ॥ ४ ॥

(वह सुहागिनी) स्त्री सत्य की माँग काढ़ती है और प्रेम के कपड़े का शृंगार करती है। (परमात्मा को) चित्त में बसाना ही (उस स्त्री का) चंदन-लेप है, और दसम दरवाजे में (निवास करना), उसका (वास्तविक महल है)। (उसने) शब्द का ही दीपक जलाया है और राम नाम को ही (अपने) गले का हार (बनाया) है ॥ ५ ॥

जिसके मस्तक में प्रेम की मणि (सुशोभित) है (वह स्त्री सभी) स्त्रियों में (परम) सुन्दरी है। (उसकी) शोभा यह है कि (उसकी) सुन्दर सुरति उस सच्चे और अपार (हरी के) प्रेम में रहती है। (अपने) प्रियतम के बिना—अतिरिक्त (वह अन्य) पुरुष को जानती ही नहीं सच्चे गुरु के प्रति ही उसका प्रेम होता है ॥ ६ ॥

(अरी तू,) अंधकारपूर्ण रात्रि में सोई है, (भला बताओ) बिना प्रियतम के तेरी रात्रि कैसे बीतेगी ? (तेरा) अंग जल जाय, (तेरा) शरीर भी जल जाय और (तेरे) मन, धन भी जल-बल जायँ, (क्योंकि तू दुहागिनी है) जिस स्त्री से कंत नहीं रमण करता, उसका यौवन व्यर्थ ही चला जाता है ॥ ७ ॥

सेज पर कंत है, (किन्तु) स्त्री सोई है (अतएव) वह जान नहीं पाती है। मैं तो सोई हूँ प्रियतम जाग रहा है (यह बात) किससे जा कर पूछूँ ? सद्गुरु ने (प्रियतम से) मिला दिया। (अब वह स्त्री प्रियतम के) भय में निवास करती है और प्रेम ही उसका सखा है ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

आपे गुण आपे कथै आपे सुणि वीचारु।
आपे रतनु परखि तूं आपे मोलु अपारु॥
[illegible]

हरि जीउ तूं करता करतारु ।
जिउ भावै तिउ राखु तू हरि नामु मिलै आचारु ॥१॥ रहाउ ॥
आपे हीरा निरमला आपे रंगु मजीठ ।
आपे मोती ऊजलो आपे भगत बसीठु ॥
गुर कै सबदि सलाहणा घटि घटि डीठु अडीठु ॥२॥
आपे सागरु बोहिथा आपे पारु अपारु ।
साची वाट सुजाणु तू सबदि लघावणहारु ।
निडरिआ डरु जाणीऐ बाझु गुरू गुबारु ॥३॥
असथिरु करता देखीऐ होरु केती आवै जाइ ।
आपे निरमलु एकु तूं होर बंधी धंधै पाइ ॥
गुरि राखे से उबरे साचे सिउ लिव लाइ ॥४॥
हरि जीउ सबदि पछाणीऐ साचि रते गुर वाकि
तितु तनि मैलु न लगई सच घरि जिसु ओताकु ।
नदरि करे सचु पाईऐ बिनु नावै किआ साकु ॥५॥
जिनी सचु पछाणिआ से सुखीए जुग चारि ।
हउमै त्रिसना मारि कै सचु रखिआ उर धारि ॥
जग महि लाहा एकु नामु पाईऐ गुर वीचारि ॥६॥
साचउ वखरु लादीऐ लाभु सदा सचु रासि ।
साची दरगह बैसई भगति सची अरदासि ॥
पति सिउ लेखा निबड़ै रामु नामु परगासि ॥७॥
ऊचा ऊचउ आखीऐ कहउ न देखिआ जाइ ।
जह देखा तह एकु तू सतिगुरि दीआ दिखाइ ॥
जोति निरंतरि जाणीऐ नानक सहजि सुभाइ ॥८॥३॥

(हे प्रभु, तुम) स्वयं ही गुण हो स्वयं ही (उसका) कथन करते हो और स्वयं (उसे) सुन कर (उस पर) विचार करते हो। स्वयं ही रत्न हो स्वयं ही (उसके) पारखी हो, (और) स्वयं ही (उसका) अपार मूल्य हो। तुम्हीं सच्चा मान और महत्ता हो (और) तुम्हीं उसके देनेवाले हो ॥ १ ॥

हे हरि जी, तुम्हीं (सब के) कर्त्ता हो। तुम्हें जैसे अच्छा लगे, उसी प्रकार (मुझे) रखो। मेरा आचार हरिनाम हो (और वही मुझे) प्राप्त हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तुम्हीं (नाम रूपी) निर्मल हीरा हो और तुम्हीं (भक्ति का गहरा) मजीठ रंग हो। तुम्हीं (ज्ञान रूपी) उज्ज्वल मोती हो और तुम्हीं भक्तों के मध्यस्थ हो। गुरु के शब्द द्वारा (तुम्हीं अपनी) प्रशंसा—स्तुति कर रहे हो घट-घट में तुम्हीं दृश्य और अदृश्य (रूप में दिखाई दे रहे हो) ॥ २ ॥

(हे प्रभु) तुम्हीं सागर हो और तुम्हीं जहाज हो तुम्हीं (समुद्र का) यह पार (किनारा) हो (और तुम्हीं) वह पार भी हो। हे चतुर तुम्हीं सच्चा मार्ग हो और (गुरु के) शब्द द्वारा तुम्हीं (संसार-सागर को) पार करानेवाले हो। (इस संसार सागर

मे) डरपाते उन्हीं को समझना चाहिए (जो परमात्मा के) डर से रहित हैं गुरु के बिना (घनघोर) अंधकार है ॥ ३ ॥

स्थिर (रहनेवाला तो एक मात्र) कर्ता ही देखा जाता है, अन्य (जीव-जन्तु) तो कितने आते हैं और कितने जाते हैं। (हे स्वामी) एक तुम्हीं निर्मल हो (और तो न मालूम कितने प्राणी) (सांसारिक) धन्धों में फँसे पड़े हैं। (जिसकी) गुरु रक्षा करता है, वे ही उबरते हैं और सच्चे (परमात्मा) से लिव लगाते हैं ॥ ४ ॥

हरि (गुरु के) शब्द द्वारा पहचाना जाता है गुरु के शब्द से ही (शिष्य) सत्य (परमात्मा में) रत होते हैं। जिसकी बैठक सत्य के घर में है, उसके शरीर में (पाप की) मैल नहीं लगती। [मोठाकु=फारसी मोताक=मरदानी बैठक]। (परमात्मा की) कृपा-दृष्टि से ही सत्य मिलता है बिना (हरि) नाम के क्या प्राप्त होगी ? ॥ ५ ॥

जिन्होंने सत्य को पहचान लिया (साक्षात्कार कर लिया) वे चारों युगों में सुखी हैं। (ऐसे व्यक्तियों ने) अहंकार और तृष्णा को मार कर अपने हृदय में सत्य को ही धारण कर रखा है। (उन्होंने) गुरु के विचार द्वारा जगत् में एक नाम के लाभ को प्राप्त कर लिया है ॥ ६ ॥

(जिन्होंने) सत्य का सौदा लादा है उन्हें सदैव लाभ ही होता है, (और उनकी) सत्य की पूँजी (अक्षुण्ण बनी रहती है)। (जिसकी) सच्ची भक्ति और सच्ची अरदास (प्रार्थना) होती है, (वह परमात्मा के) दरबार में (सम्मान के साथ) बैठेगा (उसके कर्मों का) लेखा प्रतिष्ठा से सुलझ जायगा राम नाम भी (उसमें) प्रकाशित होगा ॥ ७ ॥

(वह परमात्मा) ऊँचे से ऊँचे कहा जाता है पर किसी के पास देखा नहीं जाता। (मैं) जहाँ देखता हूँ वहाँ एक तू ही (दिखाई पड़ता) है सद्गुरु ने मुझे (तुम्हारे इस सर्व-व्यापी स्वरूप को) दिखा दिया है। नानक कहते हैं कि तुम्हारी यह अखंड (निरंतर) ज्योति सहज भाव से जानी जाती है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

मछुली जालु न जाणिआ सरु खारा असगाहु ।
अति सिआणी सोहणी किउ कीतो वेसाहु ।
कीते कारणि पाकड़ी कालु न टलै सिराहु ॥१॥
भाई रे इउ सिरि जाणहु कालु ।
जिउ मछी तिउ माणसा पवै अचिंता जालु ॥१॥ रहाउ॥
सभु जगु बाधो काल को बिनु गुर कालु अफारु ।
सचि रते से उबरे दुबिधा छोडि विकार
हउ तिन कै बलिहारणै दरि सचै सचिआर ॥२॥
सीचाने जिउ पंखीआ जाली बधिक हाथि ।
गुरि राखे से उबरे होरि फाथे चोगै साथि ॥
बिनु नावै चुणि सुटीअहि कोइ न संगी साथि ॥३॥
सचो सचा आखीऐ सचे सचा थानु ।

जिनी सचा मंनिआ तिन मनि सचु धिआनु ॥
मनि मुखि सूचे जाणीअहि गुरमुखि जिना गिआनु ॥४॥
सतिगुरि अगै अरदासि करि साजनु देइ मिलाइ ।
साजनि मिलिऐ सुखु पाइआ जमदूत मुए बिखु खाइ ॥
नावै अंदरि हउ वसां नाउ वसै मनि आइ ॥५॥
बाझु गुरू गुबारु है बिनु सबदै बूझ न पाइ ।
गुरमती परगासु होइ सचि रहै लिव लाइ ॥
तिथै कालु न संचरै जोती जोति समाइ ॥६॥

तूं है साजनु तूं सुजाणु तूं आपे मेलणहारु ।
गुर सबदी सालाहीऐ अंतु न पारावारु ॥
तिथै कालु न अपड़ै जिथै गुर का सबदु अपारु ॥७॥

हुकमी सभे ऊपजहि हुकमी कार कमाहि ।
हुकमी कालै वसि है हुकमी साचि समाहि ॥
नानक जो तिसु भावै सो थीऐ इना जंता वसि किछु नाहि ॥८॥४॥

मछली ने जाल को नहीं समझा (कि यह मेरी मृत्यु का कारण है)। (वह अपना निवास स्थान) समुद्र को खारा और अथाह (समझती रही)। वह तो बहुत सयानी और सुन्दर थी (फिर उसने जाल का) क्यों विश्वास कर लिया? वह (अपने) किए (मांस) के कारण पकड़ी गई, (अब) उसके सिर पर से काल नहीं टल सकता ॥ १ ॥

अरे भाई, इस प्रकार सिर पर काल समझो। जिस प्रकार मछली जाल में पड़ जाती है), उसी प्रकार मनुष्य भी अचानक (काल के) जाल में पड़ जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सारा जगत् काल द्वारा बाँधा गया है; बिना गुरु के काल अमिट है। (जो व्यक्ति) द्वैत भाव (दुविधा) के विकार को त्याग कर सत्य में रत हैं वे ही बचते हैं। मैं उन पर न्यौछावर होता हूँ, जो सच्चे (परमात्मा के) दरवाजे पर सत्य (सिद्ध होते) हैं ॥ २ ॥

जिस प्रकार पक्षी बाज के (वश में है) और जिस प्रकार वधिक (शिकारी) के हाथ में जाल है, (उसी प्रकार मनुष्य भी काल के वशीभूत है)। जिनकी गुरु रक्षा करता है, वे ही बचते हैं और शेष तो चारे द्वारा (मायिक आकर्षणों द्वारा जाल में) फँसा लिए जाते हैं। बिना (परमात्मा के) नाम के (वे लोग) चुन-चुन कर फेंक दिए जाते हैं (उस समय उनका) कोई भी संगी-साथी नहीं होता ॥ ३ ॥

(वह) सच्चा ही सच्चा कहा जाता है (और उस) सत्य का स्थान भी सच्चा है। जिन्होंने उस सत्य (परमात्मा) को मान लिया, उनके अन्तःकरण में सत्य का ही ध्यान होता है। (ऐसे पुरुषों को) मन और मुख से पवित्र जानना चाहिए, जिन्होंने गुरु के मुख द्वारा ज्ञान (प्राप्त किया है) ॥ ४ ॥

(हे साधक) सद्गुरु के आगे यह प्रार्थना कर कि वह साजन (परमात्मा) को मिला दे। साजन के मिलने पर (परम) सुख की प्राप्ति होती है (और) यमदूत जहर खाकर मर जाते हैं। यदि मैं नाम के अंतर्गत बस जाऊँ तो नाम भी आकर मन में बस जाता है ॥ ५ ॥

बिना गुरु के अन्धकार है बिना (गुरु के) शब्द के समझ नहीं मिलती । गुरु द्वारा दी गई बुद्धि से (ज्ञान का) प्रकाश होता है (और शिष्य) सत्य स्वरूप परमात्मा में अपनी लिव लगा देता है । वहाँ काल का संचरण नहीं होता (और आत्मा की) ज्योति (परमात्मा की) ज्योति में समा जाती है ॥ ६ ॥

(हे हरी) तू ही सज्जन है और तू ही सुजान (चतुर) है, और तू ही अपने में (जीवों) को मिलानेवाला है । गुरु के शब्दों द्वारा (तुम्हारी) स्तुति की जाती है; (हे परमात्मा) न तुम्हारा अन्त है और न पारावार (सीमा) है । जहाँ काल नहीं पहुँचता, वहाँ गुरु का अपार शब्द है ॥७॥

(परमात्मा के) हुक्म से सब उत्पन्न होते हैं और हुक्म से ही सब (नाना-प्रकार) कार्य करते हैं । हुक्म से ही काल के वशीभूत होते हैं और हुक्म से सत्य (परमात्मा) में समा जाते हैं । नानक कहते हैं कि जो उसे अच्छा लगता है, वही होता है, इन प्राणियों के वश में कुछ भी नहीं है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

मनि जूठै तनि जूठि है जिहवा जूठी होइ ।
मुखि झूठै झूठु बोलणा किउकरि सूचा होइ ॥
बिनु अभ सबद न मांजीऐ साचे ते सचु होइ ॥१॥
मुंधे गुणहीणी सुखु केहि ।
पिरु रलीआ रसि माणसी साचि सबदि सुखु नेहि ॥१॥ रहाउ ॥
पिरु परदेसी जे थीऐ धन वांढी झूरेइ ॥
जिउ जलि थोड़ै मछुली करण पलाव करेइ ॥
पिर भावै सुखु पाईऐ जा आपे नदरि करेइ ॥२॥
पिरु सालाही आपणा सखी सहेली नालि ।
तनि सोहै मनु मोहिआ रती रंगि निहालि ।
सबदि सवारी सोहणी पिरु रावे गुण नालि ॥३॥
कामणि कामि न आवई खोटी अवगणिआरि ।
ना सुखु पेईऐ साहुरै झूठि जली वेकारि ॥
आवणु वंञणु डाखड़ो छोडी कंति विसारि ॥४॥
पिर की नारि सुहावणी मुती सो कितु सादि ।
पिर कै कामि न आवई बोले फादिलु बादि ॥
दरि घरि ढोई ना लहै छूटी दूजै सादि ॥५॥
पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु ।
अन कउ मती दे चलहि माइआ का वापारु ॥
कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु ॥६॥
केते पंडित जोतकी बेदा करहि बीचारु ।
वादि विरोधि सलाहणे वादे आवणु जाणु ॥
बिनु गुर करम न छुटसी कहि सुणि आखि वखाणु ॥७॥

सभ गुणवती नारीआ हउ मै गुणु नाही कोइ।
हरि वरु नारि सुहावणी मै भावै प्रभु सोइ।
नानक सबदि मिलावड़ा ना वेछोड़ा होइ ॥८॥५॥

मन के झूठ होने से शरीर झूठा हो जाता है और जीभ भी झूठी हो जाती है। (जिसका) मुख झूठा है वह झूठ बोलता है (भला बताओ वह) कैसे पवित्र हो सकता है? बिना शब्द रूपी पानी के (वे जूठनें) साफ नहीं होतीं सत्य (व्यक्ति से ही) सत्य की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

अरी स्त्री गुणविहीन (स्त्री) को सुख कहाँ (मिल सकता) है? (तुम) अपने प्रियतम से मिलकर ही रस मानोगी (प्राप्त करोगी) सच्चे शब्द द्वारा ही प्रेम म सुख है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि प्रियतम परदेसी है, तो (उससे) बिछुड़ी हुई स्त्री दु:खी होती है। (उस बिछुड़ी हुई स्त्री की झींक वही दशा होती है) वैसे थोड़े जल में मछली करुण-प्रलाप करती है। प्रियतम के अच्छी लगने पर ही (स्त्री) को सुख प्राप्त होता है (किन्तु यह सुख तभी मिलता है) जब (प्रियतम प्रभु) कृपा-दृष्टि करता है ॥२॥

(मैं) अपनी सखी-सहेलियों के अपने प्रियतम की प्रशंसा—स्तुति करती। (प्रियतम के सौन्दर्य को देख कर) (मेरा) शरीर सुहावना (हो गया है), मन मोहित हो गया है (और) आनन्द मे रत होकर (मैं) (पति को) देखती हूँ। (गुरु के) शब्दों से सँवारी हुई (मैं बहुत ही) सुहागनी (हो गई हूँ)। (मेरे) गुणों मे (रीझ कर) प्रियतम (मेरे साथ) रमण कर रहा है ॥३॥

अवगुणवाली नारी स्त्री (अपने पति) के काम नहीं आती। उसे न तो नैहर (इस संसार) में सुख (मिलता है) और न ससुराल (परलोक) मे ही वह झूठ में व्यर्थ ही बसती है। उसका आना-जाना (जन्म-मरण) कठिन होता है, (उसके) पति ने उसे भुला कर छोड़ दिया है ॥४॥

प्रियतम की सुहागनी क्या किस स्वाद (मायिक पदार्थों) क कारण छोड़ दी गई? (वह छोड़ी हुई स्त्री) प्रियतम के किसी काम नहीं आती (वह) व्यर्थ बकवास करती है। (परमात्मा क) दरवाजे और घर मे (उसका) प्रवेश नहीं होता दूसरों स्वादों में (लिप्त होने के कारण वह) छोड़ दी गई है ॥५॥

पंडित पोथियाँ बाँचते हैं, (किन्तु स्वयं) विचार नहीं समझते। दूसरों को तो बुद्धि देते हैं, (किन्तु स्वयं) माया के व्यापार में चलते हैं। झूठे कथन में ही (सारा) जगत् भटकता फिरता है (गुरु के) शब्द के अनुसार (वास्तविक) रहनी रहना ही सार तत्त्व है ॥६॥

कितने ही पंडित ज्योतिषी वेदों का विचार करते हैं, (किन्तु वे) वादविवाद और विरोध, प्रशंसा और वैर (इन्हीं म) आने-जाने रहते हैं। व्याख्यानों के कहने और सुनने से हो बिना गुरु-कृपा के छुटकारा नहीं मिलता ॥७॥

सारी (स्त्रियाँ) गुणवती कहलाती हैं मुझ में तो कोई गुण नहीं है। (जिसका) पति हरि है, वही स्त्री सुहागनी है, मुझे तो वही प्रभु अच्छा लगता है। नानक कहते हैं कि (यदि गुरु के) शब्द से मिलाप हो जाता है, (तो फिर) बिछोह नहीं होता ॥८॥५॥

जपु तपु संजमु साधीऐ तीरथि कीचै वासु ।
पुंन दान चंगिआईआ बिनु साचे किआ तासु ।
जेहा राधे तेहा लुणै बिनु गुण जनमु विणासु ॥१॥
मुंधे गुण दासी सुखु होइ ।
अवगण तिआगि समाईऐ गुरमति पूरा सोइ ॥१॥ रहाउ ॥
विणु रासी वापारीआ तके कुंडा चारि ।
मूलु न बुझै आपणा वसतु रही घर बारि ॥
विणु वखर दुखु अगला कूड़ि मुठी कूड़िआरि ॥२॥
लाहा अहिनिसि नउतना परखे रतनु वीचारि ।
वसतु लहै घरि आपणै चलै कारजु सारि ॥
वणजारिआ सिउ वणजु करि गुरमुखि ब्रहमु बीचारि ॥३॥
संतां संगति पाईऐ जे मेले मेलणहारु ।
मिलिआ होइ न विछुड़ै जिसु अंतरि जोति अपार ॥
सचै आसणि सचि रहै सचै प्रेम पिआर ॥४॥
जिनी आपु पछाणिआ घर महि महलु सुथाइ ।
सचे सेती रतिआ सचो पलै पाइ ॥
त्रिभवणि सो प्रभु जाणीऐ साचो साचै नाइ ॥५॥
साधन खरी सुहावणी जिनि पिरु जाता संगि ।
महली महलि बुलाईऐ सो पिरु रावे रंगि ॥
सचि सुहागणि सा भली पिरि मोही गुण संगि ॥६॥
भूली भूली थलि चड़ा थलि चड़ि डूगरि जाउ ।
बन महि भूली जे फिरा बिनु गुर बूझ न पाउ ॥
नावहु भूली जे फिरा फिरि फिरि आवउ जाउ ॥७॥
पुछहु जाइ पधाऊआ चले चाकर होइ ।
राजनु जाणहि आपणा दरि घरि ठाक न होइ ॥
नानक एको रवि रहिआ दूजा अवरु न कोइ ॥८॥६॥

(चाहे अनेक) जप तप और संयम की साधना की जाए और तीर्थों में वास किया जाए (अनेक प्रकार के) पुण्य दान एवं शुभ कर्म किए जाएँ (किन्तु) बिना सच्चे (परमात्मा) के उनका क्या (लाभ) है ? (मनुष्य) जैसा बोता है वैसा ही काटता है, बिना गुणों के जन्म नष्ट हो जाता है ॥१॥

ऐ स्त्री (जो) गुणों की दासी है, (उसी को) सुख होता है। गुरु की शिक्षा द्वारा जो अवगुणों को त्याग कर (परमात्मा में) समा जाता है वही पूर्ण है ॥१॥ रहाउ ॥

बिना मूलधन के व्यापारी चारों दिशाओं में ताकता फिरता है। (वह) अपने मूलधन को नहीं जानता, वस्तु तो घर के भीतर ही है। बिना सौदे के अत्यन्त दुःख होता है, झूठी (दुनिया) झूठ में ही नष्ट होती है ॥२॥

•

(उस व्यापारी को) अहर्निश नया लाभ होता है, (वह नाम को) रख विचार करके परखता है। उसे वस्तु अपने घर में ही मिल जाता है (और वह) अपना कार्य पूरा करके चला जाता है। व्यापारियों के साथ व्यापार करो (गुरु की) शिक्षा द्वारा ब्रह्म का विचार करो ॥३॥

संतों की संगति में (ब्रह्म तत्व) प्राप्त किया जाता है, यदि मिलानेवाला अपने से (शिष्य को) मिला दे जिसके अंतर्गत अपार ज्योति है (उसका) मिलाप होने पर, (फिर) वियोग नहीं होता। (जिस शिष्य का) सच्चा प्रेम होता है, वह सच्चे (परमात्मा) के सच्चे आसन पर (विराजमान) होता है ॥४॥

जिन्होंने अपने आप को पहचान लिया, उनके (शरीर रूपी) घर में (उनके हृदय रूपी) महल में (हरी के रहने का) सुन्दर स्थान है। (जिन्होंने) सच्चे (परमात्मा) से प्रेम किया है, उनके पल्ले में सच्चा ही पड़ता है। (जो प्रभु) सच्चा है सच्चे नामवाला है उसे त्रिभुवन (में व्याप्त) जानना चाहिए ॥ ॥

वह स्त्री सच्ची सुन्दरी (सौभाग्यवती है) जिसने प्रियतम को अपने साथ (रहता हुआ) जान लिया है। वह स्त्री महल में बुलाई जाती है और प्रियतम के साथ आनन्दपूर्वक रमण करती है। वही सच्ची सुहागिनी है (और वही) भली है जो (अपने) प्रियतम के गुणों के साथ मोहित हुई है ॥६॥

(मैं) घूमते-घूमते सूखी जमीन पर चढ़ो, उस सूखी जमीन पर चढ़ कर (मैं) पर्वत पर गई (वहाँ से भी) घूमते भटकती वन में भटकी (इस प्रकार स्थल पर्वत और वन आदि में भटकते रहने पर) बिना गुरु के ज्ञान नहीं पाता। (यदि) नाम को भूल कर मैं भटकती फिरती हूँ तो बार बार आना-जाना पड़ेगा (जन्म-मरण के चक्कर में आना पड़ेगा) ॥७॥

उन पथिकों से जाकर (परमात्मा के सम्बन्ध) में पूछो जो (गुरु के मार्ग के) चाकर होकर चल रहे हैं। वे अपने राजा (परमात्मा) को जानते हैं (अतएव आज्ञाकारी प्रजा होने के कारण परमात्मा के) घर के दरवाजे पर वे रोके नहीं जाते। नानक कहते हैं कि एक (परमात्मा) ही (सर्वत्र) रमा हुआ है (उसके अतिरिक्त) दूसरा और कोई नहीं है ॥८॥६॥

[७]

गुर ते निरमलु जाणीऐ निरमल देह सरीरु ।
निरमलु साचो मनि वसै सो जाणै अभ पीर ॥
सहजै ते सुखु अगलो ना लागै जम तीरु ॥१॥
भाई रे मैलु नाही निरमल जलि नाइ ।
निरमलु साचा एकु तू होरु मैलु भरी सभ जाइ ॥१॥ रहाउ ।
हरि का मंदरु सोहणा कीआ करणैहारि ।
रवि ससि दीप अनूप जोति त्रिभवणि जोति अपार ॥
हाट पटण गड़ कोठड़ी सचु सउदा वापार ॥२॥
गिआन अंजनु भै भंजना देखु निरंजन भाइ ।
गुपतु प्रगटु सभ जाणीऐ जे मनु राखै ठाइ ॥
ऐसा सतिगुरु जे मिलै ता सहजे लए मिलाइ ॥३॥

कसि कसवटी लाईऐ परखे हितु चितु लाइ ।
खोटे ठउर न पाइनी खरे खजाने पाइ ।।
आस अंदेसा दूरि करि इउ मलु जाइ समाइ ।।४।।
सुख कउ मागै सभु को दुखु न मागै कोइ ।
सुखै कउ दुखु अगला मनमुखि बूझ न होइ ।।
सुख दुख सम करि जाणीअहि सबदि भेदि सुखु होइ ।।५।।
बेदु पुकारे वाचीऐ बाणी ब्रहम बिआसु ।
मुनि जन सेवक साधिका नामि रते गुणतासु ।।
सचि रते से जिणि गए हउ सद बलिहारै जासु ।।६।।
चहु जुगि मैले मलु भरे जिन मुखि नामु न होइ ।
भगती भाइ विहूणिआ मुहु काला पति खोइ ।
जिनी नामु विसारिआ अवगण मुठी रोइ ।।७।।
खोजत खोजत पाइआ डरु करि मिलै मिलाइ ।
आपु पछाणै घरि वसै हउमै तृसना जाइ ।
नानक निरमल ऊजले जो राते हरिनाइ ।।८।।७।।

गुरु से ही निर्मल (परमात्मा) जाना जाता है (वह परमात्मा) निर्मल शरीर वाला है। (गुरु कृपा से) निर्मल सच्चा (परमात्मा) मन में बस जाता है, वही आभ्यान्तरिक (हृदय की) पीड़ा जानता है। सहजावस्था से अत्यन्त सुख मिलता है और यम का तीर नहीं लगता ।।१।।

अरे भाई (जो नाम रूपी) निर्मल जल में नहाता है, (उसे) मैल नहीं लगती। (हे परमात्मा) एक तू ही निर्मल और सच्चा है और सारी जगहें (जाइ) मैल से भरी हैं ।।१।। रहाउ ।।

कर्त्ता ने हरि का मन्दिर (बड़ा ही) सुन्दर बनाया है। (उस विराट् मन्दिर में) सूर्य और चन्द्रमा के दीपक की अनुपम ज्योति है, (वह अपार ज्योति) त्रिभुवन (में व्याप्त है)। दुकानो नगरों गढ़ो और कोठरियों में सच्चे सौदे का व्यापार (चल रहा) है।

[मनुष्य के शरीर में स्थित हृदय मस्तिष्क आदि दुकान आदि कहे गए हैं। हृदय दुकान (हट्ट) है, शरीर नगर (पटन) है, मस्तिष्क में स्थित दसम द्वारा गढ़ (गढ़) है तथा शरीर में स्थित विभिन्न शिराएं कोठरियां हैं] ।।२।।

ज्ञान का अंजन भय को नष्ट करने वाला है, (उसी ज्ञान-अंजन आँखों में लगाकर) निरंजन (परमात्मा) को भावपूर्वक देखो। यदि मन को टिका दिया जाय तो अदृश्य और दृश्य (सभी वस्तुएँ) जान ली जाती हैं। यदि इस प्रकार का (मन निरोध करनेवाला) सद्गुरु प्राप्त हो जाय तो वह (शिष्य को) सहजावस्था (चतुर्थ पद निर्वाण पद) में मिला देता है ।।३।।

(परमात्मा साधकों को) बड़े ही प्रेम और ध्यान से कसौटी पर चढ़ा कर परखता है। (जो उसकी कसौटी पर) खोटे (सिद्ध होते हैं) उन्हें स्थान नहीं मिलता (वे फेंक दिए जाते हैं) (जो) खरे (निकलते हैं) (वे उसके) खजाने में डाल दिए जाते हैं। यदि आशा और संशय को दूर कर दो (तो) इस प्रकार (तुम्हारे सारे) मल (पाप) विलीन हो जायँगे ।।४।।

सभी कोई सुख को ही माँगते हैं कोई भी दुःख नहीं माँगता। (किन्तु) सुख (की आशा रखनेवाले) को महान् दुःख होता है मनमुख को यह समझ नहीं होती। (गुरु के) शब्द को भेद कर (जो) सुख-दुःख का समान रूप से जानते हैं उन्हें (अलौकिक) सुख होता है ॥५॥

(यदि) ब्रह्मा की वाणी वेद और व्यास के (वेदान्त सूत्र) आदि पढ़ जायें (तो यही ज्ञात होता है) और वेद भी पुकार-पुकार कर कहते हैं (कि जो) मुनिगण सेवक और साधक गुणों के खजाने—नाम में रत हैं सत्य में रत हैं वे ही जिज्ञासु हुए हैं मैं उन पर सदैव बलिहारी होता हूँ ॥६॥

जिनके मुख में (परमात्मा का) नाम नहीं है, वे चारों युगों में मैले और मल से भरे हैं। (ऐसे लोगों का) मुँह काला होता है और प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है (जो) भक्ति और प्रेम से विहीन हैं। जिन्होंने नाम भुला दिया है, वे अवगुण में नष्ट होकर रोते हैं ॥७॥

खोजने-खोजते (परमात्मा की) प्राप्ति हो गई, (जो परमात्मा से) डर कर मिलता है, (उसे वह अपने में) मिला लेता है। (जो) आत्म का पहचानता है, (उसके) घर (शरीर) में (परमात्मा) बसता है (ऐसे व्यक्ति के) अहंकार और तृष्णा की निवृत्ति हो जाती है। नानक कहते हैं जो हरि नाम में रत हैं वे निर्मल और उज्ज्वल हैं ॥८॥७॥

[८]

सुणि मन भूले बावरे गुर की चरणी लागु।
हरि जपि नामु धिआइ तू जमु डरपै दुख भागु ॥
दूखु घणो दोहागणी किउ थिरु रहै सुहागु ॥ १ ॥
भाई रे अवरु नाही मै थाउ।
मै धनु नामु निधानु है गुरि दीआ बलि जाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
गुरमति पति साबासि तिसु तिस कै संगि मिलाउ।
तिसु बिनु घड़ी न जीवऊ बिनु नावै मरि जाउ ॥
मै अंधुले नामु न वीसरै टेक टिकी घरि जाउ ॥ २ ॥
गुरू जिना का अंधुला चेले नाही ठाउ।
बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बिनु नावै किआ सुआउ ॥
आइ गइआ पछुतावणा जिउ सुंञै घरि काउ ॥ ३ ॥
बिनु नावै दुखु देहुरी जिउ कलर की भीति।
तब लगु महलु न पाईऐ जब लगु साचु न चीति ॥
सबदि रपै घरु पाईऐ निरबाणी पदु नीति ॥ ४ ॥
हउ गुर पूछउ आपणे गुर पुछि कार कमाउ।
सबदि सलाही मनि वसै हउमै दुखु जलि जाउ ॥
सहजे होइ मिलावड़ा साचे साचि मिलाउ ॥ ५ ॥
सबदि रते से निरमले तजि काम क्रोधु अहंकारु।
नामु सलाहनि सद सदा हरि राखहि उर धारि ॥
सो किउ मनहु विसारीऐ सभ जीआ का आधारु ॥ ६ ॥

अरे मन राम जपो (तभी) सुख होगा। बिना गुरु के (प्रियतम का) प्रेम नहीं प्राप्त होता (गुरु के शब्द) से ही (वह प्रेम) मिलता है (और उसके प्राप्त होने पर) आनन्द होता है ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु की सेवा से ही सुख प्राप्त होता है सहजावस्था के शृङ्गार से ही हरि रूपी पति (प्राप्त होता है)। प्रियतम (उसी) सच्ची (स्त्री) को सेज पर भोगता है, जिसका स्नेह और प्रेम गंभीर है। (गुरु की) शिक्षा द्वारा (वह) सयानी (चतुर) समझी जाती है गुरु ने उसे (हरी से) मिलाया है, (तब जाकर उसे) गुणों वाला आधार (प्राप्त हुआ है) ॥२॥

हे कामिनी सच्चे वर से मिलो प्रियतम द्वारा मोही गई (तुम खूब) आनन्द करो। (तुम्हारा) तन और मन सत्य (परमात्मा) में प्रफुल्लित हुआ है, (उस प्रसन्नता) की कीमत नहीं कही जा सकती। (यदि) हरी (तुम्हारा) पति (हो जाय) (तो तुम) घर में सुहागिनी हो (वह हरी) निर्मल और सच्चे नाम वाला है ॥३॥

यदि (ज्योतिमय) मन में (मलिन) मन मर जाय (समाहित हो जाय) तो प्रियतम स्त्री के साथ रमण करता है। (जिस प्रकार) मोती धागे से (गुँथा जा कर) उसके साथ मिलकर गले का हार बन जाता है [उसी प्रकार पति और पत्नी (परमात्मा और जीवात्मा) मिलकर एकाकार हो जाते हैं]। संतों की सभा में (अपार) सुख उत्पन्न होता है, गुरु की शिक्षा द्वारा नाम ही (उसका) आधार हो जाता है ॥४॥

(मनुष्य) क्षण में उत्पन्न होता है, क्षण में नष्ट जाता है क्षण में आता है और क्षण में चला जाता है। (यदि वह गुरु के) शब्द (नाम) को पहचान जाय और उसी में रमण करने लगे (तो) उसे काल दुःख नहीं दे सकेगा। ठाकुर (परमात्मा) अतुलनीय है, (उसकी किसी वस्तु से) तुलना नहीं की जा सकती वह कथन से नहीं पाया जा सकता है ॥५॥

व्यापारी और बनजारे (अपनी-अपनी) तनख्वाह लिखा कर आ गए हैं। (यदि) सच्चे (परमात्मा) का काम (ईमानदारी और सच्चाई) से करें (तो उन्हें उसकी) मरजी से (अवश्य ही) लाभ मिलेगा। सच्ची पूँजी से ही गुरु प्राप्त होता है उसमें तिल मात्र भी लालच नहीं है ॥६॥

(गुरु के) उपदेश द्वारा (शिष्य) पूरी तौल तौला जायगा (हरी के) तराजू की तौल (बड़ी) सच्ची है। माया और वासना (शिष्य को) मोहनेवाली है, (किन्तु) गुरु ने (अपनी) सच्ची वाणी से उन्हें रोक दिया है। (वह) स्वयं ही (भलीभाँति) तौलेगा (उसकी) तौल पूरी पूरी (बहुत ही अच्छी) है।

[विशेष गोसाईं—गुरुवाणी में कई स्थानों पर छन्द की मात्राओं को पूरी करने के लिए किसी मात्रा को लघु अथवा दीर्घ करने की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ 'गुसाईं' की छ मात्राओं के स्थान पर सात मात्रा करने के लिए 'गु' को 'गो' के रूप में लिखा गया है] ॥७॥

(अनेक प्रकार के) कथन कहने से छुटकारा (मोक्ष) नहीं मिलता, न पुस्तकों के बार के अध्ययन से ही (मुक्ति मिलती है)। बिना हरि की भक्ति और प्रेम के शरीर की शुद्धि नहीं होती। (जिसके द्वारा) नाम नहीं विस्मृत होता (उसे) गुरु करतार (अपने में) मिला लेता है ॥८॥६॥

[१०]

सतिगुरु पूरा जे मिलै पाइऐ रतनु बीचारु ।
मनु दीजै गुर आपणे पाइऐ सरब पिआरु ॥
मुकति पदारथु पाइऐ अवगण मेटणहारु ॥ १ ॥
भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ ।
पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ ।
सफलिओ बिरखु हरीआवला छाव घणेरी होइ ॥
लाल जवेहर माणकी गुर भंडारै सोइ ॥ २ ॥
गुर भंडारै पाइऐ निरमल नाम पिआरु ।
साचो वखरु संचीऐ पूरै करमि अपारु ॥
सुखदाता दुख मेटणो सतिगुरु असुर संघारु ॥ ३ ॥
भवजलु बिखमु डरावणो ना कंधी ना पारु ।
ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना तिसु वंझु मलारु ॥
सतिगुरु भै का बोहिथा नदरी पारि उतारु ॥ ४ ॥
इकु तिलु पिआरा विसरै दुखु लागै सुखु जाइ ।
जिहवा जलउ जलावणी नामु न जपै रसाइ ।
घटु बिनसै दुखु अगलो जमु पकड़ै पछुताइ ॥ ५ ॥
मेरी-मेरी करि गए तनु धनु कलतु न साथि ।
बिनु नावै धनु बादि है भूलो मारगि आथि ॥
साचउ साहिबु सेवीऐ गुरमुखि अकथो काथि ॥ ६ ॥
आवै जाइ भवाइऐ पइऐ किरति कमाइ ।
पूरबि लिखिआ किउ मेटीऐ लिखिआ लेखु रजाइ ।
बिनु हरिनाम न छुटीऐ गुरमति मिलै मिलाइ ॥ ७ ॥
तिसु बिनु मेरा को नही जिस का जीउ परानु ।
हउमै ममता जलि बलउ लोभु जलउ अभिमानु ॥
नानक सबदु वीचारीऐ पाइऐ गुणी निधानु ॥ ८ ॥ १० ॥

यदि पूर्ण सद्गुरु प्राप्त हो जाय (तभी) विचार रूपी रत्न की प्राप्ति होती है। (यदि) अपने गुरु को मन दे दिया जाय तभी सर्वप्रिय (परमात्मा) प्राप्त होता है। (सद्गुरु से ही उस) मुक्ति रूपी पदार्थ की प्राप्ति होती है, (जो समस्त) अवगुणों (दोषों पापों) को मिटाने वाला है ॥१॥

अरे भाई गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। (यदि किसी को मेरे इस कथन पर विश्वास न हो तो वह जाकर) किसी ब्रह्मा नारद अथवा वेदव्यास से पूछ ले ॥१॥ रहाउ ॥

ज्ञान और ध्यान (गुरु के) शब्द (ध्वनि) से ही जाने जाते हैं, वह (गुरु) ही अकथनीय (परमात्मा) का कथन करता है। (वह गुरु ही) हरा-भरा घनी छाया वाला फलयुक्त वृक्ष है। उस (गुरु) के भाण्डार में (इन रूपों) लाल जवाहर और माणिक्य हैं ॥२॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह ।
सर भरि थल हरीआवले इक बूंद न पवई केह ।
करमि मिलै सो पाईऐ किरतु पइआ सिरि देह ॥ ३ ॥
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल दुध होइ ।
आवटणु आपे खवै दुध कउ खपणि न देइ ॥
आपे मेलि विछुंनिआ सचि वडिआई देइ ॥ ४ ॥
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चकवी सूर ।
खिनु पलु नीद न सोवई जाणै दूरि हजूरि ॥
मनमुखि सोझी ना पवै गुरमुखि सदा हजूरि ॥ ५ ॥
मनमुखि गणत गणावणी करता करे सु होइ ।
ता की कीमति ना पवै जे लोचै सभु कोइ ॥
गुरमति होइ त पाईऐ सचि मिलै सुखु होइ ॥ ६ ॥
सचा नेहु न तुटई जे सतिगुरु भेटै सोइ ।
गिआन पदारथु पाईऐ त्रिभवण सोझी होइ ॥
निरमलु नामु न वीसरै जे गुण का गाहकु होइ ॥ ७ ॥
खेलि गए से पंखणूं जो चुगदे सर तलि ।
घड़ी कि मुहति कि चलणा खेलणु अजु कि कलि ॥
जिसु तूं मेलहि सो मिलै जाइ सचा पिड़ मलि ॥ ८ ॥
बिनु गुर प्रीति न ऊपजै हउमै मैलु न जाइ ।
सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ ॥
गुरमुखि आपु पछाणीऐ अवर कि करे कराइ ॥ ९ ॥
मिलिआ का किआ मेलीऐ सबदि मिले पतीआइ ।
मनमुखि सोझी न पवै वीछुड़ि चोटा खाइ ॥
नानक दरु घरु एकु है अवरु न दूजी जाइ ॥ १० ॥ ११ ॥

हे मन हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) जल से कमल (करता है।) वे (जल की) लहरों से धक्के खाते हैं, फिर भी प्रेम में विकसित रहते हैं। उन (कमलों) का जीवन पानी में ही रखा गया है और पानी के बिना ही उनका मरण है ॥१॥

अरे मन, बिना प्यार के कैसे छूटोगे (मुक्त होगे)? (वही हरि) गुरमुखों के अन्तगत रमण कर रहा है (और उन्हें) भक्ति का भाण्डार प्रदान करता है ॥१॥ रहाउ ॥

अरे मन हरि से इस प्रकार प्रीति कर जैसी (प्रीति) जल से मछली (करती है)। जैसे-जैसे (जल का) आधिक्य होता है वैसे-वैसे (उस मछली के) सुख की अधिकता (होती है) (उसके) तन मन (दोनों) में शान्ति रहती है। बिना जल के वह एक घड़ी भी नहीं जीती। पानी के बिना उसे (जो) आभ्यान्तरिक पीड़ा होती है, (उसे) प्रभु ही जानता है ॥२॥

अरे मन हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) चातक बादल से (करता है।) (सारे) सरोवर भरे हैं, स्थल हरे-भरे हैं (किन्तु यदि स्वाती नक्षत्र के बादल की) एक बूंद नहीं मिली तो (उनसे) क्या (लाभ)? जो भाग्य में है, वही मिलता है। की हुई कमाई (किरत) के अनुसार (परमात्मा के हुक्म से) भाग्य भी बनता है ॥३॥

अरे मन, हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) जल और दूध में होती है। (दूध और जल को मिलाकर) औटने पर (जल) स्वयं जलता है, (पर) दूध को नहीं जलने देता। (हरि) बिछुड़े हुओं को स्वयं ही (अपने में) मिलाता है (और) सच द्वारा (उन्हें) बड़ाई देता है ॥४॥

अरे मन, हरि से ऐसी प्रीति कर, जैसी (प्रीति) चकवी सूर्य से करती है। वह (एक) क्षण भी (एक) पल भी नींद में नहीं सोती (वह) दूरस्थ (सूर्य) को निकट ही समझती है। मनमुख को समझ नहीं प्राप्त होती, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य परमात्मा को) निकट ही (जानता है) ॥ ५ ॥

मनमुख (अपने कर्मों की) गिनती गिनता है—हिसाब लगाता है (किन्तु वास्तव में) जो कर्ता (परमात्मा) करता है, वही होता है। जिसे सभी ढूंढ़ते हैं, उसकी कीमत नहीं पाई जाती। (यदि कोई) गुरु द्वारा शिक्षित हो तभी (परमात्मा को) पाता है, (तभी वह) सत्य पाता है, (जिसके पाने से अपार) सुख होता है ॥ ६ ॥

यदि सद्गुरु मिल जाय (और सच्चे प्रेम की प्राप्ति हो जाय) तो सच्चा प्रेम नहीं टूटता। ज्ञान रूपी पदार्थ पा जाने पर त्रिभुवन का ज्ञान हो जाता है। यदि (परमात्मा के) गुणों का (कोई) ग्राहक हो जाय, तो (उसका) पवित्र नाम नहीं भूलता ॥ ७ ॥

वे पक्षी (अपना) खेल खेल कर चल दिए, जो तालाब के तटस्थल पर अपना (चारा) चुगते थे [भावार्थ यह कि, वे मनुष्य इस संसार से विदा हो गए जो भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते थे]। घड़ी अथवा मुहूर्त भर में (यहाँ से प्रत्येक को) जाना है। आज अथवा कल भर का खेल है। (हे प्रभु) जिसे तू मिलाता है, वही (तुझसे) मिलता है (वह) जाकर सच्चे मैदान में खेलने के लिए उतरता है।

[विशेष: पिड=सिंधी शब्द खेल का मैदान। पिड मलणा=खेल के मैदान में खेलने के लिए उतरना] ॥ ८ ॥

बिना गुरु के (परमात्मा में) प्रीति नहीं उत्पन्न होती (और बिना प्रीति के) अहंकार की मैल नहीं जाती। (गुरु के) शब्द द्वारा शिष्य भेदा जा कर यह विश्वास करता है कि सोऽहं तत्व मैं ही हूँ। (वह इस सोऽहं के वास्तविक तत्व को) पहचान लेता है। (यदि गुरु की) शिक्षा द्वारा (शिष्य) अपने आप को पहचान ले (तो वह) क्या करे और क्या कराये? (अर्थात् इस संसार में उसने सभी कुछ कर लिया और सभी कुछ करा लिया उसके लिए अब कोई कर्तव्य करने को शेष नहीं है) ॥ ९ ॥

(जो) परमात्मा से मिल गए हैं उन्हें (अब और) क्या मिलाया जाय? (जो गुरु के) शब्द से मिलकर (एक हो) गए हैं, (परमात्मा) उनमें विश्वास करता है। मनमुख को ज्ञान नहीं होता (वह परमात्मा से) बिछुड़ कर चोटें खाता है। नानक कहते हैं कि परमात्मा का महल एक ही है (उसे छोड़ कर) दूसरा कोई स्थान नहीं है ॥ १ ॥ ११ ॥

[१२]

मनमुखि भुली भुलाईऐ भूली ठउर न काइ।
गुर बिनु को न दिखावई अंधी आवै जाइ ॥
गिआन पदारथु खोइआ ठगिआ मुठा जाइ ॥ १ ॥

बाबा माइआ भरमि भुलाइ ।
भरमि भुली डोहागणी ना पिर अंकि समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
भूली फिरै दिसंतरी भूली ग्रिहु तजि जाइ ।
भूली डूगरि थलि चड़ै भरमै मनु डोलाइ ॥
धुरहु विछुंनी किउ मिलै गरबि मुठी बिललाइ ॥ २ ॥
विछुड़िआ गुरु मेलसी हरि रसि नाम पिआरि ।
साचि सहजि सोभा घणी हरिगुण नाम अधारि ॥
जिउ भावै तिउ रखु तू मै तुझ बिनु कवनु भतारु ॥ ३ ॥
अखर पड़ि पड़ि भुलीऐ भेखी बहुतु अभिमानु ।
तीरथ नाता किआ करे मन महि मैलु गुमानु ॥
गुर बिनु किनि समझाईऐ मनु राजा सुलतानु ॥ ४ ॥
प्रेम पदारथु पाईऐ गुरमुखि ततु वीचारु ।
साधन आपु गवाइआ गुर कै सबदि सीगारु ॥
घर ही सो पिरु पाइआ गुर कै हेति अपारु ॥ ५ ॥
गुर की सेवा चाकरी मनु निरमलु सुखु होइ ।
गुर का सबदु मनि वसिआ हउमै विचहु खोइ ॥
नामु पदारथु पाइआ लाभु सदा मनि होइ ॥ ६ ॥
करमि मिलै ता पाईऐ आपि न लइआ जाइ ।
गुर की चरणी लगि रहु विचहु आपु गवाइ ॥
सचे सेती रतिआ सचो पलै पाइ ॥ ७ ॥
भुलण अंदरि सभु को अभुलु गुरू करतारु ।
गुरमति मनु समझाइआ लागा तिसै पिआरु ॥
नानक साचु न वीसरै मेले सबदु अपारु ॥ ८ ॥ १२ ॥

मनमुखी (स्त्री) भुलावे में भटकती फिरती है, (उस) भटकती हुई को कोई स्थान नहीं (मिलता) बिना गुरु के उसे कोई भी (मार्ग) नहीं दिखाता (इस प्रकार) वह अंधी भागी भागी रहती है। (उसने) ज्ञान-पदार्थ खो दिया है (और वह) ठगी जाकर नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अरे बाबा माया भ्रमित करके (उसे) भुला देती है। (वह) दुहागिनी भ्रमित होकर भूली हुई प्रियतम के अंक में नहीं समा सकती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वह) भूली हुई देश-देशान्तरों में भटकती फिरती है (वह अपना वास्तविक) घर छोड़कर भटकती फिरती है। (वह) भटकती हुई पर्वतों और स्थलों पर चढ़ती फिरती है, (इस प्रकार वह) मन चंचल करके भटकती रहती है। (जो) आरम्भ से ही (परमात्मा से) बिछुड़ी हुई है, (वह) किस भाँति मिल सकती है? अहंकार में फँसी हुई वह बिलखाती है ॥ २ ॥

(जिनका) हरि में रस है और नाम में प्रीति है, (उन) बिछुड़ी हुई (स्त्रियों) को गुरु (परमात्मा से) मिला देगा। सत्य और, सहजावस्था द्वारा तथा हरिगुण और नाम

के माध्यम से बहुत धोखा (खाती है।) जैसा तुम्हें अच्छा लगे, वैसा (तुम मुझे) रखो। तुम्हारे बिना मेरा (अन्य) पति कौन है? ॥ ३ ॥

अपार पढ़-पढ़ कर (मनुष्य) भुलावे में पड़ जाता है, (साधु) वेश में तो और भी अधिक अभिमान है। मन में यदि मैल और गुमान (अभिमान) है तो तीर्थों में स्नान करके भी (वह) क्या कर सकता है? गुरु के बिना (यह तथ्य) और कौन समझा सकता है कि "मन ही राजा और सुल्तान है।" (अर्थात् गुरु के अतिरिक्त कोई भी नहीं समझा सकता) ॥ ४ ॥

प्रेम-पदार्थ पाने पर ही (गुरु के) उपदेश द्वारा (शिष्य) तत्त्व विचार (तत्त्वज्ञान ब्रह्मज्ञान निर्वाणपद, चतुर्थपद सहजावस्था तुरीयपद अथवा मोक्षपद) प्राप्त करता है। (जो स्त्री) गुरु के शब्द द्वारा शृंगार करती है, वह अपने आपेपन को नष्ट कर देती है। गुरु के अपार प्रेम द्वारा उसने घर में (अपने शरीर में) ही पति को पा लिया है ॥ ५ ॥

गुरु की सेवा तथा चाकरी से मन निर्मल होता है (और अपार) सुख होता है। जिसके मन में गुरु का शब्द बस जाता है, (उसका) अहंभाव नष्ट हो जाता है। नाम रूपी पदार्थ के पा जाने पर मन में सदा लाभ ही लाभ होता है ॥ ६ ॥

(यदि परमात्मा की) कृपा हो तभी (नाम की) प्राप्ति होती है वह अपने आप नहीं पाया जा सकता। अपने में से आपेपन को गँवा कर गुरु के चरणों में लगे रहो। (जो) सत्य से अनुरक्त हैं, उनके पल्ले सत्य ही पड़ता है ॥ ७ ॥

सभी कोई भूल के अंतर्गत हैं करतार रूप गुरु ही भूल न करनेवाला है। (यदि) गुरु की शिक्षा द्वारा मन को समझाया जाय (तो) उसमें प्रेम उत्पन्न हो जाता है। नानक कहते हैं कि यदि (गुरु के) शब्द द्वारा अपार (परमात्मा) से मेल हो जाय तो सत्य (परमात्मा) भूलता नहीं ॥ ८ ॥ १२ ॥

[१३]

त्रिसना माइआ मोहणी सुत बंधप घर नारि।
धनि जोबनि जगु ठगिआ लबि लोभि अहंकारि॥
मोह ठगउली हउ मुई सा वरतै संसारि ॥ १ ॥
मेरे प्रीतमा मै तुझ बिनु अवरु न कोइ।
मै तुझ बिनु अवरु न भावई तूं भावहि सुखु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
नामु सालाही रंग सिउ गुर कै सबदि संतोखु।
जो दीसै सो चलसी कूड़ा मोहु न वेखु॥
वाट वटाऊ आइआ नित चलदा साथु देखु ॥ २ ॥
आखणि आखहि केतड़े गुर बिनु बूझ न होइ।
नामु वडाई जे मिलै सचि रपै पति होइ॥
जो तुधु भावहि से भले खोटा खरा न कोइ ॥ ३ ॥
गुर सरणाई छुटीऐ मनमुख खोटी रासि।

अमरु पातु पातिसाहु की पढ़ीऐ सबदि विगासि ॥
आपे परखे पारखू पवै खजानै रासि ॥ ४ ॥
तेरी कीमति ना पवै सभ डिठी ठोकि वजाइ ।
कहणै हाथ न लभई सचि टिकै पति पाइ ॥
गुरमति तू सालाहणा होरु कीमति कहणु न जाइ ॥ ५ ॥
जितु तनि नामु न भावई तितु तनि हउमै वादु ।
गुर बिनु गिआनु न पाईऐ बिखिआ दूजा सादु ॥
बिनु गुण काम न आवई माइआ फीका सादु ॥ ६ ॥
आसा अंदरि जमिआ आसा रस कस खाइ ।
आसा बंधि चलाईऐ मुहे मुहि चोटा खाइ ॥
अवगणि बधा मारीऐ छूटै गुरमति नाइ ॥ ७ ॥
सरबे थाई एकु तूं जिउ भावै तिउ राखु ।
गुरमति साचा मनि वसै नामु भलो पति साखु ॥
हउमै रोगु गवाईऐ सबदि सचै सचु भाखु ॥ ८ ॥
आकासी पातालि तू त्रिभवणि रहिआ समाइ ।
आपे भगती भाउ तू आपे मिलहि मिलाइ ॥
नानक नामु न वीसरै जिउ भावै तिवै रजाइ ॥ ९ ॥ १३ ॥

पुत्र सम्बन्धी घर की स्त्री (के मोह के फल स्वरूप) जीव को मोहिनी माया की तृष्णा लगी हुई है । धन यौवन लालच, लोभ और अहंकार में ही (सारा) जगत् ठगा हुआ है । मोह की ठगमूरि जिससे मैं मर गई वह सारे संसार में बरत रही है ।

[विशेष —ठगउमा>ठगमूरि, वह नशे वाली बूटी है जिससे पथिकों को बेहोश करके ठग उनका धन लूट लेता है] ॥ १ ॥

हे मेरे प्रियतम तुम्हारे बिना मेरा कोई और नहीं है । मुझे तुम्हारे बिना (कुछ) और अच्छा (भी) नहीं लगता (यदि) तुम किसी को अच्छे लगते हो (तो) (उसे) सुख (प्राप्त) होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) बड़े प्रेम से नाम की स्तुति करूँगी गुरु के शब्द से संतोष (प्राप्त होता है ।) जो भी (वस्तुएँ) दिखाई पड़ती हैं, वे सभी जायँगी (अतएव इनका) मोह झूठा है (इसको मार) कर देखो । मार्ग में पथिक आता तो है किन्तु उसी वह नित्य चलता ही रहता है ॥ २ ॥

कितने ही लोग कथन करते हैं किन्तु गुरु के बिना (सत्य) की समझ नहीं होगी । यदि (किसी को) नाम की बड़ाई मिल जाती है (तो वह) सत्य में रँग जाता है (और) प्रतिष्ठा (पाता है) । जो तुम्हें अच्छे लगते हैं वे ही भले हैं न कोई खोटा है न खरा है ॥ ३ ॥

गुरु की शरण से छुटकारा (मोक्ष) मिलता है मनमुख (के पास) तो खोटी पूँजी है । (जिस प्रकार) बादशाह की आठ धातुओं को (ठप्पा कर सिक्के) गढ़े जाते हैं और (उन पर) ठप्पा खोदा जाता है (उसी प्रकार परमात्मा से भी वर्ण-वर्ण के मनुष्य ढले

है, उन्हें शब्द द्वारा गढ़ा जाता है और वे विकसित होकर उज्ज्वल बनते हैं)। (प्रभु) स्वयं ही पारखी है (वह अच्छे सिक्कों को) परख कर खजाने की राशि में डाल देता है ॥

[विशेष :—अष्ट धातुएं निम्नलिखित हैं—सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, राँगा, सीसा, पारा, जस्ता] ॥ ४ ॥

(मैंने) सब कुछ ठोक बजा कर देख लिया है, (किन्तु) तुम्हारी कीमत नहीं आँकी जा सकी। कहने से (वह) हाथ में नहीं आता, (यदि) सत्य में टिके (तभी) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। गुरु के उपदेश द्वारा तुम प्रशंसा किए जा सकते हो और (साधनों) से तुम्हारी कीमत नहीं कही जा सकती ॥ ५ ॥

जिस शरीर में नाम नहीं भाता, उस शरीर में अहंकार का झगड़ा है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता, परमात्मा के बिना अन्य स्वाद विष हैं [अथवा विषयों के सारे स्वाद तमोगुण के हैं]। बिना (परमात्मा के शुद्ध) ज्ञान के (सारी वस्तुएं) व्यर्थ हैं, माया का स्वाद फीका है ॥ ६ ॥

(लोग) आशा के ही अंतर्गत जन्म लेते हैं, आशा ही में (विविध) रस भोगते हैं। आशा में बंध कर (वे) जमपुरी जाते हैं, (वे आशा ही में) ठगे जाते हैं और मुँह पर चोटें खाते हैं। (इस प्रकार जो) अवगुणों में बंधा है, (वह) मारा जाता है; गुरु के उपदेश से नाम द्वारा (वह) छूटता है (मोक्ष पाता है) ॥ ७ ॥

सभी स्थानों पर एक तू ही है; जैसे तुझे अच्छा लगे, वैसे (मुझे) रख। गुरु के उपदेश द्वारा सच्चा (परमात्मा) मन में बस जाता है, नाम ही सच्ची प्रतिष्ठा और सच्ची संपत्ति है। (गुरु के) शब्द द्वारा अहंभाव नष्ट कर सत्य ही सत्य कहो ॥ ८ ॥

(हे प्रभु) तू आकाश, पाताल तथा त्रिभुवन में व्याप्त है। तू ही भक्ति है, प्रेम है, तू ही (भक्त से) मिलता है और (उसे) अपने में मिलाता है। नानक कहते हैं कि (मुझे) नाम न भूले, जिस प्रकार उसे अच्छा लगे वैसे ही उसकी मर्जी (बर्ती जाय) ॥ ८ ॥ १३ ॥

[१४]

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु।
सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु ॥
जिउ भावै तिउ राखु तूं मै हरिनामु अधारु ॥ १ ॥
मन रे साची खसम रजाइ।
जिनि तनु मनु साजि सीगारिआ तिसु सेती लिव लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ।
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ ॥
हरिनामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ ॥ २ ॥
अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ।
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ ॥
हरिनामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ ॥ ३ ॥

कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु ।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु ॥
रामनामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु ॥ ४ ॥
मन हठ बुधी केतीआ केते बेद बिचार ।
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोखदुआरु ॥
सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु ॥ ५ ॥
सभु को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ ।
इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ ॥
करमि मिलै सचु पाईऐ धुरि बखस न मेटै कोइ ॥ ६ ॥
साधु मिलै साधू जनै संतोखु वसै गुर भाइ ।
अकथ कथा वीचारीऐ जे सतिगुर माहि समाइ ॥
पी अंमृतु संतोखिआ दरगहि पैधा जाइ ॥ ७ ॥
घटि घटि वाजै किंगुरी अनदिनु सबदि सुभाइ ।
विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ ॥
नानक नामु न वीसरै छूटै सबदु कमाइ ॥ ८ ॥ १४ ॥

(मेरे) मन में राम नाम बिंध गया है, (अब मैं) अन्य विचार क्या करूं ? (गुरु के) शब्द की सुरति से सुख उत्पन्न होता है (प्रभु के प्रेम) में अनुरक्त होना (समस्त) सुखों का सार है। तुम जैसा चाहो तस वैसा (मुझे) रख। मेरे तो हरिनाम ही आधार है ॥ १ ॥

अरे मन खसम (पति परमात्मा) की मरजी ही सच्ची है। जिस (खसम) ने तन मन को रच कर सँवारा है, उसी से लिव (अनन्य प्रेम) लगाओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि) मेरे शरीर को एक-एक रत्ती कर तौल में काट कर होम किया जाय (यदि) प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित करके तन और मन की समिधा की जाय इसी प्रकार के यदि लाखों करोड़ों कर्म किए जायँ तो भी हरिनाम की समता में नहीं पुज सकते ॥ २ ॥

(चाहे) सिर पर आरा रखवा कर (मेरे) शरीर को आधा आधा कटा दिया जाय (चाहे) शरीर को हिमालय में गला दिया जाय, फिर भी मन से रोग (कामादिक) नहीं जाते। मैंने सब ठोक-बजा कर देख लिया है हरिनाम की तुलना में (कोई भी साधन) नहीं पुज सकता ॥ ३ ॥

(चाहे) मैं सोने के किले का दान कर दूं (अथवा) बहुत से श्रेष्ठ घोड़ों और श्रेष्ठ हाथियों को दान में दूं (चाहे) भूमिदान अथवा बहुत सी गौओं का दान करूं, फिर भी भीतर गर्व और गुमान (भरे रहते हैं)। मुझे गुरु ने सच्चा दान दे दिया है (अतएव मेरा) मन राम नाम से बिंध गया है ॥ ४ ॥

कितने ही मन के हठ और बुद्धि के (चमत्कार) हैं (और) कितने ही वेदों के विचार हैं। (इसी प्रकार) जीव के कितने ही बंधन हैं पर (शिष्य को) मुक्ति का द्वार गुरु के उपदेश द्वारा (मिलता है)। सत्य की ओर तो सभी कोई है किन्तु सत्य का आचार (करनी) सबके ऊपर है ॥ ५ ॥

सभी कोई ऊँचे कहे जाते हैं, कोई भी नीच नहीं दिखाई देता (क्योंकि) एक (हरी) से ही सारे शरीर बने हैं और तीनों लोकों में (उसी) एक का प्रकाश है। (परमात्मा की) कृपा से ही सत्य की प्राप्ति होती है, (उसकी असली—पूर्ण कृपा को कोई मेट नहीं सकता ॥ ६ ॥

(यदि) साधु को साधु मिल जाय तो गुरु के प्रेम द्वारा (हृदय में) संतोष बस जाता है। यदि अकथनीय कथा पर (शिष्य) विचार करे, तो (वह) सद्गुरु में समाहित हो जाता है। वह अमृत पीकर संतुष्ट होकर परमात्मा के दरवाजे पर प्रतिष्ठा की पोशाक पहन कर जाता है ॥ ७ ॥

प्रतिदिन (गुरु के) शब्द द्वारा स्वाभाविक ही घट घट में सारंगी बज रही है, किन्तु इसकी समझ विरले को ही पड़ती है, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य अपने मन को यह तथ्य) समझा लेता है। नानक कहते हैं कि नाम को न भूल कर (गुरु के) शब्द पर आचरण करके (सांसारिक बन्धनों से शिष्य) छूट जाता है ॥ ८ ॥ १४ ॥

[१५]

चिते दिसहि धउलहर बगे बंक दुआर।
करि मनि खुसी उसारिआ दूजै हेति पिआरि ॥
अंदरु खाली प्रेम बिनु ढहि ढेरी तनु छारु ॥ १ ॥
भाई रे तनु धनु साथि न होइ।
रामनामु धनु निरमलो गुरु दाति करे प्रभु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
रामनामु धनु निरमलो जे देवै देवणहारु।
आगै पूछ न होवई जिसु बेली गुरु करतारु ॥
आपि छडाए छुटिऐ आपे बखसणहारु ॥ २ ॥
मनमुखु जाणै आपणे धीआ पूत संजोगु।
नारी देखि विगासीअहि नाले हरखु सु सोगु ॥
गुरमुखि सबदि रंगावले अहिनिसि हरिरसु भोगु ॥ ३ ॥
चितु चलै वितु जावणो साकत डोलि डोलाइ।
बाहरि ढूंढि विगुचीऐ घर महि वसतु सुथाइ ॥
मनमुखि हउमै करि मुसी गुरमुखि पलै पाइ ॥ ४ ॥
साकत निरगुणिआरिआ आपणा मूलु पछाणु।
रकतु बिंदु का इहु तनो अगनी पासि पिराणु।
पवणै कै वसि देहुरी मसतकि सचु नीसाणु ॥ ५ ॥
बहुता जीवणु मंगीऐ मुआ न लोड़ै कोइ।
सुखजीवणु तिसु आखीऐ जिसु गुरमुखि वसिआ सोइ।
नाम विहूणे किआ गणी जिसु हरिगुर दरसु न होइ ॥ ६ ॥
जिउ सुपनै निसि भुलीऐ जबलगि निद्रा होइ।
इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा अंतरि हउमै दोइ ॥
गुरमति होइ वीचारीऐ सुपना इहु जगु लोइ ॥ ७ ॥

भगति मरै जनु पाईऐ बिनु बारिक दुध माइ।
बिनु जल कमल सु ना थीऐ बिनु जल मीनु मराइ॥
नानक गुरमुखि हरिरसि मिलै जीवा हरिगुण गाइ॥ ८॥ १५॥

दस पौलहर (महल) विचित्र दिशाएँ पन्ने हैं (उनमें) सुन्दर दरवाजे भी (सब हैं)। मन की खुशी के अनुसार (ये महल) बनाए गए हैं (किन्तु यह सब) द्वैत भाव के ही प्रति स्नेह और प्यार है। (यदि) भीतर न लगता है, प्रेम विहीन है तो यह शरीर ढह-ढह कर खाक (हो जाता है)॥ १॥

अरे भाई, तन और धन (मनुष्य की मृत्यु के पश्चात्) साथ नहीं जाते। रामनाम निर्मल धन है, गुरु उस प्रभु को दान में देता है॥ १॥ रहाउ॥

रामनाम निर्मल धन है, जिसे देनेवाला ही देता है। जिसका साथी करतार का गुरु है भविष्य में (परलोक में) उससे प्रश्न नहीं होंगे। (यदि परमात्मा) छुड़ाता है, (तभी) छूट जाता है, वह स्वयं ही देनेवाला है।

दुखी और दुख तो संयोग से मिले हैं (किन्तु) मनमुख (उसे) मरना जानता है। (वह) स्त्री को देखकर विस्मित (आनन्दित) होता है, किन्तु हर्ष के साथ शोक भी है। गुरमुख शब्द में रंग जाता है और अहर्निश हरि रस भोगता है॥ २॥

चित्त (मन) के चलने से चित्त भी चलायमान हो जाता है, शक्ति का उपासक (सदैव) भ्रमता रहता है। बाहर ढूँढ़ कर (वह) नष्ट होता है (वास्तव में) वस्तु (परमात्मा) घर ही में (शरीर में ही) सुन्दर स्थान (चित्त) में है। मनमुख अहंकार करने के कारण लूट लिया जाता है, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) के पल्ले (परमात्मा) पड़ता है॥ ४॥

गुरुविहीन शक्ति के उपासक (साकत) भ्रमरा (वास्तविक) मूल का पहचानता। (माता के) रक्त तथा (पिता के) वीर्य से (निर्मित) इस शरीर को (अन्त) में अग्नि के पास ही प्रयाण करना है। प्रत्येक के पल्ले में यह लेखा लिखा पड़ा है कि उसका शरीर पवन (श्वास) के वशीभूत है॥ ५॥

(सभी लोगों द्वारा) लम्बा जीवन माँगा जाता है, कोई भी मरना नहीं चाहता। सुखी जीवन तो उसी का कहा जाता है, जिसके (हृदय में) गुरु की शिक्षा द्वारा वह (हरि) बस गया है। जिन हरि को गुरु का दर्शन नहीं होता और नाम-विहीन है, (उसके जीवन की) क्या गणना की जाय? ॥ ६॥

जैसे रात्रि में जब तक निद्रा रहती है स्वप्न (देखने) में (हम) भटकते रहते हैं वैसे ही (माया रूपी) सर्पिणी के वशीभूत जीव हृदय में अहंता और द्वैत भाव (के कारण जगत् में भटकता रहता है)। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) यह विचार करे कि जगत् भी स्वप्न है (इसी प्रकार जगत् को देखे)॥ ७॥

(अग्नि) जल पाकर ही (उसी प्रकार) शान्त हो जाती है, जैसे बालक माँ के दूध से (संतुष्ट हो जाता है)। बिना जल के कमल नहीं रह सकता (और) बिना जल के मछली मर जाती है। नानक कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) हरि रस पाता है और हरिगुण गाकर जीवित रहता है॥ ८॥ १५॥

[१६]

डूंगरु देखि डरावणो पेईअड़ै डरीआसु ।
ऊचउ परबतु गाखड़ो ना पउड़ी तितु तासु ॥
गुरमुखि अंतरि जाणिआ गुरि मेली तरीआसु ॥ १ ॥

भाई रे भवजलु बिखमु डरांउ ।
पूरा सतिगुरु रसि मिलै गुरु तारे हरिनाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चला चला जे करी जाणा चलणहारु ॥
जो आइआ सो चलसी अमरु सु गुरु करतारु ॥
भी सचा सालाहणा सचै थानि पिआरु ॥ २ ॥

दर घर महला सोहणे पके कोट हजार ।
हसती घोड़े पाखरे लसकर लख अपार ॥
किस ही नालि न चलिआ खपि खपि मुए असार ॥ ३ ॥

सुइना रुपा संचीऐ मालु जालु जंजालु ।
सभ जग महि दोही फेरीऐ बिनु नावै सिरि कालु ॥
पिंडु पड़ै जीउ खेलसी बदफैली किआ हालु ॥ ४ ॥

पुता देखि विगसीऐ नारी सेज भतार ।
चोआ चंदनु लाईऐ कापड़ु रूपु सीगारु ॥
खेहू खेह रलाईऐ छोडि चलै घर बारु ॥ ५ ॥

महर मलूक कहाईऐ राजा राउ कि खानु ।
चउधरी राउ सदाईऐ जलि बलीऐ अभिमानु ॥
मनमुखि नामु विसारिआ जिउ डवि दधा कानु ॥ ६ ॥

हउमै करि करि जाइसी जो आइआ जग माहि ।
सभु जगु काजल कोठड़ी तनु मनु देह सुआहि ॥
गुरि राखे से निरमले सबदि निवारी भाहि ॥ ७ ॥

नानक तरीऐ सचि नामि सिरि साहा पातिसाहु ।
मै हरिनामु न वीसरै हरिनामु रतनु वेसाहु ।
मनमुख भउजलि पचि मुए गुरमुखि तरे अथाहु ॥ ८ ॥ १६ ॥

पीहर (मैहर) में डरावना पर्वत देखकर, मैं डर गई। पर्वत बहुत ऊँचा और दुर्गम है, वहाँ उसकी (उस पर्वत पर चढ़ने के लिए) सीढ़ी भी नहीं है। गुरु की शिक्षा से (परमात्मा को मैंने) अपने भीतर जाना (इस प्रकार) गुरु ने (प्रभु से) मिला दिया और मैं तर गई ॥ १ ॥

अरे भाई संसार-सागर (बहुत ही) विषम और डरावना है। यदि पूर्ण सद्गुरु मिल जाय तो वह (शिष्य को) हरिनाम (प्रदान कर) (इस संसार सागर से) पार कर देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हालाँकि चलाचली (की तयारी) कर रही हूँ यह भी जानती हूँ कि यहाँ से (मुझे) जाना है जो माया है, वह चला जायगा गुरु और करतार ही अमर है तथापि मैं उनके स्थान में (सत्संग में) (प्यार पाकर) उन्हें (परमात्मा) की प्रशंसा कर रही हूँ ॥ २ ॥

सुन्दर घर और महल हजारों पक्के किले हाथी घोड़े काठियाँ असंख्य लाख फौजें— कोई वस्तुएँ (किसी के) साथ नहीं जातीं (इस प्रकार) असार (मनुष्य) खप-खप कर मर गए ॥ ३ ॥

चाहे सोना चाँदी संपत्ति (तथा अन्य) प्रपंचों का समूह (जालु जंजालु जालु = समूह; जंजाल = झमट प्रपंच) संग्रह किया जाय सारे जगत् में दुहाई फिरती रहे (बड़प्पन की प्रसिद्धि होती रहे) किन्तु बिना नाम के काल सिर पर है। शरीरपात होने पर जीव अपना खेल समाप्त कर देगा (उस समय) दुष्कर्मियों का क्या हाल होगा ? ॥ ४ ॥

(मनुष्य) अपने पुत्रों को देखकर प्रसन्न होता है और पति सेज पर (अपनी) नारी को देखकर (प्रसन्न होता है)। (वह) चोआ-चंदन (इत्यादि सुगन्धित वस्तुओं को) लगाता है (साथ ही अपने) कपड़ों और रूप को सजाता है। (किन्तु अन्त में शरीर की) मिट्टी मिट्टी से मिल जाती है और (वह) घरबार छोड़कर चल देता है ॥ ५ ॥

(चाहे मनुष्य) सरदार कहा जाय, (चाहे) बादशाह (चाहे) राजा, राव या खान (चाहे वह) चौधरी या राय कहा जाय (किन्तु अन्त में) अभिमान जल-जल जाता है। नाम भुला कर मनमुख की (ठीक वही अवस्था होती है) जैसे दावाग्नि में दग्ध सरपत की ॥ ६ ॥

जो भी (व्यक्ति) इस संसार में आया है वह अहंकार ही करके जायगा। सारा जगत् कालिख की कोठरी है जिसमें तन मन और (सारा जीवन) राख (की तरह काले हो गए हैं)। जिनकी गुरु रक्षा करता है, वे ही निर्मल (रहते हैं) (गुरु के) शब्द ने (संसार की) अग्नि का निवारण कर दिया ॥ ७ ॥

नानक कहते हैं सत्य नाम—जो नाम—बादशाहों का भी श्रेष्ठ बादशाह है—से (संसार) तरा जाता है। मुझे तो हरिनाम नहीं भूलता (क्योंकि मैंने उस) रत्न को खरीद लिया है। मनमुख तो इस संसार-सागर में पच पच कर मर जाते हैं, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) इस अपार (सागर) को तर जाते हैं ॥ ८ ॥ १६ ॥

महला १, पद २   [१७]

मुकामु करि घरि बैसणा नित चलणै की धोख।
मुकामु ता परु जाणीऐ जा रहै निहचलु लोक ॥ १ ॥
दुनिआ कैसि मुकामे।
करि सिदकु करणी खरचु बाधहु लागि रहु नामे ॥ १ रहाउ ॥
जोगी त आसणु करि बहै मुला बहै मुकामि।
पंडित वखाणहि पोथीआ सिध बहहि देवसथानि ॥ २ ॥
सुर सिध गण गंधरब मुनिजन सेख पीर सलार।
दरि कूच कूचा करि गए अवरे भि चलणहार ॥ ३ ॥

सभि सजम रहे सिमाएणमा । मेरा प्रभु सचु किसु जाणसा ।
प्रगट प्रतापु वरताइमा सभु लोकु करै जकार जीउ ॥ १७ ॥
मेरे गुण अवगन न बीचारीमा । प्रभि अपणा बिरदु समारिमा ।
कंठ लाइ कै रखिमोनु लगै न तती वाउ जीउ ॥ १८ ॥
मै मनि तनि प्रभु धिमाइमा । जीइ इछिअड़ा फलु पाइमा ।
साह पातिसाह सिरि खसमु तू जपि नानक जीवै नाउ जीउ ॥ १९ ॥
तुधु आपे आपु उपाइमा । दूजा खेलु करि दिखलाइमा ॥
सभु सचो सचु वरतदा जिसु भावै तिसै बुझाइ जीउ ॥ २० ॥
गुर परसादी पाइमा । तिथै माइमा मोहु चुकाइमा ॥
किरपा करि कै आपणी आपे लए समाइ जीउ ॥ २१ ॥
गोपी नै गोआलीमा । तुधु आपे गोइ उठालीमा ॥
हुकमी भांडे साजिमा तू आपे भनि सवारि जीउ ॥ २२ ॥
जिन सतिगुर सिउ चितु लाइमा । तिनी दूजा भाउ चुकाइमा ॥
निरमल जोति तिन प्राणीमा ओइ चले जनमु सवारि जीउ ॥ २३ ॥
तेरीमा सदा सदा चंगिमाईमा । मै राति दिहै वडिमाईमां ॥
अणमंगिमा दानु देवणा कहु नानक सचु समालि जीउ ॥ २४ ॥ १८ ॥

(हे प्रभु,) तम गोपियों मे गोपी हो (और) गोपियो मे गोपी। तुम्हारा अंत नहीं पाया जा सकता स्वर्गलोक मर्त्यलोक और पाताललोक—(सभी जगह) तुम (विराजमान हो) ॥ १ ॥

मैं तुम पर बलिहारी हूँ मैं तुम पर बलिहारी हूँ मैं तुम्हारे नाम पर न्यौछावर हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तुमने संसार उत्पन्न किया है और प्रत्येक जीव को धंधे मे लगाया है। तुम अपने किए हुए को (स्वयं ही) देखते हो तुम कुदरत का पासा डाल कर (स्वयं ही खेल रहे हो) ॥ २ ॥

(सृष्टि के) प्रसार म तुम्ही प्रकट हो रहे हो। (और तुम्ही प्रत्यक्ष) बोल रहे हो। सभी लोग (तुम्हारे) नाम को चाहते हैं, (किन्तु) सद्गुरु के बिना (वह) नहीं पाया जाता (संसार के) सभी (प्राणी) माया के मोह मे मोहे पड़े हैं ॥ ३ ॥

सद्गुरु के ऊपर बलिदान हो जाया जाय जिसके मिलने से परम गति की प्राप्ति होती है। देवता मनुष्य मुनिगण (जिस वस्तु की) इच्छा करते हैं, सद्गुरु ने (मुझे उसका) बोध करा दिया है ॥ ४ ॥

सत्संगति को किस प्रकार जाना जाय? जिस स्थल पर एक नाम की व्याख्या हो (वही सत्संगति है)। नानक कहते हैं कि एक नाम (का जपना ही) हुक्म है (इसका रहस्य) सद्गुरु ने (मुझे भलीभांति) बता दिया है ॥ ५ ॥

यह जगत् भ्रम में भूल गया है। 'अपनेपन (और) तेरेपन' मे नष्ट हो गया है। (इस प्रकार) दुहागिनी (स्त्री) को पतित्व लगा है, वे भी (परमात्मा) उनके भाग्य मे तुम नहीं हो ॥ ॥

दुहागिनियों के क्या चिह्न (निशान) हैं? पति से विलग होकर वे मान-विहीन होकर (इधर-उधर) भटकती फिरती हैं। ए जी (प्रभु) उन स्त्रियों के वेश मैले होते हैं (इससे) उनकी रात दुःख-भरी बीतती है ॥ ७ ॥

सोहागिनियों ने क्या कर्म किए हैं, (जिससे वे तुममे मिलती हैं)? (तुम द्वारा) पूर्व का लिखा हुआ कर्म (उन्हें) प्राप्त हुआ है। ए जी, (प्रभु तुमने) उनके ऊपर कृपा करके अपने में मिला लिया है ॥ ८ ॥

(हे प्रभु) जिन्हें हुक्म मनवाया हो उनके अंतर्गत (तुम गुरु का) शब्द बसा दिये हो। ऐ जी (प्रभु) वे ही सहेलियाँ सुहागिनी हैं, जिनका पति के साथ प्यार है ॥ ९ ॥

(हे परमात्मा) जिन्हें (तुम्हारी) भक्ति का रस मिल गया है, उनके अन्तःकरण से भ्रम दूर हो जाता है। नानक कहते हैं ए जी (प्रभु) सद्गुरु उसे समझना चाहिए जो सभी को मिला लेता है ॥ १० ॥

सद्गुरु के मिलने से (साधना का उनके पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का) फल प्राप्त हो गया है (जिन्होंने) भीतर से अहंकार समाप्त कर दिया है। ए जी (प्रभु) उनकी दुर्मति का दुःख कट गया है उनके मस्तक में भाग्य आकर बैठ गया है ॥ ११ ॥

तुम्हारी वाणियाँ अमृत हैं। (वे) तेरे भक्त के हृदय में समा गयी हैं। ऐ जी (परमात्मा) सुख देनेवाली सेवा को हृदय में रखने से (तुम) अपनी कृपा करते हो और उद्धार कर देते हो ॥ १२ ॥

सद्गुरु के मिलने पर ही, (परम तत्व) जाना जाता है जिस (सद्गुरु) के मिलने पर ही नाम की प्राप्ति होती है। ऐ जी (प्रभु) सारी (दुनिया) कर्म करते करते थक गई है (किन्तु) सद्गुरु के बिना (परमात्मा) नहीं प्राप्त हुआ ॥१३॥

मैं सद्गुरु के ऊपर न्योछावर हूँ, जिसने (मुझ) भ्रम में भटकते हुए को मार्ग में लगा दिया। हे प्रभु, यदि तुम अपनी कृपा करो तो अपने में मिला लेते हो ॥१४॥

(ऐ प्रभु) तू सभी में समाया है (व्याप्त है)। पर उस कर्त्ता ने अपने आप को छिपा लिया है। नानक कहते हैं, कि ऐ जी वह (छिपा हुआ कर्त्ता) गुरु की शिक्षा द्वारा प्रकट हुआ है (उस गुरु द्वारा)—जिस गुरु में कर्तार ने अपनी ज्योति स्थापित कर दी है ॥१५॥

स्वामी (पति परमात्मा) ने स्वयं ही अपने आपको बड़ाई प्रदान की है। उन्होंने जीव और शरीर देकर (रचना) निर्माण किया है। ए जी (प्रभु) वह दोनों हाथ उसके मस्तक पर रख कर अपने सेवक की पत (प्रतिष्ठा, मान प्रतिष्ठा) रखता है ॥१६॥

सारे संयम और चतुराइयाँ समाप्त हो गई हैं। मेरा प्रभु सब कुछ जानता है। ऐ जी वह अपना प्रताप प्रकट रूप में करता रहा है सारे लोग (उसकी) जय जयकार करते हैं ॥१७॥

(प्रभु ने) मेरे गुणों-अवगुणों पर विचार नहीं किया है। प्रभु ने अपने विरद (यश) को रख लिया है। ऐ जी उन्होंने मुझे (अपने) कंठ से लगाकर रखा है मुझे तत्ती वायु नहीं लगती ॥१८॥

मैंने तन-मन से प्रभु का ध्यान किया है और मनोवांछित फल को पा लिया है। ऐ जी (प्रभु) तुम शाहों-बादशाहों के सिर के भी स्वामी (खसमु, पति) हो नानक तो नाम जप कर ही जी रहा है ॥१९॥

सुहागिनियों के क्या चिह्न (निशान) हैं? पति से विलग होकर व मान-विहीन होकर (इधर-उधर) भटकती फिरती हैं। ऐ जी (प्रभु) उन स्त्रियों के वेष मैले होते हैं (इसस) उनकी रात दुःख-भरी बीतती है ॥ ७ ॥

सोहागिनियों ने क्या कर्म किए हैं, (जिससे वे तुमसे मिलती हैं)? (गुरु द्वारा) पूर्व का लिखा हुआ फल (उन्हें) प्राप्त हुआ है। ऐ जी, (प्रभु तुमने) उनके ऊपर कृपा करके अपने में मिला लिया है ॥ ८ ॥

(हे प्रभु) जिन्हें हुक्म मनवाया हो उनके अन्तःकरण (गुरु का) शब्द बसा दिये हो। ऐ जी (प्रभु) वे ही सहेलियाँ सुहागिनी हैं, जिनका पति के साथ प्यार है ॥ ९ ॥

(हे परमात्मा) जिन्हें (तुम्हारी) आज्ञा का रस मिल गया है, उनके अंतःकरण से भ्रम दूर हो जाता है। नानक कहते हैं ऐ जी (प्रभु) सद्गुरु उसे समझना चाहिए, जो सभी को मिला लेता है ॥ १० ॥

सद्गुरु के मिलने से (साधकों को उनके पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का) फल प्राप्त हो गया है, (जिन्होंने) भीतर से अहंकार समाप्त कर दिया है। ऐ जी (प्रभु) उनकी दुर्मति का दुःख कट गया है उनके मस्तक में भाग्य आकर बैठ गया है ॥ ११ ॥

तुम्हारी वाणियाँ अमृत हैं। (वे) तेरे भक्त के हृदय में समा गयी हैं। ऐ जी (परमात्मा) सुख देनेवाली सेवा को हृदय में रखने से (तुम) अपनी कृपा करते हो और उद्धार कर देते हो ॥ १२ ॥

सद्गुरु के मिलने पर ही (परम तत्व) जाना जाता है, जिस (सद्गुरु) के मिलने पर ही नाम की प्रशंसा होती है। ऐ जी (प्रभु) सारी (दुनिया) कर्म करते करते थक गई है (किन्तु) सद्गुरु के बिना (परमात्मा) नहीं प्राप्त हुआ ॥१३॥

मैं सद्गुरु के ऊपर न्यौछावर हूँ जिसने (मुझ) भ्रम में भटकते हुए को मार्ग में लगा दिया। हे प्रभु, यदि तुम अपनी कृपा करो तो अपने में मिला लेते हो ॥१४॥

(ऐ प्रभु) तू सभी में समाया है (व्याप्त है)। पर उस कर्त्ता ने अपने आप को छिपा लिया है। नानक कहते हैं कि ऐ जी वह (छिपा हुआ कर्त्ता) गुरु की शिक्षा द्वारा प्रकट हुआ है, (उस गुरु द्वारा)—जिस गुरु में कर्त्तार ने अपनी ज्योति स्थापित कर दी है ॥१५॥

खसम (पति परमात्मा) ने स्वयं ही अपने आपको बड़ाई प्रदान की है। उसीने जीव और शरीर देकर (सबका) निर्माण किया है। ऐ जी (प्रभु) वह दोनों हाथ उसके मस्तक पर रख कर अपने सेवक की पैज (प्रतिज्ञा, मान प्रतिष्ठा) रखता है ॥१६॥

सारे संयम और चतुराइयाँ समाप्त हो गई हैं। मेरा प्रभु सब कुछ जानता है। ऐ जी वह अपना प्रताप प्रकट रूप से बरत रहा है सारे लोक (उसकी) जय जयकार करते हैं ॥१७॥

(प्रभु ने) मेरे गुणों-अवगुणों पर विचार नहीं किया है। प्रभु ने अपने विरद (यश) को रख लिया है। ऐ जी उन्होंने मुझे (अपने) कंठ से लगाकर रखा है मुझे तत्ती वायु नहीं लगती ॥१८॥

मैंने तन-मन से प्रभु का ध्यान किया है और मनोवांछित फल को पा लिया है। ऐ जी (प्रभु) तुम शाहा-बादशाहों के सिर के भी स्वामी (खसम् पति) हो नानक तो नाम-जप कर ही जी रहा है ॥१९॥

तुमने अपने आप को उत्पन्न किया है। (तुम्हीं ने) द्वैतभाव वाला खेल भी रच रखा है। ऐ जी, सभी (प्राणियों में) सच ही सच बरत रहा है, जिसे वह चाहता है, उसे वह (इस तथ्य को) समझा देता है ॥२०॥

गुरु की कृपा से (परमात्मा की) प्राप्ति हुई, वहाँ माया और मोह समाप्त कर दिए गए। ऐ जी (परमात्मा ने) अपनी कृपा करके (मुझे) अपने में मिला लिया ॥२१॥

(हे प्रभु) तुम्हीं गोपी हो (तुम्हीं) नदी (यमुना) हो (और तुम्हीं) गोपालक (कृष्ण) हो। सारी पृथ्वी की जिम्मेदारी तुम्हारे ही ऊपर है। ऐ जी (प्रभु), (तुम्हारे) हुक्म से शरीर साजे जाते हैं, (निर्मित होते हैं) तुम उन्हें नष्ट भी कर देते हो (और नष्ट करके फिर) सँवार देते हो ॥२२॥

जिन्होंने (अपना) चित्त सद्गुरु से लगा दिया है, उन्होंने अपने द्वैतभाव को नष्ट कर दिया है। ऐ जी (प्रभु) उन प्राणियों में निर्मल ज्योति (स्थित) है, वे लोग अपना जन्म सँवार कर जाते हैं ॥२३॥

(ए प्रभु,) तुम सदैव ही भलाइयाँ (करते रहते हो) मैं रात-दिन (तुम्हारी) बड़ाइयाँ (करता रहता हूँ) ऐ जी (प्रभु) (तुम सदैव ही) बिना माँगे ही दान देते रहते हो। नानक कहते हैं कि सत्य को सदैव स्मरण करो ॥२४॥१८॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सिरी रागु, महला १, घरु १ ॥

[१]

पहरे

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा हुकमि पइआ गरभासि ।
उरध तपु अंतरि करे वणजारिआ मित्रा खसम सेती अरदासि ॥
खसम सेती अरदासि वखाणै उरध धिआनि लिव लागा ।
ना मरजादु आइआ कलि भीतरि बाहुड़ि जासी नागा ॥
जैसी कलम वुड़ी है मसतकि तैसी जीअड़े पासि ।
कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै हुकमि पइआ गरभासि ॥१॥

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा विसरि गइआ धिआनु ।
हथो हथि नचाईऐ वणजारिआ मित्रा जिउ जसुदा घरि कानु ॥
हथो हथि नचाईऐ प्राणी मात कहै सुतु मेरा ।
चेति अचेत मूड़ मन मेरे अंति नही कछु तेरा ॥
जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै मन भीतरि धरि गिआनु ।
कहु नानक प्राणी दूजै पहरै विसरि गइआ धिआनु ॥२॥

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा धन जोबन सिउ चितु ।

हरि का नामु न चेतै प्राणी बिकलु भइआ संगि माइआ ।
धन सिउ रता जोबनि मता अहिला जनमु गवाइआ ॥
धरम सेती वापारु न कीतो करमु न कीतो मितु ।
कहु नानक तीजै पहरै प्राणी धन जोबन सिउ चितु ॥३॥

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा लावी आइआ खेतु ।
जा जमि पकड़ि चलाइआ वणजारिआ मित्रा किसै न मिलिआ भेतु ॥
भेतु चेतु हरि किसै न मिलिओ जा जमि पकड़ि चलाइआ ।
झूठा रुदनु होआ दुआलै खिन महि भइआ पराइआ ॥
साई वसतु परापति होई जिसु सिउ लाइआ हेतु ।
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै लावी लुणिआ खेतु ॥४॥१॥

विशेष : इस वाणी में मनुष्य को 'वणजारा' कह के संबोधित किया गया है। बनजारा अपनी रात किसी परदेश में व्यतीत करता है। अपने सौदे की रक्षा के लिए वह रात भर जागरण करता रहता है। रात्रि के चार पहर होते हैं। मनुष्य के जीवन को रात्रि कहा गया है, और रात्रि के चार प्रहर जीवन की चार अवस्थाएं—गर्भावस्था बाल्यावस्था युवावस्था आदि हैं।

अर्थ : हे बनजारे मित्र रात्रि के पहले पहर में (परमात्मा) के हुक्म से (मनुष्य) गर्भाशय में पड़ जाता है। (वह गर्भाशय के) भीतर उल्टा होकर तप करता है और खसम (स्वामी) से (गर्भ से बाहर निकलने के लिए) याचना करता है। (वह) स्वामी (खसम) से प्रार्थना करता है और उल्टा होकर ध्यान में चित्त लगाये रहता है। वह मर्यादाहीन (नग्न) हो (इस) कलियुग में आया है और फिर नग्न ही जायगा। उसके मस्तक पर जैसी परमात्मा की कलम चली है, वैसा ही (भाग्य) उस जीव को प्राप्त होगा। नानक कहते हैं कि रात्रि के पहले पहर में परमात्मा के हुक्म से प्राणी गर्भाशय में पड़ गया है ॥१॥

हे बनजारे (सौदागर) मित्र रात्रि के दूसरे पहर (अर्थात् बाल्यावस्था) में (गर्भ वाला) ध्यान विस्मृत हो गया। हे बनजारे मित्र (वह बालक) हाथों हाथ इस प्रकार नचाया जाता है जैसे यशोदा के घर में कृष्ण (नचाये जाते थे)। वह बालक हाथों हाथ नचाया जाता है, (प्यार-वश एक व्यक्ति के हाथों से दूसरे के हाथों में लिया जाता है)। माता कहती है 'मेरा पुत्र है'। (किन्तु) ऐ विवेकहीन और मूढ़ मन (यह) समझ लो, कि अन्त में तेरा कुछ भी नहीं होगा। जिसने (सारी) रचना रच रक्खी है, उसे तुम नहीं जानते हो। अतः अपने मन में ज्ञान धारण करके (उस निर्माता को जानने का प्रयत्न करो)।

नानक कहते हैं कि रात्रि के दूसरे पहर में प्राणी ध्यान करना भूल गया है ॥२॥

हे बनजारे मित्र रात्रि के तीसरे पहर में (उस मनुष्य का) चित्त धन और यौवन से लग जाता है। हे बनजारे मित्र वह परमात्मा के नाम को नहीं चेतता जिससे बंधन-युक्त प्राणी छूट जाते हैं। वह प्राणी परमात्मा का नाम नहीं चेतता है माया के साथ विकल हो गया है। (वह) धन से अनुरक्त है यौवन से मत्त है (इस प्रकार उसने) जन्म को व्यर्थ ही गंवा दिया। हे मित्र (उस मनुष्य ने) न तो धर्म का व्यापार किया और न (शुभ) कर्मों को ही मित्र बनाया। नानक कहते हैं कि रात्रि के तीसरे पहर में प्राणी ने धन और यौवन से ही अपना चित्त लगा

दिया है ।।३।।

(४) बनजारे मित्र रात्रि के चौथे पहर में खेत काटनेवाला (यम) खेत में आ पहुँचता है (और खेत काट लेता है) । बनजारे मित्र जब यम पकड़ कर (इस संसार से) चल देता है तो कोई भी (मस्तिष्क) परिवर्तन (भेद) करने वाला नहीं मिलता (अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार जीवित था उसी प्रकार मर भी जाता है) । (इस प्रकार) जब यम पकड़ कर (यहाँ से) चला देता है, तो कोई भी चित्त परिवर्तन करने वाला नहीं मिलता । उसके आस-पास झूठा रुदन होता है, किन्तु वह तो क्षणमात्र में पराया हो जाता है । (अन्त समय में उस) उसी वस्तु की प्राप्ति होती है जिससे प्रेम करता है । नानक कह रहे हैं कि (रात्रि के) चौथे पहर में खेत काटनेवाला आकर प्राणी का खेत काट कर चला देता है ।।४।।१।।

[२]

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बालक बुधि अचेतु ।
खीरु पीऐ खेलाईऐ वणजारिआ मित्रा मात पिता सुत हेतु ।।
मात पिता सुत नेहु घनेरा माइआ मोहु सबाई ।
संजोगी आइआ किरतु कमाइआ करणी कार कराई ।।
रामनाम बिनु मुकति न होई बूडी दूजै हेति ।
कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै छूटहिगा हरि चेति ।।१।।

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा भरि जोबनि मैमति ।।
अहिनिसि काम विआपिआ वणजारिआ मित्रा अंधुले नामु न चिति ।
रामनामु घट अंतरि नाही होरि जाणै रस कस मीठे ।
गिआनु धिआनु गुण संजमु नाही जनमि मरहुगे झूठे ।।
तीरथ वरत सुचि संजमु नाही करमु धरमु नही पूजा ।
नानक भाइ भगति निसतारा दुबिधा विआपै दूजा ।।२।।

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा सरि हंस उलथड़े आइ ।
जोबनु घटै जरूआ जिणै वणजारिआ मित्रा आव घटै दिनु जाइ ।।
अंति कालि पछुतासी अंधुले जा जमि पकड़ि चलाइआ ।
सभु किछु अपुना करि करि राखिआ खिन महि भइआ पराइआ ।।
बुधि विसरजी गई सिआणप करि अवगण पछुताइ ।
कहु नानक प्राणी तीजै पहरै प्रभु चेतहु लिव लाइ ।।३।।

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणु ।।
अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण ।।
अखी अंधु जीभ रसु नाही रहे पराकउ ताणा ।
गुण अंतरि नाही किउ सुखु पावै मनमुख आवण जाणा ।।
खड़ु पकी कुड़ि भजै बिनसै आइ चलै किआ माणु ।
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै गुरमुखि सबदि पछाणु ।।४।।

मोहगु माइआ तिन साहिआ वणजारिआ मित्रा बद करवाणा कंनि ।
इक रती गुण न समाणिआ वणजारिआ मित्रा अवगण खड़सनि बंनि ॥
गुण संजमि जावै चोट न खावै ना तिसु जमणु मरणा ।
कालु जालु जमु जोहि न साकै भाइ भगति भै तरणा ॥
पति सेती जावै सहजि समावै सगले दूख मिटावै ।
कहु नानक प्राणी गुरमुखि छूटै साचे ते पति पावै ॥४॥२॥

हे बनजारे मित्र रात्रि के पहले पहर में बालक बुद्धि में अचेत (विवेकहीन) रहता है। (वह) दूध पीता है और बेलाया जाता है। हे बनजारे मित्र माता-पिता (अपने) पुत्र से स्नेह करते हैं। माता-पिता का (अपने) पुत्र के लिए बड़ा ही स्नेह होता है और सभी को माया मोह (की प्रबलता होती है)। संयोगवशात्, (वह इस संसार में) आया पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार (लिखा) जो लगा था वह ले लिया (और अब अपनी करनी के अनुसार) कर्म कर रहा है। रामनाम के बिना मुक्ति नहीं हो सकती (वह) द्वैतभाव के प्रेम के कारण डूब जाता है। नानक कहते हैं कि पहले पहर में हरि स्मरण करने से प्राणी (भव-बंधनों) से छूट जायगा ॥१॥

हे बनजारे मित्र रात्रि के दूसरे पहर में (मनुष्य) भरी जवानी में मदमत्त रहता है। हे बनजारे मित्र (वह) अहर्निश काम में व्याप्त रहता है (वह) अंधा नाम में चित्त नहीं (लगाता)। उसके घट के अंतर्गत रामनाम नहीं (रहता)। (वह अन्य सांसारिक) रसादिकों को मीठा समझता है। जिनमें ज्ञान ध्यान गुण और संयम नहीं है (वे) जन्म कर भूले ही मर जायेंगे। तीर्थ व्रत शुचि संयम कर्म, धर्म और पूजा आदि से (मुक्ति नहीं मिलती)। नानक कहते हैं कि (परमात्मा के) प्रेम और भक्ति में (भवसागर से) निस्तार होता है, द्वैत भाव में तो द्वैत ही व्याप्त होता है (अर्थात् उपर्युक्त द्वैतभाव वाले कर्मों से संसार ही पल्ले पड़ता है।) ॥२॥

हे बनजारे मित्र रात्रि के तीसरे पहर में सिर रूपी सरोवर में श्वेत बाल रूपी हंस आ उतरे, यौवन घटता जाता है और वृद्धावस्था (यौवन को) जीतती जाती है। हे बनजारे मित्र, (इस प्रकार) आयु घटती जाती है और दिन भी बीतते जाते हैं। ऐ अंधे अंतकाल में जब यमराज पकड़ कर (यहाँ से) चला देगा (तब) पछतायेगा। जिन को (तुम) अपना कर के रखे हो वे क्षण मात्र में पराये हो जाते हैं। (तुमने) सारी बुद्धि त्याग दी (तुम्हारी सारी) चतुरता समाप्त हो गई अवगुण करके (तुम) पछताओगे। नानक कहते हैं कि हे प्राणी तीसरे पहर में चित्त लगा कर परमात्मा का स्मरण करो ॥३॥

हे बनजारे मित्र रात्रि के चौथे पहर में (मनुष्य) वृद्ध हो जाता है, (उसका) शरीर क्षीण हो जाता है। हे बनजारे मित्र (वह) अब आँखों से (कुछ भी) नहीं देखता (और) कान से वचन भी नहीं सुनता। (वह) आँख से अन्धा हो जाता है जीभ से रसास्वादन नहीं (कर सकता) (उसके सारे) पराक्रम और बल समाप्त हो जाते हैं। (उसके) हृदय में गुण भी नहीं हैं (भला वह) कैसे सुख पा सकता है? (इस प्रकार वह) मनमुख का आवागमन (बना रहता है)। तृण पक गया है (वह) कड़क कर टूट कर नष्ट हो जाता है (भाव यह कि आयु पूरी हो जाने से मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाता है)। (ऐसे) चलेजाने वाले शरीर

का क्या मान (अहंकार) है ? नानक कहते हैं कि हे प्राणी (इस) चौथे पहर में गुरु के उपदेश द्वारा शब्द को पहचानो ।।४।।

ऐ वनजारे मित्र उनको साँसो का अन्त आ पहुँचा है, बलवती वृद्धावस्था (उनके) कंधे पर (सवार हो चुकी है) । उनमें एक रत्ती भी गुण नहीं टिके हैं; हे वनजारे मित्र (वे अपने) अवगुणों को बाँध कर ही जायेंगे । (जो) गुणों के संयम (के साथ) जाता है उस पर चोट नहीं पड़ती और उसका जन्म-मरण भी नहीं होता । यम अथवा काल-जाल से उसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते (उसे तो) प्रेमा भक्ति से भय (के समुद्र) को तरता है । (वह परमात्मा के दरवाजे पर) प्रतिष्ठा से जाता है, सहजावस्था (निर्वाण पद मोक्ष तुरीय पद) में समा जाता है और (अपने) सारे दुःखो को मिटा देता है । नानक कहते हैं (कि वह) गुरु की शिक्षा द्वारा (भवबंधन से) छूट जाता है और सत्य (परमात्मा) में प्रतिष्ठा पाता है ।।५।।२।।

१ओं सतिगुरि प्रसादि ॥ सिरी राग की वार महला १, सलोका नालि ॥

सलोकु   दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि ।
इकि जागंदे ना लहंनि, इकना सुतिआ देइ उठालि ॥ १ ॥
सिदकु सबूरी सादिका सबरु तोसा मलाइकां ।
दीदारु पूरे पाइसा थाउ नाही खाइका ॥ २ ॥

सलोक —सारे दान साहब के दिए हैं उसके साथ क्या (जोर) चल सकता है ? कुछ तो जागते हुए भी नहीं पाते हैं और कुछ सोते हुआ को (दाता) उठा कर दे देता है ॥ १ ॥

विश्वासियों के पास विश्वास और सब्र (संतोष) है, और देवता (के स्वभाव वाले मनुष्य) के पास संतोष (सब्र) का संबल (तोशा=संबल पाथेय—मार्ग का खर्च) है, (अतएव वे लोग) पूर्ण (परमेश्वर) का प्राप्त कर लेते हैं, (किन्तु) केवल गप्प मारने वाले को स्थान (भी) नहीं मिलता ॥ २ ॥

पउड़ी :   सभ आपे तुधु उपाइ कै आपि कारै लाई ।
तूं आपे वेखि विगसदा आपणी वडिआई ॥
हरि तुधहु बाहरि किछु नाही तूं सचा साई ।
तूं आपे आपि वरतदा सभनी ही थाई ।
हरि तिसै धिआवहु संत जनहु जो लए छडाई ॥ १ ॥

पउड़ी —(हे प्रभु) तुम आप ही सारी (सृष्टि) रचकर आप ही (उसे) काम धंधा में भी लगा दिए हो । तुम अपनी यह महत्ता (बड़ाई) देख कर आप ही प्रसन्न हो रहे हो । (हे प्रभु) तुम सच्चे स्वामी हो और तुमसे बाहर कोई भी वस्तु नहीं है तुम अपने आप सारे ही स्थानो में बरत रहे हो । हे संत जनो (तुम लोग) उस हरी का ध्यान करो, जो (सारे विकारो) से छुड़ा लेता है ॥ १ ॥

सलोक फकड़ जाती फकड़ नाउ । सभना जीआ इका छाउ ॥
आपहु जे को भला कहाए । नानक तापरु जापै जा पति लेखै पाए ॥ १ ॥
कुदरति करि कै वसिआ सोइ । वखतु वीचारे सु बंदा होइ ॥
कुदरति है कीमति नही पाइ । जा कीमति पाइ त कही न जाइ ॥
सरै सरीअति करहि बीचारु । बिनु बूझे कैसे पावहि पारु ॥
सिदकु करि सिजदा मनु करि मखसूदु ।
जिह धिरि देखा तिह धिरि मउजूदु ॥ ४ ॥

गली असी चंगीआ आचारी बुरीआह ।
मनहु कुसुधा कालीआ बाहरि चिटवीआह ॥
रीसा करिह तिनाड़ीआ जो सेवहि दरु खड़ीआह ।
नालि खसमै रतीआ माणहि सुखि रलीआह ॥
होदै ताणि निताणीआ रहहि निमानणीआह ।
नानक जनमु सकारथा जे तिन कै संगि मिलाह ॥ ५ ॥

सलोक —जाति (का अहंकार) व्यर्थ है और नाम (बड़प्पन का अहंकार भी) व्यर्थ है। (वास्तव में) सारे जीवों में एक ही प्रतिबिम्ब (छाया) है अर्थात् सारे जीवों में एक ही परमात्मा विराजमान है। कोई (व्यक्ति यदि अपनी जाति अथवा नाम के बल पर अपने को) अच्छा कहलाता है (तो वह अच्छा नहीं बन जाता)। हे नानक (जीव) भला तभी समझा जाता है जब (परमात्मा) के लेखे में प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥ १ ॥

विशेष —निम्नलिखित सलोक एक शरीअत मानने वाले मुसलमान को समझाने के लिए कहा गया है अतएव इसमें अरबी फारसी के शब्दों के प्रयोग की अधिकता है।

अर्थ —कुदरत (माया शक्ति) की रचना करके (प्रभु) स्वयं ही इसमें बस रहा है। अतएव जो मनुष्य (मानवीय जन्म) के समय का विचारता है (तात्पर्य यह कि जो यह सोचता है कि इस संसार में मनुष्य-योनि किस लिए प्राप्त हुई है) वह (उस प्रभु का) बंदा (सेवक) बन जाता है। प्रभु (सारी निर्मित) कुदरत में व्याप्त है उसका मूल्य आँका नहीं जा सकता। यदि कोई आँकना भी चाहे तो उसका कथन नहीं किया जा सकता।

शरीअत मानने वाले, सिर्फ शरीअत आदि (बाह्य धार्मिक रीति रिवाजों) का ही विचार करते हैं। किन्तु बिना (आत्म स्वरूप के) समझे (वे इस संसार-सागर को) कैसे पार पा सकते हैं? (हे भाई) परमात्मा में विश्वास रखने को ही सिजदा बनाओ [सिजदा = परमात्मा के पास झुकना]। (अपने) मन को (परमात्मा में जोड़ने को ही) लक्ष्य बनाओ। (उपर्युक्त साधनों के युक्त होने पर) जिसके पास देखो उसी के पास परमात्मा मौजूद दिखाई देता है ॥ ४ ॥

विशेष —कहते हैं कि निम्नलिखित सलोक गुरु नानक देव जी ने कामरूप की रानी नूरशाह के प्रति कहा था। कामरूप का जादू-टोना प्रसिद्ध है। नूरशाह इस कला में बड़ी दक्ष थी। उसी को शिक्षा देने के लिए गुरु नानक देव ने निम्नलिखित 'सलोक' का उच्चारण किया।

अर्थ —हम बातों में तो (बहुत) अच्छी हैं, किन्तु आचरण में (बहुत ही) खराब। मन से तो अपवित्र और काली हैं (किन्तु) बाहर से (खूब) साफ-सुथरी हैं। (फिर भी) हम प्रतिस्पर्धा उनकी कर रही हैं जो (परमात्मा) के दरवाजे पर खड़ी होकर (सावधानी से उसकी) सेवा कर रही हैं, पति के प्रेम में अनुरक्त हैं और आनन्द में रंगरलियाँ मना रही हैं जो बल के रहते हुए भी (अपने को) बलहीन समझ रही हैं (और साथ ही जो) मानविहीन (होकर) रह रही हैं ॥ ५ ॥

पउड़ी

तू आपे जलु मीना है आपे आपे ही आपि जालु ।
तूं आपे जालु वताइदा आपे विचि सेवालु ।
तू आपे कमलु अलिपतु है सै हथा विचि गुलालु ।
तू आपे मुकति कराइदा इक निमख घड़ी करि खिआलु ॥
हरि तुधहु बाहरि किछु नहीं गुरसबदी वेखि निहालु ॥ २ ॥

पउड़ी —(हे प्रभु) तू आप ही (मछली का जीवन-रूप) जल है और आप ही (जल में रहनेवाली) मछली है और आप ही जाल है। तू आप ही जाल बिछाता है (और) आप ही (जल में) सेवाल (सिवार) है। तू आप ही सौ हाथों गहरे जल में गुलाल रंग वाला (बहुत ही सुन्दर) निर्लिप्त कमल है। (हे हरी) जो (प्राणी) एक निमिष एक घड़ी (तेरा) ध्यान करे (उसे) तू आप ही (इस संसार जाल से) मुक्त करता है। हे हरी तुमसे परे और कुछ नहीं है सद्गुरु के शब्द द्वारा (तुम्हें प्रत्येक स्थान में) देखा जाता है ॥ २ ॥

सलोक

कुबुधि डूमणी कुदइआ कसाइणि पर निंदा घट चूहड़ी मुठी क्रोधि चंडालि ।
कारी कढी किआ थीऐ जां चारे बैठीआ नालि ॥
सचु संजमु करणी कारां नावणु नाउ जपेही ।
नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही ॥ १ ॥

किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि करेइ ।
जो तिसु भावै नानका कागहु हंसु करेइ ॥ २ ॥

सलोक —शरीर में स्थित कुबुद्धि डोमिनी है निर्दयता कसाइनी है, परनिन्दा मेहतरानी और क्रोध चाण्डालिनी है—(इन चारों ने जीव की शान्ति और आनन्द को) ठग लिया है। यदि ये चारों (हृदय में) एक साथ बैठी हों तो (बाहरी चौके की शुद्धि के लिए) लकीर खींचने से क्या लाभ ? हे नानक (जो मनुष्य) सत्य संयम और शुभ कर्मों को (चौका शुद्ध करने के लिए) लकीर (समझते हों) नाम-जप को (तीर्थ) स्नान मानते हों (जो औरों को भी) पापवाली शिक्षा नहीं देते वे ही (मनुष्य आगे परमात्मा के दरबार में) उत्तम (गिने जाते हैं) ॥ १ ॥

जिस पर (प्रभु) कृपा-दृष्टि करे, तो क्या हंस है और क्या बगुला है ? (अर्थात् वह चाहे तो बगुले को भी हंस बना देता है)। यदि प्रभु चाहे तो (वह बाहरी दृष्टि के अच्छे दीखने वाले को नहीं बल्कि अंदर से भी मैले आचरणवाले) कौवे को भी हंस बना देता है ॥ २ ॥

पउड़ी

कीता लोड़ीऐ कमु सु हरि पहि आखीऐ ।
कारजु देइ सवारि सतिगुर सचु साखीऐ ॥
संता संगि निधानु अंमृतु चाखीऐ ।
भै भंजन मिहरवान दास की राखीऐ ।
नानक हरिगुण गाइ अलखु प्रभु लाखीऐ ॥ १ ॥

पउड़ी —(यदि) किसी काम को कराने की इच्छा है तो उसकी (पूर्णता के लिए मनुष्य को) हरि से याचना करनी चाहिए। (इस प्रकार) सद्गुरु की सच्ची शिक्षा द्वारा (प्रभु) कार्य सँवार देता है और संतों की संगति में (नाम) अमृत के निधान का (रस भी) चखने को मिलता है। (भक्त को सदैव इस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए —) हे भय-भंजन कृपालु (हरि) दास की (लज्जा) रख लो। हे नानक (इस विधि से) हरि का गुणगान करके अलख परमात्मा का दर्शन कर लिया जाता है ॥ १ ॥

अर्थ —इस बातों में तो (बहुत) अच्छी है, किन्तु आचरण मे (बहुत ही) खराब मन से भी अपवित्र और काली है (किन्तु) बाहर से (खूब) साफ-सुथरी है । (फिर भी) हम प्रतिस्पर्द्धा उनकी कर रही है जो (परमात्मा) के दरवाजे पर खड़ी होकर (सावधानी से उसकी) सेवा कर रही है, पति के प्रेम मे अनुरक्त है और आनन्द म रंगरलियाँ मना रही है, जो बल के रहते हुए भी (अपने को) बलहीन समझ रही है (और साथ ही जो) मानविहीन (होकर) रह रही है ॥ ५ ॥

पउड़ी   तू आपे जलु मीना है आपे आपे ही आपि जालु ।
           तू आपे जालु वताइदा आपे विचि सेबालु ।
           तू आपे कमलु अलिपतु है सै हथा विचि गुलालु ।
           तू आपे मुकति कराइदा इक निमख घड़ी करि खिआलु ॥
           हरि तुधहु बाहरि किछु नही गुरसबदी वेखि निहालु ॥ २ ॥

पउड़ी —(हे प्रभु,) तू आप ही (मछली का जीवन-रूप) जल है और आप ही (जल में रहनेवाली) मछली है और आप ही जाल है तू आप ही जाल बिछाता है (और) आप ही (जल मे) शैवाल (सिवार) है तू आप ही सौ हाथों गहरे जल मे गुलाल रंग वाला (बहुत ही सुन्दर) निर्लिप्त कमल है । (हे हरि) जो (प्राणी) एक निमिष एक घड़ी (तेरा) ध्यान धरे (उसे) तू आप ही (इस संसार जन्म से) मुक्त कराता है । हे हरी तुझसे परे और कुछ नही है सद्गुरु के शब्द द्वारा (तुझे प्रत्येक स्थान मे) देखा जाता है ॥ २ ॥

सलोक   कुबुधि डूमणी कुदइआ कसाइणि पर निंदा घट चूहड़ी मुठी क्रोधि चंडालि ।
           कारी कढी किआ थीऐ जां चारे बैठीआ नालि ॥
           सचु संजमु करणी कारां नावणु नाउ जपेही ।
           नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही ॥ १ ॥

           किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि करेइ ।
           जो तिसु भावै नानका कागहु हंसु करेइ ॥ ७ ॥

सलोक —शरीर मे स्थित कुबुद्धि डोमिनी है, निर्दयता कसाइनी है, परनिन्दा मेहतरानी और क्रोध चाण्डालिनी है—(इन चारो ने जीव की शान्ति और आनन्द को) ठग लिया है । यदि ये चारो (हृदय में) एक साथ बैठी हों तो (बाहरी चौके की शुद्धि के लिए) लकीर खींचने से क्या लाभ ? हे नानक (जो मनुष्य) सत्य संयम और शुभ कर्मों को (चौका शुद्ध करने के लिए) लकीर (समझते हों) नाम जप को (तीर्थ) स्नान मानते हों (जो औरो को भी) पापवाली शिक्षा नही देते वे ही (मनुष्य आगे परमात्मा के दरबार मे) उत्तम (गिने जाते है) ॥ ६ ॥

जिस पर (प्रभु) कृपा-दृष्टि करे, तो क्या हंस है और क्या बगुला है ? (अर्थात् वह चाहे तो बगुले को भी हंस बना देता है) । यदि प्रभु चाहे तो (वह बाहरी दृष्टि के अच्छे दीखने वाले को नहीं बल्कि अंदर से भी बुरे आचरणवाले) कौवे को भी हंस बना देता है ॥ ७ ॥

पउड़ी ।	कीता लोड़ीऐ कमु सु हरि पहि आखीऐ ।
कारजु देइ सवारि सतिगुर सचु साखीऐ ।।
संता संगि निधानु अंमृतु चाखीऐ ।
भै भजन मिहरवान दास की राखीऐ ।
नानक हरिगुण गाइ अलखु प्रभु लाखीऐ ।। १ ।।

पउड़ी —(यदि) किसी काम को करने की इच्छा है, तो उसको (पूर्णता के लिए मनुष्य को) हरि से प्रार्थना करनी चाहिए। (इस प्रकार) सद्गुरु की सच्ची शिक्षा द्वारा (प्रभु) कार्य सवार देता है और संतों की संगति में (नाम) अमृत के निधान का (रस भी) चखने को मिलता है। (भक्त को सदैव इस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए —) हे भय-भंजन कृपालु (हरी) दास की (लज्जा) रख लो। हे नानक (इस विधि से) हरि का गुणगान करके अलक्ष परमात्मा का दर्शन कर लिया जाता है ।। १ ।।

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु माझ महला, १, घरु १

असटपदीआं [१]

सबदि रंगाए हुकमि सबाए । सची दरगह महलि बुलाए ।
सचे दीन दइआल मेरे साहिबा सचे मनु पतीआवणिआ ॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी सबदि सुहावणिआ ।
अंम्रित नामु सदा सुखदाता गुरमती मंनि वसावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ना को मेरा हउ किसु केरा । साचा ठाकुरु त्रिभवणि मेरा ॥
हउमै करि करि जाइ घणेरी करि अवगण पछोतावणिआ ॥ २ ॥

हुकमु पछाणै सु हरि गुण वखाणै । गुर कै सबदि नामि नीसाणै ॥
सभना का दरि लेखा सचै छूटसि नामि सुहावणिआ ॥ ३ ॥

मनमुखु भूला ठउरु न पाए । जम दरि बधा चोटा खाए ॥
बिनु नावै को संगि न साथी मुकते नामु धिआवणिआ ॥ ४ ॥

साकत कूड़े सचु न भावै । दुबिधा बाधा आवै जावै ॥
लिखिआ लेखु न मेटै कोई गुरमुखि मुकति करावणिआ ॥ ५ ॥

पेईअड़ै पिरु जातो नाही । झूठि विछुंनी रोवै धाही ॥
अवगणि मुठी महलु न पाए अवगण गुणि बखसावणिआ ॥ ६ ॥

पेईअड़ै जिनि जाता पिआरा । गुरमुखि बूझै ततु बीचारा ॥
आवणु जाणा ठाकि रहाए सचै नामि समावणिआ ॥ ७ ॥

गुरमुखि बूझै अकथु कहावै । सचे ठाकुर साचो भावै ॥
नानक सचु कहै बेनंती सचु मिलै गुण गावणिआ ॥ ८ ॥ १ ॥

पहिलै पिआरि लगा थणि दुधि । दूजै माइ बाप की सुधि ॥
तीजै भया भाभी बेब । चउथै पिआरि उपंनी खेड ॥
पंजवै खाण पीअण की धातु । छिवै कामु न पुछै जाति ॥
सतवै संजि कीआ घर वासु । अठवै क्रोधु होआ तन नासु ॥
नावै धउले उभे साह । दसवै दधा होआ सुआह ॥
गए सिगीत पुकारी धाह । उडिआ हंसु दसाए राह ॥
आइआ गइआ मुइआ नाउ । पिछै पतलि सदिहु काव ॥
नानक मनमुखि अंधु पिआरु । बाझु गुरू डुबा संसारु ॥ २ ॥

दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुंदरु कहावै ।
चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै ।
सतरि का मतिहीणु असीहां का विउहारु न पावै ।
नवै का सिहजासणी मुलि न जाणै अपबलु ॥
ढंढोलिमु ढूढिमु डिठु मैं नानक जगु धूए का धवलहरु ॥ ३ ॥

विशेष —अकबर के दरबार में मुरीद खाँ और चन्द्रहड़ा दो सरदार हुए हैं। पहले की जाति थी 'मलिक' और दूसरे की 'सोही'। दोनों की आपस में अनबनी थी। एक बार अकबर बादशाह ने मुरीद खाँ को काबुल जीतने को भेजा। मुरीद खाँ ने वैरी को तो जीत लिया, किन्तु राज्य-प्रबन्ध करने में उसे देर लग गई। चन्द्रहड़ा ने अकबर से चुगली खाई कि मुरीद खाँ काबुल का स्वयं स्वामी बन बैठा है। अतः मलिक के विरुद्ध चन्द्रहड़ा की अध्यक्षता में सेना भेजी गई। दोनों ही पारस्परिक लड़ाई में मारे गए। भाटों ने इस लड़ाई की 'वार' लिखी जो पंजाब आदि प्रान्तों में प्रचलित हुई। गुरु अर्जुन देव ने उपयुक्त शीर्षक देकर यह निश्चय किया कि गुरु नानक देव जी की इस माझ की वार को उसी राग में गाना चाहिए, जिस राग में "मुरीद खाँ" और 'चन्द्रहड़ा' वाली 'वार' गाई जाती है। उस वार के गाने का उदाहरण निम्नलिखित है—

"काबुल विच मुरीद खाँ फड़िआ वड जोर"

सलोक अर्थ —सद्गुरु (नाम के दान का) दाता है, गुरु ही हिम (बर्फ) का घर है (अर्थात् परम शान्ति का भण्डार है)। वही तीनों लोकों का (प्रकाश करने वाला) दीपक है। हे नानक (नाम रूपी) अमर पदार्थ (गुरु से ही प्राप्त होता है) (जिसका) मन गुरु से मान जाय उसे (महान्) सुख होता है ॥ १ ॥

[विशेष —निम्नलिखित 'सलोक' में गुरु नानक देव जी ने मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को दस भागों में विभाजित किया है। उसके किए हुए सारे प्रसंगों का चित्र इस प्रकार बनता है]—

पहली अवस्था में (जीव) प्रेम से (माँ के) स्तन के दूध में उलझा रहता है। दूसरी अवस्था में (बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है) उसे माँ-बाप की समझ आने लगती है; तीसरी अवस्था में (उसे) भाई भाभी और बहन (की पहचान आ जाती है)। चौथी अवस्था में खेल में प्रीति उत्पन्न होती है, पाँचवीं अवस्था में खाने-पीने की भावना उत्पन्न होती है। छठी अवस्था में काम (जागृत होता है जिसमें वह) जाति-कुजाति भी नहीं देखता। सातवीं अवस्था

(हे भाई !) जो प्रभु सब में व्यापक (पुरुष) है, जगत् का रचयिता है, सदैव स्थिर रहने वाला (सति) और माया से रहित (निरंजन) है, उसे स्मरण करो।

(हे प्रभु) तू सबसे महान् पुरुष है, तू स्वयं ही सब जानने वाला जाता है, हे मेरे सच्चे (साहब) जो तुझे मन लगा कर चित्त लगा कर ध्यान करते हैं मैं उनपर (मैं बार-बार) बलि हारी होता हूँ ॥१॥

सलोकु जीउ पाइ तनु साजिआ रखिआ बणत बणाइ ।
अखी देखै जिहवा बोलै कनी सुरति समाइ ॥
पैरी चलै हथी करणा दिता पैनै खाइ ।
जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै अंधा अंधु कमाइ ॥
जा भजै ता ठीकरु होवै घाड़त घड़ी न जाइ ।
नानक गुर बिनु नाहि पति पति विणु पारि न पाइ ॥ ४ ॥
सुइने कै परबति गुफा करी कै पाणी पइआलि ।
कै विचि धरती कै आकासी उरधि रहा सिरि भारि ॥
पुरु करि काइआ कपड़ु पहिरा धोवा सदा कारि ।
बगा रता पीअला काला बेदा करी पुकार ।
होइ कुचीलु रहा मलु धारी दुरमति मति विकार ।
ना हउ ना मै ना हउ होवा नानक सबदु वीचारि ॥ ५ ॥
वसत्र पखालि पखाले काइआ आपे संजमि होवै ।
अंतरि मैलु लगी नही जाणै बाहरहु मलि मलि धोवै ॥
अंधा भूलि पइआ जम जाले ।
वसतु पराई अपुनी करि जानै हउमै विचि दुखु घालै ।
नानक गुरमुखि हउमै तुटै ता हरि हरि नामु धिआवै ।
नामु जपे नामो आराधे नामे सुखि समावै ॥ ६ ॥

सलोक —(प्रभु ने) जीव उत्पन्न करके शरीर बनाया है, (क्या ही सु...) रचना रच रखी है। (यह) आँखों से देखता है जिह्वा से बोलता है और (उसके ...) में श्रवण की सत्ता विद्यमान है, पैरों से चलता है, हाथों से (कार्य) करता है और (...) दिया हुआ पहनता खाता है। पर जिस (प्रभु) ने (इसे) बनाया और सँवा... (यह) जानता (भी) नहीं अंधा मनुष्य अंधे ही (कर्म) करता है।

जब (यह शरीर रूपी पात्र) टूट जाता है तो (यह) ठीकरा हो जाता ... (यह) फिर बनाए जाने पर ... यह कि उसके के टुकड़े की तरह व्यर्थ हो जाता है) और फिर बनाए जाने पर ... सकता। हे नानक (ऐसा मनुष्य) गुरु (की शरण) के बिना प्रतिष्ठा-हीन हो ... बिना प्रतिष्ठा (परमात्मा की कृपा) के (इस संसार-सागर को) लाँघ नहीं सकता ...

(मैं चाहे) सोने के पर्वत (सुमेर पर्वत) पर गुफा बना लूँ अथवा ... (बास कर) चाहे पृथ्वी पर रहूँ अथवा आकाश में सिर के बल पर ऊर्ध्व-तप ... शरीर को पूरी तौर पर कपड़े पहना लूँ चाहे शरीर का सदैव ही धोता ...

लाल पीले अथवा श्वेत (वस्त्र पहन कर) चारों वेदों की ओर से पढ़ूँ [इसका यह भी अर्थ हो सकता है—चाहे रक्तवर्ण वाला सामवेद, श्वेत रंग वाला यजुर्वेद, पीत-वर्ण के ऋग्वेद और श्याम वर्ण के अथर्ववेद का उच्च स्वर में पाठ करूँ (शारदा-तिलक के पाँचवें पटल में वेदों के उपर्युक्त रंग दिए गए हैं)।]। चाहे कुवस्त्र (कुपीन) पहनूँ और गुदड़ी धारण किए रहूँ—(किन्तु ये सब) कुबुद्धि के विस्तारयुक्त कर्म ही हैं। हे नानक (मैं तो यह चाहता हूँ) कि (सद्गुरु के) शब्द को विचार कर न तो मेरा 'मेरा' रहे, न ममता रहे और न अहंकार रहे (अर्थात् सारा अहंभाव नष्ट हो जाय)॥ ५॥

(जो मनुष्य नित्य) कपड़े धोकर शरीर धोता है (और केवल कपड़े तथा शरीर की शुद्धि रखने से ही) अपने को संयमी मान बैठता है (किन्तु) हृदय में लगी हुई मैल की जिसे जानकारी नहीं है, (केवल शरीर को) बाहर ही से मल-मल कर धोता है (वह) अन्धा मनुष्य (सीधे मार्ग को) भूल कर यम के जाल में पड़ा हुआ है, अहंकार में दुःख पाता है क्योंकि पराई वस्तु (शरीर और अन्य पदार्थों) को अपनी समझ बैठा है।

हे नानक, (जब) गुरु के सम्मुख होकर (मनुष्य का) अहंकार टूटता है तो वह हरि के नाम का ध्यान करता है, नाम का ही जप करता है, नाम की ही आराधना करता है और नाम (के ही प्रभाव से सदैव) सुख में टिका रहता है॥ ६॥

पउड़ी काइआ हंसु संजोगु मेलि मिलाइआ।
तिन ही कीआ विजोगु जिनि उपाइआ।
मूरखु भोगे भोगु दुख सबाइआ॥
सुखहु उठे रोग पाप कमाइआ॥
हरखहु सोगु विजोगु उपाइ खपाइआ।
मूरख गणत गणाइ झगड़ा पाइआ॥
सतिगुर हथि निबेड़ु झगड़ु चुकाइआ।
करता करे सु होगु न चलै चलाइआ॥ २॥

पउड़ी —शरीर और जीव (आत्मा) का संयोग मिला कर (परमात्मा ने इन दोनों को मनुष्य के जन्म में) एकत्र कर दिया है, जिस (प्रभु) ने (शरीर और जीव को) उत्पन्न किया है, उसी ने (इनके लिए) वियोग भी बना रखा है। (पर इस वियोग को भुला कर) मूर्ख (जीव) भोग भोगता रहता है, (जो) सारे दुःखों का (मूल कारण) है। पाप करने के कारण (भोगों के) सुख से रोग उत्पन्न होते हैं। (भोगों का) हर्ष और शोक (और अन्त में) वियोग उत्पन्न करके (प्रभु जीव को) नष्ट कर देता है। (जीव इस प्रकार) मूढ़ कर्मों को करके (जन्म-मरण के लम्बे) झगड़े में पड़ा रहता है।

(जन्म-मरण के व्यापार को) समाप्त करने की शक्ति सद्गुरु के हाथों में है (जिसे गुरु मिलता है उसका यह) झगड़ा समाप्त हो जाता है। (जीवों की कोई) अपनी चतुराई (चालाकी) नहीं चल पाती, जो कर्तार करता है, वही होता है॥ २॥

सलोकु कूड़ बोलि मुरदारु खाइ। अवरी नो समझावणि जाइ॥
मुठा आपि मुहाए साथै। नानक ऐसा आगू जापै॥ ७॥

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ॥
नानक नाउ खुदाइ का दिलि हछै मुखि लेहु ।
अवरि दिवाजे दुनी के झूठे अमल करेहु ॥ ८ ॥
जा हउ नाही ता किआ आखा किहु नाही किआ होवा ।
कीता करणा कहिआ कथना भरिआ भरि भरि धोवां ॥
आपि न बुझा लोक बुझाई ऐसा आगू होवां ॥
नानक अंधा होइ कै दसे राहै सभसु मुहाए साथै ।
अगै गइआ मुहे मुहि पाहि सु ऐसा आगू जापै ॥ ९ ॥

सलोकु —(जो मनुष्य) झूठ बोलकर (स्वयं) दूसरा का हक खाता है (हराम का खाता है) तथा औरों को यह समझाने जाता है—(कि झूठ मत बोलो, हराम का मत खाओ) हे नानक ऐसे उपदेश-कर्ता की (अंत में इस प्रकार) कलई खुलती है कि वह स्वयं तो ठगा ही जाता है, अपने साथवालों को भी लुटाता है ॥ ७ ॥

विशेष निम्नलिखित सलोक मुसलमानों के संबंध में कहा गया है। उनकी यह धारणा है कि यदि कपड़े में रक्त लग जाय तो वह अपवित्र हो जाता है। वह वस्त्र नमाज पढ़ने लायक नहीं रहता।

अर्थ यदि जामे (कपड़े) में रक्त लग जाय तो जामा अपवित्र हो जाता है, (किन्तु) जो (बन्दे) मनुष्यों का रक्त पीते हैं (अत्याचार और अन्याय से उनका धन अपहरण करते हैं) उनका चित्त किस प्रकार निर्मल रह सकता है ? (और अपवित्र मन से पढ़ी हुई नमाज् किस प्रकार स्वीकार हो सकती है) ?

हे नानक खुदा का नाम अच्छे दिल और अच्छे मुख से लो (इसके बिना) और दुनियावी काम दिखाने के हैं, व तो झूठे ही कर्म करते हो ॥८॥

यदि मैं ही कुछ नहीं (तात्पर्य यह कि मेरा आध्यात्मिक अस्तित्व ही कुछ नहीं है) तो मैं औरों को उपदेश क्या करूं ? यदि (हृदय में) कुछ (गुण ही) नहीं है, (तो बन-ठन कर) क्या दिखाऊं ? (मेरे) क्रिया-कर्म मेरी बोलचाल (आदि मद संस्कारों से) भरी हुई है, (कभी मैं इन कर्मों में लिप्त जाता हूँ तो फिर उन्हें) धोने का प्रयत्न करता हूँ। यदि मैं स्वयं ही नहीं समझे हूँ और लोगों को समझा रहा हूँ तो (मैं इस अवस्था में उपहासात्मक) उपदेशक बनता हूँ।

हे नानक जो मनुष्य स्वयं अन्धा है पर औरों को राह दिखाता है, वह सारे साथियों को लुटा देता है, आगे चलकर उसके मुँहों पर (जूते) पड़ते हैं तब उस समय ऐसा उपदेशक (वास्तविक रूप में) प्रकट होता है ॥९॥

पउड़ी
माहा रुती सभ तूं घड़ी मूरत वीचारा ।
तू गणतै किनै न पाइओ सचे अलख अपारा ॥
पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ।
नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा ॥

गुरमती भाणु मनु कम्पिआ भवनी भरे भडारा।
निरमलु नामु मंनिआ दरि सचै सचिआरा ॥
जिसदा जीउ पराणु है अंतरि जोति अपारा।
सचा साहु इकु तू होरु जगतु वणजारा ॥ १ ॥

पउड़ी (हे प्रभु) सारे महीनों, ऋतुओं घड़ियों और मुहूर्तों में तुम्हें स्मरण किया जा सकता है (भाव यह कि तुम्हारे स्मरण के लिए कोई विशेष ऋतु, घड़ी अथवा मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है। सभी समय तुम्हारा स्मरण किया जा सकता है)। हे सच्चे अगम्य अपार (प्रभु) (तिथियों मुहूर्तों आदि को) गणना करके किसी ने भी तुम्हें नहीं प्राप्त किया। जिस (व्यक्ति) में लालच लोभ और अहंकार है, ऐसे पढ़े हुए को मूर्ख ही कहना चाहिए।

(वास्तव में किसी तिथि मुहूर्त के भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं केवल) सद्गुरु द्वारा दी गई बुद्धि को विचार कर परमात्मा का नाम जपना चाहिए और उसे समझना चाहिए। जिन्होंने गुरु की शिक्षा के अनुसार नाम रूपी धन प्राप्त कर लिया है उनके भाण्डार भक्ति से भर गए हैं; जिन्होंने (परमात्मा का) निर्मल नाम स्वीकार कर लिया वे प्रभु के सच्चे दरबार में सच्चे (सिद्ध होते) हैं। (हे प्रभु) तेरे ही दिए हुए जीवन और प्राण प्रत्येक जीव को मिले हैं (और) तेरी ही अपार ज्योति प्रत्येक जीव के अन्तर्गत (विराजमान है)। (इस प्रकार, हे प्रभु) तू ही अकेला सच्चा साहु है और सारा जगत् बनजारा है ॥१॥

सलोकु मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु ॥
करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निवाज।
तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज ॥१०॥

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ।
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ।
गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ।
मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ ॥
नानक गली कूड़ीई कूड़ो पलै पाइ ॥११॥

पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ ॥
चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ ॥१२॥

सलोकु विशेष —निम्नलिखित वाणी में गुरु नानक देव ने सच्चे मुसलमान बनने की विधियाँ बताई हैं—

अर्थ —(प्राणियों के ऊपर) दया को मस्जिद (बनाओ) श्रद्धा को मुसल्ला [मुसल्ला वह वस्त्र जिस पर बैठ कर नमाज पढ़ी जाती है] और हक की कमाई को कुरान (बनाओ)। (बुरे कर्मों के प्रति) लज्जा को सुन्नत (मानो) शील-स्वभाव का रोजा (बनाओ); (हे भाई इस

विधि से) मुसलमान बनो । शुभ कर्मों को रोज़ा सच्चाई को पीर, (सुन्दर और दयापूर्ण) कर्म को ही कलमा और नमाज़ बनाओ । जो बात खुदा को अच्छी लगे, (उसी को शिरोधार्य करना) तुम्हारी तसबीह (जप की माला) हो । हे नानक (खुदा ऐसे ही मुसलमान की) लज्जा रखता है ॥१०॥

हे नानक पराया हक मुसलमान के लिए सूअर है और हिन्दू के लिए गाय है । गुरु पैग़म्बर तभी सिफ़ारिश करता है यदि मनुष्य पराया हक (बेईमानी की कमाई) न खाये । सिर्फ़ बातें करने से बिहिश्त (स्वर्ग) में नहीं जा सकता; सत्य को वास्तविक जीवन में बरतने से ही छुटकारा मिलता है । हराम के माँस में मसाला (चतुराई की बात) डालने से हलाल नहीं हो जाता । हे नानक झूठी बातें करने से झूठ ही पल्ले पड़ता है ॥११॥

(मुसलमानों की) पाँच नमाज़ें हैं, (उनके) पाँच वक्त हैं और उन पाँच नमाज़ों के (पृथक पृथक) पाँच नाम हैं—[नमाज़ों के पाँच नाम ये हैं—नमाज़े सुबह, नमाज़े पेशीन नमाज़े दीगर, नमाज़े शाम तथा नमाज़े खुफ़तन] । (पर हमारी राय में असली नमाज़ें निम्नलिखित हैं) सत्य बोलना नमाज़ का पहला नाम है (यही प्रातःकाल की पहली नमाज़ है), हक की कमाई दूसरी नमाज़ है परमात्मा से सब का भला माँगना नमाज़ का तीसरा नाम है नीयत को साफ़ करना तथा मन को साफ़ रखना—यह चौथी नमाज़ है, और परमात्मा के यश की महिमा की प्रशंसा करनी यह पाँचवीं नमाज़ है, (इन पाँचों नमाज़ों के साथ-साथ) जब ऊँची करनी (आचरण) का कलमा पढ़े तभी अपने आप को मुसलमान कहला सकता है ।

हे नानक (इन नमाज़ों और कलमे से रहित) जितने भी हैं वे सब झूठे हैं; झूठे (की प्रतिष्ठा) भी झूठी ही होती है ॥१२॥

पउड़ी इकि रतन पदारथ वणजदे इकि कचै दे वापारा ।
सतिगुरि तुठै पाईअनि अंदरि रतन भंडारा ॥
विणु गुर किनै न लधिआ अंधे भउकि मुए कूड़िआरा ।
मनमुख दूजै पचि मुए न बूझहि वीचारा ॥
इकसु बाझहु दूजा को नही किसु अगै करहि पुकारा ।
इकि निरधन सदा भउकदे इकना भरे तुजारा ॥
विणु नावै होरु धनु नाही होरु बिखिआ सभु छारा ।
नानक आपि कराए करे आपि हुकमि सवारणहारा ॥७॥

पउड़ी —कुछ मनुष्य (परमात्मा के नाम रूपी) रत्न-पदार्थ का व्यापार करते हैं और कुछ लोग (संसार रूपी) काँच के व्यापारी हैं । (प्रभु के गुण रूपी ये) रत्न के भाण्डार (मनुष्य के) अंदर हैं, किन्तु सद्गुरु के संतुष्ट होने पर ही ये मिलते हैं । गुरु की (शरण में आए) बिना किसी ने भी इस भाण्डार को प्राप्त नहीं किया; झूठ के व्यापारी अन्धे (मनुष्य) (कुत्ते की भाँति) भूँक भूँक कर मर जाते हैं । जो व्यक्ति मन के पीछे चलने वाले हैं, वे द्वैतभाव में पच पच कर मर जाते हैं वे (वास्तविक) विचार नहीं समझते । (इस दुःखपूर्ण अवस्था की) पुकार भी वे लोग किसके सम्मुख करें ? एक (प्रभु) के बिना दूसरा कोई (सुननेवाला भी) नहीं है ।

(नाम रूपी भण्डार के बिना) बहुत से निर्धन (कुत्ता की भाँति) सदैव भटकते फिरते हैं और किसी के (हृदय रूपी) खजाने (परमात्मा रूपी धन से) भरे पड़े हैं। (परमात्मा के) नाम बिना और कोई (साथ निभने वाला) धन नहीं है और विषयों (के धन) तो खाक (के समान) हैं।

(किन्तु) हे नानक सभी (जीवों में बैठा हुआ प्रभु) स्वयं ही (नाश और रक्षा के व्यापार) कर-करा रहा है, (जिन्हें) सुधारता है (उन्हें) अपने हुक्म में ही (सीधे मार्ग पर चलाता है) ॥४॥

सलोकु मुसलमानु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलमाना मालु मुसावै॥
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै।
रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै॥
तउ नानक सरब जीआ मिहरमति होइ त मुसलमाणु कहावै॥ १३॥

नदीआ होवहि धेणवा सुम होवहि दुधु घीउ।
सगली धरती सकर होवै खुसी करे नित जीउ॥
परबतु सुइना रुपा होवै हीरे लाल जड़ाउ।
भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ॥ १४॥

भार अठारह मेवा होवै गरड़ा होइ सुआउ।
चंदु सूरजु दुइ फिरदे रखीअहि निहचलु होवै थाउ॥
भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ॥ १५॥

जे देहै दुखु लाईऐ पाप गरह दुइ राहु।
रतु पीणे राजे सिरै उपरि रखीअहि एवै जापै भाउ॥
भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ॥ १६॥

अगी पाला कपड़ु होवै खाणा होवै वाउ।
सुरगै दीआ मोहणीआ इसतरीआ होवनि नानक सभो जाउ॥
भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ॥१७॥

सलोकु (वास्तविक) मुसलमान कहलाना (बहुत) कठिन है; यदि (वह इस प्रकार) हो तब (अपने आप को) मुसलमान कहला सकता है। (असली मुसलमान बनने के लिए) सब से पहले (यह आवश्यक है) कि उसे औलियों (सन्तों) का मजहब प्रिय लगे। (तत्पश्चात्) जैसे मिसकल से (लोहे का) जंग साफ किया जाता है, उसी प्रकार (अपनी कमाई का) धन (गरीबों को) बाँट कर (मन का अहंकार नष्ट करके अन्तःकरण को पवित्र करे)।

[मिसकल < अरबी मिसकला = जंग साफ करने का औजार विशेष]। (इस प्रकार) मजहब के सम्मुख नम्र कर (सच्चा) मुसलमान बने और जीवन मरण के भ्रम को समाप्त कर दे। परमात्मा की मर्जी को शिरोधार्य करे, कर्त्ता को (सब कुछ करनेवाला) माने और अहंभाव को मिटा दे। इस प्रकार, हे नानक, (परमात्मा के उत्पन्न किए) सारे प्राणियों पर मेहरबान हो (दया करे)— तभी मुसलमान कहला सकता है॥१३॥

यदि सारी नदियाँ (मेरे लिए) गायें बन जायें (पानी के) झरने दूध और घी बन जायें सारी पृथ्वी शक्कर बन जाय (इन पदार्थों को भोग कर) मेरा जीव नित्य प्रसन्न हो यदि हीरों और लालों से जड़े हुए सोने और चाँदी के पर्वत बन जायें, तो भी (हे प्रभु, मैं इन पदार्थों में न फँसूँ और) तुम्हारी स्तुति करूँ तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१४॥

विशेष यह प्राचीन मत चला आ रहा है यदि प्रत्येक प्रकार की वनस्पति—पेड़ पौधे आदि के एक एक पत्ते एकत्र करके तौले जायें तो सारा वजन १८ भार होता है। एक भार का वजन कच्चे पाँच मन होता है।

अर्थ यदि सारी वनस्पतियाँ मेवा बन जायें जिसका स्वाद अत्यंत रसीला हो तथा मेरे रहने का स्थान अटल हो जाय और चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों ही (मेरी सेवा के लिए) फिरते रहे तो भी (हे प्रभु, मैं इन पदार्थों में न फँसूँ और) तुम्हारी स्तुति करूँ, तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१५॥

यदि (मेरे) शरीर को दुःख लग जायें दोनों (क्रूर-ग्रह) राहु और केतु (मेरे ऊपर आ जाय) रक्त-पिपासु राजे मेरे सिर के ऊपर हों जो तुम्हारा भाव अथवा प्रेम इसी तरह (तात्पर्य इन्हीं दुःखों के रूप में मेरे ऊपर) प्रकट हो तो भी (हे प्रभु मैं इन दुःखों से घबरा कर तुम्हें भुला न दूँ) तुम्हारी स्तुति करूँ, तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१६॥

यदि (ग्रीष्म ऋतु की) धाम और (हेमन्त और शिशिर ऋतुओं का) पाला (मेरे पहनने का) वस्त्र हो यदि वायु ही मेरा भोजन हो, स्वर्ग की (समस्त) अप्सराएँ मेरी स्त्रियाँ हो जायें तो भी हे नानक (ये सारी ऐश्वर्य—सामग्रियाँ) नश्वर हैं (इनके मोह में फँस कर मैं तुम्हें न भुला दूँ)। तुम्हारी स्तुति करता रहूँ तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१७॥

पउड़ी बदफैली गैबाना खसमु न जाणई । सो कहीऐ देवाना आपु न पछाणई ॥
कलहि बुरी संसारि वादे खपीऐ । विणु नावै वेकारि भरमे पचीऐ ॥
राहु दोवै इकु जाणै सोई सिझसी । कुफर गोअ कुफराणै पइआ दझसी ।
सभ दुनीआ सुबहानु सचि समाईऐ । सिझै दरि दीवानि आपु गवाईऐ ॥४॥

पउड़ी (जो मनुष्य) छिप कर पाप करता है और स्वामी को (प्रत्येक स्थान में विराजमान) नहीं समझता, उसे दीवाना (पागल) कहना चाहिए, वह अपने आप को नहीं पहचानता। संसार में बुरा कलह (सर्वत्र) फैला हुआ है)। (लोग) विवाद में ही नष्ट होते रहते हैं। बिना नाम (को जाने सब) बेकार ही हैं, (लोग) भ्रमित होकर नष्ट हो जाते हैं। (जो) दोनों रास्तों को एक जानता है, (वही) सफल होगा [दोनों रास्तों से तात्पर्य—हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों से है अथवा माया तथा परमात्मा के मार्ग से है]। नास्तिकता की बातें करनेवाला नरक में पड़कर जलेगा।

(जो मनुष्य) शाश्वत प्रभु से सदैव युक्त रहता है, उसके लिए सारा जगत सुहावना है वह अहंकार मिटा कर प्रभु के दरवाजे एवं दरबार में प्रतिष्ठित होता है ॥४॥

सलोकु सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ ।
नानक अवरु न जीवै कोइ ॥
जे जीवै पति लथी जाइ ।
सभु हरामु जेता किछु खाइ ॥
राजि रंगु मालि रंगु रंगि रता नचै नंगु ॥
नानक ठगिआ मुठा जाइ ।
विणु नावै पति गइआ गवाइ ॥१८॥
किआ खाधै किआ पैधै होइ । जा मनि नाही सचा सोइ ॥
किआ मेवा किआ घिउ गुड़ु मिठा किआ मैदा किआ मासु ।
किआ कपड़ु किआ सेज सुखाली कीजहि भोग बिलास ॥
किआ लसकर किआ नेब खवासी आवै महली वासु ।
नानक सचे नाम विणु सभे टोल विणासु ॥१९॥

सलोकु —(वास्तव में) वही मनुष्य जीता है, जिसके मन में परमात्मा बसा हुआ है। हे नानक (भक्त के अतिरिक्त) कोई और नहीं जीता है। यदि (नाम-विहीन होकर) जीता भी है, तो वह प्रतिष्ठा गवाँ कर (यहाँ से) जाता है। (वह यहाँ) जो कुछ भी खाता-पीता है, हराम हो कर खाता है। जो राज्य-सुख और धन-सुख के रंग में अनुरक्त है, वह (उन सुखों में उन्मत्त) नंगा होकर नाचता है। हे नानक प्रभु के नाम के बिना मनुष्य ठगा जा रहा है लूटा जा रहा है और प्रतिष्ठा गवाँ कर (यहाँ से) जाता है ॥१८॥

(जिस प्रभु ने सारे सुन्दर पदार्थों को दिया है) यदि वह सच्चा प्रभु हृदय में नहीं बसता तो (रसयुक्त भोजन) खाने से तथा (सुन्दर वस्त्र) पहनने से क्या होता है ? क्या हुआ यदि मेवे घी मीठा गुड़ मैदा और मांसादिक पदार्थ बरते गए ? क्या हुआ, यदि (सुहावने) वस्त्र तथा सुन्दर सेज मिल गई, और क्या हुआ यदि बहुत से आमोद-प्रमोद (भोग लिए) ? क्या बन गया यदि (बहुत सा) फौजें नायब और शाही नौकर मिल गए और महलों में (सुन्दर) निवास हो गया ? हे नानक (परमात्मा के) नाम बिना सारे पदार्थ नश्वर हैं ॥१९॥

पउड़ी जाती दै किआ हथि सचु परखीऐ । महुरा होवै हथि मरीऐ चखीऐ ॥
सचे की सिरकार जुगु जुगु जाणीऐ । हुकमु मंने सिरदारु दरि दीबाणीऐ ॥
फुरमानी है कार खसमि पठाइआ । तबलबाज बीचार सबदि सुणाइआ ॥
इकि होवै असवार इकना साखती । इकनी बधे भार इकना ताखती ॥१९॥

पउड़ी —(परमात्मा के दरवाजे पर तो) सच्चा नाम (रूपी सौदा) परखा जाता है जाति के हाथ में कुछ नहीं है (तात्पर्य यह कि किसी जाति अथवा वर्ण का कोई लिहाज नहीं किया जाता) [जाति का अहंकार माहुर (विष) के समान है] यदि किसी के पास माहुर हो (चाहे वह किसी जाति का क्यों न हो) और वह उस माहुर को चखए, तो (अवश्य ही) मर जायगा। सच्चे (परमात्मा का यह) न्याय प्रत्येक युग में बरतता चला आया है, इसे जान लो प्रभु के दरवाजे पर, प्रभु के दरबार में वही प्रतिष्ठा पाता है, जो उसका हुक्म मानता है। स्वामी ने (जीव को) हुक्म मानने वाले काम का मौर कर (जगत् में) भेजा है। नगारची गुरु ने शब्द द्वारा यह बात सुना दी है (तात्पर्य यह है कि गुरु ने शब्द द्वारा इस बात का

ढिंढोरा पीट दिया है)। (इस ढिंढोरे को सुन कर) कुछ (गुरमुख) तो सवार हो गए हैं (भाव यह कि परमात्मा के मार्ग पर चल पड़े हैं) कई (बन्दे) तैयार हो पड़े हैं, कुछ माल असबाब लाद चुके हैं और कुछ जल्दी-जल्दी दौड़ पड़े हैं ॥१॥

सलोकु — खेतु पका ता काटिआ रही सु पलरि वाड़ि ।
सनु कीसारा चिथिआ कणु लइआ तनु झाड़ि ॥
दुइ पुड़ चकी जोड़ि कै पीसण आइ बहिठु ।
जो दरि रहे सु उबरे नानक अजब डिठु ॥ २ ॥

वेखु जि मिठा कटिआ कटि कुटि बधा पाइ ।
खुंढा अंदरि रखि कै देनि सु मल सजाइ ॥
रसु कसु टटरि पाईऐ तपै तै विललाइ ।
भी सो फोगु समालीऐ दिचै अगि जालाइ ॥
नानक मिठै पतरीऐ वेखहु लोका आइ ॥ २१ ॥

सलोक जब (कृषि) पक जाती है, तो (ऊपर-ऊपर) काट भी जाती है, जो वस्तु शेष रहती है, वह डंठल और फूस है, (फिर) उसे बालियों समेत दबा लिया जाता है, (पौधों का) तन झाड़ के—भूसा अलग कर दाना निकाल लिया जाता है।

चक्की के दोनो पाटों में रख (उन दानों को) पीसने के लिए (मनुष्य आ बैठता है)। (पर) हे नानक एक आश्चर्यमय तमाशा देखा है कि जो दाने (चक्की के) दरवाजे के पास (अर्थात् किल्ली के समीप रहते हैं) वे पीसने से बच रहते हैं (इसी प्रकार जो मनुष्य प्रभु के दरवाजे के पास रहते हैं, उन्हें जगत् के विकार नहीं व्याप्त हो सकते) ॥२ ॥

(हे भाई), देखो कि गन्ना (मिठा) काटा जाता है, छील-छाल कर रस्सी में डाल कर बाँधा जाता है फिर उस बेलन में डाल कर पहलवान (तगड़े आदमी) इसे (मानो) सजा देते हैं (पेरते हैं)। सारा रस कड़ाहे में डाल दिया जाता है। (आग की आँच से यह रस) तपता है और बिलखता है। (तत्पश्चात् गन्ने की खोई को इकट्ठा करके (सुखा कर) आग में डाल कर जला देते हैं, (ताकि कड़ाहे का रस गरम हो)। नानक कहते हैं कि हे लोगो आकर (गन्ने की दशा) देखो मिठास के कारण वह दुःखी होता है। (इसी प्रकार माया की मिठास के मोह के कारण जीव की भी दुर्दशा होती है और वह दुःखी होता है) ॥२१॥

पउड़ी — इकना मरणु न चिति आस घणेरिआ ।
मरि मरि जमहि नित किसै न केरिआ ।
आपनड़ै मनि चिति कहनि चंगेरिआ ।
जमराजै नित नित मनमुख हेरिआ ॥
मनमुख लूणहाराम किआ न जाणिआ ।
बधे करनि सलाम खसम न भाणिआ ॥
सचु मिलै मुखि नामु साहिब भावसी ।
करसनि तखति सलामु लिखिआ पावसी ॥ ७ ॥

पउड़ी कुछ लोग (संसार का) बड़ी मायाएँ (मन में बनाते रहते हैं, मृत्यु का ध्यान उनके) चित्त में नहीं आता वे सदैव (नित्य) जगमते रहते हैं, वे (कभी) किसी के नहीं होते (अपने ही स्वार्थ में रत रहते हैं) । (वे लोग) अपने मन में, अपने चित्त में (अपने को) भला कहते हैं । (पर) ऐसे मनमुखों को यमराज नित्य ही देखता रहता है (तात्पर्य यह है कि वे समझते तो अपने का अच्छे हैं, किन्तु वम ऐसे नीच करते हैं जिनके द्वारा यमराज के बन्धन में पड़ते हैं) । मनमुख नमकहरामी होते हैं, वे (परमात्मा के) दिए हुए (उपकार को) नहीं जानते । (वे लोग) जब बकते हैं, तभी (प्रभु को) सलाम करते हैं (ऐसा करने से) वे खसम (स्वामी प्रभु) को प्रिय नहीं हो सकते ।

(जिस मनुष्य का) सत्य (परमात्मा) मिल गया है, जिसके मुँह में (प्रभु का) नाम है, वह खसम को प्यारा लगेगा । उस तख्त के ऊपर (बठा देख कर) सभी लोग सलाम करेंगे (और परमात्मा के) इस लिख लेख (विधान को) वह पायेगा ॥७॥

सलोकु   मछी तारू किआ करे पंखी किआ आकासु ।
पथर पाला किआ करे खुसरे किआ घर वासु ॥
कुते चंदनु लाईऐ भी सो कुती धातु ।
बोला जे समझाईऐ पड़ीअहि सिम्रिति पाठ ॥
अंधा चानणि रखीऐ दीवे बलहि पचास ।
चउणे सुइना पाईऐ चुणि चुणि खावे घासु ॥
लोहा मारणि पाईऐ ढहै न होइ कपास ।
नानक मूरखि एहि गुण बोले सदा विणासु ॥ २२ ॥

कैहा कंचनु तुटै सारु । अगनी गंढु पाए लोहारु ॥
गोरी सेती तुटै भतारु । पुती गंढु पवै संसारि ॥
राजा मंगै दितै गंढु पाइ । भुखिआ गंढु पवै जा खाइ ॥
काल़ा गंढु नदीआ मीह झोल । गंढु परीती मिठे बोल ॥
बेदा गंढु बोले सचु कोइ । मुइआ गंढु नेकी सतु होइ ॥
एतु गंढि वरतै संसारु । मूरख गंढु पवै मुहि मार ॥
नानकु आखै एहु बीचारु । सिफती गंढु पवै दरबारि ॥ २३ ॥

सलोकु —बहुत गहरा पानी मछली का क्या कर सकता है ? (तात्पर्य यह कि जल कितना ही गहरा क्यों न हो मछली को चिन्ता नहीं । आकाश पक्षी का क्या कर सकता है ? पाला (कंकड़) पत्थर का क्या कर सकता है ? (यानी पाला कंकड़-पत्थर का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता) । हिजड़े का घर बसाने से (क्या करना है) क्या लाभ ? कुत्ते को चन्दन लगा दिया जाय फिर भी उसकी वृत्ति (स्वभाव) कुत्तियों में ही रहती है । गूंगे को (चाहे जितना) समझाइए अथवा (चाहे जितना) स्मृतियों का पाठ कीजिए, (किन्तु वह तो सुन ही नहीं सकता) । अंधे मनुष्य को प्रकाश में रखा जाय (और उसके पास) पचास दीपक जलते हों (फिर भी वह नहीं देख सकता) । चरने के लिए गए हुए पशुओं के सम्मुख चाहे सोना डाल दीजिए, तो भी वे तो घास ही चुन-चुन कर खायेंगे । (चाहे) लोहे को चूर्ण-चूर्ण कर डालिए, तो भी वह कपास (के समान मुलायम नहीं) हो सकता ।

हे नानक मूर्ख भी इसी स्वभाव (गुण) के होते हैं, (चाहे उसे कितना ही समझाया जाय किन्तु वह जभी बोलता है) तभी (ऐसा बोलता है, जिससे) दूसरों को नुकसान पहुँचे ॥ २२ ॥

यदि काँसा सोना अथवा लोहा टूट जाय तो अग्नि के द्वारा लोहार (आदि उन्हें) जोड़ देते हैं; यदि स्त्री से पति रुष्ट हो जाय तो जगत् में इनका मेल पुत्रों द्वारा (पुनः) हो जाता है। यदि राजा माँगता है, और (प्रजा) देती है, (तो दोनों का पारस्परिक) संबंध जुड़ा रहता है। भूखे व्यक्ति का अपने शरीर से तभी सम्बन्ध जुड़ता है, जब वह भोजन करे। यदि बहुत मेह पड़ने से नदियाँ (बहने लगें) तो दुर्भिक्ष (काल) में गाँठ पड़ जाती है (तात्पर्य यह कि वर्षा होने से दुर्भिक्ष की समाप्ति हो जाती है) मीठे वचन से प्रीति जुड़ती है (प्रीति प्रगाढ़ होती है)। वेद (धार्मिक धार्मिक पुस्तकों) से (मनुष्य का तभी) संबंध जुड़ता है, यदि वह सत्य बोले। नेकी और सच्चाई के होने से मृत व्यक्तियों का (जीवितों से) सम्बन्ध बना रहता है, (तात्पर्य यह कि नेक पुरुषों की नेकी और सच्चाई को अपनाने की चेष्टा जीवित मनुष्य सदैव करते रहते हैं)। (अतएव) इस प्रकार के सम्बन्ध से जगत् का व्यवहार चलता है। मुँह पर मारने से मूर्ख के (मूर्खपन) की रोक होती है।

नानक यह विचार की बात बताता है कि (परमात्मा) की स्तुति के द्वारा (परमात्मा के) दरबार से सम्बन्ध जुड़ता है ॥ २३ ॥

पउड़ी आपे कुदरति साजि कै आपे करे बीचारु।
इकि खोटे इकि खरे आपे परखणहारु॥
खरे खजाने पाईअहि खोटे सटीअहि बाहरवारि।
खोटे सची दरगह सुटीअहि किसु आगै करहि पुकार॥
सतिगुर पिछै भजि पवहि एहा करणी सारु।
सतिगुरु खोटिअहु खरे करे सबदि सवारणहारु॥
सची दरगह मंनीअनि गुर कै प्रेम पिआरि।
गणत तिना दी को किआ करे जो आपि बखसे करतारि॥ ८ ॥

पउड़ी —(परमात्मा) आप ही कुदरत — शक्ति, माया (सृष्टि-रचना) उत्पन्न करके आप ही इसका ध्यान रखता है। (इस सृष्टि में) कुछ प्राणी खोटे हैं, (तात्पर्य यह कि मनुष्यता के मापदण्ड से नीचे गिरे हैं) और कुछ (बावनतोले सिक्के समान) खरे हैं, (इन सब को परखनेवाला भी) आप ही है। (अच्छे सिक्कों की भाँति) खरे बन्दे (प्रभु के खजाने में डाले जाते हैं (तात्पर्य यह कि उनका जीवन प्रामाणिक होता है)। खोटे धक्का देकर बाहर फेंक दिए जाते हैं। सच्चे दरबार में उन्हें धक्का मिलता है कोई ऐसा और स्थान भी नहीं जहाँ वे लोग (सहायता के लिए) पुकार सकें।

(ऐसे तुच्छ जीवों के लिए) सब से श्रेष्ठ यही कर्म है कि वे लोग सद्गुरु की शरण में जा पड़ें। गुरु खोटे व्यक्तियों को खरा बना देता है (क्योंकि वह अपने) शब्द के द्वारा (खोटों को) सँवारने में समर्थ है,(फिर वे) सद्गुरु द्वारा प्रदत्त प्रेम और प्यार से परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठा पाते हैं, जिन्हें परमात्मा देता है, उनकी गणना कौन कर सकता है? ॥१॥ ८ ॥

सलोकु हम अेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ ।
मे रवदि बादिसाहा अफजू खुदाइ ॥
एक तुही एक तुही ॥ २४ ॥
न देव दानवा नरा । न सिध साधिका धरा ॥
असति एक दिगरि कुई । एक तुई एक तुई ॥ २५ ॥
न दादे दिहद आदमी । न सपत जेर जिमी ॥
असति एक दिगरि कुई । एक तुई एक तुई ॥ २६ ॥
न सूर ससि मंडलो । न सपत दीप नह जलो ॥
अंन पउणु थिरु न कुई । एक तुई एक तुई ॥ २७ ॥
न रिजकु दसत आ कसे । हमारा एकु आस वसे ॥
असति एकु दिगर कुई । एक तुई एक तुई ॥ २८ ॥
परंदए न गिराह जर । दरखत आब आस कर ॥
दिहद सुई । एक तुई एक तुई ॥ २९ ॥
नानक लिलारि लिखिआ सोइ । मेटि न साकै कोइ ॥
कला धरै हिरै सुई । एकु तुई एकु तुई ॥ ३ ॥

सलोक :—और शेष सब (आदि) सारा संसार जो धरती के नीचे है (नष्ट हो जाता है)—(इस पृथ्वी पर शासन करने वाले) बादशाह भी नष्ट हो जाते हैं। सदा कायम रहने वाला हे खुदा एक तू ही है एक तू ही है ॥ २४ ॥

देवतागण दानव मनुष्य सिद्ध साधक कोई भी (इस) धरती पर न रहे। सदैव रहने वाला (तुम्हें छोड़ कर) दूसरा कौन है? सदैव रहनेवाला हे प्रभु एक तू ही है एक तू ही है ॥ २५ ॥

न न्याय करनेवाले व्यक्ति ही सदैव रहने वाले हैं न पृथ्वी के नीचे सात (पाताल) ही रहने वाले हैं सदैव रहनेवाला (हे प्रभु, तुम्हें छोड़ कर) दूसरा कौन है? हे प्रभु, सदैव स्थिर रहनेवाला एक तू ही है एक तू ही है ॥ २६ ॥

सूर्य चन्द्रमण्डल सप्त दीप जल अन्न पवन कुछ भी स्थिर नहीं रहनेवाले हैं। (सदा रहनेवाला, हे प्रभु) एक तू ही है एक तू ही है ॥ २७ ॥

जीवों का आहार (परमात्मा के बिना) किसी और के हाथ में नहीं है, सभी जीवों को बस एक प्रभु की आशा है (क्योंकि सदा स्थिर) और है ही कोई नहीं सदैव रहनेवाला हे प्रभु, एक तू ही है एक तू ही है ॥ २८ ॥

पक्षियों के गांठ के पल्ले धन नहीं है वे प्रभु के बनाए हुए वृक्षों और पानी का ही आसरा लेते हैं। उन्हें रोजी देने वाला वही प्रभु है।

(हे प्रभु, उन्हें रोजी देनेवाला) एक तू ही है एक तू ही है ॥ २९ ॥

हे नानक (जीव के) माथे में जो कुछ परमात्मा की ओर से लिखा गया है, उसे कोई मेट नहीं सकता। (जीव के अंतगत) वही शक्ति देता और वही लेता है।

(हे प्रभु, जीवों को शक्ति देनेवाला और उनकी खोज-खबर लेने वाला) एक तू ही है, एक तू ही है ॥ ३ ॥

पउड़ी सचा तेरा हुकमु गुरमुखि जाणिआ ।
गुरमती आपु गवाइ सचु पछाणिआ ॥
सचु तेरा दरबारु सबदु नीसाणिआ ।
सचा सबदु वीचारि सचि समाणिआ ॥
मनमुख सदा कूड़िआर भरमि भुलाणिआ ।
विसटा अंदरि वासु सादु न जाणिआ ॥
विणु नावै दुखु पाइ आवण जाणिआ ।
नानक पारखु आपि जिनि खोटा खरा पछाणिआ ॥ ९ ॥

पउड़ी :—(हे प्रभु !) तेरा हुकम सच्चा है गुरु के सम्मुख होकर यह जाना जाता है । जिसने गुरु की मति लेकर अपना अहंभाव दूर किया है उसने तुझ सच्चे को जान लिया है । (हे प्रभु,) तेरा दरबार सच्चा है (उस तक पहुँचने के लिए गुरु का) शब्द ही निशान है । जिन्होंने सच शब्द को विचारा है, वे सच्चे में ही लीन हो जाते हैं ।

(पर) मन के पीछे दौड़नेवाले झूठा (ही) व्यवहार करते हैं वे भ्रम में भटकते फिरते हैं । वे सदैव विष्ठा (मल) के भीतर वास करते हैं (वे शब्द का) स्वाद नहीं जान सकते हैं । (परमात्मा के) नाम बिना वे दुःख पाकर आने-जाने (जीवन-मरण) (के चक्कर में पड़े रहते हैं) ।

हे नानक परखनेवाला प्रभु आप ही है जिसने खोटे-खरे को पहचाना है (तात्पर्य यह कि प्रभु आप ही जानता है कि खोटा और खरा कौन है ।) ॥ ९ ॥

सलोकु : सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह ।
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह ॥
नदीआ विचि टिबे देखाले थली करे असगाह ।
कीड़ा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह ॥
जेते जीअ जीवहि लै साहा जीवाले ता कि असाह ।
नानक जिउ जिउ सचे भावै तिउ तिउ देइ गिराह ॥ ११ ॥

इकि मासहारी इकि त्रिणु खाहि । इकना छतीह अम्रित पाहि ।
इकि मिटीआ महि मिटीआ खाहि । इकि पउण सुमारी पउण सुमारि ॥
इकि निरंकारी नाम आधारि ॥
जीवै दाता मरै न कोइ । नानक मुठे जाहि नाही मनि सोइ ॥ १२ ॥

सलोकु —(यदि प्रभु चाहे) तो सिंह, बाज, शिकरा तथा कुही (ऐसे माँसाहारी पक्षियों को) घास खिला दे (तात्पर्य यह कि उनकी माँसाहारी वृत्ति को परिवर्तित कर दे) जो घास खाते हैं उन्हें माँस खिला दे । (इस प्रकार वह विरोधी) मार्गों में चला सकता है । (यदि प्रभु चाहे तो) नदियों के बीच में टीला दिखा दे और स्थल को अथाह (जल) बना दे कीड़े को बादशाही (तख्त) पर स्थापित कर दे और (बादशाहों की) सेना को खाक कर दे । (संसार में) जितने भी जीव जीते हैं साँस लेकर जीते हैं, (तात्पर्य यह कि जब तक जीते हैं, तब तक साँस लेते हैं) (किन्तु, हे प्रभु) यदि तू उन्हें जीवित रखना चाहे, तो साँस

(की क्या आवश्यकता है) ?

हे नानक जैसे जैसे प्रभु की मर्जी है वैसे-वैसे (जीवों का) रोजी देता है ॥ ११ ॥

कुछ जीव माँसाहारी हैं, कुछ तृण खाते हैं, कुछ प्राणी छत्तीस प्रकार के अमृतमय (स्वाद वाले) भोजन करते हैं और कुछ मिट्टी में (रहकर) मिट्टी ही खाते हैं।

कुछ (साधक) पवन के गिनने वाले हैं और पवन ही गिनते रहते हैं (तात्पर्य यह कुछ प्राणायाम के अभ्यासी प्राणायाम में ही लगे रहते हैं)· कुछ निरंकार के उपासक नाम के सहारे जीते हैं।

उनका दाता जीवित रहे। उनमें से कोई भूखा नहीं मरता (तात्पर्य यह कि उन्होंने अपने दाता—परमात्मा का सहारा पकड़ा है, इसलिए उन्हें रोजी अवश्य मिलती है)। हे नानक वे जीव ठग जाते हैं जिनके मन में वह प्रभु नहीं है ॥ १२ ॥

पउड़ी पूरे गुर की कार करमि कमाइऐ ॥
गुरमती आपु गवाइ नामु धिआईऐ ॥
दूजी कारै लगि जनमु गवाईऐ।
बिनु नावै सभ बिसु पैझै खाईऐ ॥
सचा सबदु सालाहि सचि समाईऐ।
बिनु सतिगुर सेवे नाही मुकति निवासु फिरि फिरि आईऐ ॥
दुनीआ खोटी रासि कूड़ु कमाईऐ।
नानक सचु खरा सालाहि पति सिउ जाईऐ ॥ १ ॥

पउड़ी —पूर्ण सद्गुरु का काम (प्रभु की) कृपा के द्वारा ही किया जा सकता है, गुरु (की दी हुई) मति—बुद्धि द्वारा आपापन नष्ट करके (प्रभु का) नाम स्मरण किया जा सकता है।

(प्रभु का स्मरण भूल कर) अन्य कार्यों में लगने से (मनुष्यों का) जन्म व्यर्थ ही जाता है, (क्योंकि) बिना नाम के सारा खाना-पीना विषवत हो जाता है।

(सद्गुरु के) सच्चे शब्द की स्तुति करके (मनुष्य) (परमात्मा) में समा जाता है। सद्गुरु की सेवा किए बिना मुक्ति में निवास नहीं हो सकता और बार बार (जन्म-मरण के चक्कर में) आना पड़ता है। संसार (का प्रेम) खोटी पूँजी है यह कमाई झूठ (का व्यापार है)।

हे नानक खरे सच्चे (परमात्मा की) स्तुति करके (मनुष्य इस संसार से) प्रतिष्ठा के साथ जाता है ॥ १ ॥

सलोकु तुधु भावै ता वावहि गावहि तुधु भावै जलि नावहि।
जा तुधु भावहि ता करहि बिभूता सिङी नादु वजावहि ॥
जा तुधु भावहि ता पड़हि कतेबा मुला सेख कहावहि।
जा तुधु भावहि ता होवहि राजे रस कस बहुतु कमावहि ॥
जा तुधु भावहि तेग वगावहि सिर मुंडी कटि जावहि।
जा तुधु भावहि जाहि दिसंतरि सुणि गला घरि आवहि ॥

जा तुधु भावहि नाइ रचावहि तुधु भाणै तू भावहि ।
नानकु एक कहै बेनंती होरि सगले कूड़ु कमावहि ॥ १३ ॥
जा तू वडा सभि वडिआईआ चंगै चंगा होई ।
जा तू सचा ता सभु को सचा कूड़ा कोइ न कोई ॥
आखणु वेखणु बोलणु चलणु जीवणु मरणा धातु ।
हुकमु साजि हुकमै विचि रखै नानक सचा आपि ॥ १४ ॥

सलोकु —जब तुम्हें अच्छा लगता है तो (कुछ मनुष्य बाजा) बजाते हैं और (कुछ) गाते हैं (कुछ व्यक्ति तीर्थों के) जल में स्नान करते हैं, (कुछ अपने शरीर में) विभूति लगाते हैं और शृङ्गी का नाद बजाते हैं (कुछ व्यक्ति) कुरान (आदि धार्मिक पुस्तकें) पढ़ते हैं और अपने आपको मुल्ला और शेख कहलवाते हैं, (कुछ लोग) राजे बन जाते हैं और तरह-तरह के स्वादों के भोजन करते हैं, (कुछ) तलवार चलाते हैं, (कुछ शूरमों के) गर्दन से सिर कट जाते हैं (कुछ पुरुष) अन्य दिशाओं में (परदेस) जाते हैं (और वहाँ की) बातें सुनकर (फिर अपने घर) लौट आते हैं। (हे प्रभु,) यह भी तेरी मर्जी है (कि कुछ भाग्यशाली व्यक्ति) तेरे नाम में लगे रहते हैं, (जो) तेरी आज्ञा में हैं, (वे) तुम्हें अच्छे लगते हैं। नानक एक विनती करता है (कि वे व्यक्ति जो तुम्हारी आज्ञा में नहीं चल रहे हैं) झूठ ही कमा रहे हैं ॥ १३ ॥

क्योंकि (हे प्रभु) तू बड़ा है, अतएव तुम्हीं से सारी बड़ाइयाँ (निकलती हैं); (हे प्रभु) तू भला है, (अतएव) भला से भला ही (उत्पन्न होता है)। जब (यह विश्वास हो जाय) कि तू सच्चा है, तो सभी कोई सच्चे दिखलाई पड़ेंगे (क्योंकि सभी की उत्पत्ति तुम्हीं से हुई और तू ही सब में विराजमान है) (इस प्रकार की दृष्टि से) कोई भी झूठा नहीं हो सकता।

कहना देखना बोलना चलना जीना मरना यह सब माया-स्वरूप है (वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है, नित्य और शाश्वत सत्ता तो प्रभु तू ही है)। हे नानक सच्चा प्रभु स्वयं तू ही है, वह अपने हुक्म को रच कर, सभी को हुक्म में ही परखता है ॥१४॥

पउड़ी सतिगुरु सेवि निसंगु भरमु चुकाईऐ ।
सतिगुरु आखै कार सु कार कमाईऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु त नामु धिआईऐ ।
लाहा भगति सु सारु गुरमुखि पाईऐ ॥
मनमुखि कूड़ु गुबारु कूड़ु कमाईऐ ।
सचे दै दरि जाइ सचु चवांईऐ ॥
सचै अंदरि महलि सचि बुलाईऐ ।
नानक सचु सदा सचिआरु सचि समाईऐ ॥ १२ ॥

पउड़ी—यदि निश्शंक होकर सद्गुरु की सेवा की जाय तो (समस्त) भ्रम समाप्त हो जाते हैं। वही काम करना चाहिए, जिसके करने के लिए गुरु कहे। यदि सद्गुरु कृपा करे, तो (प्रभु के) नाम का ध्यान किया जा सकता है। गुरु की प्रतीति होने पर, (प्रभु की) भक्ति—[illegible] लाभ (प्राप्त होता है)। (किन्तु) मनमुख मिथ्या कूड़ और निरा अन्धकार ही कमाता है (प्राप्त करता है)।

(मन्दिमुखे प्रभु के चरणों में लगकर) सच्चे का नाम जपा जाय तो इस सच्चे नाम के द्वारा (प्रभु के) सच्चे महल के अन्दर स्थान मिलता है। हे नानक, (जिसके पल्ले) सदा सत्य है, वह सत्य का व्यापारी है, वह सत्य में ही निमग्न रहता है ॥११॥

सलोकु कलि काती राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ।
कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।
हउ भालि विकुंनी होई।
आधेरै राहु न कोई॥
विचि हउमै करि दुखु रोई।
कहु नानक किनि बिधि गति होई॥ १५ ॥

सबाही सालाह जिनी धिआइआ इकमनि।
सेई पूरे साह वखतै उपरि लड़ि मुए॥
दूजै बहुते राह मन कीआ मती खिंडीआ।
बहुतु पए असगाह गोते खाहि न निकलहि॥
तीजै मुही गिराह भुख तिखा दुइ भउकीआ।
खाधा होइ सुआह भी खाणे सिउ दोसती॥
चउथै आई ऊंघ अखी मीटि पवारि गइआ।
भी उठि रचिओनु वादु सै वर्हिआ की पिड़ बधी॥
सभे वेला वखत सभि जे अठी भउ होइ।
नानक साहिबु मनि वसै सचा नावणु होइ॥ १६ ॥

पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई।
सगले दूख पाणी करि पीवा धरती हाक चलाई॥
धरि ताराजी अंबरु तोली पिछै टंकु चड़ाई।
एवडु वधा मावा नाही सभसै नथि चलाई॥
एता ताणु होवै मन अंदरि करी भि आखि कराई।
जेवडु साहिबु तेवड दाती दे दे करे रजाई॥
नानक नदरि करे जिसु उपरि सचि नामि वडिआई॥ १७ ॥

नानक गुरु संतोखु रुखु धरमु फुलु फल गिआनु।
रसि रसिआ हरिआ सदा पकै करमि धिआनि॥
पति के साद खादा लहै दाना कै सिरि दानु॥ १८ ॥

सुइने का बिरखु पत परवाला फुल जवेहर लाल।
तितु फल रतन लगहि मुखि भाखित हिरदै रिदै निहालु॥
नानक करमु होवै मुखि मसतकि लिखिआ होवै लेखु।
अठसठि तीरथ गुर की चरणी पूजै सदा विसेखु॥
हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नदीआ अगि।
पवहि दझहि नानका तरीऐ करमी लगि॥ १९ ॥

सलोकु कलियुग (यह बुरा समय) छुरी है राजे कसाई हैं धर्म अपने पंखों पर (न मालूम कहाँ) उड़ गया है झूठ अमावस्या (की रात्रि) है; (इस रात्रि में) सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ है ? (वह) दिखाई नहीं पड़ता। मैं (उस चन्द्रमा को) ढूँढ-ढूँढ कर व्याकुल हो गई हूँ अन्धकार में कोई रास्ता नहीं दिखलायी पड़ता।

(इस अन्धकार) में (सृष्टि) अहंकार के कारण दुःखी होकर रो रही है। हे नानक (इस दुःख पूर्ण स्थिति से) किस प्रकार छुटकारा हो ? ॥१५॥

जो (मनुष्य) सवेरे ही (अमृतवेला में) (परमात्मा की) स्तुति करते हैं, एकाग्र मन से (प्रभु का) ध्यान करते हैं, समय पर (ब्राह्म-मुहूर्त में मन के साथ) युद्ध करते हैं (तात्पर्य यह कि आलस्य और प्रमाद से मुक्त होकर परमात्मा के चिन्तन में रत होते हैं) वे ही पूरे शाह हैं।

दूसरे पहर में अर्थात् दिन चढ़ने पर (मन के) अनेक रास्ते हो जाते हैं (अनेक सांसारिक झमेले में मन बँट जाता है) मन की गति बिखर जाती है (अनेक वासनाओं में बँट जाता है); (मनुष्य सांसारिक प्रपंचों के) अथाह (समुद्र) में पड़ कर गोते खाते हैं और निकल नहीं सकते।

तीसरे पहर में भूख और प्यास दोनों भूँकने लगती हैं (प्रबल पड़ जाती हैं) और (मनुष्य) मुँह में ग्रास (डालने लगते हैं) जो कुछ खाते हैं, भस्म हो जाता है, फिर खाने से दोस्ती होती है (अर्थात् फिर खाने की इच्छा प्रबल होती है।)

चौथे पहर नींद आ दबाती है (मनुष्य) आँख मीच कर परलोक में चला जाता है (तात्पर्य यह कि स्वप्न-संसार में विचरण करने लग जाता है)। (सोकर उठने पर फिर उन्हीं (धन्धों) झमेलों को प्रारम्भ कर देता है। (इस प्रकार मनुष्य ने) सौ वर्ष की सांठ बाँध रखी है।

(अतएव अमृतवेला ही परमात्मा के स्मरण के लिए आवश्यक है, किन्तु) जब (अमृत वेला के चिन्तन के अभ्यास) आठ पहर परमात्मा का भय (मन में) स्थिर हो जाय तो सारी वेला सारे समय में (मन परमात्मा के स्वरूप चिन्तन में निमग्न रहता है)। हे नानक (इस प्रकार जब आगे पहर) साहब में मन बसा रहे तभी सच्चा (वास्तविक) स्नान होता है ॥१६॥

विशेष —कहते हैं कि एक बार कुछ योगियों ने गुरु नानक देव से सिद्धियों का चमत्कार दिखलाने को कहा। गुरु नानक देव ने निम्नलिखित पद में योगियों को यह बतलाया कि परमात्मा के नाम से बढ़ कर कोई भी चमत्कार नहीं। सिद्धियाँ तो नाम की अपेक्षा तुच्छ हैं—

अर्थ :—यदि मैं आग पहन लूँ (अथवा) बर्फ में घर बना लूँ (तात्पर्य यह कि मेरे अन्दर इतनी शक्ति आ जाय कि मैं आग और बर्फ में बैठ सकूँ) लोहे को भोजन बना लूँ, सारे दुःखों को पानी की भाँति (बड़े शौक से) पी जाऊँ सारी पृथ्वी को अपनी हाँक में चला लूँ (यानी समस्त भूमण्डल पर मेरा आधिपत्य हो) सारे आकाश को (जो अनन्त ब्रह्माण्ड सूर्य नक्षत्रगण और तारामण्डल आदि को धारण करने से बहुत भारी है) तराजू के (एक पलड़े पर) रख कर, पिछले (पलड़े पर) टंक (चार माशा) रख कर (आसानी से) तौल लूँ (अपने शरीर को) इतना अधिक बड़ा लूँ कि कहीं समा न सकूँ और सब को नाथ लूँ (अपनी आज्ञा

न बसाऊँ) मेरे मन में इतनी शक्ति हो कि मैं चाहूँ बस और कह कर दूसरों न भी करा लूँ, (फिर भी ये सब सिद्धियाँ तुच्छ हैं) ।

जितना बड़ा साहब है, उतने ही बड़े उसके दान हैं (यदि) प्राणियों का (स्वामी) और भी (अनन्त सिद्धियों का) दान मुझे दे दे (तो भी ये सब तुच्छ ही हैं)।

हे नानक, (वास्तविक बात तो यह है कि) जिस प्राणी पर, (प्रभु) कृपा-दृष्टि करता है, उसे (अपने) सच्चे नाम के द्वारा बड़ाई प्रदान करता है। (तात्पर्य यह कि सभी सिद्धियाँ एवं चमत्कारों से बढ़कर नाम की प्राप्ति है) ॥१७॥

हे नानक (पूर्ण) संतोष (स्वरूप) गुरु वृक्ष है (जिसमें) धर्म रूपी फूल (लगता) है और ज्ञान-रूपी फल (लगते) हैं, प्रेम-जल के सींचने से यह सदैव हरा-भरा रहता है। (परमात्मा की कृपा से) (प्रभु का) ध्यान करने से यह (ज्ञान-फल) पकता है (तात्पर्य यह कि जो मनुष्य प्रभु कृपा से उसका ध्यान करता है, उसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है) । (इस ज्ञान-फल को) चखनेवाला व्यक्ति प्रभु के मिलन का रस लेता है, (मनुष्य के लिए प्रभु की ओर से) यह दान, सर्वोपरि दान है ॥१८॥

(गुरु) सोने का वृक्ष है, मूँगा—प्रवाल (अनुराग) उसके पत्ते हैं लाल जवाहर (गुरु-उपदेश) उसके फूल हैं, श्रेष्ठ कहे हुए वचन रूपी रत्न उस (गुरु)—वृक्ष के फल हैं; (उस गुरु को) हृदय के अभ्यन्तर ही देख लो। हे नानक (जिस पर प्रभु की) कृपा हो जिसके मुख और मस्तक में भाग्य हो वही गुरु के चरणों में लगकर, (उन चरणों को) अड़सठ तीर्थों से विशेष जान कर, पूजता है। हिंसा मोह लोभ और क्रोध—यह चार अग्नि की नदियाँ (जगत् में प्रवाहित हो रही हैं) । जो-जो (मनुष्य) उन नदियों में पड़ते हैं, वे दग्ध हो जाते हैं। हे नानक प्रभु की कृपा से (गुरु के चरणों में) लगकर (इन नदियों को) पार किया जा सकता है ॥१९॥

पउड़ी　जीवदिआ मरु मारि न पछोताईऐ ।
झूठा इहु संसारु किनि समझाईऐ ॥
सचि न धरे पिआरु धंधै धाईऐ ।
कालु बुरा खै कालु सिरि दुनीआईऐ ॥
हुकमी सिरि जंदारु मारे दाईऐ ।
आपे देइ पिआरु मंनि वसाईऐ ॥
मुहतु न चसा विलंमु भरीऐ पाईऐ ।
गुरपरसादी बुझि सचि समाईऐ ॥१२॥

पउड़ी : (हे साधक) (मंद वासनाओं को) मार कर जीवित ही इस प्रकार मरो कि (अन्त में) पछताना न पड़े। किसी विरले को ही यह समझ प्राप्त है कि यह संसार झूठा है। (साधारणतया जीव मंद वासनाओं के अधीन होकर) संसार के प्रपंचों में भटकता रहता है और सत्य में प्यार नहीं पाता; (वह इस बात का ध्यान नहीं रखता कि) बुरा काम नाश करने वाला काल संसार के सिर पर (हर समय खड़ा) है, यह यम प्रभु की आज्ञा से (प्रत्येक के) सिर के ऊपर (उपस्थित) है और दाव लगा कर मारता है। [जंदार<फारसी, जंदाम=

जीआ मारि जीवाले सोई अवरु न कोई रखै ।
दानहु तै इसनानहु वंझे भसु पई सिरि खुथै ॥
पाणी विचहु रतन उपंने मेरु कीआ माधाणी ।
अठसठि तीरथ देवी थापे पुरबी लगै बाणी ॥
नाइ निवाजा नातै पूजा नावनि सदा सुजाणी ।
मुइआ जीवदिआ गति होवै जां सिरि पाईऐ पाणी ॥
नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी ॥
वुठै होइऐ होइ बिलावलु जीआ जुगति समाणी ।
वुठै अंनु कमादु कपाहा सभसै पड़दा होवै ॥
वुठै घाहु चरहि निति सुरही सा धन दही विलोवै ।
तितु घिइ होम जग सद पूजा पइऐ कारजु सोहै ॥
गुरु समुंदु नदी सभि सिखी नातै जितु वडिआई ।
नानक जे सिर खुथे नावनि नाही ता सत चटे सिरि छाई ॥ ४५ ॥

आपि उपाए सोई बूझै ।
जिसु आपि बुझाए तिसु सभु किछु सूझै ॥
कहि कहि कथना माइआ लूझै ॥
हुकमी सगल करे आकार ।
आपे जाणै सरब वीचार ॥
अखर नानक आखिओ आपि ।
लहै भराति होवै जिसु दाति ॥ ४६ ॥

विशेष —निम्नलिखित सलोक जैनियों के सम्बन्ध में कहा गया है ।

सलोकु —(जैनी) सिर के बाल नुचवा कर गंदा पानी पीते हैं और जूठी (रोटी) माँग-माँग कर खाते हैं । (वे) अपना मल फैला देते हैं । और मुँह से (गंदी) साँस लेते हैं, पानी देख कर सहमते हैं (घबराते) हैं, (तात्पर्य यह कि पानी का प्रयोग नहीं करते) । भेड़ों की तरह बाल नुचवाते हैं (और उनके बाल नोचनेवालों के) हाथों में राख लगा दी जाती है । माँ-बाप के कर्म (तात्पर्य यह कि परिश्रम द्वारा धनोपार्जन करके कुटुम्ब पालन करने का काम) गँवा देते हैं (अतएव उनके) कुटुम्बी—सम्बन्धी डाढ़ मार कर रोते हैं ।

(इस लोक को तो उन्होंने इस भाँति नष्ट कर दिया आगे परलोक के सम्बन्ध में सुनिए) न तो वे पिण्डदान करते हैं न तो (श्राद्ध के) पत्तल की क्रिया करते हैं, न दीपक देते हैं, मरने पर (पता नहीं) कहाँ जाते हैं ? अड़सठ तीर्थ भी उन्हें पनाह नहीं देते और ब्राह्मण (भी) (उनका) अन्न नहीं लेते । (वे) सदैव दिन रात गंदे रहते हैं मस्तक में तिलक भी नहीं लगाते । वे नित्य झुण्ड में बैठते हैं, (जैसे किसी) गमी में गए हों ["भुण्डी पाइ बहनि" —पंजाबी मुहावरा है जिसका अर्थ "सिर पर कपड़े रख कर उदास होकर इस प्रकार बैठना जैसे किसी गमी में गए हों।" होता है] । (वे) किसी सभा-दरबार में भी नहीं जाते । (उनकी) कमर में प्याले बंधे हैं, हाथ में सूत का बना हुआ एक प्रकार का झाड़ू लिए रहते हैं (ताकि कोई कीड़ा-मकोड़ा मिल जाय तो उसको उसी झाड़ू से जिससे वे

मरते न भाई) । और आगे-पीछे (एक पंक्ति में) चलते हैं । न तो वे योगी हैं न जंगम हैं, न काजी अथवा मुल्ला हैं (अर्थात् उनके आचार-व्यवहार न तो हिन्दुओं से मिलते हैं और न मुसलमानों से) । परमात्मा के मारे हुए (वे) धिक्कारने (योग्य अवस्था में) घूमते हैं, (उनका सारा) समूह — झुण्ड (सम्प्रदाय) ही बिगड़ा हुआ है ।

(वे यह नहीं समझते कि) जीवों को मारने जिलाने वाला (प्रभु) आप ही है, (प्रभु के बिना) कोई और (उन जीवों को) नहीं रख सकता । (जीव-हिंसा के भय से जैनी लोग नित्य कर्म त्याग कर) दान और स्नान से भी विहीन हो गए हैं, (उनके) मुंडित सिर में भस्म पड़ी है ।

(जैनी लोग जीव हिंसा के भय से साफ पानी नहीं पीते और स्नान भी नहीं करते पर यह बात उनकी समझ में नहीं आती कि जब देवताओं ने) मंदराचल पर्वत को मथानी बना कर (समुद्र-मंथन किया) तो उसमें से (चौदह) रत्न उत्पन्न हुए । (जल के ही सहारे) देवताओं के अड़सठ तीर्थ स्थापित किए गए, जहाँ पर्व लगते हैं तथा कथा-वार्ता (होती है) । स्नान करके नमाज पढ़ी जाती है, स्नान करके ही पूजा होती है, (अतएव) सयाने लोग सदैव स्नान करते हैं । मरते-जीते पर (तभी) गति होती है, जब सिर के ऊपर पानी डाला जाय । (पर) हे नानक, ये मुंडित सिरवाले शैतानी (मार्ग पर) हैं, इन्हें (जल एवं स्नानादि की महत्ता की) बातें अच्छी ही नहीं लगती ।

(जल की और महत्ता देखिए) जल वर्षा होने से आनन्द होता है; [बिलावल राग आनन्द का प्रतीक है, अतः 'बिलावल' का प्रतीकार्थ 'आनन्द' 'प्रसन्नता' होता है ।] जीवों की जीवन-युक्ति भी जल में ही समाई हुई है । जल-वर्षा होने से ही अन्न (पैदा होता है) ईख (उगती है) और कपास होती है, जो (सभी मनुष्यों का) परदा बनती है । पानी बरसने से (उगी हुई) घास गायें नित्य चरती हैं (और दूध देती हैं, उस दूध से बने हुए) दही को स्त्रियाँ बिलोती हैं—मथती हैं (और घी बनाती हैं ।) उसी घी से सदैव होम और पूजा होती है, (उस घी के) पड़ने से सारे कार्य शोभनीय होते हैं ।

(एक और भी स्नान है) गुरु समुद्र है, (उसकी) सारी शिक्षा नदी है (अथवा ज्ञान सारे शिष्य नदियाँ हैं) (जहाँ) स्नान करने से, बड़ाई प्राप्त होती है । हे नानक जो ये मुंडित सिर वाले (इस ज्ञान जल में) स्नान नहीं करते उनके सिर में सात चुल्लू राख (डाली जाय) ॥ ५० ॥

जिसे (परमात्मा) स्वयं समझाता है, वही समझता है । जिसे (प्रभु) स्वयं सूझ देता है, उसे (जीवन-यात्रा की) सब कुछ सूझ आ जाती है । (केवल बार-बार) कथनी कहने से (कुछ भी नहीं होता, ऐसा मनुष्य) माया में भटकता है ।

(प्रभु ने) समस्त सृष्टि रचना अपने हुक्म से की है । समस्त जीवों के सम्बन्ध में (अपने) विचार करता है । हे नानक (परमात्मा ने) स्वयं ही इस प्रकार को कहा है जिसे प्रभु दान देता है, उसके मन की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है ॥ ५१ ॥

पउड़ी   हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ ।
राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ ॥

ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ ।
सची सिफति सालाह कपड़ा पाइआ ।।
सचा अमृत नामु भोजनु आइआ ।
गुरमति खाधा रजि तिनि सुखु पाइआ ।।
ढाढी करे पसाउ सबदु वजाइआ ।
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ ।। १२ ।। सुधु ।।

पउड़ी —मैं बेकार था मुझे प्रभु ने (अपना) ढाढी बना कर (वास्तविक) काम में लगा दिया। (प्रभु का) प्रारम्भ से हुक्म हो गया कि (मैं) रात-दिन (उसके) यश का गान करूं। मुझ ढाढी को स्वामी ने अपने सच्चे महल में बुला लिया। (उसने) सच्ची स्तुति और प्रशंसा के प्रतिष्ठा-वस्त्र मुझे पहना दिए। सच्चे अमृत नाम का भोजन (मुझे) परमात्मा के यहां से आ गया। गुरु की शिक्षा पर चलकर जिस-जिस मनुष्य ने (यह अमृत नाम रूपी भोजन) तृप्त होकर किया है, उसने सुख पाया है। मैं ढाढी (भी ज्यों-ज्यों) उसकी स्तुति एवं प्रशंसा के गीत गाता हूं (त्यों-त्यों प्रभु के यहां से मिले) नाम प्रसाद को छकता हूं (नाम का आनन्द मानता हूं)। ।। १५ ।। सुधु ।।

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु गउड़ी गुआरेरी, महला १, चउपदे दुपदे

सबद

[१]

भउ मुचु भारा वडा तोलु । मनमति हउली बोले बोलु ॥
सिरि धरि चलीऐ सहीऐ भारु । नदरी करमी गुर बीचारु ॥१॥
भै बिनु कोइ न लंघसि पारि । भै भउ राखिआ भाइ सवारि ॥१॥ रहाउ ॥
भै तनि अगनि भखै भै नालि । भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि ॥
भै बिनु घाड़त कचु निकच । अंधा सचा अंधी सट ॥२॥
बुधी बाजी उपजै चाउ । सहस सिआणप पवै न ताउ ॥
नानक मनमुखि बोलणु वाउ । अंधा अखरु वाउ दुआउ ॥३॥१॥

(परमात्मा का) भय बहुत भारी है और बड़े तोल वाला है (भाव यह है कि परमात्मा के भय में गंभीरता और बड़ाई प्राप्त होती है)। (मनुष्य के) मन की बुद्धि हल्की है और (वाणी) बोली ही बोलती है। (यदि इस भय को) शिरोधार्य करके चला जाय (और बलवान् होकर) इसका भार सहन किया जाय तो उस कृपालु (परमात्मा) की कृपा-दृष्टि से गुरु का विचार (प्राप्त होता है) ॥ १ ॥

(परमात्मा के) भय बिना कोई भी (इस संसार-सागर को) नहीं पार कर सकेगा। (गुरमुख ने परमात्मा के) भय में रह कर उस भय को बड़े प्रेम से सँवार कर रक्खा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(साधक के) शरीर में (जो परमात्मा के) भय की अग्नि है वह भय से (और भी अधिक) प्रज्वलित होती है। भय में रहकर उस भय को (गुरु के) शब्द द्वारा सँवार कर गढ़ा जाय। भय के बिना जो कुछ भी गढ़ना होता है वह कच्चा से कच्चा ही होता है। जो साँचा अन्धा होता है उस पर मुद्रित (सिक्का) भी अंधा ही होता है। (भावार्थ यह कि जैसी भावना-सम्बन्धी बुद्धि होती है वैसा ही उसका कर्म भी होता है।) ॥ २ ॥

(अज्ञानियों की) बुद्धि (सांसारिक) भय में (लगी रहती है) और (वह उसी में) प्रसन्न होती है। चाहे हजारों चतुराइयाँ करे पर (भय रूपी अग्नि का) ताप (उन्हें) नहीं लगता (तात्पर्य यह है कि सांसारिक व्यक्तियों की बुद्धि परमात्मा के भय से विहीन होती है)। हे नानक मनमुखों का बोलना व्यर्थ होता है। उन्हें उपदेश (देना) व्यर्थ है और दुआ देनी भी व्यर्थ है ॥ ३ ॥ १ ॥

[२]

डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ। सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ ॥
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ। जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ ॥१॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु। डरि डरि डरणा मन का सोरु ॥१॥ रहाउ ॥
न जीउ मरै न डूबै तरै। जिनि किछु कीआ सो किछु करै ॥
हुकमे आवै हुकमे जाइ। आगै पाछै हुकमि समाइ ॥२॥
हंसु हेतु आसा असमानु। तिसु विचि भूख बहुतु नैसानु।
भउ खाणा पीणा आधारु। विणु खाधे मरि होहि गवार ॥३॥
जिसका कोइ कोई कोइ कोइ। सभु को तेरा तू सभना का सोइ।
जा कै जीअ जंत धनु मालु। नानक आखणु बिखमु बीचारु ॥४॥२॥

(परमात्मा के) डर में (वास्तविक) घर की (प्राप्ति होती है) और (हृदय रूपी) घर में ऐसा डर (आ बसता है) जिस डर से अन्य डर भग जाते हैं। वह डर कैसा है जिस डर से और डर समाप्त हो जाते हैं ? (हे प्रभु) तुम्हारे बिना और कोई स्थान नहीं है। (हे परमात्मा) जो कुछ भी (संसार में) बरत रहा है, वह सब तेरी इच्छा से ही है ॥ १ ॥

(यदि परमात्मा के भय के अतिरिक्त) अन्य डर हो तो डरना चाहिये। किसी और डर के डर से डरना मन का द्वन्द्व (शोर) है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जीव न मरता है न डूबता है (वह) मुक्त (हो जाता है)। जिस (प्रभु ने) (सब) कुछ किया है, वही (सब) कुछ करता है। (परमात्मा के) हुक्म से ही (जीव) आता है (उत्पन्न होता है) और उसी के हुक्म से जाता है (इस संसार से विदा होता है)। (जीव) आगे-पीछे हुक्म में ही समा जाता है ॥ २ ॥

हिंसा, मोह, आशा और अहंकार [असमान—किसी को अपने समान न समझना अहंकार]—(जिस व्यक्ति में) बसते हैं उसमें (विकारों की) भूख नदी के प्रवाहवत प्रबल है। (परमात्मा से) भय करना ही उसका भोजन है (और परमात्मा का) आधार लेना ही उसका जल है। बिना (भय का) भोजन किए (मनुष्य) गंवार होकर मर जाता है ॥ ३ ॥

जिसका कोई होता है, उसका कोई ही कोई होता है (तात्पर्य यह कि हर एक का हर कोई नहीं होता) पर (हे हरी) तू सब का है और सब तेरे हैं। हे नानक जिसके जीव जन्तु तथा धन और माल है उस प्रभु के सम्बन्ध में कथन करना बड़ा कठिन विचार है ॥ ४ ॥ २ ॥

निवास होता है)। (हरि) आप ही बनजारा है और आप ही (सौदा बन कर) शुभ
हे नानक (गुरु के द्वारा प्राप्त प्रभु का) नाम ही (शिष्य को) सँवारने वाला है ॥ ४ ॥

[६]

गउड़ी

जातो जाइ कहा ते आवै। कह उपजै कह जाइ समावै।
किउ बाधिओ किउ मुकतो पावै। किउ अबिनासी सहजि समावै ॥१॥
नामु रिदै अम्रितु मुखि नामु। नरहर नामु नरहर निहकामु ॥१॥ रहाउ ॥
सहजे आवै सहजे जाइ। मन ते उपजै मन माहि समाइ ॥
गुरमुखि मुकतो बंधु न पाइ। सबदु बीचारि छुटै हरिनाइ ॥२॥
तरवर पंखी बहु निसि बासु। सुख दुखीआ मनि मोह विणासु।
साझ बिहाग तकहि आगासु। दहदिसि धावहि करम लिखिआसु ॥ ॥
नाम संजोगी गोइलि थाटु। काम क्रोध फूटै बिखु माटु ॥
बिनु वखर सूनो घरु हाटु। गुर मिलि खोले बजर कपाट ॥४॥
साधु मिलै पूरब संजोग। सचि रहसे पूरे हरि लोग ॥
मनु तनु दे लै सहजि सुभाइ। नानक तिन कै लागउ पाइ ॥५॥६॥

जन्म धारण करनेवाला और मरनेवाला (जीव) कहाँ से आता है (उत्पन्न होता है)? (यह जीव) कहाँ से उत्पन्न होता है और कहाँ समा जाता है? (यह) किस प्रकार बाँधा जाता है और किस प्रकार मुक्ति पाता है? (यह) किस प्रकार सहज अविनाशी (स्वरूप परमात्मा में) लीन होता है? ॥ १ ॥

हृदय में (स्थित) नाम तथा मुख में (स्थित) नाम अमृत (सदृश) है। (जो) नृसिंह (परमात्मा) (का नाम जपता है), (वह) नृसिंह— परमात्मा का (रूप होकर) निष्काम (हो जाता है) ॥ १ ॥

(जीव) सहज ही आता है और सहज ही जाता है। मन (के संकल्पों-विकल्पों के अनुसार) जीव उत्पन्न होता है और (उनके नाश हो जाने पर परमात्मा में) लीन हो जाता है। गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) मुक्त हो जाता है (और फिर) बन्धन में नहीं पड़ता। (गुरु के) शब्द पर विचार कर, परमात्मा का नाम (जप कर) (साधक सांसारिक बन्धनों से) मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

(संसार रूपी) वृक्ष पर बहुत से (जीव रूपी) पक्षी रात के समय आकर निवास करते हैं। मन के (मोह के कारण कोई) सुखी होते हैं और कोई दुःखी होते हैं, (इस प्रकार) नष्ट (होते रहते हैं)। संध्या के पश्चात् (रात बीतने पर) दिन उदय होने पर (फिर) आकाश की ओर (पक्षी) ताकने लगते हैं (इस प्रकार अपने) कर्म के लेख अनुसार (वे) दसों दिशाओं में दौड़ने लगते हैं ॥ ३ ॥

(जो) नाम के संयोगी हैं (वे इस संसार को) गोचारणभूमि वाले स्थान (के सदृश) (क्षणभंगुर समझते हैं)। उनके काम-क्रोध के विष का मटका फूट जाता है। बिना (नाम

रूपी) सौदे के घर और हाट सूना रहता है। (हे साधक) गुरु से मिलो (वही वज्रकपाट के) वज्र-कपाट खोलता है ॥ ४ ॥

पूर्व के संयोगानुसार साधु मिलते हैं। (जो) सत्य में समन्वित होते हैं, (वे ही) हरि के पूर्ण भक्त हैं। (अपना) तन और मन सौंप कर, स्वाभाविक ही (परमात्मा को) प्राप्त कर लेते हैं। नानक कहते हैं (कि ऐसे भक्तों) के चरणों में (मैं) पड़ता हूँ ॥ ५ ॥ ६ ॥

[७]

काम क्रोधु माइआ महि चीतु । झूठ विकारि जागै हित चीतु ।
पूंजी पाप लोभ की कीतु । तरु तारी मनि नामु सुचीतु ॥१॥
वाहु वाहु साचे मै तेरी टेक । हउ पापी तू निरमलु एक ॥१॥ रहाउ ॥
अगनि पाणी बोलै भड़वाउ । जिहवा इंद्री एकु सुआउ ॥
दिसटि विकारी नाही भउ भाउ । आपु मारे ता पाए नाउ ॥२॥
सबदि मरै फिरि मरणु न होइ । बिनु मूए किउ पूरा होइ ।
परपंचि विआपि रहिआ मनु दोइ । थिरु नाराइणु करे सु होइ ॥३॥
बोहिथि चड़उ जा आवै वारु । ठाके बोहिथ दरगह मार ।
सचु सालाही धनु गुर दुआरु । नानक दरि घरि एककारु ॥ ४ ॥७॥

(विषयासक्त मनुष्य का) चित्त काम क्रोध और माया में ही (लगा रहता है)। झूठ और विकार में ही (उसका) मोह वाला चित्त जगता रहता है। (उसने) पाप और लोभ की पूँजी (एकत्र) की है। (साधक) मन में पवित्र नाम रख कर (स्वयं तरता है (और दूसरों को भी) तार देता है ॥१॥

हे सत्य (परमात्मा) तू धन्य है मुझे तेरा ही सहारा है। मैं पापी हूँ तू ही एक पवित्र है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आग और पानी (के संयोग से) प्राण भड़भड़ कर बोलता है (तात्पर्य यह कि जीव आग और पानी के बल पर भला और बुरा बोलता है)। जिह्वा (आदि ज्ञानेन्द्रियों) में एक एक (पृथक पृथक) रस है। विकार-युक्त दृष्टि होने के कारण न (परमात्मा का) भय है (और न) प्रेम। (यदि कोई) अपनेपन (अहंभाव) को मार दे (तो उसे) नाम की प्राप्ति होती है ॥२॥

(यदि कोई गुरु के) शब्द में मरता है, (तो उसका) फिर मरना नहीं होता। बिना मरे (कोई भी) पूर्ण नहीं हो सकता। द्वैत-युक्त मन में प्रपंच व्याप्त हो रहा है, (इसमे वह सदैव चंचल बना रहता है)। (यदि) नारायण (इसे) स्थिर करता है, (तभी यह मन) स्थिर होता है ॥ ३ ॥

मैं (संसार-सागर से पार होने के निमित्त) (नाम रूपी) जहाज पर (तभी) चढ़ सकता हूँ, जब मेरी बारी आवे (अर्थात् जब उपयुक्त अवसर प्राप्त हो)। (जो जहाज पर चढ़ने से) रोके गए हैं (परमात्मा के) दरबार पर (उनपर) मार पड़ती है। गुरु का द्वार धन्य है, (जहाँ पर मैं) सत्य (हरी) की स्तुति करता हूँ। हे नानक दरवाजे (पर और) घर (में) एकंकार (एक हरी ही) (दिखाई पड़ता है)। (तात्पर्य यह कि भीतर और बाहर सर्वत्र परमात्मा ही दृष्टिगोचर होता है) ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

उलटिओ कमलु ब्रहमु बीचारि । अमृत धार गगनि दस दुआरि ॥
त्रिभवणु बेधिआ आपि मुरारि ॥ १ ॥

रे मन मेरे भरमु न कीजै । मनि मानिऐ अमृत रसु पीजै ॥१॥ रहाउ ॥
जनमु जीति मरणि मनु मानिआ । आपि मूआ मनु मन ते जानिआ ॥
नजरि भई घरु घर ते जानिआ ॥ २ ॥

जतु सतु तीरथु मजनु नामि । अधिक बिथारु करउ किसु कामि ॥
नर नाराइण अंतरजामि ॥ ३ ॥

आन मनउ तउ पर घर जाउ । किसु जाचउ नाही को थाउ ॥
नानक गुरमति सहजि समाउ ॥ ४ ॥ ८ ॥

ब्रह्म-विचार करने से (जो) (हृदय रूपी) कमल (अधोमुखी था) वह उलट कर (सीधा) हो गया। ब्रह्मरंध्र में (स्थित) दशम द्वार से अमृत की धार (चूने लगी)। त्रिभुवन में मुरारि (परमात्मा) स्वयं ही व्याप्त है ॥ १ ॥

अरे मेरे मन भ्रम मत करो—संशय-विपर्यय में मत पड़ो। (जब) मन (परमात्मा को) अमृत-रस पीता है, (तभी) मानता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जीवित ही) मर कर जन्म (मरण को जीत लिया (और) मन (भलीभाँति) मान गया (शान्त हो गया)। अहंकार के मरने पर (मलिन) मन (ज्योतिर्मय) मन के द्वारा जान लिया गया। (परमात्मा की) कृपा हो जाने पर एक घर दूसरे घर के द्वारा जान लिया गया ॥ २ ॥

इन्द्रिय-निग्रह सत्याचरण तीर्थादिकों का स्नान नाम में ही है। (यदि) और अधिक विस्तार करूँ तो वह किस काम का ? नर न नारायण ही अंतर्यामी (भाव से स्थित है, वह घट घट की हाल जानता है ॥ ३ ॥

(यदि) दूसरे को मानूँ, तो द्वैत-भाव में रहना होगा। (अतएव मैं) किससे याचना करूँ, कोई भी स्थान नहीं है ? हे नानक गुरु की शिक्षा द्वारा सहजावस्था में समाहित हो जाया जाय ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

सतिगुरु मिलै सु मरणु दिखाए । मरण रहण रसु अंतरि भाए ॥
गरबु निवारि गगनपुरु पाए ॥ १ ॥
मरणु लिखाइ आए नही रहणा । हरि जपि जापि रहणु हरि सरणा ॥१॥ रहाउ ॥
सतिगुरु मिलै त दुबिधा भागै । कमलु बिगासि मनु हरि प्रभ लागै ॥
जीवतु मरै महा रसु आगै ॥ २ ॥
सतिगुरि मिलिऐ सच संजमि सूचा । गुर की पउड़ी ऊचो ऊचा ॥
करमि मिलै जम का भउ मूचा ॥ ३ ॥

गुरि मिलिऐ मिलि अंकि समाइआ। करि किरपा घरु महलु दिखाइआ॥
नानक हउमै मारि मिलाइआ॥ ४॥ ९॥

(यदि) सद्गुरु मिल जाए (तो) वह (जीवित अवस्था में ही) मरने का (ढंग) सिखलाता है। (जीवितावस्था में) मरने (वाले भाव) को रहनी से हृदय में बड़ा आनन्द आता है। (ऐसा व्यक्ति) गर्व का निवारण करके ब्रह्मरंध्र में स्थित दशम द्वार (गगनपुर) को प्राप्त करता है॥ १॥

(परमात्मा के घर से तो पहले ही) मरने को लिखा कर (इस संसार में जीव) आए हैं, (अतएव यहाँ किसी को भी) नहीं रहना है। हरि का जप जपने से हरि की शरण में रहनी (प्राप्त होती है)॥ १॥ रहाउ॥

(यदि) सद्गुरु मिलता है (तो मन की) दुविधा दूर हो जाती है और (हृदय रूपी) कमल विकसित हो जाता है तथा मन प्रभु हरी (के चरणों में) लग जाता है। (सद्गुरु की प्राप्ति एवं प्रभु के चरणों में अनुराग से) (साधक शिष्य इस संसार में) जीवितावस्था में मरने का (सुख पाता है) और (मरने से जाने पर) आगे (परलोक में भी उसे परम आनन्द (प्राप्त होता है)॥ २॥

सद्गुरु के मिलने पर सत्य और संयम (की रहनी से शिष्य) पवित्र होता है। (वह) गुरु की (शिक्षा रूपी) सीढ़ी पर चढ़कर उच्च से उच्चतर (होता है)। (जो ईश्वर की) कृपा से (परमात्मा अथवा सद्गुरु से) मिलते हैं उनका यम-भय दूर जाता है॥ ३॥

गुरु के मिलने पर (साधक शिष्य परमात्मा के) अंक (गोदी) में समा जाता है। (सद्गुरु) कृपा करके (शिष्य को अपने हृदय रूपी) घर में ही (परमात्मा का) महल दिखा देता है। हे नानक (सद्गुरु शिष्य के) अहंकार को मार कर (परमात्मा से) मिला देता है॥ ४॥ ९॥

[विशेष —उपर्युक्त सबद में 'समाइआ दिखाइआ और मिलाइआ शब्द भूतकाल की क्रिया के हैं। किन्तु इनका प्रयोग वर्तमान काल को दिखाने के लिए किया गया है।]

[१०]

किरतु पइआ नह मेटै कोइ। किआ जाणा किआ आगै होइ॥
जो तिसु भाणा सोई हूआ। अवरु न करणै वाला दूआ॥ १॥

ना जाणा करम केवड तेरी दाति। करमु धरमु तेरे नाम की जाति॥१॥ रहाउ॥

तू एवडु दाता देवणहारु। तोटि नाही तुधु भगति भंडार॥
कीआ गरबु न आवै रासि। जीउ पिंडु सभु तेरै पासि॥ २॥

तू मारि जीवालहि बखसि मिलाइ। जिउ भावी तिउ नामु जपाइ॥
तू दाना बीना साचा सिरि मेरै। गुरमति देइ भरोसै तेरै॥ ३॥

तन महि मैलु नाही मनु राता। गुर बचनी सचु सबदि पछाता॥
तेरा ताणु नाम की वडिआई। नानक रहणा भगति सरणाई॥ ४॥ १०॥

(पूर्व जन्मों के किए हुए कर्मों के) स्वाभाविक संस्कार (जो) पड़ गए हैं उन्हें कोई नहीं मेट सकता। (मैं) क्या जानूँ कि आगे क्या होगा? जो (कुछ) (परमात्मा) को अच्छा लगा है वही हुआ है कोई और दूसरा करनेवाला (कर्ता) नहीं है ॥ १ ॥

(मैं) नहीं जानता (कि हमारे) कर्म कितने महान् हैं (और उनकी अपेक्षा) तेरे दान कितने महान् हैं, (तात्पर्य यह कि हम लोगों के तुच्छ कर्मों की अपेक्षा तेरे दान न मालूम कितने महान् हैं)। (हे प्रभु) सारे कर्म धर्म तेरे नाम की उत्पत्ति हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तू इतना बड़ा देने वाला दाता है कि तेरी भक्ति के भण्डार में किसी प्रकार की कमी नहीं (आती)। गर्व करने से (परमात्मा रूपी) राशि पल्ले नहीं पड़ती। (प्रभु) जीव और (उनके) शरीर सब से तेरे ही पास हैं (तेरे ही वशीभूत हैं)॥ २ ॥

(हे प्रभु) तू ही मारता है और (तू ही) जिलाता है (तू ही) क्षमा करता है (और अपने में) मिला लेता है, जिस प्रकार तुझे अच्छा लगता है, उसी प्रकार (तू) अपना नाम (साधकों से) जपाता है। हे सच्चे (प्रभु), तू ज्ञाता है द्रष्टा है और मेरे सिर के ऊपर है। गुरु की शिक्षा के द्वारा तू अपने में भरोसा देता है ॥ ३ ॥

(यदि) शरीर में मल (स्थिति) है, (तो) मन (परमात्मा में) अनुरक्त नहीं होता अथवा (यदि शरीर में मल नहीं है तो मन (परमात्मा में) अनुरक्त हो जाता है। गुरु के वचनों एवं उसके सच्चे शब्द द्वारा (परमात्मा) पहचाना जाता है। नाम की महत्ता ही तेरी शक्ति है। हे नानक भक्त का रहना (परमात्मा की शरण में ही) होता है। ४ ॥ १ ॥

[११]

जिनि अकथु कहाइआ अपिओ पिआइआ। अनभै विसरे नामि समाइआ ॥१॥

किआ डरीऐ डरु डरहि समाना। पूरे गुर कै सबदि पछाना ॥१॥ रहाउ ॥

जिसु नर रामु रिदै हरि रासि। सहजि सुभाइ मिले साबासि ॥२॥

जाहि सवारै साझ बिआल। इत उत मनमुख बाधे काल ॥३॥

अहिनिसि रामु रिदै से पूरे। नानक राम मिले भ्रम दूरे ॥४॥१७॥

जिस गुरु ने अकथनीय (परमात्मा के सम्बन्ध में) बतलाया है, (उसी ने) (उस परमात्मा के गुण का) अमृत भी पिलाया है। (नाम रूपी) अमृत पीने से दूसरे भय विस्मृत हो गए हैं और (साधक) नाम में (पूर्ण रूप) से लीन हो गया है १ ॥

अब क्या डरा जाय (क्योंकि) अन्य (सांसारिक) डर (परमात्मा के) डर में लीन हो गए? पूर्ण गुरु के शब्द द्वारा (वह परमात्मा) पहचान लिया गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिस मनुष्य के हृदय में राम (स्थित है) (अपार) राशि हरी (स्थित है), (वह) सहज भाव से (परमात्मा में) मिल कर (एक हो जाता है), (वह) धन्य है ॥ २ ॥

जिन व्यक्तियों को (परमात्मा) सन्ध्या-सवेरे देख-रेख करता है (वे इतने भी उसकी महिमा को न जानकर) इधर उधर (भटकते रहते हैं)। (ऐसे) मनमुखों को काल (कर्म पाश में) बाँधता है ॥ ३ ॥

(दूसरी ओर) (जिनके) हृदय में अहर्निश राम का निवास है, वे पूर्ण (हो गए हैं)। हे नानक राम के मिलने से (उनके समस्त) भ्रम दूर हो गए हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥

[१२]

जनमि मरै त्रै गुण हितकारु । चारे बेद कथहि आकारु ॥
तीनि अवसथा कहहि वखिआनु । तुरीआवसथा सतिगुर ते हरि जानु ॥१॥
राम भगति गुर सेवा तरणा । बाहुड़ि जनमु न होइहै मरणा ॥१॥ रहाउ ॥
चारि पदारथ कहै सभु कोई । सिम्रिति सासत पंडित मुखि सोई ॥
बिनु गुर अरथु बीचारु न पाइआ । मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ॥२॥
जा कै हिरदै वसिआ हरि सोई । गुरमुखि भगति परापति होई ॥
हरि की भगति मुकति आनंदु । गुरमति पाए परमानंदु ॥३॥
जिनि पाइआ गुरि देखि दिखाइआ । आसा माहि निरासु बुझाइआ ॥
दीनानाथु सरब सुखदाता । नानक हरि चरणी मनु राता ॥४॥ १२॥

(जो) तीनों गुणों से प्रेम करनेवाला है, (वह) जन्मता मरता रहता है। चारों वेद आकार (दृश्यमान) का ही वर्णन करते हैं। (चारों वेद) तीन अवस्थाओं (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) का ही वर्णन करते हैं, [त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन = हे अर्जुन सब वेद संसार को विषय करने वाले अर्थात् प्रकाश करने वाले हैं, अतएव तू तीनों गुणों से रहित हो ॥ श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४५]—तुरीयावस्था (चौथी अवस्था) में सद्गुरु के द्वारा हरी जाना जाता है ॥ १ ॥

राम की भक्ति और गुरु की सेवा से तरा जाता है न फिर जन्म होता और न मरण ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चार पदार्थों का ही सब कथन करते हैं, स्मृतियों शास्त्रों और पंडितों के मुख में यही (बात) है। बिना गुरु के (इन पदार्थों के रहस्य का) अर्थ नहीं जान पड़ता और (वास्तविक अर्थ न जानने के कारण) विचार भी नहीं होता। मुक्ति-पदार्थ तो हरि भक्ति से ही प्राप्त होता है ॥ २ ॥

जिसके हृदय में वह हरी वास करता है, उस गुरुमुख को परमात्मा की भक्ति प्राप्त होती है। हरि की भक्ति मुक्ति और आनन्द (प्रदायिनी) है। गुरु की शिक्षा द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

जिन्होंने (परमात्मा को) पाया है, (उन्होंने गुरु के द्वारा ही पाया है)। गुरु ने (उस परमात्मा को) देख कर (शिष्य को) दिखाया है। (ऐसे साधक ने परमात्मा की प्राप्ति की) आशा में (सारी सांसारिक) निराशाओं को शान्त कर दिया है। नानक कहते हैं (कि जिसका) मन हरी के चरणों में अनुरक्त है (उसे) दीनानाथ (परमात्मा) सारे सुख देता है ॥ ४ ॥ १२ ॥

[१३]

गउड़ी-चेती

अंम्रित काइआ रहै सुखाली बाजी इहु संसारो।
लबु लोभु मुचु कूड़ु कमावहि बहुतु उठावहि भारो॥
तू काइआ मै रुलदी देखी जिउ धर उपरि छारो॥१॥
सुणि सुणि सिख हमारी।
सुक्रितु कीता रहसी मेरे जीअड़े बहुड़ि न आवै वारी॥१॥ रहाउ॥
हउ तुधु आखा मेरी काइआ तू सुणि सिख हमारी।
निंदा चिंदा करहि पराई झूठी लाइतबारी॥
वेलि पराई जोहहि जीअड़े करहि चोरी बुरिआरी॥
हंसु चलिआ तू पिछै रहीअहि छुटड़ि होईअहि नारी॥२॥
तू काइआ रहीअहि सुपनंतरि तुधु किआ करम कमाइआ।
करि चोरी मै जा किछु लीआ ता मनि भला भाइआ॥
हलति न सोभा पलति न ढोई अहिला जनमु गवाइआ॥३॥
हउ खरी दुहेली होई बाबा नानक मेरी बात न पुछै कोई॥१॥ रहाउ॥
ताजी तुरकी सुइना रुपा कपड़ केरे भारा।
किस ही नालि न चले नानक झड़ि झड़ि पए गवारा॥
कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ इकु अम्रितु नामु तुमारा॥४॥
दे दे नीव दिवाल उसारी भसमंदर की ढेरी।
संचे संचि न देई किसही अंधु जाणै सभ मेरी॥
सोइन लंका सोइन माड़ी संपै किसै न केरी॥५॥
सुणि मूरख मन अजाणा। होगु तिसै का भाणा॥१॥ रहाउ॥
साहु हमारा ठाकुरु भारा हम तिस के वणजारे।
जीउ पिंडु सभ रासि तिसै की मारि आपे जीवाले॥६॥१३॥

(अपने प्राण को) अमर मानने वाली हे काया, तू सुखी (बेफिक्र) रहती है (पर एक तू ही नहीं बल्कि) सारा संसार एक खेल है। (तू) निरन्तर ही लालच लोभ तथा बहुत झूठ कमाती रहती है (और इन पापों का) महान् भार (अपने सिर पर) उठाती है। किन्तु हे काया, मैंने तुझे (उसी प्रकार) दुःखी देखा है जिस प्रकार धरती के ऊपर राख (दुःखी रहती है)॥ १॥

मेरी शिक्षा सुनो किए हुए शुभ कर्म ही रहेंगे हे मेरे जीव फिर उन शुभ कर्मों के करने की बारी तो नहीं आयेगी॥ १॥ रहाउ॥

हे मेरी काया मैं तुझसे कह रहा हूँ तू मेरी सुन। तू पराई निन्दा का (सरस) चिन्तन करती रहती है और झूठी चुगली (करती है)। रे जीव तू दूसरा की स्त्री (सदैव पाप दृष्टि से) देखता रहता है और बुराई तथा चोरी करता है। (हे काया) जीवात्मा के चले जाने पर तू यहाँ अकेली ही (पति के द्वारा) छोड़ी हुई स्त्री के समान रह जायगी॥ २॥

हे काया तू स्वप्न में रह जायगी (जरा सोचो) तूने (इस संसार में) क्या कमाया है? मैंने चोरी करके जो कुछ प्राप्त किया, वह मन में बहुत अच्छा लगा। (किन्तु इन कुकर्मों से) न इस लोक में कोई शोभा होती है न परलोक में शरण में मिलती है (इस प्रकार) जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया जाता है ॥ ३ ॥

हे बाबा नानक, मैं बहुत ही दुखी हो रही हूँ मेरी बात भी कोई नहीं पूछता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अरबी और तुर्की घोड़े, सोना, चाँदी तथा कपड़ों के भार किसी के साथ नहीं जाते नानक कहते हैं कि हे गँवार, ये सब यहीं रह जाते हैं। तुम्हारे एक अमृत रूपी नाम से (हे प्रभु) मैंने मिश्री मेवा सब कुछ चख लिया है ॥ ४ ॥

नींव दे दे कर दीवारें बनाईं किन्तु वह भस्म के बने महल की ढेरी भाँति हो गई है। अंधा (मायाच्छन्न व्यक्ति) (सांसारिक वस्तुओं का) संग्रह करता है संग्रह करके किसी को नहीं देता और यह समझता है कि सारी (वस्तुएँ) मेरी हैं। (जब रावण की) सोने की लंका और सोने के महल (नहीं रह गए) (तो समझ लो कि) माया किसी की भी नहीं है ॥ ५ ॥

ऐ मूर्ख (और) अनजान मन सुनो उस (परमात्मा) की मर्जी ही होती है, (अन्य वस्तुएँ नहीं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हमारा साहु बहुत बड़ा मार्मिक है हम उसके बनजारे हैं। जीव और शरीर सब कुछ उसी (साहु की) दी हुई पूँजी है (वह) मार ही मारता है (और आप ही) जिलाता है ॥ ६ ॥ १ ॥ १३ ॥

[१४]

गउड़ी-चेती

अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बारु मना।
मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना ॥१॥
स्रीराम नामा उचरु मना। आगै जमदलु बिखमु घना ॥१॥ रहाउ ॥

उसारि मड़ोली राखै दुआरा भीतरि बैठी साधना ॥
अंम्रित केल करे नित कामणि अवरि लुटेनि सु पंचजना ॥२॥

ढाहि मड़ोली लूटिआ देहुरा साधन पकड़ी एक जना।
जम डंडा गलि संगलु पड़िआ भागि गए से पंच जना ॥३॥

कामणि लोड़ै सुइना रुपा मित्र लुड़ेनि सु खाधाता।
नानक पाप करे तिन कारणि जासी जमपुरि बाधाता ॥४॥२॥१४॥

वे लोग तो पाँच—काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार, हैं, मैं अकेला व्यक्ति हूँ है मेरे मन में (अपने) घर-बार की रक्षा किस प्रकार करूँ? (वे पाँचों) नित्यप्रति मुझे मारते हैं और लूटते हैं, (मैं) जन किसके आगे पुकार करूँ? ॥ १ ॥

हे मन श्री राम नाम का उच्चारण करो। (इस संसार से जाने पर) आगे यम (के दूतों) का बहुत ही भयानक दल है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यह (शरीर रूपी) मठ बनाकर (इसमें दस) दरवाजे रक्खे गए हैं (और इसके भीतर) (जीव रूपी) स्त्री बैठी है। यह (जीव रूपी) स्त्री (अपने को) अमर (मानकर) (नित्य सांसारिक) क्रीड़ा करती रहती है और वे पाँचों ठग (काम, क्रोध लोभ मोह और अहंकार) इसे लूटते रहते हैं ॥ ३ ॥

एक व्यक्ति (मृत्यु) ने आकर (शरीर रूपी) मठ ढहा दिया और देवालय (प्राणों) को लूट लिया (जीव रूपी) स्त्री (मृत्यु द्वारा) अकेली ही पकड़ी गई। (सिर पर) यम के डंडे पड़ने लगे और गले में साँकलें पड़ गई वे पाँचो (ठग)— काम क्रोध लोभ, मोह और अहंकार भग गए।

(लोग) सुंदरी स्त्री सोना चाँदी की कामना करते हैं और मित्रों की तथा खाने-पीने की इच्छा करते हैं। नानक कहते हैं कि उन्हीं कारणों से पाप करते हैं (इसलिए ऐसे व्यक्ति) यमपुरी में बाँधे जायँगे ॥ ४ ॥ २ ॥ १४ ॥

[१५]

गउड़ी-चेती

मुंद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा कांइआ कीजै खिंथाता।
पंच चेले वसि कीजहि रावल इहु मनु कीजै डंडाता ॥१॥

जोग जुगति इव पावसिता।
एकु सबदु दूजा होरु नासति कंद मूलि मनु लावसिता ॥१॥ रहाउ ॥

मूंडि मुंडाइऐ जे गुरु पाईऐ हम गुरु कीनी गंगाता।
त्रिभवण तारणहारु सुआमी एकु न चेतसि अंधाता ॥२॥

करि पट्मबु गली मनु लावसि संसा मूलि न जावसिता।
एकसु चरणी जे चितु लावहि लबि लोभि की धावसिता ॥३॥

जपसि निरंजनु रचसि मना। काहे बोलहि जोगी कपटु घना ॥१॥ रहाउ ॥

काइआ कमली हंसु इआणा मेरी मेरी करत बिहाणीता।
प्रणवति नानकु नागी दाझै फिरि पाछै पछुताणीता ॥४॥३॥१५॥

विशेष — यह पद एक योगी के प्रति कहा गया है। उसे सच्चे योगी बनने की आन्तरिक विधि बताई गई है।

अर्थ —(हे योगी) (बाह्य) मुद्रा (के स्थान पर) आन्तरिक मुद्रा शरीर के भीतर ही धारण करो (मन्द वासनाओं को बेधना आन्तरिक मुद्रा है) (अपने) शरीर को ही कथा बनाओ। हे योगी पंच कामादिकों को अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियों को वशीभूत करो (दृढ़ और विश्वासयुक्त) मन को ही (अपना) डंडा समझो ॥ १ ॥

योग की (वास्तविक) युक्ति इसी प्रकार प्राप्त करोगे। "एक शब्द (ब्रह्म) है, दूसरा और कुछ नहीं है"— इस भावना के बीच मन स्थापित करना ही (योगियों का) कंदमूल (सेवन करना) है, (इसके अतिरिक्त अन्य कन्दमूल की आवश्यकता नहीं है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गंगा के किनारे मूँड़ मुड़ाने से यदि गुरु प्राप्त होता है तो हमने तो (पतित-पावन) गुरु को ही गंगा बनाया है। ऐ अन्धे (विषयान्धजन), त्रिभुवन के तारनेवाले एक मात्र स्वामी को (तू) नहीं चेतता है ॥२॥

यदि चालाकी करके बातों में ही मन लगाते हो तो (इससे) संशय की मूल निवृत्ति नहीं होती। यदि एक परमात्मा के चरणों में (अपना) चित्त लगाते हो तो लालच और लोभ की (ओर) क्यों दौड़ते हो? (तात्पर्य यह कि तुम्हारा मन परमात्मा में नहीं लगता क्योंकि यदि मन लगता होता तो लालच और लोभ समाप्त हो जाते) ॥ ३ ॥

(हे योगी, तू) निरंजन (परमात्मा) का जप कर (तेरा) मन (बिलकुल उसी में) अनुरक्त हो जायगा। ऐ योगी बहुत कपट की बातें क्यों बोलता है? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

शरीर पागल है (और उसमें स्थित) जीव अज्ञानी है; मेरी मेरी कहते हुए (सारी जिन्दगी) व्यतीत हो जाती है। नानक विनय पूर्वक कहते हैं कि (जीवात्मा के निकल जाने पर) यह काया नंगी ही जलाई जाती है फिर पीछे पछताना पड़ता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ १५ ॥

[१६]

गउड़ी-चेती

अउखध मंत्र मूलु मन एकै जे करि दृड़ु चितु कीजै रे।
जनम जनम के पाप करम के काटन हारा लीजै रे ॥१॥

मन एको साहिबु भाई रे।
तेरे तीनि गुणा संसारि समावहि अलखु न लखणा जाई रे ॥१॥ रहाउ ॥

सकर खंडु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उचाई रे।
राति अनेरी सूझसि नाही लजु टूकसि मूसा भाई रे ॥२॥

मनमुखि करहि तेता दुखु लागै गुरमुखि मिलै वडाई रे।
जो तिनि कीआ सोई होआ किरतु न मेटिआ जाई रे ॥३॥

सुभर भरे न होवहि ऊणे जो राते रंगु लाई रे।
तिनकी पंक होवै जे नानकु तउ मूड़ा किछु पाई रे ॥४॥४॥१६॥

हे मन (समस्त) औषधि और मूल मंत्र एक (हरि) ही है (हे मन) जिसे तू चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण कर ले। जन्म-जन्मान्तरों के पाप कर्मों के काटनेवाले (उस हरि) को तू ग्रहण कर ले ॥ १ ॥

अरे मन (मुझे तो) एक साहब ही अच्छा लगा है। जिन तीन गुणों को तू (सब कुछ) मान बैठा है वे तो तुझे केवल संसार तक ही सीमित रखेंगे अलख परमात्मा को नहीं समझ सकेगा ॥१॥ रहाउ ॥

शरीर में माया शर्करा-खण्ड (शक्कर) की भाँति मीठी लगती है हमने तो (इसका) गट्ठर उठा लिया है। अरे भाई (अविद्या रूपी) अँधेरी रात्रि में कुछ सुझाई नहीं पड़ता; (काल रूपी) चूहा (जीवन रूपी) रस्सी को कुतरता जा रहा है ॥ २ ॥

जितना जितना मन के अनुसार कार्य किया जाता है उतना उतना दुःख प्राप्त होता है, गुरु के निर्देशानुसार (कार्य करने से) बड़ाई प्राप्त होती है। जो कुछ (प्रभु) करता है, वही होता है (अन्यथा नहीं) पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों के द्वारा निर्मित संस्कार (किरत) नहीं मेटे जा सकते ॥ ३ ॥

अरे भाई, जो सदासद भरे हैं, वे खाली नहीं होते (इसी प्रकार) जो (परमात्मा के) रंग में (भलीभाँति) रंगे हैं (उन पर कोई और रंग नहीं चढ़ता)। नानक कहते हैं कि ऐ मूढ़ (ऐसे पहुँचे हुए सन्तों के चरणों की) यदि धूल हो जाओ तो तुम कुछ प्राप्त कर सकते हो ॥ ४ ॥ ४ ॥ १६ ॥

[१७]

गउड़ी-चेती

कत की माई बापु कत केरा किदू थावहु हम आए।
अगनि बिंब जल भीतरि निपजे काहे कंमि उपाए ॥१॥
मेरे साहिबा कउणु जाणै गुण तेरे।
कहे न जानी अउगुण मेरे ॥१॥ रहाउ ॥
केते रुख बिरख हम चीने केते पसू उपाए।
केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए ॥२॥
हट पटण बिज मंदर भंनै करि चोरी घरि आवै।
अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै ॥३॥
तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा।
लै कै तकड़ी तोलणि लागा घट ही महि वणजारा ॥४॥
जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे।
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे ॥५॥
जीअड़ा अगनि बराबरि तपै भीतरि वगै काती।
प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुखु होवै दिनु राती ॥६॥५॥१७॥

कौन किसकी माँ है और कौन किसका बाप? और किस स्थान से हम यहाँ (इस संसार में) आए हैं? (माता की) जठराग्नि (और पिता के वीर्य रूप) जल के बुलबुले से (हम) उत्पन्न हुए हैं; हम किस कार्य के लिए उत्पन्न किए गए हैं? ॥ १ ॥

ऐ मेरे साहब तेरे गुणों को कौन जान सकता है? मेरे अवगुणों का कथन नहीं किया जा सकता १ ॥ रहाउ ॥

कितने ही रूख-वृक्षों को हमने पहचाना है (अर्थात् कितनी ही रूख-वृक्ष-योनि में हमने जन्म धारण किया है) कितने ही (बार) पशु-योनियों में उत्पन्न किए गए हैं। कितने ही नाग-कुलों में (हम) आए हैं (जन्म-धारण किए हैं) कितनी बार पक्षी (बनाकर) उड़ाए गए हैं (भाव यह है अनेक बार सर्प एवं पक्षी योनियों में हमने जन्म धारण किया है) ॥ २ ॥

(मनुष्य) हाट नगर और पक्के महल में सेंध लगा कर, चोरी करके (अपने) घर आता है (वह अपनी चोरी छिपाने के लिए) आगे देखता है और पीछे देखता है (कि कोई देख तो नहीं रहा है) (किन्तु ऐ सर्वद्रष्टा) तुमसे (वह अपनी चोरी) कहाँ छिपा सकता है ? ॥ ३ ॥

हमने नवखण्डवाली (पृथ्वी के) अनेक तीर्थ-तट हाट नगर और बाजार देख लिए हैं, (जो कुछ अनेक जन्म जन्मान्तरों में देखा सुना समझा है, उसे कई जन्मों से बनिये जैसे आया हुआ) यह सौदागर तराजू लेकर अपने भीतर तौलने लगा है, (अर्थात् उस परमात्मा की अनन्तता का अनुमान लगाना चाहता है) ॥ ४ ॥

महा सागरों में जितना जल भरा है, उतने ही हमारे अवगुण हैं (हे प्रभु) (मेरे ऊपर) दया कर, कुछ मेहरबानी कर (तू तो) डूबते हुए पत्थरों को तारनेवाला है ॥ ५ ॥

जी में निरन्तर (तृष्णा की) अग्नि जल रही है और भीतर (हृदय) में (कपट की) छुरी चल रही है । नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) हुक्म को पहचानता है उसे अहर्निश सुख प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ ५ ॥ १७ ॥

[१८]

गउड़ी बैरागणि

रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ ।
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ ॥१॥
नामु न जानिआ राम का ॥ मूड़े फिरि पाछै पछुताहि रे ॥१॥ रहाउ ॥

अनता धनु धरणी धरे अनत न चाहिआ जाइ ।
अनत कउ चाहन जो गए से आए अनत गवाइ ॥२॥

आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागठु होइ ।
करमा उपरि निबड़ै जे लोचै सभु कोइ ॥३॥

नानक करणा जिनि कीआ सोई सार करेइ ।
हुकमु न जापी खसम का किसै वडाई देइ ॥४॥१॥१८॥

(मनुष्य) रात्रि सोने में गँवा देता है और दिन खाने-पीने में (इस प्रकार) हीरा के समान (मनुष्य) जीवन (सांसारिक सुखों की) कौड़ी के बदले जा रहा है ॥ १ ॥

(तू ने) राम का नाम नहीं जाना अरे मूढ़ फिर पीछे पछताना पड़ेगा ॥१ ॥रहाउ॥

(लोगों ने) अनन्त धन पृथ्वी में (गाड़ कर) रखा है (किन्तु) अनन्त (परमात्मा की) इच्छा (उनके द्वारा) नहीं की जाती । जो अनन्त (माया) की इच्छा धारण करके गए हैं वे उस अनन्त (परमात्मा) को गँवा कर लौट आए हैं ॥ २ ॥

यदि अपने ही लेने से मिलने लगे तो सभी भाग्यशाली हो जायँ । चाहे कोई कितनी ही इच्छा करे किन्तु निपटारा होता है कर्मों के ऊपर ही । ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि जिस (प्रभु ने सृष्टि-रचना) की है वही इसकी देख-भाल करता है । स्वामी का हुक्म ज्ञात नहीं होता कि वह किसे बड़ाई प्रदान करेगा ॥ ४ ॥१ ॥ १८ ॥

[१९]

गउड़ी बैरागणि

हरणी होवा बनि बसा कंद मूल चुणि खाउ ।
गुर परसादी मेरा सहु मिलै वारि वारि हउ जाउ जीउ ॥१॥
मै बनजारनि राम की । तेरा नामु वखरु वापारु जी ॥१॥रहाउ॥
कोकिल होवा अंबि बसा सहजि सबद बीचारु ।
सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै दरसनि रूपि अपारु ॥२॥
मछुली होवा जलि बसा जीअ जंत सभि सारि ।
उरवारि पारि मेरा सहु वसै हउ मिलउगी बाह पसारि ॥३॥
नागनि होवा धर वसा सबदु वसै भउ जाइ ।
नानक सदा सोहागणी जिन जोती जोति समाइ ॥४॥२॥१९॥

यदि मैं हिरणी होऊँ वन मे निवास करूँ और चुन-चुन कर कन्दमूल खाऊँ फिर भी गुरु की कृपा से (मेरा) प्रियतम मिले तो हे प्रभु, मैं बार-बार बलिहारी हो जाऊँ ॥ १ ॥

मैं राम नाम की बनजारिन हूँ । (हे प्रभु) जी तेरे नाम का सौदा ही मेरा व्यापार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि मैं कोकिल होऊँ और आम्र-वृक्ष पर निवास करूँ फिर भी (मैं) सहज भाव से (गुरु के) शब्द पर विचार करती रहूँ । सहज भाव से ही मेरा प्रियतम मिले और (मैं) उसके अपार रूप का दर्शन (करूँ) ॥ २ ॥

यदि मैं मछली होऊँ और जल में निवास करूँ (तो भी मैं सदैव उसे स्मरण करती रहूँ) जो (प्रभु) समस्त जीव-जन्तुओं की खोज-खबर करता है । मेरा प्रियतम इस पार (इस लोक मे) और उस पार (परलोक में) वास करता है मैं उससे बाँह पसार कर मिलूँगी ॥३॥

यदि मैं नागिन होऊँ और पृथ्वी मे निवास करूँ तो भी (मेरे मन मे) सदैव (गुरु का) शब्द वास करे, (जिससे सांसारिक) भय समाप्त हो जायें । नानक कहते हैं कि वे (स्त्रियाँ) सदैव सुहागिनी हैं जो (परमात्मा की) ज्योति में लीन हैं ॥ ४ ॥ २ ॥ १९ ॥

[२०]

गउड़ी पूरबी दीपकी

१ओं सतिगुर प्रसादि

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरहु सिरजणहारो ॥१॥
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।
हउ वारी जाउ जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥१॥ रहाउ ॥
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ॥
तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥२॥

संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ।
देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥३॥
घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि ।
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि ॥४॥१॥२ ॥

जिस घर में कर्ता पुरुष (परमात्मा) की कीर्ति गाई जाती है और (उसके स्वरूप का) विचार होता है उस घर में सोहिला (यश) का गान करो और सृजनकर्ता का स्मरण करो ॥ १ ॥

तुम मेरे निर्भय (परमात्मा) का सोहिला गाओ । मैं उस सोहिले की बलैया लेता हूँ, जिससे शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नित्य नित्य (परमात्मा द्वारा) जीव संभाले जाते हैं, देनेवाला (प्रभु) सब की देख-रेख करेगा । (ऐ प्रभु) तेरे दान की कीमत नहीं आँकी जा सकती उस दाता (के दानों की) कौन गणना कर सकता है ? ॥ २ ॥

(प्रियतम से मिलने का) संवत् और शुभ दिन लिखा रहता है । हे सज्जनों, आप सभी मिलकर तेल चुआइए और आशीर्वाद दीजिए कि (मेरा अपने) साहिब से मेल हो । [कन्या के अपने पति के घर म प्रवेश करते समय मित्र संबंधी द्वार पर तेल चुआते हैं और सुहाग के गीत गाते हैं] ॥ ३ ॥

ब्याह का बुलावा घर घर म नित्य पहुँचता रहता है [तात्पर्य यह कि नित्य मौत के बुलावे लोगों तक पहुँचते रहते हैं । हमारे आस-पास जो मृत्यु हो रही है यह मानो जीवितों के लिए चेतावनी दी जा रही है कि तुम्हारा भी बुलावा आने ही वाला है] । नानक कहते हैं हमें बुलाने वाले (परमात्मा) का स्मरण करना चाहिए, (क्योंकि) वे दिन (शीघ्रता से) आ रहे हैं ॥ ४ ॥ १ ॥ २ ॥

१ओं सति नामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥
रागु गउडी, महिला १, गउडी गुआरेरी ।

असटपदीआं   [१]

निधि सिधि निरमल नामु बीचारु । पूरन पूरि रहिआ बिखु मारि ॥
त्रिकुटी छूटी बिमल मझारि । गुर की मति जीइ आई कारि ॥ १ ॥
इन बिधि राम रमत मनु मानिआ । गिआन अंजनु गुर सबदि पछानिआ ॥१॥रहाउ॥
इकु सुखु मानिआ सहजि मिलाइआ । निरमल बाणी भरमु चुकाइआ ॥
लाल भए सूहा रंगु माइआ । नदरि भई बिखु ठाकि रहाइआ ॥ २ ॥
उलट भई जीवत मरि जागिआ । सबदि रवे मनु हरि सिउ लागिआ ॥
रसु संग्रहि बिखु परहरि तिआगिआ । भाइ बसे जम का भउ भागिआ ॥ ३ ॥
साद रहे बाद अहंकारा । चितु हरि सिउ राता हुकमि अपारा ॥
जाति रहे पति के आचारा । द्रिसटि भई सुखु आतम धारा ॥ ४ ॥

तुझ बिनु कोइ न देखउ मीतु । किसु सेवउ किसु देवउ चीतु ॥
किसु पूछउ किसु लागउ पाइ । किसु उपदेसि रहा लिव लाइ ॥ ५ ॥

गुर सेवी गुर लागउ पाइ । भगति करी राचउ हरिनाइ ॥
सिखिआ दीखिआ भोजन भाउ । हुकमि संजोगी निजघरि जाउ ॥ ६ ॥

गरब गत सुख आतम धिआना । जोति भई जोती माहि समाना ॥
लिखतु मिटै नही सबदु नीसाना । करता करणा करता जाना ॥ ७ ॥

नह पंडितु नह चतुर सिआना । नह भूलो नह भरमि भुलाना ॥
कथउ न कथनी हुकमु पछाना । नानक गुरमति सहजि समाना ॥ ८ ॥ ॥ १ ॥

(परमात्मा के) निर्मल नाम का विचार ही अष्टसिद्धियाँ और नवनिद्धियाँ हैं। [अष्टसिद्धियाँ निम्नलिखित हैं—१ अणिमा २ महिमा ३ लघिमा ४ गरिमा ५ प्राप्ति ६ प्राकाम्य, ७ ईशत्व, ८ वशीत्व । नव निद्धियाँ निम्नलिखित हैं—१ पद्म (सोना-चाँदी) २ महापद्म हीरे-जवाहर) ३ शंख (सुन्दर भोजन और कपड़े), ४ मकर (शस्त्रविद्या की प्राप्ति तथा राज-दरबार में सम्मान), ५ कच्छप (अन्न-वस्त्र का व्यापार) ६ कुन्द (सोने का व्यापार) मुकुंद (राग आदि ललित कलाओं की प्राप्ति) ८ नील (मोती-मूँगे का व्यापार) तथा ९ खर्व] । जिस मन (माया) को मार कर (केवल) पूर्ण (परमात्मा स्वयं) व्याप्त है । पवित्र (परमात्मा) में लीन होने से (माया की) त्रिगुणात्मक प्रकृति (त्रिकुटी—सत्त्व रजस्, तमस्) समाप्त हो गई है । गुरु का उपदेश आत्मा के निमित्त आवश्यक (सिद्ध हुआ है) ॥ १ ॥

इस विधि राम में रमने से मन मग्न हुआ है । गुरु के शब्द द्वारा ज्ञान का अंजन पहचान लिया गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वास्तविक ज्ञान द्वारा) सहज-पद (परमात्म-पद) से मिला दिया गया हूँ इसीलिए एक (सहज) सुख मान लिया है । (गुरु की) निर्मल वाणी ने (मेरे) भ्रम को दूर कर दिया है । माया के रंग को कुसुम की भाँति लाल जाना है (जो शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाला है), अतएव उसे त्याग कर (परमात्मा के मजीठी) नाम रंग मे रँग हो गया हूँ (जो सदैव एकरस रहता है) । (परमात्मा अथवा गुरु की) कृपा-दृष्टि से (माया का) विष समाप्त होगया है ॥ २ ॥

(जीवन) उल्टा हो गया और जीवित ही (माया की ओर से) मरकर (अपने आत्मिक प्रकाश) मे जग पड़ा । (गुरु के) शब्द में रमण करने लगा और परमात्मा से युक्त हो गया । (परमात्मा के) रस का संग्रह करके (माया का) विष त्याग दिया । (परमात्मा का) प्रेम (मन में) बस गया मन का भय भग गया ॥ ३ ॥

स्वाद, झगड़े और अहंकार समाप्त हो गए । चित्त हरि और उसकी महान् आज्ञा में अनुरक्त हो गया । जाति और लोक-प्रतिष्ठा के निमित्त किए गए सारे आचार समाप्त हो गए । (उसकी) कृपा-दृष्टि हो गई और आत्म-सुख में स्थित हो गया ॥ ४ ॥

(हे प्रभु) तुम्हारे बिना (मैं) (कोई अन्य) मित्र नहीं देखता हूँ । किसकी सेवा करूँ और किसे अपना चित्त दूँ ? किससे पूछूँ (जिज्ञासा करूँ) और किसके पैर लगूँ ? किसके उपदेश द्वारा (परमात्मा में) लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाऊँ ? ॥ ५ ॥

(मैं) गुरु की सेवा करूँगा और गुरु के ही पाँवों में लगूँगा (परमात्मा की) भक्ति करूँगा और हरी के नाम में अनुरक्त हूँगा। (हरि का) प्रेम ही (मेरी) शिक्षा दीक्षा और भोजन है। (उस परमात्मा के) हुक्म से मुक्त होकर अपने आत्म स्वरूप के घर में स्थित हूँगा ॥ ६ ॥

आत्म ध्यान (जनित) सुख में मेरे सारे गर्व दूर हो गए। (मेरे अन्तर्गत) महान् ज्योति प्रकट हो गई (और वह ज्योति परमात्मा की) ज्योति में समा गई। मेरे भाग्य में यदि परमात्मा की प्राप्ति लिखी है तो वह लिखावट मिट नहीं सकती, (इसीलिए) (मेरे ऊपर) धन्य का निशान पड़ा है। कर्ता के कार्य केवल कर्ता (परमात्मा) ही जान सकता है ॥ ७ ॥

मैंने (परमात्मा के) हुक्म को पहचान लिया है, (अतएव) कथनी नहीं कथन करता (अर्थात् मेरी रहनी में मेरी कथनी विलीन हो गई)। न तो मैं अब अपने को पंडित समझता हूँ न चतुर और सयाना ही न तो मैं अब भूलता हूँ और न भ्रम में भटकता हूँ। नानक कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा सहज पद में समा गया हूँ ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

मनु कुंचरु काइआ उदिआनै । गुरु अंकसु सचु सबदु नीसानै ॥
राज दुआरै सोभ सु मानै ॥ १ ॥
चतुराई नह चीनिआ जाइ । बिनु मारे किउ कीमति पाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
घर महि अम्रितु तसकरु लेई । नंनाकारु न कोइ करेई ॥
राखै आपि वडिआई देई ॥ २ ॥
नील अनील अगनि इक ठाई । जलि निवरी गुरि बूझ बुझाई ॥
मनु दे लीआ रहसि गुण गाई ॥ ३ ॥
जैसा घरि बाहरि सो तैसा । बैसि गुफा महि आखउ कैसा ॥
सागरि डूगरि निरभउ ऐसा ॥ ४ ॥
मूए कउ कहु मारे कउनु । निडरे कउ कैसा डरु कवनु ॥
सबदि पछानै तीने भउन ॥ ५ ॥
जिनि कहिआ तिनि कहनु वखानिआ । जिनि बूझिआ तिनि सहजि पछानिआ ॥
देखि बीचारि मेरा मनु मानिआ ॥ ६ ॥
कीरति सूरति मुकति इक नाई । तही निरंजनु रहिआ समाई ॥
निज घरि बिआपि रहिआ निज ठाई ॥ ७ ॥
उसतति करहि केते मुनि प्रीति । तनि मनि सूचै साचु सुचीति ॥
नानक हरि भजु नीता नीति ॥ ८ ॥ २ ॥

मन रूपी हाथी शरीर रूपी उद्यान में (घूमता-फिरता है) गुरु ही (उस हाथी) का अंकुश है। सच्चा शब्द ही उस हाथी का निशान है (राजा-महाराजा के हाथी पर विशेष प्रकार का निशान लगा रहता है)। (परमात्मा रूपी) राजा के दरवाजे पर (वह हाथी) शोभा पाता है ॥ १ ॥

चतुराई से (परमात्मा) नहीं पहचाना जा सकता। बिना (मन को) मारे (हरी की) किस प्रकार कीमत पाई जा सकती है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

घर (शरीर) में ही (परमात्मा रूपी) अमृत रखा हुआ है, (उस अमृत को कामादिक) चोर चुरा रहे हैं। (कोई इन चोरों) को रोकता-थामता भी नहीं। (जो व्यक्ति इस अमृत की चोरी से) रक्षा करता है, उसे (परमात्मा) स्वयं बड़ाई प्रदान करता है ॥ २ ॥

इस तरह और असंख्य (तृष्णा की) अग्नि को एक जगह (हृदय में) एकत्र की (वह) गुरु की शिक्षा द्वारा बुझ गई। (मैं अपना) मन (गुरु को] सौंप कर (परमात्मा से) मिला हूँ (और अब) आनन्दपूर्वक (उसका) गुणगान करता हूँ ॥ ३ ॥

परमात्मा जैसे घर में है, वैसे वह बाहर भी है। गुफा में (अकेले) बैठ कर, मैं (उसका) वर्णन किस प्रकार करूँ ? समुद्रों और पर्वतों—(सभी स्थानों में) वह निर्भय (परमात्मा) एक समान (व्याप्त है) ॥ ४ ॥

(भला) बताओ (जो जीवित ही) मर गया है, उसे कौन मार सकता है ? (जो परमात्मा के डर से) निडर है, उसे किस व्यक्ति का किस प्रकार का डर (लग सकता है) ? (जो गुरु के) शब्द द्वारा (परमात्मा को) पहचानता है, उसे (वह हरी) त्रिभुवन में (व्याप्त) दिखाई पड़ता है ॥ ५ ॥

जो कथन करता है, वह तो यों ही कथन द्वारा ही (उस प्रभु का) वर्णन करता है, (वह वास्तविक अनुभूति से विहीन है, उसका कथन सम्बन्धी ज्ञान पुस्तकज्ञान मात्र है)। किन्तु जिन्होंने (गुरु की शिक्षा) समझ ली है, उन्होंने सहज-पद (चतुर्थ पद निर्वाण पद मोक्ष पद) को पहचान लिया है (उस प्रभु का) दर्शन करके, विचार करके मेरा मन भली भाँति मान गया है (स्थिर हो गया है) ॥ ६ ॥

एक (परमात्मा के) नाम में कीर्ति, सुरति (ध्यान) मोक्ष (सभी कुछ है)। उसी (नाम में) वह निरंजन (माया से रहित हरी) व्याप्त हो रहा है, वह अपने घर से— (अपने स्वरूप में) और अपने स्थान में व्याप्त हो रहा है ॥ ७ ॥

कितने ही मुनिजन प्रेमपूर्वक (उस प्रभु की) स्तुति करते हैं। (जो) तन मन (दोनों से) ही पवित्र है, उनके सुन्दर चित्त में सत्य स्वरूप (परमात्मा) स्थित है। हे नानक नित्य-प्रति (सवेरे ही) हरी का भजन कर ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

गउड़ी गुआरेरी

ना मनु मरै न कारजु होइ। मनु वसि दूता दुरमति दोइ ॥
मनु मानै गुर ते इकु होइ ॥ १ ॥
निरगुण रामु गुणह वसि होइ। आपु निवारि बीचारे सोइ ॥१॥रहाउ॥
मनु भूलो बहु चितै बिकारु। मनु भूलो सिरि आवै भारु ॥
मनु मानै हरि एकंकारु ॥ २ ॥
मनु भूलो माइआ घरि जाइ। कामि बिरूधउ रहै न ठाइ ॥
हरि भजु प्राणी रसन रसाइ ॥ ३ ॥

मैगर हैवर कंचन सुत नारी । बहु चिंता पिड़ चाले हारी ॥
जूऐ खेलणु काची सारी ॥ ४ ॥
संपउ संची भए विकार । हरख सोग उभे दरवारि ॥
सुखु सहजे जपि रिदै मुरारि ॥ ५ ॥
नदरि करे ता मेलि मिलाए । गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए ॥
गुरमुखि नामु पदारथु पाए ॥ ६ ॥
बिनु नावै सभ दूख निवासु । मनमुख मूड़ माइआ चित वासु ॥
गुरमुखि गिआनु धुरि करमि लिखिआसु ॥ ७ ॥
मनु चंचलु धावतु फुनि धावै । साचे सूचे मैलु न भावै ॥
नानक गुरमुखि हरिगुण गावै ॥ ८ ॥ ३ ॥

न तो मन मरता है और न (परमात्मा की प्राप्ति का) कार्य (पूरा) होता है। (यह) मन कामादिक दूतों, खोटी बुद्धि तथा द्वैतभाव के वशीभूत है। (यदि) मन को गुरु द्वारा मनवावे (तो वह परमात्मा के स्मरण से) एक हो जाता है ॥ १ ॥

निर्गुण राम (स्वयं) गुणों के वशीभूत होता है, (अर्थात् निर्गुण राम की प्राप्ति स्वयं गुणों के द्वारा होती है) (जो) आपापन दूर करता है, वही (इस बात का) विचार करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मन (अनेक विषय) विकारों की ओर देख कर भटक जाता है और मन के भटकने से सिर पर (पाप का) बड़ा बोझा लद जाता है। एकंकार हरी (के सान्निध्य में आने से) मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) ॥ २ ॥

मन के भूलने पर घर में (शरीर में) माया चली आती है। काम से मदमस्त होने पर, (मनुष्य अपने वास्तविक स्थान) पर नहीं टिकता। हे प्राणी रसना द्वारा राम से परमात्मा का भजन कर ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ हाथी, श्रेष्ठ घोड़े सोना, पुत्र और नारी (आदि) की बड़ी चिन्ता में (पड़ कर मनुष्य) (जीवन का मदान हार जाता है) (जीवन रूपी) जुए में (वह) कच्ची बाजी खेलता है (अर्थात् जीवन नष्ट कर देता है) ॥ ४ ॥

संपत्ति संग्रह करने से (अनेक) विकार उत्पन्न होते हैं। दुःख सुख (दोनों ही परमात्मा के) दरबार में खड़े रहते हैं। सुख (इसी में है) कि स्वाभाविक ही हृदय में मुरारी (परमात्मा) का नाम जपा जाय ॥ ५ ॥

(यदि परमात्मा) कृपा करता है तो (शिष्य को अपने में मिला लेता है। (उसकी कृपा से ही शिष्य) गुणों का संग्रह करके (गुरु के) शब्द द्वारा अवगुणों को जला डालता है। (इस प्रकार) गुरु द्वारा (शिष्य) नाम रूपी पदार्थ को पा लेता है ॥ ६ ॥

बिना (परमात्मा के) नाम के (मनुष्य के अन्तर्गत) सभी (प्रकार के) दुःखों का निवास रहता है। मूढ़ मनमुख का चित्त माया में ही निवास करता है। पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही यदि (परमात्मा के यहाँ से यह) लिखा हो, तभी गुरु द्वारा ज्ञान (प्राप्त होता है) ॥ ७ ॥

चंचल मन बार-बार (मायिक पदार्थों के पीछे) दौड़ता रहता है। सच्चे और पवित्र परमात्मा को मन अच्छी नहीं लगती (अथवा सच्चे परमात्मा को पवित्र ही अच्छा लगता है, गन्दा नहीं)। हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) परमात्मा का गुणगान करता है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

गउड़ी गुआरेरी

हउमै करतिआ नह सुखु होइ । मनमति झूठी सचा सोइ ॥
सगल बिगूते भावै दोइ । सो कमावै धुरि लिखिआ होइ ॥ १ ॥
ऐसा जगु देखिआ जूआरी । सभि सुख मागै नामु बिसारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
अदिसटु दिसै ता कहिआ जाइ । बिनु देखे कहणा बिरथा जाइ ॥
गुरमुखि दीसै सहजि सुभाइ । सेवा सुरति एक लिव लाइ ॥ २ ॥
सुखु मांगत दुखु आगल होइ । सगल विकारी हारु परोइ ।
एक बिना झूठे मुकति न होइ । करि करि करता देखै सोइ ॥ ३ ॥
त्रिसना अगनि सबदि बुझाए । दूजा भरमु सहजि सुभाए ॥
गुरमती नामु रिदै वसाए । साची बाणी हरिगुण गाए ॥ ४ ॥
तन महि साचो गुरमुखि भाउ । नाम बिना नाही निज ठाउ ॥
प्रेम पराइण प्रीतम राउ । नदरि करे ता बूझै नाउ ॥ ५ ॥
माइआ मोहु सरब जंजाला । मनमुख कुचील कुछित बिकराला ॥
सतिगुरु सेवे चूकै जंजाला । अंम्रित नामु सदा सुखु नाला ॥ ६ ॥
गुरमुखि बूझै एक लिव लाए । निज घरि वासै साचि समाए ॥
जंमणु मरणा ठाकि रहाए । पूरे गुर ते इह मति पाए ॥ ७ ॥
कथनी कथउ न आवै ओरु । गुर पुछि देखिआ नाही दरु होरु ॥
दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ । नानकु नीचु कहै लिव लाइ ॥ ८ ॥ ४ ॥

अहंकार करते रहने से सुख नहीं प्राप्त होता। मन (के द्वारा कल्पित) बुद्धि झूठी है वही (परमात्मा अकेला) सच्चा है। (जितने भी लोग) द्वैतभाव के हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं। पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के अनुसार (जिन्हें परमात्मा) लिख देता है, वही (उसे) प्राप्त करता है ॥ १ ॥

(मैंने) जगत् (के लोगों को) इस प्रकार का जुआड़ी देखा है कि सुख तो सभी कोई माँगते हैं, (किन्तु) नाम भुला देते हैं, (तात्पर्य यह कि सारे सुख नाम के अधीन ही हैं। नाम के बिना जगत् में कोई सुख नहीं है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) अदृश्य है, (यदि वह देखा जाय) तभी उसका (ठीक ठीक से) कथन किया जा सकता है। बिना देखे कथन करना, व्यर्थ होता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) को सहज भाव से (वह परमात्मा) दिखाई पड़ता है (शिष्य) सेवा सुरति (एक एकनिष्ठ ध्यान (लिव) लगा कर (उस परमात्मा का) दर्शन करता है ॥ २ ॥

सुख माँगने पर (और) अधिक दुःख (प्राप्त) होता है। (ऐसा ज्ञात होता है कि सांसारिक लोग) समस्त विकारों की माला गूँथ कर (पहने हैं)। एक (परमात्मा) के बिना समस्त (विकारी मनुष्य) झूठे हैं (उनकी) मुक्ति नहीं होती। कर्त्ता (पुरुष) ही (सृष्टि) रच-रच कर, उसे देखता रहता है॥ ३॥

(गुरु के) शब्द द्वारा (शिष्य) तृष्णा की अग्नि बुझा दे (फिर) द्वैतभाव स्वाभाविक ही (समाप्त हो जायगा)। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) (परमात्मा का) नाम हृदय में बसा लेता है और (उसकी) सच्ची वाणी द्वारा हरि का गुणगान करता है॥ ४॥

जिन्हें गुरु द्वारा प्रेम (उत्पन्न हुआ है) उनके शरीर में सच्चा (परमात्मा) स्थित है)। कोई नाम के बिना अपने (वास्तविक) स्थान में (आत्मस्वरूप में) टिक नहीं (सकता)। प्रीतम राउ (परमात्मा) प्रेम-परायण है, (अर्थात् प्रभु प्रेम के वशीभूत है)॥ ५॥

माया (के प्रति) मोह ही सारे जंजालों का मूल कारण है। (अपने) मन के अनुसार चलनेवाला व्यक्ति गंदा कुत्सित तथा विकराल (भयानक) है। सद्गुरु की सेवा करने से सारे जंजाल समाप्त हो जाते हैं। जिसके मुख) में अमृत-नाम है उसके साथ सदैव हो सुख है॥ ६॥

गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) एक (परमात्मा में) लिव लगा कर, (उसे) समझ लेता है, (फिर) वह अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूप) में रहने लगता है और सच्चे (परमात्मा) में समा जाता है। (ऐसा व्यक्ति) जन्म-मरण को रोक देता है। पूर्ण गुरु से ही यह बुद्धि प्राप्त होती है॥ ७॥

कथन करने से (उस परमात्मा का) अन्त नहीं पाया जाता। गुरु से पूछ कर मैंने देख लिया है कि (परमात्मा को छोड़कर) कोई अन्य द्वार नहीं है। उसी (प्रभु) की आज्ञा और इच्छा से दुःख-सुख (प्राप्त होते हैं)। तुच्छ नानक ध्यान लगाकर यह बात कहता है॥ ८॥ ४॥

[५]

गउड़ी

दूजी माइआ जगत चित वासु। काम क्रोध अहंकार बिनासु॥ १॥
दूजा कउणु कहा नही कोई। सभ महि एकु निरंजनु सोई॥ १॥ रहाउ॥
दूजी दुरमति आखै दोइ। आवै जाइ मरि दूजा होइ॥ २॥
धरणि गगनि नह देखउ दोइ। नारी पुरख सबाई लोइ॥ ३॥
रवि ससि देखउ दीपक उजिआला। सरब निरंतरि प्रीतमु बाला॥ ४॥
करि किरपा मेरा चितु लाइआ। सतिगुरि मो कउ एकु बुझाइआ॥ ५॥
एकु निरंजनु गुरमुखि जाता। दूजा मारि सबदि पछाता॥ ६॥
एको हुकमु वरतै सभ लोई। एकसु ते सभ ओपति होई॥ ७॥
राह दोवै खसमु एको जाणु। गुर कै सबदि हुकमु पछाणु॥ ८॥
सगल रूप वरन मन माही। कहु नानक एको सालाही॥ ९॥ ५॥

माया ने जगत् के चित्त में वास किया है (और भ्रम के कारण जीव के निमित्त) दूसरी (होकर प्रतीत हो रही है)। (माया ने) काम, क्रोध, अहंकार (का वेश धारण किया है)। (ये) विनाश के कारण हैं ॥ १ ॥

दूसरा (मैं) किसे कहूँ जब कोई द्वैत है ही नहीं? सभी (जड़ चेतन) में एक वही निरंजन व्याप्त है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

द्वैतमय वाणी दुर्बुद्धि ही द्वैत कथन करती है। (द्वैत बुद्धि ही के कारण जीव) आता है, जाता है (जन्म धारण करता है और मरता है) और मर कर द्वैत ही हो जाता है ॥ २ ॥

धरती और आकाश में (मुझे कुछ भी) द्वैत नहीं दिखाई पड़ता। नारी पुरुष तथा सभी लोगों (प्राणियों) में (वही अकेला प्रभु दिखाई पड़ रहा है) ॥ ३ ॥

(मैं) सूर्य और चन्द्रमा (प्रभु के) प्रकाशमान दीपक के रूप में देखता हूँ। सदैव नवीन शरीर वाला (मेरा प्रभु) सभी के भीतर (वास कर रहा है) ॥ ४ ॥

(प्रभु ने) कृपा करके मेरा चित्त (अपने में) लगा लिया है। सद्गुरु ने मुझे एक (तत्त्व का) बोध करा दिया है ॥ ५ ॥

गुरु की शिक्षा से (मुझ द्वारा) एक निरंजन जान लिया गया है। द्वैत भाव मार कर शब्द भी पहचाना गया है ॥ ६ ॥

(परमात्मा का) एक हुक्म सारे लोकों में बरत रहा है। एक उसी (परमात्मा से) समस्त उत्पत्ति हुई है ॥ ७ ॥

दो मार्ग हैं [हिन्दू धर्म और मुसलमान मजहब अथवा श्रेयस् (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग और प्रेयस् (सांसारिक ऐश्वर्य-प्राप्ति का) मार्ग] किन्तु इन दोनों के बीच एक परमात्मा को ही जानो। गुरु के शब्द द्वारा (उस प्रभु के) हुक्म को पहचानो ॥ ८ ॥

सारे रूप और रंग मन के ही अंतर्गत हैं। नानक कहते हैं कि एक परमात्मा की ही स्तुति करनी चाहिए ॥ ९ ॥ ५ ॥

[६]

गउड़ी

अधिआतम करम करै ता साचा। मुकति भेदु किआ जाणै काचा ॥ १ ॥
ऐसा जोगी जुगति बीचारै। पंच मारि साचु उरिधारै ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जिस कै अंतरि साचु वसावै। जोग जुगति की कीमति पावै ॥ २ ॥
रवि ससि एको ग्रिहु उदिआनै। करणी कीरति करम समानै ॥ ३ ॥
एक सबद इक भिखिआ मागै। गिआनु धिआनु जुगति सचु जागै ॥ ४ ॥
भै रचि रहै न बाहरि जाइ। कीमति कउणु रहै लिव लाइ ॥ ५ ॥
आपे मेले भरमु चुकाए। गुर परसादि परम पदु पाए ॥ ६ ॥
गुर की सेवा सबदु बीचारु। हउमै मारे करणी सारु ॥ ७ ॥
जप तप संजम पाठ पुराणु। कहु नानक अपर्मपर मानु ॥ ८ ॥ ६ ॥

जो आध्यात्मिक कर्म करता है, वही सच्चा है। झूठा मनुष्य मुक्ति के भेद को क्या जान सकता है? ॥ १ ॥

(वास्तविक) योगी (योग की ठीक) युक्ति विचार करता है। (वह योगी) पंच (कामादिकों) को मारता और (अपने) हृदय में सत्य धारण करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) अपने हृदय में सत्यस्वरूप (परमात्मा को) बसा लेता है (वही) योग की युक्ति की कीमत पाता है ॥ २ ॥

एक (परमात्मा ही) सूर्य, चन्द्रमा और गृह वन में है। परमात्मा के यश की करनी (सच्चे साधक के लिये) कर्मकाण्ड के समान हो गई है ॥ ॥

गुरु के एक शब्द के द्वारा वह (प्रभु के नाम की) भिक्षा माँगता है। सत्य (उसके अन्तर्गत) प्रकाशित हो गया है, (अतएव उसमें) ज्ञान, ध्यान की वृत्तियाँ (सहज भाव से आ गई हैं) ॥ ४ ॥

(ऐसा साधक) (परमात्मा के) भय में अनुरक्त रहता है (उस भय से वह) बाहर नहीं जाता। उसका कौन मूल्य आँक सकता है जो (परमात्मा के) लिव में लीन है? ॥ ५ ॥

(जिसे परमात्मा) अपने में मिलाता है, वह (उसके समस्त) भ्रम समाप्त कर देता है। गुरु की कृपा से (वह) परम गति पाता है ॥ ६ ॥

गुरु की सेवा द्वारा (वह गुरु के) शब्द पर विचार करके अहंकार को मारता है। यही धर्म (सारे कर्मों का) सार (तत्व) है ॥ ७ ॥

नानक कहते हैं कि (सारे) जप तप संयम पुराणों के पाठ (का यही सार है) कि सब से परे हरी को माना जाय ॥ ८ ॥ ९ ॥

[७]

गउड़ी

खिमा गही ब्रतु सील संतोखं । रोगु न बिआपै ना जम दोखं ॥
मुकत भए प्रभ रूप न रेखं ॥ १ ॥
जोगी कउ कैसा डरु होइ । रूखि बिरखि ग्रिहि बाहरि सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

निरभउ जोगी निरंजनु धिआवै । अनदिनु जागै सचि लिव लावै ॥
सो जोगी मेरै मनि भावै ॥ २ ॥

कालु जालु ब्रहम अगनी जारे । जरा मरण गतु गरबु निवारे ॥
आपि तरै पितरी निसतारे ॥ ३ ॥

सतिगुरु सेवे सो जोगी होइ । भै रचि रहै सु निरभउ होइ ॥
जैसा सेवै तैसो होइ ॥ ४ ॥

नर निहकेवल निरभउ नाउ । अनाथह नाथ करे बलि जाउ ।
पुनरपि जनमु नाही गुण गाउ ॥ ५ ॥

अंतरि बाहुरि एको जाणै । गुर के सबदे आपु पछाणै ॥
साचै सबदि दरि नीसाणै ॥ ६ ॥

सबदि मरै तिसु निज घरि वासा । आवै न जावै चूकै आसा ॥
गुर कै सबदि कमलु परगासा ॥ ७ ॥

जो दीसै सो आस निरासा । काम क्रोध बिखु भूख पिआसा ॥
नानक बिरले मिलहि उदासा ॥ ८ ॥ ७ ॥

(जिन्होंने) क्षमा शील संतोष का व्रत ग्रहण कर लिया है, (उन्हें) न तो कोई रोग व्याप्त होता है और न यम का कोप ही (लगता है) । (ऐसे लोग) मुक्त हो जाते हैं और रूप रेखा से रहित प्रभु का स्वरूप ही हो जाते हैं ॥१॥

(भला बताओ) योगी को किस प्रकार भय लग सकता है ? (सर्वात्मक दृष्टि के कारण उसका भयवाली भावना मिट जाती है) । (वह तो) वृक्ष-तृणों तथा घर-बाहर (एक परमात्मा) को ही (देखता है) ॥१॥रहाउ॥

(जो) योगी निर्भय है, (वह) निरंजन (माया से रहित हरी) का ही ध्यान करता है । (वह) प्रति दिन जागता है और सत्य (परमात्मा) में (अपनी) लिव लगाता है । ऐसा योगी मेरे मन को अच्छा लगता है ॥२॥

(ऐसा निर्भय योगी) काल के समूह को (अथवा काल के जाल को) ब्रह्माग्नि की अग्नि में जला डालता है और जरा-मरण विषयक अभिमान का निवारण कर देता है । वह स्वयं तरता ही है (अपने) पितरों का भी निस्तार कर देता है ॥३॥

(जो) सद्गुरु की सेवा करता है, वही योगी होता है । (परमात्मा के) भय में अनुरक्त रहता है वही निर्भय होता है । जिस प्रकार की आराधना करता है, वैसा ही हो जाता है ॥४॥

निष्केवल पुरुष तथा निर्भय नाम वाला (केवल परमात्मा ही है) । (हरी) अनाथों को नाथ बना देता है । (मैं उस पर) बलिहारी होता हूँ । (चूंकि) उसका गुणगान करता हूँ (अतएव) पुनः जन्म नहीं (होता) ॥५॥

गुरु के शब्द द्वारा (शिष्य) अपने आप को पहचानता है (तथा) अन्तर और बाहर एक (परमात्मा) को जानता है । सच्चे शब्द के द्वारा (परमात्मा के) दरवाजे पर (साधक को) निशान पड़ता है (अर्थात् वह प्रतिष्ठित होता है) ॥६॥

(जो गुरु के) शब्द में मरता है वह अपने (वास्तविक) घर में (आत्मस्वरूप में) निवास करता है । वह न आता है न जाता है (न जन्म धारण करता है और न मरता है), (उसकी समस्त) आशाएँ समाप्त हो जाती हैं । गुरु के शब्द द्वारा (उसका हृदय रूपी) कमल प्रकाशित हो जाता है ॥७॥

जो भी (व्यक्ति इस संसार में) दिखाई पड़ता है वह (या तो) आशा (में है) या निराशा (में है) काम-क्रोध का विष तथा भूख-प्यास (का दुःख सभी को है) । हे नानक, कोई विरले ही (माया के आकर्षणों से) विरक्त होते हैं ॥८॥७॥

[८]

गउड़ी

ऐसो दासु मिलै सुखु होई । दुखु विसरै पावै सचु सोई ॥ १ ॥
दरसनु देखि भई मति पूरी । अठसठि मजनु चरनह धूरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
नेत्र संतोखे एक लिव तारा । जिहवा सूची हरिरस सारा ॥ २ ॥
सचु करणी अभ अंतरि सेवा । मनु त्रिपतासिआ अलख अभेवा ॥ ३ ॥
जह जह देखउ तह तह साचा । बिनु बूझे झगरत जगु काचा ॥ ४ ॥
गुरु समझावै सोझी होई । गुरमुखि विरला बूझै कोई ॥ ५ ॥
करि किरपा राखहु रखवाले । बिनु बूझे पसू भए बेताले ॥ ६ ॥
गुरि कहिआ अवरु नही दूजा । किसु कहु देखि करउ अन पूजा ॥ ७ ॥
संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे । आतमु चीनै सु ततु बीचारे ॥ ८ ॥
साचु रिदै सचु प्रेम निवास । प्रणवति नानक हम ताके दास ॥ ९ ॥ ८ ॥

जो (सांसारिक) दुःखों को विस्मृत हो जाता है वही सत्य (परमात्मा) को पाता है। इस प्रकार के (भगवान् के) दास के मिलने से (परम) सुख होता है ॥१॥

(इस प्रकार के दास के) दर्शन करने से बुद्धि पूर्ण हो जाती है। (उनकी) चरण-धूलि अड़सठ (तीर्थों के) मज्जन के समान है ॥१॥रहाउ॥

एक (हरी) में लिव की तारी (लगने से) (उनके) नेत्र संतुष्ट हो गए हैं। हरि रस ग्रहण करने से (धारण करने से) (उनकी) जिह्वा पवित्र हो गई है ॥२॥

आभ्यान्तरिक सेवा ही (ऐसे भक्तों की) सच्ची करणी है। अलख और अभेद (परमात्मा का साक्षात्कार करके) उनके मन तृप्त हो गए हैं ॥३॥

(मैं) जहाँ जहाँ देखता हूँ वहाँ वहाँ (मुझे) सच्चा (परमात्मा ही दिखाई पड़ता है)। कच्चा (अज्ञानी) जगत् बिना समझे ही झगड़ता है ॥४॥

गुरु समझाता है, तभी समझ आती है। कोई विरला ही व्यक्ति गुरु की शिक्षा द्वारा (सत्य परमात्मा को) समझता है ॥५॥

(हे मेरे) रक्षा करनेवाले कृपा करके मेरी रक्षा करो। बिना (प्रभु को) समझे (लोग) पशु और भूत हो जाते हैं ॥६॥

गुरु ने मुझे (यह) कह दिया कि (एक परमात्मा को छोड़कर) कोई और दूसरा नहीं है। मैं किसे देख कर (अब) अन्य पूजा करूँ? ॥७॥

संतों के ही निमित्त प्रभु ने तीनों लोकों को धारण कर रखा है। (जो) आत्मा को पहचानता है, वही तत्व का विचार करता है ॥८॥

सच्चे अंतःकरण में सच्चे प्रेम का निवास होता है। नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि हम ऐसे (भक्तों के) दास हैं ॥९॥८॥

[९]

गउड़ी

हउमै करतु भेखी नही जानिआ । वेद की बिरति पड़ी बहुतानिआ ॥
जह प्रभ तिसरै तहो मनु मानिआ ॥ १ ॥

कुबुद्धि एवं दुराचारी हिरण्यकश्यप के मन पर प्रभु नारायण ने प्रहार किया है। प्रह्लाद के ऊपर कृपा करके प्रभु ने (उसका) उद्धार किया है ।।४।।

मूर्ख और विवेकहीन रावण (अपने अहंभाव में) भूल गया (इस कारण) (उसकी सोने की) लंका उसके (दसों) सिरों सहित लुट गई। बिना सद्गुरु के प्रेम करने से उसका सारा अहंभाव चूर चूर हो गया ।।५।।

सहस्रबाहु मधुकैटभ महिषासुर (आदि अपने अहंभाव एवं गुरु की आज्ञा न मानने के कारण मारे गए), हिरण्यकश्यप को (नृसिंह भगवान् ने अपनी गोदी में) लेकर (अपने) नखों से विध्वंस कर डाला। बिना भक्ति के अभ्यास के (सारे) दैत्य संहार किए गए ।।६।।

जरासंध, कालयमन संहार किए गए। रक्तबीज और कालनेमि भी विदीर्ण किए गए। इस प्रकार (परमात्मा ने) दैत्यों का संहार किया और सन्तों की रक्षा की ।।७।।

प्रभु आप ही सद्गुरु (होकर) शब्द विचारता है और द्वैतभाव (के) दैत्य का संहार करता है। सत्य और भक्ति के कारण (वह) गुरुमुखों को तारता है ।।८।।

दुर्योधन प्रतिष्ठा खोकर डूब गया (नष्ट हो गया)। (अहंभाव की प्रबलता के कारण) उसने राम को कर्ता के रूप में नहीं जाना। (परमात्मा के) भक्तों को जो दुःख देता है वह दुःखी होकर नष्ट हो जाता है ।।९।।

जन्मेजय ने भी गुरु के शब्द पर ध्यान नहीं दिया (अतएव) भ्रमित होकर भटकते रहे (बिना गुरु के शब्द पर विचार किए) कैसे सुख प्राप्त हो सकता है? एक तिलमात्र भूल करने से (जन्मेजय) को बहुत पछताना पड़ा ।।१० ।।

कंस केसी (तथा) चाणूर (में से) किसी ने भी राम को नहीं समझा, (अतः उन लोगों ने) अपनी प्रतिष्ठा गँवा दी (और मारे गए)। बिना जगदीश के कोई भी रक्षा नहीं कर सकता ।। ११ ।।

बिना गुरु के अहंकार नहीं मेटा जा सकता। गुरु के उपदेश द्वारा हरी का नाम (जपने से) धर्म और धैर्य (प्राप्त होते हैं)। नानक कहते हैं कि (परमात्मा का) गुणगान करने से (शिष्य) नाम में मिल जाता है ।। १२ ।। ६ ।।

[१०]

गउड़ी

चोआ चंदन अंकि चड़ावउ । पाट पटंबर पहिरि हढावउ ।।
बिनु हरिनाम कहा सुखु पावउ ।। १ ।।
किआ पहिरउ किआ ओढि दिखावउ । बिनु जगदीस कहा सुखु पावउ ।। १ ।। रहाउ ।
कानी कुंडल गलि मोतीअन की माला । लाल निहाली फूल गुलाला ।।
बिनु जगदीस कहा सुखु भाला ।। २ ।।
नैन सलोनी सुंदर नारी । खोड़ सीगार करै अति पिआरी ।।
बिनु जगदीस भजे नित खुआरी ।। ३ ।।

घर घर महला सेज सुखाली । अहिनिसि फूल बिछावै माली ॥
बिनु हरिनाम सु देह दुखाली ॥ ४ ॥

हैवर गैवर नेजे वाजे । लसकर नेब खवासी पाजे ॥
बिनु जगदीस झूठे दिवाजे ॥ ५ ॥

सिधु कहावउ रिधि सिधि बुलावउ । ताज कुलह सिरि छत्र बनावउ ॥
बिनु जगदीस कहा सचु पावउ ॥ ६ ॥

खानु मलूकु कहावउ राजा । अब तबे कूड़े है पाजा ॥
बिनु गुर सबद न सवरसि काजा ॥ ७ ॥

हउमै ममता गुर सबदि विसारी । गुरमति जानिआ रिदै मुरारी ॥
प्रणवति नानक सरणि तुमारी ॥ ८ ॥ १ ॥

(यदि मैं) शरीर में चोआ-चन्दन मलूँ, मखमल तथा रेशमी वस्त्र पहन कर (इतराता) फिरूँ (फिर भी) बिना हरिनाम के कहाँ सुख पा सकता हूँ ? ॥ १ ॥

मैं क्या पहनूँ और क्या ओढ़ कर (दूसरों को) दिखाऊँ ? बिना जगदीश के कहाँ सुख पा सकता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि मैं) कानों में कुण्डल तथा गले में मोतियों की माला (पहने होऊँ) लाल रजाई (ओढ़े होऊँ) और लाल फूलों से सुसज्जित होऊँ किन्तु बिना जगदीश के कहाँ सुख प्राप्त हो सकता है ?

(यदि) सलोनी आँखोंवाली सुन्दर स्त्री हो और (वह) सोलह शृंगार करके बड़ी सुहावनी (बनी हो) किन्तु बिना जगदीश के भजन के नित्य अपमानित ही होती है ॥ ३ ॥

(यदि) दरवाजे घर और महल (हों) सुखदायिनी सेज हो माली अहर्निश (सेज पर) फूल बिछाता हो किन्तु बिना परमात्मा के नाम का भजन किए (सारे भोगों के भोगने के पश्चात् भी) देह दुःखी ही रहती है ॥ ४ ॥

(यदि) अच्छे घोड़े अच्छे हाथी भाले (तथा विविध प्रकार के) बाजे सेना मालिक चाकरी नौकर (तथा अन्य) दिखावेवाली (वस्तुएँ) हों किन्तु बिना जगदीश के (सभी ऐश्वर्य) झूठे दिखावे मात्र हैं ॥ ५ ॥

(चाहे मैं) सिद्ध कहलाऊँ और ऋद्धियों-सिद्धियों को बुला लूँ सिर पर ताज की टोपी (पहनूँ) तथा छत्र धारण करूँ किन्तु बिना जगदीश के कहाँ सुख पा सकता हूँ ? ॥ ६ ॥

(चाहे) खान बादशाह और राजा कहलाऊँ और 'अबे तबे' (कहकर नौकरों पर हुक्म चलाऊँ) किन्तु यह सब झूठे दिखावे मात्र हैं । बिना गुरु के शब्द के कोई कार्य नहीं सँवरता ॥ ७ ॥

गुरु के शब्द द्वारा (मैंने) अहंभावना और ममता को भुला दिया है तथा गुरु के उपदेश द्वारा मुरारी (परमात्मा) को अपने हृदय में (विराजमान) समझ लिया है । नानक विनय पूर्वक कहते हैं (कि हे प्रभु मैं) तुम्हारी शरण में हूँ ॥ ८ ॥ १ ॥

[११]

गउड़ी

सेवा एक न जानसि अवरे । परपंच बिआधि तिआगै कवरे ॥
भाइ मिलै सचु साचै सचु रे ॥ १ ॥

ऐसा राम भगतु जनु होई । हरिगुण गाइ मिलै मलु धोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ऊंधो कवलु सगल संसारै । दुरमति अगनि जगत परजारै ।
सो उबरै गुर सबदु बीचारै ॥ २ ॥

भ्रिंग पतंगु कुंचर अरु मीना । मिरगु मरै सहि अपुना कीना ॥
त्रिसना राचि ततु नही बीना ॥ ३ ॥

कामु चितै कामणि हितकारी । क्रोधु बिनासै सगल विकारी ॥
पति मति खोवहि नामु विसारी ॥ ४ ॥

परघरि चीतु मनमुखि डोलाइ । गलि जेवरी धंधै लपटाइ ॥
गुरमुखि छूटसि हरिगुण गाइ ॥ ५ ॥

जिउ तनु बिधवा पर कउ देई । कामि दामि चितु पर वसि सेई ॥
बिनु पिर त्रिपति न कबहूं होई ॥ ६ ॥

पड़ि पड़ि पोथी सिम्रिति पाठा । बेद पुराण पड़ै सुणि थाटा ॥
बिनु रस राते मनु बहु नाटा ॥ ७ ॥

जिउ चात्रिक जल प्रेम पिआसा । जिउ मीना जल माहि उलासा ॥
नानक हरि रसु पी त्रिपतासा ॥ ८ ॥ ११ ॥

(जो) एक (परमात्मा) की सेवा करता है, (वह) अन्य को नहीं जानता है कड़वे (सांसारिक) प्रपंचों तथा व्याधियों को त्याग देता है अरे (भाई) (वह) प्रेम से सत्यस्वरूप (परमात्मा) से मिलता है ॥ १ ॥

राम का ऐसा भक्त कोई (विरला ही) जन होता है । (ऐसा भक्त) परमात्मा का गुणगान करके समस्त मलों को धोकर (परमात्मा से) मिल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सारे जगत् का हृदय रूपी कमल उल्टा है (अर्थात् परमात्मा की ओर से विमुख है) । दुर्मति की अग्नि में सारा जगत् जल रहा है । जो गुरु के शब्द पर विचार करता है वही उबर रहा है ॥ २ ॥

भौंरा पतंग हाथी मछली तथा मृग—(ये पाँचों क्रमशः गन्ध रूप स्पर्श रस शब्द के अधीन हैं) ये अपने किए हुए के अनुसार सहन करते हैं और मरते हैं । इन सबों ने तृष्णा में अनुरक्त होकर तत्त्व नहीं पहचाना है ॥ ३ ॥

(जिस प्रकार) स्त्री का प्रेमी का काम का चिन्तन करता है (और जिस प्रकार) विकारपूर्ण क्रोध सारी (वस्तुओं) का नाश कर देता है (उसी प्रकार लोग) नाम को भुला कर प्रतिष्ठा और बुद्धि खो देते हैं ॥ ४ ॥

मनमुख दूसरे की स्त्री मे अपना चित्त डोलाता है (चंचल करता है) (उसके) गले मे रस्सी (पड़ी रहती है) और (सासारिक) धंधों मे लिपटा रहता है। गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का गुण गान करके वह (संसार से) छूटता है ॥ ५ ॥

जिस भांति विधवा (अपना) शरीर दूसरे को दे देती है, वह काम और धन के निमित्त अपना चित्त पराये के वशीभूत करती है (किन्तु) बिना (अपने) पति के उसे कभी तृप्ति नहीं होती (उसी भांति मनमुख मायिक आकर्षणों मे अपना चित्त वशीभूत कर देते हैं, किन्तु बिना परमात्मा के उन्हें शान्ति कभी नहीं प्राप्त होती) ॥ ६ ॥

(सासारिक व्यक्ति) (धार्मिक पुस्तकें) पढ़ते हैं तथा स्मृतियों का पाठ करते हैं (वे) ठाट से वेद-पुराण पढ़ते और सुनते हैं, (किन्तु चित्त-वृत्ति बहिर्मुखी होने के कारण उनके हृदय मे परमात्मा के प्रति अनुराग नहीं उत्पन्न होता), (परन्तु) बिना (परमात्मा के) रस में अनुरक्त हुए, उनका मन (नट की भांति) बहुत नाचता रहता है ॥ ७ ॥

जिस प्रकार चातक (स्वाती नक्षत्र के) जल के प्रेम के निमित्त प्यासा रहता है, और जिस प्रकार मछली जल मे उल्लसित रहती है, (ठीक उसी प्रकार) नानक भी हरि रस को पीकर, तृप्त हो गया है ॥ ८ ॥ ११ ॥

[१२]

गउड़ी

हठु करि मरै न लेखै पावै । वेस करै बहु भसम लगावै ॥
नामु बिसारि बहुरि पछुतावै ॥ १ ॥
तूं मनि हरि जीउ तू मनि सूख । नामु बिसारि सहहि जम दूख ॥१॥ रहाउ ॥
चोआ चंदन अगर कपूरि । माइआ मगनु परम पदु दूरि ॥
नामि बिसारिऐ सभु कूड़ो कूरि ॥ २ ॥
नेजे वाजे तखति सलामु । अधकी त्रिसना विआपै कामु ॥
बिनु हरि जाचे भगति न नामु ॥ ३ ॥
वादि अहंकारि नाही प्रभ मेला । मनु दे पावहि नामु सुहेला ॥
दूजै भाइ अगिआनु दुहेला ॥ ४ ॥
बिनु दम के सउदा नही हाट । बिनु बोहिथ सागर नही वाट ॥
बिनु गुर सेवे घाटे घाटि ॥ ५ ॥
तिस कउ वाहु वाहु जि वाट दिखावै । तिस कउ वाहु वाहु जि सबदि सुणावै ॥
तिस कउ वाहु वाहु जि मेलि मिलावै ॥ ६ ॥
वाहु वाहु तिस कउ जिस का इहु जीउ । गुर सबदी मथि अंम्रितु पीउ ॥
नाम वडाई तुधु भाणै दीउ ॥ ७ ॥
नाम बिना किउ जीवा माइ । अनदिनु जपतु रहउ तेरी सरणाइ ॥
नानक नामि रते पति पाइ ॥ ८ ॥ १२ ॥

(मनमुख) हठ करके मरता है किन्तु (परमात्मा के यहाँ) लेखा नहीं पाता है, (अर्थात् परमात्मा के यहाँ उसकी न तो पूछ होती है और न मन्नना) । (वह) अनेक वेश धारण करता है (और शरीर पर) भस्म लगाता है किन्तु नाम को भुला कर पुन: पछताता है ॥ १ ॥

तू हरी को मन में (बसा) और मन ही म सुख ले । (तू) नाम भुलाकर यम के दुःखों को ही सह रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चोवा चंदन अगर कपूर (इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोग में तू रत है) माया में निमग्न है, अत: परम पद (मोक्ष पद निर्वाण पद चतुर्थ पद) (तुझसे) दूर है । नाम के भुलाने पर सारी (मायिक वस्तुएँ) झूठी हो (सिद्ध होती) है ॥ २ ॥

माल (हों) बाज हों और तख्त (सिंहासन) पर (साम) सलाम (करते हों) । (इन सब सामारिक ऐश्वर्यों से) तृष्णा और अधिक बढ़ती है और काम भी (अधिक) व्याप्त होता है । बिना हरि में भावना किए न भक्ति (मिलती है और न) नाम (की प्राप्ति होती है) ॥ ३ ॥

बातों और अहंकार से प्रभु का मिलाप नहीं होता है । मन देने पर ही सुन्दर नाम की प्राप्ति होती है । द्वैतभाव में दुर्गमी अज्ञान ही (बना रहता है) ॥ ४ ॥

बिना दाम (द्रव्य) के न सौदा (मिलता है) और न हाट ही मिलती है । बिना जहाज के समुद्र में मार्ग नहीं (प्राप्त होता) (और) बिना गुरु की सेवा किए घाटा ही घाटा (रहता है) ॥ ५ ॥

उस धन्य है, धन्य है जो (परमात्मा की प्राप्ति) मार्ग दिखाता है उस धन्य है (जो गुरु का) शब्द सुनाता है और उस धन्य है जो परमात्मा से मेल मिलाता है ॥ ६ ॥

उस धन्य है, धन्य है, जिसका यह जीव है । (मैं) गुरु के शब्द द्वारा मथकर (नाम रूपी) अमृत (निकाल कर) पीता हूँ । नाम की बड़ाई तुम अपनी मर्जी से देते हो ॥ ७ ॥

(हे माँ) नाम के बिना कैसे जीवित रहूँ ? तेरी शरण में रह कर प्रतिदिन (तेरा) नाम जपता रहूँ । हे नानक नाम में रत होने पर ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ १२ ॥

[१३]

गउड़ी

हउमै करत भेखी नही जानिआ । गुरमुखि भगति विरले मनु मानिआ ॥ १ ॥
हउ हउ करत नही सचु पाईऐ । हउमै जाइ परम पदु पाईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
हउमै करि राजे बहु धावहि । हउमै खपहि जनमि मरि आवहि ॥ २ ॥
हउमै निवरै गुर सबदु वीचारै । चंचल मति तिआगै पंच संघारै ॥ ३ ॥
अंतरि साचु सहज घरि आवहि । राजनु जाणि परम गति पावहि ॥ ४ ॥
सचु करणी गुरु भरमु चुकावै । निरभउ के घरि ताड़ी लावै ॥ ५ ॥
हउ हउ करि मरणा किआ पावै । पूरा गुरु भेटे सो झगड़ चुकावै ॥ ६ ॥
जेती है तेती किहु नाही । गुरमुखि गिआन भेटि गुण गाही ॥ ७ ॥
हउमै बंधन बंधि भवावै । नानक राम भगति सुखु पावै ॥ ८ ॥ १३ ॥

(जो) अहंकार करता है, और भेष (बनाता है) (उसके द्वारा परमात्मा) नहीं जाना जाता। गुरु की शिक्षा द्वारा भक्ति (का आश्रय ग्रहण कर) किसी विरले (व्यक्ति) का ही मन मानता है ॥ १ ॥

'मैं मैं' करने से (अहंकार करने से) सत्य (परमात्मा की) प्राप्ति नहीं होती। अहंकार के जाने से ही (नष्ट होने से ही) परम पद (निर्वाण पद, मोक्ष पद) की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अहंकार करने से राजागण (विषयों में) अत्यधिक दौड़ते हैं। (वे) अहंकार में खप जाते हैं, (फिर) जन्म लेते हैं, (फिर) मरते हैं (और फिर जन्म धारण कर संसार में) आते हैं, (इस प्रकार उनके आवागमन का चक्र कुम्हार के चक्र की भाँति निरन्तर चलता रहता है) ॥ २ ॥

गुरु के शब्द पर विचार करने से अहंकार दूर होता है; (शब्द पर विचार करके शिष्य) चंचल बुद्धि का त्याग करता है और पंच कामादिकों का संहार करता है ॥ ३ ॥

(जिसके) अन्तःकरण में सत्य (परमात्मा) है, उसके घर (शरीर में) सहजावस्था आ जाती है। राजा (परमात्मा) को जान कर, वह परम गति पाता है ॥ ४ ॥

(शिष्य की) सत्य करनी करने से, गुरु (उसका) भ्रम दूर कर देता है और निर्भय (परमात्मा के) घर में ताड़ी (गंभीर ध्यान) लगवा देता है ॥ ५ ॥

"मैं मैं" करके मरने से क्या प्राप्त होता है ? (जो) पूर्ण गुरु से मिलता है, वही (आन्तरिक) झगड़ों को समाप्त करता है ॥ ६ ॥

जितनी (भी दृश्यमान वस्तुएँ) हैं, वे (वास्तव में) कुछ भी नहीं हैं (क्षणभंगुर हैं)। (शिष्य) गुरु द्वारा यह ज्ञान प्राप्त कर (प्रभु के) गुण गाते हैं ॥ ७ ॥

अहंकार (जीवों को) बंधन में बाँध कर घुमाता है। नानक कहते हैं कि राम की भक्ति द्वारा (उन्हें) सुख प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ १३ ॥

[१४]

गउड़ी

प्रथमे ब्रहमा कालै घरि आइआ। ब्रहम कमलु पइआलि न पाइआ ॥
आगिआ नही लीनी भरमि भुलाइआ ॥ १ ॥
जो उपजै सो कालि संघारिआ। हम हरि राखे गुर सबदु बीचारिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
माइआ मोहे देवी सभि देवा। कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा ॥
ओहु अबिनासी अलख अभेवा ॥ २ ॥
सुलतान खान बादिसाह नही रहना। नामहु भूलै जम का दुखु सहना ॥
मै धर नामु जिउ राखहु रहना ॥ ३ ॥
चउधरी राजे नही किसै मुकामु। साह मरहि संचहि माइआ दाम ॥
मै धनु दीजै हरि अंम्रित नामु ॥ ४ ॥
रयति महर मुकदम सिकदारै। निहचलु कोइ न दिसै संसारै ॥
अफरिउ कालु कूड़ु सिरि मारै ॥ ५ ॥

निहचलु एकु सचा सचु सोई । जिन करि साजी तिनहि सभ गोई ॥
ओहु गुरमुखि जापै तां पति होई ॥ ६ ॥
काजी सेख भेख फकीरा । वडे कहावहि हउमै तनि पीरा ॥
कालु न छोडै बिनु सतिगुर की धीरा ॥ ७ ॥
कालु जालु जिहवा अरु नैणी । कानी कालु सुणै बिखु बैणी ॥
बिनु सबदै मूठे दिनु रैणी ॥ ८ ॥
हिरदै साचु वसै हरिनाइ । कालु न जोहि सकै गुण गाइ ॥
नानक गुरमुखि सबदि समाइ ॥ ९ ॥ १४ ॥

(अर्थ) प्रथम ब्रह्मा ही काल के घर में प्रविष्ट हुए । ब्रह्म-कमल [विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ कमल जो ब्रह्मा की उत्पत्ति का स्थान है] (का अन्त लगाने के लिए (वे) पाताल लोक में चले गए, किन्तु उसका अन्त नहीं पा सके । (परमात्मा की) आज्ञा नहीं मानी (उसकी इच्छा के अनुसार नहीं रहे, अतः) भ्रम में भटकते रहे ॥ १ ॥

(संसार में) जो भी (प्राणी) उत्पन्न हुआ है, काल ने उसका संहार किया है । गुरु के शब्द पर विचार करने से हरी ने हमारी रक्षा की है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया ने सभी देवी-देवताओं को मोहित कर लिया है । बिना गुरु की सेवा किए काल किसी को भी नहीं छोड़ता । (एक मात्र) वह (परमात्मा ही) अविनाशी अलक्ष्य और अभेद है ॥ २ ॥

सुल्तान खान बादशाह (किसी को भी यहाँ) नहीं रहना है । (परमात्मा के) नाम भूलने पर सभी को यम का दुःख सहना पड़ता है । मेरा आश्रय तो नाम ही है, जैसे (वह) रखे, वैसे ही रहना है ॥ ३ ॥

चौधरी राजा किसी का भी (यहाँ) मुकाम नहीं है । (जो) साहूकार (अत्यधिक) माया और धन संग्रह करते हैं, (वे भी) मर जाते हैं । हे हरी मुझे तो (अपने) अमृत-नाम का ही धन प्रदान करो (क्योंकि हरि-नाम-धन ही अक्षय और शाश्वत है) ॥ ४ ॥

प्रजा मुखिया चौधरी सरदार (आदि में से) इस संसार में कोई निश्चल नहीं दिखाई पड़ता । अमिट काल झूठे के सिर पर चोट मारता है ॥ ५ ॥

वही एक सत्य (परमात्मा) निश्चल और शाश्वत है । जिसके द्वारा सारी सृष्टि रची जाती है उसी के द्वारा (समस्त सृष्टि) लय भी की जाती है । (यदि वह परमात्मा) गुरु की शिक्षा द्वारा जान लिया जाता है (तभी) प्रतिष्ठा होती है ॥ ६ ॥

काजी शेख भेषधारी फकीर बड़े कहाते हैं, (किन्तु) (उनके) शरीर में अहंकार की पीड़ा (बनी हुई है) । बिना सद्गुरु के पद लिए काल किसी को भी नहीं छोड़ता है ॥ ७ ॥

काल रूपी जाल जिह्वा नेत्र (कान, नासिका आदि) के (विषयों के द्वारा लगाया गया है) । विषयुक्त वचनों को सुनना ही कानों का काल है । बिना गुरु के (मनमुख) दिन रात लूटे जा रहे हैं ॥ ८ ॥

(जिसके) हृदय में सत्य हरी का नाम बसता है, परमात्मा का गुणगान करने से काल उसकी ओर देख भी नहीं सकता है । नानक कहते हैं कि गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) शब्द में समा जाता है ॥ ९ ॥ १४ ॥

[१५]

गउड़ी

बोलहि साचु मिथिआ नही राई । चालहि गुरमुखि हुकमि रजाई ॥
रहहि अतीत सचे सरणाई ॥ १ ॥

सच घरि बैसै कालु न जोहै । मनमुख कउ आवत जावत दुखु मोहै ॥ १ ॥ रहाउ ॥
अपिउ पीअउ अकथु कथि रहीऐ । निज घरि बैसि सहज घरु लहीऐ ॥
हरि रसि माते इहु सुखु कहीऐ ॥ २ ॥

गुरमति चाल निहचल नही डोलै । गुरमति साचि सहजि हरि बोलै ॥
पीवै अंम्रितु ततु विरोलै ॥ ३ ॥

सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी । मनु तनु अरपिओ अंतरगति कीनी ॥
गति मिति पाई आतमु चीनी ॥ ४ ॥

भोजनु नामु निरंजन सारु । परम हंसु सचु जोति अपार ॥
जह देखउ तह एकंकारु ॥ ५ ॥

रहै निरालमु एका सचु करणी । परम पदु पाइआ सेवा गुर चरणी ॥
मन ते मनु मानिआ चूकी अहं भ्रमणी ॥ ६ ॥

इन बिधि कउणु कउणु नही तारिआ । हरि जसि संत भगत निसतारिआ ॥
प्रभ पाए हम अवरु न भारिआ ॥ ७ ॥

साच महलि गुरि अलखु लखाइआ । निहचल महलु नही छाइआ माइआ ॥
साचि संतोखे भरमु चुकाइआ ॥ ८ ॥

जिन कै मनि वसिआ सचु सोई । तिन की संगति गुरमुखि होई ॥
नानक साचि नामि मलु खोई ॥ ९ ॥ १५ ॥

(सच्चे भक्त) सत्य ही बोलते हैं राई भर भी मिथ्या नहीं बोलते गुरु के आदेशानुसार (वे) (परमात्मा के) हुक्म और मर्जी में चलते हैं । सत्य (परमात्मा की) शरण में रहकर (वे माया से) अतीत (परे) रहते हैं ॥ ॥

सत्य के घर में बैठने से काल देख भी नहीं सकता । मनमुख को मोह के कारण दुःख है (और वह सदैव) आता-जाता रहता है, (जन्मता मरता रहता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे साधक नाम रूपी) अमृत पियो और अकथनीय (हरी) का कथन करते रहो । अपने (वास्तविक) घर में बैठकर (आत्मस्वरूप में स्थित होकर) सहजावस्था के घर को प्राप्त करो । हरि रस में मतवाले होकर इसी सुख का कथन करो ॥ २ ॥

गुरु द्वारा (दिखाई गई) परमार्थ—रीति में (सच्चा साधक) निश्चल रहता है, (वहाँ से वह तनिक भी) नहीं डोलता । गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य में स्थित होकर (वह) सहज भाव से हरि का उच्चारण करता है । वह तत्त्व को मथ कर अमृत का पान करता है ॥ ३ ॥

(जिसने) सद्गुरु को देखकर उससे दीक्षा ले ली और (अपना) तन मन अर्पित

कर (उस दीक्षा को) हृदयङ्गम कर लिया, (उसने) उसका मति का सिद्धि (अर्थात् परम मति) प्राप्त कर ली और (अपने) आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया ॥ ४ ॥

निरंजन का श्रेष्ठ नाम ही (उत्तम) जीवन है) । (उस गुरमुख रूपी) परमहंस को सत्य स्वरूप (हरी) की ज्योति (दिखाई पड़ती है) । (मैं) जहाँ देखता हूँ, वहीं एकंकार (परमात्मा ही दिखाई पड़ता है) ॥ ५ ॥

(वह परमात्मा) निरालम्ब रहता है (और केवल) एक सत्य ही (उसकी) करनी है । गुरु के चरणों की सेवा द्वारा परम पद प्राप्त कर लिया गया । (ज्योतिर्मय) मन द्वारा (अहंकारी और मलिन) मन मान गया (और) अहंकार (जनित समस्त) भ्रम भी समाप्त हो गए ॥ ६ ॥

इस विधि से कौन-कौन (इस संसार से) नहीं तर गए ? हरि के यश (का गुणगान करके) संतों और भक्तों का निस्तार हो गया । हमने प्रभु को पा लिया है (और) अब औरों को नहीं खोजते ॥ ७ ॥

गुरु ने सच्चे महल में (पवित्र अन्तःकरण में) अलक्ष्य (परमात्मा) का दर्शन करा दिया । (परमात्मा का) महल निश्चल है इसमें माया की छाया (लेशमात्र भी) नहीं है । सच्चे संतोष से (अज्ञान-जनित) भ्रम समाप्त हो गया ॥

जिनके मन में सत्य (परमात्मा) निवास करता है, उनकी संगति में पड़कर (मनमुख) गुरमुख हो जाता है । नानक कहते हैं कि सच्चे नाम से मल का नाश हो जाता है ॥ ८ ॥ १५ ॥

[१६]

गउड़ी

राम नामि चितु रापै जा का । उपजमपि दरसनु कीजै ता का ॥ १ ॥
रामु न जपहु अभागु तुमारा । जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥
गुरमति रामु जपै जनु पूरा । तितु घटि अनहद बाजे तूरा ॥ २ ॥
जो जन राम भगति हरि पिआरि । से प्रभि राखे किरपा धारि ॥ ३ ॥
जिन कै हिरदै हरि हरि सोई । तिन का दरसु परसि सुखु होई ॥ ४ ॥
सरब जीआ महि एको रवै । मनमुखि अहंकारी फिरि जूनी भवै ॥ ५ ॥
सो बूझै जो सतिगुरु पाए । हउमै मारे गुर सबदे पाए ॥ ६ ॥
अरध उरध की संधि किउ जानै । गुरमुखि संधि मिलै मनु मानै ॥ ७ ॥
हम पापी निरगुण कउ गुणु करीऐ । प्रभ होइ दइआलु नानक जन तरीऐ ॥८॥१६॥

जिसका चित्त राम नाम में रंगा है, सूर्योदय होते ही उसका दर्शन करना चाहिए ॥ १ ॥

यदि (तुम) राम नाम नहीं जपते हो (तो यह) तुम्हारा अभाग्य है । हमारा प्रभु, राम युग-युगान्तरों से दाता रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) गुरु की शिक्षा द्वारा राम (को) जपता है (वह) पूर्ण जन है (और) उसके घट में (निरन्तर) अनाहत की तुरही बजती है ॥ २ ॥

जो भक्त राम की भक्ति तथा हरि के प्रेम से (अनुरक्त) है, उसकी प्रभु कृपा करके रक्षा करता है ॥ ३ ॥

जिसके हृदय में वह हरी है, उसके दर्शन और स्पर्श से सुख होता है ॥ ४ ॥

सभी प्राणियों में एक (हरी ही) रम रहा है, किन्तु मनमुख और अहंकारी व्यक्ति इस तथ्य को न जान कर और अहंभाव में निमग्न होकर बार-बार (अनेक) योनियों में भ्रमण करता है ॥ ५ ॥

जिसे सद्गुरु की प्राप्ति होती है, वही (इस तथ्य को) जानता है। गुरु के शब्द द्वारा जो अहंकार को मारता है, वही (परमात्मा को) पाता है ॥ ६ ॥

नीचे और ऊपर की संधि किस प्रकार जानी जाय ? (तात्पर्य यह कि निम्न स्थान वाले जीवात्मा तथा उच्च स्थान वाले परमात्मा के मिलाप का ज्ञान कैसे हो) ? गुरु की शिक्षा द्वारा ही यह सन्धि मिलती है, (अर्थात् जीवात्मा परमात्मा का मिलन होता है), (जिसके फल स्वरूप) मन शान्त हो जाता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु) हम (जैसे) पापी एवं गुणविहीन को गुणी बना दो। हे प्रभु (यदि) तुम दयालु हो जाओगे तो (तुम्हारा) जन नानक तर जायगा ॥ ८ ॥ १६ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥

[१७]

गउड़ी बैरागणि

जिउ गाई कउ गोइली राखहि करि सारा।
अहिनिसि पालहि राखि लेहि आतम सुखु धारा ॥ १ ॥

इत उत राखहु दीन दइआला। तउ सरणागति नदरि निहाला ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जह देखउ तह रवि रहे रखु राखनहारा।
तू दाता भुगता तू है तू प्राण अधारा ॥ २ ॥

किरतु पइआ अध ऊरधी बिनु गिआन बीचारा।
बिनु उपमा जगदीस की बिनसै न अंधिआरा ॥ ३ ॥

जगु बिनसत हम देखिआ लोभे अहंकारा।
गुर सेवा प्रभु पाइआ सचु मुकति दुआरा ॥ ४ ॥

निजघरि महलु अपार को अपरंपरु सोई।
बिनु सबद थिरु को नही बूझै सुखु होई ॥ ५ ॥

किआ लै आइआ ले जाइ किआ फासहि जम जाला।
डोलु बधा कसि जेवरी आकासि पताला ॥ ६ ॥

गुरमति नामु न वीसरै सहजे पति पाईऐ।
अंतरि सबदु निधानु है मिलि आपु गवाईऐ ॥ ७ ॥

नदरि करे प्रभु आपणी गुण अंकि समावै ।
नानक मेलु न चूकई लाहा सचु पावै ॥ ८ ॥ १ ॥ १७ ॥

जिस प्रकार ग्वाला (चरवाहा) पशुओं की खोज खबर लेकर (उनकी) रक्षा करता है, (उसी प्रकार परमात्मा भी जीवों का) पालन करता है, रक्षा करता है और आत्मिक सुख प्रदान करता है ॥ १ ॥

हे दीनदयालु (तू मेरी) यहाँ-वहाँ (इस लोक में, परलोक में) रक्षा कर। (हे प्रभु) (जो) तेरी शरणागति में आता है (वह तेरी) कृपा दृष्टि से निहाल हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं जहाँ देखता हूँ वहीं तू रम रहा है, (हे) रक्षा करने वाले, (मेरी) रक्षा कर। (हे प्रभु) तू ही दाता है तू ही भोक्ता है (और) तू ही प्राणों का आधार है ॥ २ ॥

बिना ज्ञान और विचार के अपने किए कर्मों के अनुसार (मनुष्य) ऊँचे नीचे पड़ता है (अर्थात् स्वर्ग और नरक में जाता है)। बिना जगदीश (परमात्मा) की स्तुति किए (अज्ञान का) अन्धकार नहीं नष्ट होता ॥ ३ ॥

लोभ और अहंकार में हमने जगत् को नष्ट होते हुए देखा है। गुरु की सेवा द्वारा प्रभु तथा मोक्ष का सच्चा दरवाजा प्राप्त कर लिया गया है ॥ ४ ॥

उस अपार (हरी) का महल निजघर (आत्म-स्वरूप) में है। वह सर्वोपरि है। बिना गुरु के शब्द के कोई भी स्थिर नहीं है, (उसी को) समझने से (वास्तविक) सुख होता है ॥ ५ ॥

क्या ले कर आया है, और जब यम के जाल में फँसता है, तो क्या लेकर जायगा? कस कर बाँधी गई रस्सी का डोल (कुएँ में) जैसे आकाश में (ऊपर) जाता है, और कभी पाताल में (नीचे) जाता है, (उसी भाँति यह जीव भी माया की रस्सी में बँधा है शुभ कर्मों से स्वर्गादिक लोकों को जाता है और मन्द कर्मों से नीचे के लोकों में जाता है। उसका आवागमन का चक्र निरन्तर चलता रहता है)।

गुरु की शिक्षा द्वारा (हरी का) नाम नहीं भूलता है, और स्वाभाविक ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है (अथवा स्वाभाविक ही पति-परमात्मा की प्राप्ति होती है)। भीतर ही (गुरु के) शब्द का भाण्डार (परमात्मा) है, आपा को मिटाकर उससे मिलो ॥ ७ ॥

जिसके ऊपर (प्रभु) कृपा-दृष्टि करता है, (वह अपने) गुणों सहित (उसकी) गोदी में समा जाता है। नानक कहते हैं कि यह मिलाप समाप्त नहीं होता (और जिज्ञासु) सच्चा लाभ पा जाता है ॥ ८ ॥ १७ ॥

[१८]

गउड़ी बैरागणि

गुर परसादी बूझि ले तउ होइ निबेरा ।
घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा ॥ १ ॥
बिनु गुर सबद न छूटीऐ देखहु वीचारा ।
जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अंधे अकली बाहरे किआ तिन सिउ कहीऐ।
बिनु गुर पंथु न सूझई कितु बिधि निरबहीऐ ॥ २ ॥

खोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै।
अंधे का नाउ पारखू कली काल विडाणै ॥ ३ ॥

सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सूता।
जीवत कउ मूआ कहै मूए नही रोता ॥ ४ ॥

आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ।
पर की कउ अपुनी कहै अपुनो नही भाइआ ॥ ५ ॥

मीठे कउ कउड़ा कहै कड़ूए कउ मीठा।
राते की निंदा करहि ऐसा कलि महि डीठा ॥ ६ ॥

चेरी की सेवा करहि ठाकुरु नही दीसै।
पोखरु नीरु विरोलीऐ माखनु नही रीसै ॥ ७ ॥

इसु पद जो अरथाइ लेइ सो गुरू हमारा।
नानक चीनै आप कउ सो अपर अपारा ॥ ८ ॥

सभु आपे आपि वरतदा आपे भरमाइआ।
गुर किरपा ते बूझीऐ सभु ब्रहमु समाइआ ॥ ९ ॥ १८ ॥

(यदि) गुरु की कृपा से (कोई) (परमात्मा को) समझ ले तभी समझ समाप्त होता है। जो नाम-निरंजन घट-घट में (प्रत्येक शरीर में) (व्याप्त हो रहा है) वही, मेरा ठाकुर है ॥ १ ॥

बिना गुरु के शब्द (पर आचरण करने से) (कोई भी) नहीं मुक्त होता, (इसे) विचार करके देख लो। बिना गुरु के (यदि) लाखों (शुभ कर्म) किए जायँ (फिर भी) अंधकार ही है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) अंधे हैं, अक्ल से रहित हैं, उनसे क्या कहा जाय? बिना गुरु के (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग नहीं सुझाई पड़ता किस विधि से निर्वाह हो? ॥ २ ॥

खोटी (वस्तु) को तो खरी कहा जाता है और खरी वस्तु का पता ही नहीं है। कलि काल में यह आश्चर्यजनक (बात है) कि अन्धे (अज्ञानी) को लोग पारखी (गुणज्ञ) कहते हैं ॥ ३ ॥

(कलिकाल की आश्चर्यजनक बात यह है कि) (अज्ञान निद्रा में) सोनेवाले को लोग पारखी (गुणज्ञ) कहते हैं (और जो ज्ञान के प्रकाश में) जग रहा है, उसे सोता हुआ कहते हैं जो (आध्यात्मिक ज्योति में) जीवित है, (उसे लोग) मृत कहते हैं (और जो आध्यात्मिक दृष्टि से) मर चुका है, उसके निमित्त नहीं रोते हैं ॥ ४ ॥

(जो परमात्मा के प्रेम की ओर) आया है (उसे) गया-गुजरा कहते हैं, (और जो परमात्म-प्रेम की ओर से) विमुख हो गया है—चला गया है, उसे आया हुआ कहते हैं। पराई वस्तु को (मायिक पदार्थों को) तो अपनी वस्तु कहते हैं और अपनी वस्तु (आत्म स्वरूप धारणा) अच्छी ही नहीं लगती ॥ ५ ॥

(आध्यात्मिक आनन्द को) मीठा है (उसे तो लोग) कड़ुवा कहते हैं (और मायिक पदार्थों के भोग जो वास्तव में) कड़ुवे हैं उन्हें मीठा कहते हैं। कलियुग में ऐसा ही देखा जाता है (कि लोग परमात्मा में) अनुरक्त मनुष्यों की निन्दा करते हैं॥ ६ ॥

(ऐसे सांसारिक लोग) (परमात्मा की) दासी— माया की तो सेवा करते हैं (और सच्चा) ठाकुर (उन्हें) दिखलाई ही नहीं देता। (किन्तु जिस प्रकार) पोखर का जल मथने से मक्खन नहीं निकलता (उसी प्रकार माया की सेवा से सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता) ॥ ७ ॥

इस पद का जो (व्यक्ति) अर्थ निकाल ले वही हमारा गुरु है। नानक कहते हैं कि जो अपने आपको पहचान लेता है, वह परे से भी परे—अनन्त है ॥ ८ ॥

(प्रभु) आप ही सब कुछ है (और) आप ही (सब में) विराजमान है। गुरु की कृपा से ही यह समझा जाता है कि सर्वत्र (जड़ चेतन में) ब्रह्म समाया हुआ (व्याप्त) है ॥९॥२॥१८॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु गुरु प्रसादि ॥

रागु गउड़ी पूरबी, महला १

[१]

छंत

पूरबी छंत

मुंध रैणि दुहेलड़ीआ जीउ नीद न आवै ।
सा धन दुबलीआ जीउ पिर के हावै ॥
धन थीई दुबलि कंत हावै केव नैणी देखए ।
सीगार मिठ रस भोग भोजन सभु झूठु कितै न लेखए ॥
मै मत जोबनि गरबि गाली दुधा थणी न आवए ॥
नानक साधन मिलै मिलाई बिनु पिर नीद न आवए ॥१॥

मुंध निमानड़ीआ जीउ बिनु धनी पिआरे ।
किउ सुखु पावैगी बिनु उरधारे ॥
नाह बिनु घर वासु नाही पुछहु सखी सहेलीआ ।
बिनु नाम प्रीति पिआरु नाही वसहि साचि सुहेलीआ ॥
सचु मनि सजन संतोखि मेला गुरमती सहु जाणिआ ।
नानक नामु न छोडै सा धन नामि सहजि समाणीआ ॥२॥

मिलु सखी सहेलड़ीहो हम पिर रावेहा ।
गुर पुछि लिखउगी जीउ सबदि सनेहा ॥
सबदु साचा गुरि दिखाइआ मनमुखी पछुताणीआ ।
निकसि जातउ रहै असथिरु जामि सचु पछाणिआ ॥

साच की मति सदा नउतन सबदि नेहु नवेलओ ।
नानक नदरी सहजि साचा मिलहु सखी सहेलीहो ॥३॥

मेरी इछ पुनी जीउ हम घरि साजनु आइआ ।
मिलि वर नारी मंगलु गाइआ ॥
गुण गाइ मंगलु प्रेमि रहसी मुंध मनि ओमाहओ ।
साजन रहसे दुसट विआपे साचु जपि सचु लाहओ ॥
कर जोड़ि साधन करै बिनती रैणि दिनु रसि भिनीआ ।
नानक पिरु धन करहि रलीआ इछ मेरी पुंनीआ ॥४॥१॥

ऐ स्त्री (जीव रूपी) स्त्री (प्रभु रूपी) रात्रि में (अत्यन्त) दुःखी है (उसे प्रभु रूपी) निद्रा नहीं आती । ऐ स्त्री प्रियतम के शोक में वह (अत्यन्त) दुःखी हो गई है ।

प्रियतम के शोक में स्त्री दुःखी हो गई है, वह नेत्रों से किस प्रकार देखेगी ? (प्रियतम के बिछुड़ने से) (सारे) शृङ्गार, मीठे रस और भोग भोजन (आदि) सभी कुछ झूठे हैं, (वे सब) किसी भी लेखे में नहीं हैं ।

(वह स्त्री) यौवन में मदमस्त है और (उसने) दूध में (अपने मान को) गला दिया है (उसके) थनों में दूध नहीं आता है । नानक कहते हैं कि वह स्त्री (गुरु के) मिलाने से ही (अपने प्रियतम—परमात्मा से) मिलती है (बिना प्रियतम के मिले) उसे रात्रि में नींद नहीं आती ॥१॥

ऐ स्त्री बिना धनी प्रियतम के स्त्री मान-विहीन रहती है । बिना प्रियतम को हृदय में धारण किए (वह) कैसे सुख पायेगी ? बिना प्रियतम के घर बसता नहीं, (यह बात) सखी-सहेलियों (तात्पर्य यह कि हरिभक्तों) से पूछ लो । बिना (हरी के) नाम के प्रीति-प्यार नहीं हो सकता (जिससे) सत्य में सुखपूर्वक निवास किया जाय ।

सत्य मन तथा संतोष से सज्जन (हरी का) मिलाप होता है गुरु की शिक्षा द्वारा पति (परमात्मा) जाना जाता है । नानक कहते हैं कि (जो स्त्री) नाम नहीं छोड़ती (वह) नाम में सहज भाव से समा जाती है ॥२॥

ऐ सखी और सहेलियों (हमसे) मिलो हम सब प्रियतम के संग रमण करेंगी । ऐ प्रिय (सखियो) गुरु से पूछ कर (उनके) शब्द द्वारा (प्रियतम को) (मैं) संदेश लिखूंगी ।

गुरु ने सच्चे शब्द को दिखा दिया है किन्तु मनमुखी स्त्री (उस शब्द पर आचरण न करने से) पछताती है । जिस समय सत्य पहचान लिया जाता है (उस समय) निकल-भागने वाला (चंचल मन) स्थिर हो जाता है ।

सत्य की बुद्धि सदैव नवीन (बनी रहती) है (गुरु के) शब्द का प्रेम सदैव नया रहता है । नानक कहते हैं कि सच्चा हरी अपनी कृपा द्वारा स्वाभाविक ही मिलता है (अतएव) सखी-सहेलियो (आओ) मिलो ॥ ३ ॥

ऐ स्त्री मेरी इच्छा पूरी हो गई, (मेरा) प्रियतम मेरे घर आ गया है । नारी पति से मिल कर आनन्द के गीत गाती है । स्त्री मंगल का गुणगान कर प्रेम में आनन्दित हो गई है (और उसके मन में) (अत्यधिक) उत्साह है । (मेरा) साजन प्रसन्न हो गया है, दुष्ट

(कामादिक) वश किए गए हैं (इस प्रकार) सत्य (परमात्मा को) जप कर सत्य प्राप्त कर लिया गया है।

(प्रियतम के मिलने पर) स्त्री हाथ जोड़ कर (उससे) प्रार्थना करती है और दिन-रात (वह) रस में भीगी रहती है। नानक कहते हैं कि प्रियतम और पत्नी (परस्पर) आनन्द कर रहे हैं; मेरी इच्छा पूरी हो गई है ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

सुणि नाह प्रभू जीउ एकलड़ी बन माहे ।
किउ धीरैगी नाह बिना प्रभ वेपरवाहे ॥
धन नाह बाझहु रहि न साकै बिखम रैणि घणेरीआ ।
नह नीद आवै प्रेमु भावै सुणि बेनंती मेरीआ ॥
बाझहु पिआरे कोइ न सारे एकलड़ी कुरलाए ।
नानक सा धन मिलै मिलाई बिनु प्रीतम दुखु पाए ॥१॥

पिरि छोडिअड़ी जीउ कवणु मिलावै ।
रसि प्रेमि मिली जीउ सबदि सुहावै ॥
सबदे सुहावै ता पति पावै दीपक देह उजारै ।
सुणि सखी सहेली साचि सुहेली साचे के गुण सारै ॥
सतिगुरि मेली ता पिरि रावी बिगसी अंम्रित बाणी ।
नानक सा धन ता पिरु रावे जा तिस कै मनि भाणी ॥२॥

माइआ मोहणी नीघरीआ जीउ कूड़ि मुठी कूड़िआरे ।
किउ खूलै गल जेवड़ीआ जीउ बिनु गुर अति पिआरे ॥
हरि प्रीति पिआरे सबदि वीचारे तिस ही का सो होवै ।
पुंन दान अनेक नावण किउ अंतर मलु धोवै ॥
नाम बिना गति कोइ न पावै हठि निग्रहि बेबाणै ।
नानक सच घरु सबदि सिञापै दुबिधा महलु कि जाणै ॥३॥

तेरा नामु सचा जीउ सबदु सचा वीचारो ।
तेरा महलु सचा जीउ नामु सचा वापारो ॥
नाम का वापारु मीठा भगति लाहा अनदिनो ।
तिसु बाझु वखरु कोइ न सूझै नामु लेवहु खिनु खिनो ॥
परखि लेखा नदरि साची करमि पूरै पाइआ ।
नानक नामु महा रसु मीठा गुरि पूरै सचु पाइआ ॥४॥२॥

हे नाथ (पति) प्रभु जी सुनिए मैं अकेली हूँ (संसार रूपी) वन में हूँ। बेपरवाह नाथ प्रभु के बिना (स्त्री) कैसे धैर्य धारण करेगी?

(अपने) स्वामी के बिना स्त्री नहीं रह सकती (बिना प्रियतम के) रात्रि बड़ी ही विषम (भयानक होती है)। (तुम्हारे बिना) नींद नहीं आ रही है प्रेम ही अच्छा लगता है (हे प्रभु) मेरी विनती सुनो। बिना प्रियतम के (स्त्री) का कोई भी खोज-खबर नहीं लेता

(वह) अकेली ही रोती है। नानक कहते हैं कि (जो स्त्री) बिना प्रियतम के दुःख पाती है, (अर्थात् प्रियतम के अभाव में दुःख का अनुभव करती है) वह प्रियतम से मिली हो मिलती है ॥ १ ॥

ऐ जी (जीव) प्रियतम द्वारा छोड़ी गई (स्त्री को) कौन (उससे) मिला सकता है ? ऐ जी, (गुरु के) सुहावने शब्द द्वारा (वह) आनन्द पूर्वक प्रेम से मिलती है।

(जब गुरु का) शब्द सुन्दर लगता है तभी (वह) पति (परमात्मा) को पाती है; (गुरु के ज्ञान—) दीपक से उसका शरीर प्रकाशित हो जाता है। (हे) सखी-सहेलियो सुनो (वह स्त्री) सत्य (परमात्मा) द्वारा सुखी हुई है (और वह) सत्य के ही गुणों का स्मरण करती है।

गुरु ने मिलाप कराया है, तो पति (परमात्मा) ने (उसके साथ) रमण किया है (और वह) अमृत वाणी द्वारा विकसित हो गई है। नानक कहते हैं कि वही स्त्री पति (परमात्मा) के साथ रमण करती है, जो उसके मन को अच्छी लगती है ॥ २ ॥

ऐ जी माया (बड़ी ही) मोहिनी है, इसने बिना घर का कर दिया है (अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप से पृथक् कर दिया है)। (जो स्त्री) झूठी है, (वह अपने) झूठ के कारण लूटी गई है। ऐ जी बिना अति प्रिय गुरु के (मिले हुए) गले की रस्सी किस प्रकार खुल सकती है ?

जो हरी की प्रीति और प्यार में (अनुरक्त है) (और गुरु के) शब्द पर विचार करती है उसी का वह (हरी) होता है। अनेक पुण्य दान एवं स्नान करने से आन्तरिक मैल किस प्रकार धुल सकती है ?

नाम के बिना हठ-निग्रह करने और जंगल में रहने से कोई भी (व्यक्ति) मोक्ष नहीं पाता। नानक कहते हैं कि सत्य (परमात्मा का) घर (गुरु के) शब्द द्वारा जाना जाता है; दुविधा के द्वारा (परमात्मा का घर) किस प्रकार जाना जाय ? ॥ ३ ॥

हे (प्रभु) जी तेरा नाम सच्चा है (गुरु के) शब्द द्वारा (उस) सच्चे का विचार किया जाता है। (हे प्रभु) जी तेरा ही महल सच्चा है और तेरे नाम (का स्मरण करना ही) सच्चा व्यापार है।

नाम का व्यापार बड़ा ही मीठा होता है और भक्ति से दिनोदिन लाभ (होता रहता है)। बिना नाम के कोई भी सौदा सुझाई नहीं पड़ता (अतएव) प्रतिक्षण नाम लो।

(मैंने) (परमात्मा की) सच्ची दृष्टि का लेखा पूर्ण भाग्य से (खूब) परख कर प्राप्त किया है। नानक कहते हैं कि नाम का रस अत्यन्त मीठा होता है पूर्ण गुरु से ही सत्य (परमात्मा) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ २ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु आसा, महला १, सबद

महला १, घरु १ सोदरु

सोदरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ।
वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे ॥
केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहार ।
गावन्हि तुधनो पवणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥
गावन्हि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे ।
गावन्हि तुधनो ईसरु ब्रहमा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे ॥
गावन्हि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ।
गावन्हि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावन्हि तुधनो साध बीचारे ॥
गावन्हि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे ।
गावनि तुधनो पंडित पड़े रखीसुर जुगु जुगु बेदा नाले ॥
गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले ।
गावन्हि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावन्हि तुधनो जोध महाबल सूरा गावन्हि तुधनो खाणी चारे ।
गावन्हि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ॥
सेई तुधनो गावन्हि जो तुधु भावन्हि रते तेरे भगत रसाले ।
होरि केते तुधनो गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती जिनसी माइआ जिनि उपाई ।
करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई ।
सो पातिसाहु साहा पति साहिबु नानक रहणु रजाई ॥१॥१॥

सोदर — (हे प्रभु) तुम्हारा दरवाजा कहाँ है, तुम्हारा घर कहाँ है, जहाँ बैठ कर सभी (प्राणी मात्र) की सँभाल करते हो ? (तुम्हारे दरवाजे पर) अनेक असंख्य नाद हो रहे हैं असंख्य बजानेवाले (तुम्हारे गुणों के संगीत विविध राग-रागिनियों में) बजा रहे हैं। असंख्य गायक (तुम्हारे गुणों के गीत) अनन्त राग-रागिनियों द्वारा गा रहे हैं। (हे प्रभु) तुम्हारा यश पवन जल अग्नि सभी गा रहे हैं। धर्मराज भी तुम्हारे दरवाजे पर बैठ कर तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं। चित्रगुप्त जो सभी का पाप-पुण्य लिखते हैं और उनके धर्म के अनुसार विचार करते हैं, वे भी तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं। ईश्वर (शिव) ब्रह्मा देवी, (जो तुम द्वारा) सुन्दर रूप मे बनाए गए हैं, वे भी तुम्हारे यश का गीत गा रहे हैं। देवताओं के साथ इन्द्रासन पर बैठे इन्द्र भी तुम्हारे दरवाजे पर बैठे हुए गुणानुवाद कर रहे हैं। सिद्धगण समाधि के अंतर्गत तुम्हें ही गा रहे हैं; साधु पुरुष भी ध्यान में तुम्हारा ही गुणगान कर रहे हैं। यती, सत्यगुणी संतोषी, महान् शूरवीर तुम्हारे ही यश का गीत गा रहे हैं। युग-युगान्तरों से वेदों के अध्ययन द्वारा पंडित एवं ऋषीश्वर (तुम्हारी ही महत्ता का) गुणगान करते आए हैं। मन को मोहनेवाली स्वर्ग मे अप्सराएँ तथा पाताल मे स्थित कच्छ-मच्छादिक तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं। तुम्हारे उत्पन्न किए हुए (चौदह) रत्न तुम्हारा ही यश गाते हैं, साथ ही अड़सठ तीर्थ भी तुम्हारा गुणगान करते आए हैं। बड़े-बड़े महाबली, शूरवीर, योद्धागण तथा चार प्रकार की योनियों (अंडज जेरज उद्भिज, स्वेदज) के जीव तुम्हारा यश गाते हैं। जिन खण्ड मण्डल ब्रह्माण्ड की रचना करके अपने स्थानों पर धारण कर रखा है, वे भी तुम्हारे गीत गा रहे हैं। जो तुम्हें अच्छे और तुममें अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तुम्हारी यश-गाथा गा रहे हैं। गुरु नानक कहते हैं कि (हे प्रभु) और कितने ही लोग तुम्हारा यशगान कर रहे हैं, वे सब मेरे चित्त में नहीं आ सकते (अनुमान नहीं लगा सकता)। मैं क्या विचार करूँ ? (क्या गणना करूँ ?) वही वह है, सदैव सच है, सच्चा साहब है और सच्चे नाम वाला है। (वही प्रभु) (वर्तमान में) है, (भूत में) था और (भविष्य में) रहेगा जिसने यह अनन्त रचना रचाई है, वह न जा सकता है और न जायगा। जिसने रंग-रंग की भाँति भाँति की माया की वस्तुएँ (जिनसी) उत्पन्न की वह अपनी की हुई रचना और उसकी महत्ता देख कर (प्रसन्न हो रहा है)। जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वह उसी को करता है उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। वह बादशाह बादशाहों का भी बादशाह है। उसकी मर्जी के भीतर ही रहना चाहिए॥ १ ॥ १ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि

चउपदे, घरु २

[१]

सुणि वडा आखै सभ कोई। केवडु वडा डीठा होई॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ। कहणै वाले तेरे रहे समाइ॥१॥
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा।
कोई न जाणै तेरा केता केवडु चीरा॥१॥ रहाउ॥
सभि सुरती मिलि सुरति कमाई। सभ कीमति मिलि कीमति पाई॥

मिमानो मिमानो गुर पुरहाई। वहुरु न आई तेरी तिलु वडिआई ॥२॥
सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआं। सिधा पुरखा कीआ वडिआईआं।
तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ। करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ॥३॥
आखण वाला किआ वेचारा। सिफती भरे तेरे भंडारा ॥
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा। नानक सचु सवारणहारा ॥४॥१॥

सुन-सुन कर सभी लोग (उस प्रभु को) बड़ा कहते हैं। किन्तु वह कितना बड़ा है इसे किसी ने देखा है? (हे प्रभु, तुम्हारी कीमत आँकी नहीं जा सकती और न कही हो जा सकती है। तुम्हारे वर्णन करनेवाले तुम्हीं में समाहित हो जाते हैं ॥ १ ॥

ऐ मेरे साहब तुम महान् हो अत्यन्त गम्भीर हो और गुणों में अथाह हो। यह कोई नहीं जानता कि तुम कितने बड़े हो और तुम्हारा कितना बड़ा विस्तार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सभी श्रुति-जिज्ञासुओं ने मिलकर श्रुति की आराधना की और सभी अनुमान करनेवालों ने (तेरे सम्बन्ध में) अनुमान लगाया। ज्ञानियों ध्यानियों और गुरुओं के गुरु आदि ने (तेरी महत्ता के सम्बन्ध में कथन किया किन्तु) तेरे बड़प्पन का तिल मात्र भी कथन न कर सके ॥ २ ॥

सारे सत्यगुण सारे तप और समस्त शुभ गुण तथा सिद्ध पुरुषों की महिमाएं (चाहे कितनी बड़ी क्यों न हों किन्तु वास्तविक) सिद्धि तुम्हारे बिना किसी ने नहीं पाई। (परमात्मा की) कृपा द्वारा (सिद्धि) प्राप्त होती है (और इस प्राप्ति को) कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥

(तुम्हारे ऐश्वर्य के सम्बन्ध में) कथन करनेवाला बेचारा कथन ही क्या कर सकता है? तुम्हारे भाण्डार प्रशंसा से भरे हैं। जिसे तुम देते हो उसमें किसी का क्या चारा हो सकता है? नानक कहते हैं कि सत्य (परमात्मा) (सभी चीजों) संवारनेवाला है ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

आखा जीवा विसरै मरि जाउ। आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख। तितु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥१॥
सो किउ विसरै मेरी माइ। साचा साहिबु साचै नाइ ॥१॥रहाउ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई। आखि थके कीमति नही पाई।
जे सभि मिलि कै आखण पाहि। वडा न होवै घाटि न जाइ ॥२॥
ना ओहु मरै न होवै सोगु। देदा रहै न चूकै भोगु ॥
गुणु एहो होरु नाही कोइ। ना को होआ ना को होइ ॥३॥
जेवडु आपि तेवड तेरी दाति। जिनि दिनु करि कै कीती राति ॥
खसमु विसारहि ते कमजाति। नानक नावै बाझु सनाति ॥४॥२॥

यदि मैं (नाम) जपता हूँ तो जीवित रहता हूँ यदि नाम भूलता हूँ तो मर जाता हूँ। सच्चे नाम का कहना (स्मरण करना लेना) कठिन है। यदि सच्चे नाम की भूख (चाहत) की लगती है और उस भूख को तृप्ति करता है, तो उसके सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

ऐ मेरी माँ तो फिर (उस परमात्मा को) मैं कैसे भूल सकता हूँ ? वह मालिक सच्चा है और उसका नाम भी सच्चा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

उसके नाम की तिल भर बड़ाई करने के लिए (लोग) कथन कर करके थक गए, किन्तु उसकी कीमत का अनुमान नहीं लगा सके। यदि सब लोग मिल कर उसका वर्णन करने लगें तो भी (उनके वर्णन से) न वह बड़ा होगा न कम होगा ॥ २ ॥

न तो वह (परमात्मा) मरता है और न उसे कोई शोक ही होता है। वह (सदैव) देता ही रहता है, किन्तु उसके दिए हुए भोग कभी समाप्त नहीं होते। उसकी विशेषता यह है कि उसके बिना और कोई नहीं है, न कोई हुआ है और न होगा ॥ ३ ॥

(हे परमात्मा) जितने बड़े तुम हो उतनी ही बड़ी तुम्हारी देनें भी हैं। जिस परमात्मा ने दिन बनाया है उसी ने रात्रि भी निर्मित की है, (वह सर्व शक्तिमान है। वह 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं' करने में समर्थ है)। ऐसे परमात्मा को जो भुलाते हैं, वे नीच जाति के हैं। नानक कहते हैं कि नाम के बिना (लोग) नीच हैं ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

जे दरि मांगतु कूक करे महली खसमु सुणे ।
भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ ॥१॥
जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे ॥१॥ रहाउ ॥
आपि कराए आपि करेइ । आपि उलाम्हे चिति धरेइ ॥
जा तू करणहारु करतारु । किआ मुहताजी किआ संसारु ॥२॥
आपि उपाए आपे देइ । आपे दुरमति मनहि करेइ ॥
गुर परसादि वसै मनि आइ । दुखु अन्हेरा विचहु जाइ ॥३॥
साचु पिआरा आपि करेइ । अवरी कउ साचु न देइ ॥
जे किसै देइ वखाणै नानकु आगै पूछ न लेइ ॥४॥३॥

यदि कोई याचक बनकर (परमात्मा के दरवाजे पर पुकार करे, तो (उसकी पुकार) पति (परमात्मा) (अपने) महल में (अवश्य सुनता है। (हे प्रभु) चाहे (तू) उसे धैर्य धारण कराये चाहे धक्के दे, (किन्तु तू) अकेले ही बड़ाई देता है ॥ १ ॥

(सभी में) परमात्मा की ज्योति समझो, किसी की जाति न पूछो, क्योंकि आगे (परलोक में) कोई भी जाति नहीं है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(प्रभु) स्वयं ही कराता है और स्वयं ही (वस्तुओं का निर्माण) करता है। आप ही उलाहना देता है (और आप ही) चित्त में धारण करता है (सुनता है)। यदि (हे प्रभु) तुम करने वाले और करतार हो (और इसे कोई भलीभाँति समझता है) तो (उसके लिये) (किसी अन्य व्यक्ति की) क्या मुहताजी है और (उसके लिए) संसार क्या है ? ॥ २ ॥

(ऐ प्रभु, तुम) स्वयं ही उत्पन्न करते हो और स्वयं ही देते हो तुम स्वयं ही दुर्बुद्धि दूर करते हो। (हे भगवान् यदि) (तुम) गुरु की कृपा से मन में आकार बसते हो, तो भीतर से दुःख और अन्धकार (अज्ञान) चले जाते हैं ॥ ३ ॥

वह आप ही सत्य को प्यारा (बना) कर (दिखाता है) [तात्पर्य यह कि वह स्वयं ही कृपा करे तो सत्य जैसी विषम वस्तु प्यारी लगती है]। और कइयों को (वह परमात्मा) सत्य नहीं भी देता है। नानक कहते हैं कि यदि किसी को (परमात्मा) (सत्य) प्रदान भी करता है, तो आगे (परलोक में) उससे कोई कुछ नहीं करता (लेखा नहीं माँगता) ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

ताल मदीरे घट के घाट । दोलक दुनीआ वाजहि वाज ।
नारदु नाचै कलि का भाउ । जती सती कह राखहि पाउ ॥१॥
नानक नाम विटहु कुरबाणु । अंधी दुनीआ साहिबु जाणु ॥१॥
गुरू पासहु फिरि चेला खाइ । तामि परीति वसै घरि आइ ॥
जे सउ वर्हिआ जीवणु खाणु । खसम पछाणै सो दिनु परवाणु ॥२॥
दरसनि देखिऐ दइआ न होइ । लए दिते विणु रहै न कोइ ॥
राजा निआउ करे हथि होइ । कहै खुदाइ न मानै कोइ ॥३॥
माणस मूरति नानकु नामु । करणी कुता दरि फुरमानु ॥
गुर परसादि जाणै मिहमानु । ता किछु दरगह पावै मानु ॥४॥४॥

मन के संकल्प-विकल्प [घट के घाट = मन के रास्ते अथवा तात्पर्य यह कि मन के संकल्प-विकल्प] हैं और दुनिया ढोलक है—ये बाजे बज रहे हैं। नारद (रूपी मन) नाच रहा है—यही कलियुग का भाव है। (भला बताओ) यती-सती किधर पैर रखें ? ॥ १ ॥

नानक तो नाम के ऊपर कुरबान है। (ऐ) अन्धी दुनिया साहब (परमात्मा) को जानो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गुरु के पास (यदि) चेला फिरकर (उल्टा) उसी का (गुरु का ही) खावे, ऐसी प्रीति के कारण (गुरु के घर में) आकर बसे और (इसी प्रकार) सौ वर्ष तक रहे तथा भोजन करे, (पर सब व्यर्थ ही है)। (जिस दिन वह) पति (परमात्मा को) पहचाने वही दिन प्रामाणिक (दिन) है ॥ २ ॥

(किसी के) दर्शन (मात्र से) (किसी के ऊपर) दया नहीं होती। बिना लिए-दिए कोई भी नहीं रहता। (यदि कुछ देने को) हाथ में हो (तभी) राजा न्याय करता है। खुदा कहते (तो सभी) हैं, (लेकिन) मानता कोई भी नहीं (तात्पर्य यह कि जीभ से सभी खुदा कहते हैं, किन्तु दिल से कोई भी नहीं मानता) ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं (कि कलियुग के सारे) (मनुष्यों) के नाम मानव (मूर्ति) मनुष्यों के हैं (किन्तु) करनी कुत्तों की है (जो) दरवाजे पर (लोभ के कारण) (खड़े ही) आज्ञा मानता है। (यदि) गुरु की कृपा से (साधक संसार में अपने को) मेहमान समझे तभी (परमात्मा के) दरवाजे पर कुछ मान मिल सकता है ॥ ४ ॥ ॥ ४ ॥

[५]

जेता सबदु सुरति धुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी ।
तू आपे रसना आपे बसना अवरु न दूजा कहउ माई ॥१॥

साहिबु मेरा एको है। एको है भाई एको है ॥१॥ रहाउ ॥
आपे मारे आपे छोडै आपे लेवै देइ। आपे वेखै आपे विगसै आपे नदरि करेइ ॥२॥
जो किछु करणा सो करि रहिआ अवरु न करणा जाई।
जैसा वरतै तैसो कहीऐ सभ तेरी वडिआई ॥३॥
कलि कलवाली माइआ मदु मीठा मनु मतवाला पीवतु रहै।
आपे रूप करे बहु भांतीं नानकु बपुड़ा एव कहै ॥४॥५॥

(हे प्रभु) जितने भी (इस संसार के) शब्द हैं, वे सब (तेरी) चित्तवृत्ति (सुरति) की ध्वनि हैं (तथा) संसार में जितने भी रूप हैं वे सब तेरी काया है। (हे हरी) तू ही बौम है, और तू ही बास लेनेवाली (नासिका) है हे माँ (मैं) कहता हूँ और कोई दूसरा नहीं है ॥ १ ॥

मेरा साहब एक है, एक है (अरे) भाई (वह) एक है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(साहब) आप ही मारता है, आप ही छोड़ता है आप ही लेता है और आप ही देता है आप ही देखता है आप ही विकसित होता है और आप ही कृपा करता है ॥ २ ॥

जो कुछ करने (योग्य) था वह सब (तूने ही) किया है (अब) और कुछ नहीं किया जा सकता। जैसा (तू) है, वैसा ही कहा जाता है, (हे प्रभु) सब तेरी ही महिमा है ॥ ३ ॥

कलियुग ही शराब पिलानेवाली—कलवारिन है, माया ही मीठी मदिरा है और मन ही इसे पीकर मतवाला होता है। बेचारा नानक कहता है (कि हरी हो) अनेक भाँति के रूप धारण करता है (वही कलवारिन है, वही शराब है, वही पीने वाला है वही नशा है और वही खुमारी है) ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

वाजा मति पखाउज भाउ। होइ अनंदु सदा मनि चाउ ॥
एहा भगति एहो तप ताउ। इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ ॥१॥
पूरे ताल जाणै सालाह। होरु नचणा खुसीआ मन माह ॥१॥ रहाउ ॥
सतु संतोखु वजहि दुइ ताल। पैरी वाजा सदा निहाल ॥
रागु नादु नही दूजा भाउ। इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ ॥२॥
भउ फेरी होवै मन चीति। बहदिआ उठदिआ नीता नीति ॥
लेटणि लेटि जाणै तनु सुआहु। इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ ॥३॥
सिख सभा दीखिआ का भाउ। गुरमुखि सुणणा साचा नाउ ॥
नानक आखणु वेरा वेर। इतु रंगि नाचहु रखि रखि पैर ॥४॥६॥

बुद्धि बाजा (संगीत) है प्रेम पखावज है। (इन दोनों के संयोग से—शुद्ध बुद्धि एवं प्रेम के सामंजस्य से) सदैव आनन्द होता है और मन में उत्साह (बना रहता है)। यही भक्ति है और यही तपस्या है। इसी रंग में (ठीक ठीक) पैर रख कर नाचो ॥ १ ॥

(परमात्मा की) स्तुति (करना) जान, (वो यही) पूरे ताल का जानना है; और नाचना केवल मन की खुशी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सत्य और संतोष (धारण करना) ही तालों का बजना है। सदा प्रसन्न रहना ही पैरों का बाजा (घुंघरू) है। द्वैत भाव का न होना ही राग और नाद है। इसी रंग में (ठीक ठीक) पर रम कर नाचो ॥ २ ॥

मन और चित्त में (हरी का) भय होना ही नृत्य की फेरी और बार-बार का (नृत्य में) उठना-बैठना है। शरीर को भस्म समझना ही—यही (पृथ्वी पर) लेट कर (नृत्य में दण्डवत प्रदर्शित करने का भाव है)। इसी रंग में (ठीक ठीक) पर रम कर नाचो ॥ ३ ॥

सिक्ख-सभा में (जाना ही) मस्तक की शिक्षा से प्रेम करना है। नानक कहते हैं कि गुरु द्वारा सच्चे नाम को सुनना, यही नाचने की बार-बार की टेक है। इसी रंग में (ठीक ठीक) पर रम कर नाचो ॥ ४ ॥ ६ ॥

[७]

पउणु उपाइ धरी सभ धरती जल अगनी का बंधु कीआ।
अंधुलै दहसिरि मूंडु कटाइआ रावणु मारि किआ वडा भइआ ॥१॥
किआ उपमा तेरी आखी जाइ। तू सरबे पूरि रहिआ लिव लाइ ॥१॥रहाउ॥
जीअ उपाइ जुगति हथि कीनी काली नथि किआ वडा भइआ।
किसु तूं पुरखु जोरू कउणु कहीऐ सरब निरंतरि रवि रहिआ ॥२॥
नालि कुटंबु साथि वरदाता ब्रहमा भालण स्रिसटि गइआ।
आगै अंतु न पाइओ ता का कंसु छेदि किआ वडा भइआ ॥३॥
रतन उपाइ धरे खीरु मथिआ होरि भखलाए जि असी कीआ।
कहै नानकु छपै किउ छपिआ एकी एकी वंडि दीआ ॥४॥७॥

(परमात्मा ने) पवन रच कर समस्त पृथ्वी को धारण किया है। और जल अग्नि को एकत्र करके सम्बन्ध स्थापित किया है [*अर्थात् पिता के वीर्य (जल) तथा माता की जठराग्नि (अग्नि) के संयोग से जीवों की उत्पत्ति की है*]। रावण ने अंधा होकर (स्वयं ही) (अपना) सिर कटा दिया (भला बताओ) रावण को मार कर (वह) किस प्रकार बड़ा हो गया ? ॥ १ ॥

तेरी उपमा (तुलना) किस प्रकार कही (वर्णन की) जाय ? तू सर्व-परिपूर्ण है और सभी का ध्यान रखता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जिस परमात्मा ने) (सभी) जीवों को उत्पन्न करके (उनके रहने की) युक्ति को (अपने) हाथों में रक्खी है, वह कालीय (नाग) को नाथ कर किस प्रकार बड़ा हो गया ? किसका तू पति है और कौन तेरी स्त्री कही जाती है ? (तू तो) सभी में निरन्तर रम रहा है ॥ २ ॥

ब्रह्मा का कुटुम्ब अथवा जन्म-स्थान कमल-नाल है, वह कमल-नाल वरदाता (विष्णु की नाभि) से (संयुक्त है) (उस कमल-नाल के मार्ग से) ब्रह्मा सृष्टि (अपनी उत्पत्ति का मूल-स्थान) का पता लगाने गये किन्तु उसका आदि अन्त न पा सके (भला बताओ ऐसा (परमात्मा) कंस को मार कर किस प्रकार बड़ा हो गया ? ॥ ३ ॥

(परमात्मा ने स्वयं ही) क्षीर (समुद्र) मथ कर (चौदह) रत्नों को उत्पन्न कर

रच दिया (किन्तु देवता-दैत्य आदि) बड़बड़ा उठे कि (रत्नों को) हमने (उत्पन्न) किया है। नानक कहते हैं कि वह छिपाने वाला कैसे छिप सकता है जो (अपना दान) प्रत्येक को बाँट देता है ? ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

करम करतूती बेलि बिसथारी रामनामु फलु हूआ ।
तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ ॥१॥
करे वखिआणु जाणै जे कोई । अंम्रितु पीवै सोई ॥१॥ रहाउ ॥
जिन्ह पीआ से मसत भए है तूटे बंधन फाहे ।
जोती जोति समाणी भीतरि ता छोडे माइआ के लाहे ॥२॥
सरब जोति रूपु तेरा देखिआ सगल भवन तेरी माइआ ।
रारै रूपि निरालमु बैठा नदरि करे विचि छाइआ ॥३॥
बीणा सबदु वजावै जोगी दरसनि रूपि अपारा ।
सबदि अनाहदि सो सहु राता नानकु कहै विचारा ॥४॥८॥

(शुभ) कर्मों की बेलि का विस्तार हुआ है और उसमें राम नाम का फल लगा है। (उस राम नाम का) न कोई रूप है और न कोई रेखा (वह) अनाहत रूप में बज रहा (राम नाम का) शब्द निरंजन (हरी) ने प्रकट किया है ॥ १ ॥

(राम नाम की वही) व्याख्या कर सकता है जो उसे जानता हो। (जो राम नाम जानता है) वही अमृत पीता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने (राम नाम का) अमृत पी लिया है, वे (उसी अमृत में) मस्त हो गये हैं, उनके बन्धन की फाँसियाँ कट गई हैं। उनकी आन्तरिक ज्योति के साथ (परमात्मा की) ज्योति मिल गई है और उन्होंने माया के लाभ को त्याग दिया है ॥ १ ॥

तेरा ज्योतिमय रूप सभी में दिखाई पड़ रहा है, सारे लोकों में तेरी ही माया (दिखाई पड़ रही है)। चारों ओर (दृश्यमान) रूपों में (परमात्मा) निर्लेप होकर बैठा है (और माया की) छाया में (स्थित होकर) सभी को देख रहा है ॥ ३ ॥

वह योगी अपार (हरी के) दर्शन और रूप द्वारा शब्द रूपी वीणा को (निरन्तर) बजाता रहता है। नानक यह विचार कर कहते हैं कि वह परमात्मा उस योगी को अनाहत शब्द में रत दीख पड़ता है, (तात्पर्य यह कि गुरु के शब्द द्वारा निरंकार परमात्मा जाना जाता है) ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

मै गुण गला के सिरि भार । गली गला सिरजणहार ॥
खाणा पीणा हसणा बादि । जबु लगु रिदै न आवहि यादि ॥१॥
तउ परवाह केही किआ कीजै । जनमि जनमि किछु लीजी लीजै ॥१॥ रहाउ ॥
मन की मति मतागलु मता । जो किछु बोलिऐ सभु खतो खता ॥
किआ मुहु लै कीचै अरदासि । पापु पुंनु दुइ साखी पासि ॥२॥

जैसा तू करहि तैसा को होइ । तुझ बिनु दूजा नाही कोइ ।

जेही तू मति देहि तेही को पावै । तुधु भावै तिवै चलावै ॥३॥

राग रतन परीआ परवार । तिसु विचि उपजै अंम्रितु सार ।

नानक करते का इहु धनु मालु । जे को बूझै एहु बीचारु ॥४॥९॥

मुझमें यही गुण है कि मेरे सिर पर पापों का ही बोझा है; पर सब से उत्तम बातें सिरजनहार (परमात्मा) की ही (होती हैं)। जब तक हृदय में (परमात्मा का) नाम नहीं बसा तब तक खाना पीना, हँसना (तथा अन्य आमोद-प्रमोद) व्यर्थ ही हैं ॥ १ ॥

(यदि सब खाने-पीने हँसने आदि व्यर्थ हैं) तो उनकी परवाह क्यों की जाय? (लोगों की यही प्रवृत्ति होती है) कि बार-बार जन्म धारण करके कुछ न कुछ लिया ही जाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हमारे) मन के संकल्प-विकल्प मस्त हाथी की भाँति हैं (वह) जो कुछ भी बोलता है, सब असत्य ही असत्य (बोलता है)। क्या मुँह लेकर प्रार्थना की जाय? पाप और पुण्य दोनों ही मेरे समीप साक्षी के रूप में हैं ॥ २ ॥

(हे प्रभु) जैसा तू बनाता है वैसा ही कोई बनता है। तेरे बिना कोई भी दूसरा नहीं है। तू जैसी बुद्धि देता है, वैसी ही कोई पाता है। तुझे जैसा अच्छा लगता है, वैसा ही चलाता है ॥ ३ ॥

(गुरु वाणी) के रत्न के समान राग तथा रागिनियाँ और (उनके) परिवार (अन्य राग)—(इनसे) (नाम रूपी) श्रेष्ठ अमृत उत्पन्न होता है। नानक कहते हैं कि यदि कोई विचार करके समझे तो कर्ता-पुरुष (परमात्मा) की यही धन-दौलत है ॥ ४ ॥ ९ ॥

[१०]

करि किरपा अपनै घरि आइआ । ता मिलि सखीआ काजु रचाइआ ॥

खेलु देखि मनि अनदु भइआ सहु वीआहण आइआ ॥१॥

गावहु गावहु कामणी बिबेक बीचारु ।

हमरै घरि आइआ जगजीवनु भतारु ॥१॥ रहाउ ॥

गुरू दुआरै हमरा वीआहु जि होआ जां सहु मिलिआ तां जानिआ ।

तिहु लोका महि सबदु रविआ है आपु गइआ मनु मानिआ ॥२॥

आपणा कारजु आपि सवारे होरनि कारजु न होई ।

जितु कारजि सतु संतोखु दइआ धरमु है गुरमुखि बूझै कोई ॥३॥

भनति नानकु सभना का पिरु एको सोइ ।

जिस नो नदरि करे सा सोहागणि होइ ॥४॥१०॥

(प्रियतम परमात्मा ने) कृपा की और अपने घर आया। उससे मिलकर सखियों ने (विवाह) कार्य रच दिया। इस खेल को देख कर मन में आनन्द उत्पन्न हुआ कि प्रियतम (मुझे) ब्याहने आया है ॥ १ ॥

ऐ स्त्रियों विवेक एवं विचारवाली वस्तुओं को गाओ गाओ। जगत् के जीवन का भर्त्ता (पति) हमारे (हृदय-रूपी) घर में आ कर बस गया है ॥ १॥ रहाउ ॥

यदि गुरु द्वारा हमारा विवाह (प्रियतम परमात्मा के साथ) हो गया तभी समझना चाहिये कि प्रियतम मिल गया है। तीनो लोको मे शब्द व्याप्त हो गया है, अहंभाव दूर हो गया है और मन (अपने आप) मान गया (शान्त हो गया) है ॥ २ ॥

(प्रभु) अपना कार्य आप स्वयं ही सँवारता है औरों से कार्य नही (सम्पादित) होता। जिस कार्य मे सत्य, संतोष दया और धर्म (का समावेश) है, (ऐसे कार्य) को कोई गुरुमुख ही समझता है ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि सभी का प्रियतम एक वही (परमात्मा ही) है। जिसके ऊपर कृपादृष्टि करता है, वही उसकी सुहागिनी (स्त्री) होती है ॥ ४ ॥ १ ॥

[११]

गृहु बनु समसरि सहजि सुभाइ । दुरमति गतु भई कीरति ठाइ ॥
सच पउड़ी साचउ मुखि नांउ । सतिगुरु सेवि पाए निज थाउ ॥१॥
मन चूरे खटु दरसन जाणु । सरब जोति पूरन भगवानु ॥१॥ रहाउ ॥
अधिक तिआस भेख बहु करै । दुखु बिखिआ सुखु तनि परहरै ॥
कामु क्रोधु अंतरि धनु हिरै । दुबिधा छोडि नामि निसतरै ॥२॥
सिफति सलाहणु सहज अनंद । सखा सैनु प्रेमु गोबिंद ॥
आपे करे आपे बखसिंदु । तनु मनु हरि पहि आगै जिंदु ॥३॥
झूठ विकार महा दुखु देह । भेख वरन दीसहि सभि खेह ।
जो उपजै सो आवै जाइ । नानक असथिरु नामु रजाइ ॥४॥११॥

(अब) स्वाभाविक ही गृह और वन एक समान हो गए हैं। दुर्बुद्धि समाप्त हो गई है (और उसके) स्थान पर (परमात्मा की) कीर्ति (आ बसी) है। मुख में (परमात्मा का) सच्चा नाम होना हो सही (प्रभु कि प्राप्ति की) सच्ची सीढ़ी है। (साधक) अपना (वास्तविक घर (आत्म स्वरूप) सद्गुरु में ही पाता है।

छः शास्त्रों [पूर्व मीमांसा उत्तर मीमांसा (वेदान्त) न्याय योग वैशेषिक तथा सांख्य] का जानना यही है कि मन को चूर-चूर करके (वशीभूत करें) (और यह जाने) की भगवान् की ज्योति सर्वत्र परिपूर्ण है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अधिक तृष्णा (के वशीभूत होने से उसकी पूर्ति के निमित्त) बहुत से वेषों को धारण करना पड़ता है विषयो का दुख शरीर में (स्थित) सुख को दूर कर देता है। काम और क्रोध आतरिक धन को चुरा लेते हैं। दुबिधा को त्याग कर नाम द्वारा निस्तार पा सकता है ॥२॥

(जो) (परमात्मा) के गुणों की प्रशंसा करता है (उसे) सहज आनन्द (प्राप्त होता है)। गोविन्द का प्रेम ही (उसके लिए) सखा और स्वजन है। (प्रभु) आप ही रचता है और आप ही देता है। (मेरे) तन और मन हरी के निमित्त हो है, (और) आगे (परलोक मे) वही जीवन है ॥ ३ ॥

झूठ आदि विकार शरीर (के निमित्त) बड़े ही कष्टदायक हैं। वेष और वर्णादिक सब खाक (भस्म) ही दिखाई पड़ते हैं। जो भी (वस्तु) उत्पन्न होती है, आने-जाने वाली होती

है। नानक कहते हैं स्थिर रहनेवाला केवल (परमात्मा का) नाम और उसकी आभा है ॥ ४ ॥ ११ ॥

[१२]

ऐसो सरवरु कमल अनूपु। सदा बिगासै परमल रूपु।
ऊजल मोती चूगहि हंस। सरब कला जगदीसै अंस ॥१॥
जो दीसै सो उपजै बिनसै। बिनु जल सरवरि कमलु न दीसै ॥१॥ रहाउ ॥

बिरला बूझै पावै भेदु। साखा तीनि कहै नित बेदु ॥
नाद बिंद की सुरति समाइ। सतिगुरु सेवि परम पदु पाइ ॥२॥

मुकतो रातउ रंगि रवांतउ। राजन राजि सदा बिगसांतउ ॥
जिसु तूं राखहि किरपा धारि। बूडत पाहन तारहि तारि ॥३॥

त्रिभवण महि जोति त्रिभवण महि जाणिआ। उलट भई घरु घर महि आणिआ ॥
अहिनिसि भगति करे लिव लाइ। नानकु तिन कै लागै पाइ ॥४॥१२॥

एक (सत्संग रूपी) सरोवर है (जिसमें गुरमुख रूपी) सुन्दर कमल (खिले हैं)। (यह सरोवर कमलों) को विकसित करता है (और उन्हें) सुगंधि तथा रूप (प्रदान करता है)। (गुरमुख रूपी) हंस (नाम रूपी) उज्ज्वल मोती चुगते हैं। (वे गुरमुख रूपी हंस) सब शक्तिमान् जगदीश के अंश (भाग) हो गए हैं ॥ १ ॥

जो कुछ भी (इस संसार में) दिखाई देता है, (वह सब) उत्पन्न होता और नष्ट होता है। (भक्ति रूपी) जल के बिना (सत्संग रूपी) सरोवर में (गुरमुख रूपी) कमल नहीं रह सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(इस सत्संग के रहस्य को) कोई विरला ही समझता है। वेद तो सदैव तीन शाखाओं का वर्णन करते हैं [तीन शाखाओं से तात्पर्य तीन गुणों से है—सत्व रज तम (त्रैगुण्य विषया वेदा — श्रीमद्भगवद्गीता) अथवा—ज्ञान कर्म उपासना अथवा त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश]। (साधक) नाद-बिंदु के एकनिष्ठ ध्यान में समाहित हो जाता है [नाद—शब्द रूप, वह अवस्था जब सृष्टि नहीं थी और निरंजन परमात्मा शब्द रूप में ही विराजमान था। बिन्दु—फिर उसने सगुण रूप में समस्त सृष्टि-रचना का विस्तार किया। नाद-बिन्दु के ज्ञान को जो साधक एक कर देता है एवं समझ लेता है, वह तीनों अवस्थाओं से पार होकर चतुर्थ अवस्था—सहजावस्था में समा जाता है।] सद्गुरु की सेवा करने से ही वह परम पद को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

(जो मनुष्य) मुक्त होने के लिये प्रेम करता है, (वह हरी को) प्रेम के साथ स्मरण करता है। वह राजाओं का राजा है (अतएव) सदा प्रसन्न रहता है। (हे प्रभु), जिसकी तू कृपा धारण कर के रक्षा करता है, उसे (तू) डूबनेवाले पत्थर की नाव (में भी) तार देता है ॥ ३ ॥

(जो) त्रिभुवन में व्याप्त (परमात्मा की) ज्योति को त्रिभुवन से परिपूर्ण जानता है, जो (माया की धार से वृत्तियों को) उलट कर (मन रूपी) घर को (आत्म स्वरूप रूपी) घर में ले आता है, नानक उसके चरणों से लगता है (पड़ता है) ॥ ४ ॥ १२ ॥

[१३]

गुरमति साची हुजति दूरि । बहुतु सिआणप लागै धूरि ॥
लागी मैलु मिटै सच नाइ । गुरपरसादि रहै लिव लाइ ॥१॥
है हजूरि हाजरु अरदासि । दुखु सुखु साचु करते प्रभ पासि ॥१॥रहाउ॥
कूड़ु कमावै आवै जावै । कहणि कथनि वारा नही आवै ॥
किआ देखा सूझ बूझ न पावै । बिनु नावै मनि त्रिपति न आवै ॥२॥
जो जनमे से रोगि विआपे । हउमै माइआ दूखि संतापे ॥
से जन बाचे जो प्रभि राखे । सतिगुरु सेवि अंम्रित रसु चाखे ॥३॥
चलतउ मनु राखै अंम्रितु चाखै । सतिगुर सेवि अंम्रित सबदु भाखै ॥
साचै सबदि मुकति गति पाए । नानक विचहु आपु गवाए ॥४॥१३॥

गुरु द्वारा दी गई बुद्धि ही सच्ची है (और इसके द्वारा) हुज्जत [झगड़ा तकरार, व्यर्थ बहस] दूर होती है। बहुत चतुराई से (मन में) (पापों की) धूलि लगती है। (यह) लगी हुई मैल (परमात्मा के) सच्चे नाम से छूटती है। गुरु की कृपा से (शिष्य) एकनिष्ठ ध्यान में लीन रहता है ॥ १ ॥

(उस परमात्मा के) समीप हाजिर होकर प्रार्थना की जाय (क्योंकि सारे) दुःख सुख सचमुच ही उसके पास हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो व्यक्ति) झूठ कमाता है, वह आता ही जाता रहता है। कथनी कहने से अन्त नहीं प्राप्त होता (तात्पर्य यह कि केवल कथन मात्र से संसार से अन्त नहीं प्राप्त होता है)। यदि समझ नहीं प्राप्त होती तो उसके देखने से क्या (लाभ होता) है ? बिना (परमात्मा के) नाम के मन में तृप्ति—शान्ति नहीं आती ॥ २ ॥

जो (व्यक्ति) जन्म धारण करते हैं (वे सभी) रोग से व्याप्त होते हैं। अहंकार और माया के दुःख से (वे) संतप्त होते हैं। वे ही लोग (रोग अहंकार, माया और दुःख से) बचते हैं, जिनकी प्रभु (स्वयं) रक्षा करता है। सद्गुरु की सेवा करके (वे) (परमात्मा की) अमृत रस का आस्वादन करते हैं ॥ ३ ॥

जो चंचल मन को (रोक) रखता है, वही अमृत चखता है। सद्गुरु की सेवा करके (वह) अमृत शब्द (परमात्मा के नाम) का उच्चारण करता है। (गुरु के) सच्चे शब्द से (वह) मुक्ति और गति पाता है। नानक कहते हैं कि (वह) (अपने) में से अहंकार नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ १३ ॥

[१४]

जो तिनि कीआ सो सचु थीआ । अंम्रित नामु सतिगुरि दीआ ॥
हिरदै नामु नाही मनि भंगु । अनदिनु नालि पिआरे संगु ॥१॥
हरि जीउ राखहु अपनी सरणाई ।
गुरपरसादी हरि रसु पाइआ नामु पदारथु नउनिधि पाई ॥१॥ रहाउ ॥
करम धरम सचु साचा नाउ । ता कै सद बलिहारै जाउ ॥
जो हरि राते से जन परवाणु । तिन की संगति परम निधानु ॥२॥

हरि बर जिनि पाइआ धन नारी । हरि सिउ राती सबदु वीचारी ॥
आपि तरै संगति कुल तारै । सतिगुरु सेवि ततु वीचारै ॥३॥

हमरी जाति पति सचु नाउ । करम धरम संजमु सत भाउ ॥
नानक बखसे पूछ न होइ । दूजा मेटे एको सोइ ॥४॥१४॥

(परमात्मा ने कृपा करके) जिसे (सत्य में मग्न) कर दिया है, वही सच्चा होता है । अमृत नाम सद्गुरु ही देता है । (जिसके) मन में (हरी का) नाम है उसका मन भंग नहीं होता है (तात्पर्य यह कि उसके मन में कभी निराशा नहीं होती है) (उसका) संग प्रियतम के साथ सदैव (बना) रहता है ॥ १ ॥

हे हरी जी मुझे (अपनी) शरण में रख लो । गुरु की कृपा से (मुझे) हरी-रस प्राप्त हो गया है और नाम रूपी पदार्थ की नव निधियाँ मैंने पा ली हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने सच्चे नाम को ही सब कर्म-धर्म समझ लिया है उन पर मैं सदैव बलिहारी होता हूँ । जो (व्यक्ति) परमात्मा में अनुरक्त हैं, वे ही जन प्रामाणिक हैं और उनकी संगति परम निधान है ॥ २ ॥

जिस (जीव रूपी) स्त्री ने (परमात्मा रूपी) पति को प्राप्त कर लिया है, वह धन्य है । (वह) (गुरु के) शब्द द्वारा विचार कर हरी से रँग जाती है । वह स्वयं (तो) तरती है, (अपनी) संगति में (समस्त) परिवार का भी तार देती है । (वह) सद्गुरु की सेवा करके तत्त्व का विचार करती है ॥ ३ ॥

(हरी का) सच्चा नाम ही हमारी जाति-पाँति है । सच्चा प्रेम (भाव) ही कर्म धर्म और संयम है । नानक कहते हैं कि (यदि परमात्मा सच्चा नाम और प्रेम) प्रदान करे (तो उससे किसी हिसाब की) पूछ नहीं होती है । एक वही (परमात्मा ही) द्वैत भाव मेट सकता है ॥ ४ ॥ १४ ॥

[१५]

इकि आवहि इकि जावहि आई । इकि हरि राते रहहि समाई ॥
इकि धरनि गगन महि ठउर न पावहि ।
से करमहीण हरि नामु न धिआवहि ॥१॥

गुर पूरे ते गति मिति पाई ।
इहु संसारु बिखु वत अति भउजलु गुरसबदी हरि पारि लघाई ॥१॥ रहाउ ॥

जिन्ह कउ आपि लए प्रभु मेलि । तिन कउ कालु न साकै पेलि ॥
गुरमुखि निरमल रहहि पिआरे । जिउ जल अंभ ऊपरि कमल निरारे ॥२॥

बुरा भला कहु किस नो कहीऐ । दीसै ब्रहमु गुरमुखि सचु लहीऐ ॥
अकथु कथउ गुरमति वीचारु । मिलि गुर संगति पावउ पारु ॥३॥

सासत बेद सिम्रिति बहु भेद । अठसठि मजनु हरि रसु रेद ॥
गुरमुखि निरमलु मैलु न लागै । नानक हिरदै नामु वडे धुरि भागै ॥४॥१५॥

कुछ तो (इस संसार में) आते हैं और कुछ (यहाँ) आकर चले जाते हैं। कुछ हरी में अनुरक्त होकर उसी में समाहित हो जाते हैं। कुछ (ऐसे हैं) (जो) पृथ्वी और आकाश में ठौर (स्थान) नहीं पाते हैं। (जो) हरी नाम का ध्यान नहीं करते हैं, वे भाग्यहीन हैं ॥ १ ॥

पूर्ण गुरु से ही गति-मिति (उच्च अवस्था की चरम सीमा) प्राप्त होती है। यह संसार विषवत है, संसार सागर (भव-जल) अति (दुस्तर) है, (किन्तु गुरु के) शब्द (पर आचरण) करने से हरि पार लँघा देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्हें प्रभु आप मिला लेता है, उन्हें काल दबा नहीं सकता। प्रिय गुरुमुख (इस संसार में रहते हुए भी) (उसी प्रकार) निर्मल रहते हैं, जिस प्रकार कमल जल के ऊपर रहते हुए भी (जल से) निर्लेप रहते हैं ॥ २ ॥

(भला बताओ) बुरा अथवा भला किसे कहा जाय ? गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य को सर्वत्र) ब्रह्म दिखाई पड़ता है और सत्य की प्राप्ति होती है। गुरु की शिक्षा द्वारा विचार करने से अकथनीय (परमात्मा) का कथन किया जाता है तथा गुरु की संगति में मिलने से पार पाया जाता है ॥ ३ ॥

शास्त्र, वेदों तथा स्मृतियों के अनेक भेद हैं। हरि रस (की प्राप्ति ही) अड़सठ (तीर्थों का) स्नान है तथा समस्त वेदों (का पाठ है)। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) निर्मल रहता है उसके मल नहीं लगती। नानक कहते हैं कि हृदय के (बीच में) नाम (का स्थित होना) पहले के बड़े भाग्य से मिलता है (अर्थात् परमात्मा की विशेष कृपा हो तभी हृदय में नाम आकर बसता है) ॥ ४ ॥ १५ ॥

[१६]

निवि निवि पाइ लगउ गुर अपुने आतम रामु निहारिआ ।
करत बीचारु हिरदै हरि रविआ हिरदै देखि बीचारिआ ॥१॥

बोलहु रामु करे निसतारा ।
गुरपरसादि रतनु हरि लाभै मिटै अगिआनु होइ उजीआरा ॥१॥ रहाउ ॥

रवनी रवै बंधन नही तूटहि विचि हउमै भरमु न जाई ।
सतिगुरु मिलै त हउमै तूटै ता को लेखै पाई ॥२॥

हरि हरि नामु भगति प्रिअ प्रीतमु सुख सागरु उर धारे ।
भगतिवछलु जगजीवनु दाता मति गुरमति हरि निसतारे ॥३॥

मन सिउ जूझि मरै प्रभु पाए मनसा मनहि समाए ॥
नानक क्रिपा करे जगजीवनु सहज भाइ लिव लाए ॥४॥१६॥

(मैं) अपने गुरु के चरणों में बार-बार नमित होकर लगता हूँ (उन्हीं की कृपा से) (मैंने घट-घट में रमनेवाले) आत्माराम का साक्षात्कार कर लिया है। विचार करने से हरी हृदय में ही रमण करता हुआ (दीख पड़ा) और उसे हृदय में देख कर विचार करने लगा। (इस भाँति हृदय और विचार हरी के सान्निध्य से एक हो गए) ॥ १ ॥

राम (नाम) का उच्चारण करो (वही) निस्तार करता है गुरु की कृपा से हरि-रस प्राप्त होता है, (उसके प्राप्त हुने से) अज्ञान (का अन्धकार) मिट जाता है और (ज्ञान का) प्रकाश होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया के साथ रमण करने से बंधन नहीं टूटते (और) हृदय से अंधकार तथा भ्रम नहीं जाते [अथवा निरा जीभ से उच्चारण करने से बंधन नहीं टूटते—शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब पृष्ठ ६६१] [अथवा कितनी ही कविता की जाय किन्तु बंधन नहीं टूटते—श्री गुरु ग्रंथ कोश, पृष्ठ ११] । यदि सद्गुरु प्राप्त हो जाय तभी अहंकार टूटता है) और तभी परमात्मा के) लेखे में आता है (अर्थात् प्रामाणिक समझा जाता है) ॥ २ ॥

हरी का नाम भक्तों के लिए अत्यधिक प्रिय है, (भक्तों ने) उस गुण के सागर (नाम) को (अपने) हृदय में धारण कर लिया है । (परमात्मा) भक्त-वत्सल (और) जगत् के जीवन का दाता है, गुरु की शिक्षा के द्वारा हरी (भक्तों का) निस्तार करता है ॥ ३ ॥

जो मन से जूझ कर (अहंभाव से) मर जाता है वही परमात्मा को पाता है (और उसकी) इच्छाएँ (उसके) मन में ही समाहित हो जाती हैं । नानक कहते हैं कि यदि जग जीवन (परमात्मा) कृपा करता है तो सहज भाव से लिव (एकनिष्ठ ध्यान) में लगा देता है—(मस्त कर देता है) ॥ ४ ॥ १६ ॥

[१७]

किस कउ कहहि सुणावहि किस कउ किसु समझावहि समझि रहे ।
किसै पड़ावहि पड़ि गुणि बूझे सतगुर सबदि संतोखि रहे ॥१॥
ऐसा गुरमति रमतु सरीरा । हरि भजु मेरे मन गहिर गंभीरा ॥१॥रहाउ॥
अनत तरंग भगति हरि रंगा । अनदिनु सूचे हरि गुण संगा ॥
मिथिआ जनमु साकत संसारा । राम भगति जनु रहै निरारा ॥२॥
सूची काइआ हरि गुण गाइआ । आतमु चीनि रहै लिव लाइआ ॥
आदि अपारु अपरंपरु हीरा । लालि रता मेरा मनु धीरा ॥३॥
कथनी कहहि कहहि से मूए । सो प्रभु दूरि नाही प्रभु तूं है ॥४॥१७॥
सभु जगु देखिआ माइआ छाइआ । नानक गुरमति नामु धिआइआ ॥४॥१७॥

(जो) (नाम के वास्तविक स्वरूप को) समझ चुके हैं वे (इस बात को) किसे कह कह कर सुनावें और किसको कह कह कर समझावें ? (जो स्वयं) पढ़ कर और विचार कर (रहस्य को) जान गए हैं, (वे इस रहस्य को) किसे बतावें ? वे तो सद्गुरु के शब्द द्वारा संतोष में (स्थित) रहते हैं ॥ १ ॥

ऐसा हरी (जो) गुरु की शिक्षा द्वारा (समस्त) शरीरों में रमता हुआ (दृष्टिगोचर होता है) उस गहरे और गंभीर को हे मेरे मन तू स्मरण कर । ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हरी के रंग में भक्ति की अनन्त तरंगें हैं । (वे पुरुष) प्रतिदिन पवित्र रहते हैं (जो) परमात्मा के गुणों के साथ रहते हैं । भक्ति के उपासक (माया के पुजारी) का जन्म इस संसार में मिथ्या है । रामकी भक्ति (में अनुरक्त) पुरुष (संसार में) निर्लेप रहता है ॥ २ ॥

(जो) हरी का गुणगान करता है (उसका शरीर पवित्र रहता है)। (वह) आत्मा का साक्षात्कार कर के शिव (एकनिष्ठ ध्यान) में निमग्न रहता है। (जो हरी रूपी) हीरा अति अपार और अपरंपार है, (उस) नाम में मेरा मन अनुरक्त हो कर स्थिर हो गया है ॥३॥

(जो व्यक्ति बार-बार) कथनी (ही मात्र) करते हैं, वे मर चुके हैं। वह प्रभु दूर नहीं है, (हे प्रभु) तू ही (सर्वत्र) है। नानक कहते हैं (कि जिन्होंने) गुरु की शिक्षा के अनुसार नाम का ध्यान किया है (उन्होंने यह प्रत्यक्ष) देख लिया है कि सारे जगत् में माया की छाया है, (जिसके फलस्वरूप लोग हरी के प्रत्यक्ष होते हुए भी नहीं देख पाते हैं) ॥४॥१७॥

[१८]

आसा, महला १, तितुका

कोई भीखकु भीखिआ खाइ । कोई राजा रहिआ समाइ ॥
किसही मानु किसै अपमानु । ढाहि उसारे धरे धिआनु ॥
तुझते वडा नाही कोइ । किसु वेखाली चंगा होइ ॥१॥
मैं तां नामु तेरा आधारु । तूं दाता करणहारु करतारु ॥१॥ रहाउ ॥
वाट न पावउ वीगा जाउ । दरगह बैसण नाही थाउ ॥
मन का अंधुला माइआ का बंधु । खीन खराबु होवै नित कंधु ॥
खाण जीवण की बहुती आस । लेखै तेरै सास गिरास ॥२॥
अहिनिसि अंधुले दीपकु देइ । भउजल डूबत चिंत करेइ ॥
कहहि सुणहि जो मानहि नाउ । हउ बलिहारै ता कै जाउ ॥
नानकु एक कहै अरदासि । जीउ पिंडु सभु तेरै पासि ॥३॥
जां तू देहि जपी तेरा नाउ । दरगह बैसणु होवै थाउ ॥
जां तुधु भावै ता दुरमति जाइ । गिआन रतनु मनि वसै आइ ॥
नदरि करे ता सतिगुरु मिलै । प्रणवति नानकु भवजलु तरै ॥४॥१८॥

कोई भिक्षुक है और भिक्षा (माँग कर) खाता है। कोई राजा है और (अपने राज्य में) मस्त है। (इस संसार में) किसी को मान और किसी को अपमान (प्राप्त होता है)। कोई व्यक्ति ढहा कर (भवन) निर्माण करता है (और कोई परमात्मा का) ध्यान लगाता है। (हे प्रभु) तुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। (मैं) किसे दिखाऊँ कि वह अच्छा है? (अर्थात् कोई भी अच्छा नहीं है कुछ न कुछ बुराई प्रत्येक व्यक्ति में है) ॥१॥

मेरे लिए तो तेरा नाम ही (एक मात्र) आश्रय है। (हे प्रभु) तू दाता है, निर्माण-कर्त्ता और कर्त्तार है ॥१॥ रहाउ ॥

(मैं) (ठीक) रास्ता नहीं पाता हूँ टेढ़ामेढ़ा जाता हूँ। (हरी के) दरवाजे पर बैठने का स्थान भी (मुझे) नहीं (प्राप्त होता है)। (मैं) मन का अन्धा हूँ और माया में बंधा हुआ हूँ। मेरी (शरीर रूपी) दीवाल नित्य क्षीण होती है और खराब होती है। (मुझे) खाने और जीने की बहुत आशा है, (किन्तु यह नहीं जानता) कि (मेरे जीवन का एक-एक)

श्वास, (और भोजन के एक एक ग्रास) तेरे मन में हैं। (अतएव तेरे मत से अधिक मैं न एक ग्रास अधिक खा सकता हूँ और न एक श्वास अधिक जीवित रह सकता हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु, तू) अहर्निश अन्धों को दीपक देता है (और उन्हें रास्ता दिखाता है)। संसार-सागर में डूबने वालों की (तू ही) चिन्ता करता है (और उनका उद्धार करता है)। जो (हरी के) नाम को कहते हैं, सुनते हैं और मानते हैं, मैं उनपर न्यौछावर हो जाता हूँ। नानक एक प्रार्थना करता है (कि हे प्रभु), जीव और शरीर सब तेरे ही पास हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु) जब तू देता है, तभी तेरा नाम जपता हूँ (और उसी के द्वारा) (परमात्मा के) दरवाजे पर बैठने को स्थान (प्राप्त होता है)। (हे हरी) जब तुझे रुचता है, तभी दुर्मति दूर होती है और ज्ञान-रत्न मन में आकर बसता है। (जब तेरी) कृपा-दृष्टि होती है, तभी सद्गुरु प्राप्त होता है। नानक विनय पूर्वक कहते हैं (कि सद्गुरु के द्वारा) संसार सागर तरा जाता है ॥ ४ ॥ १८ ॥

[१९]

धनासरी

दुध बिनु धेनु पंख बिनु पंखी जल बिनु उतभुज कामि नाही ।
किआ सुलतानु सलाम विहूणा अंधी कोठी तेरा नामु नाही ॥१॥
की विसरहि दुखु बहुता लागै । दुखु लागै तूं विसरु नाही ॥१॥ रहाउ ॥

अखी अंधु जीभ रसु नाही कंनी पवणु न वाजै ।
चरणी चलै पजूता आगै विणु सेवा फल लागे ॥२॥

अखर बिरख बाग भुइ चोखी सिंचित भाउ करेही ।
सभना फलु लागै नामु एको बिनु करमा कैसे लेही ॥३॥

जेते जीअ तेते सभि तेरे विणु सेवा फलु किसै नाही ।
दुखु सुखु भाणा तेरा होवै विणु नावै जीउ रहै नाही ॥४॥

मति विचि मरणु जीवणु होरु कैसा जा जीवा तां जुगति नाही ।
कहै नानकु जीवाले जीआ जह भावै तह राखु तुही ॥५॥१९॥

दूध के बिना गाय, पंख के बिना पक्षी और जल के बिना उद्भिज (किसी) काम के नहीं रहते। सलाम के बिना सुलतान किस काम का है? (अर्थात् जिस सुलतान को कोई सलाम नहीं करता वह व्यर्थ है)। (इसी प्रकार) जिस कोठरी (हृदय में) तेरा नाम नहीं है वह व्यर्थ है ॥ १ ॥

(हे प्रभु) तू क्यों विस्मृत होता है? (तेरे विस्मृत होने से) बहुत दुःख लगता है। (मुझे इसी बात से) दुःख लगता है कि (तू मुझे) विस्मृत न हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वृद्ध) आँखों से अन्धा है, (उसके) जीभ में रस नहीं है (और उसके) कानों से पवन (शब्द) नहीं सुनाई पड़ता। दूसरे आने पर ही चरणों से चलने लगता है (तात्पर्य यह कि वह दूसरों से पकड़ कर चलाए जाने पर, चल सकता है)। (हे प्रभु) बिना (तुम्हारी) सेवा किए हुए भी (वृद्धावस्था का) फल लगता है। (भाव यह कि बिना परमात्मा

को आराधना किए मनुष्य को बारम्बार योनि के अंतर्गत भ्रमकर, वृद्धावस्था आदि के दुःखों को भोगना पड़ता है) ॥ २ ॥

(गुरु के) अक्षर (उपदेश) बाग के वृक्ष हैं, (शुद्ध हृदय) अच्छी पृथ्वी है, (जिसमे मैं वृक्ष उत्पन्न होते हैं) । (परमात्मा से) प्रेम करना ही (इन वृक्षों को) सींचना है । (ऐसा करने से) सभी वृक्षों में नाम रूपी एक फल लगेगा । किन्तु बिना (शुभ) कर्मों के (वह नाम रूपी फल) कैसे लगेगा ? ॥ ३ ॥

(हे प्रभु) जितने भी जीव हैं वे सब तेरे ही हैं । बिना (परमात्मा और गुरु की) सेवा के किसी को भी फल नहीं प्राप्त होता । तेरी ही आज्ञा के दुःख-सुख होते हैं बिना । (तेरे) नाम के जीवन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

(गुरु की) बुद्धि द्वारा (जो अहंभाव से) मरना है (वही वास्तविक) जीवन है । (इसके बिना) और जीवन कैसे हो सकता है ? (यदि और) प्रकार के जीवन (व्यतीत भी करें) तो वह (वास्तविक) *जीवन की युक्ति नहीं है । नानक कहते हैं कि जीवों को वह* अपनी मरजी के अनुसार जीवित रखता है । (हे प्रभु) मुझे जैसा अच्छा लगे वैसा रख ॥ ५ ॥ १६ ॥

[२०]

काइआ ब्रहमा मनु है धोती । गिआनु जनेऊ धिआनु कुसपाती ।
हरि नामा जसु जाचउ नाउ । गुर परसादि ब्रहमि समाउ ॥१॥

पांडे ऐसा ब्रहम बीचारु । नामे सुचि नामो पड़उ नामे चजु आचारु ॥१॥ रहाउ ॥

बाहरि जनेऊ जिचरु जोति है नालि । धोती टिका नामु समालि ॥
एथै ओथै निबही नालि । विणु नावै होरि करम न भालि ॥२॥

पूजा प्रेम माइआ परजालि । एको वेखहु अवरु न भालि ॥
चीन्है ततु गगन दस दुआर । हरि मुखि पाठ पड़ै बीचार ॥३॥

भोजनु भाउ भरमु भउ भागै । पाहरूअरा छबि चोरु न लागै ॥
तिलकु लिलाटि जाणै प्रभु एकु । बूझै ब्रहमु अंतरि बिबेकु ॥४॥

आचारी नही जीतिआ जाइ । पाठ पड़ै नही कीमति पाइ ॥
असट दसी चहु भेदु न पाइआ । नानक सतिगुरि ब्रहमु दिखाइआ ॥५॥२ ॥

काया ब्राह्मण है, मन (उस ब्राह्मण की) धोती है ज्ञान यज्ञोपवीत तथा ध्यान कुशा के पत्ते हैं । (अन्य किसी नाम के स्थान में) (मैं) हरिनाम के यश की ही याचना करता हूँ । (इस प्रकार) गुरु की कृपा से मैं ब्रह्म में समा जाऊँगा ॥ १ ॥

हे पांडे (पंडित) इस प्रकार ब्रह्म का विचार करो । नाम ही पवित्रता है नाम ही (का पाठ) पढ़ो (और) नाम ही को विहित कर्मकाण्ड (बनाओ) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बाहरी जनेऊ तो जब तक (शरीर के) साथ ज्योति (प्राणज्योति) है (तभी तक है) । (अतएव) नाम का स्मरण करना ही धोती और टीका आदि (पूजा की सामग्री)

(बनाओ) । (नाम ही) यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) साथ निबहेगा (साथ देगा) । नाम के बिना अन्य (बाहरी) कर्मों को मत खोजो ॥ २ ॥

मस्ती के बनाने को पूजा और प्रेम (बनाओ) । एक (परमात्मा) को ही देखो अन्य को मत ढूँढो—खोजो । तत्त्व को पहचानना ही गगन में (स्थित) दशम द्वार की प्राप्ति है; [अथवा, गगन के दशम द्वार में स्थित होकर तत्त्व को पहचानना चाहिए] । (परमात्मा के) नाम को मुख में रखना ही पाठ करना और विचार (में स्थित होना) है ॥ ३ ॥

नाम के भोजन (का भोग) लगाओ (जिससे) भ्रम और भय भग जायें (निवृत्त हो जायें) । (परमात्मा की) छवि (स्वरूप का चिन्तन) पहरेदार है (इसमें कामादिक) चोर नहीं लगेंगे । प्रभु को एक जानना ही ललाट का तिलक है । ब्रह्म को अंतर में जानना ही, (वास्तविक) विवेक है ॥ ४ ॥

आचारों से (प्रभु) नहीं जीता जा सकता है, (तात्पर्य यह कि परमात्मा आचारों द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता है) । (धार्मिक ग्रंथों के) पाठ करने से (उस परमात्मा की) कीमत नहीं पायी जा सकती है । अठारहों (पुराण) (तथा) चारों वेद उसका भेद नहीं पा सके हैं । नानक कहते हैं कि सद्गुरु ने ही ब्रह्म दिखाया है ॥ ५ ॥ २० ॥

[२१]

सेवकु दासु भगतु जनु सोई । ठाकुर का दासु गुरमुखि होइ ॥
जिनि सिरि साजी तिनि फुनि गोई । तिसु बिनु दूजा अवरु न कोई ॥१॥
साचु नामु गुर सबदि वीचारि । गुरमुखि साचे साचै दरबारि ॥१॥ रहाउ ॥
सचा अरजु सची अरदासि । महली खसमु सुणे साबासि ॥
सचै तखति बुलावै सोइ । दे वडिआई करे सु होइ ॥२॥
तेरा ताणु तू है दीबाणु । गुर का सबदु सचु नीसाणु ।
मंने हुकमु सु परगटु जाइ । सचु नीसाणै ठाक न पाइ ॥३॥
पंडित पड़हि वखाणहि वेदु । अंतरि वसतु न जाणहि भेदु ॥
गुर बिनु सोझी बूझ न होइ । साचा रवि रहिआ प्रभु सोइ ॥४॥
किआ हउ आखा आखि वखाणी । तू आपे जाणहि सरब विडाणी ॥
नानक एको दरु दीबाणु । गुरमुखि साचु तहा गुदराणु ॥५॥२१॥

जो ठाकुर का दास है वह गुरमुख है । वही सेवक दास और भक्त है । जिस (प्रभु) ने सृष्टि निर्मित की है वही उसे (फिर) लय करता है । (उस प्रभु) के बिना कोई और दूसरा नहीं है ॥ १ ॥

(हे साधक) गुरु के शब्द द्वारा सच्चे नाम का विचार करो । (परमात्मा के सच्चे दरबार में गुरमुख ही सच्चे (सिद्ध) होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सच्ची अर्ज और सच्ची प्रार्थना को स्वामी (खसम) (अपने) महल में (अवश्य) सुनता है और शाबाशी (देता है) । वह (प्रभु अपने सच्चे प्रार्थी को) (अपने) सच्चे तख्त पर

दुहेला है । (वह प्रभु) (अपने सेवक को) बड़ाई प्रदान करता है; (वह) जो कुछ करता है, वही होता है ॥ २ ॥

(हे प्रभु) तेरा ही बल है (और) तू ही दोषरहित समाने वाला, अर्थात् न्याय करनेवाला है । गुरु का शब्द (परमात्मा की प्राप्ति का) सच्चा चिह्न है । जो (परमात्मा अथवा) गुरु का हुक्म मानता है, वह प्रत्यक्ष (प्रभु के पास) जाता है । (उसके पास) सच्चा परवाना है अतः (उसकी) रोक नहीं होती है ॥ ३ ॥

पंडित ग्रन्थ (वेद) पढ़ते हैं (और) वेद की व्याख्या करते हैं (किन्तु वे) आन्तरिक वस्तु के रहस्य को नहीं जानते हैं । गुरु के बिना यह समझ-बूझ नहीं (प्राप्त) होती (कि) वही सच्चा प्रभु (सर्वत्र) रम रहा है ॥ ४ ॥

(हे प्रभु) मैं (तुम्हारे सम्बन्ध में) क्या कहूँ और क्या वर्णन करूँ ? हे समस्त आश्चर्य करनेवाले (प्रभु) तू स्वयं ही (अपने को) जानता है । नानक (की शरण के लिए) एक ही दरवाजा और एक ही दरबार है । गुरुमुखों का उस स्थान पर सत्य रूप हरी ही गुजारा है ॥ ॥ ५ २१ ॥

[२२]

काची गागरि देह दुहेली उपजै बिनसै दुखु पाई ।
इहु जगु सागरु दुतरु किउ तरीऐ बिनु हरि गुर पारि न पाई ॥१॥
तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुझ बिनु अवरु न कोइ हरे ॥
सरबी रंगी रूपी तूं है तिसु बखसे जिसु नदरि करे ॥१॥ रहाउ ॥
सासु बुरी घरि वासु न देवै पिर सिउ मिलण न देइ बुरी ।
सखी साजनी के हउ चरन सरेवउ हरि गुर किरपा ते नदरि धरी ॥२॥
आपु बीचारि मारि मनु देखिआ तुम सा मीतु न अवरु कोई ।
जिउ तू राखहि तिव ही रहणा दुखु सुखु देवहि करहि सोई ॥३॥
आसा मनसा दोऊ बिनासत त्रिहु गुण आस निरास भई ।
तुरीआवसथा गुरमुखि पाईऐ संत सभा की ओट लही ॥४॥
गिआन धिआन सगले सभि जप तप जिसु हरि हिरदै अलख अभेवा ॥
नानक राम नामि मनु राता गुरमति पाए सहज सेवा ॥५॥२२॥

देह कच्ची गागर कच्ची है, (जिसमें) दुखी है वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और दुःख पाती है । इस दुस्तर जगत्-सागर को किस प्रकार तरा जाय ? बिना हरी रूपी गुरु के (इसका) पार नहीं पाया जा सकता ॥ १ ॥

हे मेरे प्यारे तेरे बिना और कोई (दूसरा) नहीं है, हे हरी तेरे बिना और कोई (दूसरा) नहीं है । (हे हरी) समस्त रंगों और रूपों में तू ही है, जिसके ऊपर (तू) कृपा-दृष्टि करता है, उसी को (यह गूढ़ रहस्य) प्रदान करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(माया रूपी) सास बड़ी ही बुरी है (वह) (आत्म-स्वरूपी) घर में रहने नहीं देती पर दुष्ट प्रियतम (परमात्मा) से नहीं मिलने देती (संत-जन रूपी) सखी-सहेलियों के

चरणों की मैं सेवा करती हूँ (जिसके फलस्वरूप) हरी रूपी गुरु ने कृपा की दृष्टि (मेरे ऊपर) डाल दी है ॥ २ ॥

(मैंने) अपने आप को विचार कर तथा अपने मन को मार कर (निरोध कर) भली भाँति देख लिया है कि तुम्हारे समान मेरा कोई और (दूसरा) मित्र नहीं है। (हे प्रभु) जिस प्रकार तू रखता है, उसी प्रकार रहना होता है जो दुःख-सुख तू देता है वही (मनुष्य) भोगता है ॥ ३ ॥

(हे प्रभु, तुम्हारी कृपा से) मेरी आशा और इच्छा नष्ट हो गई है, त्रिगुणात्मक (माया की) आशा (से भी मैं) निराश हो गई हूँ। गुरु की शिक्षा द्वारा तथा संतों की सभा की शरण ग्रहण करने से तुरीयावस्था (चौथी अवस्था सहजावस्था) की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

जिसके हृदय में अलक्ष्य और अभेद हरी का (निवास) है, उसमें समस्त ज्ञान ध्यान तथा सारे जप-तप (स्थित) हैं। नानक कहते हैं कि राम नाम में मन अनुरक्त हो गया है और गुरु की शिक्षा द्वारा सहज भाव की सेवा प्राप्त हो गई है ॥ ५ ॥ २२ ॥

[२३]

पंच रुपदे

मोहु कुटंबु मोहु सभ कार । मोहु तुम तजहु सगल वेकार ॥१॥
मोहु अरु भरमु तजहु तुम्ह बीर । साचु नामु रिदे रवै सरीर ॥१॥ रहाउ ॥
सचु नामु जा नवनिधि पाई । रोवै पूतु न कलपै माई ॥२॥
एतु मोहि डूबा संसारु । गुरमुखि कोई उतरै पारि ॥३॥
एतु मोहि फिरि जूनी पाहि । मोहे लागा जम पुरि जाहि ॥४॥
गुरदीखिआ ले जपु तपु कमाहि । ना मोहु तुटै ना थाइ पाइ ॥५॥
नदरि करे ता एहु मोहु जाइ । नानक हरि सिउ रहै समाइ ॥६॥२३॥

(हे साधक), कुटुम्ब मोह है सारे कार्य मोह हैं। (अतः) तुम मोह का त्याग करो (सारी वस्तुओं के प्रति मोह) व्यर्थ है ॥ १ ॥

(हे) भाई, तुम मोह और भ्रम को त्याग दो। (तुम्हारा) शरीर सच्चे नाम को (अपने) हृदय में रमण करता हुआ (माने) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जब सच्चे नाम की नवनिधि प्राप्त हो जाती है तब (वियोग में) न तो पुत्र रोता है और न माता कलपती है (दुःखी होती है) ॥ २ ॥

इसी मोह ही में (सारा) संसार डूबा हुआ है। कोई (विरला ही) गुरुमुख इससे पार उतरता है ॥ ३ ॥

इसी मोह (के कारण) फिर (मनुष्य) योनि के अंतर्गत पड़ता है और मोह ही लगा हुआ यमपुर जाता है ॥ ४ ॥

(परम्परा के अनुसार) गुरु से दीक्षा ले कर (बाह्य) जप-तप करने से (कुछ भी नहीं बनता है) (इससे) न तो मोह टूटता है (और) न (परमात्मा के यहाँ) स्थान ही पाता है ॥ ॥

नानक कहते हैं कि (प्रभु) कृपा करे, तभी यह मोह दूर होता है, (जिसके फलस्वरूप साधक) हरि से युक्त हो जाता है ॥ ६ ॥ २३ ॥

[२४]

आपि करे सचु अलख अपारु । हउ पापी तू बखसणहारु ॥१॥
तेरा भाणा सभु किछु होवै । मन हठि कीचै अंति विगोवै ॥ १ ॥ रहाउ ॥
मनमुख की मति कूड़ि विआपी । बिनु हरि सिमरण पापि संतापी ॥२॥
दुरमति तिआगि लाहा किछु लेवहु । जो उपजै सो अलख अभेवहु ॥३॥
ऐसा हमरा सखा सहाई । गुर हरि मिलिआ भगति द्रिड़ाई ॥४॥
सगलीं सउदीं तोटा आवै । नानक राम नामु मनि भावै ॥५॥२४॥

सच्चा, अलख (तथा) अपार (परमात्मा) (सब कुछ) आप ही करता है। (हे प्रभु) मैं पापी हूँ तू क्षमा करनेवाला है ॥ १ ॥

(हे परमात्मा) तुम्हारी ही आज्ञा से सब कुछ होता है। (किन्तु जो व्यक्ति) मन के हठ से कुछ करता है, (वह) नष्ट हो जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख की बुद्धि झूठ ही में व्याप्त रहती है। बिना हरि के स्मरण के पाप (कर कर के) (उसकी बुद्धि) संतप्त रहती है ॥२॥

(अतएव) दुर्बुद्धि का त्याग करके कुछ लाभ प्राप्त करो। जो (कुछ भी) उत्पन्न होता है (वह सब) अलख अभेद (हरी से ही उत्पन्न होता है) ॥३॥

हमारा सखा और सहायक (उपर्युक्त हरी) इसी प्रकार का है। गुरु (रूपी) हरि ने मिलकर भक्ति दृढ़ कर दी है ॥४॥

नानक (की दृष्टि में) सारे (सांसारिक) सौदे में घाटा आता है (अतएव) केवल रामनाम ही मन को अच्छा लगता है (क्योंकि यह सौदा ऐसा है कि इसमें सदैव लाभ ही लाभ होता है) ॥५॥२४॥

[२५]

चउपदे४

विदिआ वीचारी तां परउपकारी । जां पंच रासी तां तीरथ वासी ॥१॥
घुंघरू वाजै जे मनु लागै । तउ जमु कहा करे मो सिउ आगै ॥१॥रहाउ॥
आस निरासी तउ संनिआसी । जां जतु जोगी तां काइआ भोगी ॥२॥
दइआ दिगंबरु देह बीचारी । आपि मरै अवरा नह मारी ॥३॥
एकु तू होरि वेस बहुतेरे । नानकु जाणै चोज न तेरे ॥४॥२५॥

जब (पंडित) विद्या के ऊपर विचार (आचरण) करता है, तभी (वह) परोपकारी होता है। जब (कोई) पंच ज्ञानेन्द्रियों को वशीभूत करता है तभी (वह) (सच्चा) तीर्थवासी होता है ॥१॥

यदि मन (हरी में) लगता है, तो (मरेव अनाहत) घुंघरू बजता रहता है। (ऐसी स्थिति में) आगे (परलोक में) यम मुझसे क्या कर सकेगा ? (अर्थात् रागात्मिका भक्ति के

आगे यम की दाल नहीं गल सकती। जो व्यक्ति रागात्मिका भक्ति में निमग्न है, वह यम के पाश से मुक्त है) ॥१॥ रहाउ ॥

जब (कोई) आशा से निराश हो जाता है तभी (वह वास्तविक) संन्यासी (होता) है। जब (किसी) योगी में संयम होता है (तभी) (वह) शरीर (के सुख का) भोगी होता है ॥२॥

यदि (जिसमें) दया है और शरीर का विचार है, तो वही (वास्तविक) दिगम्बर है। (जो जीवित अवस्था में ही अहङ्कार से) स्वयं मर जाता है वह दूसरों को नहीं मारता है ॥३॥

(हे प्रभु) तू तो एक ही है, (किन्तु तेरे) वेश बहुत से हैं। नानक तेरे कौतुक (चरित्र) नहीं जान सकता है ॥४॥२५॥

[२६]

एक न भरीआ गुण करि धोवा। मेरा सहु जागै हउ निसि भरि सोवा ॥१॥
इउ किउ कंत पिआरी होवा। सहु जागै हउ निसि भरि सोवा ॥१॥रहाउ॥
आस पिआसी सेजै आवा। आगै सह भावा कि न भावा ॥२॥
किआ जाना किआ होइगा री माई। हरि दरसन बिनु रहनु न जाई ॥१॥
प्रेमु न चाखिआ मेरी तिस न बुझानी। गइआ सु जोबनु धन पछुतानी ॥३॥
अब भी जागउ आस पिआसी। भईले उदासी रहउ निरासी ॥१॥रहाउ॥
हउमै खोइ करे सीगारु। तउ कामणि सेजै रवै भतारु ॥४॥
तउ नानक कंतै मनि भावै। छोडि वडाई अपणे खसम समावै ॥१॥रहाउ॥२६॥

(मैं) एक (पाप) से नहीं भरी हुई (कि एकाध) गुण से (उसे धोकर साफ हो जाऊँ, (मैं अनेक पापों से लिप्त हूँ।) मेरा प्रियतम तो जागता रहता है (और) मैं (सारी आयु रूपी) रात्रि भर (अज्ञानता की नींद में) सोती रहती हूँ ॥१॥

इस प्रकार (भला) मैं कैसे पति की प्यारी हो सकती हूँ? प्रियतम तो जागता रहता है और मैं (आयु रूपी) रात्रि भर (अज्ञानता की निद्रा में) सोती रहती हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

(प्रियतम के मिलने की) आशा की प्यास (चाह) से मैं सेज पर आऊँ, तो पता नहीं कि उस (प्रिय को) आगे अच्छी लगूँगी अथवा नहीं अच्छी लगूँगी? २॥

अरी माँ मैं क्या जानूँ कि आगे (भविष्य में) क्या होगा? बिना हरी के दर्शन के तो (मुझसे) नहीं रहा जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

न तो मैंने प्रेम का ही आस्वादन किया और न मेरी (प्यास की) तृष्णा ही बुझी। (इस प्रकार) वह यौवन चला गया और स्त्री पछताती है ॥३॥

(मैं) अब (सम्प्रति) आशा की प्यास से जग पड़ी हूँ और संसार से उदासीन तथा निराश हो गई हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

(यदि कोई स्त्री) अहंकार खोकर (सद्गुणों का) शृङ्गार करे, तो (उस) स्त्री के साथ पति सेज पर रमण करता है ॥४॥

नानक कहते हैं (कि सद्गुणों के आचरण से ही) (वह स्त्री) कंत के मन को अच्छी

लगती है। (वह) (समस्त) बड़प्पन को छोड़कर अपने पति मे समा जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ २६ ॥

[२७]

पेवकड़ै धन खरी इआणी । तिसु सह की मै सार न जाणी ॥१॥
सहु मेरा एकु दूजा नही कोई । नदरि करे मेलावा होई ॥१॥रहाउ॥
साहुरड़ै धन साचु पछाणिआ । सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ ॥२॥
गुरपरसादी ऐसी मति आवै । तां कामणि कंतै मनि भावै ॥३॥
कहतु नानकु भै भाव का करे सीगारु । सद ही सेजै रवै भतारु ॥४॥२७॥

(मायिक संसार रूपी) नैहर में (जीवात्मा रूपी) स्त्री बहुत अज्ञानिनी (रहती है)। मैं तो उस पति की खबर नहीं जानती ॥१॥

मेरा पति एक ही है, दूसरा कोई नहीं है। (यदि वह) कृपा-दृष्टि करता है, (तभी) मिलाप होता है ॥१॥ रहाउ ॥

ससुराल मे स्त्री ने (अपने) सच्चे (पति—परमात्मा) को पहचान लिया है। (उसने) सहज भाव से अपने प्रियतम को जान लिया है ॥२॥

गुरु की कृपा से जब ऐसी (उपर्युक्त) बुद्धि होती है, तभी स्त्री अपने पति के मन को अच्छी लगती है ॥३॥

नानक कहते हैं (कि यदि स्त्री) (परमात्मा के) भय तथा प्रेम का शृङ्गार करती है (तो) पति सदैव ही (उसके साथ) सेज पर रमण करता है ॥४॥२७॥

[२८]

न किस का पूतु न किस की माई । झूठै मोहि भरमि भुलाई ॥१॥
मेरे साहिब हउ कीता तेरा । जां तू देहि जपी नाउ तेरा ॥१॥रहाउ॥
बहुते अउगुण कूकै कोई । जा तिसु भावै बखसे सोई ॥२॥
गुरपरसादी दुरमति खोई । जह देखा तह एको सोई ॥३॥
कहत नानक ऐसी मति आवै । तां को सचे सचि समावै ॥४॥२८॥

न तो (कोई) किसी का पुत्र है और न (कोई) किसी की माता। झूठे मोह और भ्रम मे (लोग) भूले हुए हैं ॥१॥

मेरे साहब मैं तेरा ही बनाया हुआ हूँ। जब तू देता है, तभी मैं तेरा नाम जपता हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

(चाहे) कोई (अपने को) (उस हरी के दरवाजे पर) बहुत अवगुणों वाला ही पुकारे, (किन्तु यदि वह) उस (परमात्मा) को अच्छा लगता है, तो वह (उसके सारे अवगुणों को) क्षमा कर देता है ॥२॥

गुरु की कृपा से दुर्बुद्धि का नाश हो गया है और जहाँ भी (मैं) देखता हूँ वहाँ एक वही (परमात्मा) दिखाई पड़ता है ॥३॥

नानक कहते हैं कि यदि किसी को ऐसी बुद्धि (प्राप्त हो जाती) है तो वह सत्य द्वारा सत्य में समा जाता है ॥८॥२८॥

[२९]

दुपदे

तिनु सरवरड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ ।
पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले ॥ १ ॥
मन एकु न चेतसि मूड़ मना । हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥रहाउ॥
ना हउ जती सती नही पड़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ ।
प्रणवति नानक तिन्ह की सरणा जिन्ह तू नाही वीसरिआ ॥२॥२९॥

मनुष्य का निवास उस सरोवर में हुआ है जहाँ का जल (परमात्मा ने) अग्नि की भाँति (उष्ण) बनाया है। मोह के कीचड़ में (फँसकर) उसके पैर आगे नहीं बढ़ते। मैंने उस मनुष्य को (मोह रूपी कीचड़ में) डूबते हुए देखा है ॥१॥

ऐ मूढ़ मन तू मन में एक (परमात्मा) का चिन्तन नहीं करता। (तुम्हें विदित नहीं है कि) परमात्मा के विस्मरण से तुम्हारे सारे गुण नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

न मैं यती हूँ न सत्यव्रती हूँ और न पढ़ालिखा ही हूँ, मैं तो मूर्ख हो जन्मा हूँ। नानक निवेदन करते हैं कि मैं उनकी शरण में पड़ा हूँ जो तुम्हें विस्मृत नहीं होते ॥२॥२९॥

[३०]

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस । गुरु गुरु एको वेस अनेक ॥१॥
बाबा जै घरि करते कीरति होइ । सो घरु राखु वडाई तोहि ॥१॥रहाउ॥
विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु भइआ ।
सूरजु एको रुति अनेक । नानक करते के केते वेस ॥२॥३०॥

छः शास्त्र हैं [सांख्य, न्याय, वैशेषिक पूर्व मीमांसा अथवा कर्मकाण्ड योग और उत्तर मीमांसा अथवा वेदान्त ।] छः (क्रमशः) इनके आचार्य—प्रवर्तक हैं, [कपिल गौतम कणाद जैमिनि पतंजलि और व्यास] और छः प्रकार की इनकी शिक्षायें हैं। किन्तु इन सभी गुरुओं का गुरु एक (परमात्मा) है (हाँ) उसके वेश अनेक हैं ॥१॥

जिस शास्त्र में सृष्टि-रचयिता की कीर्ति का वर्णन रहता है, (हे प्रभु) उस शास्त्र की रक्षा करो इसमें तुम्हारी महत्ता बढ़ेगी ॥१॥ रहाउ ॥

जिस प्रकार सूर्य एक है और ऋतुएँ अनेक हैं और उनमें विसा चसा घड़ी पहर तिथि वार और महीने पृथक् पृथक् हैं नानक कहते हैं कि उसी प्रकार कर्ता पुरुष तो एक ही है उसके वेश अनेक हैं ॥२॥३० ॥

विशेष : [१५ बार पलकों का गिरना = १ विसा
१५ विसे = १ चसा ।
३० चसे = १ पल ।

६ पल	=	१ घड़ी
७॥ घड़ी	=	१ पहर।
८ पहर	=	१ रात-दिन

तथा वार ७ तिथियाँ १५ ऋतुएँ ६ और महीने १२ होते हैं]

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, घरु ३, महला १

[३१]

लख लसकर लख वाजे नेजे लख उठि करहि सलामु ।
लखा उपरि फुरमाइसि तेरी लख उठि राखहि मानु ॥
जां पति लेखै ना पवै तां सभि निरफल काम ॥१॥
हरि के नाम बिना जगु धंधा ।
जे बहुता समझाईऐ भोला भी सो अंधो अंधा ॥१॥रहाउ॥
लख खटीअहि लख संजीअहि खाजहि लख आवहि लख जाहि ।
जां पति लेखै ना पवै तां जीअ किथै फिरि पाहि ॥२॥
लख सासत समझावणी लख पंडित पड़हि पुराण ।
जां पति लेखै ना पवै तां सभे कुपरवाणु ॥३॥
सच नामि पति ऊपजै करमि नामु करतारु ।
अहिनिसि हिरदै जे वसै नानक नदरी पारु ॥४॥१॥३१॥

(चाहे तुम्हारे) लाखों लश्कर हों लाखों बाजे-भाले हों भाले हों और लाखों (व्यक्ति) उठ कर (तुम्हें) सलाम करते हों लाखों (मनुष्यों के) ऊपर तुम्हारा हुक्म (चलता हो) और लाखों (मनुष्य) उठकर तुम्हारा मान रखते हों (इतना सब ऐश्वर्य होने पर भी) यदि पति परमात्मा के लेखे में नहीं आते तो (तुम्हारे) सारे कार्य निष्फल ही हैं ॥१॥

हरी के नाम के बिना सारा जगत् प्रपंच (धंधे) में (फँसा) है। यदि इस भोले (मूर्ख) (जगत) को बहुत समझाया भी जाय तो भी यह निपट अंधा ही बना रहता है, (और कुछ नहीं समझता) ॥१॥ रहाउ ॥

(चाहे) लाखों प्राप्त किए जायँ लाखों संग्रह किए जायँ लाखों खाए जायँ, लाखों आवें और लाखों जायँ किन्तु यदि पति (परमात्मा) के लेखे में (तुम) नहीं आये तो (तुम्हारा) जीव (न मालूम) किधर फिर कर पड़ता रहेगा ॥२॥

(चाहे) लाखों शास्त्र समझाते रहें पंडितगण लाखों पुराण (आदि धार्मिक ग्रन्थ) पढ़ते रहें (किन्तु) यदि (वे) पति-परमात्मा के लेखे में नहीं आये तो सभी कुछ अप्रामाणिक ही है ॥३॥

कर्तार के नाम की कृपा से (उसके) सच्चे नाम (की प्राप्ति होती है) और इसी के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। नानक कहते हैं कि (यह नाम) अहर्निश हृदय में आ बसता है तो उसकी कृपा से (शिष्य अथवा साधक) (संसार-सागर से) पार हो जाता है ॥४॥१॥३१॥

[३२]

दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु।
उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिउ मेलु ॥१॥

लोका मत को फकड़ि पाइ।
लख मड़िआ करि एकठे एक रती ले भाहि ॥१॥रहाउ॥

पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिआ सचु नामु करतारु।
एथै ओथै आगै पाछै एहु मेरा आधारु ॥२॥

गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राउ।
सचा नावणु तां थीऐ जां अहिनिसि लागै भाउ ॥३॥

इक लोकी होरु छमिछरी ब्राहमणु वटि पिंडु खाइ।
नानक पिंडु बखसीस का कबहू निखूटसि नाहि ॥४॥२॥३२॥

एक (परमात्मा) का नाम ही मेरा दीपक है इसमें दुःख (रूपी) तेल पड़ा है। (नाम रूपी दीपक के) उस प्रकाश ने (दुःख रूपी) उस तेल को सोख लिया है और यमराज से मिलाप होना भी समाप्त हो गया है ॥१॥

लोगो, (मेरे विश्वास की) बदनामी मत उड़ाओ। जिस प्रकार लाखों लकड़ियों के ढेर को आग की एक चिनगारी नष्ट कर देती है, (उसी प्रकार एक नाम पापों की राशि को नष्ट कर देता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

केशव ही (मेरे श्राद्ध) के पिण्ड और पत्तल है और कर्त्तार का सच्चा नाम ही (अन्त्येष्टि-संस्कार की) क्रिया है। इस स्थान पर (इस लोक में) उस स्थान पर (परलोक में) आगे तथा पीछे यही (नाम) मेरा आधार है ॥ २ ॥

(हे प्रभु) तुम्हारी स्तुति—प्रशंसा गंगा और बनारस है आत्मा उसमें रमण करता हुआ (काशी की गंगा में) स्नान करता है। पवित्र स्नान तभी होता है जब अहर्निश (परमात्मा में) भाव—प्रेम लगा रहे ॥ ३ ॥

एक (पिंड) तो देवताओं (के निमित्त प्रदान किया जाता है) और दूसरा पितरों के निमित्त पिंड बनाने (के पीछे) (अर्थात् पिंडदान और श्राद्ध कराने के पश्चात्) ब्राह्मण भोजन करते हैं। परमात्मा की कृपा का (जो) पिंड है (वह) कभी नहीं समाप्त होता है ॥ ४ ॥ २ ॥ ३२ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, घरु ४, महला १

[३३]

देवतिआ दरसन कै ताई दूख भूख तीरथ कीए।
जोगी जती जुगति महि रहते करि करि भगवे भेख भए ॥१॥

तउ कारणि साहिबा रंगि रते ।
तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु न जाही तेरे गुण केते ॥१॥रहाउ॥

दर घर महला हसती घोड़े छोडि विलाइति देस गए ।
पीर पैकांबर सालिक सादिक छोडी दुनीआ थाइ पए ॥२॥

साद सहज सुख रस कस तजीअले कापड़ छोडे चमड़ लीए ।
दुखीए दरदवंद दरि तेरै नामि रते दरवेस भए ॥

खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूतु धोती कीन्ही ।
तू साहिबु हउ सांगी तेरा प्रणवै नानकु जाति कैसी ॥४॥१॥३३॥

(हे प्रभु) देवताओं ने (तेरे) दर्शन के निमित्त दुःख और भूख (सहकर) तीर्थों का निर्माण किया । योगी और यती (अपनी-अपनी) युक्ति में रह कर अपने वेश (धारण) कर-कर भ्रमण करते-रहते हैं ॥ १ ॥

हे साहब तेरे ही कारण (वे) प्रेम में रंगे हुए (भ्रमण करते हैं) । (हे प्रभु) तेरे नाम अनेक हैं, (तेरे) रूप अनन्त हैं और तेरे गुण कितने हैं, (उनका) कथन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(त्यागी लोग) (अपना) स्थान घर महल हाथी घोड़े छोड़ कर (अपने) बादशाह (परमात्मा) के देश में चले गए । [विलाइत अरबी, = बादशाह का मुल्क] । पीर, पैगम्बर मार्ग-प्रदर्शक तथा परमात्मा की स्तुति करनेवाले दुनिया छोड़कर (प्रभु के) स्थान में स्वीकार किए गए ॥ २ ॥

(उन्होंने) स्वाद स्वाभाविक सुख कसैला आदि (छः रसों) का त्याग कर दिया है, वस्त्र त्याग कर मृगचर्म (धारण कर) लिया है, (वे) दुःख और दर्द में तेरे दरवाजे पर खड़े हैं तथा (तेरे) नाम में अनुरक्त होकर दरवेश हुए हैं ॥ ३ ॥

खाल धारण करने वाले खप्पर में भिक्षा लेने वाले दण्डधारी (संन्यासी) मृगचर्म का प्रयोग करने वाले (यती) शिखा सूत्र (यज्ञोपवीत) और धोती पहनने वाले (पंडित गण) (परमात्मा की प्राप्ति के लिए) स्वांगधारी बनते हैं । नानक कहते हैं (हे प्रभु) तू मेरा साहिब है और मैं तेरा स्वांगी हूँ । (तेरी प्राप्ति के निमित्त जातियों के पृथक्-पृथक् वेश और चिह्न हैं, किन्तु इन वेशों में और चिह्नों से किसी जाति की ऊँचाई और निचाई नहीं सिद्ध होती है) । (अतः) (हे प्रभु) जाति कैसी है ? ॥ ४ ॥ १ ॥ ३३ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, घरु ५, महला १

[३४]

भीतरि पंच गुपत मनि वासे । थिरु न रहहि जैसे भवहि उदासे ॥१॥
मनु मेरा दइआल सेती थिरु न रहै ।
लोभी कपटी पापी पाखंडी माइआ अधिक लगै ॥१॥रहाउ॥

फूल माला गलि पहिरउगी हारो ।
मिलैगा प्रीतमु तब करउगी सीगारो ॥२॥
पंच सखी हम एकु भतारो । पेडि लगी है जीअड़ा चालणहारो ॥३॥
पंच सखी मिलि रुदनु करेहा । साहु पजूता प्रणवति नानक लेखा देहा ॥४॥१॥३४॥

(हमारे) भीतर पंच कामादिक मन में (चोर की भाँति) छुपकर बसे रहते हैं। वे स्थिर नहीं रहने देते (सदैव संसार से) विरक्त (पुरुष) की भाँति भ्रमण करते रहते हैं ॥ १ ॥

मेरा मन दयालु (परमात्मा) से स्थिर नहीं रहता। (यह मन) लोभी कपटी पापी, पाखण्डी है-और माया में सदैव लगा रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं अपने) गले में फूलों की माला तथा (रत्नों का) हार पहनूँगी। मेरा प्रियतम जब मिलेगा तब (इसी प्रकार अन्य) शृङ्गार भी करूँगी ॥ २ ॥

(मेरे) पाँच सखियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) हैं और एक पति (जीव) है। प्रारम्भ से ही (यह बात) चली आ रही है कि जीव चलनेवाला है ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि जब जीवात्मा लेखा देने के लिए पकड़ा गया तो पाँचों सखियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) मिलकर रुदन करने लगीं ॥ ४ ॥ १ ॥ ३४ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, महला १, घर ६ ॥

[३५]

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी ।
खिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रावै लाल पिआरी ॥१॥
लाल बहु गुणि कामणि मोही । तेरे गुण होहि न अवरी ॥१॥रहाउ॥
हरि हरि हारु कंठि लै पहिरै दामोदरु दंतु लेई ।
कर करि करता कंगन पहिरै इन बिधि चितु धरेई ॥२॥
मधुसूदनु कर मुंदरी पहिरै परमेसरु पटु लेई ।
धीरजु धड़ी बंधावै कामणि स्रीरंगु सुरमा देई ॥३॥
मन मंदरि जे दीपकु जाले काइआ सेज करेई ।
गिआन राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई ॥४॥१॥३५॥

श्वास रूपी सूत के धागे में मन रूपी मोती को (गूँथ) कर गहना बनाया जाय (और उसे पहना जाय) (अर्थात् श्वास श्वास में परमात्मा का जप किया जाय)। क्षमा का शृंगार (बना कर) स्त्री उसे (अपने) शरीर पर धारण करे, (तो वह प्रियतम की) प्यारी (बनती है) (और अपने) लाल के साथ रमण करती है ॥ १ ॥

लाल के बहुत से गुणों पर स्त्री मोहित होती है। (हे प्रियतम) तेरे गुण और किसी में नहीं हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री) 'हरी-हरी' (के नाम को) कंठ का हार (बनावे) और उसे लेकर पहने 'दामोदर' (के नाम का) वस्त्र-बंधन बनावे हाथ के निमित्त कंगन 'कर्ता' को बना कर पहने' इस विधि से (अपना चंचल मन) (नाम में) टिकावे ॥ २ ॥

(वह जीवात्मा रूपी स्त्री) 'मधुसूदन' को हाथ की मुंदरी (बना कर) पहने और 'परमेश्वर' के पट (रेशमी वस्त्र) को ग्रहण करे; स्त्री 'धैर्य' को बड़ी (मांग की पट्टी) (बना कर) गूंथे 'श्रीरंग' (के नाम का) 'सुरमा' (नेत्रों में लगावे) ॥ ३ ॥

यदि (वह) (अपने) मन-रूपी मंदिर में (विवेक का) दीपक जलावे और अपनी काया को (प्रियतम के मिलने की) सेज बनावे और जब ज्ञान के राजा (परमात्मा) उसकी सेज पर आवें तभी (वह) (प्रियतम के साथ) रमण कर सकती है ॥ ४ ॥ १ ॥ ३५ ॥

[३६]

कीता होवै करे कराइआ तिसु किआ कहीऐ भाई ।
जो किछु करणा सो करि रहिआ कीते किआ चतुराई ॥१॥
तेरा हुकमु भला तुधु भावै ।
नानक ता कउ मिलै वडाई साचे नामि समावै ॥१॥रहाउ॥
किरतु पइआ परवाणा लिखिआ बाहुड़ि हुकमु न होई ।
जैसा लिखिआ तैसा पड़िआ मेटि न सकै कोई ॥२॥
जे को दरगह बहुता बोलै नाउ पवै बाजारी ।
सतरंज बाजी पकै नाही कची आवै सारी ॥३॥
ना को पड़िआ पंडितु बीना ना को मूरखु मंदा ।
बंदी अंदरि सिफति कराए ता कउ कहीऐ बंदा ॥४॥२॥३६॥

(जीव) (परमात्मा का ही) किया हुआ है और उसी का कराया करता है, (अतः) हे भाई (उस परमात्मा की रचना के संबंध में) क्या कहा जाय ? जो कुछ (जीव को) करने को है (वही वह) करता है। किए हुए कार्य को करने में (निमित्त बन जाने में) (जीव की) क्या चतुराई है ? ॥ १ ॥

(हे प्रभु) तेरा हुक्म भला है (क्योंकि इसका मानना) तुझे अच्छा लगता है। नानक कहते हैं कि (जो प्रभु का हुक्म मानता है) उसी को बड़ाई मिलती है और वह सच्चे नाम में समाहित हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) तुम्हारे परवाने (हुक्म) के लिखने (के अनुसार) (हम जीवात्माओं की) किरत निर्मित होती है। [विशेष 'किरति' पूर्वजन्म के किए हुए कर्मों के अनुसार परमात्मा के विधान के अनुसार कर्मों का संस्कार बनना 'किरत' कहलाता है।] फिर कोई हुक्म नहीं होता है। जैसा लिखा रहता है, वही घटित होता है, कोई उसे मेट नहीं सकता है ॥ २ ॥

यदि कोई (परमात्मा के) दरवाजे पर बहुत बोलता है, तो उसका नाम 'बाजारी' पड़ जाता है। [बाजारी=बाजार में इधर-उधर भटकने वाला, भाड़, गंवार]। (जीवन रूपी) शतरंज की गोटें (ठीक से [illegible] नहीं रहती) अतएव (बाजी) सिद्ध नहीं होती वह कच्ची ही रहती है ॥ ३ ॥

न कोई पढ़ा हुआ पंडित और बुद्धिमान् है और न कोई मूर्ख और बुरा है। (जिसे प्रभु) सेवा भाव में (रख कर) अपनी स्तुति कराता है, (वही) (वास्तविक) बन्दा (सेवक) है ॥ ४ ॥ २ ॥ ३६ ॥

[३७]

गुर का सबदु मनै महि मुंद्रा खिंथा खिमा हढावउ ।
जो किछु करै भला करि मानउ सहज जोग निधि पावउ ॥१॥
बाबा जुगता जीउ जुगह जुग जोगी परम तंत महि जोगं ।
अंम्रितु नामु निरंजन पाइआ गिआन काइआ रस भोगं ॥१॥रहाउ॥
सिव नगरी महि आसणि बैसउ कलप तिआगी बादं ।
सिंङी सबदु सदा धुनि सोहै अहिनिसि पूरै नादं ॥२॥
पतु वीचारु गिआन मति डंडा वरतमान बिभूतं ।
हरि कीरति रहरासि हमारी गुरमुखि पंथु अतीतं ॥३॥
सगली जोति हमारी संमिआ नाना वरन अनेकं ।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रहम लिव एकं ॥४॥३॥३७॥

(हे योगी) गुरु के शब्द को मन में (बसाना ही) मेरी मुद्रा है और (मैं) क्षमा की कंथा (के रूप में) ओढ़ता हूँ। "(परमात्मा) जो कुछ करता है, उसे भला करके मानना ही" (मेरा) सहज योग है (और इसी योग के द्वारा) (अलौकिक) निधि प्राप्त करता हूँ ॥ १ ॥

हे बाबा (जो) जीव (परमात्मा से) युक्त है (वह) युग-युगान्तरों का योगी है, (क्योंकि) उसका योग परम तत्त्व (हरि) से हुआ है। उसने निरंजन (माया-रहित) के अमृतमय नाम को प्राप्त कर लिया है और ही उसे शरीर में (अमृत) रस के आस्वादन (की प्रतीति करता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) शिव नगरी (आत्म-स्वरूप) में आसन लगा कर बैठता हूँ (और सारे) कल्पनाओं तथा वादविवाद—झगड़ों को (मैंने) त्याग दिया है। (गुरु का) शब्द (मेरे लिए) सिङ्गी की शाश्वत ध्वनि है (यह) सुहावना और पूर्णनाद अहर्निश होता रहता है ॥ २ ॥

विचार ही (मेरा) पात्र है, ज्ञान (बुद्धिमत्ता) की बुद्धि (वृत्ति) मेरा डंडा है (परमात्मा को सर्वत्र) विद्यमान समझना यही मेरी विभूति है। हरि की कीर्ति का गान हमारी मर्यादा (प्रथा रीति अथवा परम्परा) है तथा (माया से) अतीत अवस्था परे रहना ही गुरमुखों का पंथ है ॥ ३ ॥

नाना वर्णों और अनेक (रूपों) में (जो परमात्मा की) सर्वव्यापिनी ज्योति है (वही) हमारी सम्पारी है। [विशेष —सम्पारी = योगी भैरवनाद की सामग्री रखने के लिए लकड़ी की बनी हुई एक वस्तु विशेष का आधार लेते हैं। इसे हाथों से पकड़ कर भैरवनाद को सीधा रखते हैं। शरीर के बचने पर यह विश्राम में सहायक सिद्ध होती है।] नानक कहते हैं हे भरथरी सुनो (वास्तविक) योगी (वही) है जो परब्रह्म में एकनिष्ठ ध्यान (लगाता है)। ॥ ४ ॥ ३ ॥ ३७ ॥

[३८]

गुड़ करि गिआनु धिआनु करि धावै करि करणी कसु पाईऐ ।
भाठी भवनु प्रेम का पोचा इतु रसि अमिउ चुआईऐ ॥ १ ॥
बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रंग रचि रहिआ ।
अहिनिसि बनी प्रेम लिव लागी सबदु अनाहद गहिआ ॥१॥रहाउ॥
पूरा साचु पिआला सहजे तिसहि पीआए जा कउ नदरि करे ।
अमृत का वापारी होवै किआ मदि छूछै भाउ धरे ॥२॥
गुर की साखी अंमृत बाणी पीवत ही परवाणु भइआ ।
दर दरसन का प्रीतमु होवै मुकति बैकुंठै करै किआ ॥३॥
सिफती रता सद बैरागी जूऐ जनमु न हारै ।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी खीवा अमृत धारै ॥४॥४॥३८॥

(परमात्मा के) ज्ञान को गुड़ बनाओ, ध्यान को महुआ और शुभ करणी को बबूल की छाल—(इन सब को एक में) मिला दो। श्रद्धा (भवनु<भावनी=श्रद्धा) की भट्ठी और प्रेम को पोचा [पोचा=भाप ठंडी रखने के लिए अर्क निकालनेवाले पात्र के ऊपरी भाग मे गीली मिट्टी और गीले कपड़े लपेट देते हैं] बनाओ (इस प्रकार) अमृत रस (वारुणी मदिरा) चुआओ ॥ १ ॥

हे बाबा नाम रूपी रस पीकर मन मतवाला हो जाता है और सहजावस्था के रंग में वह रंग जाता है। अहर्निश प्रेम की लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग गई है (और मन ने) अनाहत शब्द को ग्रहण कर लिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिसके ऊपर (प्रभु) कृपादृष्टि करता है, उसी को पूर्ण सत्य का प्याला सहज भाव से पिलाता है। (जो) अमृत (मदिरा) का व्यापारी होता है, (वह) तुच्छ (सांसारिक) मद से क्यों प्रेम (भाउ=भाव) करे ? ॥ २ ॥

गुरु की शिक्षा अमृत-वाणी है (उसके) पीते ही (शिष्य) प्रामाणिक हो जाता है। (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) दरवाजे पर (उसके) दर्शन का प्रेमी होता है वह मुक्ति और वैकुण्ठ क्या करेगा ? [विशेष देखिए—"हरि दरसन के जन मुकति न मांगहि" श्री गुरु ग्रंथ साहिब धनिआसरी महला ४, पृष्ठ १३२४] ॥ ३ ॥

(जो परमात्मा की) स्तुति में रत है वह सर्वदा वैरागी है (वह जीवन रूपी) जुए की बाजी में (अपना) जन्म नहीं हारता है। नानक कहते हैं कि (हे) भरथरी जोगी (नाम रूपी) अमृत की धार से योगी मस्त (हो जाता है) ॥ ४ ॥ ४ ॥ ३८ ॥

[३९]

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ ॥
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ ॥१॥
करता तू सभना का सोई ।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई ॥१॥रहाउ॥

सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई ।
रतन विगाड़ि विगोए कुतीं मुइआ सार न काई ।
आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई ॥२॥
जे को नाउ धराए वडा साद करे मनि भाणे ।
खसमै नदरी कीड़ा आवै जेते चुगै दाणे ॥
मरि मरि जीवै ता किछु पाए नानक नामु वखाणे ॥३॥५॥३९॥

विशेष —बाबर ने १५२१ ई० में ऐमनाबाद पर आक्रमण किया और उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। गुरु नानक देव ने इस आक्रमण को स्वयं अपनी आँखों से देखा था। निम्नलिखित पद में उसी का संकेत है —

अर्थ —(हे परमात्मा) (बाबर ने खुरासान पर शासन किया) किन्तु खुरासान को (तो अपना समझ कर) (तूने) बचा रक्खा और (बेचारे) हिन्दुस्तान को (बाबर के आक्रमण के द्वारा) आतंकित किया। हे कर्त्ता (तू इन सब बातों का जिम्मेदार है) पर अपने ऊपर दोष न लेने के लिए मुगलों को यम रूप में बना कर हिन्दुस्तान पर आक्रमण कराया। इतनी मार-काट हुई (कि लोग) करुणा से चिल्ला उठे (किन्तु हे प्रभु) तुझे क्या (जरा भी) दर्द नहीं उत्पन्न हुआ ? ॥ १ ॥

(हे स्वामी) तू तो सभी का कर्त्ता है (केवल मुगलों का ही नहीं हिन्दुओं का भी है)। यदि (कोई) शक्तिशाली (किसी) शक्तिशाली को मारता है तो मन में क्रोध नहीं उत्पन्न होता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पर यदि शक्तिशाली सिंह (निरपराध) पशुओं के झुण्ड पर (आक्रमण कर) उन्हें मारता है (तो उन पशुओं के) स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिए। [यहाँ निरपराध पशुओं से तात्पर्य निरीह प्रजा से है और उसके स्वामी का अभिप्राय लोधी-पठान शासकों से है] इन पठान कुत्तों ने हीरे (के समान हिन्दुस्तान) को बिगाड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया है [तात्पर्य यह कि पठान शासक मुगलों के सामने टिके नहीं और हिन्दुस्तान जैसा बहुमूल्य देश ऐसे ही गँवा बैठे]। इनके मरने के पश्चात्, इनको कोई खोज-खबर नहीं करता। (इस प्रकार) (हे प्रभु) (तू) स्वयं ही मिलाता है और (फिर तू ही) वियोग भी कराता है (इन सब संयोग और वियोग के रूप में) अपनी बड़ाई (आप ही) देखता है । २ ॥

यदि कोई अपना बड़ा नाम रखता है और मन में बड़े स्वाद का अनुभव करता है किन्तु स्वामी (परमात्मा) की दृष्टि में वह निरा कीड़ा है जो दाने चुगता फिरता है। बार-बार (अहंभाव से) मर कर जीवित हो तभी (कोई) कुछ पा सकता है। 'नानक' नाम की प्रशंसा करता है ॥ ३ ॥ ५ ॥ ३९ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु आसा, महला १, घरु २ ॥

असटपदीआ [१]

उतरि अवघटि सरवरि न्हावै । बकै न बोलै हरिगुन गावै ॥
जलु आकासी सुंनि समावै । रसु सतु झोलि महा रसु पावै ॥१॥

ऐसा गिआनु सुनहु अभ मोरे । भरिपुरि धारि रहिआ सभ ठउरे ॥१॥रहाउ॥
सचु ब्रतु नेमु न कालु संतावै । सतिगुर सबदि करोधु जलावै ॥
गगनि निवासि समाधि लगावै । पारसु परसि परम पदु पावै ॥२॥
सचु मन कारणि ततु बिलोवै । सुभर सरवरि मैलु न धोवै ।
जै सिउ राता तैसो होवै । आपे करता करे सु होवै ॥३॥
गुर हिव सीतलु अगनि बुझावै । सेवा सुरति बिभूत चड़ावै ।
दरसनु आपि सहज घरि आवै । निरमल बाणी नादु वजावै ॥४॥
अंतरि गिआनु महा रसु सारा । तीरथ मजनु गुर वीचारा ॥
अंतरि पूजा थानु मुरारा । जोती जोति मिलावणहारा ॥५॥
रसि रसिआ मति एकै भाइ । तखत निवासी पंच समाइ ॥
कार कमाई खसम रजाइ । अविगत नाथु न लखिआ जाइ ॥६॥
जल महि उपजै जल ते दूरि । जल महि जोति रहिआ भरपूरि ॥
किसु नेड़ै किसु आखा दूरि । निधि गुण गावा देखि हदूरि ॥७॥
अंतरि बाहरि अवरु न कोइ । जो तिसु भावै सो फुनि होइ ॥
सुणि भरथरि नानकु कहै बीचारु । निरमल नामु मेरा आधारु ॥८॥१॥

(योगी विषयों की) दुर्गम घाटी से पार कर (सत्संग के) सरोवर में स्नान करे। (वह) न कुछ बके न बोले (मौन होकर) हरि का गुणगान करता रहे। (जिस प्रकार) जल आकाश-मण्डल में समाया रहता है, (उसी प्रकार) (योगी) प्रभु (या शून्य-मण्डल) में समाया रहे। सच्चे (नाम रूपी) रस को मथ कर महा आनन्द को प्राप्त करे॥ १ ॥

ऐ मेरे अन्तःकरण ऐसे ज्ञान को सुनो। (हरी) सभी स्थानों में परिपूर्ण है (और सब को) धारण कर रहा है॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि कोई साधक) सत्य (परमात्मा) को व्रत-नियम करके (धारण कर ले) (तो उसे) काल संताप नहीं देता। सद्गुरु के शब्द द्वारा (वह साधक) क्रोध को भी जला दे और दशम द्वार के निवास स्थान में (सहज) समाधि लगा कर बैठ जाय। (इस प्रकार) (गुरु रूपी) पारस मणि का स्पर्श करके परम पद को प्राप्त करे॥ २ ॥

(साधक) मन की परम शान्ति और सुख के लिए (परम) तत्व (परमात्मा) का मंथन करे, परिपूर्ण सरोवर में (अपने को) इस प्रकार धोवे कि (रंचमात्र) मैल न रहे, जिस (प्रभु) से प्रेम करता है, (उसी के) समान हो जाय (वह परमात्मा की मर्जी के ऊपर अपने को छोड़ दे और यह समझे कि) जो कुछ कर्तार करता है, (वही) होता है॥ ३ ॥

गुरु बर्फ (के समान) शीतल है, (साधक उसकी शीतलता में अपनी त्रिविध) अग्नि (दैहिक दैविक एवं भौतिक तापों) को बुझा दे। सेवा की वृत्ति को विभूति (बनाकर शरीर पर) लगावे। (तीनों गुणों को लाँघ कर) अपनी सहजावस्था के घर में आना ही (उसका) दर्शन हो। पवित्र (परमात्मा की कीर्ति का) वाणी (द्वारा गुणगान करना) (शृंगी) बजाने का नाद हो॥४॥

आन्तरिक ज्ञान का होना ही महान् रस का तत्त्व हो तथा गुरु (के वचनों पर) विचार ही तीर्थस्नान हो । (मन) के अन्तर्गत मुरारी (परमात्मा) का निवास स्थान है (इसी को समझना) (वास्तविक) पूजा है । (परमात्मा की) ज्योति के साथ (अपनी) ज्योति मिला देना (वास्तविक योग है) ॥५॥

बुद्धि में एक भाव का होना ही रस में अनुरक्त होना है । वह श्रेष्ठ पुरुष तख्त पर बैठने वाले (राजा—परमात्मा) में समा जाता है । वह स्वामी के आज्ञानुसार कर्म करता है । अव्यक्त (परमात्मा) (जो सभी का) नाथ (स्वामी है) देखा नहीं जा सकता है ॥६॥

(जिस प्रकार) जल में उत्पन्न होकर भी कमल जल से निर्लिप्त रहता है, (उसी प्रकार) (संसार-रूपी) जल में (परमात्मा की) ज्योति है (और वह सर्वत्र परिपूर्ण और निर्लेप है) । (अतएव) मैं कैसे कहूँ (कि फलाँ व्यक्ति) (परमात्मा के) समीप है और (फलाँ व्यक्ति) (परमात्मा से) दूर है (फलाँ व्यक्ति अच्छा है और फलाँ बुरा है) ? (मैं तो इन गुणों के भाण्डार परमात्मा को) सर्वत्र विराजमान देख कर उसका गुणगान करता हूँ ॥७॥

भीतर और बाहर (उस परमात्मा को छोड़ कर) और कोई नहीं है जो उसे अच्छा लगता है वही फिर होता है । ए भरथरी (योगी) सुनो नानक विचार (की बातें) कह रहा है कि (प्रभु का) निर्मल नाम ही मेरा (नानक का) आधार है ॥८॥१॥

[२]

सचि जप सचि तप सम चतुराई । ऊभड़ि भरमै राहि न पाई ॥
बिनु बूझे को थाइ न पाई । नाम बिहूणे माथे छाई ॥१॥
साच धणी जगु आइ बिनासा । छूटसि प्राणी गुरमुखि दासा ॥१॥रहाउ॥
जगु मोहि बाधा बहुती आसा । गुरमती इकि भए उदासा ॥
अंतरि नामु कमलु परगासा । तिन्ह कउ नाही जम की त्रासा ॥२॥
जगु त्रिय जितु कामणि हितकारी । पुत्र कलत्र लगि नामु बिसारी ॥
बिरथा जनमु गवाइया बाजी हारी । सतिगुरु सेवे करणी सारी ॥३॥
बाहरहु हउमै कहै कहाए । अंदरहु मुकतु लेपु कदे न लाए ।
माइआ मोहु गुरसबदि जलाए । निरमल नामु सद हिरदै धिआए ॥४॥
धावतु राखै ठाकि रहाए । सिख संगति करमि मिलाए ।
गुर बिनु भूलो आवै जाए । नदरि करे संजोगि मिलाए ॥५॥
रूड़ो कहउ न कहिआ जाई । अकथ कथउ नह कीमति पाई ॥
सभ दुख तेरे सूख रजाई । सभि दुख मेटे साचै नाई ॥६॥
कर बिनु वाजा पग बिनु ताला । जे सबदु बुझै ता सचु निहाला ॥
अंतरि साचु सभे सुख नाला । नदरि करे राखे रखवाला ॥७॥
त्रिभवण सूझै आपु गवावै । बाणी बूझै सचि समावै ॥
सबदु वीचारे एक लिव तारा । नानक धनु सवारणहारा ॥८॥२॥

सारे जप सारे तप तथा सारी चतुराइयाँ (बिना भगवद्भक्ति के व्यर्थ हैं) । (उन सब के कारण से परमात्मा की प्राप्ति ठीक उसी भाँति नहीं होती जिस भाँति) उजाड़ स्थान

में भटकने से मार्ग की प्राप्ति नहीं होती। बिना (परमात्मा को समझे हुए) कोई भी (वास्तविक) स्थान नहीं पाता है। नाम के बिना मरने में राख पड़ती है ॥१॥

सत्य (परमात्मा ही) धनी है—शाश्वत है, जगत् तो उत्पन्न और विनष्ट होता रहता है। प्राणी गुरु के द्वारा सेवक बन कर मुक्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

जगत् मोह में बँध कर बहुत आशाएँ (करता है) (परन्तु) कुछ लोग गुरु की शिक्षा द्वारा (जगत् में) उदासीन—विरक्त हो जाते हैं। (ऐसे लोगों के) हृदय में नामरूपी कमल विकसित हुआ है और उन्हें यम का भय नहीं रहता है ॥२॥

संसार स्त्री के द्वारा जीता गया है (और) वह स्त्री का ही प्रेमी है। पुत्र, कलत्र के निमित्त उसने नाम को भुला दिया है। (इन प्रपंचों में पड़ कर उसने) व्यर्थ ही जन्म गँवा दिया और (जीवन रूपी) बाजी हार गया। (शिष्य) सद्गुरु की आराधना करे तभी करनी उत्तम होती है ॥३॥

(सद्गुरु की आराधना करनेवाला व्यक्ति) बाह्य (व्यवहारों में) अहंकार करता-कराता (सा प्रतीत होता है)। (किन्तु) भीतर से वह अहंकार-विहीन होने के कारण) मुक्त है (और) कभी लिपायमान नहीं होता है। (वह) माया और मोह को गुरु के शब्द द्वारा जला देता है और (परमात्मा का) निर्मल नाम सदैव (अपने) हृदय में ध्यान करता है ॥४॥

(जो व्यक्ति) (मन को विषयों में से) दौड़ने से रोक रखते हैं, ऐसे सिक्खों की संगति (परमात्मा की) बड़ी कृपा से ही मिलती है। (मनुष्य) गुरु के बिना (इस संसार में) भटकता रहता है (और बारंबार इस जगत्) में आता-जाता रहता है। (परमात्मा) कृपा करके संयोग से (अपने में) मिला लेता है ॥५॥

(मैं) सुन्दर (हरी का) वर्णन करना (चाहता) हूँ (पर) कर नहीं पाता। अकथनीय (परमात्मा) को कहना (तो अवश्य चाहता) हूँ (पर) उसकी कीमत नहीं पा सकता हूँ। (हे प्रभु) समस्त दुःख तेरी आज्ञा मानने से मुक्त (हो गए) सच्चे नाम में समस्त दुःखों को मिटा दिया ॥६॥

यदि (शिष्य को) नाम की समझ आ जाय (तो) सचमुच ही (वह) निहाल हो जाता है। (वह आन्तरिक संगीत में निमग्न हो जाता है) (उसे) हाथों के बिना बाजा बजता हुआ (प्रतीत होता है) और पैरों के बिना पूरी ताल (की अनुभूति होती है)। (जिसके) अंतःकरण में सत्य (परमात्मा) है, (उसके) साथ सारे सुख हैं। रक्षक (प्रभु) (उसके ऊपर) कृपा-दृष्टि करके (सदैव) (उसकी) रक्षा करता है ॥७॥

(यदि कोई अपने) आत्मपन को गँवा दे, (तो) त्रिभुवन की समझ आ जाती है। (यदि) (गुरु की) वाणी समझने लगे तो (वह) सत्य (परमात्मा) में समा जाय। (जो) एकनिष्ठ ध्यान से (गुरु के) शब्द को विचारता है, (ऐसे गुरुमुख को संवारने वाला (हरी) धन्य है ॥८॥२॥

[३]

सेव कमाण जिसन निमि मानु । मनि मानिऐ सचु सुरति बखानु ॥

बखसी बखसो गति पति नाउ । सेव मसत अनेतु अपार ॥१॥

ऐसा साचा तूं एको जाणु । जंमणु मरणा हुकमु पछाणु ॥१॥रहाउ॥
माइआ मोहि जगु बाधा जमकालि । बांधा छूटै नामु सम्हालि ॥
गुरु सुखदाता अवरु न भालि । हलति पलति निबही तुधु नालि ॥२॥
सबदि मरै तां एक लिव लाए । अचरु चरै तां भरमु चुकाए ।
जीवन मुकति मनि नामु वसाए । गुरमुखि होइ त सचि समाए ॥३॥
जिनि धरि साजी गगनु अकासु । जिनि सभ थापी थापि उथापि ॥
सरब निरंतरि आपे आपि । किसै न पूछे बखसे आपि ॥४॥
तू पुरु सागरु माणकु हीरु । तू निरमलु सचु गुणी गहीरु ॥
सुखु मानै भेटै गुर पीरु । एको साहिबु एकु वजीरु ॥५॥
जगु बंदी मुकते हउ मारी । जगि गिआनी विरला आचारी ॥
जगि पंडितु विरला वीचारी । बिनु सतिगुरु भेटे सभ फिरै अहंकारी ॥६॥
जगु दुखीआ सुखीआ जनु कोइ । जगु रोगी भोगी गुण रोइ ॥
जगु उपजै बिनसै पति खोइ । गुरमुखि होवै बूझै सोइ ॥७॥
महघो मोलि भारि अफारु । अटल अछलु गुरमती धारु ॥
भाइ मिलै भावै भइकारु । नानकु नीचु कहै बीचारु ॥८॥३॥

(परमात्मा के सम्बन्ध में) असंख्य लेख लिखे गए हैं (और लिखने वाले) लिख लिख कर मान करते हैं। (किन्तु यदि) मन मान जाय (अपनी चंचलता का त्याग करके शान्त हो जाय) तभी सत्य की सुरति (ध्यान) का कुछ वर्णन हो सकता है (नहीं तो) कथन करना, वर्णन करना, पढ़ना (आदि) (एक प्रकार का) बोझ ही है। (परमात्मा के संबंध में) लेख तो असंख्य हैं, (किन्तु) अपार (हरि) लेखों से परे है ॥१॥

ऐसे सच्चे (परमात्मा) को तुम एक ही समझो। जन्म-मरण को (उस प्रभु का) हुक्म ही समझो ॥१॥ रहाउ ॥

माया के मोह एवं काल (रूपी) यम के बंधनों में (समस्त) जगत् बँधा हुआ है। (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) नाम को स्मरण करता है, (वही) बंधनों से छूटता है। सुख का देनेवाला (एक मात्र) गुरु ही है, औरों को मत खोजो। इस लोक और परलोक में (गुरु ही) तुम्हारे साथ निबहेगा (वही सच्चा साथी होगा) ॥२॥

(यदि कोई) (गुरु के) शब्द में (अपने आपेपन से) मरता है तभी (वह) (परमात्मा के) एकनिष्ठ ध्यान में लग सकता है। (जब कोई) न चलनेवाले (अचर) (परमात्मा) में विचरण करता है (तभी उसका) भ्रम समाप्त होता है। (वह) मन में नाम बसा कर जीवन्मुक्त (हो जाता है)। (जब कोई) गुरमुख होता है तब (वह) सत्य (परमात्मा) में समा जाता है ॥३॥

जिसने धरती आकाश (आदि को) रचा है जिसने सब को स्थापित किया है और स्थापित करके (जो) (फिर उन्हें) ढहा देता है (वह परमात्मा) अपने आप ही सभी के अंतर (व्याप्त हो रहा है)। वह किसी से पूछता नहीं (स्वयं ही) (सब को) देता है ॥४॥

(हे हरि) तू ही पूर्ण सागर है तू ही माणिक्य हीरा है। तू ही निर्मल सच्चा और गुणों से गंभीर है। (जो व्यक्ति) गुरु-पीर का दर्शन करता है वही सुख पाता है (और उसे

ही यह बोध होता है कि) (वही परमात्मा) प्राकृत है और वही वजीर है (अर्थात् वही प्रभु स्वयं ही सब कुछ है) ॥५॥

संसार बंदी (के समान) है, (जिन्होंने) अहंकार को मारा है, (वे ही) मुक्त हैं। जगत् में (वाचक) ज्ञानी (तो बहुत से हैं) (किन्तु उस ज्ञान पर वास्तविक) आचरण करने वाला कोई विरला ही है। जगत् मे पंडित (तो बहुत से हैं) (किन्तु) विचारवान (पंडित) कोई विरला ही है। बिना सद्गुरु के मिले सभी अहंकारी (बन कर) फिरते रहते हैं ॥६॥

(सारा) जगत दुःखी है, कोई विरला ही पुरुष सुखी है। (समस्त) जगत रोगी और भोगी है और गुणों (त्रिगुणात्मक गुण—सत्व रज तम) में रोता रहता है। (इस प्रकार) प्रतिष्ठा खोकर जगत उपजता-विनसता रहता है। जो गुरु द्वारा दीक्षित होता है, वही (इसके रहस्य) को समझता है ॥७॥

(हरी) कीमत में (बहुत) महंगा है और (उसका) वजन बहुत अधिक है। (वह) अटल और अचल है (किन्तु) गुरु की शिक्षा द्वारा धारण किया जा सकता है। यह प्रेम (भय) के द्वारा मिलता है और (उससे) भय करके किए हुए कर्म (उसे) अच्छे लगते हैं। गुरु नानक विचार करके (उपर्युक्त) बातों को कहता है ॥८॥३॥

[४]

एकु मरै पंचे मिलि रोवहि। हउमै जाइ सबदि मलु धोवहि ॥
समझि सूझि सहज घरि होवहि। बिनु बूझे सगली पति खोवहि ॥१॥
कउणु मरै कउणु रोवै ओही। करण कारण सभसै सिरि तोही ॥१॥रहाउ॥
मूए कउ रोवै दुखु कोइ। सो रोवै जिसु बेदन होइ ॥
जिसु बीती जाणै प्रभ सोइ। आपे करता करे सु होइ ॥२॥
जीवत मरणा तारे तरणा। जै जगदीस परमगति सरणा ॥
हउ बलिहारी सतिगुर चरणा। गुरु बोहिथु सबदि भै तरणा ॥३॥
निरभउ आपि निरंतरि जोति। बिनु नावै सूतकु जगि छोति ॥
दुरमति बिनसै किआ कहि रोति। जनमि मूए बिनु भगति सरोति ॥४॥
मूए कउ सचु रोवहि मीत। त्रैगुण रोवहि नीता नीत ॥
दुखु सुखु परहरि सहजि सुचीत। तनु मनु सउपउ क्रिसन परीति ॥५॥
भीतरि एकु अनेक असंख। करम धरम बहु संख असंख ॥
बिनु भै भगती जनमु बिरंथ। हरि गुण गावहि मिलि परमारंथ ॥६॥
आपि मरै मारे भी आपि। आपि उपाए थापि उथापि ॥
स्रिसटि उपाई जोती तू जाति। सबदु वीचारि मिलणु नही भ्राति ॥७॥
सूतकु अगनि भखै जगु खाइ। सूतकु जलि थलि सभ ही थाइ ॥
नानक सूतकि जनमि मरीजै। गुरपरसादी हरि रसु पीजै ॥८॥४॥

एक (मनुष्य) मर जाता है तो पाँच (सम्बन्धी) मिलकर रोते हैं, (वे पाँच संबंधी हैं—माता, पिता, भाई स्त्री और पुत्र हैं) [अथवा इसका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—एक मन मर जाता है तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द स्पर्श रूप रस और गंध इस

लिये रोने लगते हैं कि हमें भोगने वाला मन नहीं रहा। अब हमें कौन भोगेगा] ? उस (व्यक्ति) का अहंकार नष्ट हो जाता है, (जो) (गुरु के) शब्द में (अपने) मनों को बो देता है। (वह) (वास्तविकता को) समझ-बूझ कर (अपने आत्म स्वरूप रूपी) घर में निवास करता है। (जो) (वास्तविकता को) नहीं समझते हैं (वे अपनी) सारी प्रतिष्ठा खो देते हैं) ॥१॥ रहाउ ॥

कौन मरता है ? कौन उसके निमित्त (हाय हाय करके) रोता है ? (हे हरी) सब के ऊपर तू ही करण-कारण है (तू ही सर्व सामर्थ्यवान् है) ॥१॥ रहाउ ॥

मृत (व्यक्ति) के लिए दुःख से कोई ही रोता है। रोता वही है, जिसे (अपना) दुःख होता है। जिसके ऊपर बीतती है, (वही) उस प्रभु को जानता है (और यह अनुभव करता है कि) जो कुछ कर्त्ता (परमात्मा) करता है, वही होता है ॥२॥

(यदि कोई) जीवित अवस्था में ही (अहंकार भाव से) मर जाता है, (तो वह स्वयं तो) तरता ही है, (दूसरों को भी) तार देता है। (हे) जगदीश, (तेरी) जय हो, (तेरी) शरण में (आने से) परम गति (प्राप्ति होती है)। मैं सद्गुरु के चरणों पर बलिहारी हूँ। गुरु जहाज है; उसके शब्द के द्वारा भव (मैं)— संसार तरा जाता है ॥३॥

(वह परमात्मा) आप ही निर्भय है (उसकी) ज्योति (घट घट में) निरन्तर (व्याप्त हो रही है)। बिना नाम के संसार में सूतक और छूत है। दुर्बुद्धि (के कारण) (जगत्) नष्ट होता है, (जब दोष अपना ही है तब) क्या कह कर रोता है ? बिना भक्ति और भजन के लोग) जन्मते मरते रहते हैं ॥४॥

मृत (व्यक्ति) के लिए मित्र ही सचमुच रोते हैं। त्रिगुण म फँसे कर तो (लोग) नित्य प्रति रोते रहते हैं। (वास्तव में मनुष्य का लक्ष्य यह होना चाहिए) कि (वह) दुःख सुख त्याग कर सहज भाव से ही सुन्दर चितलाता हो जाय। (मैं तो अपना) तन मन परमात्मा की प्रीति में अर्पित करता हूँ ॥५॥

(सृष्टि में) अनेक और असंख्य (जीव) है (किन्तु उन सब के) भीतर एक (हरी ही) है। उन जीवों के कर्म और धर्म (विभिन्न शास्त्रों एवं मत मतान्तरों के अनुसार) अपार और अनंत (अर्थात् अनन्त) हैं। (किन्तु) बिना (परमात्मा के) भय और भक्ति के जन्म व्यर्थ ही है। (अतएव) परमार्थी (पुरुष) (परस्पर) मिलकर परमात्मा का गुणगान करते हैं ॥ ६ ॥

(हरी सब कुछ है) (वह) आप ही मरता है और आप ही मारता है। आप ही उत्पन्न करता है, आप ही स्थापित कर के (उसका) संहार भी करता है। (हे प्रभु), तूने ही सृष्टि उत्पन्न की है तू ही ज्योति (प्रकाश) है (और) तू ही जाति है। (गुरु के) शब्द को विचार कर (परमात्मा से) मेल होता है, नहीं तो भ्रान्ति ही (रहती है) (और उस भ्रान्ति के कारण जीव जगत् में भटकता रहता है) ॥ ७ ॥

(वास्तविक) सूतक [मरणोपरान्त जो सूतक हिन्दुओं के यहाँ माना जाता है] (तृष्णा की) अग्नि है (जो समस्त) जगत् को भक्षण कर रही है। (यह सूतक) जल स्थल और सभी स्थानों में है। नानक कहते हैं (कि इसी सूतक में) (लोग) जन्मते और मरते रहते हैं। गुरु की कृपा से ही (इस सूतक का त्याग कर) हरि प्रेम का रस पिया जाता है ॥ ८॥४॥

[५]

आपु बीचारै सु परखै हीरा । एक द्रिसटि तारे गुर पूरा ॥
गुरु मानै मन ते मनु धीरा ॥१॥
ऐसा साहु सराफी करै । साची नदरि एक लिव तरै ॥१॥ रहाउ ॥
पूंजी नामु निरंजन सारु । निरमलु साचि रता पैकारु ॥
सिफति सहज घरि गुरु करतारु ॥२॥
आसा मनसा सबदि जलाए । राम नराइणु कहै कहाए ।
गुर ते वाट महलु घरु पाए ॥३॥
कंचन काइआ जोति अनूपु । त्रिभवण देवा सगल सरूपु ॥
मै सो धनु पलै साचु अखूटु ॥४॥
पंच तीनि नव चारि समावै । धरणि गगनु कल धारि रहावै ॥
बाहरि जातउ उलटि परावै ॥५॥
मूरखु होइ न आखी सूझै । जिहवा रसु नही कहिआ बूझै ॥
बिखु का माता जग सिउ लूझै ॥६॥
ऊतम संगति ऊतम होवै । गुण कउ धावै अवगण धोवै ॥
बिनु गुर सेवे सहजु न होवै ॥७॥
हीरा नामु जवेहर लालु । मनु मोती है तिस का मालु ॥
नानक परखै नदरि निहालु ॥८॥५॥

(जो) निज स्वरूप को विचार करता है, वही (हरिनाम रूपी) हीरे को परख सकता है। पूर्ण गुरु एक दृष्टि (मात्र) से तार देता है। गुरु (यदि प्रसन्न हो जाय (तो) मन से ही मन को अपने पास धैर्य हो जाता है ॥ १ ॥

(गुरु) ऐसा साहु है और ऐसी सर्राफी करता है कि (उसकी) सच्ची (कृपा-)-दृष्टि से एकनिष्ठ ध्यान लग जाता है (और) (मनुष्य) तर जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

निरंजन (माया रहित) (हरि) का नाम श्रेष्ठ पूँजी है। निर्मल (दिव्य) सत्य में रत हुआ पैकार (चतुर जौहरी) है [पैकार=निरीक्षक प्राचीन काल में पैकार टकसाल की राज्य में सोने-चाँदी का निरीक्षण करते थे]। स्तुति द्वारा गुरु-करतार (परमात्मा) सहज भाव से (अपने) घर (शरीर) में (बसि) प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

(गुरु के) शब्द द्वारा (शिष्य) आशा और इच्छा जला दे और 'राम' 'नारायण' (परमात्मा का नाम) (स्वयं) जपे (और दूसरों से भी) जप कराए। (वह) गुरु द्वारा (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग (उसका) महल (और उसका) घर पा जाता है ॥ ३ ॥

(हरी के महल और घर पानेवाले भक्त) की काया कंचन (की भाँति कान्तियुक्त हो जाती है) (और उसके अन्तर्गत परमात्मा की) अनुपम ज्योति (प्रकाशित होती है)। समस्त त्रिभुवन (परमात्मा) देव का ही स्वरूप (दिखाई पड़ता) है। मेरे पल्ले वही सच्चा और न नष्ट होनेवाला धन है ॥ ४ ॥

(वह परमात्मा) पंच (तत्त्वों) तीन (भुवनों) नव (खण्डों) और चार (दिशाओं) में समाया हुआ है; पृथ्वी और आकाश को (अपनी) शक्ति (कला) से धारण किए हुए है।

(वही प्रभु) (हमारे) बहिर्मुख होते हुए (मन को) उलटा कर (अंतर्मुख) करता है।

[विशेष —उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—पंच कामादिकों (काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार) तीन गुणों (सत्व रज और तम) चार (अन्तःकरण—मन बुद्धि, चित्त और अहंकार) और नव (गोलकों—दो नासिका छिद्र दो आँखें दो कान, एक मुख एक मूत्रेन्द्रिय-द्वार और एक मलेन्द्रिय-द्वार) को (जिस व्यक्ति ने) समाहित कर लिया है (वशीभूत कर लिया है) जिसने धरणी को शक्ति के साथ गगन (मण्डल) में धारण कर लिया है, (अर्थात् स्थूल विषयों से उठ कर सूक्ष्म परमात्मा में टिक गया है, और 'गगन-मण्डल में सुरति लगा दी है) (जिसने) बाहर जाती हुई इन्द्रियों को उलट कर (अपने में) (अंतर्मुख) कर लिया (वह धन्य है) ।] ॥ ५ ॥

(जो) मूर्ख है (उसे) आँखों से सुझाई नहीं पड़ता (उसकी) जीभ मीठी नहीं (होती) और (वह) कहना नहीं मानता । (वह) माया के विष में मतवाला होकर जगत् से लड़ता रहता है ॥ ६ ॥

(मनुष्य) उत्तम (पुरुषों की) संगति में उत्तम हो जाता है, (इसके फलस्वरूप) वह गुणों को (ग्रहण करने के लिए) दौड़ता है और अवगुणों को धो देता है। बिना गुरु की सेवा (किए हुए) (वह) सहज (योगी) नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

(हरी का) नाम हीरा, रत्न और लाल है। (मनुष्य का) मन (भी) उस (अपूर्व धन) का (अमूल्य) मोती है। नानक कहते हैं (कि साधक उपर्युक्त धन की) परख करता है और (परमात्मा की) कृपादृष्टि (प्राप्त करके) निहाल हो जाता है ॥ ८ ॥ ५ ॥

[६]

गुरमुखि गिआनु धिआनु मनि मानु । गुरमुखि महली महलु पछानु ।
गुरमुखि सुरति सबदु नीसानु ॥१॥

ऐसे प्रेम भगति वीचारी । गुरमुखि साचा नामु मुरारी ॥१॥रहाउ॥

अहिनिसि निरमलु थानि सु थानु । तीन भवन निहकेवल गिआनु ॥
साचे गुर ते हुकमु पछानु ॥२॥

साचा हरखु नाही तिसु सोगु । अंम्रित गिआनु महारसु भोगु ॥
पंच समाई सुखी सभु लोगु ॥३॥

सगली जोति तेरा सभु कोई । आपे जोड़ि विछोड़े सोई ॥
आपे करता करे सु होई ॥४॥

ढाहि उसारे हुकमि समावै । हुकमो वरतै जो तिसु भावै ॥
गुर बिनु पूरा कोइ न पावै ॥५॥

बालक बिरधि न सुरति परानि । भरि जोबनि बूडै अभिमानि ॥
बिनु नावै किआ लहसि निदानि ॥६॥

जिसका अनु धनु सहजि न जाना । भरमि भुलाना फिरि पछुताना ॥
गलि फाही बउरा बउराना ॥७॥

बूडत बहु देखिया तउ डरि भागे । सतिगुरि राखे ते बडभागे ॥
नानक गुर की चरणी लागे ॥८॥६॥

गुरु के उपदेश द्वारा ज्ञान ध्यान (प्राप्त होता है) (और) मन मान जाता (शान्त हो जाता) है। गुरु की शिक्षा द्वारा महल के स्वामी (महली) के महल की पहचान होती है। गुरु के उपदेश द्वारा ही सुरति (ध्यान) और (गुरु का) शब्द प्राप्त होता है, (जिसके फलस्वरूप) (परमात्मा के यहाँ) निवास (प्राप्त होता है) ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रेमाभक्ति (रागात्मिका भक्ति) विचार की जाती है कि गुरु की शिक्षा द्वारा मुरारी (परमात्मा) का सच्चा नाम (प्राप्त होता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

निमल (हरी) स्थान—स्थानान्तरों में अहर्निश (निरन्तर) (व्याप्त है)। तीनो भुवनो मे (एक हरी को ही व्याप्त देखना) यही निष्केवल ज्ञान है। (इस प्रकार) सच्चे गुरु से (परमात्मा के) हुक्म को पहचानना चाहिए (और उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए।) ॥ २ ॥

(साधक को) (परमात्मा के मिलन का) सच्चा हर्ष (होता है) उसे (तनिक भी) शोक नहीं होता। (वह) ज्ञानामृत के महान् रस का रसास्वादन करता है। (उसके) पंच कामादिक नष्ट हो जाते हैं और घर के सभी लोग सुखी हो जाते हैं (अर्थात् उसकी सारी आन्तरिक वृत्तियाँ सुखी हो जाती हैं) ॥३॥

(हे प्रभु) सब में तेरी ही ज्योति (व्याप्त) है। (प्रभु) स्वयं ही जोड़ता है और स्वयं ही वियोग कराता है। (वह) कर्त्ता (पुरुष) जो करता है, वही होता है ॥४॥

(परमात्मा ही) नष्ट करता है, (और फिर) निर्माण करता है, (वह) (अपने) हुक्म से (अपने मे) मिला लेता है। (जैसा) उसे अच्छा लगता है, (उसके) हुक्म के अनुसार वैसा ही होता है। बिना गुरु के पूर्ण (परमात्मा) को कोई नहीं प्राप्त कर सकता है ॥५॥

बचपन और वृद्धावस्था में प्राणी को कोई स्मृति नहीं रहती। पूर्ण युवावस्था में (मनुष्य) अभिमान में डूबा रहता है। बिना (परमात्मा के) नाम के अन्त में (वह) क्या प्राप्त करेगा? (अर्थात् कुछ भी नहीं) ॥६॥

(जिसके द्वारा) अन्न और धन दिए गए हैं (उस परमात्मा को) सहज (ज्ञान) (मनुष्य) नहीं जान सका। (वह मनुष्य) भ्रम में भटकता रहता है और बार बार भ्रमता रहता है ॥७॥

(जब मैंने) जगत को डूबते हुए देखा, तब (मैं) डर कर भगा (और गुरु की शरण गया)। (जिनकी) सद्गुरु ने रक्षा की है, वे (सचमुच ही) बड़े भाग्यशाली हैं। नानक (कहते) हैं (कि वे भाग्यशाली) गुरु के चरणों में लग गए हैं ॥८॥६॥

[७]

गावहि गीते चीति अनीते । राग सुणाइ कहावहि बीते ॥
बिनु नावै मनि झूठु अनीते ॥१॥
कहा चलहु मन रहहु घरे ।
गुरमुखि राम नामि तृपतासे खोजत पावहु सहजि हरे ॥१॥रहाउ॥

कामु क्रोधु मनि मोहु सरीरा । लबु लोभु अहंकारु सु पीरा ॥
राम नाम बिनु किउ मनु धीरा ॥२॥
अंतरि नावणु साचु पछाणै । अंतरि की गति गुरमुखि जाणै ॥
साच सबद बिनु महलु न पछाणै ॥३॥
निरंकार महि आकारु समावै । अकल कला सचु साचि टिकावै ॥
सो नरु गरभ जोनि नही आवै ॥४॥
जहां नामु मिलै तह जाउ । गुर परसादी करम कमाउ ॥
नामे राता हरिगुण गाउ ॥५॥
गुर सेवा ते आपु पछाता । अमृतु नामु वसिआ सुखदाता ॥
अनदिनु बाणी नामे राता ॥६॥
मेरा प्रभु लाए ता को लागै । हउमै मारे सबदे जागै ॥
ऐथै ओथै सदा सुखु आगै ॥७॥
मनु चंचलु बिधि नाही जाणै । मनमुखि मैला सबदु न पछाणै ॥
गुरमुखि निरमलु नामु वखाणै ॥८॥
हरि जीउ आगै करी अरदासि । साधू जन संगति होइ निवासु ॥
किलविख दुख काटै हरिनामु प्रगासु ॥९॥
करि बीचारु आचारु पराता । सतिगुर बचनी एको जाता ॥
नानक रामनामि मनु राता ॥१० ॥७॥

(लोग बाहर से) (पवित्र) शौच पाते हैं किन्तु चित्त में अनीति (बरतते हैं)। (वे लोग) (नाना प्रकार के) रस भुनाकर (लोगों द्वारा) वीतराग कहे जाते हैं। (किन्तु) बिना नाम के (उनके) मन में झूठ और अनीति (भरी हुई है) ॥१॥

(हे मन) क्यों डगमगाते हो? (अपने आत्मस्वरूपी) गृह में ही निवास करो। गुरु की शिक्षा द्वारा राम नाम में तृप्त हो (और) हरि को खोज कर सहज भाव से प्राप्त करो ॥१॥ रहाउ ॥

मन और शरीर में काम क्रोध मोह लालच लोभ और अहंकार (भरे हैं) (इसी कारण) पीड़ा है। बिना राम नाम के मन (भला) कैसे धैर्यवान् हो सकता है? ॥२॥

(जब साधक) आन्तरिक स्नान करे (तभी) वह सत्य (परमात्मा) को पहचान सकता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) आन्तरिक दशा को जान सकता है। बिना (गुरु के) सच्चे शब्द द्वारा (कोई भी) (परमात्मा के) महल को नहीं पहचान सकता ॥३॥

(जो साधक) निरंकार (हरी म) (समस्त) आकारों को टिका हुआ (देखता है) और सत्य (परमात्मा को) कलारहित कला (शक्ति) में (अपने पन) सच्चे भाव से टिका देता है, ऐसा मनुष्य (मुक्त हो जाता है) (और पुनः) गर्भ-योनि में नहीं आता ॥४॥

जहाँ नाम मिलता है वहीं (मैं) जाता हूँ, गुरु की कृपा से (नाम जपने का उत्तम) कर्म कमाता हूँ (और) नाम में ही अनुरक्त होकर हरिगुण गाता हूँ ॥५॥

गुरु की सेवा से (मैंने) अपने आप को पहचान लिया है और सुखदायक अमृत नाम (मेरे मन में) बस गया है। मैं निरन्तर (गुरु की वाणी) और नाम में अनुरक्त हूँ ॥६॥

मेरा प्रभु जब नाम मे समाता है, तभी कोई नाम मे लगता है। (यदि कोई) अहंकार को मारता है (तभी वह) (गुरु के) शब्द मे जगता है (अन्यथा सांसारिक मोह में सोता रहता है)। (जो परमात्मा मे अनुरक्त है) (उसे) यहाँ वहाँ और आगे (परलोक मे) सदैव सुख (प्राप्त होता) है ॥७॥

मन चंचल है, (अतएव परमात्मा से मिलने की) विधि नहीं जानता। मनमुख मैला होता है, (अतएव गुरु के) शब्द को नहीं पहचान सकता। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) निर्मल नाम की व्याख्या करता है ॥८॥

(मैं) हरी जी के आगे प्रार्थना करता हूँ कि साधु-जन की संगति में (मेरा) निवास हो। परमात्मा के नाम का प्रकाश (समस्त) कल्मषों (पापों) और दुःखों को काट देता है ॥९॥

विचार करके (शुभ) आचारों की प्राप्ति हो गई और सद्गुरु के वचनों द्वारा (मैंने) एक (परमात्मा) को जान लिया। नानक कहते हैं कि रामनाम में (मेरा) मन अनुरक्त हो गया है ॥१ ॥७॥

[८]

मनु मैगलु साकतु देवाना। बनखंडि माइआ मोहि हैराना॥
इत उत जाहि काल के चापे। गुरमुखि खोजि लहै घरु आपे ॥१॥
बिनु गुर सबदै मनु नही ठउरा।
सिमरहु राम नामु अति निरमलु अवर तिआगहु हउमै कउरा ॥१॥रहाउ॥
इहु मनु मुगधु कहहु किउ रहसी। बिनु समझे जम का दुखु सहसी॥
आपे बखसे सतिगुरु मेलै। कालु कंटकु मारे सचु पेलै ॥२॥
इहु मनु करमा इहु मनु धरमा। इहु मनु पंच ततु ते जनमा।
साकतु लोभी इहु मनु मूड़ा। गुरमुखि नामु जपै मनु रूड़ा ॥३॥
गुरमुखि मनु असथाने सोई। गुरमुखि त्रिभवणि सोझी होई॥
इहु मनु जोगी भोगी तपु तापै। गुरमुखि चीन्है हरि प्रभु आपै ॥४॥
मनु बैरागी हउमै तिआगी। घटि घटि मनसा दुबिधा लागी॥
राम रसाइणु गुरमुखि चाखै। दरि घरि महली हरि पति राखै ॥५॥
इहु मनु राजा सूर संगामि। इहु मनु निरभउ गुरमुखि नामि।
मारे पंच अपुनै वसि कीए। हउमै ग्रासि इकतु थाइ कीए ॥६॥
गुरमुखि राग सुआद अन तिआगे। गुरमुखि इहु मनु भगती जागे॥
अनहद सुणि मानिआ सबदु वीचारी। आतमु चीन्हि भए निरंकारी ॥७॥
इहु मनु निरमलु दरि घरि सोई। गुरमुखि भगति भाउ धुनि होई॥
अहिनिसि हरि जसु गुरपरसादि। घटि घटि सो प्रभु आदि जुगादि ॥८॥
राम रसाइणि इहु मनु माता। सरब रसाइणु गुरमुखि जाता॥
भगति हेतु गुर चरण निवासा। नानक हरि जन के दासनि के दासा ॥९॥८॥

(यह) मन हाथी, गाफिल और दीवाना है और माया के वनखण्ड में मोहित होकर हैरान (फिरता है)। काल का दबाया हुआ (यह मन) इधर-उधर फिरता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (मन) अपने (वास्तविक) घर को प्राप्त कर लेता है ॥१॥

बिना गुरु के शब्द के मन को कहीं भी ठौर नहीं प्राप्त होता। (हे भाई) अत्यन्त निर्मल रामनाम का स्मरण करो और कड़वे अहंकार को त्याग दो ॥१॥ रहाउ ॥

यह मन अनजान (मूर्ख) है, (भला) बताओ यह कैसे सुखी होगा ? बिना (सत्य परमात्मा को) समझे यम का दुःख सहना पड़ेगा। (परमात्मा) स्वयं ही (जीव को) क्षमा करके सद्गुरु से मिलाता है। (सद्गुरु) सत्य (परमात्मा) की प्रेरणा से कण्टक के समान (दुःखदायी) काल को मार डालता है ॥२॥

यह मन जो पंच तत्त्वों से उत्पन्न हुआ है, (शुभ और मंद) कर्म करनेवाला और धर्म (धर्माधर्म) करनेवाला है। यह मूर्ख मन शाक्त (माया का उपासक) और लोभी है। (किन्तु यही मूढ़ मन) गुरु की शिक्षा द्वारा नाम जप कर सुन्दर हो जाता है ॥३॥

गुरु की शिक्षा द्वारा यही (मन) (अपने वास्तविक) स्थान को (प्राप्त कर लेता है) और गुरु की शिक्षा द्वारा ही (इसे) त्रिभुवन की समझ आ जाती है। यह मन योगी, भोगी और तप तपनेवाला है और यह गुरु द्वारा प्रभु हरि को पहचान लेता है ॥४॥

(शिष्य का) मन वैरागी और अहंकार को त्यागने वाला होता है। प्रत्येक घट में इच्छा और दुविधा लगी हुई है। (शिष्य) गुरु की शिक्षा द्वारा राम-रसायन का आस्वादन करता है (जिस कारण) हरि (राजा) महल का स्वामी (अपने) दरवाजे और घर पर (शिष्य की) प्रतिष्ठा रखता है ॥५॥

यह मन राजा है और संग्राम में शूरवीर है। यह मन गुरु की शिक्षा द्वारा नाम (प्राप्त करके) निर्भय हो जाता है। पंच कामादिकों को मार कर अपने वश में कर लेता है और अहंकार को ग्रस कर एक स्थान में (केन्द्रीभूत करके) बाँध देता है ॥६॥

गुरु की शिक्षा द्वारा यह मन अन्य (अन्य) रसों और रंगों को त्याग देता है और भक्ति में जग जाता है। (यह मन) (गुरु के) शब्द पर विचार करके अनाहत (शब्द) सुनने लगता है और शान्त हो जाता है तथा आत्म-साक्षात्कार करके निरंकारी हो जाता है ॥ ७ ॥

उस हरि के दरवाजे और घर में (रहकर) यह मन निर्मल हो जाता है। गुरु द्वारा (इसे) भक्ति, प्रेम (और नाम की) ध्वनि प्राप्त होती है। गुरु की कृपा द्वारा (यह) अहर्निश हरि के यश (के गान में) लग जाता है और (उसे) आदि काल युग-युगान्तरों तथा घट-घट में वही प्रभु (दिखाई पड़ने लग जाता है) ॥ ८ ॥

राम-रसायन (का आस्वादन करके) यह मन मतवाला (हो जाता है)। रस के रसायन (हरि) को गुरु द्वारा समझ लिया जाता है। भक्ति (की प्राप्ति) के हेतु गुरु के चरणों को (अपने मन में) स्थान दिया है। नानक कहते हैं कि (मैं) हरि के दासों का दास हो गया हूँ ॥ ९ ॥ ८ ॥

[९]

तनु बिनसै धनु का को कहीऐ। बिनु गुर रामु नामु कत लहीऐ।
राम नाम धनु संगि सखाई। अहिनिसि निरमलु हरि लिव लाई ॥१॥

राम नाम बिनु कवनु हमारा ।
सुख दुख सम करि नामु न छोडउ आपे बखसि मिलावणहारा ॥१॥रहाउ॥
कनिक कामनी हेतु गवारा । दुबिधा लागे नामु बिसारा ॥
जिसु तूं बखसहि नामु जपाइ । दूतु न लागि सकै गुन गाइ ॥२॥
हरि गुरु दाता राम गुपाला । जिउ भावै तिउ राखु दइआला ॥
गुरमुखि रामु मेरै मनि भाइआ । रोग मिटे दुखु ठाकि रहाइआ ॥३॥
अवरु न अउखधु तंत न मंता । हरि हरि सिमरणु किलविख हंता ॥
तूं आपि भुलावहि नामु बिसारि । तूं आपे राखहि किरपा धारि ॥४॥
रोगु भरमु भेदु मनि दूजा । गुर बिनु भरमि जपहि जपु दूजा ॥
आदि पुरख गुर दरसन देखहि । विणु गुर सबदै जनमु कि लेखहि ॥५॥
देखि अचरजु रहे बिसमादि । घटि घटि सुर नर सहज समाधि ॥
भरिपुरि धारि रहे मन माही । तुम समसरि अवरु को नाही ॥६॥
जा की भगति हेतु मुखि नामु । संत भगत की संगति रामु ॥
बंधन तोरे सहजि धिआनु । छूटै गुरमुखि हरि गुर गिआनु ॥७॥
ना जमदूत दूखु तिसु लागै । जो जनु राम नामि लिव जागै ॥
भगति वछलु भगता हरि संगि । नानक मुकति भए हरि रंगि ॥८॥९॥

शरीर के नष्ट होने पर धन किसका कहा जाय ? बिना गुरु के राम नाम (रूपी धन) किस प्रकार प्राप्त किया जाय ? राम नाम (रूपी) धन ही (अन्तिम समय का साथी) है। (साधक) अहर्निश हरि में लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर पवित्र हो जाता है ॥ ८ ॥

राम नाम के बिना हमारा कौन (दूसरा) है ? (मैं) दुख-सुख को समान समझ कर नाम को नहीं छोड़ता हूँ (प्रभु) क्षमा करके स्वयं ही अपने में मिलानेवाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गँवार व्यक्ति ने कामिनी और काञ्चन के निमित्त दुविधा में पड़कर नाम को भुला दिया है। (हे प्रभु) जिसे तू देता है, (उसी से) (अपना) नाम जपाता है। (तेरे गुणों का) गान करने से यमदूत नहीं लग सकते ॥ २ ॥

हरि ही दाता गुरु है, (वही) राम, गोपाल है। हे दयालु (प्रभु) जैसा तुझे अच्छा लगे वैसा (मुझे) रख। गुरु के उपदेश द्वारा 'राम' मेरे मन को अच्छे लगने लगे हैं। (इसी कारण) (समस्त मानसिक) रोग मिट गए हैं और दुख भी समाप्त हो गए हैं ॥ ३ ॥

कल्मष (पाप) को हरण करनेवाले हरि-स्मरण (के अतिरिक्त) न और कोई औषधि है, न तंत्र है और न मंत्र है। (हे प्रभु), तू नाम विस्मृत करा कर अपने आप को भुला देता है। तू ही कृपा करके (भक्तों की) रक्षा करता है ॥ ४ ॥

(यदि) मन में (हरि के बिना) द्वैतभाव है (तो मनुष्य के) रोग और भ्रम (बने रहते हैं)। गुरु के बिना भ्रम में पड़कर (वे) द्वैत का जप जपते रहते हैं। गुरु का दर्शन करने से आदि पुरुष (परमात्मा) का दर्शन हो जाता है। बिना गुरु के शब्द के जन्म किस लेखे में है ? ॥ ५ ॥

(परमात्मा के) आश्चर्य को देख कर (भक्तगण) आश्चर्यान्वित हो गए। घट घट में देवताओं और मनुष्यों (अन्तर्गत) सहज समाधि (लग गई)। (हे हरि) सर्वव्यापी (भरपूर)

हो कर स्वयं ही (सब के) मन में स्थित हो कर (सभी को) धारण कर रहे हो (संभाल रहे हो) तुम्हारे समान और कोई नहीं है ॥ ६ ॥

जिसकी भक्ति के निमित्त मुख से नाम जपा जाता है, वह 'राम' संत भक्तों की संगति में (प्राप्त होता है)। (हरी का) सहज ध्यान (माया के) बंधनों को तोड़ देता है। गुरु द्वारा प्राणी हरी का ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥

जो पुरुष रामनाम के लिए (एकनिष्ठ ध्यान) में जगता है, उसे यमदूत के दुःख नहीं लगते। भक्त-वत्सल हरि (अपने) भक्तों के साथ ही रहता है। नानक कहते हैं, कि जो व्यक्ति) हरि के रंग में रंगे हैं, (वे) मुक्त (हो जाते) हैं ॥ ८ ॥ ६ ॥

[१०]

गउड़ी

गुरु सेवे सो ठाकुर जानै। दूखु मिटै सचु सबदि पछानै ॥१॥
रामु जपहु मेरी सखी सखैनी। सतिगुरु सेवि देखहु प्रभु नैनी ॥१॥रहाउ॥
बंधन मात पिता संसारि। बंधन सुत कंनिआ अरु नारि ॥२॥
बंधन करम धरम हउ कीआ। बंधन पुतु कलतु मनि बीआ ॥३॥
बंधन किरखी करहि किरसान। हउमै डंनु सहै राजा मंगै दान ॥४॥
बंधन सउदा अणवीचारी। तिपति नाही माइआ मोह पसारी ॥५॥
बंधन साह संचहि धनु जाइ। बिनु हरि भगति न पवई थाइ ॥६॥
बंधन बेदु बादु अहंकार। बंधनि बिनसै मोह विकार ॥७॥
नानक राम नाम सरणाई। सतिगुरि राखे बंधु न पाई ॥८॥१०॥

(जो) गुरु की सेवा करता है वह ठाकुर (स्वामी, परमात्मा) को जान जाता है। (वह) (गुरु के) शब्द द्वारा सत्य (परमात्मा) को पहचान लेता है (और उसका) दुःख मिट जाता है ॥ १ ॥

(हे) मेरी सखी-सहेलियों राम का जप करो; सद्गुरु की सेवा करके प्रभु को (अपने) नेत्रों से देखो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सांसारिक माता-पिता बंधन हैं। [अथवा, संसार में माता-पिता बंधन हैं]। पुत्र, कन्या और स्त्री भी बन्धन हैं ॥ २ ॥

अहंकार से किए हुए (सारे) कर्म धर्म भी बंधन हैं। (यदि) मन में द्वैत भाव है, (तो) पुत्र-कलत्र बंधन हैं ॥ ३ ॥

किसान बंधन में ही कृषि करते हैं। अहंकार (के कारण मनुष्य) दण्ड भरता है और राजा दान (धन भाग) माँगता है ॥ ४ ॥

विचारहीन सौदा बंधन है। माया मोह के प्रसार में तृप्ति नहीं मिलती ॥ ५ ॥

साहु धन-संचय करते हैं यह बंधन है (क्योंकि) जानेवाला है। बिना हरि-भक्ति के (परमात्मा के यहाँ) स्थान नहीं प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

अहंकार में वेद-पाठ और वाद-विवाद बंधन हैं। मोह के विकार के कारण (मनुष्य) बंधन में (पड़कर) नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

कहा सु आरसीआ मुह बंके ऐथै दिसहि नाही ॥१॥
इहु जगु तेरा तू गोसाई ।
एक घड़ी महि थापि उथापे जरु वंडि देवै भांई ॥१॥रहाउ॥
कहा सु घर दर मंडप महला कहां सु बंक सराई ।
कहा सु सेज सुखाली कामणि जिसु वेखि नीद न पाई ।
कहा सु पान तंबोली हरमा होईआ छाई माई ॥२॥
इसु जरि कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई ।
पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई ॥
जिस नो आपि खुआए करता खुसि लए चंगिआई ॥३॥
कोटी हू पीर वरजि रहाए जा मीरु सुणिआ धाइआ ।
थान मुकाम जले बिज मंदर मुछि मुछि कुइर रुलाइआ ॥
कोई मुगलु न होआ अंधा किनै न परचा लाइआ ॥४॥
मुगल पठाणा भई लड़ाई रण महि तेग वगाई ।
ओन्ही तुपक ताणि चलाई ओन्ही हसति चिड़ाई ॥
जिन्ह की चीरी दरगह पाटी तिन्हा मरणा भाई ॥५॥
इक हिंदवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी ।
इकन्हा पेरण सिर खुर पाटे इकन्हा वासु मसाणी ॥
जिन्ह के बंके घरी न आइआ तिन्ह किउ रैणि विहाणी ॥६॥
आपे करे कराए करता किस नो आखि सुणाईऐ ॥
दुखु सुखु तेरै भाणै होवै किस थै जाइ रूआईऐ ॥
हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईऐ ॥७॥१२॥

(तुम्हारे) वे खेल, अस्तबल घोड़े कहाँ हैं? तुम्हारे नगाड़े और शहनाइयाँ (भी नहीं दिखाई पड़ रही हैं), (वे) कहाँ हैं? तलवारों की म्यानें तथा रथ कहाँ हैं? वे लाल (आकर्षक और रोबीली) वर्दियाँ कहाँ हैं? वे दर्पण और वे सुन्दर मुख कहाँ हैं? यहाँ तो नहीं दिखाई पड़ रहे हैं ॥ १ ॥

(हे हरि) यह जगत तेरा है, तू ही (इसका) स्वामी है। एक घड़ी भर में तू इसे स्थापित करता है (और फिर) नष्ट करता है। (तू अपने इच्छानुसार) सुवर्ण (दौलत) भाइयों को बाँट देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तुम्हारे) वे घर, दरवाजे मंडप (और) महल कहाँ हैं? (वे) सुन्दर सरायें कहाँ हैं? जिसे देख कर नींद नहीं पड़ती थी, (वह) सुखदायिनी सेज (और उसे सुशोभित करनेवाली) कामिनी कहाँ है? वे पान (देनेवाली) तमोलिनें और पर्दों में रहनेवाली स्त्रियाँ कहाँ हैं? (वे सब) माया की छाया (के समान) (विलीन हो गई हैं) ॥ २ ॥

इस सोने (दौलत) के कारण बहुत से लोग नष्ट हो गए (और) बहुत से इसी दौलत के कारण (कुमार्ग में पड़ कर) विलीन हो गए। (यह धन) बिना पाप किए मिलता नहीं और मरने पर साथ भी नहीं जाता। जिसे (हरि) स्वयं नष्ट करना चाहता है (उसकी) अच्छाइयों को समाप्त कर देता है ॥ ३ ॥

जब (हिन्दुस्तान के निवासियों ने) मीर (बाबर) का (चढ़कर) दौड़े हुए सुना (तो) करोड़ों पीरों ने उसे रोकने के लिए (टोने-टोटके किए)। (किन्तु उन टोने-टोटकों का कुछ भी परिणाम न निकला) (और बड़े-बड़े) स्थान तथा निवास स्थान और वज्र के समान (सुदृढ़) महल जल गए; टुकड़े टुकड़े करके शाहजादे (कुमार) (मिट्टी में) मिला दिए गए। (पीरों के) (कागज के) पर्चों से (जिन पर टोने-टोटके लिखे गए थे) कोई भी मुगल अंधा नहीं हुआ, (अर्थात् टोने-टोटकों से मुगलों का कुछ भी बाल-बाँका नहीं हुआ) ॥ ४ ॥

मुगलों और पठानों में (भयानक) लड़ाई हुई। रण में तलवारें (खूब) चलाई गईं। उन्होंने (मुगलों ने) तान-तान कर तुपकें चलाईं और उन्होंने (पठानों ने) हाथी उत्तेजित कर के (चिढ़ा कर) आगे बढ़ाया। जिनकी चिट्ठी (परमात्मा के) दरबार से फाड़ दी गई थी, उनका मरना (आवश्यक हो गया)। [पंजाब में यह प्रथा प्रचलित है कि मौत के खबर की चिट्ठी का सिर फाड़ दिया जाता है]। ॥ ५ ॥

(जिन स्त्रियों की दुर्दशा मुगलों ने की उनमें से) कुछ तो हिन्दुआनियाँ कुछ तुरकानियाँ कुछ भटिआनियाँ (भट्टों की स्त्रियाँ) और कुछ ठकुरानियाँ थीं। (इनमें से) कुछ स्त्रियों (तुरकानियों) के (बुरके) सिर से पैर तक फाड़ दिए गए, (और) कुछ को (हिन्दू स्त्रियों को) श्मशान में निवास मिला (अर्थात् मार डाली गईं)। जिन (स्त्रियों) के सुन्दर (पति) घर नहीं लौटे, उन (बेचारियों) ने (अपनी) रातें किस प्रकार काटीं? ॥ ६ ॥

कर्त्ता (प्रभु) स्वयं ही करता और कराता है; (उसकी बातें) किससे कह कर सुनाई जायें? (हे प्रभु) दुःख-सुख (सब) तेरी ही आज्ञा से होते हैं (मनुष्य) किसके पास जाकर रोया जाय? वह हुक्म का स्वामी (हरी) (सभी को) (अपने) हुक्म में चलाता है और विकसित होता है। नानक कहते हैं (कि जो कुछ उसका) लिखा होता है, (वही) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ १२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा काफी, महला १, घरु ८ ॥

असटपदीआ [१३]

जैसे गोइलि गोइली तैसे संसारा ।
कूड़ु कमावहि आदमी बांधहि घरबारा ॥१॥
जागहु जागहु सूतिहो चलिआ वणजारा ॥१॥रहाउ॥
नीत नीत घर बांधीअहि जे रहणा होई ।
पिंडु पवै जीउ चलसी जे जाणै कोई ॥२॥
ओही ओही किआ करहु है होसी सोई ।
तुम रोवहुगे ओस नो तुम्ह कउ कउणु रोई ॥३॥
धंधा पिटिहु भाई हो तुम्ह कूड़ु कमावहु ।
ओहु न सुणई कतही तुम्ह लोक सुणावहु ॥४॥

जिस ते सुता मालका जागाए सोई ।
से घर बूझे मापणा तो नीद न होई ॥५॥
से चलदा ते चलिया किछु संवे नाले ।
ता धनु संचहु देखि कै बूझहु बीचारे ।६॥
वणजु करहु मखसूद लैहु मत पछोतावहु ।
अउगण छोडहु गुण करहु ऐसे ततु परावहु ॥७॥
धरम भूमि सतु बीजु करि ऐसी किरस कमावहु ।
तां वापारी जाणीअहु लाहा लै जावहु ॥८॥
करमु होवै सतिगुरु मिलै बूझै बीचारा ।
नामु वखाणै सुणे नामु नामे बिउहारा ॥९॥
जिउ लाहा तोटा तिवै वाट चलदी आई ।
जो तिसु भावै नानका साई वडिआई ॥१ ॥१३॥

जिस प्रकार बारमाह मे मामा (थोडे समय के लिए होता है और वह मालिक नही होता) इसी प्रकार संसार है । (संसार के) आदमी (बडे यत्नपूर्वक) (अपना) घर बार बनाते है, (पर यह सब) झूठ (व्यर्थ) ही कर रहे है ॥ १ ॥

ऐ सोनेवाले जगो जगो बनजारा चला गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि (इस संसार मे) सदैव रहना हो तभी नित्य रहनेवाले घर का निर्माण किया जाय । यदि कोई (विवेकी होकर) समझे, तो (वास्तविक बात यह है कि) शरीर ढह जायगा और आत्मा चला जायगा ॥ २ ॥

(अरे मनुष्य) 'मोक मोक' (हाय हाय) क्यों कर रहे हो ? (परमात्मा ही) (वर्तमान मे) है और (भविष्य मे) रहेगा (उसी का किया हुआ सब कुछ होता है) । तुम तो उस (मृत प्राणी) के लिए रोते हो (किन्तु भला बताओ) तुम्हारे लिए कौन रोयेगा ? ॥ ३ ॥

(हे) भाई, तुम झूठ म प्रवृत्त होकर, व्यर्थ ही सिर पीट कर (कष्ट पा रहे हो) । वह (मृत व्यक्ति) किसी भी प्रकार (तुम्हारे रोने-धोने को) नही सुन सकता तुम संसार को (यह सब रोना-बिलखना) सुना रहे हो ॥ ४ ॥

नानक कहते है कि जिस (परमात्मा के) द्वारा (वह) (अज्ञान मे) सुलाया गया है, वही उसे (ज्ञान मे) जगा सकता है । जो मनुष्य (अपने वास्तविक) घर को पहचान लेता है, उसे फिर (मोह) निद्रा नही आती है ॥ ५ ॥

जो (प्राणी) (इस संसार से) चलते हुए (अपने) साथ कुछ (पारमार्थिक) सम्पत्ति ले कर चलता है (उसकी उस सम्पत्ति को) देख कर उसी धन का संग्रह करो (और उसी सत्य-धन के ऊपर) विचार कर, समझने (की चेष्टा करो) ॥ ६ ॥

(हे साधक तुम) (सत्य धन) का व्यापार करो (और अपने) प्रयोजन, लक्ष्य को (सिद्ध करो) (नहीं) पछताओगे मत । अवगुणो का त्याग करो और गुणों को (ग्रहण) करो इस प्रकार (परमात्मा रूपी) तत्व को प्राप्त करो ॥ ७ ॥

जोगी भोगी (तथा अन्य) वेशभूषा धारणकरने वाले (फकीर) किस निमित्त देश-देशान्तरों म भ्रमण करते रहते हैं ? (वे लोग) न तो गुरु के शब्द को पहचानते हैं और न एकरस (निरन्तर) सार तत्त्व (परमब्रह्म-तत्त्व) को ही (पहचानते हैं) ॥ ३ ॥

पंडित पढ़नेवाले और ज्योतिषी नित्य पुराण पढ़ते हैं। (किन्तु वे लोग) हृदय में (स्थित) वस्तु तथा घट-घट में अन्तर्हित ब्रह्म को नहीं जानते हैं ॥ ४ ॥

कुछ तपस्वी वन में तप करते हैं और तीर्थ स्थानों में निवास करते हैं। (किन्तु वे) तमोगुणी अपने आप को नहीं पहचानते (वे) किस लिए विरक्त हुए हैं ? ॥ ५ ॥

कुछ (लोग) वीर्य की मल से रक्षा करते हैं वे यती कहलाते हैं। (किन्तु) बिना गुरु के शब्द के (वे) मुक्त नहीं होते वे (संसार चक्र मे) भटक कर आते-जाते रहते हैं (जन्मते-मरते रहते हैं) ॥ ६ ॥

कुछ गृहस्थी सेवक गुरु द्वारा दी गई बुद्धि म लगकर साधन सम्पन्न (होते हैं) (वे) नाम दान और स्नान (की रहनी को) दृढ़ करके हरि की भक्ति मे जग गए हैं ॥ ७ ॥

गुरु से ही (अपने वास्तविक) दरवाजे और घर (का पता) जाना जाता है (जिसे) वहाँ जाकर मनुष्य प्राप्त कर लेता है। हे नानक (यदि हरि का) नाम विस्मृत न हो (निरन्तर स्मरण रहे) तो सत्य (हरी) से मन मान जाता है (और शान्ति प्राप्त हो जाती है) । ॥ ८ ॥ १४ ॥

(१५)

मनसा मनहि समाइ ले भउजलु सचि तरणा ।
आदि जुगादि दइआलु तू ठाकुर तेरी सरणा ॥१॥
तू दाती हम जाचिका हरि दरसनु दीजै ।
गुरमुखि नामु धिआइऐ मन मंदरु भीजै ॥१॥रहाउ॥
कूड़ा लालचु छोडीऐ तउ साचु पछाणै ।
गुर कै सबदि समाईऐ परमारथु जाणै ॥२॥
इहु मनु राजा लोभीआ लुभतउ लोभाई ।
गुरमुखि लोभु निवारीऐ हरि सिउ बणि आई ॥३॥
कलरि खेती बीजीऐ किउ लाहा पावै ।
मनमुखु सचि न भीजई कूड़ु कूड़ि गडावै ॥४॥
लालचु छोडहु अंधिहो लालचि दुखु भारी ।
साचौ साहिबु मनि वसै हउमै बिखु मारी ॥५॥
दुबिधा छोडि कुवाटड़ी मूसहुगे भाई ।
अहिनिसि नामु सलाहीऐ सतिगुर सरणाई ॥६॥
मनमुख पथर सैलु है ध्रिगु जीवणु फीका ।
जल महि केता राखीऐ अभ अंतरि सूका ॥७॥
हरि का नामु निधानु है पूरै गुरि दीआ ।
नानक नामु न वीसरै मथि अंम्रितु पीआ ॥८॥१५॥

वासनाओं को मन में समाहित करके (लीन करके) सत्य के द्वारा संसार-सागर तरा जाता है। (हे प्रभु) तू प्रारम्भ से और युग-युगान्तरों से दयालु है, (तू) (मेरा) ठाकुर (स्वामी) है, (मैं) तेरी शरण में हूँ ॥ १ ॥

(हे प्रभु) तू दाता है हम (तेरे) याचक हैं हे हरी, हमें दर्शन दे। गुरु की शिक्षा द्वारा नाम का ध्यान करने से मन रूपी मंदिर (भक्ति से) भीग जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि साधक) झूठ और लालच त्याग दे तभी (वह) सत्य (परमात्मा) को पहचानता है। (यदि शिष्य) गुरु के शब्द में समाहित हो जाय (निमग्न हो जाय) तभी वह परमार्थ को जानता है ॥ २ ॥

यह मन (उस लोभी) राजा (के समान) है, (जो) लोभ में ललचता रहता है। गुरु की शिक्षा द्वारा लोभ का निवारण करो और हरि से (प्रीति) प्रगाढ़ कर लो ॥ ३ ॥

ऊसर भूमि (रेतीली जमीन) में (यदि) कृषि बोई जाय तो क्या लाभ प्राप्त हो सकता है ? मनमुख सत्य से नहीं भीगता है (द्रवीभूत नहीं होता)। वह झूठा है और झूठ में ही (अपने को) गाड़ता है ॥ ४ ॥

ऐ अन्धो (मायान्धग्रस्त मनुष्यो) लालच छोड़ दो लालच में (बहुत) भारी दुःख है। (यदि) सच्चा साहब (परमात्मा) मन में बसता है, (तो) अहंकार का विष मर जाता है ॥ ५ ॥

हे भाई, दुविधा के कुमार्ग को छोड़ दो, (नहीं तो) लूटे जाओगे। सद्गुरु की शरण में पड़कर अहर्निश नाम की स्तुति करो ॥ ६ ॥

मनमुख पत्थर की चट्टान है, (अर्थात् जड़ है); उसके नीरस (फीके) जीवन को धिक्कार है। (जिस प्रकार पत्थर को जितना भी चाहो) जल में रखा जाय किन्तु (उसका) भीतरी भाग सूखा ही रहता है, (उसी प्रकार मनमुख को कितने ही सुन्दर उपदेश दिए जायँ किन्तु उसका) आभ्यन्तर (अन्तःकरण) शुष्क ही रहता है ॥ ७ ॥

हरि का नाम (समस्त गुणों, ऐश्वर्यों का) भाण्डार है; पूर्ण गुरु ने (इसे) प्रदान किया है। हे नानक, (जिन्हें) नाम नहीं विस्मृत होता है (वे ही इस) मथ कर अमृत पीते हैं ॥ ८ ॥ १५ ॥

[१६]

चले चलणहार वाट वटाइआ।
धंधु पिटे संसारु सचु न भाइआ ॥१॥
किआ भवीऐ किआ ढूढीऐ गुरि सबदि दिखाइआ।
ममता मोहु विसरजिआ अपनै घरि आइआ ॥१॥रहाउ॥
सचि मिलै सचिआरु कूड़ि न पाईऐ।
सचे सिउ चितु लाइ बहुड़ि न आईऐ ॥२॥
मोइआ कउ किआ रोवहु रोइ न जाणहू।

हुकमी सहजु सिजाइ आइआ चालीऐ ।
लहणा पवै पाइ हुकमु सिञाणीऐ ॥४॥
हुकमी पैधा जाइ दरगह भाणीऐ ।
हुकमे सिरि मार बंदि रबाणीऐ ॥५॥
लाहा सचि निआउ मनि वसाईऐ ।
लिखिआ पलै पाइ गरबु वञाईऐ ॥६॥
मनमुखीआ सिरि मार वादि खपाईऐ ।
ठगि मुठी कूड़िआर बंधि चलाईऐ ॥७॥
साहिबु रिदै वसाइ न पछोतावही ।
गुनहां बखसणहारु सबदु कमावही ॥८॥
नानकु मंगै सचु गुरमुखि घालीऐ ।
मै तुझ बिनु अवरु न कोइ नदरि निहालीऐ ॥९॥१६॥

चलनेवाले (मुसाफिर) (अपना) रास्ता बदल-बदल कर चलते रहते हैं। संसार (व्यर्थ के) प्रपंचों में पड़ा रहता है, (उसे) सत्य (परमात्मा) प्यारा नहीं लगता ॥ १ ॥

(तुम) क्यों (व्यर्थ) भटकते हो ? क्यों (व्यर्थ) ढूंढते हो ? गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा ने अपने पास को) दिखा दिया है। (सच्चा शिष्य) ममता और मोह का विसर्जन करके (अपने वास्तविक) घर में आ गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सत्य परमात्मा सत्य द्वारा मिलता है, झूठ से नहीं पाया जाता है (हे साधक) सत्य (परमात्मा) से ही चित्त लगाओ (ताकि इस संसार में) फिर न आओ ॥ २ ॥

मृत व्यक्ति के लिए क्यों रोते हो ? (तुम) रोना भी नहीं जानते। सत्य (परमात्मा) की स्तुति करने में रोओ (जिससे उसके) हुक्म को पहचान लो ॥ ३ ॥

(जो हरी के) हुक्म से सतयुग (भक्ति-धाम) लिखा के आया है, (उसी का इस संसार में) आना (जन्म लेना) (सार्थक) समझो। (जो) (परमात्मा के) हुक्म को मानता है, (उसके) पल्ले (नाम रूपी) लाभ पड़ता है ॥ ४ ॥

(यदि हरी को) अच्छा लगे, तो हुक्म से ही (पुण्यात्मा) दरबार में प्रतिष्ठा के वस्त्र (सिरोपा) पहनता है और हुक्म के ही अंतर्गत (कुछ पापी मनुष्यों के) सिर पर परमात्मा के बन्दीखाने में मार पड़ती है ॥ ५ ॥

सत्य न्याय का यह लाभ मिलता है कि (परमात्मा को) मन में बसा लिया जाय। यदि अहंकार को गँवा दिया जाय (तो परमात्मा द्वारा) लिखा हुआ (सुन्दर भाग्य) पल्ले पड़ता है ॥ ६ ॥

मनमुखों के सिर पर मार पड़ती है और झगड़े में ही (वे) खप जाते हैं। झूठी (दुनिया) ठगी जाकर लूटी जाती है (और) बाँध कर चलाई जाती है ॥ ७ ॥

(जो) साहब (परमात्मा) को (अपने) हृदय में बसाता है, उसे पछताना नहीं पड़ता। (यदि गुरु के) शब्द की कमाई की जाय (तात्पर्य यह कि उस पर आचरण किया जाय) (तो हरी) (समस्त) गुनाहों (पापों) को क्षमा कर देता है ॥ ८ ॥

नानक (तो उस) सत्य को माँगता है (जो) गुरु की शिक्षा द्वारा समझा जाता है। मेरे तो तेरे बिना और कोई नहीं है, (अपनी) कृपा-दृष्टि से मुझे देख ले ॥ ८ ॥ १६ ॥

[१७]

किआ जंगलु ढूढी जाइ मै घरि बनु हरीआवला ।
सचि टिकै घरि आइ सबदि उतावला ॥१॥

जह देखा तह सोइ अवरु न जाणीऐ ।
गुर की कार कमाइ महलु पछाणीऐ ॥१॥रहाउ॥

आपि मिलावै सचु ता मनि भावई ।
चलै सदा रजाइ अंकि समावई ॥२॥

सचा साहिबु मनि वसै वसिआ मनि सोई ।
आपे दे वडिआईआ दे तोटि न होई ॥३॥

अबे तबे की चाकरी किउ दरगह पावै ।
पथर की बेड़ी जे चड़ै भर नालि बुडावै ॥४॥

आपनड़ा मनु वेचीऐ सिरु दीजै नाले ।
गुरमुखि वसतु पछाणीऐ अपना घरु भाले ॥५॥
जमण मरणा आखीऐ तिनि करतै कीआ ।
आपु गवाइआ मरि रहे फिरि मरणु न थीआ ॥६॥

साई कार कमावणी धुर की फुरमाई ।
जे मनु सतिगुर दे मिलै किनि कीमति पाई ॥७॥

रतना पारखु सो धणी तिनि कीमति पाई ।
नानक साहिबु मनि वसै सची वडिआई ॥८॥१७॥

मैं जंगल में (परमात्मा को) क्या ढूँढने जाऊँ? मेरे घर में ही हराभरा जंगल है। (गुरु के) शब्द द्वारा मन में सत्य शीघ्र ही स्थिर हो जाता है ॥ १ ॥

(मैं) जहाँ देखता हूँ वहाँ वही (हरी) है (मैं हरी को छोड़ कर) और को नहीं जानता। गुरु के कार्य को करने से (हरी का) महल पहचाना जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि सत्य (परमात्मा) स्वयं अपने से (साधक को) मिलाये, तभी (उसे—साधक को) (सत्य) प्रिय लगता है। (सत्य प्रिय लगने से) (वह) (परमात्मा की) मर्जी के अनुसार चलता है, (जिसके फलस्वरूप) (वह) (हरी के) अंग में समा जाता है ॥ २ ॥

(जिसके) मन में सच्चा साहब (हरी) निवास करता है, (वह) (उसके) मन में ही निवास करता है (अर्थात् उसका मन हरी से स्वच्छ हो जाता है और शिष्य उसी में स्थित होकर परमात्मा का निरन्तर गुण गाता रहता है)। (हरी) स्वयं ही बड़ाई प्रदान करता है, उसके देने में किसी प्रकार की कमी नहीं आती ॥ ३ ॥

जिन्हें "अबे तबे" (कहकर सम्बोधित किया जाता है) (ऐसी) नौकरी (करने वाले संसार में आसक्त पुरुषों को) किस प्रकार (परमात्मा का) दरवाजा प्राप्त हो सकता

है ? पत्थर की (नावों) नाव में जो (व्यक्ति) चढ़ेगा, (तो वह) (उसके बोझ से) डूब जायगा ॥ ४ ॥

(जब) अपना मन (गुरु के पास) बेच दिया जाय (और साथ ही) (गुरु को) (अपना) सिर भी सौंप दिया जाय (तब) गुरु के उपदेश द्वारा अपना घर ढूँढ़ने पर (वास्तविक) वस्तु की पहचान होती है ॥ ५ ॥

(जिसे हम) जन्मना मरना कहते हैं (उसे) कर्तार (हरी ने) ही (निमित) किया है। यदि (अपने) आपेपन (अहंभाव) को नष्ट करके मर जाया जाय तो फिर मरना नहीं होता ॥ ६ ॥

वही कार्य करना चाहिए, (जिसे करने को) वास्तविक (असली हरी ने) आज्ञा दे रक्खी है। (यदि) सद्गुरु को मन (की भेंट चढ़ा कर) मिला जाय तो फिर कोई उसकी कीमत नहीं पा सकता ॥ ७ ॥

वही धनी (मालिक) रत्नों (गुणों) को परखने वाला है; उसी ने कीमत पाई है। हे नानक (जिसके) मन में साहब (हरी) बसता है (उसी के पास) सच्ची बड़ाई है ॥ ८ ॥ १७ ॥

[१८]

जिनी नामु बिसारिआ दूजै भरमि भुलाई ।
मूलु छोडि डाली लगे किआ पावहि छाई ॥१॥
बिनु नावै किउ छूटीऐ जे जाणै कोई ।
गुरमुखि होइ त छूटीऐ मनमुखि पति खोई ॥१॥रहाउ॥
जिनी एको सेविआ पूरी मति भाई ।
आदि जुगादि निरंजना जन हरि सरणाई ॥२॥
साहिबु मेरा एकु है अवरु नही भाई ।
किरपा ते सुखु पाइआ साचे परथाई ॥३॥
गुर बिनु किनै न पाइओ केती कहै कहाए ।
आपि दिखावै वाटड़ी सची भगति द्रिड़ाए ॥४॥
मनमुख जे समझाईऐ भी उझड़ि जाए ।
बिनु हरिनामु न छूटसी मरि नरक समाए ॥५॥
जनमि मरै भरमाईऐ हरि नामु न लेवै ।
ताकी कीमति ना पवै बिनु गुर की सेवै ॥६॥
जेही सेव कराइसि करणी भी साई ।
आपि करे किसु आखीऐ वेखै वडिआई ॥७॥
गुर की सेवा सो करे जिसु आपि कराए ।
नानक सिरु दे छूटीऐ दरगह पति पाए ॥८॥१८॥

जिन्होंने नाम को भुला दिया है, (वे) द्वैतभाव के भ्रम में भटक रहे हैं। जो मूल (परमात्मा) को छोड़ कर डालियों (सांसारिक प्रपंचों) में लग गए हैं (वे) क्या पावेंगे ? खाक ! ॥ १ ॥

बिना नाम के (कोई) कैसे छूट सकता है ? (जो कोई) जानकार हो (वही इस बात को ठीक-ठीक) समझ सकता है। (यदि कोई) गुरु द्वारा शिक्षा प्राप्त करे, (तो वही) मुक्त होता है, मनमुख (अपनी) प्रतिष्ठा खो देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने एक (परमात्मा) की सेवा की है, हे भाई (वे) पूर्ण बुद्धि के हैं। निरंजन (हरी) आदि (काल) तथा युग-युगान्तरों से (विराजमान) है। (हम) दास हरी की शरण में आए हैं ॥ २ ॥

हे भाई, मेरा साहब एक है और दूसरा कोई नहीं है। सच्चे (परमात्मा) के दरवाजे (दरबार) पर उसकी कृपा से सुख प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(चाहे) कितना ही बड़ा महात्मा जाय (किन्तु) गुरु के बिना (हरी को) किसी ने भी नहीं प्राप्त किया है। (परमात्मा) आप ही रास्ता दिखाता है और (हमें) सच्ची भक्ति दृढ़ कराता है ॥ ४ ॥

मनमुख को यदि समझाया भी जाय, तो भी (वह) कुमार्ग में ही जाता है। बिना हरिनाम के (मनुष्य) मुक्त नहीं होगा मरने के पश्चात् वह नरक में प्रविष्ट होता है ॥ ५ ॥

(इस प्रकार) (वह) जन्मता मरता रहता है (और) (आवागमन के चक्र में) भटकता रहता है (वह) हरि का नाम नहीं स्मरण करता। बिना गुरु की सेवा के (हरि की दृष्टि में) (उसकी) कोई कीमत नहीं पड़ती ॥ ६ ॥

(हरि) जो भी सेवा कराये वही हमारी सच्ची (करनी) होती है। (हरी) आप ही सब कुछ करता है (अन्य) किसी को क्या कहा जाय (कि वह कुछ करने वाला है) ? (परमात्मा स्वयं ही) अपनी महत्ता स्वयं देख कर (प्रसन्न होता है) ॥ ७ ॥

(परमात्मा) जिससे स्वयं (सेवा) कराता है वही (गुरु की) सेवा कर सकता है, (अन्य कोई भी नहीं)। नानक कहते हैं कि (गुरु को) सिर अर्पित कर (शिष्य) (संसार से) छूटता है (और हरी के) दरवाजे पर प्रतिष्ठा पाता है ॥८॥१८॥

[१९]

सचो ठाकुर साहबी सची गुरबाणी ।
बडे भागि सतिगुरु मिलै पाईऐ पदु निरबाणी ॥१॥
मै ओल्हगीआ ओल्हगी हम छोरू थारे ।
जिउ तू राखहि तिउ रहा मुखि नामु हमारे ॥१॥रहाउ॥
दरसन की पिआसा घणी भाणै मनि भाईऐ ।
मेरे ठाकुर हाथि वडिआईआ भाणै पति पाईऐ ॥२॥
साचउ दूरि न जाणीऐ अंतरि है सोई ।
जह देखा तह रवि रहे किनि कीमति होई ॥३॥

आपि करे आपे हरे वेखै वडिआई ।
गुरमुखि होइ निहालीऐ इउ कीमति पाई ॥४॥
जीवदिआ लाहा मिलै गुर कार कमावै ।
पूरबि होवै लिखिआ ता सतिगुरु पावै ॥५॥
मनमुख तोटा नित है भरमहि भरमाए ।
मनमुखु अंधु न चेतई किउ दरसनु पाए ॥६॥
ता जगि आइआ जाणीऐ साचै लिव लाए ।
गुर भेटे पारसु भए जोती जोति मिलाए ॥७॥
अहिनिसि रहै निरालमो कार धुर की करणी ।
नानक नामि संतोखीआ राते हरि चरणी ॥८॥१६॥

(मेरा) स्वामी सुंदर और प्रवीण अथवा प्रसिद्ध है, गुरु की वाणी भी सुन्दर है। बड़े भाग्य से सद्गुरु मिलता है (और सद्गुरु के मिलने पर) निर्वाण पद (चतुर्थ पद, मोक्ष पद) की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

(हे प्रभु) मैं (तेरे) जूठे बर्तन माँजनेवाले नौकर का जूठा माँजनेवाला नौकर हूँ। हम तेरे छोटे दास हैं। तू जैसे रखता है वैसा ही (मैं) रहता हूँ मेरे मुख में तेरा ही नाम है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तेरे) दर्शन की बड़ी प्यास (उत्कट अभिलाषा) है, तुझे अच्छा लगे, तभी तू मन को अच्छा लगता है। मेरे ठाकुर (परमात्मा) के हाथ में ही बड़ाई है; (उसकी) आज्ञा से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ २ ॥

सच्चे (हरी) को दूर नहीं समझना चाहिए, अंतर में (हृदय के अंतर्गत) वही (विराजमान) है। (मैं) जहाँ देखता हूँ वहीं (वह) रम रहा है, (उसकी) कीमत किस प्रकार हो सकती है ? ॥ ३ ॥

(प्रभु) आप ही (निर्माण) करता है और आप ही हरण करता है, (संहार करता है)। (और आप ही अपनी) बड़ाई (महत्ता) देख कर (प्रसन्न होता है)। गुरु की शिक्षा द्वारा (दीक्षित) होकर, (परमात्मा) देखा जाता है (और) इस प्रकार (उसकी) कीमत प्राप्त होती है ॥४॥

(जो) गुरु का कार्य करता है उसे जीवितावस्था में ही (मोक्ष) लाभ होता है। यदि पूर्व से ही (भाग्य में) लिखा हो तभी सद्गुरु प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

मनमुखों को नित्य घाटा है, (वे अपने मन्द कर्मों द्वारा) भटकाए हुए (सदैव) भटकते रहते हैं। अन्धा (विवेकहीन) मनमुख (हरी का) नहीं चेतता है; (भला वह उसका) दर्शन कैसे पा सकता है ? ॥ ६ ॥

तभी (मनुष्य का) जगत् में आना (जन्म लेना) (सार्थक) समझना चाहिए, (जब) (वह) सत्य (परमात्मा) के एकनिष्ठ ध्यान में मग्न जाय। गुरु से मिलने पर (शिष्य) पारस पत्थर (के रूप में) (परिवर्तित) हो जाता है और (परमात्मा की परम) ज्योति में (अपनी) ज्योति मिलाकर (एक हो जाता है) ॥ ७ ॥

(उपर्युक्त व्यक्ति) अहर्निश निर्लेप रहता है, (और प्रारंभ से परमात्मा द्वारा) नियत कार्य करता है। नानक कहते हैं कि (वह पुरुष) नाम में ही संतुष्ट रहता है और हरि के चरणों में अनुरक्त रहता है ॥ ८ ॥ १९ ॥

[२०]

जेता आखणु आखीऐ ता के अंत न जाणा।
मै निधरिआ धर एक तू मै ताणु तुमाणा ॥१॥
नानक की अरदासि है सच नामि सुहेला।
आपु गइआ सोझी पई गुर सबदी मेला ॥१॥रहाउ॥

हउमै गरबु गवाईऐ पाईऐ वीचारु।
साहिब सिउ मनु मानिआ दे साचु अधारु ॥२॥

अहिनिसि नामि संतोखीआ सेवा सचु साई।
ता कउ बिघनु न लागई चालै हुकमि रजाई ॥३॥

हुकमि रजाई जो चलै सो पवै खजानै।
खोटे ठवर न पाइनी रले जूठानै ॥४॥

नित नित खरा समालीऐ सचु सउदा पाईऐ।
खोटे नदरि न आवनी ले अगनि जलाईऐ ॥५॥

जिनी आतमु चीनिआ परमातमु सोई।
एको अम्रितु बिरखु है फलु अम्रितु होई ॥६॥

अम्रितु फलु जिनी चाखिआ सचि रहे अघाई।
तिंना भरमु न भेदु है हरि रसन रसाई ॥७॥

हुकमि संजोगी आइआ चलु सदा रजाई।
अउगणिआरे कउ गुणु नानकै सचु मिलै वडाई ॥८॥२०॥

जितना ही कथन क्या न किया जाय, (मैं उस हरी का) अन्त नहीं जान सकता। मुझ निराधार का एक तू ही आधार है, (तुझमें) मुझे प्रबल बल है ॥ १ ॥

नानक की एक प्रार्थना (अरदास) है कि सच्चे (परमात्मा के) नाम द्वारा सुखी (होऊँ)। अहंकार के नष्ट होने पर, (वास्तविकता की) सूझ आ गई (और) गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा का) मिलाप हो गया ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि) अहंकार का गर्व मिटा दिया जाय (तो) (परमात्मा के) विचार की प्राप्ति होती है। (मेरा) मन साहब में मान गया है; (साहब ने) (मुझे) (अपने नाम का) सच्चा आधार दे दिया है ॥ २ ॥

अहर्निश नाम में संतुष्ट रहना यही सच्ची सेवा है (जो परमात्मा के) हुक्म और इच्छा (के अनुसार) चलता है उसे (किसी प्रकार का) विघ्न नहीं लगता ॥ ३ ॥

(जो व्यक्ति) (परमात्मा के) हुक्म और इच्छा (के अनुसार) चलता है, (वह खरे सिक्के की भाँति परमात्मा के) खजाने में (प्रामाणिक) समझा जाता है। खोटे (सिक्के) को

(परमात्मा के खजाने में) स्थान नहीं प्राप्त होता वह झूठे (खोटे सिक्कों) के साथ मिल जाता है ॥ ४ ॥

नित्य प्रति खरा (सिक्का) सँभाला जाता है और सच्चा सौदा किया जाता है। खोटे (सिक्के) (परमात्मा की) निगाह में ही नहीं आते (और वे) सिर पकड़कर आग में तपाए जाते हैं ॥ ५ ॥

जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, वे परमात्मा (के ही रूप) हो जाते हैं (क्योंकि) एक (हरी) अमृत का वृक्ष है, (जिसमें) फल भी अमृत के ही लगते हैं ॥ ६ ॥

जिन्होंने (परमात्मा के) अमृत फल को चख लिया है, (वे) सत्य (परमात्मा) में ही तृप्त हो जाते हैं। ऐसे (मनुष्यों में) न (किसी प्रकार का) भ्रम है और भेद है, (उनकी) जिह्वा हरि-रस में रसयुक्त हो गई है ॥ ७ ॥

(तू शुभ कर्मों के फल से) (परमात्मा के) हुक्म से संयोगवश (इस संसार में) आया है (अतएव) सदैव उसकी मर्जी के अनुसार चल। (हे प्रभु) अवगुणी व्यक्ति को गुण प्राप्त हों और नानक को बड़ाई (के रूप में) सत्य (प्राप्त हो) ॥ ८ ॥ २० ॥

(२१)

मनु रातउ हरि नाइ सचु वखाणिआ।
लोका दा किआ जाइ जा तुधु भाणिआ ॥१॥
जउ लगु जीउ पराण सचु धिआईऐ।
लाहा हरि गुण गाइ मिलै सुखु पाईऐ ॥१॥रहाउ॥
सची तेरी कार देहि दइआल तूं।
हउ जीवा तुधु सालाहि मै टेक अधारु तूं ॥२॥
दरि सेवकु दरवानु दरदु तूं जाणही।
भगति तेरी हैरानु दरदु गवावही ॥३॥
दरगह नामु हदूरि गुरमुखि जाणसी।
वेला सचु परवाणु सबदु पछाणसी ॥४॥
सतु संतोखु करि भाउ तोसा हरि नामु सेइ।
मनहु छोडि विकार सचा सचु देइ ॥५॥
सचे सचा नेहु सचै लाइआ।
आपे करे निआउ जो तिसु भाइआ ॥६॥
सचे साची दाति देहि दइआलु है।
तिसु सेवी दिनु राति नामु अमोलु है ॥७॥
तूं उतमु हउ नीचु सेवकु कांढीआ।
नानक नदरि करेहु मिलै सचु चांढीआ ॥८॥२१॥

(मेरा) मन हरिनाम में अनुरक्त हो गया है (मैं) सत्य (हरि का गुण) वर्णन करता हूँ। (यदि) मैं तुझे अच्छा लगता हूँ (तो उससे) संसार का क्या जाता है? ॥ १ ॥

जब तक (शरीर में) श्वास और प्राण हैं तब तक सत्य (परमात्मा) का ध्यान करना चाहिए। हरि के गुणगान (करने) से नाम प्राप्त होता है और सुख की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तेरी सेवा सच्ची होती है, हे दयालु, तू (कृपा करके उस सेवा-वृत्ति को मुझे) प्रदान कर। मैं तेरी स्तुति करके जीवित हूँ। तू ही (मेरा) सहारा और आश्रय है ॥ २ ॥

सेवक (तेरे द्वार का) दरबान है, (उसका) दुःख तू ही जानता है। तेरी भक्ति आश्चर्यमयी है, (वह सारे) दुःखों को दूर कर देती है ॥ ३ ॥

(सेवक) (हरि के) द्वार पर और (उसकी) उपस्थिति में नाम जपता है, (कोई) गुरमुख ही इसे समझ सकेगा। सच्चा और प्रामाणिक (शिष्य) ही (उपयुक्त) समय पर (गुरु के) शब्द को पहचानेगा ॥ ४ ॥

जो सत्य, संतोष और प्रेम को पाथेय (बनाता है) वही हरि नाम (पाता है)। (यदि) मन से विकार त्याग दिए जायँ तो सच्चा (हरि) सत्य (का दान) देता है ॥ ५ ॥

सत्य के प्रति सच्चा ही स्नेह होता है (और उसमें) सत्य (हरि) लगाता है। जैसा (उस परमात्मा का) पक्का समझता है, वैसा ही (वह) ध्यान करता है ॥ ६ ॥

सच्चे (परमात्मा का) सच्चा दान होता है, दयालु (हरि) कृपा करके (इस दान को) देता है। (जिसका) नाम अमूल्य है उस (परमात्मा की) (मैं) निरंतर सेवा करता हूँ ॥ ७ ॥

(हे प्रभु) तू उत्तम है, मैं तेरा नीच सेवक कहा जाता हूँ। नानक कहते हैं कि (हे प्रभु) कृपा की दृष्टि करो (जिससे) बिछुड़े हुए को सत्य की प्राप्ति हो ॥ ८ ॥ २१ ॥

[२२]

आवणु जाणा किउ रहै किउ मेला होई ।
जनम मरण का दुखु घणो नित सहसा दोई ॥१॥

बिनु नावै किआ जीवना फिटु ध्रिगु चतुराई ।
सतिगुर साधु न सेविआ हरि भगति न भाई ॥१॥रहाउ॥

आवणु जावणु तउ रहै पाईऐ गुरु पूरा ।
राम नामु धनु रासि देइ बिनसै भ्रमु कूरा ॥२॥

संत जना कउ मिलि रहै धनु धनु जसु गाए ।
आदि पुरखु अपरंपरा गुरमुखि हरि पाए ॥३॥

नटूए सांगु बणाइआ बाजी संसारा ।
तिलु पलु बाजी देखीऐ उझरत नही बारा ॥४॥

हउमै चउपड़ि खेलणा झूठे अहंकारा ।
सभ जगु हारै सो जिते गुर सबदु वीचारा ॥५॥

जिउ अंधुले हथि टोहणी हरि नामु हमारे ।
राम नामु हरि टेक है निसि दउत सवारे ॥६॥

जिउ तू राखहि तिउ रहा हरि नाम अधारा ।
अंति सखाई पाइआ जन मुकति दुआरा ॥७॥

जनम मरण दुख मेटिआ जपि नामु मुरारे ।
नानक नामु न वीसरै पूरा गुरु तारे ॥८॥२२॥

(संसार में) आना-जाना (जन्मना मरना) किस प्रकार समाप्त हो (और किस प्रकार प्रभु से) मिलाप हो ? जन्म-मरण का दुःख बहुत भारी है और द्वैतभाव का भ्रम नित्य बना रहता है ॥ १ ॥

बिना नाम के जीवन क्या है ? (सांसारिक) चतुराई को फटकार है धिक्कार है । न तो (तूं ने) सद्गुरु अथवा साधु की ही सेवा की (और) न (तुझे) हरिभक्ति ही प्रिय लगी ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आना-जाना (जीवन-मरण) तभी समाप्त होता है, जब पूर्ण गुरु की प्राप्ति हो । पूर्ण गुरु रामनाम की (अपार) धनराशि प्रदान करता है, (जिसके फलस्वरूप) मिथ्या भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

(साधक) संत-जनों से युक्त होकर रहे (और इस मिलाप में) यश का गुणगान कृतार्थ होकर करे तथा आदि पुरुष अपरम्पार हरि को गुरु की शिक्षा द्वारा प्राप्त करे ॥ ३ ॥

(जिस प्रकार) मदारी स्वांग रचता है (उसी प्रकार) यह संसार भी खेल है । (किंचित) क्षण पल भर (यह खेल) देखा जाता है इसे नष्ट होने में कुछ देर नहीं लगती ॥ ४ ॥

झूठ और अहंभाव में (पड़कर), (सारा संसार) अहंकार की चौपड़ खेलता है । (इस खेल में) सारा जगत् हार जाता है; वही जीतता है जो गुरु के शब्द (उपदेश) पर विचार करता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अंधे के हाथ में छड़ी (सहारा) होती है, (वैसे ही) हमारा (आधार) हरिनाम है । रात-दिन राम और हरि का नाम ही मेरा सहारा है; (वही मुझे) सँवारता है ॥ ६ ॥

(हे प्रभु), जिस भाँति तू रखता है, (उसी भाँति) मैं रहता हूँ (मेरा तो) हरिनाम ही आधार है । दास को अंत समय का साथी और मुक्ति का द्वार (हरी) प्राप्त हो गया है ॥ ७ ॥

मुरारी (परमात्मा) का नाम जपने से जीवन-मरण के दुःख मिट गए हैं । नानक कहते हैं कि (जिसे) नाम नहीं भूलता (उसे) पूर्ण गुरु (संसार से) तार देता है ॥ ८ ॥ २२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु आसा, महला १, पटी लिखी ॥

ससै सोइ स्रिसटि जिनि साजी सभना साहिबु एकु भइआ ।
सेवत रहे चितु जिन का लागा आइआ तिन का सफलु भइआ ॥१॥

मन काहे भूले मूड़ मना।
जब लेखा देवहि बीरा तउ पड़िआ ॥१॥

ईवड़ी आदि पुरखु है दाता आपे सचा सोई।
एना अखरा महि जो गुरमुखि बूझै तिसु सिरि लेखु न होई ॥२॥

ऊड़ै उपमा ता की कीजै जा का अंतु न पाइआ।
सेवा करहि सेई फलु पावहि जिन्ही सचु कमाइआ ॥३॥

ङंङै ङिआनु बूझै जे कोई पड़िआ पंडितु सोई।
सरब जीआ महि एको जाणै ता हउमै कहै न कोई ॥४॥

ककै केस पुंडर जब हूए विणु साबूणै उजलिआ।
जम राजे के हेरू आए माइआ कै संगलि बंधि लइआ ॥५॥

खखै खुंदकारु साह आलमु करि खरीदि जिनि खरचु दीआ।
बंधनि जा कै सभु जगु बाधिआ अवरी का नही हुकमु पइआ ॥ ६ ॥

गगै गोइ गाइ जिनि छोडी गली गोबिदु गरबि भइआ।
घड़ि भांडे जिनि आवी साजी चाड़ण वाहै तई कीआ ॥ ७ ॥

घघै घाल सेवकु जे घालै सबदि गुरू कै लागि रहै।
बुरा भला जे सम करि जाणै इन बिधि साहिबु रमतु रहै ॥ ८ ॥

चचै चारि बेद जिनि साजे चारे खाणी चारि जुगा।
जुगु जुगु जोगी खाणी भोगी पड़िआ पंडितु आपि थीआ ॥ ९ ॥

छछै छाइआ वरती सभ अंतरि तेरा कीआ भरमु होआ।
भरमु उपाइ भुलाईअनु आपे तेरा करमु होआ तिन गुरू मिलिआ ॥ १० ॥

जजै जानु मंगत जनु जाचै लख चउरासीह भीख भविआ।
एको लेवै एको देवै अवरु न दूजा मै सुणिआ ॥ ११ ॥

झझै झूरि मरहु किआ प्राणी जो किछु देणा सु दे रहिआ।
दे दे वेखै हुकमु चलाए जिउ जीआ का रिजकु पइआ ॥ १२ ॥

ञंञै नदरि करे जा देखा दूजा कोई नाही।
एको रवि रहिआ सभ थाई एकु वसिआ मन माही ॥ १३ ॥

टटै टंचु करहु किआ प्राणी घड़ी कि मुहति कि उठि चलणा।
जूऐ जनमु न हारहु अपणा भाजि पड़हु तुम हरि सरणा ॥ १४ ॥

ठठै ठाढि वरती तिन अंतरि हरि चरणी जिन का चितु लागा।
चितु लागा सेई जन निसतरे तउ परसादी सुखु पाइआ ॥ १५ ॥

डडै डंफु करहु किआ प्राणी जो किछु होआ सु सभु चलणा।
तिसै सरेवहु ता सुखु पावहु सरब निरंतरि रवि रहिआ ॥ १६ ॥

ढढै ढाहि उसारै आपे जिउ तिसु भावै तिवै करे।
करि करि वेखै हुकमु चलाए तिसु निसतारे जा कउ नदरि करे ॥ १७ ॥

णाणै रवतु रहै घटि अंतरि हरि गुण गावै सोई ।
आपे आपि मिलाए करता पुनरपि जनमु न होई ॥ १८ ॥

ततै तारू भवजलु होआ ता का अंतु न पाइआ ।
ना तर ना तुलहा हम बूडसि तारि लेह तारण राइआ ॥ १९ ॥

थथै थानि थानंतरि सोई जा का कीआ सभु होआ ।
किआ भरमु किआ माइआ कहीऐ जो तिसु भावै सोई भला ॥ २ ॥

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करमा आपणिआ ।
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ॥ २१ ॥

धधै धारि कला जिनि छोडी हरि चीजी जिनि रंग कीआ ।
तिस दा दीआ सभनी लीआ करमी करमी हुकमु पइआ ॥ २२ ॥

नंनै नाह भोग नित भोगै ना डीठा ना सम्हलिआ ।
गली हउ सोहागणि भैणे कंतु न कबहूं मैं मिलिआ ॥ २३ ॥

पपै पातिसाहु परमेसरु वेखण कउ परपंचु कीआ ।
देखै बूझै सभु किछु जाणै अंतरि बाहरि रवि रहिआ ॥ २४ ॥

फफै फाही सभु जगु फासा जम कै संगलि बंधि लइआ ।
गुरपरसादी से नर उबरे जि हरि सरणागति भजि पइआ ॥ २५ ॥

बबै बाजी खेलण लागा चउपड़ि कीते चारि जुगा ।
जीअ जंत सभ सारी कीते पासा ढालणि आपि लगा ॥ २६ ॥

भभै भालहि से फलु पावहि गुरपरसादी जिन कउ भउ पइआ ।
मनमुख फिरहि न चेतहि मूड़े लख चउरासीह फेरु पइआ ॥ २७ ॥

ममै मोहु मरणु मधुसूदनु मरणु भइआ तब चेतविआ ।
काइआ भीतरि अवरो पड़िआ ममा अखरु वीसरिआ ॥ २८ ॥

ययै जनमु न होवी कदही जे करि सचु पछाणै ।
गुरमुखि आखै गुरमुखि बूझै गुरमुखि एको जाणै ॥ २९ ॥

रारै रवि रहिआ सभ अंतरि जेते कीआ जंता ।
जंत उपाइ धंधै सभ लाए करमु होआ तिन नामु लइआ ॥ ३ ॥

ललै लाइ धंधै जिनि छोडी मीठा माइआ मोहु कीआ ।
खाणा पीणा सम करि सहणा भाणै ता कै हुकमु पइआ ॥ ३१ ॥

ववै वासुदेउ परमेसरु वेखण कउ जिनि वेसु कीआ ।
वेखै चाखै सभु किछु जाणै अंतरि बाहरि रवि रहिआ ॥ ३२ ॥

ड़ाड़ै राड़ि करे किआ प्राणी तिसहि धिआवहु जि अमरु होआ ।
तिसहि धिआवहु सचि समावहु ओसु विटहु कुरबाणु कीआ ॥ ३३ ॥

हाहै होरु न कोई दाता जीअ उपाइ जिनि रिजकु दीआ ।
हरि नामि धिआवहु हरि नामि समावहु अनदिनु लाहा हरिनामु लीआ ॥ ३४ ॥

आपे आपि करे जिनि छोडी जो किछु करणा सु करि रहिआ ।
करे कराए सभ किछु जाणै नानक साइर इव कहिआ ॥ ३५ ॥ १ ॥

विशेष : पट्टी के ऊपर बालक अक्षरों को लिखना सीखते हैं। इस वाणि का नाम पट्टी है। इसमे गुरमुखी लिपि के पैंतीस अक्षरों को क्रमानुसार लेकर उपदेश दिया गया है। गुरु नानक देव की यह रचना सबसे पहली लम्बी वाणी है। उन्होंने यह वाणी अपने अध्यापक से कही है। इसमें गुरमुखी के पैंतीस अक्षर आ गए हैं।

अर्थ : 'ससा' (स) (का अभिप्राय) उस (परमात्मा) से है, जिसने सृष्टि की रचना की है (और जो) सब का स्वामी है। जिनका चित्त (उस परमात्मा में) लग गया है (वे उसकी निरन्तर) सेवा करते रहते हैं और उन्ही का इस संसार में आना (जन्म लेना) भी सार्थक हो गया है ॥ १ ॥

हे मन मूर्ख मन (तू) (उस हरी को) क्यों भूलता है? (क्या इसीलिए तू पढ़ गया है)? भाई, तू पढ़ा हुआ तब समझा जायगा, जब अपने कर्मों का पूरा पूरा हिसाब चुका देगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

'ईवड़ी' (ई) (का अभिप्राय यह है) कि आदि पुरुष (ही एकमात्र) दाता है, वह (परमात्मा) आप ही सच्चा है। जो गुरु द्वारा दीक्षित (शिष्य) इन अक्षरों में (हरी को) समझ लेता है, (तात्पर्य यह है कि विद्या द्वारा परमात्मा को समझ लेता है) उसके सिर पर (किसी कर्म का) हिसाब नहीं रहता ॥ २ ॥

'ऊड़ा' (ऊ) (अर्थ यह है कि) (उसकी) उपमा उससे की जाय जिसका कहीं अन्त न प्राप्त हो (ऐसी उपमा कोई है नहीं क्योंकि सभी वस्तुएं देशकाल के अन्तर्गत हैं। अतएव परमात्मा 'निरुपमेय' है)। जिन्होंने (सद्गुरु की) सेवा की है और सच की कमाई की है (वे ही) (मोक्ष) फल पाते हैं ॥ ३ ॥

'ङङा' (ङ) —जो ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) जानता है, वही (वास्तविक) पढ़ा हुआ पंडित है। (यदि कोई) सारे जीवों में एक (परमात्मा) को जानता है तो (वह) अहंकार (की बातें) नहीं कह सकता (कि यह बात मैंने की है) ॥ ४ ॥

'कका' (क) : जब केश श्वेत हो गए और साबुन लगाए बिना ही सफेद हो गए, (वृद्धावस्था आ गई), (तो यह समझना चाहिए कि) यमराज के दूत (पकड़ने के लिए) आ गए हैं (और उन्होंने उस व्यक्ति को) माया की जंजीरों में बाँध लिया है ॥ ५ ॥

'खखा' (ख) (का तात्पर्य) —खुदावंदगार (कर्तार) दुनियाँ का बादशाह है (जिसने मनुष्य को) खरीद कर (भाव यह कि अपना सेवक बना कर) (इस संसार में) खाने देकर (भेजा है)। जिसके बन्धन में सारा जगत बँधा है (उसी का हुक्म चलता है) किसी और का हुक्म नहीं चलता ॥ ६ ॥

'गगा' (ग) (का तात्पर्य) —गोविन्द की वाणी जिन्होंने भी छोड़ दी है, वे बातों का ही गर्व करते हैं। (ऐसे गर्वित मनुष्यों को) (सृष्टि का रचयिता) गढ़े हुए बरतन की भाँति आँवें में तपाने के लिए तैयार करेगा (अर्थात् उन्हें कठोर यंत्रणाएँ देगा) ॥ ७ ॥

'घघा' (घ) (का तात्पर्य) : जो सेवक (गुरु के वचनों) में परिश्रम करता है (वह)

गुरु के शब्द में लगा रहता है। जो बुरे भले को समान भाव से जानता है, वह इस विधि से साहब (परमात्मा) के साथ (सदैव) रमण करता रहता है ॥ ८ ॥

'चच्चा' (च) (का अभिप्राय) : चार वेदों, चार खानियों (अंडज जेरज, स्वेदज तथा उद्भिज) तथा चार युगों की रचना जिसने की है, (वह हरी) युग-युगान्तरों से (आप ही) निर्लिप्त (योगी) (बना रहता) है (और आप ही) (चारो) खानियों (के जीव-जन्तुओं के माध्यम से) भोगी (भोक्ता) बना हुआ है (तथा आप ही) पढ़ लिख कर पंडित भी (बना हुआ) है ॥ ९ ॥

'छच्छा' (छ) (का तात्पर्य) छाया (अविद्या) सारे (जीवों के अन्तःकरण में) बरत रही है; (अविद्या-जनित) भ्रम भी तेरा ही किया हुआ है। (इस प्रकार) भ्रम उत्पन्न करके (तू ने ही) (सब को) (माया में) भटका दिया है, (जिसके ऊपर) तेरी कृपा होती है, उसी को गुरु मिलता है, (जिसके फलस्वरूप वह अविद्या से पार हो जाता है) ॥ १० ॥

'जज्जा' (ज) (का अभिप्राय) याचक (मंगता) दास (वह) ज्ञान' माँगता है, (जिसकी) भिक्षा के निमित्त (वह) चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरता रहा है। एक (हरी) लेता है और एक ही देता है मैंने दूसरे (लेने-देनेवाले) को नहीं सुना है ॥ ११ ॥

'झज्झा' (झ) (का आशय) हे प्राणी 'झुरस' 'झुरस' कर (दुःखी होकर) क्यों मर रहे हो ? जो कुछ उस देना है, (उसे वह) (बराबर) देता जा रहा है। जिस जिस प्रकार जीवों की रोजी (खुराक) नियत है, (उसी के अनुसार वह) देता है देखता है (सँभालता है) और (अपना) हुक्म चलाता है ॥ १२ ॥

'ञञा' (ञ) (का अभिप्राय) 'नजर' करके (गुरु के साथ) जब देखता हूँ (तो हरी को छोड़ कर) और कोई दूसरा नहीं (दिखाई पड़ता)। एक (हरी ही) सभी स्थानों में रमा हुआ है (और) एक (हरी ही) (सभी) के मन में बस रहा है ॥ १३ ॥

'टट्टा' (ट) (का यह अभिप्राय है कि) ऐ प्राणी क्या 'टंच' (व्यर्थ का धन्धा) कर रहे हो ? एक घड़ी अथवा एक मुहूर्त में (तुम्हें यहाँ से) उठकर चला जाना है। तुम (जीवन के) जुए में अपने जन्म (की बाजी) मत हारो तुम (शीघ्रातिशीघ्र) भाग कर हरी की शरण में पड़ जाओ ॥ १४ ॥

'ठठ्ठा' (ठ) (का आशय) 'ठंढक' (शीतलता मन की शान्ति) उन्हीं के हृदय में विराजमान है जिनका चित्त हरि के चरणों में लगा हुआ है। (हे प्रभु) जिनका चित्त (तेरे चरणों में) लगा है वे हो प्राणी तर गए हैं, तेरी कृपा से ही (उन्हें) सुख प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥

'डड्डा' (ड) (का मतलब यह है कि) हे प्राणी दंभ ('डंफ') क्यों कर रहे हो ? जो कुछ भी (रचा) हुआ है वह सब चलनेवाला है, (नश्वर है) (अतएव) (जो परमात्मा) सब में निरन्तर रम रहा है, उसी की सेवा करो तभी सुख पाओगे (अन्यथा नहीं) ॥ १६ ॥

'ढड्ढा' (ढ) (का अभिप्राय यह है कि) : (हरी)स्वयं ही 'ढाहता' है (नष्ट करता) है (और स्वयं) निर्माण करता है, जैसे जैसा अच्छा लगता है (वह) वैसा ही करता है। (वह हरी अपनी सृष्टि) रच रच करके, उसे देखता है (सम्भालता) रहता है (और अपना) हुक्म (सब पर) चलाता रहता है जिसके ऊपर अपनी कृपादृष्टि करता है, उसका निस्तार कर देता है ॥ १७ ॥

'टंटा' (ट) (का मर्म यह है कि) : जिसके मन (हृदय में) अन्तर्गत (हरी) रम रहा है (वही) उसके गुण गाता है। (वह) कर्ता (पुरुष) पार ही करने में (साधक को) मिला लेता है, (जिससे उसका) जन्म पुनः नहीं होता है ॥ १८ ॥

'ठठ्ठा (ठ) (का आशय यह है कि) यह संसार रूप (भवसागर) अथाह ['अथाह — जो तैरे बिना न पार किया जा सके अथाह, गहरा] है उसका अन्त (थाह) नहीं पाया जा सकता। (हे प्रभु) न तो (हम) तैरना (जानते हैं), न (हमारे पास पार उतरने का कोई) बेड़ा ही है (अतः) हम डूब जायेंगे हे तारने के राजा (हरी) (हमें) तार ले ॥ १९ ॥

'डड्डा' (ड) (का भाव यह है कि) 'स्थान-स्थानान्तरों' में वही (हरी व्याप्त) है उसी के करने से सब कुछ हुआ है। (अतएव) किसे भ्रम कहा जाय और किसे माया ? जो कुछ उसे अच्छा लगता है वही भला है ॥ २० ॥

'ढड्ढा' (ढ) (का तात्पर्य यह है कि) (मैं) किसी को 'दोष' न दूं दोष अपने ही कर्मों का है। जो कुछ मैंने (पूर्व जन्मों में) किया है, (वही) मैं (इस जन्म में) पा रहा हूं (अतएव) किसी और को दोष नहीं देना चाहिए ॥ २१ ॥

'णाणा (ण) (का अर्थ यह है कि) जिस (हरी) ने अपनी शक्ति टिका रखी है और हर एक चीज विभिन्न रंग की उत्पन्न की है, (उस परमात्मा) का दिया हुआ सभी लेते हैं, (प्रत्येक के) कर्मानुसार (हरी) का हुक्म चला हुआ है ॥ २२ ॥

'नन्ना' (न) (का सार तत्व यह है कि) नाहु—पति (परमात्मा) (सुहागिनी स्त्रियों के साथ) नित्य भोग भोगता है, (किन्तु मैंने) न तो (उसे) देखा है और न स्मरण ही किया है। हे बहिनों, मैं तो केवल बातों की ही सुहागिनी हूँ (मैं) कन्त से कभी नहीं मिलती हूं ॥ २३ ॥

'पप्पा' (प) (का अभिप्राय यह है कि) 'पातशाह' (बादशाह) परमेश्वर ने देखने के लिए प्रपंच (पंच तत्वों का विस्तार, जगत) का निर्माण किया है। (वह परमेश्वर ही) सब कुछ देखता है, समझता है और जानता है, (और सभी जड़-चेतन के) भीतर बाहर रम रहा है ॥ २४ ॥

'फफ्फा' (फ) (का अर्थ यह है कि) सारा जगत 'फाही' (फन्दा, बन्धन) में फंसा हुआ है और यमराज की सांकल में बंधा हुआ है। गुरु की कृपा से (इस संसार से) वे ही मनुष्य बचते हैं, जो भाग कर हरी की शरण में पड़ गए हैं ॥ २५ ॥

'बब्बा' (ब) (का अनुभव यह है कि) (हरी ने) चारों युगों को चौपड़ बना कर (खेल की) 'बाजी' खेलनी प्रारम्भ की है। सारे जीव-जन्तुओं को (उसने अपने इस खेल का) मुहरा बनाया है और स्वयं ही पासा डालना प्रारम्भ किया है [आशय यह है कि परमात्मा ने स्वयं ही चार की चार युगों—सतयुग त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग—में बांट कर संसार बनाया है और स्वयं ही जीवों को अपने हुक्म के अनुसार इधर उधर चलाता रहता है।] ॥ २६ ॥

'भभ्भा (भ) (का भाव यह है कि) जो (व्यक्ति) (उस हरी का) भजन करते हैं (जानते हैं), वे ही (मोक्ष—)फल पाते हैं। गुरु की कृपा से जिनके (परमात्मा का) भय समाया है (वे ही मुक्तिफल पाते हैं)। भ्रमवश इधर उधर फिरते रहते हैं, वे मूर्ख (परमात्मा) को नहीं

चेतते (स्मरण करते) (जिस कारण) चौरासी लाख योनियों में (बारबार) फेरा लगाते रहते हैं ॥ २७ ॥

मम्मा' (म) (का तात्पर्य यह है कि) मोह (के वशीभूत होकर) 'मरण' और 'मधु सूदन' को (मनुष्य ने) तभी चेता (स्मरण किया) जब मरणकाल आ पहुँचा। (जब तक) शरीर के भीतर (प्राण थी) (तब तक) (वह) और ही कुछ पढ़ता रहा (तात्पर्य यह कि विषय विकारों में रत रहा) और 'म' अक्षर को ही भूल गया था (भाव यह है कि 'म' वर्ण से प्रारम्भ होने वाले 'मरण' और 'मधुसूदन' याद ही न रहे) ॥ २८ ॥

'यय्या' (य) (का आशय यह है कि) यदि (साधक) सत्य को पहचान ले तो फिर कभी जन्म नहीं हो सकता। (ऐसा शिष्य) गुरु के उपदेश को ही कहता है गुरु की शिक्षा को ही समझता है और गुरु की शिक्षा द्वारा एक (हरी) को ही जानता है ॥ २९ ॥

रर्रा' (र) (का सम्बन्ध यह है कि) (हरी) ने जितने जीवों की रचना की है, (उन) सभी के अन्तर्गत वह रम' रहा है। (उसी हरी ने) जीवों को उत्पन्न करके उन सब को (अपने-अपने) धंधों में लगाया है, (जिनके ऊपर उसकी) कृपा होती है, वे ही नाम लेते हैं ॥ ३ ॥

लल्ला' (ल) (का अर्थ यह है कि) जिसने (हरी ने) (सभी जीवों) उनके धंधों में 'लगा' कर छोड़ दिया है और माया के मीठे आकर्षणों तथा मोह को बनाया है। अतएव खाने-पीने आदि को (तात्पर्य यह है कि सुख भोगने हों तथा अन्य दुख सहन करने हों उन्हें) सम भाव से ही सहन करना चाहिए (और यह भावना करनी चाहिए) कि उसकी इच्छा के हुक्म के अनुसार सब कुछ हो रहा है ॥ ३१ ॥

'वव्वा' (व) (का मतलब यह है कि) 'वासुदेव' परमेश्वर ने देखने के निमित्त अनेक वेश धारण किया है। (वही वासुदेव परमेश्वर अनेक भेष धारण करके) सब को देखता है चखता है (रसास्वादन करता है) और सब कुछ जानता है' (वही) (सब के) भीतर-बाहर रम रहा है ॥ ३२ ॥

'ड़ाड़ा' (ड़) (से यह माने है कि) हे प्राणी तुम क्यों 'रार' (झगड़ा) कर रहे हो? (तुम) उसका ध्यान करो जो अमर है। उसी (हरी) का ध्यान करो और सत्य (परमात्मा) में समाहित हो जाओ और उसके ऊपर (अपने को) कुरबान कर दो ॥ ३३ ॥

'हाहा' (ह) (से यह समझो कि) (हरी को छोड़ कर) कोई और ('होर') दाता नहीं है; उसी ने जीवों को उत्पन्न करके उनकी रोटी (भोजन खुराक) दी है। (अतएव) हरी नाम का ही स्मरण करो हरिनाम में समाहित हो जाओ और रात दिन हरि नाम का ही लाभ ग्रहण करो ॥ ३४ ॥

आइा' (आ) (से अभिप्रेत यह है कि) जिस (प्रभु) ने 'आप ही' सब सृष्टि बना रक्खी है, वही जो कुछ करने को है, सब कुछ करता है। नानक कवि इस प्रकार कहते हैं कि वह सब कुछ करता कराता है और सब कुछ जानता है ॥ ३५ ॥ १ ॥

[विशेष एकाध स्थान पर गुरु नानक देव ने अपने लिए 'शायर' शब्द का प्रयोग भी किया है, उदाहरणार्थ— नानक साइर इव कहतु है सचे परवदगारा' (धनासरी, महला १]।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु आसा, महला १, छन्त, घरु १ ॥

(१)

मुंध जोबनि बालड़ीए मेरा पिरु रलीआला राम ।
धन पिर नेहु घणा रसि प्रीति दइआला राम ।
धन पिरहि मेला होइ सुआमी आपि प्रभु किरपा करे ।
सेजा सुहावी संगि पिर कै सात सर अमृत भरे ॥
करि दइआ मइआ दइआल साचे सबदि मिलि गुण गावओ ।
नानका हरि वरु देखि बिगसी मुंध मनि ओमाहओ ॥ १ ॥
मुंध सहजि सलोनड़ीए इक प्रेम बिनंती राम ।
मै मनि तनि हरि भावै प्रभ संगमि राती राम ॥
प्रभि प्रेम राती हरि बिनंती नामि हरि कै सुखि बसै ।
तउ गुण पछाणहि ता प्रभु जाणहि गुणह वसि अवगण नसै ॥
तुध बाझु इकु तिलु रहि न साका कहणि सुनणि न धीजए ।
नानका प्रिउ प्रिउ करि पुकारे रसन रसि मनु भीजए ॥ २ ॥
सखीहो सहेलड़ीहो मेरा पिरु वणजारा राम ।
हरिनामो वणजड़िआ,रसि मोलि अपारा राम ॥
मोलि अमोला सच घरि ढोलो प्रभ भावै ता मुंध भली ।
इकि संगि हरि कै करहि रलीआ हउ पुकारी दरि खली ॥
करण कारण समरथ स्रीधर आपि कारजु सारए ।
नानक नदरी धन सोहागणि सबदु अभ साधारए ॥ ३ ॥
हम घर साचा सोहिलड़ा प्रभ आइअड़े मीता राम ।
रावे रंगि रतंड़िआ मनु लीअड़ा दीता राम ॥
आपणा मनु दीआ हरि वरु लीआ जिउ भावै तिउ रावए ।
तनु मनु पिर आगै सबदि सभागै घरि अंमृत फलु पावए ॥
बुधि पाठि न पाईऐ बहु चतुराईऐ भाइ मिलै मनि भाणे ।
नानक ठाकुर मीत हमारे हम नाही लोकाणे ॥ ४ ॥ १ ॥

हे यौवन में (उन्मत्त) मुग्ध बाले मेरा पति राम आनन्दी स्वभाव वाला है। (यदि जीव स्त्री) स्त्री में पति का गहरा प्रेम हो तो दयालु पति 'राम' प्रसन्न होकर (अपनी) प्रीति (प्रदान करता) है। फिर प्रभु-पति अपार कृपा करता है और स्त्री का पति के साथ मेल होता है। प्रियतम के साथ में (उसकी) सेज सुहावनी (सजनी) है, (और) स्त्री के सातों सरोवर (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ मन तथा बुद्धि) अमृत से भर जाते हैं। (हे) दयालु (प्रभु) (मेरे ऊपर) दया और ममता करो ताकि मैं (गुरु के) सच्चे शब्द में मिलकर, (तुम्हारा) गुण गान करूँ। नानक कहते हैं कि हरि-वर (पति) को देखकर स्त्री बहुत अधिक प्रसन्न हुई है (और उसके) मन में बहुत उत्साह है ॥ १ ॥

हे स्वाभाविक सौन्दर्यवाली स्त्री मेरी एक प्रेमपूर्ण प्रार्थना है कि राम (में मेरा सहज और एकनिष्ठ अनुराग हो)। मुझे तन-मन से हरि प्रिय लगे और प्रभु राम के जगत में नित्य अनुरक्त रहूँ। (मैं) (नित्य) प्रभु के प्रेम में अनुरक्त रहूँ, हरि की ही प्रार्थना (करूँ) और हरि का नाम सहज भाव से (सुखपूर्वक) (मेरे हृदय में) वास करे। (यदि) तू भी उसके गुणों को पहचानो तो उसे प्रभु समझ कर जानने लगोगी (जिसके फलस्वरूप तुम्हारे हृदय में) गुण बस जायेंगे और अवगुण नष्ट हो जायेंगे। (हे प्रभु), (सच्ची अनुरागिनी स्त्री) तेरे बिना तिल मात्र (एक निमिष) भी नहीं रह सकती। उसे कहने सुनने से धैर्य नहीं प्राप्त होता। नानक कहते हैं (कि वह स्त्री) (अहर्निश) "हे प्रिय हे प्रिय" कह कर पुकारती है, जिससे (उसकी) रसना रसमयी हो जाती है और मन (प्रेम में) भीग जाता है ॥ २ ॥

हे सखी-सहेलियो, (मेरा) प्रियतम राम (अनोखा) बनजारा है। (वह) हरिनाम का व्यापार करता है वह राम (नाम) रस (अमृत) और मूल्य में अपार है। प्यारा प्रभु जो मूल्य में अमूल्य है और सत्य के घर में (रहता है) (यदि) वह चाहे (तो) (जीव रूपी) स्त्री भली हो जाती है। कुछ (सुहागिनी स्त्रियाँ) (पति) हरी के संग में आनन्द कर रही हैं, (और मैं दुहागिनी) (उसके) दरवाजे पर खड़ी होकर पुकारती हूँ। श्रीधर (परमात्मा) सभी कारणों का कारण है और समर्थ है, वही (सारे) कार्यों को सँवारता है। नानक कहते हैं कि (जिसके ऊपर परमात्मा की) कृपादृष्टि पड़े, तो (वह स्त्री) सुहागिनी हो जाती है और शब्द उसके अन्तःकरण को सँवारता है (सुधारता है।) ॥ ३ ॥

हमारे घर में सच्चा 'सोहिला' (खुशी का गीत) (गाया जा रहा है) (क्योंकि) प्रभु तथा मित्र राम (हमारे घर में) आ गए हैं। प्रेम में अनुरक्त (पति-परमात्मा) (मेरे साथ) रमण कर रहा है; मैंने (उस पति) राम का मन ले लिया है (और अपना मन) उसे दे दिया है। अपने मन को देकर, हरि रूपी वर को (प्राप्त कर) लिया है। (अब उसे) जैसा अच्छा लगता है, वैसे ही (मेरे साथ) रमण करता है। (जो जीवात्मा रूपी स्त्री) प्रियतम के सम्मुख अपने तन-मन को (समर्पित करती है), (वह गुरु के) सौभाग्यशाली वचनों द्वारा (अपने) घर (अन्तःकरण) में ही अमृत-फल को प्राप्त कर लेती है। (तीव्र) बुद्धि (सद्ग्रन्थों के पाठ) (अथवा) बहुत सी चतुराइयों से (पति-परमात्मा) नहीं प्राप्त किया जा सकता (वह तो) प्रेम द्वारा मिलता है, (वह भी तब जब उसके) मन को अच्छा लगे। नानक कहते हैं (कि हे) प्रभु (तू ही) हमारा मित्र है, हम अरु लोग नहीं हैं ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

अनहदो अनहदु वाजै रुण झुणकारे राम।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम॥
अनदिनु राता मनु बैरागी सुंन मंडलि घरु पाइआ।
आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतिगुरि अलखु लखाइआ॥
आसणि बैसणि थिरु नाराइणु तितु मनु राता वीचारे।
नानक नामि रते बैरागी अनहद रुणझुणकारे॥ १॥

तितु अगम तितु अगम पुरे कहु कितु बिधि जाईऐ राम ।
सचु संजमो सारि गुणा गुर सबदु कमाईऐ राम ॥
सचु सबदु कमाईऐ निज घरि जाईऐ पाईऐ गुणी निधाना ।
तितु साखा मूलु पतु नही डाली सिरि सभना परधाना ।
जपु तपु करि करि संजम थाकी हठि निग्रहि नही पाईऐ ।
नानक सहजि मिले जगजीवन सतिगुर बूझ बुझाईऐ ॥ २ ॥

गुरु सागरो रतनागरु तितु रतन घणेरे राम ।
करि मजनो सपत सरे मन निरमल मेरे राम ।
निरमल जलि नाए जा प्रभ भाए पंच मिले वीचारे ।
कामु करोधु कपटु बिखिआ तजि सचु नामु उरिधारे ॥
हउमै लोभ लहरि लब थाके पाए दीन दइआला ।
नानक गुर समानि तीरथु नही कोई साचे गुर गोपाला ॥ ३ ॥

हउ बनु बनो देखि रही त्रिणु देखि सबाइआ राम ।
त्रिभवणो तुझहि कीआ सभु जगतु सबाइआ राम ॥
तेरा सभु कीआ तू थिरु थीआ तुधु समानि को नाही ।
तू दाता सभ जाचिक तेरे तुधु बिनु किसु सालाही ॥
अणमंगिआ दानु दीजै दाते तेरी भगति भरे भंडारा ।
राम नाम बिनु मुकति न होई नानकु कहै वीचारा ॥ ४ ॥ २ ॥

हे भाई, (परमात्मा का मिलन हुआ है) और अनाहत शब्द [आत्म-अनहद का संगीत जो बिना बजाए बजता है, वह श्रवणेन्द्रिय का विषय नहीं है। केवल आन्तरिक एकाग्रता में अनुभव किया जाता है] अनाहत गति से 'रुनझुन रुनझुन' बज रहा है। हे प्यारे, लाल राम, मेरा मन मेरा मन (तुझ में) अनुरक्त हो गया है। मेरा (माया से) वीतराग मन अहर्निश (हरि में) अनुरक्त हो गया है, वह शून्य मण्डल (निर्विकल्प अवस्था) में घर पा गया है—स्थिर हो गया है। सद्गुरु ने आदि पुरुष, अपरंपार, प्रियतम तथा अगम्य (हरि) को दिखा दिया है—साक्षात्कार करा दिया है। नारायण (अपने) आसन पर स्थिर होकर बैठा है। (अर्थात् परमात्मा अचल और अडिग है) उसमें मन विचार द्वारा रम गया है। नानक कहते हैं कि वैरागी पुरुष नाम में अनुरक्त हैं; उन्हें ही (आत्म अनहद का) अनाहत और रुनझुन रुनझुन (ध्वनि वाला आत्म-संगीत सुनाई पड़ रहा है) ॥ १ ॥

हे भाई, उस अगम उस अगम पुर में (जहाँ परमात्मा का निवास है), किस विधि से पहुँचा जाय? गुरु के शब्द से सत्य संयम तथा श्रेष्ठ गुणों को कमाने की आवश्यकता है। सत्य शब्द को कमाई करने से (अपने वास्तविक) घर में पहुँचा जाता है (और वहीं) गुणों के भाण्डार (हरि की) प्राप्ति होती है। वहाँ न शाखाएँ हैं, न मूल है, न पत्ते हैं और न डालियाँ हैं (वह प्रभु) सभों का सिरमौर है (और) प्रधान है। जप-तप करके (तथा) संयम करके (सारी दुनिया) थक गई है (किन्तु परमात्मा की प्राप्ति उसे नहीं हुई) (इसी प्रकार) हठपूर्वक (इन्द्रियों का) निग्रह करने से भी (हरि की) प्राप्ति नहीं होती। नानक कहते हैं कि सद्गुरु के द्वारा सूझ-बूझ देने पर जग-जीवन (परमात्मा) सहज ही प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

हे भाई गुरु सागर है, रत्नाकर है उसमें बहुत से रत्न हैं। हे भाई, हे मेरे मन (गुरु रूपी) सत्य-सागर में स्नान करो और निर्मल हो जाओ। जब प्रभु को (साधक) अच्छा लगे (तभी) ऐसे निर्मल जल में स्नान किया जा सकता है (अन्यथा नहीं) (तभी) विचार द्वारा पंच महा गुणों (सत्य संतोष, दया, धर्म और धैर्य) का मिलाप होता है और काम, क्रोध कपट विषय त्याग कर, सत्य नाम को हृदय में धारण किया जाता है। दीनदयालु (परमात्मा) के पाने पर, अहंकार लोभ और लालच की लहरें समाप्त हो जाती हैं। नानक कहते हैं कि गुरु के समान कोई भी तीर्थ नहीं है; सच्चा गुरु गोपाल (हरी परमात्मा) ही है ॥ ३ ॥

हे भाई, मैं वन वन में (ढूंढती और) देखती फिरी सारी तृणराशि को देखती फिरी (अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँची कि) यह समस्त तीनों भुवनोंवाला संसार, तू ने ही बनाया है। (हे प्रभु) तेरा ही रचा हुआ सब कुछ है, (किन्तु तू) स्थिर है तेरे समान अन्य कोई नहीं है। तू ही (एक) दाता (और) सब तेरे याचक हैं, (मैं) तुम्हारे बिना (अन्य) किसकी स्तुति करूँ ? हे दाता तू बिना माँगे ही दान देता है तेरा भाण्डार भक्ति से परिपूर्ण है। नानक यह विचार करके कहता है कि बिना रामनाम के मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ४ ॥ २ ॥

(३)

मेरा मनो मेरा मनु राता राम पिआरे राम।
सचु साहिबो आदि पुरखु अपरंपरो धारे राम।
अगम अगोचर अपर अपारा पारब्रहमु परधानो।
आदि जुगादी है भी होसी अवरु झूठा सभु मानो॥
करम धरम की सार न जाणै सुरति मुकति किउ पाईऐ।
नानक गुरमुखि सबदु पछाणै अहिनिसि नामु धिआईऐ॥ १॥

मेरा मनो मेरा मनु मानिआ नामु सखाई राम।
हउमै ममता माइआ संगि न जाई राम॥
माता पित भाई सुत चतुराई संगि न संपै नारे।
साइर की पुत्री परहरि तिआगी चरन तलै वीचारे॥
आदि पुरखि इकु चलतु दिखाइआ जह देखा तह सोई।
नानक हरि की भगति न छोडउ सहजे होइ सु होई॥ २॥

मेरा मनो मेरा मनु निरमलु साचु समाले राम।
अवगण मेटि चले गुण संगम नाले राम॥
अवगण परहरि करणी सारी दरि सचै सचिआरो।
आवणु जावणु ठाकि रहाए गुरमुखि ततु वीचारो॥
साजनु मीतु सुजाणु सखा तूं सचि मिलै वडिआई।
नानक नामु रतनु परगासिआ ऐसी गुरमति पाई॥ ३॥

सचु अंजनो अंजनु सारि निरंजनि राता राम।
जलि थलि रवि रहिआ जगजीवनो दाता राम॥
जगजीवनु दाता हरि मनि राता सहजि मिलै मेलाइआ।

साध सभा सन बसा को संगति नरहरि प्रभु सुखु पाइआ ॥
हरि की भगति रते बैरागी चूके मोह पिआसा ।
नानक हउमै मारि पतीणे विरले दास उदासा ॥ ४ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ३ ॥

हे प्रिय भाई, मेरा मन मेरा मन राम में अनुरक्त हो गया है। (मेरे मन ने) सच्चे साहब, आदि पुरुष अपरंपार (हरी) को धारण कर लिया है। परब्रह्म अगम अगोचर, सबसे परे, अपार है (वही सब का) प्रधान है। (वह परब्रह्म) आदि तथा युग-युगान्तरों में (वर्तमान काल में) है, (भूतकाल में) था और (भविष्य में) रहेगा अन्य सभी (वस्तुओं) को झूठी समझो। (मेरा मन) कर्मकाण्ड तथा धर्म (का रास्ता भी) नहीं जानता, (उसे यह पता भी नहीं है कि) धार्मिक आभरण (युक्ति) तथा मुक्ति किस प्रकार पाई जाती है। नानक कहते हैं (कि मेरा मन) गुरु द्वारा उसकी वाणी द्वारा (केवल इतनी बात) जानता है कि अहर्निश (हरि के) नाम का ध्यान करना चाहिए ॥ १ ॥

हे भाई मेरा मन मेरा मन मान गया है (शान्त हो गया है)। नाम ही मेरा साथी है। हे भाई अहंकार, ममता और माया (धन-सम्पत्ति) साथ में नहीं जाती हैं। माता पिता भाई, पुत्र चतुराई, संपत्ति और स्त्री भी साथ में नहीं जाती। समुद्र की पुत्री—लक्ष्मी—माया को ढूंढ कर त्याग दिया है और विचार के द्वारा उस पैरों के नीचे (रौंद डाला है)। आदि पुरुष (परमात्मा) ने एक कौतुक मुझे यह दिखाया है कि जहाँ देखता हूँ वहाँ वही (दिखाई पड़ता है)। नानक कहते हैं (कि मैं) हरि की भक्ति नहीं छोड़ता हूँ सहज भाव से जो कुछ होता हो वह हो ॥ २ ॥

हे भाई, मेरा मन मेरा मन सच्चे (हरी) को स्मरण कर करके निर्मल हो गया है। (मेरा मन) अवगुणों को मिटा कर (परमात्मा की ओर) चलता है (क्योंकि) उसके साथ ही गुणों का संगम (गंगा, यमुना सरस्वती के मिलने का स्थान प्रयागराज) है। [भावार्थ यह कि मन के अंतर्गत परमात्मा के नाम की उपस्थिति प्रयागराज—तीर्थराज है, जिस नाम रूपी संगम में स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं— अठसठि तीरथ मलि नाउ]। अवगुणों को त्याग कर मैं शुभ कामों को करता हूँ (जिस कारण) सच्चे (हरी) के दरवाजे पर सच्चा ही (सिद्ध) होता हूँ। गुरु की शिक्षा द्वारा तत्त्व का विचार करने से मेरा आना-जाना (जन्म-मरण) समाप्त हो गया है। (हे प्रभु) तू ही मेरा साजन, मित्र और चतुर सखा है सत्य (हरी) के द्वारा ही बड़ाई प्राप्त होती है। नानक कहते हैं कि गुरु के द्वारा ऐसी बुद्धि प्राप्त हो गई है कि नाम-रत्न प्रकाशित हो गया है ॥ ३ ॥

हे भाई सत्य (हरी) अंजन है, इस अंजन को लगा कर (मैं) निरंजन (माया रहित हरी) में अनुरक्त हो गया। हे भाई (मैं) तन और मन में जगजीवन दाता (हरी) में रम रहा हूँ। (जिस व्यक्ति का) मन जगत् के जीवन दाता तथा हरी में अनुरक्त है (वह) सहज ही (परमात्मा से) मिलता है (प्रभु उसे स्वयं अपने में) मिला लेता है। प्रभु की कृपादृष्टि से साधुओं की सभा और संतों की संगति से सुख की प्राप्ति हो गई है। (जो) हरि की भक्ति में रत हैं (वे) वैराग्यवान् हो गए (उनका) (सांसारिक) मोह तथा (माया की) पिपासा समाप्त हो गई। नानक कहते हैं कि अहंकार के मारने से (परमात्मा में) प्रतीति बढ़ गई है विरले ही दास विरक्त होते हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ३ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि। घरु २

(५)

तू सभनी थाई जिथै हउ जाई साचा सिरजणहारु जीउ ।
सभना का दाता करम बिधाता दूख बिसारणहारु जीउ ॥
दूख बिसारणहारु सुआमी कीता जा का होवै ।
कोटकोटंतर पापा केरे एक घड़ी महि खोवै ॥
हंसि सि हंसा बग सि बगा घट घट करे बीचारु जीउ ।
तू सभनी थाई जिथै हउ जाई साचा सिरजणहारु जीउ ॥ १ ॥

जिन्ह इक मनि धिआइआ तिन्ह सुखु पाइआ ते विरले संसारि जीउ ।
तिन जमु नेड़ि न आवै गुर सबदु कमावै कबहु न आवहि हारि जीउ ॥
ते कबहु न हारहि हरि हरि गुण सारहि तिन्ह जमु नेड़ि न आवै ।
जमणु मरणु तिन्हा का चूका जो हरि लागे पावै ॥
गुरमति हरि रसु हरि फलु पाइआ हरि हरि नाम उरधारि जीउ ।
जिन्ह इक मनि धिआइआ तिन्ह सुखु पाइआ ते विरले संसारि जीउ ॥ २ ॥

जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ हउ तिसै विटहु कुरबाणु जीउ ।
ता की सेव करीजै लाहा लीजै हरि दरगह पाईऐ माणु जीउ ॥
हरि दरगह माणु सोई जनु पावै जो नरु एकु पछाणै ।
ओहु नव निधि पावै गुरमति हरि धिआवै नित हरि गुण आखि वखाणै ॥
अहिनिसि नामु तिसै का लीजै हरि ऊतमु पुरखु परधानु जी ।
जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ हउ तिसै विटहु कुरबानु जीउ ॥ ३ ॥

नामु लैन्हि सि सोहहि तिन्ह सुख फल होवहि मानहि से जिणि जाहि जीउ ।
तिन फल तोटि न आवै जा तिसु भावै जे जुग केते जाहि जीउ ॥
जे जुग केते जाहि सुआमी तिन फल तोटि न आवै ।
तिन जरा न मरणा नरकि न परणा जो हरि नाम धिआवै ॥
हरि हरि करहि सि सूकहि नाही नानक पीड़ न खाहि जीउ ।
नामु लैन्हि सि सोहहि तिन्ह सुख फल होवहि मानहि से जिणि जाहि जीउ ॥
४ ॥ १ ॥ ४ ॥

हे सच्चे सिरजनहार, जहाँ भी मैं जाता हूँ, तू सभी स्थानों में (विराजमान दिखाई देता है)। हे जी, (प्रभु), तू सभी का दाता है और सभी के कर्मों का विधाता है और तू ही दुःखों को भुलानेवाला है। हे स्वामी (तू ही) दुःखों को भुलाने वाला है और तेरा ही किया हुआ सब कुछ होता है। (हे प्रभु) (तू) (जीवों के) करोड़ों पापों को एक घड़ी में नष्ट करनेवाला है। (परमात्मा सभी जीवों के कर्मों का विधाता है, अतः जीवों के पाप-पुण्यों का इस प्रकार निर्णय करता है)ः जो-जो हंस (पुण्यात्मा) हैं वे हंस और जो जो बगुले

परमात्मा पातशाही) हैं वे मुझे दिखाई (पड़ते हैं)। हे सच्चे सिरजनहार, जहाँ भी मैं जाता हूँ,
सभी स्थानों में (विराजमान दिखाई देता है) ॥१॥

जिन्होंने एकाग्र मन से तेरा ध्यान किया है, उन्होंने ही सुख पाया है (हे जी प्रभु)
(लोग) संसार में विरले ही होते हैं। ऐ जी ऐसे (पुरुषों के) निकट यमराज नहीं जाते
गुरु के शब्दों की कमाई करते हैं वे (जीवन में) कभी हारते नहीं हैं। जो हरि के चरणों
लग गए हैं, उनका जन्म-मरण समाप्त हो चुका है। (ऐसे व्यक्तियों ने) गुरु की बुद्धि
'हरि-हरि' का नाम हृदय में धारण करके हरि-रस और हरि के फल को प्राप्त कर
लिया है। (ऐ जी प्रभु), जिन्होंने एकाग्र मन से तेरा ध्यान किया है, उन्होंने ही सुख पाया ऐसे
(लोग) संसार में विरले ही होते हैं ॥२॥

ऐ जी जिस (प्रभु ने) जगत् उत्पन्न करके (उसके सभी प्राणियों को अपने अपने) काम
लगाया है, उस (प्रभु के) ऊपर कुरबान (न्योछावर) हो जाना चाहिए। (हे भाइयो) उसी
(प्रभु) की सेवा करो लाभ प्राप्त करो तथा हरि के दरवाजे पर प्रतिष्ठा प्राप्त करो। जो
व्यक्ति एक (हरी) को पहचानता है, वही हरी के दरवाजे पर प्रतिष्ठा पाता है। वह गुरु की
शिक्षा द्वारा हरि का ध्यान करके (हरि-प्राप्ति रूपी) नवनिधि को पा लेता है, (वह) नित्य
हरि के गुण का कथन और वर्णन करता है। अहर्निश उसी (प्रभु) का नाम लेना चाहिए
(क्योंकि) हरी ही उत्तम और प्रधान पुरुष है। ऐ जी जिस (प्रभु ने) जगत् उत्पन्न करके
(उसके सभी प्राणियों को अपने-अपने) धंधे में लगाया है उस (प्रभु के) ऊपर न्योछावर हो
जाना चाहिए ॥३॥

ऐ जी (जो) (हरि का) नाम लेते हैं, वे सुशोभित होते हैं उन्हें (लौकिक तथा
पारमार्थिक) सुख और फल (प्राप्त) होते हैं (जो परमात्मा को) मानते हैं वे (इस संसार की
बाजी में) जीत कर जाते हैं। ऐ जी यदि उस (परमात्मा) को अच्छा लगता है, तो चाहे कितने
ही युग बीत जायँ उन (भक्तों) के फल (की प्राप्ति में) किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाती।
स्वामी चाहे जितने ही युग बीत जाय, उन (परमात्मा के स्मरण करने वालों भक्तों के)
फलों में (किसी भी प्रकार की) कमी नहीं आने पाती है। जो हरि के नाम का ध्यान करते
उन्हें (न तो) वृद्धावस्था (सताती है) और न मरण (का भय रहता है) और न वे नरक
ही पड़ते हैं। ऐ जी जो (व्यक्ति) 'हरी हरी' कहते हैं न मुरझाते कभी (दुःखी नहीं होते);
निश्चय (रहते हैं) कि (उन्हें कोई) पीड़ा भी नहीं सहन करनी पड़ती। ऐ जी, (जो व्यक्ति)
(हरि का) नाम लेते हैं, वे सुशोभित होते हैं, उन्हें (लौकिक तथा पारमार्थिक) सुख और
फल प्राप्त होते हैं (जो परमात्मा को) मानते हैं, वे (इस संसार की बाजी में) जीत कर जाते
॥४॥१॥४॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि। पउ ३ ॥

[५]

तूं सुणि हरणा कालिआ की वाड़ीऐ राता राम।
बिखु फलु मीठा चारि दिन फिरि होवै ताता राम।

फिरि होइ तता खरा माता नाम बिनु परतापए ।
ओहु जेव साइर देइ लहरी बिजुल जिवै चमकए ॥
हरि बाझु राखा कोइ नाही सोइ तुझहि बिसारिआ ।
सचु कहै नानक चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ ॥ १ ॥

भवरा फूलि भवंतिआ दुखु अति भारी राम ।
मै गुरु पूछिआ आपणा साचा बीचारी राम ॥
बीचारि सतिगुरु मुझै पूछिआ भवरु बेली रातओ ।
सूरजु चड़िआ पिंडु पड़िआ तेलु तावणि तातओ ॥
जम मगि बाधा खाहि चोटा सबद बिनु बेतालिआ ।
सचु कहै नानकु चेति रे मन मरहि भवरा कालिआ ॥ २ ॥

मेरे जीअड़िआ परदेसीआ कितु पवहि जंजाले राम ।
साचा साहिबु मनि वसै की फासहि जम जाले राम ॥
मछुली विछुंनी नैण रुंनी जालु बधिकि पाइआ ।
संसारु माइआ मोहु मीठा अंति भरमु चुकाइआ ॥
भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोडि मनहु अंदेसिआ ।
सचु कहै नानकु चेति रे मन जीअड़िआ परदेसीआ ॥ ३॥

नदीआ वाह विछुंनिआ मेला संजोगी राम ।
जुगु जुगु मीठा विसु भरे को जाणै जोगी राम ॥
कोई सहजि जाणै हरि पछाणै सतिगुरू जिनि चेतिआ ।
बिनु नाव हरि के भरमि भूले पचहि मुगध अचेतिआ ॥
हरि नामु भगति न रिदै साचा से अंति धाही रुंनिआ ॥
सचु कहै नानकु सबदि साचै मेलि चिरी विछुंनिआ ॥ ४ ॥ १ ॥ ५ ॥

हे काले हिरन मृग, तू (विषयों की) बाड़ि (बाग) में क्या अनुरक्त है ? विष (फल) केवल चार दिन के लिए मीठा है फिर यह गरम (कष्टदायक) हो जायगा। (जिस फल के ऊपर) तू अत्यधिक मस्त हुआ है, (वह) पुनः गरम (कष्टदायी) हो जायगा (इस प्रकार) बिना नाम के (तू) परितप्त होगा। (वह विषय रूपी फल इसी भाँति नश्वर और क्षणभंगुर है) जैसे समुद्र लहरें देता है अथवा जैसे बिजली चमकती है। [जिस भाँति समुद्र की लहरें अथवा बिजली की चमक अस्थिर है, उसी भाँति माया के विषय भी क्षणभंगुर हैं]। हरि के बिना तेरी कोई रक्षा नहीं कर सकता और उसी को तू ने भुला दिया है। नानक सच कहता है, हे मन चेत जाओ काला हिरन (विषयों की बाड़ी में अनुरक्त होकर) मर जायगा ॥१॥

(मायिक पदार्थों के) फूलों के ऊपर भ्रमण करनेवाले ऐ भौंरे तुझे बहुत ही दुःख होगा। मैंने सच्चे विचार द्वारा अपने गुरु से पूछा है। विचार द्वारा सद्गुरु से मैंने पूछ लिया है कि (यह जीव रूपी) भौंरा (विषय-रूपी) फूल-बेलों में रत हुआ है (इसकी क्या अवस्था होगी) ? (जब प्रभु की रात समाप्त हो गई और) दिन चढ़ आया तो शरीर ढह कर ढेर हो जायगा (और उसी प्रकार तपाया जायगा) जिस प्रकार तेल तौली के ऊपर तपाया जाता है। (मनुष्य) शब्द के बिना बेताल (भूत) है, नाम के बिना वह यमराज के मार्ग में बाँधा जायगा

और चोटें खायगा। नानक सच कहता है, हे मन चेत जाओ अन्यथा भौंरा (मायिक पदार्थों के फूलों में रम कर) मर जायगा ॥२॥

हे मेरे परदेसी जीव तू किस जंजाल में पड़ गया है ? हे भाई (जिसके) मन में सच्चा साहब वास करता है (तो) क्या वह यम-जाल में फँस सकता है ? (अर्थात् वह नहीं फँस सकता है)। जब बधिक (शिकारी ने) अपना जाल विछाया (तो मछली) (जल से) बिछुड़ कर (जाल में फँस गई और) नेत्रों (में आँसू) भर कर रोई। अंत में उसका भ्रम दूर हो गया (और उसे विश्वास हो गया कि) संसार में जो कुछ भी था (वह निरा) माया का मीठा मोह ही था। (अतः, हे परदेसी जीव) मन का सारे आशंकाओं को त्याग कर, हरि से चित्त लगा कर भक्ति करो। नानक सच कहता है, अरे परदेसी मन अरे जीव चेत जाओ ॥३॥

हे भाई, नदियाँ और नालों के बिछोह होने पर, (उनका पुनः) मिलाप संयोगवश ही होता है (इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का मिलाप भाग्य से ही होता है)। माया के इस मीठे विष का (सारा संसार) युग-युगान्तरों से ग्रहण करता आ रहा है, हे भाई कोई विरला योगी ही (इस रहस्य को) जानता है। जिसने सद्गुरु को (भलीभाँति) समझ लिया है, ऐसा कोई (विरला ही) सहजावस्था (तुरीयावस्था) को जानता है और हरि को पहचानता है। बिना हरि के नाम के (स्मरण किए हुए) मूर्ख और बुद्धिविहीन (प्राणी) भ्रम में भटकते रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं। जिनमें न हरिनाम की भक्ति है और न जिनके हृदय में सच्चा परमात्मा है, वे अन्तकाल में धाड़ें मार कर रोते हैं। नानक सच कहता है कि (परमात्मा) (गुरु के) सच्चे शब्द (के माध्यम) से चिरकाल से (जो) बिछुड़ी हुई (जीवात्माएँ) हैं, (उन्हें अपने में) मिलाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ५ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु आसा, महला १,

वार सलोका नालि, सलोक भी, महले पहले के लिखे ॥

टुंडे असराजै की धुनी ॥

सलोकु बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सदवार।
जिनि माणस ते देवते करत न लागी वार ॥ १ ॥

नानक गुरू न चेतनी मनि आपणै सुचेत।
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ॥
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह।
फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह ॥ २ ॥

विशेष : एक देश का राजा सारंग था। अपनी पहली स्त्री के मरने के बाद उसने दूसरी शादी कर ली। दूसरी रानी राजा की प्रथम रानी के पुत्र असराज के ऊपर मोहित हो

गई। परन्तु असराज ने अपना धर्म नहीं छोड़ा। रानी ने असराज के ऊपर मिथ्या दोषारोपण लगा कर उसे मौत की सजा दिलवा दी। राजा का मंत्री बड़ा ही बुद्धिमान् था। उसने असराज को मरवाया नहीं उसके हाथ बँधवा कर उसे एक कुँए में डलवा दिया। एक काफिला उधर से जा रहा था। कुछ व्यक्तियों ने असराज को कुँए से बाहर निकाल लिया। असराज उसी काफिले के साथ अन्य देश को चला गया। संयोगवश कुछ समय बीतने के पश्चात्, वह उस देश का राजा बना दिया गया। इसी समय राजा सारंग के देश में अकाल पड़ गया। असराज ने अपने पिता सारंग की सहायता की। इस प्रकार पिता-पुत्र का फिर मेल हो गया। कुछ कवियों ने इस घटना पर 'वारें' बनाईं। उन्हीं 'वारों' की ध्वनि के आधार पर 'आसा' राग की यह वार है। इस वार की ध्वनि का नमूना इस प्रकार है—

मलकिम्रो सेर सरहूल राइ रण माह वज्जे'

सलोक (मैं) अपने (उस) गुरु के ऊपर (एक) दिन में सौ बार बलिहारी होता हूँ जिस गुरु ने मनुष्यों से देवते बना दिए और बनाने में (कुछ) देरी नहीं लगी ॥ १ ॥

हे नानक (जो मनुष्य) गुरु को नहीं चेतते और अपने मन में चतुर (बने हुए) हैं (वे इस प्रकार हैं) जैसे खाली सूखे तिल सूने खेत में (यों ही) छोड़ दिए गए हैं। [कुमाड़ = खाली तिलों का पौधा जो तिलों के खेत में उगता है जिसकी फलियों में तिल नहीं होते]। हे नानक ऐसे खेत में छोड़े हुए खाली तिलों के सौ पति होते हैं। वे बिचारे फूलते भी हैं, फलते भी हैं, फिर भी उनके शरीर में (तिलों के स्थान में) खाक ही होती है ॥ २ ॥

[विशेष जब हम अपने मन में चतुर बन कर गुरु को मन से भुला देते हैं और गुरु के नेतृत्व की आवश्यकता नहीं समझते हैं तो कामादिक सौ पति = स्वामी मन में आ बसते हैं। तात्पर्य यह कि मन किसी न किसी विकार का शिकार बना रहता है।]

पउड़ी आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ ।
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ ॥
करि आसणु डिठो चाउ ॥ १ ॥

पउड़ी : (अकाल पुरुष ने) अपने आप ही अपने को निर्मित किया और आप ही ने अपना नाम (और रूप) धारण किया। [परमात्मा की सत्ता दो रूपों में है—एक निर्गुण अवस्था और दूसरी सगुण अवस्था। अपने आप में वह निर्गुण रूप में है और सृष्टि के सम्बन्ध से वह सगुण है जिसे 'नाम-रूप' भी कहते हैं]। ('नाम रूप' रचने के पश्चात्) उसने अपनी कुदरत (माया, शक्ति) रची (और फिर उसी में) आसन जमा कर (तात्पर्य यह की कुदरत में व्यापक होकर) (इस जगत् का) आप ही तमाशा देखने लग पड़ा है।

(हे प्रभु) तू आप ही (जीवों को) दान देनेवाला है (और आप ही इन्हें) बनाने वाला है। (तू आप ही) संतुष्ट होकर (जीवों को) देता है (और उनके ऊपर) कृपा करता है। तू सभी (जीवों का) जाननेवाला है। जीवन प्रार उसको पोशाक [शरीर से अभिप्राय है] देकर (तू आप ही) उन्हें ले लेता (तात्पर्य यह है तू आप ही प्राण और शरीर देता है

और मार ही फिर से लेता है)। (तू ही) (कुदरत में) आसन जमा कर तमाशा देख रहा है ॥ १ ॥

सलोकु: सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड।
सचे तेरे लोअ सचे आकार ॥
सचे तेरे करणे सरब बीचार ॥
सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु।
सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु ॥
सचा तेरा करमु सचा नीसाणु ॥
सचे तुधु आखहि लख करोड़ि।
सचै सभि ताणि सचै सभि जोरि ॥
सची तेरी सिफति सची सालाह।
सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह ॥
नानक सचु धिआइनि सचु।
जो मरि जंमे सु कचु निकचु ॥ १ ॥

वडी वडिआई जा वडा नाउ।
वडी वडिआई जा सचु निआउ ॥
वडी वडिआई जा निहचल थाउ।
वडी वडिआई जाणै आलाउ ॥
वडी वडिआई बुझै सभि भाउ ॥
वडी वडिआई जा पुछि न दाति।
वडी वडिआई जा आपे आपि ॥
नानक कार न कथनी जाइ।
कीता करणा सरब रजाइ ॥ २ ॥

विसमादु नाद विसमादु वेद।
विसमादु जीअ विसमादु भेद ॥
विसमादु रूप विसमादु रंग।
विसमादु नागे फिरहि जंत ॥
विसमादु पउणु विसमादु पाणी।
विसमादु अगनी खेडहि विडाणी ॥
विसमादु धरती विसमादु खाणी।
विसमादु सादि लगहि पराणी ॥
विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु।
विसमादु भुख विसमादु भोगु ॥
विसमादु सिफति विसमादु सालाह।
विसमादु उझड़ विसमादु राह ॥

विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि ।
विसमादु देखै हाजरा हजूरि ॥
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु ।
नानक बुझणु पूरै भागि ॥ २ ॥

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु ।
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु ॥
कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु ।
कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु ॥
कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान ।
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु ॥
कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु ।
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु ॥
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु ॥ १ ॥

सलोक (हे सच्चे बादशाह) तेरे (उत्पन्न किए हुए) खण्ड और ब्रह्माण्ड सच्चे हैं, (तात्पर्य यह है खण्ड और ब्रह्माण्ड निर्मित करने का तेरा यह क्रम सदा के लिए अटल है)। तेरे (बनाए हुए समस्त) लोक और आकार (भी) सच्चे हैं। तेरे काम और तेरे समस्त विचार सच्चे हैं।

(हे सच्चे बादशाह) तेरी बादशाही और तेरे दरबार सच्चे हैं, तेरा हुक्म और तेरे (शाही) फरमान भी सच्चे हैं। तेरी बख्शिश सच्ची है और तेरी उन बख्शिशों के चिह्न भी सच्चे हैं। लाखों करोड़ों (जीव) (जो तुझे) स्मरण कर रहे हैं (वे भी) सच्चे हैं (तात्पर्य यह है कि अनन्त जीवों का तुझे स्मरण करना भी एक अलौकिक कार्य है जो तेरे द्वारा सदैव के लिए चलाया हुआ है)। (ये समस्त ब्रह्माण्ड लोक आकार, जीव-जन्तु आदि) (सच्चे परमात्मा की) शक्ति और बल के (अन्तर्गत) हैं (तात्पर्य यह है कि इन सब की सत्ता और सहारा प्रभु मात्र ही है)।

तेरी स्तुति और गुणगान करना भी सत्य है—(एक अगम्य सिलसिला है, जो युग युगान्तरों से चला आ रहा है)। हे सच्चे बादशाह, तेरी कुदरत (माया शक्ति प्रकृति) भी सच्ची है (और यह न समाप्त होनेवाली क्रिया है)। हे नानक (जो जीव उस सच्चे और अविनाशी प्रभु का) स्मरण करते हैं वे भी सत्य हैं (क्योंकि उस प्रभु का स्मरण करने से वे स्वयं वही हो जाते हैं)। (पर जो परमात्मा का स्वरूप नहीं समझते) और जन्मते मरते रहते हैं वे (सब भी) कच्चों से कच्चे अर्थात् नितान्त कच्चे हैं ॥ १ ॥

विशेष : गुरु नानक देव ने उपर्युक्त 'सलोक' में बतलाया है कि परमात्मा के बनाए हुए खण्ड ब्रह्माण्ड लोक आकार, जीव जन्तु आदि का क्रम भ्रम रूप नहीं है बल्कि सत्य परमात्मा की सत्य रचना है। मानो कि सृष्टि का यह क्रम अनादि और शाश्वत नियम है। हाँ इसमें जो पृथक पृथक पदार्थ जीव जन्तु और शरीरधारी दिखाई पड़ते हैं, वे नश्वर हैं। जो उस प्रभु का स्मरण करते हैं वे उसका रूप हो जाते हैं।

सलोकु (परमात्मा की) महत्ता इसमें है कि उसका नाम बहुत ही बड़ा है। (उस प्रभु की) महत्ता बड़ी महान् है (क्योंकि उस प्रभु का) न्याय महान् है। उसकी यह एक बहुत भारी विशेषता है कि उसका स्थान अडिग है। (प्रभु की यह एक) बहुत बड़ी महत्ता है (कि वह सारे जीवों के) मामाय (प्रार्थना पुकार) जानता है। (और समस्त जीवों की भावनाओं का) अपने आप जानता है।

(परमात्मा की यह एक और) विशेषता है कि किसी से पूछ कर (जीवों को) दान नहीं देता। (वह स्वयं जीवों को अनन्त दान देता रहता है), क्योंकि उसके समान और कोई नहीं है) वह आप ही अपने समान है।

हे नानक (परमात्मा के) कार्य (सृष्टि-रचना) का वर्णन नहीं किया जा सकता। (उसकी) रची हुई समस्त सृष्टि रचना (करणा), उसके हुक्म के अन्तर्गत हुई है ॥ ४ ॥

(परमात्मा की आश्चर्यमयी कुदरत को पूर्ण भाग्य से ही समझा जा सकता है। कुदरत की अनन्तता देख कर मन में हैरानी उत्पन्न होती है)।

(असंख्य) नाद, (चार) वेद (अनन्त) जीव (और उनके) असंख्य भेद, (जीवों और अन्य पदार्थों के असंख्य) रूप और उनके रंग—(इन सब वस्तुओं को देख कर) आश्चर्यमयी अवस्था उत्पन्न हो रही है।

(अनेक) जंतु (सदैव) नंगे ही फिर रहे हैं (कितने ही) पवन हैं, (कितने ही) जल हैं, (अनेक) अग्नियाँ हैं (जो) आश्चर्यमय खेल खेल रही हैं [अग्नि के अनेक प्रकार हैं—यथा बड़वाग्नि, दावाग्नि, जठराग्नि शोकाग्नि चिन्ताग्नि, मानाग्नि आदि]। पृथ्वी (तथा पृथ्वी) के जीवों की चार खानियाँ (अंडज, जेरज उद्भिज और स्वेदज) (आदि को देख कर) मन में आश्चर्यमयी भावनाएँ तथा घबड़ाहट उत्पन्न हो रही है।

(अनन्त) जीव (पदार्थों के) स्वाद में लग रहे हैं, (कितने जीवों का) संयोग है, (कितनों का) वियोग है (कितनों को) भूख (सता रही है) (कितनों को) (दुर्लभ पदार्थों का) भोग है (कहीं पर कुदरत के स्वामी की) स्तुति एवं प्रशंसा हो रही है, (कहीं पर) कुराह है (और कहीं पर) (सुन्दर) राह है—(इन सब आश्चर्यमय खेलों को देख कर) (मन में) आश्चर्यमयी अवस्था उत्पन्न हो रही है।

(कोई कहता है कि परमात्मा) समीप है, (कोई कहता है कि) दूर है, (और कोई कहता है कि) (वह) सर्वत्र विराजमान (व्यापक) होकर (सभी जीवों को) देख रहा है (सँभाल-खबर ले रहा है)। (इन सब आश्चर्यमय कौतुकों को देख कर) आह्लादमयी आश्चर्यमयी अवस्था प्राप्त हो रही है। हे नानक (परमात्मा के इन कौतुकों को) बड़े भाग्य से ही समझा जा सकता है ॥ ५ ॥

(हे प्रभु) (जो कुछ) दिखाई दे रहा है (और जो कुछ) सुनाई पड़ रहा है, (वह सब तेरी ही) कुदरत है। (यह) भय (जो) सुखों का सार है तेरी ही कुदरत है। पाताल से लेकर आकाश तक (तेरी ही) कुदरत है। ये सारे आकार (दृश्यमान जगत्) तेरी ही कुदरत (के परिणाम) हैं।

(हिन्दुओं के) वेद और पुराण, (मुसलमानों के) कुरान (आदि धार्मिक ग्रन्थ) (तथा) समस्त विचार (तेरी ही) कुदरत (के स्वरूप हैं)। (जीवों के) खाने पीने, पहनने

(मादि के व्यवहार) और जगत् के समस्त प्यार—(ये सब तेरी ही) कुदरत (के कारण है) ।

पक्षियों वस्तुओं रंगों, जगत के जीवों में तेरी ही कुदरत बरत रही है । (संसार की कितनी ही) भलाइयों बुराइयों मान और अभिमान में (तेरी ही) कुदरत (दृष्टिगोचर हो रही है) ।

पवन पानी अग्नि, पृथ्वी की खाक (आदि पंच भूत) (तेरी ही) कुदरत (के परिणाम) हैं । (हे प्रभु, इस प्रकार सब ओर) (तेरी) कुदरत (बरत रही है) तू कुदरत का स्वामी है, (तू ही इसका) निर्माता है । तेरी बड़ाई पवित्र से पवित्र है (तू नाम पवित्र सत्ता वाला है) । [नाई<फारसी नाईदन = बड़ाई करनी बड़ाई ।]

हे नानक (प्रभु इस सारी कुदरत को) अपने हुक्म (के अन्तर्गत) (रख कर) (सब को) देख रहा है, (समस्त कर रहा है) (और सारे स्थानों पर अकेला) आप ही आप बरत रहा है, (विराजमान है) ॥ १ ॥

पउड़ी   आपीन्है भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ ।
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ ॥
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ ॥
थाउ न होवी पउदीई हुणि सुणीऐ किआ रूआइआ ॥ २ ॥
मनि अंधै जनमु गवाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी (मायासक्त मनुष्य) स्वयं ही भोग भोग कर, भस्म की ढेरी हो जाता है (और जीवात्मा रूपी) भौंरा (शरीर त्याग कर) चला जाता है । (सांसारिक प्रपंचों में फँसा हुआ) दुनियादार मनुष्य (जब) मरता है (तो वह) गले में जंजीर डालकर (यमदूतों द्वारा) आगे चलाया जाता है ।

परलोक में (धर्मराज के दरबार में) (परमात्मा की स्तुति रूपी) करणी और कीरति रूप [कीरति=मनुष्य के पूर्व जन्मो के कर्मों के किए हुए संस्कार-संचित कर्म] पढ़े जाते हैं, (स्वीकार किए जाते हैं) वहीं पर (जीव के किए हुए कर्मों का) लेखा (भली भाँति उसे) समझा दिया जाता है ।

(माया के भोगो मे फँसे रहने के कारण) उसके ऊपर मार पड़ती है, (और बचने के लिए) (कोई) स्थान नहीं मिलता (शरण नहीं मिलती) । उस समय उसका कोई रुदन (करुण-पुकार) नहीं सुना जाता ।

अंधे मनवाला (विवेकहीन मनुष्य) (अपना अमूल्य) जन्म (माया की क्षुद्र वस्तुओं मे) नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

सलोकु   भै विचि पवणु वहै सद वाउ ।
भै विचि चलहि लख दरीआउ ॥
भै विचि अगनि कढै वेगारि ।
भै विचि धरती दबी भारि ॥
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि ।
भै विचि राजा धरम दुआरु ॥

भै विचि सूरजु भै विचि चंदु ।
कोह करोड़ी चलत न अंतु ॥
भै विचि सिध बुध सुर नाथ ।
भै विचि आडाणे आकास ।
भै विचि जोध महाबल सूर ।
भै विचि आवहि जावहि पूर ॥
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु ।
नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु ॥ ७ ॥

नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवाल ।
केतीआ कंन्ह कहाणीआ केते बेद बीचार ॥
केते नचहि मंगते गिड़ि मुड़ि पूरहि ताल ।
बाजारी बाजार महि आइ कढहि बाजार ॥
गावहि राजे राणीआ बोलहि आल पताल ।
लख टकिआ के मुंदड़े लख टकिआ के हार ॥
जितु तनि पाईअहि नानका से तन होवहि छार ॥
गिआनु न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सारु ।
करमि मिलै ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआरु ॥ ८ ॥

सलोक वायु सदैव ही (परमात्मा के) भय में बह रही है। लाखों नद भी भय में ही प्रवाहित हो रहे हैं। भय में ही आग बेगार कर रही है। समस्त पृथ्वी (परमात्मा के) भय के भार के कारण दबी हुई है (अपनी मर्यादा में स्थित है)।

(परमात्मा के भय में ही) इन्द्र राजा सिर के बल फिर रहा है, (तात्पर्य यह है कि बादल उसके हुक्म में ही उड़ रहे हैं)। धर्मराज का दरबार भी (परमात्मा के) भय में ही है। सूर्य और चन्द्रमा भी (उसी के) भय में (आकाश में स्थित हैं)। (ये दोनों) करोड़ों कोस चलते हैं, (फिर भी उनके मार्ग का) अन्त नहीं होता।

सिद्ध बुद्ध देवतागण और नाथ—(सभी) (परमात्मा के) भय में हैं। (ऊपर) तना हुआ आकाश भी (जो दिखाई देता है), (वह भी) (परमात्मा के) भय में है। महाबली योद्धागण और शूरवीर—(सभी परमात्मा के) भय में हैं। सारे के सारे (जीव) (जो जगत् में) आते-जाते रहते हैं, (जन्मते और मरते रहते हैं) (वे सभी) भय में हैं।

(इस प्रकार) (सारे जीवों के मत्थे के ऊपर) भय (का) लेख लिखा हुआ है (तात्पर्य यह है कि प्रभु का नियम ही ऐसा है कि सभी के ऊपर परमात्मा का भय है जिसके फलस्वरूप वे सब अपनी अपनी मर्यादा में बरत रहे हैं)। हे नानक, (केवल) एक सच्चा निरंकार ही निर्भय (भय-रहित) है ॥ ७ ॥

हे नानक (एक) निरंकार ही निर्भय है और कितने ही राम धूल हैं। कितने ही कृष्ण की कहानियाँ और कितने वेदों के विचार भी (धूल हैं)। कितने ही (मनुष्य) मँगते (बन कर) नाचते हैं (वे) मुड़कर, घूमकर ताल पूरी करते हैं (भाव प्रदर्शित करते हैं)। बाजारी लोग [रासधारियों की ओर संकेत है] भी बाजार में अपना बाजार लगाते हैं।

(ये लोग) राग-रागिनियों (के स्वांग बना कर) गाते हैं और आकाश-पाताल (अनाप शनाप) (की बातें) बोलते हैं। (ये लोग पुरस्कार में) सहस्रों रुपयों की थैलियाँ और लाखों रुपयों के हार (पाते हैं)। (किन्तु ये बेचारे इस बात को नहीं जानते कि इन थैलियों और इन हारों को) जो शरीर पहनते हैं, (वे सब अन्त में) राख हो जाते हैं। [तो भला बताओ इस नाचने-गाने तथा थैलियों और हारों को पहनने से ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हो सकता है] ?

ज्ञान (निरी) बातों से नहीं ढूँढा जा सकता, (ज्ञान प्राप्ति का) कथन (उतना ही) कठिन है, (जितना) 'लोहा'। (परमात्मा की) कृपा हो (तभी) ज्ञान की प्राप्ति होती है। (कृपा के बिना ज्ञान-प्राप्ति के लिए) और चतुराइयाँ तथा हुक्म (आदि) व्यर्थ हैं ॥ ८ ॥

पउड़ी नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ।
एहु जीउ बहुते जनम भरमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥
सतिगुर जेवडु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ।
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ही विचहु आपु गवाइआ ॥
जिनि सचो सचु बुझाइआ ॥ ४ ॥

पउड़ी (हे प्रभु) यदि तू, (जीव के ऊपर) अपनी कृपा-दृष्टि करे, तभी (उसे) तेरी कृपा-दृष्टि से सद्गुरु मिल जाता है।

यह (बेचारा) जीव (जब) अनेक जन्मों में भटक चुका (और संयोगवशात् जब तेरी कृपा-दृष्टि हुई) (तब) सद्गुरु ने अपना शब्द सुनाया।

ऐ सारे लोगो ध्यान देकर सुनो, सद्गुरु के समान और कोई दाता नहीं है।

जिन (मनुष्यों) ने अपने अन्तर्गत से अहंभाव नष्ट कर दिया, उन्हें उस सद्गुरु के मिलने से शान्ति प्राप्त हो गई जिसने निष्केवल सच्चे (प्रभु) की सूझ पाई है। (तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अपने मन से अहंभाव गँवाते हैं उन्हें उस सद्गुरु के मिलने से सच्चे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है, जो सद्गुरु सदैव स्थिर रहनेवाले प्रभु की सूझ-बूझ प्रदान करता है) ॥ ४ ॥

सलोक : घड़ीआ सभे गोपीआ पहर कंन्ह गोपाल।
गहणे पउणु पाणी बैसंतरु चंदु सूरजु अवतार ॥
सगली धरती मालु धनु वरतणि सरब जंजाल।
नानक मुसै गिआन विहूणी खाइ गइआ जम कालु ॥ १ ॥
वाइनि चेले नचनि गुर। पैर हलाइनि फेरन्हि सिर ॥
उडि उडि रावा झाटै पाइ। वेखै लोकु हसै घरि जाइ ॥
रोटीआ कारणि पूरहि ताल। आपु पछाड़हि धरती नालि ॥
गावनि गोपीआ गावनि कान्ह। गावनि सीता राजे राम ॥
निरभउ निरंकारु सचु नामु। जा का कीआ सगल जहानु ॥
सेवक सेवहि करमि चड़ाउ। भिंनी रैणि जिन्हा मनि चाउ ॥
सिखी सिखिआ गुर वीचारि। नदरी करमि लघाए पारि ॥
कोलू चरखा चकी चकु। थल वारोले बहुतु अनंतु ॥

लाटू माधाणीआ अनगाहु । पंखी भउदीआ लैनि न साहु ॥
सूए चाड़ि भवाईअहि जंत । नानक भउदिआ गणत न अंत ॥
बंधन बंधि भवाए सोइ । पइऐ किरति नचै सभु कोइ ॥
नचि नचि हसहि चलहि से रोइ । उडि न जाही सिध न होहि ॥
नचणु कुदणु मन का चाउ । नानक जिन्ह मनि भउ तिन्हा मनि भाउ ॥ १० ॥

सलोक (सारी घड़ियाँ गोपियाँ हैं (दिन के सारे) प्रहर कृष्ण हैं पवन, पानी और आग ही गहने हैं, (जिन्हें उन गोपियों ने धारण किये हैं)। (रासधारी लोग रासों में अवतारों का स्वांग बना-बना कर नाचते हैं, प्रकृति के रास-नृत्य में) चंद्रमा और सूर्य दो अवतार हैं। सारी पृथ्वी (रास के रंगमंच का) धन और माल है। (जगत् के) सारे प्रपंच (रास के) व्यवहार हैं। हे नानक ज्ञान के बिना (सारी दुनिया) ठगी जा रही है और उसे यम काल खाए जा रहा है ॥ १ ॥

(रासों में) चेले बाजे बजाते हैं और गुरु नाचते हैं। (नाचते समय गुरु) पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं (तात्पर्य यह कि पैर हिला कर वो ताल में ताल मिलाते हैं और सिर हिला कर भाव प्रदर्शित करते हैं)। (पैरों को ताल के साथ पटकने से) धूल उड़-उड़ कर उनके (सिर के) बालों में पड़ती है। (रास देखनेवाले उन्हें नाचते हुए) देख कर हँसते हैं। (उनका यह तमाशा देख कर) (वे अपने अपने) घर चले जाते हैं। रोटी के निमित्त (वे रासधारी) ताल पूरी करके (नाचते हैं) और अपने आप को पृथ्वी पर पछाड़ते हैं। (इस प्रकार रासलीला में वे) गोपी और कृष्ण (बन कर) गाते हैं। (कभी कभी) सीता तथा राजा राम (का स्वांग बना कर भी) गाते हैं।

(जिस प्रभु का) सारा जगत् बनाया हुआ है, जो निर्भय निरंकार और सत्य नाम वाला है, (उसको) केवल (वे ही) सेवक आराधना करते हैं (जिनके मस्तक) (पर परमात्मा की कृपादृष्टि से) भाग्य जगा है, जिनके मन में (स्मरण करने का) उत्साह है, उन (सेवकों की जीवन रूपी) रात आनन्द में (व्यतीत होती है)। (उपर्युक्त) शिक्षा (जिन्होंने) गुरु के उपदेश में सीख ली है कृपा-दृष्टिवाला प्रभु (अपनी) कृपा द्वारा (उन्हें संसार सागर में) पार उतार देता है।

(नाचने और फेरा लगाने में जीवन का उद्धार नहीं हो सकता। बहुत सी वस्तुएँ तथा जीव सदैव चक्कर लगाते रहते हैं किन्तु इस चक्कर लगाने में क्या लाभ होता है ? क्या उनको मुक्ति हो जाती है ?) कोल्हू चरखा चक्की (कुम्हार का) चाक, रेगिस्तान के बहुत से बवंडर, लट्टू मथानी, अन्न दावनेवाले फल्हे, [फल्हे—लकड़ी की बनी हुई वस्तु विशेष] (सदैव घूमते रहते हैं)। पक्षी भँभीरियाँ (एक सांस में) (उड़ती रहती हैं) और साँस नहीं लेतीं (तात्पर्य यह कि एक साँस में निरन्तर उड़ती रहती हैं और विश्राम नहीं करतीं)। (बहुत से) जानवरों को शूल चुभो कर घुमाया जाता है। (इस प्रकार) हे नानक, चक्कर लगाने वाले (जीवों और वस्तुओं) का अन्त नहीं है। (इस भाँति वह प्रभु जीवों को माया के) बंधनों में जकड़ कर घुमाता रहता है। सभी कोई (जीव) अपने किए हुए कर्मों के संस्कारों के अनुसार नाचते रहते हैं। (जो जीव) नाच नाच कर हँसते हैं (वे) (अंत में) रो रो कर (इस संसार से) विदा होते हैं। (वे भी) (नाचने-कूदने से) उड़ नहीं

जाते (अर्थात् किसी ऊँची अवस्था में उड़ कर नहीं पहुँच जाते) और न वे सिद्ध ही हो जाते हैं।

(अतएव) भावना-शून्यता तो (केवल) मन की उमंग है, हे नानक प्रेम केवल उन्हीं के मन में है, जिनके मन मे (परमात्मा का) भय है ॥ १० ॥

पउड़ी : नाउ तेरा निरंकार है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ।
जीउ पिंडु सभु तिसदा दे खाजै आखि गवाईऐ ॥
जे लोड़हि चंगा आपणा करि पुंनहु नीचु सदाईऐ।
जे जरवाणा परहरै जरु वेस करेदी आईऐ ॥
को रहै न भरीऐ पाईऐ ॥ ५ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु) तेरा नाम निरंकार है, यदि तेरा नाम स्मरण किया जाय, तो नरक में नहीं जाना पड़ता।

यह जीव और शरीर सब कुछ उसी (प्रभु) का ही है। वही जीवों को खाने के लिए (भोजन) देता है, (जिसको वह प्रभु देता है, इस बात को) कहना, (अपनी वाणी को) नष्ट करना है।

हे जीव यदि तू वास्तव में अपनी भलाई चाहता है, तो पुण्य कर्म करके भी अपने आपको नीच ही कहना।

यदि कोई बुढ़ापे को त्यागना चाहे (तो यह सब व्यर्थ है) (क्योंकि) बुढ़ापा वेष धारण करके आ ही जाता है। पनघड़ी की प्याली भर जाने पर, कोई यहाँ नहीं रह सकता। [पाई=पनघड़ी की प्याली]; (भाव यह है कि जब साँसें पूरी हो जाती हैं, तो कोई भी प्राणी यहाँ नहीं रह सकता) ॥ ५ ॥

सलोकु : मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु।
बंदे से जि पवहि विचि बंदी वेखण कउ दीदारु ॥
हिंदू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु।
तीरथि नावहि अरचा पूजा अगरवासु बहकारु ॥
जोगी सुंनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतारु।
सूखम मूरति नामु निरंजन काइआ का आकारु ॥
सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि।
दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ॥
चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा वेकार।
इकि होदा खाइ चलहि ऐथाऊ तिना भि काई कार ॥
जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार ॥
ओइ जि आखहि सु तूं है जाणहि तिना भि तेरी सार।
नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ॥
सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पा छारु ॥ ११ ॥
मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर।
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥

जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ॥ १२ ॥

सलोक मुसलमानों को शरीअत की प्रशंसा (सबसे अधिक अच्छी लगती है)। (वे) शरीअत को पढ़ पढ़ कर यह विचार करते हैं (कि) परमात्मा का दीदार (दर्शन) पाने के लिए, (जो व्यक्ति) शरीअत की बन्दगी में पड़ते हैं, वे ही (उसके) बन्दे हैं।

हिन्दू (अपने धार्मिक ग्रन्थों द्वारा) स्तुति-योग्य दर्शनीय (सुंदर) रूपवाले तथा अपार (हरि) की प्रशंसा करते हैं। (वे) तीर्थों में नहाते हैं (मूर्तियों की) पूजा-अर्चा करते हैं और अगर (आदि) सुगन्धित (द्रव्यों का व्यवहार करते हैं)।

योगीगण शून्य-(समाधि) लगाकर कर्तार (परमात्मा) का ध्यान करते हैं और 'अलख' 'अलख' (उस प्रभु के) नाम (उच्चारण करते हैं)। (योगियों के मतानुसार परमात्मा) सूक्ष्म स्वरूप वाला है निरंजन (मायारहित) नामवाला है, और सारा आकार (दृश्यमान जगत्) (उसी की) काया है।

(किसी पात्र) को देने के विचार से दानियों के मन में संतोष उत्पन्न होता है (किन्तु पात्रों को) दे दे कर (वे मन ही मन परमात्मा से) हजारों गुना अधिक माँगते हैं और (बाहर) जगत् (उनके दान की) बड़ाई करता है।

(दूसरी ओर जगत् में अनन्त) चोर पर-स्त्री-गामी झूठे बुरे और विकारी भी हैं, (जो पाप कर कर के) पिछली की हुई कमाई को समाप्त करके (खाली हाथ इस संसार से) चल पड़ते हैं, (पर ये सब भी परमात्मा के रंग हैं), उन्हें भी (उसी ने) कोई (ऐसे-वैसे) काम (सौंपे) हैं।

जल में (रहनेवाले) तथा स्थल पर (निवास करने वाले) (अनन्त) पुरियों लोकों तथा अन्य दृश्यमान जगत् (आकारा आकार) में (अनन्त) जीव (हैं)। वे जो कुछ भी कहते हैं (हे कर्तार तू) उन्हें सब कुछ जानता है उन्हें भी तेरा ही सहारा (आसरा) है।

हे नानक भक्त-जनों को (केवल प्रभु की) स्तुति की ही भूख रहती है (हरि का) सच्चा नाम ही उनका आधार है। वे सदैव दिन रात आनन्द में रहते हैं और (अपने आप को) गुणवानों के चरणों की धूलि समझते हैं ॥ ११ ॥

[मुसलमान यह स्वीकार करते हैं कि देहावसान के पश्चात् जिनका शरीर जलाया जाता है, वे दोज़ख़ की आग में जलते हैं। गुरु नानक देव निम्नलिखित पद में यह बतलाते हैं कि मुसलमानों का शव मरणोपरान्त पृथ्वी में गाड़ा जाता है। संयोगवश यदि उनके शव की मिट्टी कुम्हार के हाथ में पड़ जाय तो उसकी क्या दुर्दशा होगी] ?

अर्थ मुसलमानों की मिट्टी (जहाँ वे कब्र में गाड़े जाते हैं) अनेक बार कुम्हार के वश में आ पड़ती है। (कुम्हार उस चिकनी मिट्टी को) गढ़ कर बरतन और ईंटें बनाता है, (आँवें में पड़ कर वह मिट्टी मानों) जलती हुई चिल्लाती है। वह बेचारी जल जल कर रोती है और उसमें से अंगारे झड़ झड़ कर गिरते हैं। हे नानक जिस कर्तार ने जगत् रचा है वही (वास्तविक) भेद जानता है ॥ १२ ॥

पउड़ी बिनु सतिगुर किनै न पाइओ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ।
सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ।।
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ।
उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ।।
जगजीवनु दाता पाइआ ।। ५ ।।

पउड़ी बिना सद्गुरु (की शरण में गए) किसी ने भी (हरी को) नहीं पाया है। बिना सद्गुरु (की शरण) के किसी ने भी (प्रभु को) नहीं पाया है, (क्योंकि) (प्रभु ने) अपने आप को सद्गुरु के अन्तगत रक्खा है (तात्पर्य यह है कि सद्गुरु ने प्रभु का साक्षात्कार किया है) । (मैंने इस बात को) प्रकट रूप में (सब को) सुना दी है। (जिस) सद्गुरु ने अपने अंतर्गत से (माया के) मोह को दूर कर दिया है (यदि वह मनुष्य को मिल जाय) (तो मनुष्य मायिक बन्धनों से) मुक्त हो जाता है।

(अन्य अनुरागियों की अपेक्षा) यही विचार उत्तम है (कि जिस मनुष्य ने अपने गुरु के माध्यम से) सत्य (परमात्मा से) चित्त युक्त कर दिया है, उस जन के जीवन का दाता प्राप्त हो गया है ।। ५ ।।

सलोकु हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ।
हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ ।।
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ।
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ।।
हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ।।
हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ।
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै ।।
हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै ।
हउ विचि जाती जिनसी खोवै ।।
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ।
मोख मुकति की सार न जाणा ।।
हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ।
हउमै करि करि जंत उपाइआ ।।
हउमै बूझै ता दरु सूझै ।
गिआन विहूणा कथि कथि लूझै ।।
नानक हुकमी लिखीऐ लेखु ।
जेहा वेखहि तेहा वेखु ।। १ ।।
पुरखां बिरखां तीरथां तटां मेघां खेतांह ।
दीपां लोआं मंडलां खंडां वरभंडाह ।।
अंडज जेरज उतभुजां खाणी सेतजांह ।
सो मिति जाणै नानका सरां मेरां जंताह ।।

नानक अंतु उपाइ कै संमाले सभनाहु ।
जिनि करतै करणा कीआ चिंता भि करणी ताहु ॥
सो करता चिंता करे जिनि उपाइआ जगु ।
तिसु जोहारी सुअसति तिसु तिसु दीबाणु अभगु ॥
नानक सचे नाम बिनु किआ टिका किआ तगु ॥ १४ ॥

लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाणु ।
लख तप उपरि तीरथां सहज जोग बेबाण ॥
लख सूरतण संगराम रण महि छुटहि पराण ।
लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअहि पाठ पुराण ॥
जिनि करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाणु ।
नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु ॥ १५ ॥

सलोक अहंकार में (मनुष्य) (इस जगत् म) आता है (और) अहंकार में (यहाँ से) चला जाता है। अहंकार मे ही (वह) जन्म लेता है और अहंकार मे ही मर जाता है। अहंकार म ही (वह) देता और अहंकार में ही लेता है। अहंकार मे (वह) (किसी वस्तु को) प्राप्त करता है और अहंकार म ही खो देता है।

अहंकार मे ही (वह) सच्चा (अथवा) झूठा (होता है)। अहंकार में ही (वह) (अपने) पापों और पुण्यों को विचारता है। अहंकार ही (के कारण) (वह) स्वर्ग अथवा नरक में पड़ता है। अहंकार ही के (वशीभूत) (वह सुख प्राप्त होने पर) हँसता है, (और दुःख मिलने पर) रोता है। अहंकार के (फलस्वरूप) वह (कभी) (पापों से) भर जाता है (और कभी उन पापों को पुण्यों द्वारा) धो देता है। अहंकार में ही (वह) (अपनी) जाति और वर्ण (श्रेणी) खो देता है, (तात्पर्य यह है कि मनुष्यता की ऊँची पदवी से गिर जाता है)। अहंकार (के ही कारण) (वह) मूर्ख (होता है) और अहंकार म ही चतुर (बनता है)। (अहंकार ही में पड़े रहने के कारण) (वह) मोक्ष तथा मुक्ति का पता नही जानता।

अहंकार ही (के प्रभाव के कारण) (जीव) माया (में पड़ा रहता है) और अहंकार के ही कारण (उस) माया का भ्रम (घेरे रहता है)। अहंकार कर करके जीव (अनेक बार) उत्पन्न होते रहते हैं। यदि इस अहंकार (का स्वरूप) (मनुष्य ठीक-ठीक) समझ ले (तो उसे परमात्मा का दरवाजा) दिखाई पड़ने लगता है। (वास्तविक) ज्ञान के बिना (मनुष्य) (केवल) कथोपकथन (वाद-विवाद) मे परेशान रहता है।

हे नानक (जीव) जिस जिस प्रकार देखते हैं, उसी उसी प्रकार (उनके स्वरूप) दिखाई पड़ते हैं (तात्पर्य यह है कि जिस जीवन मे वे दूसरे प्राणियों मे बरतते हैं उसी प्रकार के उनके आन्तरिक संस्कार बनते हैं, और वही उनका पृथक अहंकार बन जाता है) पर यह सब लेख भी उसी हुक्म देनेवाले (परमात्मा) की आज्ञा से ही लिखा जाता है ॥ १३ ॥

हे नानक (वह हरी ही) निम्नलिखित का अनुमान लगा सकता है—मनुष्यों वृक्षों तीर्थ-तटों बादलों खेतों, द्वीपों, लोकों, मण्डलों खण्ड-ब्रह्माण्डों, अण्डज जेरज उद्भिज और स्वेदज (इन चार) खानियों, समुद्रों पर्वतों (तथा अन्यान्य) जीव जन्तुओं आदि का।

(अर्थात् उपर्युक्त की संख्या कितनी है, परमात्मा के बिना और कोई नहीं जान सकता)। हे नानक सभी जीव-जन्तुओं को उत्पन्न करके (परमात्मा ही) उनकी संभाल करता है। जिस कर्त्ता (परमात्मा ने) जगत् को उत्पन्न किया है उसी को (उसकी) चिन्ता भी करनी है। (अतएव) वही कर्त्ता जगत् के (हित अथवा कल्याण) की चिन्ता करे, जिसने उसे उत्पन्न किया है। उस (कर्त्ता) को प्रणाम स्वीकार हो उसका कल्याण हो, उसका दरबार अनंत—शाश्वत है। हे नानक, सच्चे नाम के बिना तिलक अथवा तागे (यज्ञोपवीत) की क्या (गणना) है ॥ १४ ॥

(मनुष्य) (चाहे) लाखों नेकियों और अच्छाइयों को (करे) और लाखों प्रामाणिक पुण्यों (का भी सम्पादन करे) तीर्थों में लाखों उर्ध्व तप करे और जंगलों में (योगियों के) सहज योग (की साधना करे) संग्राम में लाखों शूरवीरता (प्रदर्शित करे) और युद्धस्थल में अपने प्राण त्यागे लाखों श्रुतियों का (अध्ययन करे) लाखों ज्ञान-ध्यान की (बातें करें) और लाखों पुराणादिक (धार्मिक ग्रन्थों) का पाठ करे, (किन्तु) नानक (की दृष्टि में) उपर्युक्त बुद्धियाँ मिथ्या हैं (परमात्मा की) कृपा ही सच्चा चिह्न है। जिस कर्त्ता ने संसार रचा है (उसी ने जीवों के) आने-जाने (जन्म-मरण) (के क्रम को भी) लिख कर निर्धारित किया है ॥ १५ ॥

पउड़ी सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु वरताइआ।
जिस तू देहि तिसु मिलै सचु ता तिन्ही सचु कमाइआ॥
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ह कै हिरदै सचु वसाइआ।
मूरख सचु न जाणन्ही मनमुखी जनमु गवाइआ॥
विचि दुनीआ काहे आइआ॥ ६॥

पउड़ी : (हे प्रभु) तू ही एक सच्चा साहब है जिसने सत्य को सच्चाई से बरता है। (हे हरी) जिसे तू देता उसी को सत्य प्राप्त होता है और तब वही सत्य की कमाई करता है। जिसके हृदय में सत्य का निवास है, (ऐसे) सद्गुरु के मिलने पर (मनुष्य) सत्य प्राप्त करता है। मूर्ख सत्य को नहीं जानता, (अपनी) मनमुखता के कारण (उसने) (अमूल्य) जन्म को नष्ट कर दिया है। (वह) इस संसार में क्या आया है ? ॥ ६ ॥

सलोकु : पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ १६॥
लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ।
बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ।
बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ।
सहु वे जीआ अपणा कीआ॥
अंनु न खाइआ सादु गवाइआ।

अज्ञान और चिन्ता से मुक्त हो जाता है और (गुरु के शब्द द्वारा) अहंकार को जला देता है ॥ १७ ॥

पउड़ी भगत तेरै मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे ।
नानक करमा बाहरे दरि ढोअ न लहन्ही धावदे ॥
इकि मूलु न बुझन्हि आपणा अणहोदा आपु गणाइदे ।
हउ ढाढी का नीच जाति होरि उतम जाति सदाइदे ॥
तिन्ह मंगा जि तुझै धिआइदे ॥ ७ ॥

पउड़ी (हे प्रभु) भक्त ही तेरे मन को अच्छे लगते हैं, (वे ही) (तेरे) दरवाजे पर सुशोभित होते हैं और तेरी कीर्ति गाते हैं। हे नानक (जो व्यक्ति) तुम्हारी कृपा से रहित हैं [अथवा इसका अर्थ इस भाँति भी हो सकता है जो व्यक्ति (शुभ) कर्मों से विहीन हैं], (उन्हें परमात्मा) के दरवाजे में प्रवेश नहीं मिलता (और वे जन्म जन्मान्तरों में) भटकते रहते हैं। कुछ (तो ऐसे हैं जो) अपना मूल (परमात्मा को) नहीं जानते (किन्तु वे) अकारण ही (अपनी गणना श्रेष्ठ पुरुषों में) गिनाना चाहते हैं। (हे प्रभु) मैं नीच जाति का भाट हूँ और बहुत से लोग (अपने को) ऊँची जाति का (भाट) कहलवाते हैं। (हे हरी) मैं उन्हीं से माँगता हूँ, जो तेरा (सर्वेव) ध्यान करते हैं ॥ ७ ॥

सलोकु कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ।
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ।
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्हणहारु ।
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ॥
कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ।
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ॥
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ॥
कूड़ु मिठा कूड़ु माखिउ कूड़ु डोबे पूरु ।
नानक वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु ॥ १८ ॥
सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ ।
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ ॥
सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु ।
नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु ॥
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ ।
धरति काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ ॥
सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ ।
दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ ॥
सचु तां परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु ।
सतिगुरू नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु ॥
सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ ।
नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ ॥ १९ ॥

सलोकु राजा मिथ्या (भ्रम रूप) है, (उसकी) प्रजा भी मिथ्या है, सारा जगत भ्रम है। (बड़े-बड़े) मण्डप (आलीशान) महलें झूठे हैं, (उनमें) बसनेवाले (मनुष्य भी) मिथ्या हैं। सोना मिथ्या है चाँदी भी मिथ्या है (उन्हें) पहननेवाले भी भ्रमरूप ही हैं। (मनुष्य की सुन्दर) काया (उसके) कपड़े (और उसका) अपार रूप— (सभी) मिथ्या हैं—भ्रमरूप हैं। मियाँ बीबी भी मिथ्या हैं (मियाँ बीबी के सम्बन्ध में) (सारे जगत् के स्त्री-पुरुष) खप-खप कर नष्ट हो रहे हैं।

इस मिथ्या में (फँसे हुए जीव का) मिथ्या से ही स्नेह हो गया है (जिसके फल स्वरूप) (वह) कर्त्ता पुरुष (परमात्मा) को भूल गया है। (इस परिस्थिति में) किसके साथ दोस्ती की जाए ? सारा जगत् चला जानेवाला (नश्वर है)।

(यद्यपि समस्त मायिक पदार्थ मिथ्या और भ्रम रूप हैं तथापि) यह छल, यह भ्रम मीठा लगता है, शहद की भाँति मीठा लगता है। नानक एक विनती करता है कि (हे प्रभु) तेरे बिना (सब कुछ) मिथ्या ही मिथ्या है ॥१८॥

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब उसके हृदय में सत्य (परमात्मा) का निवास हो जाय। (सत्य परमात्मा के हृदय में बसने से) मिथ्या—भ्रम की मैल (मन से) धुल जाती है; (मन के स्वच्छ होने से) (उसका) शरीर भी धुल कर पवित्र हो जाता है (मानसिक अवस्था का प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है)।

(मनुष्य को) सच्चा तभी जानना चाहिए, जब (वह) सत्य (परमात्मा) से अपना प्यार धारण कर ले। जो व्यक्ति (हरि के पवित्र) नाम के सुनने (मात्र) से आनन्दित होता है वही मोक्ष का द्वार पाता है।

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब (वह) (आध्यात्मिक) जीवन व्यतीत करने की) युक्ति—उपाय—विधि जाने। (वह इस विधि से) अपनी पृथ्वी रूपी काया को (भली-भाँति) साफ कर (तैयार कर) (उसमें) कर्त्ता (के नाम रूपी) बीज बोए।

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब (वह) (गुरु से) सच्ची सीख (शिक्षा) ग्रहण करे। (वह) जीवों पर दया-भाव रखे और (दूसरों की आवश्यकता में काम कर उनकी सेवा के लिए) कुछ दान-पुण्य करे।

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब वह आत्मा रूपी तीर्थ में निवास करने लगे (अपने) सद्गुरु से पूछ कर (आत्मा रूपी तीर्थ में) बैठ जाय (स्थित हो जाय) (और उसी में शाश्वत रूप से) निवास करने लगे।

नानक एक विनती करता है कि जिसके पल्ले सत्य (परमात्मा) पड़ जाता है उसके सारे (दुःखों को) दवा (प्रभु) प्राप्त हो जाता है और (उसके सारे) पापों को धोकर (हृदय से बाहर) निकाल देता है ॥१९॥

पउड़ी : दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईऐ ।
कूड़ा लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआईऐ ॥
फलु तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ ।
जे होवै पूरबि लिखिआ ता धूड़ि तिना दी पाईऐ ।
मति थोड़ी सेव गवाईऐ ॥ ८ ॥

पउड़ी : (मेरे चित्त में यही आता है कि) मुझे (संतों के) चरणों की धूलि का दान मिले। यदि (वह दान) मिल जाय तो (मैं) (उसे) अपने मस्तक में लगा लूँ। (मेरा मन) मिथ्या—भ्रम रूप लालच को त्याग देना चाहता है और एकनिष्ठ होकर अलख (हरी का) ध्यान करना चाहता है, (क्योंकि मनुष्य) जिस प्रकार के कार्य करता है, उसी प्रकार की फल-प्राप्ति भी (उसे) होती है। यदि पूर्व जन्म से लिखा हुआ हो तभी उन (संतों की) धूलि प्राप्त होती है। (गुरमुखों का आश्रय त्याग कर) यदि अपनी अल्प बुद्धि (की टेक रखी जाय), तो की हुई परिश्रम की कमाई नष्ट हो जाती है (क्योंकि उसमें अहंभावना की प्रधानता होती है)। ॥८॥

सलोकु : सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल।
बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि॥
जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ।
नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ॥
भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ।
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ॥ २ ॥

लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु।
कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु॥
अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु।
गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीगारु॥
ऊचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु।
मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु॥
धरमी धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआरु।
जती सदावहि जुगति न जाणहि छडि बहहि घर बारु॥
सभु को पूरा आपे होवै घटि न कोई आखै।
पति परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै॥ २१ ॥

वदी सु वजगि नानका सचा वेखै सोइ।
सभनी छाला मारीआ करता करे सु होइ॥
अगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे।
जिनकी लेखै पति पवै चंगे सेई केइ॥ २२ ॥

सलोकु : सत्य का अभाव पड़ गया है, झूठ ही (प्रधान रूप से) बरत रहा है; कलियुग (के पापों की) कालिमा के कारण (लोग) भूत बने हैं। (जिन्होंने) (नाम रूपी) बीज बोया है, (वे) प्रतिष्ठा के साथ (यहाँ से) विदा हुए हैं। (अब भला अधर्म रूपी) दाल किस प्रकार उग सकती है (फूट कर दे सकती है)? यदि बीज एक हो (पूरा हो) और ऋतु भी अनुकूल हो (अनुकूलता अथवा उपयुक्त हो), तभी वह बीज जमेगा।

हे नानक बिना पाह दिये कोरे (वस्त्र) में (चमकीला) रंग नहीं चढ़ता [पाह मजीठ आदि लाल रंग चढ़ाने के पहले पहले एक कच्चा पीला रंग दिया जाता है। पुराने ढंग के अनुसार कपड़े रंगने के पूर्व पाह देना आवश्यक होता था, क्योंकि इसके बिना रंग नहीं चढ़ता था]। (यदि मन को वास्तव में परमात्मा की भक्ति में रंगना है, तो निम्नलिखित विधि

अपनानी चाहिए)—(यदि मन को) (परमात्मा के) भय रूपी हुंडे में पकाया जाय (और तत्पश्चात्) लज्जा (पाप कर्मों से शर्म) का पाहु लगाया जाय (और फिर) (परमात्मा की) भक्ति के रंग में रंग दिया (तो अनूठा रंग चढ़ जाता है) और मिथ्यापन का लेश मात्र भी वहाँ नहीं रहेगा ॥२ ॥

(जगत् में जीवों के निमित्त) (लोभ का) लालच (मानो) राजा है पाप वजीर है और झूठ जिसके बनाने वाला सरदार अथवा चौधरी है। (इस लालच और पाप के दरबार में) काम नायब है (इसे) बुलाकर सलाह पूछी जाती है (और यह) बैठ-बैठ कर विचार करता है। प्रजा ज्ञान से विहीन होने के कारण अंधी हो गई है (जिससे) (यह) अग्नि रूपी (तृष्णा) को रिश्वत दे रही है।

(जो व्यक्ति अपने आप को) ज्ञानी (कहलवाते हैं) (वे) नाचते हैं, बाजे बजाते हैं और नाना प्रकार के रूप (वेश स्वांग) बना कर शृङ्गार करते हैं। (वे ज्ञानी) उच्च स्वर से चिल्लाते हैं (वे) युद्धों के प्रसंग गाते हैं और योद्धाओं (की शूरवीरता) का वर्णन करते हैं।

पढ़े-लिखे मूर्ख कोरी चालाकी करनी और तर्क-वितर्क करना जानते हैं (पर वे) (माया के) आकर्षणों (प्यार) को संग्रह करने में तत्पर हैं।

(जो मनुष्य अपने आप को) धर्मी (समझते हैं वे अपनी समझ में तो) धार्मिक कार्य करते हैं (पर वे अपना सारा परिश्रम) गँवा देते हैं, (क्योंकि वे अपने धर्म के बदले में) मोक्ष द्वार माँगते हैं।

(कई मनुष्य ऐसे हैं जो अपने आप को) यती तो कहलवाते हैं (किन्तु वास्तविक यती बनने) की युक्ति नहीं जानते, (यों ही देखा-देखी) घर-बार छोड़ बैठते हैं।

(अविद्या ग्रस्त) सभी लोग (अपने को) पूर्ण समझते हैं कोई भी (अपने को) घट कर नहीं समझता। पर हे नानक मनुष्य तोल में तभी पूरा उतरता है जब तराजू के दूसरे पलड़े में प्रतिष्ठा रूपी बाट रखा जाय (भावार्थ यह कि वही मनुष्य पूर्ण है जो परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठित हो) ॥२१॥

(जो बात) परमात्मा के यहाँ से नियत है वही प्रकट होगी (भाव यह कि वही होकर रहेगी)। सभी छलांग मारते हैं (प्रयत्न करते हैं) किन्तु होता वही है जिसे परमात्मा करता है। परमात्मा के द्वार पर (आगे) न कोई जाति है और न कोई जोर ही है (तात्पर्य यह कि परमात्मा के यहाँ ऊँच-नीच जाति का कोई प्रश्न नहीं है और न किसी के व्यक्तित्व का ही जोर वहाँ चल सकता है)। परमात्मा के यहाँ तो जीवों का नया ही (विधान) बनता है। वहाँ तो वे ही कोई-कोई व्यक्ति भले गिने जाते हैं जिन्हें (कर्मों के) लेखे (हिसाब) का उस समय आदर प्राप्त होता है (भावार्थ यह है कि जिन्होंने इस संसार में शुभ कर्म किए हैं उन्हीं को परमात्मा के दरवाजे पर आदर प्राप्त होता है) ॥२२॥

पउड़ी : धुरि करमु जिना कउ तुधु पाइआ ता तिनी खसमु धिआइआ।
एना जंता कै वसि किछु नाही तुधु वेकी जगतु उपाइआ॥
इकना नो तू मेलि लैहि इकि आपहु तुधु खुआइआ।
गुर किरपा ते जाणिआ जिथै तुधु आपु बुझाइआ॥
सहजे ही सचि समाइआ॥ ९॥

पउड़ी (हे प्रभु) जिन मनुष्यों के ऊपर तू ने प्रारम्भ से ही कृपा की है, उन्होंने पति को (अर्थात् तुझे) स्मरण किया है। इन जीवों के वश में कुछ भी नहीं है (कि वे तुम्हारा स्मरण कर सकें । तू ने नाना भाँति का जगत् उत्पन्न किया है। कुछ (जीवों) को तो तू (अपने चरणों में) जुड़े किए रहता है और कुछ (जीवों) को अपने से वियोग कराए रहता है।

जिस (भाग्यवान् व्यक्ति को) तूने अपने आप समझ दे दी है उसीने सद्गुरु की कृपा से तुझे पहचान लिया है और वह सहज भाव से अपने आप (प्रभु) में समाहित हुआ है ॥१८॥

सलोकु दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई ।
तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई ॥ १ ॥
बलिहारी कुदरति वसिआ तेरा अंतु न जाई लखिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जाति महि जोति जोति महि जाता अकल कला भरपूरि रहिआ ।
तूं सचा साहिबु सिफति सुआल्हिउ जिनि कीती सो पारि पइआ ॥
कहु नानक करते कीआ बाता जो किछु करणा सु करि रहिआ ॥ २१ ॥
कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ ।
गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ ॥ २४ ॥

सलोकु (हे प्रभु, तेरी विचित्र माया है कि) विपत्ति (जीवों के रोगों की) दवा (बन जाती) है और सुख (उनके लिए) दुःख (का कारण) हो जाता है; पर यदि (वास्तविक आत्मिक) सुख (जीव को प्राप्त हो जाय) तो (दुःख) नहीं रहता। हे प्रभु, तू निर्माण करने वाला कर्ता है (तू स्वयं ही इस भेद को समझता है), मेरी सामर्थ्य नहीं है (कि मैं इन रहस्यों को समझ सकूँ) यदि मैं अपने आप को कुछ समझ लूँ (भाव यह कि जब मैं यह विचार करने लगूँ कि मैं तेरे भेद को समझ सकता हूँ) तो यह बात शोभा नहीं देती ॥१॥

हे कुदरत के बीच में बसने वाले (कर्तार), मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी होता हूँ। तेरा अन्त नहीं पाया जा सकता ॥१॥ रहाउ ॥

हर एक जाति (जीव) में तेरी ही ज्योति है और तेरी ज्योति में सारे जीव (जाति) हैं (तू) (सभी स्थानों में) (अपनी) कलाओं सहित कला से व्याप्त है। हे प्रभु तू सत्य (सदैव स्थिर रहने वाला है) तेरी सुहावनी बड़ाई (महत्ता) है जिन जिसने तेरे गुण गाए हैं (वे) (इस संसार सागर) से पार हो गए हैं। हे नानक (तू भी) कर्ता पुरुष की (स्तुति और प्रशंसा की) बात कह (और यह समझ) कि प्रभु जो कुछ ठीक समझता है, वह कर रहा है (उसके क्रिया-कलापों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता) ॥२१॥

(जिस भाँति) कुम्भ में बँधा हुआ जल रहता है, किन्तु बिना जल के कुम्भ हो नहीं सकता (बन नहीं सकता) (उसी भाँति) ज्ञान द्वारा बँधा हुआ मन (टिकता) है किन्तु बिना गुरु (मन) के ज्ञान भी नहीं होता ॥२४॥

पउड़ी पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ ।
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ ॥
ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ ।
पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ ॥
मुहि चलै सु अगै मारीऐ ॥ १० ॥

पउड़ी (यदि) पढ़ा-लिखा (व्यक्ति) दोषी हो (तो वह दण्ड का भागी है) किन्तु यदि अनपढ़ साधु है तो उसे मारना नहीं चाहिए। (मनुष्य) जिस प्रकार का करनी करता है उसी प्रकार का उसके नाम का प्रचार होता है (पुण्य करने से पुण्यात्मा और पाप करने से पापी कहलाता है)। (अतएव इस संसार में तू) ऐसा खेल मत खेल कि जिससे (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर (तुझे जीवन की बाजी) हारनी पड़े।

पढ़े-लिखे अथवा अनपढ़ का विचार (निर्णय) आगे चलकर (परमात्मा के) दरबार में किया जायगा। जो अपने मुँह के अनुसार (मनमुख होकर) चलता है, आगे (परमात्मा के यहाँ) उसके ऊपर मार पड़ती है ॥१ ॥

सलोकु   नानक मेरु सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु।
    जुगु जुगु फेरि वटाईअहि गिआनी बुझहि ताहि॥
    सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु।
    त्रेते रथु जतै का जोरु अगै रथवाहु॥
    दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु।
    कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु॥ २१ ॥

    साम कहै सेतंबरु सुआमी सच महि आछै साचि रहे।
    सभु को सचि समावै।

    रिगु कहै रहिआ भरपूरि। राम नामु देवा महि सूरु॥
    नाइ लइऐ पराछत जाहि। नानक तउ मोखंतरु पाहि॥
    जुज महि जोरि छली चंद्रावलि कान्हु क्रिसनु जादमु भइआ।
    पारजातु गोपी लै आइआ बिंद्राबन महि रंगु कीआ॥
    कलि महि बेदु अथरबणु हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ।
    नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ॥
    चारे वेद होए सचिआर। पड़हि गुणहि तिन्ह चार वीचार॥
    भाउ भगति करि नीचु सदाए। तउ नानक मोखंतरु पाए॥ २६ ॥

सलोकु : हे नानक (चौरासी लाख योनियों में) मनुष्य-योनि सर्वश्रेष्ठ (सुमेरु) है, (इस शरीर का) एक रथ है और एक सारथी है। प्रत्येक युग में (रथ और सारथी) बार-बार बदलते रहते हैं उस (रहस्य) को (कोई) ज्ञानी ही समझ सकता है।

सत्ययुग में संतोष का रथ (था) और धर्म (रथ के अग्र भाग में बैठने वाला) सारथी रहा। त्रेता में संयम का रथ था (और उसके अग्र भाग में बैठने वाला) वीर्य (पराक्रम) सारथी था। द्वापर युग में तप का रथ था (और उसके अग्र भाग में बैठने वाला) सत्य (सत्कर्म) सारथी रहा। कलियुग में आग (तृष्णाग्नि) रथ है और झूठ ही (रथ के अग्रिम भाग का) सारथी है ॥२५॥

सामवेद कहता है कि (सत्ययुग में) (संसार के स्वामी का नाम) श्वेताम्बर (प्रसिद्ध है—[श्वेताम्बर शब्द सत्ययुगी वृत्ति का द्योतक है] (उस युग में लोग) सत्य की इच्छा करते हैं, सत्य में ही रहते हैं (और अन्त में) सभी सत्य में समाहित हो जाते हैं।

हे नानक, ऋग्वेद का कथन है कि (त्रेतायुग में) (श्री) रामचन्द्र (जी) का नाम सभी देवताओं में सूर्य (की भाँति चमकता है) (वे राम सर्वत्र) परिपूर्ण (व्यापक हैं)। (उनका) नाम लेने से पाप दूर हो जाते हैं और जीव गण मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

यजुर्वेद (कहता है कि) (द्वापर में) (जगत् के स्वामी का नाम) यादव-वंशी 'कान्ह' और 'कृष्ण' (प्रसिद्ध) हो गया, (जो) शक्ति के बल पर चन्द्रावली को छल लाया, (अपनी रानी) (सत्यभामा के कहने से स्वर्ग से) पारिजात वृक्ष लाया (और जिसने) वृन्दावन में (भाँति भाँति के) कौतुक रचे।

कलियुग में अथर्ववेद (प्रधान) हो गया है (जगत् के स्वामी का नाम)—'खुदा' और 'अल्लाह' पड़ गया है तुर्कों और पठानों का राज हो गया है (जिन्होंने) नीले वस्त्र के कपड़े (जामा कर) पहने हैं।

(हिन्दुओं के अनुसार) चारों वेद सत्य हैं, उनके पढ़ने और विचारने से सुन्दर (श्रेष्ठ) विचार प्राप्त होते हैं। किन्तु नानक (की दृष्टि में जो व्यक्ति) प्रेमाभक्ति करके (अपने को) नीच कहलवाता है, वही (नर) मुक्ति प्राप्त करता है ॥२६॥

पउड़ी सतिगुर विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ।
जिनि करि उपदेसु गिआन अंजनु दीआ इन्ही नेत्री जगतु निहालिआ ॥
खसमु छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ।
सतिगुरु है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ।
करि किरपा पारि उतारिआ ॥ ११ ॥

पउड़ी (मैं अपने) सद्गुरु के ऊपर बलिहारी होता हूँ जिसके मिलने से (मैं अपने) स्वामी-पति को स्मरण करता हूँ जिसने अपना उपदेश देकर (मानो) ज्ञान का अंजन लगा दिया है (जिसके फलस्वरूप) (मैंने) अपनी इन आँखों से जगत (की वास्तविकता) को देख लिया है। (जो) बनजारे पति (परमात्मा) को छोड़कर द्वैतभाव में लगते हैं, वे डूब जाते हैं। किसी विरले ने ही यह विचार किया है (कि) सद्गुरु (संसार-सागर से पार उतारने के लिए) जहाज है। (जो सद्गुरु को जहाज समझते हैं उन्हें) (वह) कृपा करके (संसार-सागर से) पार उतार देता है ॥११॥

सलोकु सिमल रुखु सराइरा अति दीरघ अति मुचु।
ओइ जि आवहि आस करि जाहि निरासे कितु ॥
फल फिके फुल बकबके कंमि न आवहि पत।
मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु ॥
सभु को निवै आप कउ पर कउ निवै न कोइ।
धरि ताराजू तोलीऐ निवै सु गउरा होइ ॥
अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि।
सीसि निवाइऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि ॥ १७ ॥

पड़ि पुसतक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं ॥
मुखि झूठ बिभूखण सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं।
गलि माला तिलकु लिलाटं। दुइ धोती बसत्र कपाटं ॥

जे जाणसि ब्रहमं करमं । सभि फोकट निसचउ करमं ॥
कहु नानक निहचउ धिआवै । विणु सतिगुर वाट न पावै ॥ २८ ॥

सलोक मनुष्य का वृक्ष तीर के समान (सीधा) बहुत ऊँचा और बहुत मोटा होता है। पर वे (पक्षी), (जो फल खाने की) आशा से (इस पर) आकर (बैठते हैं) निराश होकर क्यों लौट जाते हैं? (इसका कारण यह है कि) इसके फल फीके तथा फूल बेस्वाद होते हैं (और इसके) पत्ते भी किसी काम नहीं आते। हे नानक विनम्रता में मिठास है गुण और (इसमें) (सारी) अच्छाइयों का तत्त्व है। सभी (मनुष्य) अपने (स्वार्थ के) निमित्त नमित होते हैं, दूसरों के लिए नहीं (झुकते)। तराजू में रख कर (कोई वस्तु) तौली जाय (तो हमें ज्ञात होता है कि तराजू का जो पलड़ा अधिक) झुका होता है, (उसी का) (वजन) (अधिक) भारी होता है।

(किन्तु झुकना भी दो प्रकार का होता है, एक तो हृदय की शुद्धता से और दूसरा मलिनता से। मलिनता और कपटवाला झुकना बड़ा भयावह होता है। इसका दृष्टान्त शिकारी का है)। अपराधी (शिकारी) मृग मारता फिरता है (शिकार करते समय) वह झुक कर दोहरा हो जाता है। [पर उसके झुकने में कितनी हिंसा की भावना व्याप्त है। गोस्वामी तुलसीदास जी की भी एक उक्ति इसी प्रकार की है— 'नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई। —रामचरितमानस अरण्यकाण्ड] (अतएव) जब तक हृदय अशुद्ध है, शीश झुकाने से क्या हो सकता है? ॥२७॥

विशेष निम्नलिखित सलोक गुरु नानक द्वारा बनारस में बनाया गया। कहते हैं कि बनारस के स्थानीय पंडितों ने गुरु नानक देव से कहा कि आप पंडिताऊ वेश धारण कीजिए। इस पर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित सलोक बनाकर उच्चारण किया—

अर्थ : (पंडित वेद आदिक धार्मिक पुस्तकों को) पढ़ते हैं और सन्ध्या (करते हैं) (अन्य पंडितों के साथ) वाद विवाद करते हैं। (वे) पत्थर पूजते (हैं) और बगुले की भाँति समाधि लगाते हैं। वे मुख से झूठ बोलते हैं (किन्तु उस झूठ को वे उसी प्रकार आकर्षित कर सत्य रूप में दिखाते हैं जिस प्रकार) लोहे के गहने को (सोने का मुलम्मा देकर सोने के गहने के रूप में दिखाया जाता है)। (वे) त्रिपदा (गायत्री) का दिन-रात में विचार करते हैं, गले में माला पहनते हैं, ललाट पर तिलक लगाते हैं, दो धोतियाँ रखते हैं और सिर पर एक वस्त्र धारण किए रहते हैं। (इन बाह्याचारों की अपेक्षा यह कितना अच्छा होता) यदि (वे) ब्रह्मणोचित अन्य (पारलौकिक) कर्म भी जानते होते (ये सभी उपर्युक्त कर्म) निश्चय ही फोकट (व्यर्थ) हैं। नानक कहते हैं (कि मनुष्य को) निश्चयपूर्वक (श्रद्धा और विश्वास पूर्वक) (परमात्मा का) ध्यान करना चाहिए (किन्तु) यह मार्ग बिना सद्गुरु के नहीं प्राप्त होता ॥२८॥

पउड़ी कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा।
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ॥
हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा।
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥
करि अउगण पछोतावणा ॥ १२ ॥

पउड़ी (शरीर रूपी) वस्त्र तथा सुन्दर स्वरूप को इस दुनियाँ में पसन्द छोड़ कर (जीव) को (परलोक में) जाना है। (प्रत्येक जीव को) अपने किए हुए शुभ और अशुभ कार्यों

(के फल को) स्वयं ही भोगना है। (जिस मनुष्य ने इस जगत् में) मनमानी हुकूमत की है, उसे आगे (परलोक में) बड़े तंग रास्ते से जाना पड़ेगा, (तात्पर्य यह कि अपने किए हुए अत्याचार के लिए परलोक में बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़ेंगे)। (इस प्रकार के लोग) नंगे दोजख (नरक) में भेजे जाते हैं, उस समय (उन्हें अपना स्वरूप) बड़ा ही भयानक दिखाई पड़ेगा। (अतएव) अवगुण से (अंत में) पछताना ही पड़ता है ॥१२॥

सलोकु दइआ कपाहु संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ॥
ना एहु तुटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ ।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ॥
चउकड़ि मुलि अणाइआ बहि चउकै पाइआ ।
सिखा कंनि चड़ाईआ गुरु ब्राहमणु थिआ ।
ओहु मुआ ओहु झड़ि पइआ वेतगा गइआ ॥ ९६ ॥

लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गालि ।
लख ठगीआ पहिनामीआ राति दिनसु जीअ नालि ॥
तगु कपाहहु कतीऐ बाम्हणु वटे आइ ।
कुहि बकरा रिंन्हि खाइआ सभु को आखै पाइ ॥
होइ पुराणा सुटीऐ भी फिरि पाईऐ होरु ।
नानक तगु न तुटई जे तगि होवै जोरु ॥ १ ॥

नाइ मंनिऐ पति ऊपजै सालाही सचु सूतु ।
दरगह अंदरि पाईऐ तगु न तूटसि पूत ॥ ११ ॥

तगु न इंद्री तगु न नारी ।
भलके थुक पवै नित दाड़ी ॥
तगु न पैरी तगु न हथी ।
तगु न जिहवा तगु न अखी ॥
वेतगा आपे वतै । वटि धागे अवरा घतै ॥
लै भाड़ि करे वीआहु । कढि कागलु दसे राहु ।
सुणि वेखहु लोका एहु विडाणु । मनि अंधा नाउ सुजाणु ॥ १२ ॥

सलोकु विशेष: निम्नलिखित सलोक गुरु नानक ने अपने पुरोहित से उस समय कहा था जब वह उन्हें यज्ञोपवीत पहनाने लगा। गुरु नानक देव ने आध्यात्मिक यज्ञोपवीत का निरूपण इस पद में इस प्रकार किया है—

अर्थ (वह जनेऊ) (जिसकी) कपास दया हो (जिसका) सूत संतोष हो (जिसकी) गाँठ संयम हो (और जिसकी) पूरन सत्यगुण हो—हे पंडित (यदि तुम्हारे पास) (इस प्रकार का आध्यात्मिक जनेऊ) जीव (के कल्याण के निमित्त हो), तो (मेरे गले में) पहना दो। यह जनेऊ न तो टूटता है, न गंदा होता है, न जलता है और न (कभी) जाता है (नष्ट होता है)। हे नानक वे मनुष्य धन्य हैं, (जो) अपने गले में ऐसा जनेऊ पहन कर, (परलोक) जाते हैं।

(हे पण्डित जो जनेऊ तुम पहनाते फिरते हो, यह तो तुम) चार कौड़ी देकर मँगवा लिया, (और अपने यजमान के चौके में) बैठ कर (उसके) गले में पहना दिया। (तत्पश्चात् तू ने उसके) कानों में यह उपदेश दिया (कि आज से तेरा) गुरु ब्राह्मण हो गया। (आयु समाप्त होने पर जब) वह (यजमान) मर गया (तो) वह (जनेऊ उसके शरीर से) गिर गया (भाव यह कि किसी से प्रयाण समय यह जनेऊ झड़ कर यहीं गिर गया, जीव के साथ वह नहीं जा सका इस कारण वह यजमान बेचारा) जनेऊ के बिना ही (संसार से) विदा हो गया ॥२६॥

(मनुष्य) लाखों चोरियाँ और पर-स्त्री-गमन (करता है) (वह) लाखों झूठ (बोलता है) और लाखों गालियाँ (बकता है)। (वह) दिनरात लोगों से (जीव से) लाखों ठगियाँ तथा गुप्त पाप करता है। (यह तो मनुष्य की आन्तरिक दशा है पर वह बाहर क्या कर रहा है?) कपास से कातकर सूत (तागा) काता जाता है (और) ब्राह्मण (यजमान के घर आकर) उसे बट देता है। (घर में आए हुए सम्बन्धियों को) बकरा मार कर और रींध (पका) कर खिलाया जाता है (तत्पश्चात् घर का प्रत्येक प्राणी) कहता है (जनेऊ) पहनाया गया है, (जनेऊ) पहनाया गया है)। पुराना होने पर (जनेऊ) फेंक दिया जाता है और फिर दूसरा पहन लिया जाता है। हे नानक, (यदि) धागे में शक्ति हो (आध्यात्मिक जनेऊ हो) तो वह नहीं टूट सकता ॥ १ ॥

(कपास से कात कर सूत के जनेऊ पहनने मात्र से परमात्मा के दरवाजे पर सम्मान नहीं होता परमात्मा के दरबार में तभी) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जब (उसका) नाम (हृदय में) माना जाय (क्योंकि परमात्मा का) स्तुति और प्रशंसा ही सच्चा जनेऊ है। (इस सच्चे जनेऊ को धारण करने से) (उसके) दरबार में (मान) प्राप्त होता है और यह पवित्र तागा (जनेऊ) कभी टूटता भी नहीं ॥ ११ ॥

(पंडित ने) (अपना) इन्द्रियों और नाड़ियों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वे इन्द्रियाँ विकारों की ओर न जायँ इसी कारण) प्रतिदिन (उनकी) दाढ़ी पर थूक पड़ता है (भाव यह कि ऐसे कर्म करते हैं, जिससे निन्द्य थूक जाते हैं)। (उसने) पैरों को (ऐसा) तागा नहीं पहनाया (कि वे बुरे लोगों के पास न ले जायँ) हाथों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वे बुरे कर्म न करें) जीभ को (कोई ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वह पराई निन्दा करने से बची रहे) आँखों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वे पराई स्त्री को ताक न देखें)। (इस प्रकार पंडित) स्वयं तो बिना तागे (जनेऊ) के भटकता फिरता है, (पर कपास के सूत के धागे बट-बट कर औरों को पहनाता (फिरता) है। (अपने यज्ञ माना को पुत्र-पुत्रियों का) विवाह भाड़े (दक्षिणा) ले लेकर कराता है और पत्रा खोल-खोल कर (उन्हें) मार्ग दिखाता है। ऐ लोगो सुनो और देखो यह आश्चर्यमय कौतुक! (पंडित) मन से तो अन्धा है (तात्पर्य यह कि अज्ञानी है) किन्तु नाम (रखता है) सयाना ॥ १२ ॥

पउड़ी : साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी।
सो सेवकु सेवा करे जिस नो हुकमु मनाइसी॥
हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी।
खसमै भावै सो करे मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी॥
ता दरगह पैधा जाइसी ॥ १३ ॥

पउड़ी (जिस सेवक के ऊपर) साहब खसमु हो जाय और कृपा करे तो उसके द्वारा वही कर्म कराता है (जो उसे अच्छा लगता है) जिसे अपने हुक्म में चलाता है, वही सेवक (पति परमात्मा की) सेवा करता है। हुक्म मानने से (सेवक) प्रामाणिक समझा जाता है, (जिसके फलस्वरूप) (वह) खसम (पति-परमात्मा) का महल प्राप्त कर लेता है। जब सेवक वही कार्य करता है, जो पति (परमात्मा) को अच्छा लगता है, तो उसे मनोवांछित फल प्राप्त होता है और (परमात्मा के) दरबार में प्रतिष्ठा के वस्त्र पहन कर जाता है ॥ ११ ॥

सलोकु

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ॥
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई।
छोडीले पाखंडा। नामि लइऐ जाहि तरंदा ॥ १३ ॥

माणस खाणे करहि निवाज। छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ॥
तिन घरि ब्रहमण पूरहि नाद। उना भी आवहि ओई साद ॥
कूड़ी रासि कूड़ा वापारु। कूड़ु बोलि करहि आहारु ॥
सरम धरम का डेरा दूरि। नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि ॥
मथै टिका तेड़ि धोती कखाई। हथि छुरी जगत कासाई ॥
नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु। मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु ॥
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा। चउके उपरि किसै न जाणा ॥
देकै चउका कढी कार। उपरि आइ बैठे कूड़िआर ॥
मतु भिटै वे मतु भिटै। इहु अंनु असाडा फिटै ॥
तनि फिटै फेड़ करेनि। मनि जूठै चुली भरेनि ॥
कहु नानक सचु धिआईऐ। सुचि होवै ता सचु पाईऐ ॥ १४ ॥

सलोक विशेष लाहौर के किसी व्यक्ति ने एक ब्राह्मण को दान में गाय दी। किन्तु सुल्तानपुर के बेंई नदी के घाट पर वह रोक लिया गया। वहाँ कर वसूल करने वाला एक खत्री था। ब्राह्मण की गाय ने जब गोबर किया तो खत्री ने उस गोबर से अपना चौका लिपवाया। गुरु नानक देव का शिष्य मरदाना चौके की ओर जाना चाहा किन्तु वह वहाँ से हटा दिया गया ताकि चौका अपवित्र न हो जाय। इस पर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित सलोक बनाया जिसका अर्थ इस प्रकार है —

अर्थ (हे भाई, नदी के घाट पर बैठ कर) गऊ और ब्राह्मण पर तो तुम कर लगा रहे हो (तात्पर्य यह है कि गऊ और ब्राह्मण को पार उतारने के लिये तो तुम कर वसूल कर रहे हो किन्तु आप ही गऊ के गोबर के बल पर संसार से पार उतरना चाहते हो)। गोबर के बल पर (संसार-सागर) से नहीं तरा जा सकता। (तुम) धोती (पहनते हो) (मस्तक में) टीका (लगाते हो) और माला (फेरते हो) पर अन्न तो म्लेच्छों का ही खाते हो। अंदर बैठ कर (तुर्क हाकिमों की चोरी चोरी तो) पूजा करते हो (किन्तु बाहर मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए) कुरान आदि पढ़ते हो और मुसलमानों (तुर्कों) के (ढंग का संयम (भी) करते हो (अर्थात् मुसलमानों की रहनी रहते हो)।

(भाई) यह पाखण्ड छोड़ दो । (परमात्मा का) नाम लो, जिससे (तुम संसार सागर से) तर जाओगे ॥ १३ ॥

(मुसलमान काज़ी तथा अन्य हाकिम) हैं तो मनुष्य भक्षी (रिश्वतखोर) पर पढ़ते हैं नमाज़ । (उन काज़ियों और हाकिमों के मुंशी जो लिखते हैं वा) छुरी चलाते हैं (तात्पर्य यह कि गरीबों के ऊपर अत्याचार करते हैं) पर उनके गले में जनेऊ है। उन (अत्याचारी खत्रियों) के घर ब्राह्मण (जाकर) (शंख) बजाते हैं (अतएव) उन (ब्राह्मणों) को भी उन्हीं पदार्थों के स्वाद आते हैं (भाव यह, कि वे ब्राह्मण भी उसी अत्याचार से कमाए हुए पदार्थ को खाते हैं) । (उन लोगों की) झूठी पूंजी है और झूठा ही व्यापार है। झूठ बोल कर ही (वे लोग) गुज़ारा करते हैं (रोटी खाते हैं रोज़ी कमाते हैं) । शरम और धर्म का डेरा दूर हो गया है (तात्पर्य यह है कि लोग न तो अपनी लज्जा का ध्यान रखते हैं और न धर्म के ही काम करते हैं) । हे नानक, (सभी स्थानों में) झूठ ही व्याप्त हो गया है।

(वे खत्री) मस्थे में टीका (लगाते हैं) कमर में धोती पहन कर काछ बाँधते हैं हाथ में (मानो वे) छुरी लिए हुए हैं और जगत के लिए कसाई (के समान) हैं। (वे) नीले वस्त्र पहन कर (तुर्क हाकिमों के पास जाते हैं तभी वे) प्रामाणिक (समझे जाते हैं) (तात्पर्य यह है कि नीले वस्त्र पहन कर जाने से ही उन्हें मुसलमान हाकिमों के पास जाने की आज्ञा मिलती है) । म्लेच्छों से धान्य लेते हैं (रोज़ी कमाते हैं) और (फिर भी) पुराणों को पूजते हैं।

(इतने से ही बस नहीं) उनका भोजन वह बकरा है जो (मुसलमानों का) कलमा पढ़ कर हलाल किया गया है। [मुसलमान बकरा मारते समय अथवा खाते समय 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण करते हैं। हिन्दुओं के लिए इस विधि से मारे हुए बकरे का मांस खाना वर्जित है]। (हिन्दु वे लोग कहते यही हैं कि) (हमारे) चौके में कोई न जाए। चौका देकर लकीर खींच देते हैं। (किन्तु) इस चौके में वे झूठे आकर बैठते हैं। (वे चौके में बैठ कर कहते हैं) 'मत छुओ मत छुओ' (नहीं तो) 'हमारा अन्न अपवित्र हो जायगा।' (मनुष्य) अपवित्र शरीर से मलिन कर्म करते हैं और जूठे मन से कुल्ले करते हैं।

नानक कहते हैं कि सच्चे (प्रभु) का ध्यान करो यदि पवित्रता होगी तभी सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति होगी ॥ १४ ॥

पउड़ी चिते अंदरि सभु को वेखि नदरी हेठि चलाइदा ।
आपे दे वडिआईआ आपे ही करम कराइदा ॥
वडहु वडा वड मेदनी सिरे सिरि धंधै लाइदा ।
नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ॥
दरि मंगनि भिख न पाइदा ॥ १४ ॥

पउड़ी : (प्रभु) सभी (जीवों) को अपने ध्यान में रखता है और प्रत्येक को अपनी नज़र के नीचे रख कर चलाता है। (वह) आप ही (जीवों का) बड़ाइयाँ प्रदान करता है (और) आप ही (उन्हें) कर्मों में लगाता है। (प्रभु) बड़े से बड़ा है (तात्पर्य यह कि वह महान बड़ा है) (उसकी रची हुई) सृष्टि (बहुत) बड़ी—अनंत है। (इतनी अनंत सृष्टि होते हुए भी) प्रत्येक जीव को प्रभु (अपने-अपने) काम में लगाए हुए है। यदि (प्रभु अपनी)

दृष्टि उलटी कर ले, तो (बड़े बड़े) सुल्तानों को घास (तिनका) बना दे (अथवा बड़े-बड़े सुल्तानों को घास खाने वाला बना दे)। (यदि वे) दरवाजे-दरवाजे पर (जाकर) माँगें (तो उन्हें) भीख भी न मिले ॥ १४ ॥

सलोकु

जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ।
अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ॥
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ ॥
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ॥ १५ ॥
जिउ जोरू सिर नावणी आवै वारोवार ।
जूठे जूठा मुखि वसै नित नित होइ खुआरु ॥
सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिंडा धोइ ।
सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ ॥ १६ ॥

सलोकु यदि कोई ठग (पराया घर) लूटे और (उस पराये) घर को लूट कर अपने पितरों को (श्राद्ध के रूप में) अर्पित करे, तो परलोक में (वे) वस्तुएँ पहचान ली जायगी (और) पितर लोग चोर (प्रमाणित) होंगे। (परमात्मा वहाँ यह) न्याय करेगा कि दलाल (श्राद्ध कराने वाले ब्राह्मण) का हाथ काट लिया जाय। हे नानक आगे (परलोक में) तो मनुष्य को वही मिलता है जो वह प्राप्त करता है कमाता है और (अपने) हाथों से देता है ॥ १५ ॥

जिस प्रकार स्त्री को मासिक धर्म सदैव (प्रत्येक महीने में) होता है (और यह अपवित्रता सदैव उसके अन्तर्गत ही उत्पन्न हो जाती है), उसी प्रकार झूठे (मनुष्य) के मुँह में सदैव झूठ ही बसता है और इससे वह सदैव भ्रष्ट (गंदा) रहता है। वे (मनुष्य) पवित्र नहीं कहे जा सकते जो (केवल) शरीर को ही धोकर (अपनी ओर से पवित्र बन कर) बैठ जाते हैं। हे नानक केवल वे ही (लोग) पवित्र हैं जिनके मन में वह (प्रभु) निवास करता है ॥ १६ ॥

पउड़ी :

तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सवारिआ ।
कोठे मंडप माड़ीआ लाइ बैठे करि पासारिआ ॥
चीज करनि मनि भावदे हरि बुझनि नाही हारिआ ।
करि फुरमाइसि खाइआ वेखि महलति मरणु विसारिआ ॥
जरु आई जोबनि हारिआ ॥ १५ ॥

पउड़ी (जिनके पास) काठियों समेत (सब तैयार रखे वाले) पवन के समान चाल वाले घोड़े (रहते हैं) (जो अपने) महलों को अनेक रंगों से सजाते हैं (जो मनुष्य) कोठे (उच्च अट्टालिकाएँ) मण्डप, मकानों का फैलाव फैला कर (सब घर में) बैठे हैं (जो) मनमानी रंगरेलियाँ करते हैं (नाना भाँति के कौतुक करते हैं) किन्तु हरि को नहीं पहचानते (वे अपना मानव जीवन) हार बैठते हैं। (जो मनुष्य शक्ति पर) हुक्म चला चला कर (अनेक प्रकार का पदार्थ) खाते हैं (भाग भोगते हैं) और (अपने) महलों को देख कर (अपनी) मृत्यु भुला देते हैं (देखते देखते) उनका यौवन हार जाता है और वृद्धावस्था आ (दबोचती है) ॥ १५ ॥

जो खाना-पीना (हरी) सभी जीवों को) पहुँचा कर देता है, वे सब पवित्र हैं। हे नानक जिन (मनुष्यों ने यह बात) समझ ली है उन्हें सूतक नहीं लगता ॥१८॥

पउड़ी   सतिगुरु वडा करि सालाहीऐ जिसु वडीआ वडिआईआ।
सहि मेले ता नदरी आईआ।
जा तिसु भाणा ता मनि वसाईआ॥
करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीआ बुरिआईआ॥
सहि तुठै नउनिधि पाईआ ॥ १९ ॥

पउड़ी —जिसके अंतर्गत बहुत बड़ाइयाँ (बहुत से गुण हैं) उस सद्गुरु की स्तुति (उसे) (बहुत) बड़ा (मान) कर, करनी चाहिए। (जिन मनुष्यों को प्रभु) पति ने (गुरु से) मिलाया है (उन्हें ही) वे गुण आँखों से दिखाई देते हैं और यदि (प्रभु को) अच्छा लगे तो (उनके) मन में भी वे ही गुण आ बसते हैं। (प्रभु) अपने हुक्म के अनुसार उन मनुष्यों के मस्तक पर हाथ रख कर (उनके) मन से सारी बुराइयों को मार कर निकाल देता है। (यदि) पति (परमात्मा) प्रसन्न हो जाय तो नव निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥१९॥

सलोकु   पहिला सुचा आपि होइ सुचै बैठा आइ।
सुचे अगै रखिओनु कोइ न भिटिओ जाइ॥
सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोकु।
कुहथी जाई सटिआ किसु एहु लगा दोखु॥
अंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु पंजवा पाइआ घिरतु।
ता होआ पाकु पवितु॥
पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईआ तितु॥
जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि।
नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि॥ ४ ॥
भंडि जमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु॥
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जमहि राजान॥
भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ।
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ॥
जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि।
नानक ते मुख ऊजले तितु सचै दरबारि ॥ ४१ ॥

सलोकु —नोट   गुरुवाक का अर्थ वर्तमान काल में किया गया है।

अर्थ :—(पहले) (पहले ब्राह्मण नहा धोकर) पवित्र होकर, पवित्र (चौके में) आ बैठता है। उसके आगे (यजमान) वह पवित्र भोजन लाकर रखता है जिस किसी ने भी नहीं छुआ है। (ब्राह्मण) पवित्र होकर (उस पवित्र भोजन को) खाता है और खाने के पश्चात् (संस्कृत के) श्लोक पढ़ने लग जाता है। पर उस पवित्र भोजन को (विष्ठा के रूप में) गंदे

जो माना-पीना (हरी) सभी जीवों को) पहुँचा कर देता है, वे सब पवित्र हैं। हे नानक जिन (मनुष्यों ने यह बात) समझ ली है उन्हें सूतक नहीं ममता ॥१८॥

पउड़ी सतिगुरु वडा करि सालाहीऐ जिसु वडीआ वडिआईआ।
सहि मेले ता नदरी आईआ।
जा तिसु भाणा ता मनि वसाईआ॥
करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीआ बुरिआईआ॥
सहि तुठै नउनिधि पाईआ॥ १९॥

पउड़ी —जिसके अंतर्गत बहुत बड़ाइयाँ (बहुत से गुण हैं) उस सद्गुरु की स्तुति (उसे) (बहुत) बड़ा (मान) कर, करनी चाहिए। (जिन मनुष्यों को प्रभु) पति ने (गुरु से) मिलाया है (उन्हें ही) वे गुण आँखों से दिखाई देते हैं और यदि (प्रभु को) अच्छा लगे तो (उनके) मन में भी वे ही गुण आ बसते हैं। (प्रभु) अपने हुकम के अनुसार उन मनुष्यों के मस्तक पर हाथ रख कर (उनके) मन से सारी बुराइयों को मार कर निकाल देता है। (यदि) पति (परमात्मा) प्रसन्न हो जाय तो नव निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥१९॥

सलोकु पहिला सुचा आपि होइ सुचै बैठा आइ।
सुचे अगै रखिओनु कोइ न भिटिओ जाइ॥
सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोकु।
कुहथी जाई सटिआ किसु एहु लगा दोखु॥
अंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु पंजवा पाइआ घिरतु।
ता होआ पाकु पवितु॥
पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईआ तितु॥
जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि।
नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि॥ ४ ॥
भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु॥
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान॥
भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ।
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ॥
जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि।
नानक ते मुख ऊजले तितु सचै दरबारि॥ ४१॥

सलोकु —भोर भूतकाल का अर्थ वर्तमान काल में किया गया है।

अर्थ —(मन में) (पहले ब्राह्मण यहाँ चौका) पवित्र होकर, पवित्र (चौके में) आ बैठता है। उसके आगे (यजमान) वह पवित्र भोजन लाकर रखता है जिसे किसी ने भी नहीं छुआ है। (ब्राह्मण) पवित्र होकर (उस पवित्र भोजन को) खाता है और खाने के पश्चात (संस्कृत के) श्लोक पढ़ने लग जाता है। पर उस पवित्र भोजन को (विष्ठा के रूप में) गंदे

स्थान में स्थान पाता है। (उस पवित्र भोजन को गंदा बनाने और मैले स्थान पर त्यागने का) दोष किस पर लगा ? अन्न पानी आग और नमक (चारों ही) देवता हैं, (तात्पर्य यह कि ये चारों पवित्र पदार्थ हैं)। पाँचवाँ घी भी पवित्र है, (जो इन चारों में) डाला जाता है। (इन पाँचों को मिलाने से) बड़ा ही पवित्र पकवान तैयार होता है। (पर देवताओं के इस पवित्र शरीर को—इस पवित्र भोजन को) पापियों (पापी मनुष्यों) से संगति होती है, जिस कारण (जब वह मल के रूप में परिवर्तित हो जाता है तो घृणा से उस पर थूक पड़ते हैं (अर्थात् मल देख कर लोग, घृणा से आँखें फेर लेते हैं नाक दबा लेते हैं और थू थू करने लगते हैं)

हे नानक, (उसी तरह यह भी समझ लेना चाहिए कि) जिस मुख से (मनुष्य) नाम नहीं उच्चारण करते और बिना नाम के उच्चारण किए सुन्दर स्वादमय (पदार्थों को) खाते हैं, (उस मुख पर) भी थूक ही पड़ता है ॥४ ॥

स्त्री से ही (मनुष्य) जन्म लेता है (स्त्री के ही पेट में प्राणी का शरीर बनता है। स्त्री से ही सगाई और विवाह होता है। स्त्री के ही द्वारा (अन्य लोगों से) संबंध जुड़ता है (दोस्ती होती है) और स्त्री से ही (जगत् की उत्पत्ति का) मार्ग—क्रम चलता है। (जब) (एक) स्त्री मर जाती है तो (तो दूसरी) स्त्री की खोज की जाती है, स्त्री के ही द्वारा (दूसरों के साथ सम्बन्ध के) बंधन (स्थापित) होते हैं। उस स्त्री को बुरा क्यों कहा जाय जिससे राजा-महाराजा भी जन्म लेते हैं ? स्त्री से ही स्त्री उत्पन्न होती है। (इस संसार में) कोई भी (प्राणी) स्त्री के बिना नहीं उत्पन्न हो सकता। हे नानक केवल एक सच्चा (प्रभु ही) है, जो स्त्री से नहीं जन्मा है, (क्योंकि वह 'अयोनि' और 'स्वयंभू' है)। जिस (प्राणी के) मुख से सदैव (परमात्मा का) गुणगान होता है (उसी का मस्तक) भाग्य से लाल (रंगी) और सुन्दर (चार>चार) है। हे नानक, वे ही मुख उस सच्चे (प्रभु) के दरबार में उज्ज्वल (दिखाई पड़ते) हैं (जिन मुखों से निरन्तर प्रभु का गुणगान होता रहता है) ॥२॥

पउड़ी : सभु को आखै आपणा जिसु नाही सो चुणि कढीऐ।
कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संढीऐ ॥
जा रहणा नाही ऐतु जगि ता काइतु गारबि हंढीऐ।
मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ॥
मूरखै नालि न लुझीऐ ॥ १७ ॥

पउड़ी (इस संसार में) सब कोई अपना अपना कहते हैं (तात्पर्य यह कि प्रत्येक जीव को ममता लगी है) जिस व्यक्ति में (ममता) नहीं है, उसे चुन कर (प्रभु पृथक्) कर लेता है। अपने आप किए हुए कर्मों का लेखा आप ही भरना होता है। यदि इस संसार में रहना ही नहीं है तो अहंकार में पड़ कर क्यों रहा जाय ? केवल यह अक्षर पढ़ कर समझ लिया जाय कि किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए और मूर्ख के साथ नहीं झगड़ना चाहिए ॥१७॥

सलोक नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ।
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥
फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ।
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ ॥ ४२ ॥

जो खाना-पीना (इन्हीं सभी जीवों को) पहुँचा कर देता है, वे सब पवित्र हैं। हे नानक, जिन (मनुष्यों ने यह बात) समझ ली है उन्हें सूतक नहीं लगता ॥२१॥

पउड़ी सतिगुरु वडा करि सालाहीऐ जिसु वडीआ वडिआईआ ।
सहि मेले ता नदरी आईआ ।
जा तिसु भाणा ता मनि वसाईआ ॥
करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीआ बुरिआईआ ॥
सहि तुठै नउनिधि पाईआ ॥ १६ ॥

पउड़ी —जिसके अंतर्गत *बहुत बड़ाइयाँ* (बहुत से गुण हैं) उस सद्गुरु की स्तुति (उसे) (बहुत) बड़ा (मान) कर, करनी चाहिए। (जिन मनुष्यों को प्रभु) पति ने (गुरु से) मिलाया है (उन्हें ही) ये गुण आँखों से दिखाई देते हैं और यदि (प्रभु को) अच्छा लगे तो (उनके) मन में भी ये ही गुण आ बसते हैं। (प्रभु) अपने हुक्म के अनुसार उन मनुष्यों के मस्तक पर हाथ रख कर (उनके) मन से सारी बुराइयों को मार कर निकाल देता है। (यदि) पति (परमात्मा) प्रसन्न हो जाय तो नव निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥१६॥

सलोकु पहिला सुचा आपि होइ सुचै बैठा आइ ।
सुचे अगै रखिओनु कोइ न भिटिओ जाइ ॥
सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोकु ।
कुहथी जाई सटिआ किसु एहु लगा दोखु ॥
अंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु पंजवा पाइआ घिरतु ।
ता होआ पाकु पवितु ॥
पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईआ तितु ॥
जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि ।
नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि ॥ ४ ॥

भंडि जमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु ।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु ॥
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु ।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान ॥
भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ ।
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ ॥
जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि ।
नानक ते मुख ऊजले तितु सचै दरबारि ॥ ४१ ॥

सलोकु —नोट भूतकाल का अर्थ वर्तमान काल में किया गया है।

अर्थ :—(पहले) (पहले ब्राह्मण स्वयं स्नान कर) पवित्र होकर, पवित्र (चौके में) आ बैठता है। उसके आगे (यजमान) वह पवित्र भोजन लाकर रखता है जिसे किसी ने भी नहीं छुआ है। (ब्राह्मण) पवित्र होकर (उस पवित्र भोजन को) खाता है और खाने के पश्चात (संस्कृत के) श्लोक पढ़ने लग जाता है। पर उस पवित्र भोजन को (विष्ठा के रूप में) गंदे

पक्की (हे प्रभु), (तूने) आप ही यह सृष्टि रची है और तूने आप ही इसके अन्तर्गत कला (शक्ति) रख कर इसे धारण कर रक्खा है। भले-बुरे जीवों को उत्पन्न करके, अपने रचे जीवों की तू ही संभाल करता है। (जीवन रूपी चौपड़ के खेल में) कच्ची और पक्की गोटियाँ (बुरे और अच्छे जीवों की परख तू ही करता है)।

जो भी (प्राणी) (इस संसार में) आया है, वह (निश्चय ही) चला जायगा। सब की बारी (पृथक् पृथक्) आयेगी।

(अतएव, हे भाई), जिस (प्रभु के दिए हुए) जीव और प्राण हैं उसे मन से किस प्रकार भुलाना चाहिए? (अर्थात् ऐसे प्रभु को कभी नहीं भुलाना चाहिए) अपने हाथों से स्वयं अपना काम करना चाहिए ॥१८॥

सलोकु आपे भांडे साजिअनु आपे पूरणु देइ।
इकन्ही दुधु समाईऐ इकि चुल्है रहन्हि चड़े॥
इकि निहाली पै सवन्हि इकि उपरि रहनि खड़े।
तिना सवारे नानका जिन कउ नदरि करे॥ ४४॥

सलोकु —(प्रभु ने) (जीवों के शरीर रूपी) पात्र को स्वयं ही बनाया है और स्वयं ही उन्हें भरता है (तात्पर्य यह है कि उनके भाग्य में सुख-दुःख भी वही लिखता है)। किसी (पात्र में) दूध भरा रहता है और कोई चूल्हे पर चढ़ रहते हैं (तात्पर्य यह कि कुछ जीवों के भाग्य में सदैव सुख और सुन्दर पदार्थ लिखे रहते हैं और कुछ जीव निरन्तर कष्ट ही सहन करते हैं)। कुछ (भाग्यशाली व्यक्ति) रजाइयों (तोशकों) पर सोते हैं और कुछ (बेचारे) (उनकी रक्षा और सेवा के लिए हाथ बाँधे 'जी हुजूर' कहते हुए) खड़े रहते हैं। पर हे नानक जिनके ऊपर (प्रभु) कृपादृष्टि करता है, उन्हें सँवार देता है (भाव यह कि इस संसार-सागर से उनका बेड़ा पार कर देता है) ॥४४॥

अंदरहु झूठे पैज बाहरि दुनीआ अंदरि फैलु ।
अठसठि तीरथ जे नावहि उतरै उतरै नाही मैलु ॥
जिन्ह पटु अंदरि बाहरि गुदड़ु ते भले संसारि ।
तिन नेहु लगा रब सेती देखन्हे वीचारि ॥
रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ।
परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह ॥
दरि वाट उपरि खरचु मंगा जबै देइ त खाहि ॥
दीबानु एको कलम एका हमा तुम्हा मेलु ।
दरि लए लेखा पीड़ि छुटै नानका जिउ तेलु ॥ ४३ ॥

सलोकु हे नानक यदि (मनुष्य) रूखा (अप्रिय कड़वा) वचन बोलता रहे, तो उसके तन और मन (दोनों ही) रूखे हो जाते हैं। अप्रिय बोलनेवाला (संसार में) अप्रियवाणी (रूखा) ही प्रसिद्ध हो जाता है और नाम भी उसे अप्रिय (रूखे) वचनों से याद करते हैं। रूखा व्यक्ति (परमात्मा के) दरबार से अस्वीकृत कर दिया जाता है और उसके मुँह पर थूक पड़ता है (तात्पर्य यह कि वह धिक्कारा जाता है)। (प्रेमविहीन) रूखे व्यक्ति को मूर्ख कहना चाहिए (प्रेमविहीन) रूखे व्यक्ति को जूतों की सजा मिलती है (तात्पर्य यह कि प्रत्येक स्थान में सदैव उसका तिरस्कार किया जाता है) ।।४२।।

यदि (मनुष्य) मन में झूठे हैं पर बाहर से झूठी प्रतिष्ठा बना कर बैठे हैं और (सारी) दुनिया में दिखावा बना रखते हैं तो वे चाहे अड़सठ तीर्थों में ही (जा कर) स्नान करें, उनके मन के कपट की मैल कभी नहीं उतरती।

जिन मनुष्यों के अंतर्गत (कोमलता और प्रेम रूपी) पट है पर बाहर (सरलता और सादगी रूपी) गुदड़ है जगत् में वे बड़े ही भले हैं। उनका परमात्मा से (निरन्तर) प्रेम लगा हुआ है और वे (परमात्मा के) दर्शन करने के विचार में (सदैव निमग्न रहते हैं)। (परमात्मा के) प्रेम में (वे) (कभी) हँसते हैं, (कभी) रोते हैं और (कभी) चुप हो जाते हैं, (मौन भाव से स्थित हो जाते हैं)। सच्चे स्वामी (प्रभु) के बिना उन्हें किसी अन्य की परवाह नहीं होती। (जीवन रूपी) मार्ग में (चलते हुए) (वे लोग) (प्रभु के) दरवाजे में (नाम रूपी) रसद माँगते हैं, जब वह (प्रभु) देता है, तभी वे खाते हैं।

हे नानक, (ऐसे भक्तों को यह निश्चय है कि) एक (प्रभु) दरबार लगा कर (फैसला करनेवाला है) (वही) कलम से (लेखा लिखने वाला है) (और सारे भले बुरे लोगों का) मेल भी (उसी के दरबार पर होता है)। (प्रभु सब के किए हुए कर्मों का) लेखा माँगता है और बुरे मनुष्यों को ऐसे पेरता है जैसे तेल ।।४३।।

पउड़ी आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ ।
देखहि कीता आपणा धरि कची पकी सारीऐ ॥
जो आइआ सो चलसी सभु कोई आई वारीऐ ।
जिसके जीअ पराण हहि किउ साहिबु मनहु विसारीऐ ॥
आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ ॥ १८ ॥

(हे मनुष्यो) (प्रभु) समीप ही है (उसे) दूर न समझो वह नित्य (सब की) खोज खबर लेता है और सँभालता है। (अतएव) नानक (इस बात को) सच्चे (रूप में) कहता है कि (जो कुछ सुख दुःख उसके हुक्म के अनुसार मिलता है) वही हमें खाना है, (अर्थात् दुःख सुख को समान भाव से सहन करना ही हमारा भोजन हो) ॥८॥१॥

[२]

नाभि कमल ते ब्रहमा उपजे बेद पड़हि मुखि कंठि सवारि।
ता को अंतु न जाई लखणा आवत जावत रहै गुबारि ॥१॥
प्रीतम किउ बिसरहि मेरे प्राणअधार।
जा की भगति करहि जन पूरे मुनि जन सेवहि गुर वीचारि ॥१॥रहाउ॥
रवि ससि दीपक जा के त्रिभवणि एका जोति मुरारि।
गुरमुखि होइ सु अहिनिसि निरमलु मनमुखि रैणि अंधारि ॥२॥
सिध समाधि करहि नित झगरा दुहु लोचन किआ हेरै।
अंतरि जोति सबदु धुनि जागै सतिगुरु झगरु निबेरै ॥३॥
सुरि नर नाथ बेअंत अजोनी साचै महलि अपारा।
नानक सहजि मिले जगजीवन नदरि करहु निसतारा ॥४॥२॥

(विष्णु के) नाभि कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए और मुँह से कण्ठ संवार कर वेद उच्चारण करने लगे। (वे ब्रह्मा) (उस प्रभु) का अंत न जान सके और अंधकार में (इधर-उधर) आने-जाने लगे (भटकने लगे)। [नाभि-कमल से उत्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उत्पत्ति-स्थल को जानना चाहा। वे फिर से कमल-नाल में प्रविष्ट हो गए। युग-युगान्तर बीत गए, किन्तु वे अपना उत्पत्ति स्थान न जान सके। अन्त में उन्होंने परब्रह्म की स्तुति की और अपनी अज्ञानता की क्षमा-याचना की] ॥१॥

(हे मेरे मन) मेरे प्राणाधार उस प्रियतम को (तुम) क्यों विस्मृत होते हो, जिसकी भक्ति पूर्ण पुरुष करते हैं और गुरु के विचार द्वारा मुनि जन जिसकी आराधना करते हैं ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे मेरे मन, मेरे प्राणाधार उस प्रियतम को तुम क्यों विस्मृत होते हो) जिसके दीपक सूर्य और चन्द्रमा हैं और जिस मुरारी (परब्रह्म) की एक ज्योति त्रिभुवन में व्याप्त है ? (जो) गुरमुख (गुरु के उपदेश के अनुसार चलने वाला) होता है वह अहर्निश निर्मल रहता है किन्तु मनमुखों के लिए (सदैव) रात्रि का घनघोर अंधकार (अज्ञान) रहता है ॥२॥

सिद्धगण समाधि लगाते हैं और निरन्तर विवाद (तर्क वितर्क) करते हैं (किन्तु उस परब्रह्म को) क्या वे (अपने) दोनों नेत्रों से देख सकते हैं ? (तात्पर्य यह कि क्या उस नेत्रों का विषय हो सकता है) ? (जब) अन्तःकरण में (परमात्मा के प्रेम एवं विश्वास) की ज्योति हो (नाम स्मरण की निरन्तर) शब्द-ध्वनि जगती रहे, तभी सद्गुरु (द्वैत भाव का उत्पन्न (झगड़ा) दूर करता है ॥३॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु गूजरी, महला १, चउपदे, घरु १,

सवद

[१]

तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ ।
करणी कुंगू जे रलै घट अंतरि पूजा होइ ॥१॥
पूजा कीचै नामु धिआईऐ बिनु नावै पूज न होइ ॥१॥रहाउ॥
बाहरि देव पखालीअहि जे मनु धोवै कोइ ।
जूठि लहै जीउ माजीऐ मोख पइआणा होइ ॥२॥
पसू मिलहि चंगिआईआ खड़ु खावहि अंम्रितु देहि ।
नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवण करम करेहि ॥३॥
नेड़ा है दूरि न जाणिअहु नित सारे संम्हाले ।
जो देवै सो खावणा कहु नानक साचा है ॥४॥१॥

(हे प्रभु) यदि तेरे नाम को चंदन की लकड़ी का टुकड़ा बनाया जाय और मन उरसा [जिस पत्थर पर चंदन घिसा जाता है] हो और यदि उसमें (शुभ) कर्म (रूपी) कुमकुम (केसर) मिला दिया जाय तो घट ही के अन्तर्गत पूजा होने लगती है ॥ १ ॥

नाम का ध्यान करना ही वास्तविक पूजा है, बिना नाम के पूजा नहीं होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(लोग) बाहर ठाकुर को धोते हैं (स्नान कराते हैं) पर यदि कोई व्यक्ति मन को (ठाकुर के समान) धोये तो (मन की) जूठ (मैल) नष्ट हो जाय, मन मज्जित हो जाय (पवित्र हो जाय) और मोक्ष (की ओर) प्रयाण हो जाय ॥२॥

पशुओं में भी अच्छाइयाँ मिलती हैं वे घास (तृण) खाते हैं किन्तु अमृत रूपी (दूध) देते हैं, (अतएव पशु अति प्रशंसनीय हैं)। नाम के बिना (मनुष्य का) जीवन और (उसका) कर्म करना धिक्कारने योग्य है ॥३॥

(इन तीन गुणों को छोड़कर) सहजावस्था (चौथी अवस्था) में आते हैं हे नानक परब्रह्म की लिव (एकनिष्ठ ध्यान में) वे ही लीन रहते हैं। ["ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ —श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १५ श्लोक १ तथा ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातन —कठोपनिषद् अध्याय २, वल्ली ६ मंत्र १] ॥२॥

पारिजात वृक्ष (सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला स्वर्ग का वृक्ष विशेष) (परमात्मा) मेरे घर के आँगन में है। तत्त्व (ब्रह्म तत्त्व) उसके पत्ते पुष्प और डालियाँ हैं। स्वयंभू, निरंजन (माया से रहित परमात्मा) की ज्योति सर्वत्र है।, (वही सब कुछ है इसी की धारणा करो) (अन्य) बहुत से प्रपंचों को छोड़ दो ॥३॥

नानक विनती करता है हे निद्रा ग्रहण करनेवाला (कुम्भकर्ण) सुनो, सारे माया के प्रपंचों को त्याग दो। मन में विचार कर एक (परमात्मा) में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग गया (जिससे) न फिर जन्म होता है, और न काल (खाता) है ॥ ४ ॥

वही वैद्य है, जो रोगों का (ठीक-ठीक) समझता हो (इसी प्रकार) वही गुरु है और वही उसका सिखाया हुआ शिष्य है, (जो) (रोगी) संसार को) समझते हों (अर्थात् गलती करनेवाले लोगों की गलती समझते हो)। (वह परब्रह्म में लीन है, अतः) उसके निमित्त (कोई) काम या धंधा नहीं है, (वह सांसारिक) प्रपंचों में (फँसा हुआ) गृहस्थी नहीं है (वह निर्लेप) योगी है ॥ ५ ॥

(ऐसे योगी ने) काम क्रोध अहंकार, लोभ मोह तृष्णा और माया को त्याग दिया है (उसने) मन में (परम) तत्त्व अव्यक्त (प्रभु) का ध्यान किया है और गुरु की कृपा से (उस प्रभु को) पा लिया है ॥ ६ ॥

ज्ञान और ध्यान को (परमात्मा का) दान ही जानो (समझो) (जिसे यह दान मिल जाता है उसके (कामादिक विकार रूपी) दूत श्वेत वर्ण के हो जाते हैं, (अर्थात् डर कर वे सफेद रंग के हो जाते हैं उनकी सारी नष्ट हो जाती है)। (उसने) (परब्रह्म रूपी) कमल के (प्रेम रूपी) मधु का रसास्वादन किया है (वह ब्रह्मज्ञान में निरन्तर) जगता रहता है (और अज्ञान में कभी नहीं) सोता ॥ ७ ॥

(वह ब्रह्म कमल) बहुत गंभीर है (उसके) पत्ते पाताल हैं, वह सबसे (सारी सृष्टि से) जुड़ा हुआ है। गुरु के उपदेश से मैं फिर गर्भ में (नहीं पड़ूँगा), (गुरु ने) (माया का) विष त्याग कर, (मुझे) (नाम रूपी) अमृत पिला दिया है ॥ ८ ॥ ॥ १ ॥

[२]

कवन कवन जाचहि प्रभ दाते ताके अंत न परहि सुमार ।
जैसी भूख होइ अभ अंतरि तू समरथ सचु देवणहार ॥१॥
ऐ जी जपु तपु संजमु सचु अधार ।
हरि हरि नामु देहि सुखु पाईऐ तेरी भगति भरे भंडार ॥१॥रहाउ॥
सुन समाधि रहहि लिव लागे एका एकी सबदु बीचार ।
जलु थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार ॥२॥

हे देवताओं तथा मनुष्यों के स्वामी, अनन्त अयोनि, मुझ नानक को तेरे बच्चे और अपार महल में सहजावस्था द्वारा अमृत का जीवन (हरी) मिल जाय, जिससे तू अपनी कृपा दृष्टि द्वारा (मुझे) तार दे (मेरा उद्धार कर दे ॥७॥२॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु गूजरी, महला १, घरु १ ॥

असटपदीआ [१]

एक नगरी पंच चोर बसीअले बरजत चोरी धावै ।
त्रिहदस माल रखै जो नानक मोख मुकति सो पावै ॥१॥
चेतहु बासदेउ बनवाली । रामु रिदै जपमाली ॥१॥रहाउ॥

उरध मूल जिसु साख तलाहा चारि बेद जितु लागे ॥
सहज भाइ जाइ ते नानक पारब्रहम लिव जागे ॥२॥

पारजातु घरि आगनि मेरे पुहप पत्र ततु डाला ।
सरब जोति निरंजन संभू छोडहु बहुतु जंजाला ॥३॥
सुणि सिखवंते नानकु बिनवै छोडहु माइआ जाला ।
मनि बीचारि एक लिव लागी पुनरपि जनमु न काला ॥४॥
सो गुरू सो सिखु कथीअले सो वैदु जि जाणै रोगी ।
तिसु कारणि कमु न धंधा नाही धंधै गिरही जोगी ॥५॥

कामु क्रोधु अहंकारु तजीअले लोभु मोहु बिखु माइआ ।
मनि ततु अविगतु धिआइआ गुर परसादी पाइआ ॥६॥

गिआनु धिआनु सभ दाति कथीअले सेत बरन सभि दूता ।
ब्रहम कमल मधु तासु रसादं जागत नाही सूता ॥७॥

महा गंभीर पत्र पाताला नानक सरब जुआइआ ।
उपदेस गुरू मम पुनहि न गरभं बिखु तजि अम्रितु पीआइआ ॥८॥१॥

एक (शरीर रूपी) नगरी है, (जिसमें) पाँच चोर (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) बसते हैं। (ये पाँचों) बारबार के रोकने पर भी चोरी करने के लिए दौड़ पड़ते हैं, (अर्थात विषयों में प्रवृत्त कराते हैं)। हे नानक, जो व्यक्ति (तीन गुणों, दस विषयों—पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों के।)—इन तेरह से (अपना आध्यात्मिक) धन बचा कर रखता, वही मुक्ति पाता है ॥१॥

(हे मन), वासुदेव वनमाली (परमात्मा) का स्मरण कर, राम को हृदय में रखना ही जप की माला है ॥१॥ रहाउ ॥

(जिस परब्रह्म परमात्मा का) मूल ऊपर है, शाखा नीचे है, चार वेद जिसके (पत्ते) लगे हैं [भाव यह है कि वृक्ष रूपी जगत की माया जड़ है और तीनों गुण—सत्त्व रजस् तमस् शाखाएँ हैं। इन तीन गुणों का विस्तार वेद करते हैं। 'त्रैगुण्य विषया वेदा'—श्रीमद्भगवद्गीता

(इन तीन गुणों को छोड़कर) सहजावस्था (चौथी अवस्था) में जाग रहे हैं हे नानक परब्रह्म की लिव (एकनिष्ठ ध्यान में) वे ही लाभ जानते हैं । ["ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥"—श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १५ श्लोक १ तथा 'ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः' —कठोपनिषद्, अध्याय २ वल्ली ६ मंत्र १] ॥२॥

पारिजात वृक्ष (सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, स्वर्ग का वृक्ष विशेष) (परमात्मा) मेरे घर के आँगन में है । तत्त्व (मूल तत्त्व) उसके पत्ते पुष्प और डालियाँ हैं । स्वयंभू, निरंजन (माया से रहित परमात्मा) की ज्योति सबमें है । (वही सब कुछ है इसी को धारणा करो) (अन्य) मन से प्रपंचों को छोड़ दो ॥३॥

नानक विनती करता है, हे शिक्षा ग्रहण करनेवालो (मुमुक्षुओ) सुनो, सारे माया के प्रपंचों को त्याग दो । मन से विचार कर एक (परमात्मा) में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग गया (जिससे) न फिर जन्म होता है, और न काल (मृत्यु) है ॥ ४ ॥

वही गुरु है, जो ऐसा तत्त्व (आत्मतत्त्व) समझता हो, (उसी प्रकार) वही गुरु है और वही उसका सिखाया हुआ शिष्य है, (जो) (रोगी) संसार को) समझते हो (अर्थात् गलती करनेवाले लोगों की गलती समझते हो) । (वह परब्रह्म में लीन है, अतः) उसके निमित्त (कोई) काम या धंधा नहीं है, (वह सांसारिक) प्रपंचों में (फँसा हुआ) गृहस्थी नहीं है (वह निर्लेप) योगी है ॥ ५ ॥

(ऐसे योगी ने) काम क्रोध अहंकार, लोभ मोह, तृष्णा और माया को त्याग दिया है (उसने) मन में (परम) तत्त्व अलख (प्रभु) का ध्यान किया है और गुरु की कृपा से (उस प्रभु को) पा लिया है ॥ ६ ॥

ज्ञान और ध्यान को (परमात्मा का) दान ही जानो (समझो) (जिसे यह दान मिल जाता है उसके (कामादिक विकार रूपी) भूत श्वेत वर्ण के हो जाते हैं (अर्थात् डर कर वे सफेद रंग के हो जाते हैं, उनकी स्याही नष्ट हो जाती है) । (उसने) (परब्रह्म रूपी) कमल के (प्रेम रूपी) मधु का रसास्वादन किया है, (वह अज्ञान से निरन्तर) जगता रहता है (और अज्ञान में कभी नहीं) सोता ॥ ७ ॥

(वह ब्रह्म कमल) बहुत गंभीर है (उसके) पत्ते पाताल हैं, वह कमल (सारी सृष्टि में) जुड़ा हुआ है । गुरु के उपदेश से मैं फिर गर्भ में (नहीं पड़ूँगा) (गुरु ने) (माया का) विष त्याग कर (मुझे) (नाम रूपी) अमृत पिला दिया है ॥ ८ ॥ ॥ १ ॥

[२]

कवन कवन जाचहि प्रभ दाते ताके अंत न परहि सुमार ।
जैसी भूख होइ अभ अंतरि तू समरथु सचु देवणहार ॥१॥

ऐजी जपु तपु संजमु सचु अधार ।
हरि हरि नामु देहि सुखु पाइऐ तेरी भगति भरे भंडार ॥१॥रहाउ॥
सुंन समाधि रहहि लिव लागे एका एकी सबदु बीचार ।
जलु थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार ॥२॥

ना तदि माइआ मगनु न छाइआ ना सूरज चंद न जोति अपार ।
सरब द्रिसटि लोचन अभ अंतरि एका नदरि सु त्रिभवण सार ॥३॥

पवणु पाणी अगनि तिनि कीआ ब्रहमा बिसनु महेस अकार ।
सरबे जाचिक तूं प्रभु दाता दाति करे अपुनै बीचार ॥४॥

कोटि तेतीस जाचहि प्रभ नाइक देदे तोटि नाही भंडार ।
ऊंधै भांडै कछु न समावै सीधै अंम्रितु परै निहार ॥५॥

सिध समाधी अंतरि जाचहि रिधि सिधि जाचि करहि जैकार ।
जैसी पिआस होइ मन अंतरि तैसो जलु देवहि परकार ॥६॥

बडे भाग गुरु सेवहि अपुना भेदु नाही गुरदेव मुरार ।
ता कउ कालु नाही जमु जोहै बूझहि अंतरि सबदु बीचार ॥७॥

अब तब अवरु न मागउ हरि पहि नामु निरंजन दीजै पिआरि ।
नानक चात्रिकु अंम्रित जलु मागै हरि जसु दीजै किरपा धारि ॥८॥२॥

(दाता) प्रभु से कौन-कौन (लोग) (कितना) माँगते हैं, (उसका वर्णन नहीं किया जा सकता); (उसके) दानों की गणना का अन्त नहीं पाया जा सकता। (हे प्रभु) तू समर्थ है, (जिसके) अन्तःकरण में जैसी भूख होती (तू) सच्चे रूप से (उसे) (उसी प्रकार) देता है ॥ १ ॥

ऐ जी (प्रभु) जप, तप संयम तथा सत्य (आदि साधक के) आधार हैं। (हे हरी) तेरा भाण्डार भक्ति से भरा हुआ है, (मुझे) 'हरी हरी' —यही नाम (दान में) दो (जिससे सच्चे) सुख की प्राप्ति हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(कुछ साधनावासी) शून्य समाधि (निर्विकल्प समाधि अफुर समाधि) में अपना एकनिष्ठ ध्यान (लिव) लगाए रहते हैं (और केवल) एकमात्र नाम को ही (गुरु के) शब्द (के माध्यम) से विचारते रहते हैं। (उस अफुर समाधि की अवस्था में) जल, थल धरती आकाश (कुछ भी) नहीं होते (वहाँ) केवल कर्तार स्वयं ही होता है ॥ २ ॥

(उस अवस्था में) माया की निमग्नता नहीं होती न (अज्ञान का) अँधेरा न सूर्य न चन्द्रमा और न अपार ज्योति ही होती है। सब को देखनेवाली आँखा (सब वस्तुओं) का ज्ञान अन्तःकरण में हो जाता है और एक ही दृष्टि से तीनों लोकों की सूझ हो जाती है ॥ ३ ॥

उसी (प्रभु ने) पवन जल अग्नि ब्रह्मा विष्णु और महेश के आकार रचे हैं। (हे प्रभु) तू अकेला ही दाता है, और सब तेरे याचक हैं; तू अपने विचार के अनुसार (सब को) दान देता है ॥ ४ ॥

तेंतीस करोड़ (देवता) प्रभु, नायक (स्वामी) से माँगते हैं, देने पर उसके भाण्डार में कमी नहीं आती। (किन्तु) उल्टे पात्र में कुछ नहीं समा सकता सीधे (पात्र) में अमृत पड़ता है, (यह बात तू विचार पूर्वक) देख ले ॥ ५ ॥

सिद्धगण समाधि के अन्तर्गत याचना करते हैं (वे सब) ऋद्धियाँ सिद्धियाँ माँग कर (प्रभु का) जयजयकार करते हैं। (हे हरी) जिस साधक के मन में जैसी प्यास (चाह) होती है, (तू उसे) उसी प्रकार का जल देता है (इच्छा पूरी करता है) ॥ ६ ॥

बड़े भाग्य से ही (अपने) गुरु की सेवा का अवसर मिलता है, गुरुदेव और मुरारी (परमात्मा में) कोई अन्तर नहीं है। जो (अपने) मन के अन्तर्गत (गुरु के) शब्द को विचार करके समझते हैं उन्हें यम नष्ट करने की दृष्टि से नहीं देखता ॥ ७ ॥

(मैं) किसी समय भी परमात्मा के (अतिरिक्त) अन्य (व्यक्ति से) कुछ नहीं माँगता मुझे प्रेमपूर्वक नाम-निरंजन की ही (भिक्षा) दो। नानक चातक तो तुम्हारे (नाम रूपी) अमृत जल को माँगता है, (मुझे) कृपा करके (अपने) यश के गुण गान करने का (वरदान) दो ॥८॥२॥

[३]

ऐ जी जनमि मरै आवै फुनि जावै बिनु गुर गति नही काई ।
गुरमुखि प्राणी नामे राते नामे गति पति पाई ॥ १ ॥
भाई रे राम नामि चितु लाई ।
गुर परसादी हरि प्रभ जाचे ऐसी नाम बडाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥
ऐ जी बहुते भेख करहि भिखिआ कउ केते उदरु भरन कै ताई ।
बिनु हरि भगति नाही सुखु प्रानी बिनु गुर गरबु न जाई ॥ २ ॥
ऐ जी कालु सदा सिर ऊपरि ठाढे जनमि जनमि वैराई ।
साचै सबदि रते से बाचे सतिगुर बूझ बुझाई ॥ ३ ॥
गुर सरणाई जोहि न साकै दूतु न सकै संताई ।
अविगत नाथ निरंजनि राते निरभउ सिउ लिव लाई ॥ ४ ॥
ऐ जीउ नामु दिड़हु नामे लिव लावहु सतिगुर टेक टिकाई ।
जो तिसु भावै सोई करसी किरतु न मेटिआ जाई ॥ ५ ॥
ऐ जी भागि परे गुर सरणि तुमारी मै अवर न दूजी भाई ।
अब तब एको एकु पुकारउ आदि जुगादि सखाई ॥ ६ ॥
ऐ जी राखहु पैज नाम अपुने की तुझ ही सिउ बनि आई ।
करि किरपा गुर दरसु दिखावहु हउमै सबदि जलाई ॥ ७ ॥
ऐ जी किआ मागउ किछु रहै न दीसै इसु जग महि आइआ जाई ।
नानक नामु पदारथु दीजै हिरदै कंठि बणाई ॥ ८ ॥ ३ ॥

हे जी (प्राणी) जन्म धारण करके मरता है (इस प्रकार) बारम्बार आता जाता रहता है बिना गुरु के (उसकी) कोई भी गति नहीं होती। गुरु की शिक्षा द्वारा प्राणी नाम में अनुरक्त होते हैं और नाम से ही मुक्ति तथा प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ १ ॥

हे भाई, राम नाम में ही चित्त लगाना चाहिए। गुरु की कृपा से प्रभु हरी से याचना करनी चाहिए नाम की (बहुत बड़ी) महत्ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे जी (प्रभु) (मनुष्य) भिक्षा-प्राप्ति के लिए तथा उदर भरने के लिए कितने ही वेश बनाते हैं। हे प्राणी बिना हरि भक्ति के सुख नहीं (प्राप्त हो सकता है) और बिना गुरु के अहंकार नहीं जाता ॥ २ ॥

ऐ जी, काल सदैव सिर के ऊपर खड़ा है इससे (प्राणियों को) जन्म जन्मान्तरों की शत्रुता है। जिन्हें सद्गुरु ने ज्ञान दे दिया है और (जो शिष्य) (उसके) शब्द में अनुरक्त हैं वे ही (इस संसार के दुःखों से) बचे हैं ॥ ३ ॥

गुरु की शरण में आने से (काल) देख भी नहीं सकता (और कामादिक) दूत दुःख नहीं दे सकते। अगम्य, निरंजन (माया रहित) स्वामी में (मैं) अनुरक्त हो गया हूँ और निर्भय (परमात्मा) से मिल गई है ॥ ४ ॥

ऐ जी, नाम ही को दृढ़ करो, नाम में लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाओ सद्गुरु ने (नाम का) आसरा दे दिया है। जो (उस प्रभु को) अच्छा लगता है, वही करेगा (मनुष्य के पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों के) संस्कार (कीरति-कर्म) नहीं मेटे जा सकते ॥ ५ ॥

ऐ जी गुरु में लग कर तेरी शरण पड़ गया हूँ मुझमें (तुझे छोड़कर) और दूसरा भाव नहीं है। (मैं) हर समय (उस) एकमात्र एक (प्रभु को) पुकारता हूँ जो आदि से युग-युगान्तरों से (मेरा) सहायक रहा है ॥ ६ ॥

ऐ जी, (प्रभु) अपने नाम की लज्जा रक्खो (इस संसार में सभी जीवों का) तुम्हीं से बनेगा। (हे प्रभु), कृपा करके (उस) गुरु का दर्शन कराओ (जो) अहंकार को (अपने) शब्द से जला देता है ॥ ७ ॥

ऐ जी (प्रभु) (मैं) (तुमसे) क्या माँगूँ? इस जगत् में (कोई वस्तु) स्थिर रहने वाली नहीं दिखाई पड़ती है, (सभी वस्तुएं) आने-जाने वाली हैं (अर्थात् क्षणभंगुर हैं)। (अतएव हे हरी) नानक को नाम रूपी पदार्थ ही (दान में) दो जिसे मैं अपने हृदय और कंठ में सँवार कर रक्खूँ ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

ऐ जी ना हम उतम नीच न मधिम हरि सरणागति हरि के लोग।
नाम रते केवल बैरागी सोग बिजोग बिसरजित रोग ॥ १ ॥

भाई रे गुर किरपा ते भगति ठाकुर की।
सतिगुर वाकि हिरदै हरि निरमलु ना जम काणि न जम की बाकी ॥
॥ १ ॥ रहाउ ॥

हरि गुण रसन रवहि प्रभ संगे जो तिसु भावै सहजि हरी।
बिनु हरि नाम ब्रिथा जगि जीवणु हरि बिनु निहफल मेक घरी ॥ २ ॥

ऐ जी खोटे ठउर नाही घरि बाहरि निंदक गति नही काई ॥
रोसु करै प्रभु बखस न मेटै नित नित चड़ै सवाई ॥ ३ ॥

ऐ जी गुर की दाति न मेटै कोई मेरै ठाकुरि आपि दिवाई।
निंदक नर काले मुख निंदा जिन्ह गुर की दाति न भाई ॥ ४ ॥

ऐ जी सरणि परे प्रभु बखसि मिलावै बिलम न अधूआ राई।
आनद मूलु नाथु सिरि नाथा सतिगुरु मेलि मिलाई ॥ ५ ॥

ऐ जी सदा दइआलु दइआ करि रविआ गुरमति भ्रमनि चुकाई।
पारसु भेटि कंचनु धातु होई सतसंगति की वडिआई ॥ ६ ॥

हरि जसु निरमलु मनु इसनानी मजनु सतिगुरु भाई ।
पुनरपि जनमु नाही जन संगति जोती जोति मिलाई ॥ ७ ॥

तू वड पुरखु अगंम तरोवरु हम पंखी तुझ माही ।
नानक नामु निरंजन दीजै जुगि जुगि सबदि सलाही ॥ ८ ॥ ४ ॥

ए जी न हम मैं उत्तम हूँ, न मध्यम हूँ और न नीच हूँ, मैं हरि की शरण में हूँ और हरी का ही जन हूँ। (जो व्यक्ति) नाम में रँगे हुए हैं (वे ही) पवित्र (निष्कलंक) वैरागी हैं, (क्योंकि उन्होंने) घोर वियोग और रोग विसर्जन कर दिया है (त्याग दिया है) ॥ १ ॥

अरे भाई, गुरु की कृपा से ठाकुर (परमात्मा) की भक्ति (प्राप्त होती है)। सद्गुरु के वचन (उपदेश) द्वारा (यदि) पवित्र परमात्मा हृदय में बस जाय, तो धर्मराज की मुहताजी नहीं रहती (और न उसका कुछ लेना या देना ही) बाकी रहता है, (क्योंकि परमात्मा के स्मरण से सम्पूर्ण कर्म दग्ध हो जाते हैं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हरि के गुणों में ही रमना रमाता रहता हूँ, (इस प्रकार मैं निरन्तर) प्रभु के संग में (रहता हूँ)। जो परमात्मा को अच्छा लगता है, उसे हरि-इच्छा समझ कर (ग्रहण करता हूँ)। बिना हरिनाम के जगत् में जीवन (व्यतीत करना) व्यर्थ है, हरि-(स्मरण) के बिना एक घड़ी (भी बिताना) (जन्म को) निष्फल करता है ॥ २ ॥

ऐ जी, खोटे (व्यक्ति) को न घर में ठौर मिलता है और न बाहर। निन्दक (मनुष्य को) कोई भी (शुभ) गति नहीं होती। (खोटों और निन्दकों के निन्दा करने पर भी) प्रभु (अपने भक्तों के ऊपर) कृपा करके (अपने) दानों को बन्द नहीं कर देता, बल्कि नित्य निरन्तर सवाया (और अधिक) देता रहता है ॥ ३ ॥

ऐ जी, गुरु की बख्शिशों को कोई भी नहीं मेट सकता; मेरा ठाकुर (परमात्मा) (गुरु के माध्यम से) स्वयं बख्शता है। जिन (व्यक्तियों) को गुरु के दान अच्छे नहीं लगते, ऐसे निन्दक मनुष्यों के *निन्दा से मुँह काले (भ्रष्ट) होते हैं, (और भक्त का कुछ भी नहीं बिगड़ता)* ॥ ४ ॥

ऐ जी, शरण में आने से प्रभु कृपा करके ध्यान से मिला लेता है; उसमें वह थोड़ी रत्ती भर (रंच मात्र, तिल मात्र) भी विलम्ब नहीं लगाता। आनन्द का मूल, आपा का भी आप (हरी) सद्गुरु के मिलने पर, प्राप्त हो गया ॥ ५ ॥

ऐ जी, कृपालु दयालु (परमात्मा अपना प्रताप) दया करके (हृदय में) स्मरण कराते रहता और गुरु द्वारा प्रदत्त बुद्धि से (जन्म-मरण का) दौड़ना समाप्त हो गया। (गुरु रूपी) पारस पत्थर का स्पर्श कर (लोहा रूपी) धातु (नीच व्यक्ति भी) सोना (सुन्दर व्यक्ति) बन गया (यह) सत्संगति की महत्ता है ॥ ६ ॥

हरि का नाम निर्मल जल है, मन (उसमें) स्नान करनेवाला है और (हे) भाई, सद्गुरु स्नान कराने वाला है। (हरी के) जनों (भक्तों) को सत्संग करके फिर जन्म नहीं (धारण करना पड़ता)। (हरी की) ज्योति में (हमारी) ज्योति (आत्मा) मिल जाती है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु) तू महान् पुरुष है, अगम तरुवर (वृक्ष) है, मैं तुझमें से एक पक्षी (के समान स्थित) हूँ और तेरे ही सहारे हूँ। नानक कहता है (कि हे हरी मुझे) नाम-निरंजन (की भीख) दो, ताकि युग-युगान्तरों तक शब्द द्वारा तेरा गुणगान करूँ ॥ ८ ॥ ४ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ४ ॥

[५]

भगति प्रेम आराधितं सचु पिआस परम हितं ।
बिललाप बिलल बिनंतीआ सुख भाइ चित हितं ॥ १ ॥
जपि मन नामु हरि सरणी ।
संसार सागर तारि तारण रम नाम करि करणी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
ए मन मिरत सुभ चिंतं गुर सबदि हरि रमणं ।
मति ततु गिआनं कलिआण निधान हरि नाम मनि रमणं ॥ २ ॥
चल चित वित भ्रमा भ्रमं जगु मोह मगन हितं ।
थिरु नाम भगति दिड़ं मती गुर वाकि सबद रतं ॥ ३ ॥
भरमाति भरमु न चूकई जगु जनमि बिआधि खपं ।
असथानु हरि निहकेवलं सतिमती नाम तपं ॥ ४ ॥
इहु जगु मोह हेत बिआपितं दुखु अधिक जनम मरणं ।
भजु सरणि सतिगुर ऊबरहि हरि नामु रिद रमणं ॥ ५ ॥
गुरमति निहचल मनि मनु मनं सहज बीचारं ।
सो मनु निरमलु जितु साचु अंतरि गिआन रतनु सारं ॥ ६ ॥
भै भाइ भगति तरु भवजलु मना चितु लाइ हरि चरणी ।
हरि नामु हिरदै पवितु पावनु इहु सरीरु तउ सरणी ॥ ७ ॥
लब लोभ लहरि निवारणं हरिनाम रासि मनं ।
मनु मारि तुही निरंजना कहु नानका सरणं ॥ ८ ॥ १ ॥ ५ ॥

विशेष —निम्नलिखित अष्टपदी काशी के पंडित रामचन्द्र के प्रति कही गयी है ।

अर्थ —(जो मनुष्य) प्रेमा भक्ति से सच्चे (हरी) की आराधना करते हैं और अत्यंत प्रेम के प्यासे हैं वे विलाप में युक्त विनती करते हैं, (इसके फलस्वरूप) प्रेमभाव के कारण (उनके चित्त में) (समस्त) सुख होते हैं ॥ १ ॥

(हे प्राणी), मन से (हरी का) नाम जपो और हरी की शरण में पड़ जाओ । संसार सागर से तार देनेवाला जहाज, राम-नाम की करणी करो । (तात्पर्य यह कि ऐसे शुभ कर्म करो जिससे राम-नाम की प्राप्ति हो । रामनाम की प्राप्ति से ही संसार-सागर तरा जाता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे मरणशील मन, गुरु के शब्द द्वारा पवित्र चित से हरि में रमण करो । (अथवा इसका अर्थ निम्नलिखित भी हो सकता है—हे मन, गुरु के उपदेश द्वारा यदि हरि को स्मरण करो तो मौत भी शुभ हो जाती है) । (एकाग्र) मन से हरिनाम में रमण करने से बुद्धि तत्व ज्ञान वाली (हो जाती है) और कल्याण का भाण्डार प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

इस संसार में चलायमान चित्त, वित्त (धन) (के पीछे) भटकता रहता है और (सांसारिक) मोह में निमग्न हो जाता है । किन्तु गुरु के वाक्य एवं शब्द में अनुरक्त यह बुद्धि

(इस बात में) दृढ़ हुई है कि (परमात्मा के) नाम की भक्ति ही स्थिर रहने वाली है ॥ ३ ॥

(सारा) जगत् जन्म-(-मरण) की व्याधि में लगा है और भटकता फिरता है (किन्तु यह भटकना) समाप्त नहीं होता। हरी का स्थान निर्मल (परम पवित्र) है (अतएव) उसके नाम का जप करना ही सच्ची मति (बुद्धि) है ॥ ४ ॥

इस जगत् में मोह का प्रेम व्याप्त है, (इसीलिए) इसे जन्म-मरण का महान् दुःख लगा हुआ है। (इस दुःख की निवृत्ति के लिए) भाग कर सद्गुरु की शरण में जा (और) हरि का नाम हृदय में बसाने से उबर जायगा ॥ ५ ॥

(यदि) गुरु की निर्मल मति मन में आ जाय तो मन ज्ञान के विचार को मान जाता है। वह मन पवित्र है जिसके अन्तर्गत सत्य और ज्ञान-रत्न का सार (भरा) है ॥ ६ ॥

हे मन, संसार-सागर को (हरी के) भय भक्ति और प्रेम से पार कर ले और हरि चरणों में चित लगा ले। हृदय में पवित्र और पावन हरी का नाम (रख कर, यह कह— 'हे हरी) यह शरीर तेरी शरण में पड़ा हुआ है।" ॥ ७ ॥

हरी के नाम की शक्ति मन में धारण करो (यह) लोभ और लालच की लहरों को दूर कर देती है। नानक कहते हैं, (कि हे शिष्य नाम धारण करने के पश्चात्) यह कहो "हे, निरंजन (हरी) तू ही मेरे मन को मार दे (वशीभूत कर दे)" (मैं तेरी) शरण में हूँ।" ॥ ८ ॥ १ ॥ ५ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु वडहंसु, महला १, घरु १

सबद

[१]

अमली अमलु न अंबड़ै मछी नीरु न होइ ।
जो रते सहि आपणै तिन भावै सभु कोइ ॥ १ ॥
हउ वारी वंञा खंनीऐ वंञा तउ साहिब के नावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥
साहिबु सफलिओ रुखड़ा अंमृतु जा का नाउ ।
जिन पीआ ते तृपत भए हउ तिन बलिहारै जाउ ॥ २ ॥
मै की नदरि न आवही वसहि हभीआं नालि ।
तिखा तिहाइआ किउ लहै जा सर भीतरि पालि ॥ ३ ॥
नानकु तेरा बाणीआ तू साहिबु मै रासि ।
मन ते धोखा ता लहै जा सिफति करी अरदासि ॥ ४ । १ ॥

जिस प्रकार अफीमची को अफीम का समानता (कोई वस्तु) नहीं कर सकती और मछली के लिए पानी (से प्रिय कोई वस्तु) नहीं होती उसी प्रकार जो अपने मालिक हरी के प्रेम में रंगे हुए हैं (उनकी दृष्टि में हरि की समानता कोई भी वस्तु नहीं कर सकती) चाहे उन्हें सारी वस्तु पड़ी मिलें ॥ १ ॥

गुरु साहब के नाम पर मैं वार जाऊं टुकड़े-टुकड़े होकर कुरबान हो जाऊं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू) मेरा साहब फलदार वृक्ष है और तेरा नाम 'अमृत' है। जिन्होंने (तेरे नाम रूपी अमृत को) पी लिया है व (पूर्ण रूप से) तृप्त हो गए हैं मैं उन पर न्यौछावर हो जाता हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु), (तू) तो सभी के साथ बसा हुआ है (किन्तु) मुझे (तू) दृष्टि में नहीं आ रहा है। जब तालाब के भीतर (भ्रम की) दीवार (खिंची) हो तो प्यासे (बेचारे) की प्यास किस प्रकार नष्ट हो? ॥ ३ ॥

हे नानक मैं तो तेरा ही बनिक (व्यापारी) हूँ तू (मेरा) साहब (प्रभु, स्वामी) है और (मेरी) राशि है मन से (माया का) भ्रम तभी दूर हो सकता है, जब (एकनिष्ठ होकर) (परमात्मा की) स्तुति एवं प्रार्थना की जाय ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

गुणवंती सहु राविआ निरगुणि कूके काइ ।
जे गुणवंती थी रहै ता भी सहु रावण जाइ ॥ १ ॥
मेरा कंतु रीसालू की धन अवरा रावे जी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
करणी कामण जे थीऐ जे मनु धागा होइ ।
माणकु मुलि न पाईऐ लीजै चिति परोइ ॥ २ ॥
राहु दसाईं न जुलां आखां अमड़ीआसु ।
तै सह नालि अकूअणा किउ थीवै घरवासु ॥ ३ ॥
नानक एको बाहरा दूजा नाही कोइ ।
तै सही लगी जे रहै भी सहु रावै सोइ ॥ ४ ॥ २ ॥

गुणवती (स्त्री) पति के साथ रमण करती है, गुण-विहीन (स्त्री) (उसके इस भाग्य पर ईर्ष्या के वशीभूत हो) क्या रोती है ? यदि (कोई गुणविहीन स्त्री) गुणवती हो जाय, तो वह भी पति को भोगने के लिए जा सकती है ॥ १ ॥

मेरा कंत (अत्यन्त) रसिक है, फिर स्त्री अन्य वस्तुओं की ओर क्यों आनन्द लेने जाती है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि शुभ कर्म जादू-टोने का माणिक्य (लाल रत्न) हो (और) मन (उसे गूँथने वाला) धागा हो, (तात्पर्य यह कि मन शुभ कर्मों को पिरोकर हरी में युक्त कर दे) तो इस माणिक्य के मूल्य को (कोई भी वस्तु) नहीं पा सकती इसे चित्त के धागे में पिरो लेना चाहिए ॥ २ ॥

(मैं) रास्ता तो पूछती हूँ (पर उस ओर) चलती नहीं (और) कहती (यह) हूँ (कि मैं) (परमात्मा के पास) पहुँच गई हूँ तुम प्रियतम से (मेरी) बोलचाल नहीं है (ऐसी परिस्थिति में मेरा) घर में निवास किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ३ ॥

हे नानक एक (परमात्मा) के बिना और कोई दूसरा नहीं है । तुम पति के साथ जो स्त्री जुड़ी रहे तो वह भी पति के साथ रमण कर सकती है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

मोरी रुणझुण लाइआ भैणे सावणु आइआ ।
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिनि लोभी लोभ लोभाइआ ॥
तेरे दरसन विटहु खंनीऐ वंञा तेरे नाम विटहु कुरबाणो ।
जा तू ता मै माणु कीआ है तुधु बिनु केहा मेरा माणो ॥
चूड़ा भंनु पलंघ सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा ।
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा ॥

ना मनीआरु न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा ।
जो सह कंठि न लगीआ जलनु सि बाहड़ीआहा ॥
सभि सहीआ सहु रावणि गईआ हउ दाधी कै दरि जावा ।
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सह एकि न भावा ॥
माठि गुंदाई पटीआ भरीऐ माग संधूरे ।
अगै गई न मंनीआ मरउ विसूरि विसूरे ॥
मै रोवंदी सभु जगु रुना रुंनड़े वणहु पंखेरू ।
इकु न रुना मेरे तन का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी ॥
सुपनै आइआ भी गइआ मै जलु भरिआ रोइ ।
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ ॥
आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ ॥
तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै ।
सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै ॥
किउ न मरीजै जीअड़ा न दीजै जा सहु भइआ विडाणा ॥ १ ॥ ३ ॥

मोर (कूकते हुए) मीठे-मीठे बोल बोलते रहे हैं, ए बहिना, सावन आ गया है। (हे हरी) तेरे कटाक्ष (कमन्द स्वरूप) हैं, उन्होंने (मुझ) स्त्री का मन लोभियों की भाँति लोभ देकर लुभा लिया है। (हे प्रभु) तेरे दर्शन के ऊपर (मैं) खण्ड-खण्ड होकर (टुकड़े-टुकड़े होकर) (न्यौछावर) हूँ, तेरे नाम के ऊपर (मैं) कुर्बान हूँ। यदि तू (मेरा स्वामी है) तो मैं मान करती हूँ (और मेरा मान करना सार्थक है) तेरे बिना मेरा मान किस प्रकार का हो सकता है ?

हे स्त्री अपनी चूड़ियों को पलंग समेत तोड़ दे और अपनी बाँहों को (पलंग की) पाटियों के साथ (नष्ट कर दे) (क्योंकि) इतने वेश और शृङ्गार करनेवाली हे स्त्री तेरा पति औरों के साथ रमण कर रहा है। न तो (तुम्हारे पास) (गुरु रूपी) मनिहार है और न (भक्ति रूपी) चूड़ियाँ और सोने की चूड़ियाँ ही हैं। जो बाँहें पति के गले का हार नहीं बनतीं वे जल जायँ। (मेरी) सारी सखियाँ पति के साथ रमण करने गयी हैं (विरह में) दग्ध मैं किसके दरवाजे पर जाऊँ ? हे सखी, मैं तो अच्छी और सुचज्जी (सुन्दर आचरणवाली स्त्री) हूँ, जब कि तुम पति को जरा भी अच्छी नहीं लगती (तात्पर्य यह कि जब तक मैं पति को अच्छी नहीं लगती तब तक किस प्रकार सुचज्जी (सुन्दर आचरणवाली) हो सकती हूँ) ?

(मैंने बालों को बार-बार) सँवारकर—गूँथकर गूँथा, (बालों के बीच में) पट्टी निकाली और माँग सिन्दूर से भरा। (इतना सब बाह्य शृंगार करने पर भी) आगे जाकर (परलोक में) (पति-परमात्मा द्वारा) नहीं स्वीकार की गई (फलतः मैं) विसूर-विसूर कर मर रही हूँ। मुझे रोती हुई देख कर सारा संसार रोने लगा (यहाँ तक कि) वन के पक्षी भी रोने लगे। पर मेरे शरीर का (वह) वियोग जो मेरा प्रियतम से वियोग करा दिया है न रोया (और न दूर हुआ)।

(मेरा प्रियतम) स्वप्न में (मेरे पास) आया भी और चला भी गया, (मैं उसके वियोग में) आँसू भर भर रोई (जल भर कर रोई)। हे प्रियतम न तो मैं तेरे पास आ, सकी

और न (तुम तक) किसी को भेज ही सकी। हे भाग्यशालिनी नीद (तू ही) आ जा, कदाचित् (सोते-सोते स्वप्न में ही) पति का दर्शन हो जाय। नानक कहते हैं कि तुम साहब प्रभु की जो बातें कहता है, उसे क्या दिया जाय? (इस प्रश्न का उत्तर यह है कि) उसे (अपना) सिर काटकर बैठने को दिया जाय और (उसकी) सेवा बिना सिर के ही की जाय। यदि प्रियतम बेगाना हो गया है, तो क्यों न मर कर प्राण दे दिए जायँ? ॥ १ ॥ १ ॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ वडहंसु महला १,

छंत

[१]

काइआ कूड़ि विगाड़ि काहे नाईऐ ।
नाता सो परवाणु सचु कमाईऐ ॥
जब साच अंदरि होइ साचा तामि साचा पाईऐ ।
लिखे बाझहु सुरति नाही बोलि बोलि गवाईऐ ॥
जिथै जाइ बहीऐ भला कहीऐ सुरति सबदु लिखाईऐ ।
काइआ कूड़ि विगाड़ि काहे नाईऐ ॥ १ ॥

ता मै कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ ।
अंम्रितु हरि का नामु मेरै मनि भाइआ ॥
नामु मीठा मनहि लागा दूखि डेरा ढाहिआ ।
सूखु मन महि आइ वसिआ जामि तै फुरमाइआ ॥
नदरि तुधु अरदासि मेरी जिंनि आपु उपाइआ ।
ता मै कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ ॥ २ ॥

वारी खसमु कढाए किरतु कमावणा ।
मंदा किसै न आखि झगड़ा पावणा ॥
नह पाइ झगड़ा सुआमि सेती आपि आपु वञावणा ।
जिसु नालि संगति करि सरीकी जाइ किआ रूआवणा ॥
जो देइ सहणा मनहि कहणा आखि नाही वावणा ।
वारी खसमु कढाए किरतु कमावणा ॥ ३ ॥

सभ उपाईअनु आपि आपे नदरि करे ।
कउड़ा कोइ न मागै मीठा सभ मागै ॥
सभु कोइ मीठा मंगि देखै खसम भावै सो करे ।
किछु पुंन दान अनेक करणी नाम तुलि न समसरे ॥
नानका जिन नामु मिलिआ करमु होआ धुरि कदे ।
सभ उपाईअनु आपि आपे नदरि करे ॥ ४ ॥ १ ॥

शरीर को झूठ से बिगाड़ कर, क्यों स्नान करते हो? (उस हरी की दृष्टि में) स्नान करना तब प्रामाणिक होता है, (जब) सत्य की कमाई की जाय। जब सत्य के अन्तर्गत सच्चा

बना जाए तभी सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति होती है। (परमात्मा की ओर से हुक्म) न मिला हो तो सुरति (स्मृति सूझ) नहीं (प्राप्त) होती (केवल) बकबकाने (मात्र से मनुष्य) नष्ट हो जाता है। (अतएव) कहीं भी जाकर बैठा जाए अच्छी बातें कही जायें और सुरति में (ध्यान में स्मृति में) शब्द को (नाम को) लिखा जाए। शरीर को झूठ से बिगाड़ कर क्यों स्नान करते हो? ॥ १ ॥

मैं (तेरा नाम) तब कह सका (स्मरण कर सका) जब तूने (मुझसे) कहलवाया, (स्मरण कराया)। अमृत के समान हरि का नाम मेरे मन को बहुत ही अच्छा लगा। (हरि का) नाम मन को (बहुत ही) मीठा लगा (अभी तक जो मेरा निवास दुःख के डेरे में था) वह दुःख का डेरा फट गया (अर्थात् मेरे समस्त दुःखों का नाश हो गया)। (हे प्रभु) जब से तूने हुक्म दिया (तब से) सुख (मेरे) मन में आकर बस गया। (हे हरि) (मेरी शक्ति) अरदास (प्रार्थना) करती है कृपा की दृष्टि करो—(यह) तेरा (काम) है। हे प्रभु तूने अपने आप ही अपने को उत्पन्न किया है। मैं (तेरा नाम) तब कह सका जब तूने (मुझसे) कहलवाया ॥ २ ॥

प्रथम—पति (परमात्मा) (हमारी कमाई हुई) कीरति (किए हुए कर्म) के अनुसार हमारी बारी देता है (जन्म देता है) (अतएव) किसी को बुरा कह कर झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। (किसी के साथ झगड़े में पड़ना वास्तव में पति परमात्मा के साथ झगड़े में पड़ना है, क्योंकि करता सब कुछ वही है)। इसलिए स्वामी के साथ झगड़े में पड़ कर अपने आपको नष्ट नहीं करना चाहिए। जिसके साथ (तुम्हारी) संगति है, उससे बराबरी (प्रतिस्पर्धा) करके क्यों रोते हो? जो कुछ (परमात्मा) दे, (उसे स्वयं) सहना चाहिए, (अपने) मन को समझाना चाहिए, (मुख से) कह कर व्यर्थ नहीं बकना चाहिए (क्योंकि बकने से परमात्मा का हुक्म तो बदलेगा नहीं)। [झखणु=झखाना—पंजाबी में खिझोरा लोटना, बकना]। पति (हमारी की हुई) कीरति के अनुसार (हमारी) बारी देता है (जन्म देता है) ॥ ३ ॥

(परमात्मा ने) सभी को स्वयं रचा है और स्वयं ही उनके ऊपर नजर रखता है (देखभाल करता है)। सभी लोग मीठा ही माँगते हैं, कोई भी (व्यक्ति) कड़ुवा नहीं माँगता। सभी कोई मीठा माँग कर देख लें (लेकिन) स्वामी करता वही है, जो उसे अच्छा लगता है। पुण्य दान तथा (इसी प्रकार के अन्य) शुभ कर्म (परमात्मा के) नाम की तुलना बराबरी नहीं कर सकते। हे नानक जिन्हें नाम की प्राप्ति हुई है उनके ऊपर निरन्तर ही कभी परमात्मा की कृपा हुई होगी। (परमात्मा ने) स्वयं ही सभी को रचा है और स्वयं ही सबके ऊपर कृपा दृष्टि रखता है ४ ॥ १ ॥

[२]

कपडु करमा तेरा नामु बणाइआ ॥
तन उपाईए आपि आपे सरब समाइआ ॥
सरबे समाइआ आपि तू है उपाइ धंधै लाईआ ।

इकि दुखही कीए राखे इकना मिल वडाईआ ॥
सोगु मोहु दुखु कीआ मीठा एतु भरमि भुलाणा ।
सदा रहमा करहु अपणी तामि नामु वखाणा ॥ १ ॥
नाउ तेरा है साचा सदा मै मनि भाणा ।
दूखु गइआ सुखु आइ समाणा ॥
गावनि सुरि नर सुघड़ सुजाणा ॥
सुरि नर सुघड़ सुजाण गावहि जो तेरै मनि भावहे ।
माइआ मोहे चेतहि नाही अहिला जनमु गवावहे ॥
इकि मूड़ मुगध न चेतहि मूले जो आइआ तिसु जाणा ।
नाउ तेरा सदा साचा सोइ मै मनि भाणा ॥ २ ॥
तेरा वखतु सुहावा अमृतु तेरी बाणी ।
सेवक सेवहि भाउ करि लागा साउ पराणी ।
साउ प्राणी तिना लागा जिनी अमृतु पाइआ ।
नामि तेरै जोइ राते नित चड़हि सवाइआ ॥
इकु करमु धरमु न होइ संजमु जामि न एकु पछाणी ।
वखतु सुहावा सदा तेरा अमृत तेरी बाणी ॥ ३ ॥
हउ बलिहारी साचे नावै ।
राजु तेरा कबहु न जावै ॥
राजो त तेरा सदा निहचलु एहु कबहु न जावए ।
चाकरु त तेरा सोइ होवै जोइ सहजि समावए ॥
दुसमनु त दूखु न लगै मूले पापु नेड़ि न आवए ।
हउ बलिहारी सदा होवा एक तेरे नावए ॥ ४ ॥
जुगह जुगंतरि भगत तुमारे ।
कीरति करहि सुआमी तेरै दुआरे ॥
जपहि त साचा एकु मुरारे ॥
साचा मुरारे तामि जापहि जामि मंनि वसावहे ।
भरमो भुलावा तुझहि कीआ जामि एहु चुकावहे ॥
गुरपरसादी करहु किरपा लेहु जमहु उबारे ।
जुगह जुगंतरि भगत तुमारे ॥ ५ ॥
वडे मेरे साहिबा अलखु अपारा ।
किउकरि करउ बेनती हउ आखि न जाणा ।
नदरि करहि ता साचु पछाणा ॥
साचो पछाणा तामि तेरा जामि आपि बुझावहे ।
दूख भूख संसारि कीए सहसा एहु चुकावहे ॥
बिनवंति नानकु जाइ सहसा बुझै गुर बीचारा ।
वडा साहिबु है आपि अलख अपारा ॥ ६ ॥

तेरे बंके लोइण दंत रीसाला ।
सोहणे नक जिन लमड़े वाला ॥
कंचन काइआ सुइने की ढाला ।
सोवंन ढाला क्रिसन माला जपहु तुसी सहेलीहो ।
जम दुआरि न होहु खड़ीआ सिख सुणहु महेलीहो ॥
हंस हंसा बग बगा लहै मन की जाला ।
बंके लोइण दंत रीसाला ॥ ७ ॥

तेरी चाल सुहावी मधुराड़ी बाणी ।
कुहकनि कोकिला तरल जुआणी ॥
तरला जुआणी आपि भाणी इछ मन की पूरीए ।
सारंग जिउ पगु धरै ठिमि ठिमि आपि आपु संधूरए ॥
स्रीरंग राती फिरै माती उदकु गंगावाणी ।
बिनवंति नानकु दासु हरि का तेरी चाल सुहावी मधुराड़ी बाणी ॥ ८ ॥ २ ॥

(हे प्रभु, तू मेरे ऊपर) दया कर (ताकि मैं) तेरे नाम का वर्णन करूं। (हे हरी) तू ने स्वयं ही सब की उत्पत्ति की है और स्वयं ही सब में व्याप्त है। (हे प्रभु) तू ही सब में समाया है और सब को उत्पन्न करके तूने उन्हें (अपने अपने) धन्धे में लगा दिया है। कुछ (लोगों) को तुम्हीं ने राजा बनाया है और कुछ का तू हो भीख मँगाता फिरता है। (मनुष्य को) लोभ और मोह तू ही मीठा लगाता है और इसी भ्रम में (मनुष्य को) भुला रखता है। (हे प्रभु) (तू मेरे ऊपर अपनी) सास्वत दया कर ताकि मैं तेरे नाम का वर्णन करूं? ॥ १ ॥

(हे हरी) तेरा नाम सत्य है, मेरे मन में सदैव तेरी ही मर्जी रहती है (अर्थात् जो तेरी मर्जी होती है वही मेरे मन को अच्छा लगता है)। (इस प्रवृत्ति के कारण) (मेरे सारे) दुःख समाप्त हो गए हैं (और मेरे अन्तःकरण में) सुख आकर समा गया है। जो असुर तथा अपने पुरुष तथा देवता हैं (वे तेरा) गुणगान करते हैं। (ये ही) देवता असुर और अपने पुरुष (तेरा) गुणगान करते हैं जो तेरे मन को अच्छे लगते हैं। (जो) माया में मोहित हैं (वे) चेतते नहीं (और अपना मनुष्य का) जीवन व्यर्थ में गँवा देते हैं। कुछ (ऐसे मूढ़ और गँवार हैं, (जो इस बात को (बिल्कुल भी नहीं चेतते कि (जो भी प्राणी इस संसार में) आया है, उसे (अवश्यमेव यहाँ से) जाना है। (हे प्रभु) तेरा नाम सच्चा है वही मेरे मन में (तेरी) इच्छा (के रूप) में रहता है ॥ २ ॥

(हे प्रभु जिस वक्त तू प्यार करता) तेरी (स्तुति का वह) वक्त (बहुत ही) सुहावना (होता) है। तेरी (स्तुति करनेवाली) वाणी अमृतस्वरूपिणी (होती है) जिन प्राणियों को (हरि नाम का) प्यार लग गया है (वे) केवल प्रेम से (परमात्मा की) आराधना करते हैं। जिन्होंने (हरि-नाम) का अमृत प्राप्त कर लिया है उन्हीं प्राणियों को प्यार की प्रतीति होती है। जो (व्यक्ति) तेरे नाम में अनुरक्त हैं उनका (रंग नित्य सवाई बढ़ता है (तात्पर्य यह है कि वे नित्य फलते-फूलते हैं)। जब तक (तुम्) एक को नहीं पहचान लिया जाता (तब तक) न कुछ जप होता है न धर्म (होता है) और न संयम (होता है)

(क्योंकि बिना परमात्मा के पहचाने सारे कर्म धर्म और संयम व्यर्थ हैं)। (हे प्रभु, तेरी स्मृति का) बल सदन सुहावना होता है, (वह) वाणी (जिससे) तेरी (स्तुति होती है) अमृतस्वरूपिणी (होती है) ॥ ३ ॥

(हे हरी) मैं तेरे सच्चे नाम पर बलिहारी होता हूँ। (हे प्रभु) तेरा राज्य [कभी नहीं मिटता। तेरा राज्य] सदैव निश्चल है यह कभी नहीं जाता (नष्ट होता)। जो (व्यक्ति) सहजावस्था में समा जाता है, वही तेरा (वास्तविक) चाकर होता है। (उसे) न तो शत्रु (सताते हैं) और दुःख भी बिलकुल नहीं लगता, पाप भी (उसके) समीप नहीं फटकता। (हे प्रभु) मैं तेरे एक नाम पर सदैव बलिहारी होता हूँ ॥ ४ ॥

हे स्वामी तेरे भक्त युग-युगान्तरों से तेरे द्वार पर (तेरी) कीर्ति का गुणगान करते हैं। (वे सच्चे एक मुरारी को ही जपते हैं। जब (तू) (उनके) मन में बसा देता है, तभी वे सच्चे मुरारी को जपते हैं। (माया के) भ्रम में भटकाना —(यह खेल) तेरा ही किया हुआ है (रचा है) जब यह (भ्रम) समाप्त कर दे तभी गुरु की कृपा से (अपने भक्तों को) यम से बचा लेता है। युग-युगान्तरों से भक्तजन (तेरा गुणगान कर रहे हैं) ॥ ५ ॥

हे मेरे साहब (तू) बड़ा है, असत्य है और अपार है मैं (तेरी) प्रार्थना किस प्रकार करूँ ? मैं कहना नहीं जानता (अर्थात् मुझमें यह शक्ति नहीं है कि वाणी द्वारा तेरी महत्ता का वर्णन कर सकूँ)। (यदि तू) अपनी कृपादृष्टि करे (तभी मैं) सत्य को पहचान सकता हूँ (बिना तेरी कृपा दृष्टि के सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता)। (हे स्वामी) तेरे सत्य को तभी पहचाना जाता है, जब (तू) कृपा करके (उस सत्य को) समझा दे। (हे हरी), (तुम्हीं ने) इस संसार में दुःख और सुख को रचा है (और इस) भ्रम को तू ही निवृत्त कर सकता है। नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि (जब) गुरु के विचार द्वारा समझे तभी संशय की निवृत्ति हो सकती है। हे साहब, (तू) महान् है, असत्य है और अपार है ॥ ६ ॥

(हे प्रभु) तेरे नेत्र बाँके हैं और दाँत सुहावने हैं। [रीसाला—रस का घर, सुहावना]। (तेरी नासिका सुन्दर है (और तेरी) केशराशि लम्बी है। (तेरी) काया सोने की है और सोने में ही ढली हुई है। उस सोने से बनी (काया) में वजयंती-माला (कृष्ण-माला) है। ऐ सहेलियो तुम सब (उसका) जप करो। हे महिलाओ (स्त्रियों) (मेरी) शिक्षा सुनो (उस प्रभु का जप करने से) तुम सब यम के द्वार पर (लेखा देने के लिए) नहीं खड़ी की जाओगी। (परमात्मा के स्मरण से) मन की मैल नष्ट हो जायगी इससे बड़े से बड़े बगुले (पापगी) महान् से महान् हंस (पवित्रात्मा) (हो जायँगे)। (हे प्रभु) तेरे नेत्र बाँके और दाँत सुहावने हैं ॥ ७ ॥

(हे हरी) तेरी चाल (बड़ी) सुहावनी है और तेरी वाणी (अत्यन्त) मधुर है। (तेरी वाणी) कोयल की कूक समान (मीठी है) (और तुम्हारा) यौवन कान्तिमय है। (तेरी चाल) तरुण युवावस्था देगी है, जो मन की इच्छा पूरी होने में (स्वयं अपने आप में मस्त है)। (तू) उस हाथी के समान ठुमुक ठुमुक के पर रखता है जो स्वयं अपने आप में मस्त है। (जीव रूपी स्त्री उपर्युक्त गुणों वाले) हरी के प्रेम में गंगा की जल के समान मस्त होकर फिर रही है। हरि का दास नानक विनय करता है (कि हे प्रभु) तेरी चाल बड़ी सुहावनी तथा वाणी (अत्यन्त) मधुर है ॥ ८ ॥ २ ॥

को यमदूतों ने) पकड़ कर आगे चला दिया। [पाई पल=घड़ी की प्याली जिसके तले में छेद होता है जिसके द्वारा पानी प्याली में आकर भरता रहता है। जब प्याली भर जाती है तो वह डूब जाती है]। प्रिय (प्राणी) (जीवात्मा) (शरीर से पृथक करके) आगे चला दिया गया। (जब परमात्मा के यहाँ से) लिखा हुआ (हुक्मनामा) आया (और जीवात्मा इस शरीर से पृथक हो गया) तो सारे सगे-सम्बन्धी रोने लगे। हे मेरी माता जब (आयु के) दिन पूरे हो गए, तो काया से हंस (जीवात्मा) का वियोग हो गया। (मरणोपरान्त) पूर्व (जन्मों के) कर्मानुसार जैसा परमात्मा का) लिखा हुआ था, (लिखत का) वैसे ही (फल की) प्राप्ति हुई। (वह) सृष्टि रचयिता और सच्चा बादशाह धन्य है, जिसने जगत (के सभी प्राणियों को अपने अपने) धंधे में लगाया है ॥१॥

हे मेरे भाइयो, साहब (प्रभु) का स्मरण करो; सभी को यहाँ से (इस संसार से) प्रयाण करना है (कूच करना है)। यहाँ (इस संसार) के (सारे) धंधे झूठे हैं और चार दिन के हैं निश्चय ही (सभी से) परलोक प्रयाण करना है (इस संसार से) परलोक में (जाना) अवश्य प्रयाण करना है (यहाँ तो तुम चार दिन के) मेहमान के समान हो (अतएव) गर्व क्या करते हो ? (अतः) जिस (प्रभु की) आराधना से (उसके) दरबार में सुख प्राप्त हो (उसी के) नाम का स्मरण करो। परलोक में (तुम्हारा) हुक्म बिल्कुल न चलेगा, और (हर एक के) सिर पर क्या बीतेगी, (इसे कौन बता सकता है) ? हे मेरे भाइयो साहब (परमात्मा) का स्मरण करो सभी के यहाँ से—(इस संसार से) प्रयाण करना है (कूच करना है) ॥२॥

(उस) समर्थ (सर्वशक्तिमान् परमात्मा) को जो रुचता है वही होता है यह संसार तो हीला-हवाला (बहाना, झूठा) है (वह सृष्टि का) सच्चा सिरजनहार जल-थल में पृथ्वी और आकाश के मध्य—(सभी स्थानों में) रम रहा है। (वह) सच्चा सिरजनहार अलख और अपार है उसका अन्त नहीं पाया जा सकता। (इस संसार में) उन्हीं का आना (जन्म धारण करना) सफल हुआ है जिन्होंने एक मन से (परमात्मा का) ध्यान किया है। (वह प्रभु) स्वयं ढा डालता है (संहार करता है) और ढाह कर फिर बनाता है (रचता है); (वह अपने) हुक्म से (सब को) सँवारता है। (उस) समर्थ (सर्वशक्तिमान् परमात्मा) को जो रुचता है, वही होता है; यह संसार तो हीला-हवाला (बहाना, झूठा) है ॥३॥

नानक कहते हैं कि हे बाबा रोना तब (सफल) समझना चाहिए, जब प्रियतम (परमात्मा) के लिए रोना हो। हे बाबा (जो) रोना (सांसारिक) पदार्थों के लिए होता है (वह) रोना सब व्यर्थ है।

(सांसारिक) पदार्थों के लिए रोना सब व्यर्थ है (क्योंकि सारा) संसार गाफिल है, (इस तथ्य को नहीं समझता) और माया के निमित्त रोता है। (प्राणी को अच्छा) भला—बुरा कुछ नहीं सूझ पड़ता, (वह) इस (मनुष्य जन्म) तन को यों ही नष्ट कर लेता है। (इस बात को भलीभाँति समझ लो कि) यहाँ (इस संसार में) (जो कोई भी) आया है सब किसी को जाना होगा (फिर) अहंकार करना झूठा है। नानक कहते हैं कि हे बाबा रोना तब सार्थक समझना चाहिए, जब प्रियतम (परमात्मा) के लिए रोना हो ॥४॥१॥

[२]

आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां ।
रोवह बिरहा तन का आपणा साहिबु संम्हालेहां ॥
साहिबु सम्हालिह पंथु निहालिह असा भि ओथै जाणा ।
जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा ॥
जो तिनि करि पाइआ सु आगै आइआ असी कि हुकमु करेहा ।
आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहा ॥ १ ॥
मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे मरि जाणै ऐसा कोइ ।
सेविहु साहिबु संम्रथु आपणा पंथु सुहेला आगै होइ ॥
पंथि सुहेलै जावहु तां फलु पावहु आगै मिलै वडाई ।
भेटै सिउ जावहु सचि समावहु तां पति लेखै पाई ॥
महली जाइ पावहु खसमै भावहु रंग सिउ रलीआ माणै ।
मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे कोई मरि जाणै ॥ २ ॥
मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो ।
सूरे सेई आगै आखीअहि दरगह पावहि साची माणो ॥
दरगह माणु पावहि पति सिउ जावहि आगै दूखु न लागै ।
करि एकु धिआवहि तां फलु पावहि जितु सेविऐ भउ भागै ॥
ऊचा नही कहणा मन महि रहणा आपे जाणै जाणो ।
मरणु मुणसां सूरिआ हकु है जो होइ मरहि परवाणो ॥ ३ ॥
नानक किस नो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो ।
कीता वेखै साहिबु आपणा कुदरति करे बीचारो ॥
कुदरति बीचारे धारण धारे जिनि कीआ सो जाणै ।
आपे वेखै आपे बूझै आपे हुकमु पछाणै ॥
जिनि किछु कीआ सोई जाणै ता का रूपु अपारो ।
नानक किस नो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो ॥४॥२॥

हे सहेलियो आओ मिलो और (परमात्मा के) सच्चे नाम को लो। (यदि तुम्हें रोना ही है) तो (अपने) उन के वियोग के लिए रोओ (तात्पर्य यह कि परमात्मा से जो हम लोगों का वियोग हुआ है उसके लिए रोओ) और अपने साहब को याद करो। साहब (परमात्मा) का स्मरण करो और उस मार्ग की प्रतीक्षा करो (कि जिस मार्ग से और लोग गए हैं, उसी मार्ग से और) वहीं हम को भी जाना है। (यह समझो कि) जिस (प्रभु ने यह शरीर) रचा है, उसी ने (उस) से ले लिया और उसका हुक्म (पूरा) हो गया। जो (कुछ) उस (हरी) ने कर दिया वही हमारे सामने आया; (अब) हम क्या हुक्म कर सकते हैं? (हम कुछ नहीं कर सकते विवश हैं)। हे सहेलियो आओ मिलो और (परमात्मा के) सच्चे नाम को लो ॥१॥

हे लोगो मरने को बुरा मत कहो। यदि कोई ऐसा (निम्नलिखित ढंग का) मरना जानता है, (तो मरना बुरा नहीं है)। अपने समर्थ (सर्वशक्तिमान्) साहब (परमात्मा) की

सेवा करो जिससे आगे मार्ग का (परलोक) सुहावना हो जायगा। यदि इस सुहावने मार्ग से जाओगे तो (समस्त) फलों को पाओगे और आगे (परमात्मा के दरबार म) प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। (यदि तुम सेवा और प्रेम की) भेंट लेकर (उस परमात्मा के दरबार में) जाओगे तो तुम सत्य में समा जाओगे और तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी। (परमात्मा के) महल में जाकर स्थान प्राप्त कर लोगे उसम को अच्छे लगोगे और आनन्द से खुशियाँ मानोगे। अतः हे लोगो, जो कोई (वास्तविक) मरना जानता है, उस मरने को बुरा नहीं कहना चाहिए ॥२॥

उन्हीं शूरवीर पुरुषों का मरना सत्य (सफल) है, जो प्रामाणिक हो कर मरते हैं। आगे (परलोक में) भी (वे लोग) शूरवीर कहे जायेंगे और (परमात्मा के) दरबार में सच्चा मान पायेंगे। (ऐसे शूरवीर) (परमात्मा के) दरबार में मान पायेंगे और प्रतिष्ठा के साथ (यहाँ से) जायेंगे; (उन्हें) आगे (परलोक में भी) (किसी प्रकार का) दुःख नहीं होगा।

(हरी को) एक समझ कर ध्यान किया जाय, तभी फल की प्राप्ति होती है, (उस हरी के) स्मरण करने से (सारे) भय भग जाते हैं। (अपने को) ऊँचा नहीं कहना चाहिए, (अपने) मन को काबू में रखना चाहिए। जाननेवाला (प्रभु) स्वयं ही सब कुछ जानता है। (उन्हीं) शूरवीर पुरुषों का मरना सत्य (सफल) है, (जो) प्रामाणिक होकर मरते हैं ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि हे बाबा किसके निमित्त रोया जाय ? यह संसार खेल है। साहब (प्रभु) (अपने द्वारा) रची हुई (वस्तुओं को) देखता रहता है (वह अपनी) कुदरत (माया, शक्ति प्रकृति) का स्वयं ही विचार करता है। (प्रभु स्वयं ही अपनी) कुदरत का विचार करता है, (वही) सब का निर्माण करता है और सब को धारण करता है, जिसने इस समस्त जगत् को रचा है, वही इसे जानता है, (दूसरा कौन जान सकता है) ? (प्रभु) आप ही देखता है, आप ही समझता है और आप ही (अपने) हुक्म को पहचानता है। जिस (प्रभु) ने (यह सब) कुछ रचा है, वही (इसे) जान सकता है, उसका रूप अपार है। नानक कहते हैं कि हे बाबा किसके निमित्त रोया जाय ? यह संसार खेल है ॥४॥२॥

[३]

दखणी

सचु सिरंदा सचा जाणीऐ सचड़ा परवदगारो ।
जिनि आपीनै आपु साजिआ सचड़ा अलख अपारो ॥
दुइ पुड़ जोड़ि विछोड़िअनु गुर बिनु घोरु अंधारो ।
सूरजु चंदु सिरजिअनु अहिनिसि चलतु वीचारो ॥ १ ॥
सचड़ा साहिबु सचु तू सचड़ा देहि पिआरो ॥रहाउ॥
तुधु सिरजी मेदनी दुखु सुखु देवणहारो ।
नारी पुरख सिरजिऐ बिखु माइआ मोहु पिआरो ॥
खाणी बाणी तेरीआ देहि जीआ आधारो ।
कुदरति तखतु रचाइआ सचि निबेड़णहारो ॥ २ ॥

आवागवणु सिरजिआ तू थिरु करणहारो ।
जमणु मरणा आइ गइआ बधिकु जीउ बिकारो ॥
भूडड़ै नामु विसारिआ बूडड़ै किआ तिसु चारो ।
गुण छोडि बिखु लदिआ अवगुण का वणजारो ॥ ३ ॥

सदड़े आए तिना जानीआ हुकमि सचे करतारो ।
नारी पुरख विछुंनिआ विछुड़िआ मेलणहारो ॥
रूपु न जाणै सोहणीऐ हुकमि बधी सिरि कारो ।
बालक बिरधि न जाणनी तोड़नि हेतु पिआरो ॥ ४ ॥

नउ दर ठाके हुकमि सचै हंसु गइआ गैणारे ।
सा धन छुटी मुठी झूठि विधणीआ मिरतकड़ा अंङनड़ै बारे ।
सुरति मुई मरु माईए महल रुंनी दर बारे ।
रोवहु कंत महेलीहो सचे के गुण सारे ॥ ५ ॥

जलि मलि जानी नावालिआ कपड़ि पटि अंबारे ।
वाजे वजे सची बाणीआ पंच मुए मनु मारे ॥
जानी विछुंनड़े मेरा मरणु भइआ ध्रिगु जीवणु संसारे ।
जीवतु मरै सु जाणीऐ पिर सचड़ै हेति पिआरे ॥ ६ ॥

तुसी रोवहु रोवण आईहो झूठि मुठी संसारे ।
हउ मुठड़ी धंधै धावणीआ पिरि छोडिअड़ी विधणकारे ॥
घरि घरि कंतु महेलीआ रूड़ै हेति पिआरे ।
मै पिरु सचु सालाहणा हउ रहसिअड़ी नामि भतारे ॥ ७ ॥

गुरि मिलिऐ वेसु पलटिआ सा धन सचु सीगारो ।
आवहु मिलहु सहेलीहो सिमरहु सिरजणहारो ॥
बईअरि नामि सोहागणी सचु सवारणहारो ।
गावहु गीतु न बिरहड़ा नानक ब्रहम बीचारो ॥ ८ ॥ ३ ॥

(सृष्टि का) रचयिता सच्चा है। (उसे) सच्चा समझना चाहिए; वही सच्चा परवरदिगार (पालनकर्त्ता) है जिसने अपने आप अपने को रचा है, (जो स्वयंभू है) (वही प्रभु) सच्चा, अगम और अपार है। (उसी ने) दोनों पाट—(तात्पर्य यह कि पृथ्वी और आकाश बना कर) जोड़ दिया है—(इसी से सारे जगत् की रचना हुई है) और फिर (जीवों को तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को) पृथक् पृथक् कर दिया है। गुरु के बिना घनघोर अन्धकार रहता है (परमात्मा की समझ नहीं आती)। (उसी प्रभु ने) सूर्य और चन्द्रमा रचे हैं (वह) अहर्निश (सूर्य और चन्द्रमा को) ध्यान से विचारता है (निगरानी करता है, निरीक्षण करता है)॥१॥

सच्चा साहब तू ही (एक) सच्चा है (तू) अपना सच्चा प्यार दे ॥रहाउ॥

(हे हरी) तूने ही (सारी) मेदिनी (सृष्टि) बनाई है (तू ही) दुःख-सुख का देनेवाला है। (तूने ही) स्त्री-पुरुष बनाए हैं माया के विष तथा मोह के प्रति प्यार (वात्सल्य)

(का भी निर्माण तू ने ही किया है)। तू ने ही (जीवों को) चार खानियाँ (अण्डज जरज स्वेदज तथा उद्भिज) (और उनकी पृथक्-पृथक्) बोलियाँ (बनाई हैं) (और सारे) जीवों को आधार भी (तू ही) देता है। (तूने ने) कुदरत को (अपने बैठने का) तख्त बनाया है और उसी पर बैठ कर सच्चे न्याय से फ़ैसला करता है, (भावार्थ यह कि परमात्मा कुदरत में निवास करता है। कुदरत के भीतर ही भले-बुरे का निर्णय होता रहता है और साथ ही साथ सजा या सहायता मिलती रहती है) ॥२॥

(हे प्रभु, तू ही ने) आवागमन की रचना की है (और अपनी कृपा से) उसे स्थिर करनेवाला भी तू ही है (भावार्थ यह कि जन्म-मरण को काट कर निरवस कर देनेवाला तू ही है)। जन्मने-मरने से (निरन्तर) आना-जाना होता रहता है। (यह जीव) विकारों के कारण बद्ध हो गया है, (बन्दी हो गया है)। इस भाड़े (जीव) ने नाम भुला दिया है। इस डूबे हुए का वश ही क्या है, (चारा ही क्या है) ? उसने गुणों को छोड़ कर (माया के) विष का ही (सौदा) लादा है, (इस प्रकार) अवगुण का ही व्यापारी बना हुआ है ॥३॥

जो (गुरु का) उपदेश (लेकर) आए हैं वे (परमात्मा के अत्यन्त) प्यारे हैं (और वे) सच्चे कर्त्तार के हुक्म में (रत हैं)। (प्रभु ने ही) नारी (जीवात्मा) और पुरुष (परमात्मा) का वियोग कराया है, (और वही) फिर बिछुड़े हुओं को मिला सकता है। (यमदूतों के) सिर पर तो हुक्म का कार्य है, अतएव वे यह नहीं पहचानते कि सुन्दर है (कि नहीं)। (भावार्थ यह है कि उन्हें तो जो हुक्म होता है वही करना होता है। वे यह नहीं देखते कि अमुक व्यक्ति सुन्दर है उसे न मारा जाय)। (यमदूत) बालक और वृद्ध (का भेद भी) नहीं जानते। (वे) सुहृदों का प्रेम तोड़ देते हैं ॥४॥

सच्चे (परमात्मा) के हुक्म से (शरीर के) नौ दरवाजे (दो कान, दो नाक दो आँखें एक मुख, तथा लिंग और गुदा के द्वार) बन्द हो गए और हंस (जीवात्मा) आकाश (परलोक) में चला गया। स्त्री (पति से) छूट गया है (यह) झूठ से ठगी जाकर विधवा हो गई है (और) मुर्दा (उसका हृदय रूपी) आँगन में पड़ा हुआ है। हे माँ (उसका) मरने से (उसकी) बुद्धि भी मारी गयी (अब यह स्त्री) (परमात्मा के) महल और दरबार में रो रही है। पति (परमेश्वर) की स्त्रियाँ यदि (तुम्हें) रोना ही है तो सच्चे (परमात्मा) के गुणों को स्मरण करके प्रेम से रोओ ॥५॥

फिर प्राणी (पानी) को मल-मल कर स्नान कराया जाता है (और शव को) बहुत से रेशमी वस्त्रों से सजाते हैं, (तदनन्तर) (अनेक) बाजे बजाए जाते हैं (और) सत्य वाणी उच्चरित की जाती है, ("राम नाम सत्य है" आदि वाक्य कहे जाते हैं) और सम्बन्धी (माता पिता भ्राता, स्त्री तथा पुत्र) मन मार के (घर में) मृतक के समान हो जाते हैं। (पति के देहान्त के पश्चात् स्त्री कहती है कि) "प्रियतम के बिछुड़ने से मेरा ही मरण हो गया। मेरा जीवन संसार में व्यर्थ है। सच्चा मरना तो तब समझना चाहिए, जब सच्चे पति के प्रेम से जीवित भाव से मरा जाय ॥६॥

(हे रोने के निमित्त) आई हुई (स्त्रियो) तुम (भी) रोओ (तुम भी) संसार के झूठे (मायिक प्रपंचों) में ठगी गई हो। मैं (भी) ठगी हुई हूँ (सांसारिक) धंधों में

भ्रमती हूँ (मैं) पति द्वारा छोड़ी गयी हूँ (पति-परित्यक्ता हूँ) और पति-रहित (दुहागिनियों का-सा) काम (कर रही हूँ)। घर-घर में पति का (निवास है) (किन्तु उसकी वास्तविक) स्त्रियाँ (वे ही) हैं, (जो अपने) सुन्दर (पति) से प्यार (करती हैं)। मैंने भी (जब) सच्चे पति (हरी) की स्तुति की तो अपने भर्त्ता (परमात्मा) के नाम से हर्षित हुई—आनन्दित हुई ॥७॥

गुरु के मिलने से वेश पलट गया (तात्पर्य यह कि स्वभाव परिवर्तित हो गया) और स्त्री (जीवात्मा) का सच्चा शृंगार (बन गया)। (अरी) सहेलियो आओ मिलकर (सच्चे) सिरजनहार का स्मरण करो। स्त्री सच्चे सँवारनवाले (बनानेवाले परमात्मा के) नाम से सुहागिनी होती है। नानक कहते हैं कि (हे सखियो) वियोग के गीत मत गाओ (बल्कि) प्रभु का विचार करो ॥८॥३॥

[४]

जिनि जगु सिरजि समाइआ सो साहिबु कुदरति जाणोवा ।
सचड़ा दूरि न भालीऐ घटि घटि सबदु पछाणोवा ॥
सचु सबदु पछाणहु दूरि न जाणहु जिनि एह रचना राची ।
नामु धिआए ता सुखु पाए बिनु नावै पिड़ काची ।
जिनि थापी बिधि जाणै सोई किआ को कहै वखाणो ।
जिनि जगु थापि वताइआ जालो सो साहिबु परवाणो । १ ॥
बाबा आइआ है उठि चलणा अध पंधै है संसारोवा ॥
सिरि सिरि सचड़ै लिखिआ दुखु सुखु पुरबि वीचारोवा ॥
दुखु सुखु दीआ जेहा कीआ सो निबहै जीअ नाले ।
जेहे करम कराए करता दूजी कार न भाले ॥
आपि निरालमु धंधै बाधी करि हुकमु छडावणहारा ।
अजु कलि करदिआ कालु बिआपै दूजै भाइ विकारो ॥ २ ॥
जम मारग पंथु न सुझई उझड़ अंध गुबारोवा ।
ना जलु लेफ तुलाईआ ना भोजन परकारोवा ॥
भोजन भाउ न ठंढा पाणी ना कापड़ु सीगारो ।
गलि संगलु सिरि मारे ऊभौ ना दीसै घर बारो ॥
इब के राहे जमनि नाही पछुताणे सिरि भारो ।
बिनु साचे को बेली नाही साचा एहु बीचारो ॥ ३ ॥
बाबा रोवहि रवहि सु जाणीअहि मिलि रोवै गुण सारेवा ।
रोवै माइआ मुठड़ी धंधड़ा रोवणहारेवा ।
धंधा रोवै मैलु न धोवै सुपनंतरु संसारो ॥
जिउ बाजीगरु भरमै भूलै झूठि मुठी अहंकारो ।
आपे मारगि पावणहारा आपे करम कमाए ॥
नामि रते गुरि पूरै राखे नानक सहजि सुभाए ॥ ४ ॥ ४ ॥

जो (प्रभु) जगत् को रचकर (उसमें) व्याप्त है, (अथवा जो प्रभु जगत् को रच कर (फिर उसे अपने में) समाहित कर लेता है) उस साहब (परमात्मा) को गुरवाणी (के माध्यम से) जानो। (उस) सच्चे हरी को दूर मत खोजने जाओ (बल्कि गुरु के) शब्द द्वारा (उसी) घट-घट में पहचानने (की चेष्टा करो)। सत्यस्वरूप (परमात्मा को गुरु के) शब्द द्वारा पहचानो (उस प्रभु को) दूर न समझो जिसने यह (समस्त) रचना रची है। नाम की आराधना से ही सुख की प्राप्ति होती है; बिना नाम के (मनुष्य-जीवन की) बाजी कच्ची रहती है। जिस (हरी) ने (सृष्टि) स्थापित की है, (रची है) (वही इसकी) विधि जानता है, और कोई क्या कथन कर सकता है? जिस (स्वामी) ने जगत् को स्थापित करके (उसके ऊपर मोह रूपी) जाल बिछा दिया है, उसे मालिक करके समझो (प्रामाणिक मानो) ॥१॥

(हे) बाबा (जो भी) (इस संसार में) आया है (उसे यहाँ से) उठ कर चला जाना है, यह संसार तो अधूरा ही रास्ता है (पूरी मंजिल नहीं है)। (अतएव यहाँ डेरा नहीं जमाना है, आगे चलना है)। सच्चे पुरुष के धुर (कर्मों) के विचारानुसार (प्रत्येक प्राणी के) भाल में सुख-दुःख लिख दिया है। (अतएव जीव ने) जैसा किया है (उसी के अनुसार परमात्मा ने उसके भाग्य में) सुख-दुख दे दिया है, और यह जीव के साथ तक निबहेगा। (तात्पर्य यह कि जीव के अन्त समय तक सुख-दुःख बने रहेंगे)। कर्ता पुरुष जो कर्म करावे (उसी को करना चाहिए), (अन्य) दूसरे कार्यों को नहीं सोचना चाहिए। (प्रभु) आप तो निर्लेप है, (किन्तु सारे जगत् को माया के) धंधों (प्रपंचों) में जीव रक्खा है वह आप ही हुक्म करके (जीवों को माया के बंधनों से) छुड़ाता है। द्वैत भाव में लग कर (जीव) विकार करता है (और कहता है कि कल मैं नाम जपूँगा इस प्रकार आजकल करते हुए काल आ धमकता है (व्याप्त हो जाता है) ॥२॥

यमराज का मार्ग उजाड़ और घनघोर अंधकारमय है, (अतः) सुझाई नहीं पड़ता। (उस मार्ग में) न रजाई है न तोषक और न विविध प्रकार के भोजन ही है, न (कोई आदर) भाव करता है न भोजन है, न ठंडा पानी है, न कपड़े आदि का शृङ्गार ही है। (यम का मार्ग तय करते समय) गले में जंजीर पड़ी रहती है और ऊपर से सिर पर मार पड़ती है पर द्वार (कुछ भी) दिखाई नहीं पड़ता। उस समय (मरने के पश्चात्) के बोए हुए बीज नहीं जमते (तात्पर्य यह कि उस समय के किए हुए यत्न काम में नहीं आते) और सिर के ऊपर पापों का भार (लाद कर जीव अत्यधिक) पछताता है। बिना सच्चे (परमात्मा) के, (उस समय) कोई भी मित्र (सहायक) नहीं होता यही विचार सच्चा है ॥ ३ ॥

हे बाबा (ठीक-ठीक) रोना-धोना वे ही जानते हैं, (जो गुरु से) मिल कर (हरी के) गुण स्मरण कर कर के रोते हैं। (जो सृष्टि) माया की मोही हुई होती है, (वह) (जगत् के) धंधों के लिए रोती है। (इस प्रकार सारा जगत् मायिक) प्रपंचों के लिए रोता है। (और अपनी आन्तरिक) मैल नहीं धोता है (यह) संसार स्वप्न के अंतर्गत का स्वप्न है, (नितान्त मिथ्या है)। जिस प्रकार बाजीगर (अपने खेल में) भटकता और भूलता है, (उसी प्रकार (दुनिया) झूठ और अहंकार में ठगी गयी है। (मनुष्य) स्वयं मार्ग प्राप्त करने वाला है और स्वयं ही कर्म करता है। हे नानक जो नाम में अनुरक्त हैं पूर्ण गुरु उनकी रक्षा करता है (और वे स्वाभाविक ही सहजावस्था में निमग्न हो जाते हैं) ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

बाबा आइआ है उठि चलणा इहु जगु झूठु पसारोवा ।
सचा घर सचड़ै सेवीऐ सचु खरा सचिआरोवा ॥
कूड़ि लबि जां थाइ न पासी अगै लहै न ठाओ ।
अंतरि आउ न बैसहु कहीऐ जिउ सुंञै घरि काओ ॥
जमणु मरणु वडा वेछोड़ा बिनसै जगु सबाए ।
लबि धंधै माइआ जगतु भुलाइआ कालु खड़ा रूआए ॥१॥
बाबा आवहु भाईहो गलि मिलह मिलि मिलि देह आसीसा हे ।
बाबा सचड़ा मेलु न चुकई प्रीतम कीआ देह असीसा हे ॥
आसीसा देवहो भगति करेवहो मिलिआ का किआ मेलो ।
इकि भूले नावहु थेहहु थावहु गुरसबदी सचु खेलो ॥
जम मारगि नही जाणा सबदि समाणा जुगि जुगि साचै वेसे ।
साजन सैण मिलहु संजोगी गुर मिलि खोले फासे ॥२॥
बाबा नांगड़ा आइआ जग महि दुखु सुखु लेखु लिखाइआ ।
लिखिअड़ा साहा ना टलै जेहड़ा पुरबि कमाइआ ॥
बहि साचै लिखिआ अंम्रितु बिखिआ जितु लाइआ तितु लागा ।
कामणिआरी कामण पाए बहुरंगी गलि तागा ।
होछी मति भइआ मनु होछा गुड़ सा मखी खाइआ ।
ना मरजादु आइआ कलि भीतरि नांगो बंधि चलाइआ ॥ ३ ॥
बाबा रोवहु जे किसै रोवणा जानीअड़ा बंधि पठाइआ है ।
लिखिअड़ा लेखु न मेटीऐ दरि हाकारड़ा आइआ है ॥
हाकारा आइआ जा तिसु भाइआ रंने रोवणहारे ।
पुत भाई भातीजे रोवहि प्रीतम अति पिआरे ।
भै रोवै गुण सारि समाले को मरै न मुइआ नाले ।
नानक जुगि जुगि जाण सिजाणा रोवहि सचु समाले ॥ ४ ॥ ५ ॥

हे बाबा (जो भी व्यक्ति इस संसार में) आया है उसे (यहाँ से) उठ कर चला जाना है; यह जगत् झूठा प्रसार है। सच्चा घर तो सच्चे (परमात्मा) की आराधना से मिलता है (क्योंकि सत्यवादी (होने से ही सच्चा घर) प्राप्त होता है)। झूठ और लोभ से (मनुष्य) स्थान नहीं पा सकेगा, और आगे (परलोक में भी उसे) ठिकाना नहीं मिलेगा। (ऐसे व्यक्तियों को कोई भी यह) नहीं कहेगा कि 'भीतर आओ और बैठो'। (उनकी दशा ठीक उसी प्रकार की होती है) जिस प्रकार सूने घर में कौवे (की होती है)। [जैसे कौवा सूने घर में आकर बैठता है और चला जाता है उसी प्रकार से मनुष्य भी हरी के दरबार में खाली ही रहते]। जन्मना-मरना बड़ा वियोग है सारा जगत् (इसी से) नष्ट हो रहा है। माया के धंधे और लोभ में सारा संसार भूला हुआ है और काल खड़ा-खड़ा सबको रुलाता है ॥ १ ॥

हे बाबा आओ (सभी) भाइयो से गले मिलो (और गले) मिल-मिल कर एक दूसरे को आशीर्वाद दो। हे बाबा (परस्पर यही) आशीर्वाद दो कि प्रियतम (परमात्मा) का सच्च

मिलाप कभी न समाप्त हो (यह मिलाप शाश्वत और अनन्त हो)। यही आशीर्वाद दो कि भक्ति करो (किन्तु जो व्यक्ति परमात्मा म) पहले से ही मिले हुए हैं, (उन्हें आशीर्वाद देकर) मिलाने की क्या आवश्यकता है ? (अरे आशीर्वाद देकर मिलाप कराना ही हो तो उन्हें आशीर्वाद दो) जो नाम (और सत्संग रूपी) ठौर-ठिकाने से भूले हुए हैं; (उनसे यह कहो कि) गुरु के उपदेश द्वारा सच्ची मेल लेलो। (उनसे यह बतलाओ कि) यम के मार्ग में न जाओ उस प्रभु रूपी हरी में समाए रहो जिसका युग-युगान्तरों में सच्चा मेल है। (उन) सज्जन-साथियों से बड़े संयोग से मेल होता है, जिन्होंने गुरु से मिलकर माया के बंधनों को खोल दिया है ॥ २ ॥

हे बाबा (परमात्मा के यहाँ से) दुःख-सुख (भोगने का) लेखा (हिसाब) लिखाकर (इस संसार म मनुष्य) नंगा ही आया है। जो कुछ पूर्व जन्मों के कर्मानुसार (दुःख-सुख भोगने को) लिख दिया गया है, वह मुहूर्त—समय [साहा=ब्याह का मुहूर्त] नहीं बदलता है। (उसने हरी ने) अमृत और विष (सुख तथा दुःख भोगने को) लिख दिया है, जिधर (उस प्रभु ने मनुष्य को) लगाया है उधर (वह) लगा है। (माया रूपी) जादूगरनी ने जादू डाल दिया है और गले में अनेक रंगवाले धागों को बाँध दिया है। [तात्पर्य यह है कि माया ने अनेक आकर्षणों में बाँध छोड़ा है—(जादूगर टोने के निमित्त अनेक रंग-बिरंगे धागे बाँधा करते हैं)]। ओछी (नीच तुच्छ बुद्धि के (संसर्ग से) मन भी ओछा हो गया (जिससे) वह गुड़ को मक्खी समेत निगल गया है। जीव कलियुग (संसार) में बेमरजाद (नंगा) ही आया और नंगा ही बाँध कर यहाँ से चला दिया गया। (आमतौर से लोग संसार में नंगे नहीं रहते इसलिए नंगा होना मर्यादा से विहीन है) ॥ ३ ॥

हे बाबा यदि और किसी के निमित्त रोना हो तो रोओ—(जीव तो यहाँ है नहीं वह तो इस शरीर से निकल गया है) प्यारे जीव को तो बाँध कर (परलोक) भेज दिया गया है। जो कुछ (पहले से) लिखा हुआ है वह नहीं मिटता (परमात्मा के) दरवाजे से बुलावा आ गया है। यदि उस (हरी को) अच्छा लगा तो बुलावा आ गया (अब) रोनेवाले रोवें। पुत्र भाई भतीजे तथा अन्य अत्यधिक स्नेही जन रोते हैं। मरे हुए के साथ कोई भी नहीं मरता है, (सब रो रोकर चुप हो जाते हैं) पर जो परमेश्वर को डर कर तथा उसके गुणों को याद करके रोता है, (वह बहुत ही अच्छा है)। हे नानक (जो व्यक्ति) सच्चे नाम को सँभार कर (याद कर) रोते हैं वे युग-युगान्तरों तक चतुर समझे जाते हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ वडहंस की वार, महला १

ललां बहलीमा की धुनि गावणी

सलोकु : नानक ऐसी रीति जिनु है पिआरा कीजिए ।
नानक साई भली परीति जितु साहिब सेती पति रहै ॥१॥

विशेष :—ललां और बहलीमा आपने प्रान्त के राजपूत जमींदार थे। एक बार ललों के प्रान्त में दुर्भिक्ष पड़ गया। उसने बहलीमा से पानी का छठा भाग देना स्वीकार करके,

तिपति रहे आघाइ मिटि भरमाविआ।
सभ अंदरि इकु वरतै किनै विरलै जाणिआ॥
जन नानक भए निहालु प्रभ की पासिआ॥२॥

पउड़ी जिस (हरी) ने जीवों की उत्पत्ति की है, उसी ने उनकी रक्षा भी की है। (जो जीव) (परमात्मा के) सच्चे नाम रूपी भोजन को करते हैं, (वे इससे) अघा कर तृप्त हो जाते हैं, (और उनकी भ्रम) भूल मिट जाती है। सभी (जड़-चेतन) के अंतर्गत एक (परमात्मा) ही बरत रहा है (व्याप्त है) (किन्तु इस तथ्य को) कोई विरला ही समझ पाता है। हे नानक (ऐसा) भक्त प्रभु की शरण में जाकर निहाल (धन्य) हो जाता है॥ २॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु सोरठि, महला १, घरु १, चउपदे

सबद [१]

सभना मरणा आइआ वेछोड़ा सभनाह ।
पुछहु जाइ सिआणिआ आगै मिलणु किनाह ॥
जिन मेरा साहिबु वीसरै वडड़ी वेदन तिनाह ॥ १ ॥
भी सालाहिहु साचा सोइ । जाकी नदरि सदा सुखु होइ ॥ रहाउ ॥
वडा करि सालाहणा है भी होसी सोइ ।
सभना दाता एकु तू माणस दाति न होइ ॥
जो तिसु भावै सो थीऐ रंन कि रुंनै होइ ॥ २ ॥
धरती उपरि कोट गड़ केती गई वजाइ ।
जो असमानि न मावनी तिन नकि नथा पाइ ॥
जे मन जाणहि सूलीआ काहे मिठा खाहि ॥ ३ ॥
नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ।
जे गुण होनि त कटीअनि से भाई से वीर ॥
अगै गए न मंनीअनि मारि कढहु वेपीर ॥ ४ ॥ १ ॥

सभी का मरना अवश्यंभावी है और सब का वियोग भी (अवश्यम्भावी) है। किसी चतुर (सयाने) के पास जाकर पूछो कि (मर कर) किसी को (हरि का) मिलाप परलोक में होगा ? जिन्होंने मेरे मालिक को भुला दिया है उन्हें बड़ी वेदना होगी (तात्पर्य यह कि उन्हें अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे) ॥१॥

उस सच्चे (परमात्मा) की फिर, (पुनः—बारबार) स्तुति करो जिसकी कृपादृष्टि से सदैव सुख प्राप्त होता है ॥रहाउ॥

महान् (समझ) कर, (उसकी) स्तुति करो (वही प्रभु) (वर्तमान में) है (भूत में) था (और भविष्य में) होगा। (हे प्रभु) एक तू ही सब का दाता है, मनुष्य के (दिए हुए) दान हो नहीं सकते। जो (उस प्रभु को) भाता है वही होता है स्त्री की भाँति रोने से क्या होता है ? ॥२॥

धरती के ऊपर कोट (दुर्ग) और गढ़ बनाकर, कितने ही (लोग) (मौवत) बजा गए, (तात्पर्य यह कि राज्य कर गए)। जो (लोग अहंकार से) आकाश में भी नहीं समाते थे उनकी नाक में (मुहारा की भाँति) नाथ डाल दी गई। हे मन यदि (तू) (विषयों को) रसी की भाँति जानता तो (उन्हें) मीठे (की भाँति) क्यों खाता ? ॥१॥

हे नानक (जिस मनुष्य में) जितने अवगुण होते हैं, (उसके गले में उतनी ही जंजीरें (पड़ती) । यदि गुण हों (तभी ये जंजीरें) कटेंगी गुण ही हमारे भाई और मित्र हैं। (जिनके गुरु नहीं हैं, अर्थात् निगुरे) आगे (परलोक में) वे माने नहीं जाएँगे (स्वीकार नहीं किए जाएँगे) और बेपीर (निगुरा) कह कर (परमात्मा के दरबार से वे) निकाल दिए जाएँगे ॥८॥१॥

[२]

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु ।
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु ॥
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु ॥ १ ॥
बाबा माइआ साथि न होइ ।
इनि माइआ जगु मोहिआ विरला बूझै कोइ ॥ रहाउ ॥
हाणु हटु करि आरजा सचु नामु करि वथु ।
सुरति सोच करि भांडसाल तिसु विचि तिस नो रखु ॥
वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु ॥ २ ॥
सुणि सासत सउदागरी सतु घोड़े लै चलु ।
खरचु बंनु चंगिआईआ मतु मन जाणहि कलु ॥
निरंकार कै देसि जाहि ता सुखि लहहि महलु ॥ ३ ॥
लाइ चितु करि चाकरी मंनि नामु करि कंमु ।
बंनु बदीआ करि धावणी ता को आखै धंनु ॥
नानक वेखै नदरि करि चड़ै चवगण वंनु ॥ ४ ॥ २ ॥

मन को हलवाहा (बना), करनी को कृषि (खेती का व्यवसाय) बनाओ, श्रम को पानी तथा शरीर को खेत बनाओ। नाम को बीज तथा संतोष को सुहागा (बनाओ)। (सब कुछ करने के पश्चात् कृषि की फल-प्राप्ति के लिए भाग्य का अवलम्बन लेना पड़ता है, क्योंकि कृषि में ईति भीति आदि बाधाएँ बनी रहती हैं)। नम्रता (गरीबी वेसु) को ही रक्षा करनेवाली (बाड़) बना। भावपूर्ण कार्य करने से (यह बीज) जमेगा (जो लोग इस प्रकार की खेती करते हैं) उनके घर को भाग्यशाली देखोगे ॥१॥

हे बाबा माया साथ नहीं जाती। इस माया ने ही जगत् को मोहित किया है, कोई विरला ही (इस तथ्य को) समझता है ॥रहाउ॥

नित्य नाश होती हुई आयु को दुकान बनाओ और (परमात्मा के) सच्चे नाम को सौदा समझो। ध्यान और विचार को गोदाम बनाओ उसी में (दुकान के) नाम रूपी सौदे को रखो। (सन्त रूपी) व्यापारियों के साथ व्यापार करो और (भक्ति रूपी) लाभ प्राप्त करके प्रसन्न हो ॥२॥

शान्त-भजन को ही सौदागरी बनाओ (और उस सौदे को) सत्य रूपी घोड़े पर (लाद कर ले जाओ। शुभ कर्मों का ही पाथेय (मार्ग का खर्च) (बना कर) बाँधो ऐ मन कल (का भरोसा) मत समझो (जो कुछ करना हो उसे आज ही कर लो कल पर मत टालो)। (हे प्राणी यदि उपर्युक्त सौदे को लेकर उपर्युक्त विधि से) निरंकार (परमात्मा के) देश में जाएगा तो सुख के साथ (उस प्रभु का) महल प्राप्त हो जाएगा ॥३॥

(परमात्मा में) चित्त के लगाने को नौकरी समझो नाम को (निश्चयपूर्वक) मानना ही (उस नौकरी का) काम है, पापों को रोकना ही (उस नौकरी की) दौड़धूप है, (इस प्रकार की नौकरी करनेवाले को लोग धन्य धन्य कहेंगे। हे नानक यदि (हरि तेरी ओर) कृपादृष्टि से देखेगा तो तेरा चौगुना रंग चढ़ेगा ॥४॥२॥

[३]

चउतुके

माइ बाप को बेटा नीका ससुरै चतुरु जवाई।
बाल कंनिआ कउ बापु पिआरा भाई कौ अति भाई ॥
हुकमु भइआ बाहरु घरु छोडिआ खिन महि भई पराई।
नामु दानु इसनानु न मनमुखि तितु तनि धूड़ि धुमाई ॥ १ ॥
मनु मानिआ नामु सखाई।
पाइ परउ गुर कै बलिहारै जिनि साची बूझ बुझाई ॥ रहाउ ॥
जग सिउ झूठ प्रीति मनु बेधिआ जन सिउ वादु रचाई।
माइआ मगनु अहिनिसि मगु जोहै नामु न लेवै मरै बिखु खाई ॥
गंधण वैणि रता हितकारी सबदै सुरति न आई।
रंगि न राता रसि नहि बेधिआ मनमुखि पति गवाई ॥ २ ॥
साध सभा महि सहजु न चाखिआ जिहबा रसु नही राई।
मनु तनु धनु अपुना करि जानिआ दर की खबरि न पाई ॥
अखी मीटि चलिआ अंधिआरा घरु दरु दिसै न भाई।
जम दरि बाधा ठउर न पावै अपुना कीआ कमाई ॥ ३ ॥
नदरि करे ता अखी वेखा कहणा कथनु न जाई।
कंनी सुणि सुणि सबदि सलाही अंम्रितु रिदै वसाई ॥
निरभउ निरंकारु निरवैरु पूरन जोति समाई।
नानक गुर विणु भरमु न भागै सचि नामि वडिआई ॥ ४ ॥ ३ ॥

माँ बाप को बेटा तथा ससुर को चतुर दामाद प्यारा होता है। बच्चों और कन्याओं को बाप प्यारा होता है और भाई को भाई अति प्रिय होता है। (किन्तु जब परमात्मा का) हुक्म होता है (तो जीव) घर बाहर सब को छोड़ देता है और क्षण मात्र में (उसकी सारी सम्पत्ति) पराई हो जाती है। जो मनमुख नाम दान और स्नान (में विश्वास नहीं रखता) उसके शरीर में धूल उड़ उड़ कर पड़ती है (अर्थात् वह बरबाद होता है) ॥१॥

(जब मैंने) नाम को (अपना) सहायक समझा तो (मेरा) मन मान गया (शान्त हो गया)। (मैं) गुरु के पाँव पड़ता हूँ (उन पर) बलिहारी होता हूँ जिन्होंने सच्चा ज्ञान समझा दिया है ॥रहाउ॥

(मनमुख का) मन जगत् की झूठी प्रीति में बिंधा हुआ है (और वह हरी के) दासों के साथ झगड़ा मचाता रहता है। (वह) माया में निमग्न हुआ अहर्निश (माया का) रास्ता देखता रहता है। (वह) नाम नहीं लेता (और विषय रूपी) विष खा कर मरता रहता है। (वह) गन्दे वचन (बात) में रत रहता है और उसका प्रेमी हो गया है, (परमात्मा अथवा गुरु के) शब्द का उसे ध्यान नहीं आता। (वह हरी के प्रेम में नहीं अनुरक्त होता है और न (उसके) रस में ही उसका मन बेधता है (द्रवीभूत होता है) (इस प्रकार) मनमुख (अपनी) प्रतिष्ठा गवाँ देता है ॥२॥

(उस मनमुख ने) सत्संगति में सहजावस्था का रसास्वादन नहीं किया। (उसकी) जीभ में राई भर भी (नाम-उच्चारण का) रस नहीं आया। (वह अहंता वश) तन मन धन को अपना मान बैठा (उसे) (परमात्मा के) दरवाजे की (जरा भी) खबर नहीं मिली। (अंत में वह अपनी) आँखें बन्द कर अंधकार में चल पड़ा (उस समय उसे) घर बार तथा भाई-बन्धु कुछ भी नहीं दिखाई पड़ते (अथवा हे भाई, उस समय उसे अपना घर और दरवाजा कुछ भी नहीं सूझ पड़ता)। अपनी ही की हुई कमाई के कारण (वह) यमराज के दरवाजे पर बाँधा जाता है (और उसे कोई बचने का) स्थान नहीं मिलता ॥ ३ ॥

यदि (परमात्मा) कृपादृष्टि करे, तभी (वह) आँखों से देखा जा सकता है (अन्यथा नहीं) (उसके सम्बन्ध में) कुछ कथन नहीं किया जा सकता। कानों से सुन सुन कर शब्द द्वारा (प्रभु का) गुणगान करना चाहिए, (जिससे नाम रूपी) अमृत हृदय में समा जाय। (प्रभु) निर्भय निरंकार और निर्वैर है (उसकी) पूर्ण ज्योति (सर्वत्र) समाई हुई है। हे नानक गुरु के बिना भ्रम नहीं भागता) (भ्रम नहीं निवृत्त होता) सच्चे नाम की (बहुत बड़ी) महत्ता है ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

दुतुके

पुड़ु धरती पुड़ु पाणी आसणु चारि कुंट चउबारा ।
सगल भवण की मूरति एका मुखि तेरै टकसाला ॥ १ ॥
मेरे साहिबा तेरे चोज विडाणा ।
जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा आपे सरब समाणा ॥ रहाउ ॥
जह जह देखा तह जोति तुमारी तेरा रूपु किनेहा ।
इकतु रूपि फिरहि परछंना कोइ न किस ही जेहा ॥ २ ॥
अंडज जेरज उतभुज सेतज तेरे कीते जंता ।
एकु पुरबु मै तेरा देखिआ तू सभना माहि रवंता ॥ ३ ॥
तेरे गुण बहुते मै एकु न जाणिआ मै मूरख किछु दीजै ।
प्रणवति नानक सुणि मेरे साहिबा डुबदा पथरु लीजै ॥ ४ ॥ ४ ॥

(हे प्रभु) (तेरी एक रूप का तख्ता धरती है, और दूसरी रूप का तम्बा पानी (बादल सहाय यह कि आकाश) है, चारो दिशाओं के चौपाल म (तेरे बैठने का) आसन है। समस्त भुवनों की एक ही मूर्ति है, (अर्थात् समस्त सृष्टि का एक ही स्वामी है) और (प्रभु के ही) मुंह पर (खोटे-खरे मनुष्यों की) टकसाल (की भाँति) (परख होती है) ॥ १ ॥

हे मेरे साहब तेरे कौतुक आश्चर्यमय हैं। (तू ही) जल थल तथा धरती और आकाश के बीच में भरपूर लीन है (व्याप्त है) (और तू ही सबमें समाया हुआ है) ॥ रहाउ ॥

(हे हरि) जहाँ-जहाँ भी (मैंने) देखा है, वहाँ वहाँ तेरी ही ज्योति दिखायी पड़ी है तेरा रूप किस प्रकार है ? (हे प्रभु) तू एक रूप में ही परिच्छिन्न होकर (सब जगह) विचरण कर रहा है, (किन्तु फिर भी) कोई (एक रूप) किसी (दूसरे रूप से) नहीं मिलता ॥ २ ॥

(जीवों की चार खानियाँ)—अंडज जेरज उद्भिज और स्वेदज—के प्राणी तेरे ही द्वारा निर्मित किए गए हैं। (हे प्रभु) मैंने तेरा एक माहात्म्य यह देखा है (कि) तू सब में रमा हुआ है ॥ ३ ॥

तेरे अनन्त गुण हैं, (मैं उनमें से) एक भी नहीं जानता; मुझ मूर्ख को भी कुछ (एकाध) गुण दे दे। नानक विनयपूर्वक कहता है 'हे मेरे साहब सुन, मुझ पाप से भरे हुए पत्थर के समान भारी (डूबती) (व्यक्ति) को तार दे।' ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

हम पापी पतितु परम पाखंडी तूं निरमलु निरंकारी ।
अमृत चाखि परम रसि राते ठाकुर सरणि तुमारी ॥ १ ॥
करता तू मै माणु निमाणे ।
माणु महतु नामु धनु पलै साचै सबदि समाणे ॥ रहाउ ॥
तू पूरा हम ऊरे होछे तू गउरा हम हउरे ।
तुझ ही मन राते अहिनिसि परभाते हरि रसना जपि मन रे ॥ २ ॥
तुम साचे हम तुम ही राचे सबदि भेदि फुनि साचे ।
अहिनिसि नामि रते से सूचे मरि जनमे से काचे ॥ ३ ॥
अवरु न दीसै किसु सालाही तिसहि सरीकु न कोई ।
प्रणवति नानकु दासनिदासा गुरमति जानिआ सोई ॥४॥५॥

(हे स्वामी) मैं पापी पतित एवं महान् पाखण्डी हूँ तू (परम) निर्मल और निराकार स्वरूप है। हे ठाकुर, तेरी शरण में आकर (मैंने नाम रूपी) अमृत का रसास्वादन किया है और महान् आनन्द में अनुरक्त हो गया हूँ ॥ १ ॥

हे कर्ता तू मुझ मानरहित का मान है। मेरे लिए यही मान बड़ाई है कि नाम-धन मेरे पल्ले हो और (मैं) सच्चे शब्द में रत रहूँ ॥ रहाउ ॥

तू पूर्ण है मैं अल्प (कम) और ओछा हूँ तू गंभीर है और मैं हल्का हूँ। (मैं) अहर्निश तथा प्रभात में तुम्हीं में मन से अनुरक्त हुआ हूँ अरे मन रसना से हरि का जप कर ॥२॥

[८]

तू प्रभ दाता दानि मति पूरा हम थारे भेखारी जीउ ।
मै किआ मागउ किछु थिरु न रहाई हरि दीजै नामु पिआरी जीउ ॥१॥
घटि घटि रवि रहिआ बनवारी ।
जलि थलि महीअलि गुपतो वरतै गुरसबदी देखि निहारी जीउ ॥रहाउ॥
मरत पइआल अकासु दिखाइओ गुरि सतिगुरि किरपा धारी जीउ ।
सो ब्रहमु अजोनी है भी होनी घट भीतरि देखु मुरारी जीउ ॥२॥
जनम मरन कउ इहु जगु बपुड़ो इनि दूजै भगति विसारी जीउ ।
सतिगुरु मिलै त गुरमति पाईऐ साकत बाजी हारी जीउ ॥३॥
सतिगुर बंधन तोड़ि निरारे बहुड़ि न गरभ मझारी जीउ ।
नानक गिआन रतनु परगासिआ हरि मनि वसिआ निरंकारी जीउ ॥४॥८॥

हे प्रभु, तू दाता है, तू दान और बुद्धि में परिपूर्ण है, हम तो तेरे भिखारी (याचक) हैं। (हे हरी) मैं (तुझसे) क्या माँगूँ ? (इस जगत् में तो) कोई भी (वस्तु) स्थिर नहीं रहती। (हे हरी) मुझे प्यारा (वस्तु) नाम दे ॥ १ ॥

बनवारी (परमात्मा) घट-घट में रम रहा है। (वही परमात्मा) जल में, थल में और पृथ्वी-आकाश के मध्य में गुप्त रूप से विराजमान है (व्याप्त है, परिपूर्ण है)। गुरु के शब्द द्वारा देख कर (मैंने उस प्रभु का) दर्शन किया है ॥ रहाउ ॥

सद्गुरु ने कृपा करके मृत्युलोक, पाताल लोक तथा आकाश में (व्याप्त) (हरी का) दर्शन करा दिया। वह अजन्मा ब्रह्म (वर्तमान में) है, (भूतकाल में) था (और भविष्य में) रहेगा। उस मुरारी (परमेश्वर) को अपने घट में देख लो ॥ २ ॥

जन्मने-मरने के लिए तो यह बेचारा जगत् ही बना है। द्वैतभाव में पड़कर (इसने) भक्ति को भुला दिया है। (यदि) सद्गुरु से मिला जाय तभी गुरु की (वास्तविक) बुद्धि प्राप्त होती है; शाक्त (शक्ति अथवा माया का उपासक तो द्वैतभाव में होने के कारण जीवन की) बाज़ी हार जाता है ॥ ३ ॥

सद्गुरु बंधनों को तोड़ कर निराला (स्वतंत्र पृथक्) कर देता है (जिससे) फिर माया के गर्भ के मध्य नहीं (आना पड़ता)। हे नानक (गुरु द्वारा प्रदत्त) ज्ञान-रूपी रत्न प्रकाशित हो गया और निरंकारी हरी मन में बस गया ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

जिसु जलनिधि कारणि तुम जगि आए सो अंमृत गुर पाही जीउ ।
छोडहु वेसु भेख चतुराई दुबिधा इहु फलु नाही जीउ ॥१॥
मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ ।
बाहरि ढूढत बहुतु दुखु पावहि घरि अंमृतु घट माही जीउ ॥रहाउ॥

अवगुण छोडि गुणा कउ धावहु करि अवगुण पछुताही जीउ ।
सर अपसर की सार न जाणहि फिरि फिरि कीच बुडाही जीउ ॥२॥
अंतरि मैलु लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ ।
निरमल नामु जपहु सद गुरमुखि अंतर की गति ताही जीउ ॥३॥
परहरि लोभु निंदा कूड़ु तिआगहु सचु गुर बचनी फलु पाही जीउ ।
जिउ भावै तिउ राखहु हरि जीउ जन नानक सबदि सलाही जीउ ॥४॥९॥

जिस (अमृत)-सागर के निमित्त तुम इस जगत् में उत्पन्न हुए हो वह अमृत गुरु के पास है। [जीउ=जी संबोधन का चिह्न है। पद में लालित्य लाने एवं पद-पूर्ति के लिए 'जीउ'—(जी) का प्रयोग किया गया है]। चतुराई और पाखण्ड का वेश—दिखावा छोड़ दो दुविधा में इस (अमृत—)—फल की प्राप्ति नहीं होती ॥ १ ॥

अरे मन स्थिर हो जा कहीं (इधर उधर) मत भाग। (उस अमृत को) बाहर ढूँढने में बहुत दुःख पायेगा घर ही में घट के भीतर अमृत है ॥ रहाउ ॥

अवगुण छोड़ कर गुणों की ओर दौड़ो (यदि संयोगवश कभी) अवगुण (पाप) हो जाय (तो उसके निमित्त) पश्चात्ताप करो (प्रायश्चित्त करो)। (साधारणतया प्राणियों को) अच्छे-बुरे की (कुछ) खबर (ज्ञान) नहीं है, (अतएव वे अवगुणों को करके) बार-बार (पापों के) कीचड़ में (फँस कर) डूबते हैं ॥ २ ॥

(तुम्हारे) अंतस्‌ (अंतःकरण में) मल (पाप) लोभ (और) अनेक झूठ (आदि अवगुण) (भरे हैं) तो फिर बाहरी स्नान किस लिए करते हो? (उससे क्या लाभ होगा?)। गुरु द्वारा (प्रदत्त) सदैव निर्मल (हरि का) नाम जपो उसी के द्वारा अन्तःकरण की गति (शुद्धि) (होगी) ॥ ३ ॥

लोभ का परित्याग कर दो निन्दा तथा झूठ भी त्याग दो। गुरु के शब्द द्वारा सच्चा फल प्राप्त होगा। हे हरि जी तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा ही रख दास नानक तो गुरु के शब्द द्वारा तेरा गुणगान करता है ॥४॥९॥

[१०]

पंचपदे

अपना घरु मूसत राखि न साकहि की परघरु जोहन लागा ।
घरु दरु राखहि जे रसु चाखहि जो गुरमुखि सेवकु लागा ॥१॥
मन रे समझु कवन मति लागा ।
नामु विसारि अनरस लोभाने फिरि पछुताहि अभागा ॥रहाउ॥
आवत कउ हरख जात कउ रोवहि इहु दुखु सुखु नाले लागा ।
आपे दुख सुख भोगि भोगावै गुरमुखि सो अनरागा ॥२॥
हरि रसि ऊपरि अवरु किआ कहीऐ जिनि पीआ सो तृपतागा ।
माइआ मोहित जिनि इहु रसु खोइआ जा साकत दुरमति लागा ॥३॥
मन का जीउ पवनपति देही देही महि देउ समागा ।
जे तू देहि त हरि रसु गाई मनु तृपतै हरि लिव लागा ॥४॥

साध संगति महि हरि रसु पाईऐ गुरि मिलिऐ जम भउ भागा ।
नानक राम नामु जपि गुरमुखि हरि पाए मसतकि भागा ॥५॥१०॥

तू अपने लुटते हुए घर की रक्षा तो कर नहीं सकता फिर क्यों दूसरे के घर को (लूटने की) दृष्टि से देखने लगा ? (तात्पर्य यह है कि तू औरों को लूट कर ऐश्वर्य भोगना चाहता है, पर पास तेरे आत्मा का लूट रहे हैं और तुझे खबर भी नहीं) । यदि तू हरि-रस पिये (तभी) अपना घरबार बचा सकता है; (यह काम वही कर सकता है) जो गुरु द्वारा सेवक बन कर, (नाम में अनुरक्त रहे) ॥१॥

अरे मन समझ किस बुद्धि में लगा हुआ है । (तू) नाम छोड़ कर अन्य रसों में लुब्ध है, अरे अभागे (चेत जा नहीं तो) फिर पछतायेगा ॥रहाउ॥

(माया—सम्पत्ति) (जब) आती है, (तो मनुष्य) हर्षित होता है, (और जब यह) जाती है, (तो वह) रोता है (इस प्रकार) ये सुख-दुःख (मनुष्य के) साथ लगे हुए हैं । जो गुरुमुख है वह वैरागी (अनरागी) होता है, (क्योंकि वह जानता है कि परमात्मा) स्वयं ही सुख दुःख के भागों को (जीवों से) भोगाता है ॥२॥

हरि-रस (के आस्वादन के) उपरान्त और क्या कहा जाय ? (तात्पर्य यह कि हरि रस से बढ़ कर कोई अन्य रस नहीं है) । जिसने (इस रस को) पिया है, वह तृप्त हो गया है । माया से मोहित होकर, जिसने इस (परम) रस को खो दिया वह साकत (माया का उपासक) बनकर दुर्बुद्धि में लग गया ॥३॥

जो देव मन का प्राण और प्राणों का स्वामी है, (वह अनन्त प्रभु) देह-देह (घट-घट) में समाया हुआ है, (अर्थात् जो प्रभु मन और प्राणों का आधार है वह घट-घट में व्याप्त है) । (हे प्रभु) यदि तू देता है, तभी हरि रस का गुणगान होता है (तभी) मन तृप्त होता है और हरि में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लगती है ॥४॥

सत्संगति में ही हरि-रस प्राप्त होता है गुरु से मिलने पर यम का भय भग जाता है । हे नानक (पूर्व जन्म के) भाग्यानुसार गुरु द्वारा राम नाम जप के हरि की प्राप्ति हो गयी ॥५॥१०॥

[११]

सरब जीआ सिरि लेखु धुराहू बिनु लेखै नही कोई जीउ ।
आपि अलेखु कुदरति करि देखै हुकमि चलाए सोई जीउ ॥१॥
मन रे राम जपहु सुखु होई ।
अहिनिसि गुर के चरन सरेवहु हरि दाता भुगता सोई ॥रहाउ॥
जो अंतरि सो बाहरि देखहु अवरु न दूजा कोई जीउ ।
गुरमुखि एक द्रिसटि करि देखहु घटि घटि जोति समोई जीउ ॥२॥
चलतौ ठाकि रखहु घरि अपनै गुर मिलिऐ इह मति होई जीउ ।
देखि अद्रिसटु रहउ बिसमादी दुखु बिसरै सुखु होई जीउ ॥३॥

पीवहु अपिउ परम सुखु पाईऐ निज घरि वासा होई जीउ।
जनम मरण भव भंजनु गाईऐ पुनरपि जनमु न होई जीउ ॥४॥

ततु निरंजनु जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जीउ।
अपरंपर पारब्रहमु परमेसरु नानक गुरु मिलिआ सोई जीउ ॥५॥११॥

सारे जीवों के सिर के ऊपर (परमात्मा के दरबार में) कर्मानुसार (पहले से ही) लेख लिखा रहता है, (जिसके अनुसार उन्हें सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं) इस लेख के बिना कोई भी जीव नहीं है। स्वयं (परमात्मा के ऊपर) कोई भी लेख नहीं है, (क्योंकि वह कर्मों से निर्लिप्त है)। (वह) कुदरत (माया, शक्ति अथवा प्रकृति) की रचना करके (उसकी) देखरेख करता है (और उसे अपने) हुक्म के अनुसार चलाता है ॥१॥

अरे मन राम का जप करो (जिससे) सुख हो। अहर्निश गुरु के चरणों की आराधना करो; (वही) हरि दाता है (और वही दान देकर) भोगने वाला है ॥रहाउ॥

जो (हरि) (तुम्हारे) अन्तर्गत (विराजमान है), (वही सृष्टि के) बाहर है (उसी को सर्वत्र) देखो (उसे छोड़ कर) और कोई दूसरा नहीं है। गुरु की शिक्षा द्वारा (द्वैत मिटा कर) एक (अद्वैत) दृष्टि से देखो (कि उसी की) ज्योति घट-घट में समाई हुई है ॥२॥

चंचलमान (मन को) अपने ही घर (हृदय) में टिका कर रखो (किन्तु) यह मति (बुद्धि) सद्गुरु के मिलने पर ही प्राप्त होती है। अदृश्य (परमात्मा) को देख कर (साक्षात्कार करके), आश्चर्यमयी स्थिति (विस्माद अवस्था) में (स्थित रहो) (इसके फलस्वरूप) (सारे) दुःख विस्मृत हो जाते हैं (और अनन्त) सुख की प्राप्ति होती है ॥३॥

(नाम रूपी) अमृत का पान करो और परम सुख पाओ (इससे) तुम्हारा निवास अपने घर में हो जायगा (तात्पर्य यह कि आत्मज्ञान हो जायगा)। जन्म-मरण तथा संसार (के दुःखों को) नष्ट करनेवाले (परमात्मा का) गुणगान करो (इससे तुम्हारा) फिर जन्म नहीं होगा ॥४॥

वह माया से रहित हरि (निरंजन) सब का तत्त्व है और सभी जगह उसकी ज्योति (सत्ता) है उसमें और मुझमें कोई भी अन्तर नहीं है। हे नानक अपरंपार परब्रह्म और परमेश्वर (मुझे) गुरु के रूप में मिला है (मेरा गुरु परब्रह्म परमेश्वर ही है) ॥५॥११॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ३

[१२]

जा तिसु भावा तदही गावा। ता गावे का फलु पावा ॥
गावे का फलु होई। जा आपे देवै सोई ॥१॥

मन मेरे गुर बचनी निधि पाई। ताते सच महि रहिआ समाई ॥रहाउ॥

गुर साखी अंतरि जागी । ता चंचल मति तिआगी ॥
गुर साखी का उजीआरा । ता मिटिआ सगल अंध्यारा ॥२॥

गुरचरनी मनु लागा । ता जम का मारगु भागा ॥
भै विचि निरभउ पाइआ । ता सहजै कै घरि आइआ ॥३॥

भणति नानकु बूझै को बीचारी । इसु जग महि करणी सारी ।
करणी कीरति होई । जा आपे मिलिआ सोई ॥४॥१॥१२॥

जब उस प्रभु को अच्छा लगा तभी (उसका) गुणगान किया और तभी (उसके गुणगान करने का) फल प्राप्त किया । (प्रभु के) गुणगान का तभी फल प्राप्त होता है, जब (प्रभु) अपने आप (उस फल को) दे ॥१॥

हे मेरे मन, गुरु के वचनों से (सभी सुखों का) भाण्डार प्राप्त हो गया । उसी के कारण (मैं) सत्य में समाहित हो गया ॥रहाउ॥

गुरु की शिक्षा अन्तःकरण के अन्तर्गत प्रकाशित हो गयी इससे (मैंने) चंचल बुद्धि त्याग दी (गुरु की शिक्षा धारण करने से बुद्धि की चंचलता समाप्त हो गई बुद्धि स्थिर हो गयी) । गुरु की शिक्षा का प्रकाश (हो गया), उससे सारा अन्धकार मिट गया ॥ २ ॥

(जब) गुरु के चरणों में मन लग गया तो यमराज का मार्ग समाप्त हो गया । (परमात्मा के) भय के अन्तर्गत (मैंने) निर्भय (हरि) को पा लिया जिसके फलस्वरूप (मैं) सहजावस्था रूपि में स्थित गया ॥ ३ ॥

नानक कहता है कि कोई विरला विचारवान् ही इस बात को समझता है कि इस संसार में सर्वोत्तम करणी क्या है । वह करणी हरि की कीर्ति (का गुणगान) है, जो तभी प्राप्त होती है जब वह हरि आप मिले ॥ ४ ॥ १ ॥ १२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सोरठि महला १, घरु १

असटपदीआं, चउतुकी [१]

दुबिधा न पड़उ हरि बिनु होरु न पूजउ मड़ै मसाणि न जाई ।
त्रिसना राचि न पर घरि जावा त्रिसना नामि बुझाई ॥
घर भीतरि घरु गुरू दिखाइआ सहजि रते मन भाई ।
तू आपे दाना आपे बीना तू देवहि मति साई ॥१॥

मनु बैरागि रतउ बैरागी सबदि मनु बेधिआ मेरी माई ।
अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई ॥रहाउ॥

असंख बैरागी कहहि बैराग सो बैरागी जि खसमै भावै ।
हिरदै सबदि सदा भै रचिआ गुर की कार कमावै ।
एको चेतै मनूआ न डोलै धावतु वरजि रहावै ॥
सहजे माता सदा रंगि राता साचे के गुण गावै ॥२॥

मनूआ पउणु बिंदु सुखवासी नामि वसै सुख भाई ।
जिहबा नेत्र सोत्र सचि राते जलि बूझी तुझहि बुझाई ॥
आस निरास रहै बैरागी निज घरि ताड़ी लाई ।
भिखिआ नामि रजे संतोखी अंम्रितु सहजि पीआई ॥३॥
दुबिधा विचि बैरागु न होवी जब लगु दूजी राई ।
सभु जगु तेरा तू एको दाता अवरु न दूजा भाई ॥
मनमुखि जंत दुखि सदा निवासी गुरमुखि दे वडिआई ।
अपर अपार अगम अगोचर कहणै कीम न पाई ॥४॥
सुंन समाधि महा परमारथु तीनि भवण पति नामं ।
मसतकि लेखु जीआ जगि जोनी सिरि सिरि लेखु सहामं ॥
करम सुकरम कराए आपे आपे भगति द्रिड़ामं ।
मनि मुखि जूठि लहै भै मानं आपे गिआनु अगामं ॥५॥
जिन चाखिआ सेई सादु जाणनि जिउ गुंगे मिठिआई ।
अकथै का किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई ॥
गुरु दाता मेले ता मति होवै निगुरे मति न काई ।
जिउ चलाए तिउ चालह भाई होरि किआ को करे चतुराई ॥६॥
इकि भरमि भुलाए इकि भगती राते तेरा खेलु अपारा ।
जितु तुधु लाए तेहा फलु पाइआ तू हुकमि चलावणहारा ॥
सेवा करी जे किछु होवै अपणा जीउ पिंडु तुमारा ।
सतिगुरि मिलिऐ किरपा कीनी अंम्रित नामु अधारा ॥७॥
गगनंतरि वासिआ गुण परगासिआ गुण महि गिआन धिआनं ।
नामु मनि भावै कहै कहावै ततो ततु वखानं ॥
सबदु गुर पीरा गहिर गंभीरा बिनु सबदै जगु बउरानं ।
पूरा बैरागी सहजि सुभागी सचु नानक मनु मानं ॥८॥१॥

(मैं) द्वैतभाव में नहीं पड़ता (एकमात्र) हरी के बिना और किसी को नहीं पूजता और मरघट में नहीं जाता। (मैं) तृष्णा में लग कर पराए घर नहीं जाता (हरी के पवित्र) नाम ने (मेरी सारी) तृष्णा शान्त कर दी है। घर में (हृदय में) ही गुरु ने (वास्तविक) घर (आत्मस्वरूप) दिखा दिया है। हे भाई, हमारे मन सहजावस्था (तुरीय पद चतुर्थ पद में) रम रहा है। (हे हरी तू) आप ही सब कुछ जानता और देखता है; जो तू देता है (उसी में मनुष्य रहता) निर्मल बुद्धि है ॥ १ ॥

मन वैराग्य भावना में रँग कर बैरागी हो गया है। हे मेरी माँ हरि-नाम (शब्द) ने मेरा मन बेध दिया है। अन्तःकरण में (हरी की) अखण्ड ज्योति (बस गई है) और उसकी वाणी (अच्छीभाँति हृदय में रिस गई है) और सच्चे साहब में एकनिष्ठ ध्यान लग गया है ॥ रहाउ ॥

असंख्य बैरागी वैराग्य वैराग्य कथन तो करते हैं किन्तु जो पति (परमात्मा) की अच्छा लगता है वही बैरागी है। जिसका मन नाम द्वारा सदा हरी के भय में लगा रहे वही

सद्गुरु के कार्य करता है। (साधक) एक (परमात्मा) को जैसे मन को भटकने न दे और दौड़ते हुए मन को रोक रखे। (वह) सहजावस्था में निमग्न रहे और सदैव (परमात्मा के) प्रेम में अनुरक्त रहे (और) सत्य (परमात्मा का) गुणगान करता रहे ॥ २ ॥

वायु के समान चंचल मन यदि थोड़ी देर भी (बिंदु मात्र भी) टिक कर बैठे, तो हे भाई, (वह) नाम में स्थिर हो सकता है (उसकी) जिह्वा नेत्र और श्रवण—(सब के सब) सत्य में अनुरक्त हो जाते हैं, (उसकी तृष्णाग्नि) बुझ जाती है (हे हरी उसे तू ही) बुझाता है। (जो) आशा-निराशा दोनों से विरक्त रहता है, (वही) अपने (वास्तविक घर (आत्म स्वरूप) में समाधि लगा सकता है, (वह) नाम रूपी भिक्षा से तृप्त एवं सन्तुष्ट रहता है और सहजावस्था (चतुर्थ पद तुरीय पद) के अमृत को पीता है ॥ ३ ॥

जब तक दुविधा है और राई भर (तिलमात्र तनिक) भी द्वैतभाव है, (तब तक) वैराग्य नहीं होता। (हे प्रभु) सारा जगत् तेरा है, तू ही एक दाता है, हे भाई, (प्रभु को छोड़ कर कोई) दूसरा (दाता) नहीं है। मनमुख प्राणी सदैव दुःख में ही निवास करते हैं, गुरु के उपदेशानुसार (चलने से हरी शिष्य को) बड़ाई देता है। (हरी) अपरंपार, अगम तथा अगोचर है (उसकी) कीमत कहने में नहीं आती ॥ ४ ॥

(हे प्रभु) (तेरा) नाम ही शून्य समाधि परम परमार्थ (मोक्ष-पद) तथा तीनों भुवनों का स्वामी है। जीवों के मस्तक पर (उस हरी की मर्जी का) लेख है, (उसी के अनुसार वे) जगत् में जन्म लेते हैं और अपने-अपने सिर के लेख के अनुसार दुःख-सुख सहते हैं। (हरी ही) कर्म और शुभ कर्म कराता है (और वही) भक्ति भी दृढ़ कराता है। (परमात्मा का) भय मानने से मन और मुख की मैल (अपवित्रता गंदगी) नष्ट हो जाती है (और हरी) आप ही अगम ज्ञान (अगोचर तत्त्वज्ञान) देता है ॥ ५ ॥

जिन्होंने (परमात्म रस का) आस्वादन किया है, वे ही (उसका) स्वाद जानते हैं, (किन्तु उस स्वाद का वर्णन करना उतना ही कठिन है) जितना कि गूंगे का मिठाई (के स्वाद का वर्णन करना)। हे भाई, अकथनीय (हरी) का क्या कथन किया जाय ? (अतएव सर्वोत्तम उपाय यही है कि) उसकी मर्जी के अनुसार चला जाय (जीवन व्यतीत किया जाय) (जब) दाता गुरु से मिला जाय तभी (इस प्रकार की) बुद्धि होती है गुरु से विहीन व्यक्ति में कोई भी बुद्धि नहीं (होती)। हे भाई (अन्तिम सिद्धान्त यही है कि) जैसा (प्रभु) चलाए, उसी प्रकार चलो कोई और क्या चतुराई कर सकता है ? ॥ ६ ॥

(हे स्वामी) कुछ लोग तो (माया के) भ्रम में भटकते रहते हैं और कुछ लोग भक्ति में अनुरक्त हैं तेरा नाम अपार है। (हे प्रभु) जिसे (तू भक्ति में) लगाता है वही फल पाता है तू (सभी के ऊपर) हुक्म चलानेवाला है। यदि कोई वस्तु अपनी हो तो मैं उसे अर्पण (में क्या भेंट कर सकता हूं ? सारी वस्तुएँ तो तेरी ही दी हुई हैं) जीव (प्राण) और शरीर (ये सब तो) तेरे ही हैं। सद्गुरु से मिलने पर कृपा की (उसी ने) अमृत-नाम का आधार दिया। ॥ ७ ॥

(साधक) गगन-मण्डल (दशम द्वार अथवा ब्रह्मरंध्र मण्डल) में निवास करता है, (वहीं से उसके) गुणों का प्रकाश होता है और गुणों में ही ब्रह्म ध्यान (स्वाभाविक रीति से) पा जाता है। (ऐसे साधक के) मन को (हरी का) नाम अच्छा लगता है (वह सर्व नाम)

कहता है, (अतः) है और दूसरे में भी (नाम) बताता है वह अभ्यन्तर का ही वर्णन करता है। शब्द (नाम) ही गुरु है, पीर है, अत्यन्त गहरा और गम्भीर है, शब्द (नाम) के बिना सारा जगत् बौराया बौराया (फिरता) है। जिसका चित्त सच्च को मानता है वह पूर्ण वैरागी है और स्वाभाविक ही बड़ा भाग्यशाली है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

तितुकी

आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी ।
पापि पुंनि जगु जाइआ भाई बिनसै नामु विसारी ॥
इह माइआ जगि मोहणी भाई करम सभे वेकारी ॥१॥
सुणि पंडित करमाकारी ।
जितु करमि सुखु ऊपजै भाई सु आतम तत बीचारी ॥रहाउ॥
सासतु बेदु बकै खड़ो भाई करम करहु संसारी ।
पाखंडि मैलु न चूकई भाई अंतरि मैलु विकारी ॥
इन बिधि डूबी माकुरी भाई ऊंडी सिर कै भारी ॥२॥
दुरमति घणी विगूती भाई दूजै भाइ खुआई ।
बिनु सतिगुर नामु न पाईऐ भाई बिनु नामै भरमु न जाई ॥
सतिगुरु सेवे ता सुखु पाए भाई आवणु जाणु रहाई ॥३॥
साचु सहजु गुर ते ऊपजै भाई मनु निरमलु साचि समाई ।
गुरु सेवे सो बूझै भाई गुर बिनु मगु न पाई ॥
जिसु अंतरि लोभु कि करम कमावै भाई कूड़ु बोलि बिखु खाई ॥४॥
पंडित दही विलोईऐ भाई विचहु निकलै तथु ।
जलु मथीऐ जलु देखीऐ भाई इहु जगु एहा वथु ॥
गुर बिनु भरमि विगूचीऐ भाई घटि घटि देउ अलखु ॥५॥
इहु जगु तागो सूत को भाई दहदिसि बाधो माइ ।
बिनु गुर गाठि न छूटई भाई थाके करम कमाइ ॥
इहु जगु भरमि भुलाइआ भाई कहणा किछू न जाइ ॥६॥
गुर मिलिऐ भउ मनि वसै भाई भै मरणा सचु लेखु ।
मजनु दानु चंगिआईआ भाई दरगह नामु विसेखु ॥
गुरु अंकसु जिनि नामु द्रिड़ाइआ भाई मनि वसिआ चूका भेखु ॥७॥
इहु तनु हाटु सराफ को भाई वखरु नामु अपारु ।
इहु वखरु वापारी सो द्रिड़ै भाई गुर सबदि करे वीचारु ॥
धनु वापारी नानका भाई मेलि करे वापारु ॥८॥२॥

हे भाई, आशा और इच्छा बन्धन डालने वाले हैं, (सारे) कर्मकांड और धर्म (पुण्यदान, तीर्थयात्रा आदि) बन्धन में डालने वाले हैं (क्योंकि इन सबमें एक प्रकार का

तात्त्विक अहंकार बोलता है)। पाप-पुण्यों में ही जगत् जन्मा है (तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य पाप-पुण्य निमित्त कर्म करता रहता है तब तक वह जन्म के अंतर्गत आता रहता है) और नाम को भुला कर विनष्ट होता है। हे भाई, संसार में यह माया मोहित कर देने वाली है। (माया में किए हुए) सारे कर्म विकार उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १ ॥

हे कर्मकाण्ड करने वाले पंडित सुनो। हे भाई जिस कर्म से (वास्तविक) सुख उत्पन्न होता है, वह है आत्म-तत्त्व का विचारना ॥ रहाउ ॥

(हे पंडित), तू खड़ा होकर शास्त्र-वेद तो बकता है, किन्तु कर्म दुनियादारी ही करता है। हे भाई, पाखण्ड से मैल नहीं दूर होती। तुम्हारे मन में (विषयों का) विकार भरा हुआ है। हे भाई, इसी प्रकार मकड़ी भी सिर के बल उल्टी होकर (जाल ही अपने जाल में उलझ कर) मर जाती है। (तू भी दिखलानेवाले झूठे कर्म धर्म करके उन्हीं के पाशों के साथ नष्ट हो जाता है) ॥ २ ॥

दुर्बुद्धि से (सारी की सारी सृष्टि) अत्यधिक बरबाद हुई (और माया के) द्वैतभाव के कारण (यह) भटक गई (कुमार्ग पर चली गयी) हे भाई, बिना सद्गुरु के नाम की प्राप्ति नहीं होती और बिना नाम के (संसार का) भ्रम भी नहीं दूर होता। (जब) सद्गुरु की सेवा की जाती है तभी सुख की प्राप्ति होती है। (और तभी) आना-जाना (जन्म-मरण) समाप्त होता है ॥ ३ ॥

हे भाई, सच्चे (आत्मज्ञान का) स्वाभाविक जीवन गुरु से ही प्राप्त होता है और मन निर्मल होकर सत्य (परमात्मा में) समाहित हो जाता है। हे भाई (जो व्यक्ति) गुरु की आराधना करता है, वही (सच्चा आत्मज्ञान) समझता है बिना गुरु के (आध्यात्मिक जीवन का) मर्म नहीं पाता है। जिसके अंतर्गत लोभ है वह क्या कर्म करता है ? (उसके कर्म करने का कोई भी लाभ नहीं है) वह तो झूठ बोल कर (माया का) विष खाता रहता है ॥ ४ ॥

हे भाई, (वास्तविक) दधि के दही मथने पर, (उसमें से) तत्त्व (असली वस्तु, मक्खन) निकलता है। जल के मथने पर जल ही दिखाई पड़ता है, (अर्थात् जल मथने से जल ही निकलता है)। यह संसार इसी प्रकार की (पानी ही के समान) वस्तु है। घट-घट में अलख देव (परमात्मा) (के होते हुए भी) गुरु के बिना भ्रम (अज्ञान में) नष्ट होना पड़ता है, (क्योंकि अलक्ष्य परमात्मा समझ में नहीं आता उसकी समझ गुरु से ही प्राप्त होती है) ॥ ५ ॥

हे भाई, यह जगत् सूत के धागे के समान है, (जिसे) दसों दिशाओं से माया ने बाँध रक्खा है (और उसमें अज्ञान की गाँठें पड़ गयी हैं)। बिना गुरु के (माया की) गाँठ नहीं खुलती (इस गाँठ को खोलने के लिए कितने ही लोग कर्म करके थक गए हैं।) (इस प्रकार) यह जगत् (अज्ञान के) भ्रम में भूला हुआ है (इसके संबंध में) कुछ कहा नहीं जा सकता ॥ ६ ॥

हे भाई, गुरु से मिलने (तभी परमात्मा का) भय मन में बसता है भय द्वारा (अहंभाव का) मरना ही सच्चा लेख है (सुंदर भाग्य है)। स्नान दान तथा शुभ कर्म यह है (कि परमात्मा के) दरबार से निर्मल (वस्तु) नाम (प्राप्त हो)। गुरु के अंकुश (तात्पर्य यह कि शिक्षा) से जिसने नाम को दृढ़ कर लिया है उसके (मन से) भाव बस गया है (और उसके सारे बाह्य वेश आदि समाप्त हो गए हैं ॥ ७ ॥

हे भाई, यह शरीर सर्राफ़ की दूकान है, व्यापार नाम ही (इस शरीर रूपी दूकान का) सौदा है। इस सौदे को यह व्यापारी पक्की तरह—दृढ़तापूर्वक प्राप्त करता है जो गुरु के उपदेश द्वारा विचार करता है। हे नानक, वह व्यापारी धन्य है, जो गुरु से मिल कर (नाम का) व्यापार करता है ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

जिनी सतिगुरु सेविआ पिआरे तिन के साथ तरे ।
तिना ठाक न पाईऐ पिआरे अंमृत रसन हरे ॥
बूडे भारे भै बिना पिआरे तारे नदरि करे ॥१॥

भी तू है सालाहणा पिआरे भी तेरी सालाह ।
विणु बोहिथ भै डुबीऐ पिआरे कंधी पाइ कहाह ॥१॥रहाउ॥

सालाही सालाहणा पिआरे दूजा अवरु न कोइ ।
मेरे प्रभ सालाहनि से भले पिआरे सबदि रते रंगु होइ ॥
तिस की संगति जे मिलै पिआरे रसु लै ततु विलोइ ॥२॥

पति परवाना साच का पिआरे नामु सचा नीसाणु ।
आइआ लिखि लै जावणा पिआरे हुकमी हुकमु पछाणु ॥
गुर बिनु हुकमु न बूझीऐ पिआरे साचे साचा ताणु ॥३॥

हुकमै अंदरि निमिआ पिआरे हुकमै उदर मझारि ।
हुकमै अंदरि जंमिआ पिआरे ऊधउ सिर कै भारि ।
गुरमुखि दरगह जाणीऐ पिआरे चलै कारज सारि ॥४॥

हुकमै अंदरि आइआ पिआरे हुकमे जादो जाइ ।
हुकमे बंनि चलाईऐ पिआरे मनमुखि लहै सजाइ ॥
हुकमे सबदि पछाणीऐ पिआरे दरगह पैधा जाइ ॥५॥

हुकमे गणत गणाईऐ पिआरे हुकमे हउमै दोइ ।
हुकमे भवै भवाईऐ पिआरे अवगणि मुठी रोइ ॥
हुकमु सिञापै साह का पिआरे सचु मिलै वडिआई होइ ॥६॥

आखणि अउखा आखीऐ पिआरे किउ सुणीऐ सचु नाउ ।
जिनी सो सालाहिआ पिआरे हउ तिन बलिहारै जाउ ॥
नाउ मिलै संतोखीआ पिआरे नदरी मेलि मिलाउ ॥७॥

काइआ कागदु जे थीऐ पिआरे मनु मसवाणी धारि ।
ललता लेखणि सच की पिआरे हरि गुण लिखहु वीचारि ॥
धनु लेखारी नानका पिआरे साचु लिखै उरि धारि ॥८॥३॥

हे प्यारे, जिन्होंने सद्गुरु की आराधना की, उनके साथी (संसार-सागर) पार हो गए। उन्हें (परलोक में कोई) रोक नहीं पाता, अमृत-नाम से उनकी रसना हरी (भरी) रह

देता है। जो परमात्मा के भय बिना (पापों के भार से) भारी (वजनी) हुए थे वे डूब गए; (यदि परमात्मा) कृपादृष्टि करे, (तो उन्हें भी तार दे) ॥ १ ॥

हे प्यारे (परमात्मा) बार-बार (फिर-फिर प्रत्येक श्वास में) तेरा गुणगान करना चाहिए और तेरी ही स्तुति करनी चाहिए। बिना जहाज के (मनुष्य) अथाह—डरावने (समुद्र) में डूबता है उस किनारे वह कैसे लग सकता है? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे प्यारे, स्तवनीय—प्रशंसनीय (हरी) की ही प्रशंसा करनी चाहिए; उसके बिना कोई दूसरा नहीं है। जो मेरे प्रभु की स्तुति करते हैं, वे (बहुत) भले हैं; शब्द (नाम) में अनुरक्त होने से, (गहरा) रंग (आनन्द) होता है। यदि ऐसे पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाय तो (नाम के) रस को लेकर परमात्म-तत्त्व रूपी (मक्खन) को मथना चाहिए ॥२॥

हे प्यारे, सच्चा परवाना प्रतिष्ठा (पति) का होता है और उसके ऊपर नाम का चिह्न (निशान) होता है। जगत् में जो यह सच्चा परवाना लिखा कर ले जाता है (वही धन्य है)। हुक्म करनेवाले (हरी) का हुक्म पहचानो। गुरु के बिना हुक्म समझा नहीं जा सकता। उस सच्चे (हरी) का बल ही बल है ॥३॥

हे प्यारे, (मनुष्य परमात्मा के) हुक्म से ही (माता के) गर्भ में स्थित हुआ और हुक्म से ही उसने सिर के बल जन्म धारण किया। (सारे मनुष्यों में) गुरुमुख को ही परमात्मा के दरबार में मान प्राप्त हुआ और उसने काम बना लिया (जन्म सार्थक कर लिया) ॥४॥

हे प्यारे, (जीव) (परमात्मा के) हुक्म के अंतर्गत ही (इस संसार में) आता है और जाते समय भी हुक्म से ही जाता है। हुक्म से ही (जीव अपने कर्मानुसार) बाँधा जाकर (यमपुर की ओर) चलाया जाता है (और हुक्म से ही) मनमुख सजा पाता है। हुक्म द्वारा ही शब्द—नाम के माध्यम से (हरी को) पहचाना जाता है (और परमात्मा के) दरबार में जाकर मनुष्य सिरोपा (प्रतिष्ठा के वस्त्र) पाता है ॥५॥

हे प्यारे (मनुष्य) (परमात्मा के) हुक्म द्वारा गिनती गिनने में पड़ जाता है, (कि मैंने अमुक अमुक कर्म किए और इनका अमुक (अमुक फल होना चाहिए)। हुक्म से ही अहंकार और द्वैत भाव उत्पन्न होते हैं। हुक्म के अनुसार ही (वह कर्मों के बन्धन में पड़ कर) भटकता फिरता है, (हुक्म से ही) अवगुणों से मोहित (सृष्टि) रोती है—दुःखी होती है ॥६॥

हे प्यारे नाम कहने में (बहुत) कठिन है। फिर किस प्रकार सच्चा नाम सुना जाय? जिन (भक्तों) ने नाम की प्रशंसा की है मैं उन पर बलिहारी हो जाता हूँ। (यदि) नाम प्राप्त हो जाय तो मैं संतुष्ट हो जाऊँ किन्तु कृपा-दृष्टि करने वाला (हरी) यदि दे तभी मिल सकता है ॥७॥

यदि शरीर कागज हो जाय और मन को दवात धारण कर लिया (मान लिया जाय), जीभ कलम लिखने वाली बनाए हो तो हरी के गुणों को विचारपूर्वक लिखो। हे नानक, वह लेखक धन्य है, जो हृदय में धारण करके सत्य लिखता है ॥८॥३॥

[४]

तुखा

तू गुणदाती निरमलो भाई निरमलु ना मनु होइ।
हम अपराधी निरगुणे भाई तुझ ही ते गुणु सोइ ॥१॥

हो जाता है। (अतएव) हे भाई, ज्ञान के महा रस (अमृत) में स्नान करो (जिससे) तन और मन—(दोनों ही) निर्मल हो जायँ ॥ ५ ॥

देवी-देवताओं को पूजकर (उनसे) क्या माँगूँ और (वे) दे ही क्या सकते हैं? पत्थर (की मूर्तियों) को (यदि) पानी में धोया जाय तो वे डूब जाती हैं, तब वे औरों को कैसे तार सकती हैं? ॥ ६ ॥

गुरु के बिना अलक्ष्य (हरी) को नहीं लखा जा सकता, नहीं समझा जा सकता बिना गुरु के (संसार) प्रतिष्ठा खोकर डूब जाता है। मेरे ठाकुर (स्वामी) के हाथ में (सारी) बड़ाइयाँ हैं जिसे अच्छा लगता है उसे (वह) देता है ॥ ७ ॥

यदि पति-(परमात्मा के) प्रेम में स्त्री सत्य का जप करे, तो (वह) सुलक्षिणी हो जाती है। वह विरह की छिपी हुई सत्य में निवास करती है और हरि के नाम में (भलीभाँति रम जाती है) ॥ ८ ॥

(हरी को) सभी कोई अपना अपना कहते हैं किन्तु जो व्यक्ति गुरु के द्वारा (हरी का स्वरूप) समझता है (वही) चतुर है। (जो व्यक्ति) हरि के प्रेम में बिंधे हुए हैं, वे तर गए, (उनके ऊपर) नाम शब्द का सच्चा चिह्न लगता है—(मुहर लगी है) ॥९॥

जिस प्रकार खूब ईंधन एकत्र किया जाय और रत्ती भर (रंच मात्र) अग्नि डाल दी जाय (तो सारा ईंधन भस्म हो जाता है) उसी प्रकार पाप और पाप मात्र भी यदि हरी का नाम मन में बस जाय (तो समस्त पाप भस्म हो जाते हैं) और स्वाभाविक ही (परमात्मा का) मिलाप हो जाता है ॥ १ ॥ ४॥

ੴ सतिगुर प्रसादि ॥ रागु सोरठि, महला १,

वार

सलोकु
सोरठि सदा सुहावणी जे सचा मनि होइ ।
दंदी मैलु न कतु मनि जीभै सचा सोइ ॥
ससुरै पेईऐ भै वसी सतिगुरु सेवि निसंग ।
परहरि कपड़ु जे पिर मिलै खुसी रावै पिरु संगि ॥
सदा सीगारी नाइ मनि कदे न मैलु पतंगु ॥
देवर जेठ मुए दुखि ससू का डरु किसु ।
जे पिर भावै नानका करम मणी सभु सचु ॥१॥

ता की रजाइ लेखिआ पाइ अब किआ कीजै पांडे ।
हुकमु होआ हासलु तदे होइ निबड़िआ हंढहि जीअ कमाडे ॥२॥

सलोकु सोरठ रागिनी तभी सदैव सुहावनी लगती है, यदि इसके द्वारा सच्चा और सुना गया सच्चा हरी मन में बस जाय और (स्त्री—प्राणी के) दाँतों में मैल न लगे (तात्पर्य यह कि हराम की चीज खा कर मुँह मैला न करे) मन में (अन्तर्विरोध का) भाव न हो और जीभ पर उस सच्चे (हरी) का नाम हो। [कतु—झगड़ा, अन्य भाव]

ससुराल और मायके (नइहर) (तात्पर्य यह कि लोक परलोक) में (हरी के) भय में रहा जाय और सद्गुरु की निशंक होकर सेवा की जाय। कपड़े (सांसारिक शृङ्गार) त्याग कर ही यदि पति का मिलाप हो सके तो (स्त्री को) उससे मिलकर प्रसन्नता होती है और (उसके मन में) कभी पाप (मल) का पतिंगा नहीं लगता।

उसके देवर और जेठ (सांसारिक विकार) दुःखी होकर मर गए, तो सास (माया) का किसे डर है? हे नानक (पति-परमात्मा को) मन में बसा कर, यदि (जीवात्मा रूपी) स्त्री पति परमात्मा को अच्छी लगे तो उसके कर्म (ललाट) में भाग्य का टीका समझो। (सब हर स्थान में) सच्चा (प्रभु) ही दिखाई पड़ता है ॥ १ ॥

हे पंडित इस (समय पूछ करने से) कुछ नहीं बन सकता प्रभु की मर्जी के अनुसार (अपने ही किए पूर्व कर्मों के अनुसार) लिखा लेख (भाग्य) मिलता है जब प्रभु का हुक्म हुआ तभी जो कुछ होना था वह हुआ (और उसी लेख के अनुसार) जीव (कर्म) करते फिरते हैं ॥ २ ॥

—

हे दयालु (परमात्मा) तेरे नाम से (मैं) डर जाता हूँ मैं (उस नाम पर) सदैव कुरबान होता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सर्वत्र (सभी स्थानों में) एक सच्चा (हरी ही) (व्यापक है)। (उसे छोड़ कर) दूसरा कोई और नहीं है। उस (परमात्मा की) सेवा वही कर सकता है, (जिसके ऊपर) वह कृपादृष्टि करता है ॥ २ ॥

हे प्यारे तेरे बिना, मैं किस तरह रह सकता हूँ? (हे प्रभु) मुझे वही बड़ाई दे जिससे (मैं) तेरे नाम में लगा रहूँ। हे प्यारे, मेरे लिए कोई दूसरा ऐसा नहीं है, जिसके सम्मुख जा कर (अपने दुःखों-सुखों को) कहूँ ॥ ३ ॥ रहाउ ॥

(मैं) अपने साहब की आराधना करता हूँ और किसी से भी नहीं याचना करता। नानक, उस (प्रभु) का दास है, (जिसके ऊपर) पल-पल में (वह) कुरबान-कुरबान होता है ॥ ४ ॥

हे साहिब तेरे नाम के ऊपर (मैं) पल-पल में टुकड़े टुकड़े होऊँ कुरबान होऊँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

हम आदमी हां इक दमी मुहलति मुहतु न जाणा ।
नानकु बिनवै तिसै सरेवहु जाके जीअ पराणा ॥१॥
अंधे जीवना वीचारि देखि केते के दिना ॥१॥रहाउ॥
सासु मासु सभु जीउ तुमारा तू मै खरा पिआरा ।
नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा ॥२॥
जे तू किसै न देही मेरे साहिबा किआ को कढै गहणा ।
नानकु बिनवै सो किछु पाईऐ पुरबि लिखे का लहणा ॥३॥
नामु खसम का चिति न कीआ कपटी कपटु कमाणा ।
जम दुआरि जा पकड़ि चलाइआ ता चलदा पछुताणा ॥४॥
जब लगु दुनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ ।
भालि रहे हम रहणु न पाइआ जीवतिआ मरि रहीऐ ॥५॥२॥

हम आदमी हैं, एक दम भर रहनेवाले हैं हमें पता नहीं है कि जीवन की अवधि और मुहूर्त कितना है। (इसीलिए) नानक विनय करता है कि तुम उसकी सेवा करो जिसके जीव और प्राण हैं (अर्थात् जो जीव और प्राण का स्वामी है) ॥१॥

हे अन्धे (मूर्ख मनुष्य) विचार करके देखो कि हमें कितने दिन जीना है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) सारी साँसें शरीर और प्राण तेरे ही हैं। नानक शायर (कवि) इस प्रकार कहता है "हे सच्चे पालनकर्ता (हरी) तू मुझे अत्यधिक प्रिय है। ॥२॥]

हे मेरे साहब यदि तू किसी को दान न दे, तो कोई क्या अपने रेहन कर के ले सकता है [गहना कढ़ना—कोई आभूषण किसी के यहाँ रेहन कर कोई वस्तु अथवा रुपये आदि ले लेना]:

(अर्थात् मनुष्य के पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे रख कर वह हरी से कोई दान ले सके। यदि किसी को परमात्मा का दान मिलता है, तो वह कृपा से ही मिलता है। हम में कोई भी गुण ऐसा नहीं है जो परमात्मा के दान के बदले में दिया जा सके)। नानक विनय करता है, (कि हमें) वही कुछ प्राप्त होता है जो पहले से ही (हरी की ओर से) हमें प्राप्त होना लिखा रहता है ॥ ३ ॥

पति (परमात्मा) का नाम चित्त में (धारण) नहीं किया और वह कपटी (पापी) मनुष्य (अहर्निश) कपट ही करता रहा। यमराज के दरवाजे की ओर जब पकड़ कर घसीटा गया तब (घसिट कर) चलते हुए पछताने लगा ॥ ४ ॥

जब तक संसार में जीवित रहिए, तब तक (हरी का नाम) कहिए (जपिए) और सुनिए। (हमने अत्यधिक) खोज की (पर इस संसार में स्थिर) रहने की (कोई भी युक्ति दृष्टि में नहीं आई) (किन्तु अन्त में इसी सिद्धान्त पर पहुँचा कि) जीवित भाव से मर कर (इस दुनियाँ में) रहा जाय। (तात्पर्य यह कि अहंभाव से मर कर दुनिया में रह कर कर्म किए जायँ) ॥ ५ ॥ २ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु दूजा ॥

[३]

किउ सिमरी सिवरिआ नही जाइ। तपै हिआउ जीअड़ा बिललाइ ॥
सिरजि सवारे साचा सोइ। तिसु विसरिऐ चंगा किउ होइ ॥१॥
हिकमति हुकमि न पाइआ जाइ। किउकरि साचि मिलउ मेरी माइ ॥१॥रहाउ॥
वखरु नामु देखण कोई जाइ। ना को चाखै ना को खाइ ॥
लोकि पतीणै ना पति होइ। ता पति रहै राखै जा सोइ ॥२॥
जह देखा तह रहिआ समाइ। तुधु बिनु दूजी नाही जाइ।
जे को करे कीतै किआ होइ। जिस नो बखसे साचा सोइ ॥३॥
हुणि उठि चलणा मुहति कि तालि। किआ मुहु देसा गुण नही नालि ॥
जैसी नदरि करे तैसा होइ। विणु नदरी नानक नही कोइ ॥४॥१॥३॥

(हे प्रभु) (मैं) किस प्रकार (तेरा) स्मरण करूँ? स्मरण नहीं करते बनता। (मेरा) हृदय तप्त होता है और मन बिलबिलाता है। वही सच्चा (प्रभु) सृष्टि रच कर (उसे) सँवारता है, (उसका शृङ्गार करता है)। (भला) उसे भूलने पर भला (अच्छा) कैसे बना जा सकता है ॥१॥

किसी भी चालाकी अथवा हुक्म (जोर) के द्वारा (सच्चा हरी) प्राप्त नहीं किया जा सकता। हे मेरी माँ किस प्रकार सत्य (हरी) में मिलूँ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नाम रूपी सौदा कोई विरला ही देखने (परखने खोजने) जाता है। इसे न तो कोई चखता है और न खाता है (तात्पर्य यह है कि सच्चे अन्तःकरण से न तो कोई नाम का जप

(कि उसको शिशों पर चलने के शिष्य) पुत्र-कलत्र के बीच रहते हुए भी (गृहस्थी में रहते हुए) मुक्ति पा लेता है ॥ २ ॥

सेवक (परब्रह्म की) ऐसी आराधना करे कि जिस (प्रभु का) जीव है उसे समर्पित कर दे (तात्पर्य यह कि अपना जीवन परमात्मा की आज्ञा में व्यतीत करे, जो उसे अच्छा लगे उसे शिरोधार्य करे) । (जो) प्रभु को अच्छा लगता है, वही प्रामाणिक है और वही सेवक (परमात्मा के) दरबार में सम्मान पाता है ॥३॥

जो सद्गुरु की मूर्ति [मूर्ति का भाव सद्गुरु के गुण आचरण और माहात्म्य से है] (अपने) हृदय में बसा लेता है वह जो इच्छा करता है, वही फल पा लेता है । (जिसके) ऊपर सच्चा साहब कृपा करता है, वह सेवक यमराज से क्यों डरे ? ॥४॥

नानक सोच विचार कर प्रार्थना करता है कि यदि कोई (गुरु की) सच्ची वाणी से प्यार करे तो वही मोक्ष-द्वार प्राप्त करता है । नाम (नाम-जप) ही (वास्तविक) जप-तप और सब कुछ है ॥५॥ २॥

[५]

जीउ तपतु है बारोबार । तपि तपि खपै बहुतु बेकार ।
जै तनि बाणी विसरि जाइ । जिउ पका रोगी विललाइ ॥१॥

बहुता बोलणु झखणु होइ । विणु बोले जाणै सभु सोइ ॥१॥रहाउ॥

जिनि कन कीते अखी नाकु । जिनि जिहवा दिती बोले तातु ॥
जिनि मनु राखिआ अगनी पाइ । वाजै पवणु आखै सभ जाइ ॥२॥

जेता मोहु परीति सुआद । सभा कालख दागा दाग ॥
दाग दोस मुहि चलिआ लाइ । दरगह बैसण नाही जाइ ॥३॥

करमि मिलै आखणु तेरा नाउ । जितु लगि तरणा होरु नही थाउ ॥
जे को डूबै फिरि होवै सार । नानक साचा सरब दातार ॥४॥३॥५॥

जीव बारंबार तप्त होता रहता है । वह तप्त हो होकर खप जाता है और बहुत विकारयुक्त हो जाता है । जिस शरीर (मनुष्य) को गुरुवाणी भूल जाती है वह पक्के रोगी के समान बिलबिलाता (चीखता) है ॥ १ ॥

बहुत बोलना तो व्यर्थ बकना होता है । (हरी) बिना बोले ही सब कुछ समझता है ॥१॥ रहाउ ॥

जिसने हमारे कान आँख और नाक बनायी है जिसने जिह्वा प्रदान की जो तुरन्त बोलती है, जिसने मन को (हमें) (माता के गर्भ की) उष्णता में डाल कर (फिर) बचा रक्खा (और जिस हरी की कृपा से कानों में हवा) बाहर बजती है (ध्वनि उत्पन्न होती है) (और सारी बातें) बाहर (कंठ से) उच्चरित होती हैं, (उस परमात्मा का स्मरण करना चाहिए) ।

जितने भी मोह (सांसारिक) प्रीति और स्वाद (सांसारिक) हैं (वे मन आत्मा को) (कलुषित बनाने के लिए) कालिमा हैं या उसे दागों से भर देते हैं । (या मनुष्य इन) दागों

[७]

काइआ कागदु मनु परवाणा । सिर के लेख न पड़ै इआणा ॥
दरगह घड़ीअहि तीने लेख । खोटा कामि न आवै वेखु ॥१॥
नानक जे विचि रुपा होइ । खरा खरा आखै सभु कोइ ॥१॥रहाउ॥
कादी कूड़ु बोलि मलु खाइ । ब्राहमणु नावै जीआ घाइ ॥
जोगी जुगति न जाणै अंधु । तीने ओजाड़े का बंधु ॥२॥
सो जोगी जो जुगति पछाणै । गुर परसादी एको जाणै ॥
काजी सो जो उलटी करै । गुर परसादी जीवतु मरै ॥
सो ब्राहमणु जो ब्रहमु बीचारै । आपि तरै सगले कुल तारै ॥३॥
दानसबंदु सोई दिलि धोवै । मुसलमाणु सोई मलु खोवै ॥
पड़िआ बूझै सो परवाणु । जिसु सिरि दरगह का नीसाणु ॥४॥५॥७॥

शरीर कागज है और मन (इसमें आचरण) (उसके ऊपर लिखा हुआ) परवाना (प्रवेशपत्र) है। मूर्ख (अज्ञानी) पुरुष (अपने) मस्तक के ऊपर (लिखा हुआ परमात्मा का) लेख नहीं पढ़ता। परमात्मा के दरबार में तीन प्रकार के लेख लिखे जाते हैं (उत्तम, मध्यम और निकृष्ट)। (विचार करके) देखो (जो) खोटा है (वह) काम नहीं आता ॥१॥

हे नानक जिस (सिक्के) में चाँदी होती है (उसी को) सब 'खरा-खरा' कहते हैं (और वही काम में आता है, खोटा जिसका काम में नहीं आता, वह खोटों में फेंक दिया जाता है) ॥ ॥ रहाउ ॥

काजी झूठ बोल बोल कर मल (हराम की कमाई) खाता है। ब्राह्मण जीवों को मार कर (दुःख देकर) (फिर स्नान के लिए तीर्थों में) नहाता फिरता है। योगी अंधा (अज्ञानी) है, वह (परमात्मा से युक्त होने की) युक्ति नहीं जानता; (उपर्युक्त) तीनों ही उजाड़ के समान हैं ॥२॥

(वास्तव में) (सच्चा) योगी वही है जो (परमात्मा से मिलन की) युक्ति जानता है और (वह) गुरु की कृपा से एक मात्र (हरी को ही) जानता है। काजी वही है, जो (माया का मोह से चित्त) उलट दे (मोड़ दे) और गुरु की कृपा से जीवित ही (अपने अहंकारों से) मर जाय। वही ब्राह्मण है, जो ब्रह्म-तत्व का विचार करता है (ऐसा ब्राह्मण) स्वयं तो तरता ही है अपने समस्त वंश को भी तार देता है ॥३॥

जो (अपना) हृदय धोता है (शुद्ध करता है) वही चतुर है। [दानसबंद—फारसी=चतुर, सयाना, बुद्धिमान, अक्लमंद]। जो पापों का मल नष्ट कर दे वही (वास्तव में) मुसलमान है। जो पढ़े हुए (शास्त्र) को समझता है, (आचरण करता है) वही प्रामाणिक है—(लोक में भी परलोक में भी) और (उसी के) मस्तक पर (हरी के) दरबार में प्रामाणिकता की मुहर लगती है [निसाण=चिह्न, छाप, मुहर] ॥ ४ ॥ ५ ॥ ७ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ३

[८]

कालु नाही जोगु नाही नाही सत का ढबु ।
थानसट जग भरिसट होए डूबता इव जगु ॥
कल महि राम नामु सारु ।
अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसारु ॥१॥रहाउ॥
आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ ।
मगर पाछै कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ ॥२॥
खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही ।
स्रिसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही ॥३॥
असट साज साजि पुराण सोधहि करहि बेद अभिआसु ।
बिनु नाम हरि के मुकति नाही कहै नानकु दासु ॥४॥ १॥६॥८॥

विशेष : यह पद एक पाखण्डी ब्राह्मण के प्रति कहा गया है । वह ब्राह्मण अपने इष्ट स्थान पर बैठ कर लोगों से यह कहता था कि मैं त्रिकालज्ञ हूँ और मुझे तीनों लोकों का ज्ञान है । पर जब उसने अपनी आँखें बन्द की तो किसी ने उसके ठाकुर की पूजा की चौकी उसके पीछे ही रख दी और वह उसे न पा सका । इसी घटना को देखकर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित 'शबद' कहा —

अर्थ (आजकल) न तो वह समय है, न योग है और न सत्य (जीवन व्यतीत करने का) ढंग (रंग-तरीका) ही (किसी को मालूम) है । संसार के इष्टस्थान (पूजा-स्थान) भ्रष्ट हो गए हैं; (इस प्रकार) सारा जगत् डूब रहा है ॥ १ ॥

(इस) कलियुग में रामनाम ही श्रेष्ठ वस्तु है । (पाखंडी लोग) संसार को ठगने के लिए आँख बन्द करके नाक पकड़ते हैं (जैसे कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थित हो गये हैं) ॥१॥ रहाउ ॥

अँगूठे और पास की दो अँगुलियों की सहायता से (पीछे से) नाक पकड़ते हैं (और यह दम्भ करते हैं कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थित होकर मुझे) तीनों लोकों का ज्ञान है । किन्तु पीछे की वस्तु उन्हें नहीं सुझाई पड़ती यह (कैसा अनोखा) पद्मासन है ! ॥२॥

क्षत्रियों ने (जनता में आदर पाकर) धर्म त्याग दिया और म्लेच्छों की भाषा ग्रहण कर ली । (सारी) सृष्टि एकवर्ण (वर्णसंकर) हो गई है [तात्पर्य यह है कि लोग तमोगुणी हो गए हैं, उन्हें अपने कर्म-धर्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है—गुरु नानक का अभिप्राय 'एकवर्ण' से यह है कि तामसता की एकता । वैसे तो गुरु नानक देव जी जाति प्रथा के विरोधी थे—"फकड़ जाती फकड़ नाउ"] ॥ ३ ॥

(पाठ एवं अर्थ बोध के) भारी ग्रंथ (अथवा व्याकरण) खोज-खोज कर पुराणों का विचार करते हैं और वेदों का अभ्यास करते हैं (पर यह सब अपरा ही विद्या है, इससे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती) । दास नानक यह कहता है कि बिना हरि के नाम के मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ४ ॥ २ ॥ ६ ॥ ८ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आरती

[९]

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥१॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ।
अनहता सबद वाजंत भेरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥२॥
सभ महि जोति जोति है सोइ । तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ । जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥३॥
हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नामि वासा ॥४॥१॥७॥९॥

विशेष गुरु नानक देव ने जगन्नाथपुरी के पंडितों को यह आरती सुनाई थी । इस पद में सगुण ब्रह्म के विराट्-स्वरूप का बड़ा ही मनोहर चित्रण किया गया है ।

अर्थ (हे प्रभु तुम्हारी विराट् आरती के निमित्त) आकाश रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामण्डल (उस थाल में) मोती के रूप में जड़े हैं । मलय पवन की सुगन्धि (तुम्हारी आरती की) धूप है । वायु चँवर कर रहा है । हे ज्योतिस्वरूप, वनों के खिले हुए सारे पुष्प (तुम्हारी आरती के लिए) पुष्प बने हुए हैं ॥ १ ॥

तुम्हारी आरती (सीमित आरती) कैसे हो सकती है ? हे भवखण्डन तुम्हारी आरती कैसे हो सकती है ? अनाहत शब्द (तुम्हारी आरती के) नगारे (के रूप में) बज रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

तुम्हारे सहस्रों नेत्र हैं (फिर भी) एक भी नेत्र नहीं है । सहस्रों [मूर्तियाँ तुम्हारी ही हैं (फिर भी) तुम एक मूर्ति भी नहीं हो । तुम्हारे सहस्रों] पवित्र चरण हैं, (तथापि) एक भी चरण नहीं है । (इसी प्रकार) तुम्हारी एक भी घ्राणेन्द्रिय के बिना सहस्रों घ्राणेन्द्रियाँ हैं । मैं तुम्हारे इस (अद्भुत) चरित्र पर मोहित हूँ ॥२॥

हे ज्योतिस्वरूप (परमात्मा) तुम्हारी ज्योति सभी में है । (तुम्हारी ही ज्योति के) प्रकाश से सारी वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं । यह (परमात्मा का अद्वितीय प्रकाश) गुरु के उपदेश से (मन में) प्रकट होता है । जो तुम्हें अच्छा लगता है, वही (वास्तविक) आरती है ॥३॥

(अमूल्य) पदार्थ (पा लेता है) और हरि रस (का आस्वादन करता है)। गुरु ने उसे बचा लिया और उसके जन्म-मरण समाप्त हो गए ॥ २ ॥

(सद्गुरु रूपी) सरोवर को (गुरमुख रूपी) हंस कभी नहीं त्यागते, (वे) प्रेमा-(रागात्मिका) भक्ति करके सहजावस्था (तुरीय पद अनूप पद में) समा जाते हैं। सरोवर में हंस और हंस में सरोवर समाया रहता है। (तात्पर्य यह गुरु में शिष्य और शिष्य में गुरु समाया रहता है)। (शिष्य) गुरुवाणी द्वारा अकथनीय (हरी) की कथा और उसका सम्मान करता रहता है ॥३॥

शून्यमण्डल (निर्विकल्प अवस्था) में एक योगी (हरी) रहता है। न वह स्त्री है और न पुरुष। कोई उसके सम्बन्ध में क्या कह सकता है? तीनों लोक (तात्पर्य यह कि सारी सृष्टि) उसकी ज्योति में ध्यान लगाए रहती है। देवतागण मनुष्य और (योगियों के) नाथ उस सच्चे (प्रभु की) शरण में पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥

(हरी) आनन्द का मूल है और अनाथों का नाथ है। गुरमुख लोग भक्ति और स्वाभाविक (आत्मज्ञान) द्वारा उसका विचार करते हैं। (वह हरी) भक्त-वत्सल तथा भय को काटने वाला है। अहंकार को मार कर (साधक हरि से) मिलता है (और उसके मार्ग पर) चरण रखता है ॥ ५ ॥

(चाहे) अनेक यत्न किए जायें, (किन्तु फिर भी) काल दुःख देता है। (क्योंकि) मरना (तो हम अपने भाग्य में ही) लिखा कर, इस संसार में आए हैं। दुविधा (द्वैतभाव) में पड़कर जन्म के (अमूल्य) पदार्थ (परमात्मा) को खो देते हैं। (इस प्रकार मनुष्य) अपने आप को नहीं पहचानता (और संसार-चक्र में चौरासी लाख योनियों के अंतर्गत) भटक-भटक कर रोता है ॥ ६ ॥

यदि साधक का मन सहजावस्था (तुरीयावस्था अनूप पद निर्वाण पद) में आरूढ़ हो जाय (तो वह एक हरी का ही वर्णन करता है उसी को) पढ़ता है (और उसी को) सुनता है। धरणीधर (परमात्मा) (के प्रति उसकी) टेक ही (उसमें) धैर्य और धर्म (आदि शुभ गुणों को) दे देती है। (इसके फलस्वरूप) यत सत और संयम (स्वाभाविक रीति से) (उसके) हृदय में समा जाते हैं ॥७॥

(जो) सच्चे (हरी) द्वारा निर्मल (पवित्र होते हैं) उन्हें मैल नहीं लगती। गुरु के शब्द द्वारा (उनके) भ्रम और भय भग जाते हैं। नानक उस सच्चे स्वरूप वाले (हरी) की याचना करता है जो सुहावनी मूर्ति वाला (सब से) आदि और अनुपम (उपमा से परे) है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

सहजि मिलै मिलिआ परवाणु । ना तिसु मरणु न आवणु जाणु ॥
ठाकुर महि दासु दास महि सोइ । जह देखा तह अवरु न कोइ ॥१॥
गुरमुखि भगति सहज घरु पाईऐ । बिनु गुर भेटे मरि आईऐ जाईऐ ॥१॥रहाउ॥
सो गुरु करउ जि साचु द्रिड़ावै । अकथु कथावै सबदि मिलावै ।
हरि के लोग अवर नही कारा । साचउ ठाकुरु साचु पिआरा ॥२॥

सेवक प्रभ कै लागै पाइ । सतिगुरु पूरा मिलै मिलाइ ॥३॥

आपि दिखावै आपे देखै । हठि न पतीजै ना बहु भेखै ॥
घड़ि भाडे जिनि अंम्रितु पाइआ । प्रेम भगति प्रभि मनु पतीआइआ ॥४॥

पड़ि पड़ि भूलहि चोटा खाहि । बहुतु सिआणप आवहि जाहि ॥
नामु जपै भउ भोजनु खाइ । गुरमुखि सेवक रहे समाइ ॥५॥

पूजि सिला तीरथ बनवासा । भरमत डोलत भए उदासा ॥
मनि मैलै सूचा किउ होइ । साचि मिलै पावै पति सोइ ॥६॥

आचारा वीचारु सरीरि । आदि जुगादि सहजि मनु धीरि ।
पल पंकज महि कोटि उधारे । करि किरपा गुरु मेलि पिआरे ॥७॥

किसु आगै प्रभ तुधु सालाही । तुधु बिनु दूजा मै को नाही ।
जिउ तुधु भावै तिउ राखु रजाइ । नानक सहजि भाइ गुण गाइ ॥८॥२॥

(जो साधक हठ-निग्रह किए बिना) सहज (आत्मज्ञान) द्वारा (हरी से) मिलता है (वही) प्रामाणिक (सच्चा) माना है। उस व्यक्ति का मरना नहीं होता और उसका आना-जाना भी समाप्त हो जाता है। (दास और स्वामी में अभेद भाव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है) ठाकुर में सेवक और सेवक में ठाकुर (समाए रहते हैं)। जहाँ भी देखा जाय (एक हरी को छोड़ कर) और कोई दूसरा नहीं है ॥१॥

गुरु की शिक्षा द्वारा भक्ति और सहज पद (सहजावस्था) तुरीय पद चतुर्थ पद पाया जाता है। बिना गुरु का ध्यान किए मर कर आते जाते रहिए ॥१॥ रहाउ ॥

(मैं उसे अपना) गुरु बनाता हूँ जो (हृदय में) सत्य (परमात्मा) को दृढ़ कराता है। वह अकथनीय (हरी) को समझाता है और शब्द-ब्रह्म में मिलाप करा देता है। हरि के लोगों (भक्तों) को (सिवाय भजन के) और कोई काम नहीं रहता। उन्हें सच्चा ठाकुर और (उसका) सत्य प्यारा लगता है ॥२॥

वह (मनुष्य) सच्चा है (जो) सच्चे (हरी) में मिलकर (उसके रंग) में रँग गया है, (इसी कारण) (उसके) शरीर तथा मन में सच्चा (हरी) बस गया है। वह सेवक प्रभु के चरणों में लगता है जिसे पूरा सद्गुरु (स्वयं) मिले और (हरी के साथ) मिला दे ॥३॥

(हरी) स्वयं ही दिखाता (समझाता) है (और) स्वयं ही देखता (समझता) है। (परमात्मा) हठ-निग्रह (आदि) से तथा अनेक (बाह्य) वेषों से नहीं प्रसन्न होता। (मनुष्यों के शरीर अथवा मन रूपी) पात्र गढ़ कर जिसने (नाम रूपी) अमृत डाला है (उस) प्रभु का मन प्रेमा (स्नेहात्मिका) भक्ति में प्रसन्न होता है ॥४॥

(सांसारिक मनुष्य) पढ़-पढ़ कर (माया में और अधिक) भटकते हैं और चोटें (ठोकरें) खाते हैं (वे) अत्यधिक चतुराई (के कारण) (संसार-चक्र में) आते-जाते रहते हैं। गुरु की शिक्षा पर आचरण करनेवाला सेवक नाम जपता है और (परमात्मा के) भय का भोजन करता है (खाता है) (ऐसा सेवक हरी में) समाहित हो जाता है ॥५॥

(बहुत से साधु) पत्थर (की मूर्ति) पूजते हैं, तीर्थों वनों में वास करते हैं, उदासी (विरक्त त्यागी) होकर (इधर उधर) भटकते फिरते हैं, (किन्तु उनका) मन मैला ही है, (भला वे) कैसे पवित्र हो सकते हैं? (जो) सत्य (हरी अथवा गुरु) से मिले वही प्रतिष्ठा पाता है ॥६॥

जो शरीर (जीवन) के प्रति विचारवान् (और शुभ) आचार (करनी) (करने वाला है) (अर्थात् जिसमें विचार और आचरण दोनों ही हैं) (जिसका) मन आदि तथा युग-युगान्तरों से (सदैव) सहजावस्था में तथा धैर्य में टिका रहता है, (ऐसा गुरु मुझे प्राप्त हो)। हे प्यारे हरी मुझे ऐसा गुरु मिलाओ जो आँख के पलक मारने में करोड़ों को तार देता है। [पंकज=कमल—तात्पर्य कमल के समान आँखें—आँखें। पल=पलक मारना] ॥७॥

(हे प्रभु) किसके आगे (तेरी) प्रशंसा करूँ? मेरे लिए तेरे बिना और कोई दूसरा नहीं है। जैसे तुझे अच्छा लगे वैसे ही (अपनी) मर्जी में (आज्ञा में) मुझे रख। नानक तो सहजभाव से (हरी के) गुण गाता है ॥८॥२॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ धनासरी, महला १

छंत

[१]

तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है।
तीरथु सबद बीचारु अंतरि गिआनु है।
गुर गिआनु साचा थानु तीरथु दस पुरब सदा दसाहरा।
हउ नामु हरि का सदा जाचउ देहु प्रभ धरणीधरा।
संसारु रोगी नामु दारू मैलु लागै सच बिना।
गुर वाकु निरमलु सदा चानणु नित साचु तीरथु मजना ॥१॥
साचि न लागै मैलु किआ मलु धोईऐ।
गुणहि हारु परोइ किस कउ रोईऐ ॥
वीचारि मारै तरै तारै उलटि जोनि न आवए।
आपि पारसु परम धिआनी साचु साचे भावए।
आनंदु अनदिनु हरखु साचा दूख किलविख परहरे ॥
सचु नामु पाइआ गुरि दिखाइआ मैलु नाही सच मने ॥२॥
संगति मीत मिलापु पूरा नावणो।
गावै गावणहारु सबदि सुहावणो ॥
सालाहि साचे मंनि सतिगुरु पुंन दान दइआ मते ॥
पिर संगि भावै सहजि नावै बेणी त संगमु सत सते ॥
आराधि एकंकारु साचा नित देइ चड़ै सवाइआ।
गति संगि मीता संतसंगति करि नदरि मेलि मिलाइआ ॥३॥

उस (क्रिया) से मेरा मन मान गया है। (मनुष्य) जिन (पापों) से भरे हुए आते हैं (जन्म लेते हैं) और वैसे ही कुछ कर जाते हैं, सच्चे शब्द (नाम) के द्वारा मेरा पुन (मिटता है और आवागमन समाप्त हो जाता है)। (हरी की महत्ता की) कथा और भक्ति के भण्डार में (कोई) कमी नहीं है; (हरी) सभी स्थानों में व्याप्त (भरपूर) परिपूर्ण है। नानक सच्ची विनती करता है, कि सच्चा वही (व्यक्ति) है जो मन को माँजता है (शुद्ध करता है) ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

जीवा तेरै नाइ मनि आनंदु है जीउ।
साचो साचा नाउ गुण गोविंदु है जीउ॥
गुर गिआनु अपारा सिरजणहारा जिनि सिरजी तिनि गोई।
परवाणा आइआ हुकमि पठाइआ फेरि न सकै कोई॥
आपे करि वेखै सिरि सिरि लेखै आपे सुरति बुझाई।
नानक साहिबु अगम अगोचरु जीवा सची नाई॥१॥

तुम सरि अवरु न कोइ आइआ जाइसी जीउ।
हुकमी होइ निबेड़ु भरमु चुकाइसी जीउ॥
गुरु भरमु चुकाए अकथु कहाए सच महि साचु समाणा।
आपि उपाए आपि समाए हुकमी हुकमु पछाणा॥
सची वडिआई गुर ते पाई तू मनि अंति सखाई।
नानक साहिबु अवरु न दूजा नामि तेरै वडिआई॥२॥

तू सचा सिरजणहारु अलख सिरंदिआ जीउ।
एकु साहिबु दुइ राह वाद वधंदिआ जीउ॥
दुइ राह चलाए हुकमि सबाए जनमि मुआ संसारा।
नाम बिना नाही को बेली बिखु लादी सिरि भारा॥
हुकमी आइआ हुकमु न बूझै हुकमि सवारणहारा।
नानक साहिबु सबदि सिञापै साचा सिरजणहारा॥३॥

भगत सोहहि दरवारि सबदि सुहाइआ जीउ।
बोलहि अंम्रित बाणि रसन रसाइआ जीउ॥
रसन रसाए नामि तिसाए गुर कै सबदि विकाणे।
पारसि परसिऐ पारसु होए जा तेरै मनि भाणे।
अमरापदु पाइआ आपु गवाइआ विरला गिआन वीचारी।
नानक भगत सोहनि दरि साचै साचे के वापारी॥४॥

भूख पिआसो आथि किउ दरि जाइसा जीउ।
सतिगुर पूछउ जाइ नामु धिआइसा जीउ॥
सचु नामु धिआई साचु चवाई गुरमुखि साचु पछाणा।
दीनानाथु दइआलु निरंजनु अनदिनु नामु वखाणा॥

करणी कार धुरहु फुरमाई आपि मुआ मनु मारी ।
नानक नामु नामु महारसु मीठा तृसना नामि निवारी ॥४॥२॥

विशेष यहाँ पद के अंत में "जीउ" शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका कई बार प्रयोग हुआ है। यह संबोधन सूचक शब्द है। गुरुवाणी में एकाध स्थल पर ऐसे पद मिलते हैं, जहाँ 'राम' 'भाई' 'जीउ' 'अभिराम जीउ' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

अर्थ (हे प्रभु) (मैं) तुम्हारे नाम (के ही सहारे) जीता हूँ (उसी से) मन में आनन्द रहता है। सच्चे 'गोविन्द' का सच्चा ही नाम है और (उसके) अच्छे ही गुण हैं। गुरु के (दिए हुए) अपार ज्ञान से (यह बोध हुआ कि एकमात्र हरी ही सृष्टि का) सिरजनहार है जो हरी (सृष्टि) रचता है (वही उसे अपने में) लीन कर लेता है। (मौत का) परवाना आ गया (उसे हरी ने अपने) हुक्म से भेजा (उस हुक्म को) कोई फेर नहीं सकता। (हरी) स्वयं ही (सृष्टि) रच कर, उसकी देखभाल करता है प्रत्येक के सिर पर (उसके हुक्म की) लिखावट (लिखी हुई है) (इस वस्तु को हरी) आप ही सुरति (ऊँची वृत्ति) द्वारा समझता है। हे नानक प्रभु (साहब) अगम और अगोचर है (मैं तो उसी के) नाम से जीता हूँ॥ १॥

(हे प्रभु), तेरे समान और कोई नहीं है, (तेरे बिना जो कोई और है वह तो) आता जाता (जन्मता मरता) रहता है (भला वह तेरे बराबर क्यों हो सकता है? तू तो अजन्मा और अविनाशी है)। (हरी के) हुक्म से ही छुटकारा (मोक्ष) होगा (और उसी से) भ्रम भी समाप्त होगा। गुरु ही (अविद्याजनित) भ्रम दूर करता है, और अकथनीय (हरी) का कथन करता है (जिसके फलस्वरूप) सत्य (हरी) में सच्चा (शिष्य) समा जाता है। (प्रभु) आप ही (संसार) उत्पन्न करता है और आप ही (उसे अपने में) लीन कर लेता है हुक्म देनेवाले (हरी) का हुक्म (गुरु द्वारा ही) समझा जाता है। (हे प्रभु, तेरी) सच्ची महत्ता गुरु से ही प्राप्त होती है; अन्तिम समय में तू ही मन का साथी है। हे साहब तुझे छोड़ कर और कोई दूसरा नहीं है; तेरे नाम में ही बड़ाई (महत्ता) है॥ २॥

(हे हरी) तू ही सिरजनहार है अलक्ष्य का में सृष्टि रचने वाला है। साहब एक (हरी ही) है मार्ग दो हैं, [प्रेयस् (परमात्मा का मार्ग) और श्रेयस् (माया का मार्ग)।] (इसी प्रकार) झगड़े (द्वन्द्व) बढ़ते हैं। दो मार्ग बनाए गए हैं—(एक परमात्मा प्राप्ति का और दूसरा माया का) सब (मनुष्य) हुक्म के अन्तर्गत हैं (माया में आसक्त होने के कारण सारा) संसार जन्मता-मरता रहता है। नाम के बिना कोई भी सहायक नहीं (होता) (नाम के बिना मनुष्य माया के) विष का भार (बोझा) सिर पर लाद कर (संसार से) चला जाता है)। (मनुष्य परमात्मा के) हुक्म से ही (इस संसार में आता है) (किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण वह) हुक्म नहीं समझता। (अंत में) हुक्म ही (उसे) संवारने वाला (होता) है। हे नानक, सच्चा सिरजनहार (परमात्मा) (गुरु के शब्द द्वारा ही) सूझ पड़ता है॥३॥

(परमात्मा के) दरबार में भक्तगण सुशोभित (होते हैं) (वे) शब्द (नाम) के द्वारा सुहावने लगते हैं। (वे) अमृत वाणी बोलते हैं (और उस वाणी से अपनी) जीभ रसयुक्त (मीठी) बनाते हैं। (वे भगवान प्यासे) जीभ रसयुक्त बनाते हैं (वे) नाम के लो

प्यारे हैं और गुरु के शब्द पर बिके हुए हैं। (हे हरी), यदि वे तेरे मन को अच्छे लगें, (तो वे उसी भाँति परिवर्तित हो गए, जैसे) जैसे पारस को छूकर पारस हो जाता है। अपने मन को मार देने से (साधक अथवा शिष्य) अमर पद प्राप्त कर लेता है। ज्ञान पर विचार करनेवाला कोई विरला ही होता है। हे नानक भक्तजन (परमात्मा के) सच्चे दरवाजे पर सुशोभित होते हैं, (वे लोग) सच्चे (प्रभु) के व्यापारी होते हैं ॥ ४ ॥

(मैं) माया का भूखा-प्यासा (लोभी) (हूँ)। (हरी के) दरबार में किस प्रकार जाऊँगा? सद्गुरु (के पास) जाकर पूछूँ, (वही) नाम रूपी (अमृत) पिलायेगा। (सद्गुरु ने) सत्य (हरी का) नाम पिला दिया (उसने) सच्चे नाम का उच्चारण किया और गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने सत्य (परमात्मा) को पहचान लिया। (सद्गुरु की शिक्षा के कारण मैं) दीनानाथ दयालु निरंजन (हरी) (का नाम) स्मरण करने लगा। (यह नाम स्मरण की) करनी और कार्य (परमात्मा के दरबार से) पहले से ही हुक्म किए गए हैं, (इस प्रकार धीरे-धीरे) अहंभाव मिट गया और मन को जीत लिया। हे नानक नाम रूपी महा मीठा रस (अमृत) (प्राप्त हो गया) (और उसी) नाम से (सारी) तृष्णा का निवारण कर दिया ॥ ५ ॥ ॥

[३]

पिर संगि मूठड़ीऐ खबरि न पाईआ जीउ ।
मसतकि लिखिअड़ा लेखु पुरबि कमाइआ जीउ ।
लेखु न मिटई पुरबि कमाइआ किआ जाणा किआ होसी ।
गुणी अचारि नही रंगि राती अवगुण बहि बहि रोसी ॥
धनु जोबनु आक की छाइआ बिरधि भए दिन पुंनिआ ।
नानक नाम बिना दोहागणि छूटी झूठि विछुंनिआ ॥१॥

बूडी घरु घालिउ गुर कै भाइ चलो ।
साचा नामु धिआइ पावहि सुखि महली ॥
हरि नामु धिआए ता सुखु पाए पेईअड़ै दिन चारे ।
निज घरि जाइ बहै सचु पाए अनदिनु नालि पिआरे ॥
विणु भगती घरि वासु न होवी सुणिअहु लोक सबाए ।
नानक सरसी ता पिरु पाए राती साचै नाए ॥२॥

पिर धन भावै ता पिर भावै नारी जीउ ।
रंगि प्रीतम राती गुर कै सबदि वीचारी जीउ ॥
गुर सबदि वीचारी नाह पिआरी निवि निवि भगति करेई ।
माइआ मोहु जलाए प्रीतमु रस महि रंगु करेई ॥
प्रभ साचे सेती रंगि रंगेती सच भई मनु मारी ।
नानक साचि वसी सोहागणि पिर सिउ प्रीति पिआरी ॥३॥

पिर घरि सोहै नारि जे पिर भावए जीउ ।
झूठे वैण चवे कामि न आवए जीउ ॥

कूड़ु मनमुखे कामि न आवै ना पिरु देखै नैणी ।
मनमुखिआरी कंनि बिसारी छूटी विधण रली ॥
गुर सबदु न मानै फाही फाथी सा धन महलु न पाए ।
नानक आपे आपु पछाणै गुरमुखि सहजि समाए ॥८॥

धन सोहागणि नारि जिनि पिरु जाणिआ सोइ ।
नाम बिना कूड़िआरि कूड़ु कमाणिआ सोइ ॥
हरि भगति सुहावी साचे भावी भाइ भगति प्रभ राती ।
पिरु रलीआला जोबनि बाला तिसु रावे रंगि राती ।
गुर सबदि विगासी सहु रावासी फलु पाइआ गुणकारी ।
नानक साचु मिलै वडिआई पिर घरि सोहै नारी ॥२॥१॥

प्रियतम (हरी तो तेरे) संग में ही है (किन्तु विषयों से) मोहित हुआ वाली (ऐ स्त्री) तुझे खबर नहीं है । तेरे पूर्व कर्मों के अनुसार (हरी का) हुक्म ही ऐसा हुआ था (कि तू साथ होते हुए भी उस हरी को न पहचाने) । (अतएव) पूर्व जन्म का कमाया हुआ लेख (भाग्य) नहीं मिटता कौन जानता है कि क्या होगा ? (जो) (स्त्री) गुणों आचारों (और हरी के) रंग में नहीं अनुरक्त हुई, वह बैठ-बैठ कर अपने अवगुणों के लिए रोयेगी । धन और यौवन आक की छाया के समान (क्षुद्र और क्षणभंगुर हैं) वृद्ध हो जाने पर (आयु के) दिन पूरे हो जाते हैं । हे नानक (जीव रूपी स्त्री) नाम के बिना दुहागिनी रह गई, (उसे पति-परमात्मा ने) त्याग दिया और (वह) झूठ के द्वारा बिछुड़ गई ॥ १ ॥

हे डूबी हुई (स्त्री) तू ने (अपने) घर को नष्ट कर दिया है (अब यदि अपने अपना घर को फिर बसाना हो, तो) गुरु के भावानुसार चल (यदि तू) सच्चे नाम का ध्यान कर तो गुणयुक्त (अपने वास्तविक) महल में (निवास) पा लेगी । हरिनाम के ध्यान करने से ही सुख प्राप्त होता है मायके—नैहर (संसार) में तो (केवल) चार दिन (रहने हैं) । तू सत्यस्वरूप (हरी) के पाने पर अपने (वास्तविक) घर में जाकर बस जायगी और प्रतिदिन प्रियतम के साथ (रहेगी) । बिना (हरी की) भक्ति के (अपने वास्तविक) घर में निवास नहीं होता समस्त लोगो (इस तथ्य को तुम लोग कान खोलकर) सुन लो । हे नानक, (वह सौभाग्यशालिनी स्त्री) तभी आनन्दित होकर प्रियतम को प्राप्त कर लेती है जब सच्चे नाम में अनुरक्त हो जाय ॥ २ ॥

यदि (जीव रूपी) स्त्री (परमात्मा रूपी) पति को अच्छी लगे तो प्रियतम (हरी) उसे प्यारा लगता है । सद्गुरु के उपदेश पर विचार करके (वह स्त्री) प्रियतम हरी के रंग में रँग गई है । गुरु के शब्द पर विचार करके (वह) पति की प्यारी हो गई है और नम्रित होकर (अभिमान रहित होकर) भक्ति करती है । (वह) माया और मोह को जला कर आनन्दपूर्वक (हरि से) प्रेम करती है । (वह) सच्चे प्रभु (के अनुराग) में रंगी हुई है और अपने मन को मार कर (जीत कर) सुहागनी हो गई है । हे नानक, सत्यस्वरूप (परमात्मा) में बस कर, (वह स्त्री) सुहागिनी हो गयी है (उस) प्रियतमा की प्रीति प्रियतम (हरी) में (हो गयी है) ॥ ३ ॥

पति के घर में स्त्री तभी शोभित होती है, यदि पति उसे प्यारा लगे । (वास्तविक प्रेम

के बिना) यदि (स्त्री) झूठे और मीठे वचन बोले तो वे किसी काम नहीं आते। वह (कितना ही अधिक) झूठा आलाप करे (किन्तु उसकी झूठी बातें) काम में नहीं आयेंगी और (वह) पति (परमात्मा को) आँखों से नहीं देखेगी। पति (परमात्मा) ने उस अवगुणी स्त्री को भुला दिया है, (उस) पति-परित्यक्ता की रातें पति से विहीन हो जाती हैं। गुरु के शब्दों को (वह स्त्री) नहीं मानती (इसी से वह) बन्धनों में फँस जाती है, (और उसे पति-परमात्मा का) महल नहीं प्राप्त होता। हे नानक, जो (जीव रूपी स्त्री) अपने आप को पहचान लेती है, तो (वह) गुरु की शिक्षा द्वारा (आत्मज्ञान के) सहज सुख में समा जाती है ॥ ४ ॥

वह (जीव रूपी) सुहागिनी स्त्री धन्य है जिसने (परमात्मा रूपी) पति को पा लिया है। नाम के बिना झूठी स्त्री झूठे कर्मों को करती है। हरि की भक्ति में (वह) सुहागिनी हो गई है। वह अपने प्रभु को अच्छी लगती है और भक्ति-भाव कर प्रभु में अनुरक्त हो गई है। प्रियतम (हरी) विनोदी—आनन्द—भोगी है, वह (चिर) युवा है। (उसके) अनुराग में रँगी हुई स्त्री उसे भोगती है। गुरु के उपदेश से वह विकसित हो गई है और पति के साथ (उसने) रमण किया है तथा (अद्भुत) गुणकारी फल (परमात्मा) को पा लिया है। हे नानक, सत्य- (परमात्मा) के मिलने पर, बड़ाई प्राप्त होती है और प्रियतम (हरी) के घर में (जीव रूपी) स्वरूप स्त्री सुशोभित होती है ॥ ५ ॥ २ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु तिलंग, महला १, घर १

सबद

[१]

यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार ।
हका कबीर करीम तू बेऐब परवदगार ॥१॥

दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी ।
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी ॥१॥रहाउ॥

जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसतगीर ।
आखिर बिअफतम कस न दारद चूं सवद तकबीर ॥२॥

सब रोज गसतम दर हवा करदेम बदी खिआल ।
गाहे न नेकी कार करदम मम ईं चिनी अहवाल ॥३॥

बदबखत हम चु बखील गाफिल बेनजर बेबाक ।
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकरां पा खाक ॥४॥१॥

हे कर्तार, मैंने तेरे पास एक बिनती की है, ध्यान लगा के सुन। तू सच्चा है, बड़ा है, दयालु है, दोष रहित और पालनकर्ता है ॥१॥

दुनिया नश्वर स्थान है (यह बात) दिल में सच मानो। मेरे सिर के बाल मौत के फरिश्ते अजराईल ने पकड़े हैं, हे मन, तू कुछ नहीं समझता। [उस दिन पापियों के सिर के बालों को पकड़ कर खींचा जायगा—कुरान सूरत रहमान, आयत ४०] ॥१॥रहाउ॥

स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, कोई भी सहायक नहीं है। यदि अन्त में गिर पड़ा, तो उस समय कोई रख (बचा) नहीं सकता, जब मौत का समय आ जाता है। [तकबीर=जनाज़ा पर नमाज़ है जो मुर्दे को दफ़नाते समय पढ़ते हैं।] ॥२॥

दिन-रात मैं लालच में फिरता रहा और बुराई ही सोचता रहा (मैंने) कभी नेकी का काम नहीं किया। मेरा इसी प्रकार हाल रहा है ॥३॥

(मैं) अभागा साथ ही कृपणखोर, मूर्खबेपरवा निलज्ज और निडर हूँ। हे नानक मैं कहता हूँ कि मैं तेरा दास हूँ और तेरे दासों की चरण-धूलि हूँ ॥४॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु २ ॥

[२]

भउ तेरा भांग खलड़ी मेरा चीतु ।
मै देवाना भइआ अतीतु ॥
कर कासा दरसन की भूख ।
मै दरि मागउ नीतानीति ॥१॥

तउ दरसन की करउ समाइ ।
मै दरि मागतु भीखिआ पाइ ॥१॥रहाउ॥

केसरि कुसम मिरगमै हरणा सरब सरीरी चड़्हणा ।
चंदन भगता जोति इनेही सरबे परमलु करणा ॥२॥

घिअ पट भांडा कहै न कोइ ।
ऐसा भगतु वरन महि होइ ॥
तेरै नामि निवे रहे लिव लाइ ।
नानक तिन दरि भीखिआ पाइ ॥३॥१॥२॥

विशेष: निम्नलिखित 'शबद' बाबर बादशाह के प्रति कहा गया है।

अर्थ: (हे हरी), तेरा भय मेरी भंग (नशा) है; मेरा मन (भंग पीने के लिए) पात्र है। ['खलड़ी'—'इसमें भंग आदि पदार्थ रखते हैं यह मरे हुए पशुओं के चमड़े का बनता है]। मैं दीवाना और सबसे परे (त्यागी) हो गया हूँ। मेरे हाथ (भिक्षा—मिलने के) प्याले हैं; मुझे तेरे दर्शन की भूख है और तेरे दरवाजे पर नित्य-प्रति माँगता हूँ ॥१॥

(मैं) तेरे दर्शन का अभ्यास करता हूँ। मैं तेरे दरवाजे पर माँगता हूँ; (मेरी प्रार्थना है कि मैं) भिक्षा पाऊँ ॥१॥रहाउ॥

केसर, फूल, मृगमद (कस्तूरी) तथा सोना—(ये वस्तुएँ) सब के शरीर पर चढ़ती हैं (तात्पर्य यह कि सभी ऊँच नीच मनुष्य उपर्युक्त वस्तुओं का व्यवहार करते हैं और अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इन्हें बरतते हैं)। चंदन और भक्तों की ज्योति (ज्योति) भी ऐसी ही है—(ये दोनों ही) सभी (ऊँच-नीच) को सुगन्धित कर देते हैं ॥ २ ॥

घी और रेशमी वस्त्र को कोई निकृष्ट नहीं कहता। इसी प्रकार (हरी के) भक्त (चाहे जिस) वर्ण (जाति) में हो, (उनकी कोई निन्दा नहीं करता)। जो तेरे नाम में झुक कर नम्र हो जाता है और तेरे ही में लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाए रहता है; नानक ऐसे (भक्त के) दरवाजे की भीख माँगता है ॥३॥१॥२॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ३ ॥

[३]

इहु तनु माइआ पाहिआ पिआरे लीतड़ा लबि रंगाए ।
मेरै कंत न भावै चोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए ॥१॥

हउ कुरबान जाउ मिहरवाना हउ कुरबान जाउ ।
हउ कुरबानै जाउ तिना कै लैनि जो तेरा नाउ ॥
लैनि जो तेरा नाउ तिना कै हउ सद कुरबानै जाउ ॥१॥रहाउ॥
काइआ रङणि जे थीऐ पिआरे पाईऐ नाउ मजीठ ।
रङणवाला जे रंङै साहिबु ऐसा रंगु न डीठ ॥२॥
जिन के चोले रतड़े पिआरे कंतु तिना कै पासि ।
धूड़ि तिना की जे मिलै जी कहु नानक की अरदासि ॥३॥
आपे साजे आपे रंगे आपे नदरि करेइ ।
नानक कामणि कंतै भावै आपे ही रावेइ ॥४॥१॥३॥

इस शरीर (हमारे जीवन) में माया की पाह लगी है और (यह) लोभ में रँगा हुआ है [पाह=मजीठ आदि लाल रंग चढ़ाने के पूर्व कोरे कपड़े को पीले रंग से रँगते हैं, इसी को 'पाह लगाना' कहते हैं। बिना पाह दिए कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता]। मेरे पति (परमात्मा) को ऐसा चोला—शरीर (सांसारिक जीवन) अच्छा नहीं लगता; इसलिए स्त्री (जीवात्मा) को किस प्रकार सेज पर जाना मिले (जिसमें पति-परमात्मा का मिलाप हो)? ॥१॥

हे दयालु (परमात्मा) मैं तेरे ऊपर कुरबान हो जाता हूँ, मैं तेरे ऊपर कुरबान हो जाता हूँ। (हे प्रभु) जो तेरा नाम स्मरण करते हैं, मैं उनके ऊपर कुरबान हो जाता हूँ। जो तेरा नाम लेते हैं, मैं उनके ऊपर सदैव कुरबान हो जाता हूँ ॥१॥रहाउ॥

यदि शरीर रँगवाने की मिट्टा बन जाय, तभी नाम रूपी मजीठ का (पक्का रंग) चढ़ता है। यदि रँगनेवाला साहब इस रंग में रंग दे (तो बहुत ही अच्छा हो) और ऐसा रंग कभी न देखा गया होगा ॥२॥

जिनके चोले (शरीर) (इस रंग में) रँगे हुए हैं, पति (परमात्मा) उनके पास ही है। हे नानक, मेरी यह प्रार्थना है कि (संतों के चरणों की) धूलि मुझे मिल जाय ॥३॥

(प्रभु) आप ही सँवारता है, आप ही रँगता है और आप ही दयादृष्टि करता है। हे नानक, यदि पति को स्त्री अच्छी लगती है तो स्वयं ही उसे भोगता है (अंगीकार करके अपनी बना लेता है) ॥४॥१॥३॥

[४]

इआनड़ीए मानड़ा काइ करहि ।
आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि ॥

सहु नेड़ै धन कमलीए बाहरु किआ ढूढेहि ।
भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो ॥
ता सोहागणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो ॥१॥
इआणी बाली किआ करे जा धन कंत न भावै ।
करण पलाह करे बहुतेरे सा धन महलु न पावै ॥
विणु करमा किछु पाईऐ नाही जे बहुतेरा धावै ॥
लब लोभ अहंकार की माती माइआ माहि समाणी ॥
इनी बाती सहु पाईऐ नाही भई कामणि इआणी ॥२॥
जाइ पुछहु सोहागणी वाहै किनी बाती सहु पाईऐ ।
जो किछु करे सो भला करि मानीऐ हिकमति हुकमु चुकाईऐ ॥
जा कै प्रेमि पदारथु पाईऐ तउ चरणी चितु लाईऐ ॥
सहु कहै सो कीजै तनु मनो दीजै ऐसा परमलु लाईऐ ।
एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईऐ ॥३॥
आपु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अउरु कैसी चतुराई ।
सहु नदरि करि देखै सो दिनु लेखै कामणि नउनिधि पाई ॥
आपणे कंत पिआरी सा सोहागणि नानक सा सभराई ॥
ऐसै रंगि राती सहज की माती अहिनिसि भाइ समाणी ।
सुंदरि साइ सरूप बिचखणि कहीऐ सा सिआणी ॥४॥२॥४॥

ऐ अज्ञानिनी (स्त्री) मान क्यो करती है ? अपने घर (मन) में (हरी के प्रेम का) रंग क्यों नहीं लेती ? हे मूर्ख स्त्री (तेरा) पति (परमात्मा) तेरे पास ही है (फिर) बाहर क्यों ढूंढती फिरती है ? (हरी के) भय (के सुरमे की) सलाइयाँ (अपनी) आँखों में लगा और प्रेम का शृङ्गार कर ॥१॥
(हे स्त्री) तू तभी (पति के साथ युक्त) सुहागिनी स्त्री समझी जायगी यदि पति के साथ प्रेम कर ले ॥१॥

यदि स्त्री पति को नहीं अच्छी लगती तो मूर्ख नवयुवती कर ही क्या सकती है ? (वह स्त्री) चाहे (अत्यधिक) करुण-क्रन्दन करे (किन्तु) (पति-परमात्मा का) महल नहीं पाती । चाहे वह बहुत ही दौड़धूप (क्यों न) करे किन्तु बिना भाग्य के (वह) कुछ भी नहीं पाती । (ऐसी मूढ़ स्त्री) लालच लोभ और अहंकार में मस्त होने (के कारण) (माया) में डूब गयी । इन बातों से (स्त्री) पति को नहीं पाती और (वह) स्त्री मूर्ख हो जाती है ॥२॥

(हे स्त्री) जाकर सुहागिनी स्त्रियों से पूछो कि किन बातों से (उन्होंने) पति (परमात्मा) को प्राप्त किया है ? (वे निम्नलिखित उत्तर देंगी) । (परमात्मा) जो कुछ भी करता है उसे भला समझ कर स्वीकार करना चाहिए और चालाकी तथा जोर (हुक्म) को त्याग देना चाहिए । जिसके प्रेम के द्वारा (नाम अथवा मुक्ति का) पदार्थ पाया जाता है उसके चरणों में चित्त लगाना चाहिए । जो पति (परमात्मा) आज्ञा दे वही करो (अपना)

मुसलमानियाँ दुःखी होकर कुरान पढ़ रही हैं और खुदा के आगे दुहाई कर रही हैं। (मुग़ल) सिपाही मुसलमान पठानियों के ऊपर भी अत्याचार कर रहे हैं। अन्य हिन्दू ऊँची और नीची स्त्रियों को भी इस गिनती में समझ लो। खून के गीत गाये जा रहे हैं; (और) हे नानक रक्त का केसर (स्थान स्थान पर) पड़ रहा है ॥१॥

नानक (कहते हैं कि) मैं साहब (प्रभु का) गुण गाता हूँ और इस मास (लोथों) से भरी हुई नगरी में यह समाचार कहता हूँ कि जिस (प्रभु ने यह सृष्टि) रची है (और पृथक् पृथक्) रंग में रची है (वह) आप अकेला बैठा हुआ (सब कुछ) देख रहा है। वह साहब (प्रभु) सच्चा है, (उसका) न्याय भी सच्चा है और (वह) सच्चे न्याय करेगा। शरीर रूपी कपड़ा टुकड़े टुकड़े हो जाएगा और हिन्दुस्तान मेरे वचन को याद करेगा। (मुग़ल) (संवत्) ७८ में आयेंगे और ९७ में चले जायेंगे और (तभी) एक और मर्द का चेला (गुरबीर) उत्पन्न होगा। [यहाँ सम्वत् १५७८ विक्रमी में बाबर के हिन्दुस्तान के आक्रमण तथा ९७ (१५९७ वि.) में हुमायूँ के भारत छोड़ने का संकेत है। 'मर्द का चेला' का भाव 'शेरशाह' सूरी से प्रतीत होता है, जिसने मुग़ल राज्य को भारतवर्ष से निकाल कर अपना राज्य स्थापित किया। यह वास्तव में ही मर्द का चेला कहलाने के योग्य था क्योंकि सर्वप्रथम इसी मुसलमान बादशाह ने हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए समान कानून बनाने की चेष्टा की।]। नानक (कहते हैं कि) मैं सच्ची बात कह रहा हूँ क्योंकि सत्य (वस्तु) सुनाने की (यही) सत्य वेला है। (बाद में चले जाने पर इस बात को सुनाने का क्या लाभ होगा?) ॥ २ ॥ ३ ॥ ५ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु २ ॥

[६]

जिनि कीआ तिनि देखिआ किआ कहीऐ रे भाई ।
आपे जाणै करे आपि जिनि वाड़ी है लाई ॥१॥
राइसा पिआरे का राइसा जितु सदा सुखु होई ॥रहाउ॥
जिनि रंगि कंतु न राविआ सा पछो रे ताणी ।
हाथ पछोड़ै सिरु धुणै जब रैणि विहाणी ॥२॥
पछोतावा ना मिलै जब चूकैगी सारी ।
ता फिरि पिआरा रावीऐ जब आवैगी वारी ॥३॥
कंतु लीआ सोहागणी मै ते वधवी एह ।
से गुण मुझै न आवनी कै जी दोसु धरेह ॥४॥
जिनी सखी सहु राविआ तिन पूछउगी जाए ।
पाइ लगउ बेनती करउ लेउगी पंथु बताए ॥५॥
हुकमु पछाणै नानका भउ चंदनु लावै ।
गुण कामण कामणि करै तउ पिआरे कउ पावै ॥६॥

(जिस-प्रकार) धातु से मिल कर धातु एक हो जाती है, (उसी प्रकार) प्रेम प्रेम की ओर दौड़ता है (भाव यह कि) जिस प्रकार सोने आदि धातु का आभूषण, तोड़ा और गलाया जा कर फिर अपनी असली धातु में मिल जाता है और कोई अन्तर नहीं रहता उसी प्रकार प्रेमी मनुष्य (प्रेमस्वरूप परमात्मा की ओर आकर्षित किया जाता है और अंत में तद्रूप हो जाता है)। गुरु की कृपा द्वारा जब समझ आ जाती है, तो निर्भय (हरि) प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

घर में धनवाड़ी (पानों की क्यारी) हो पर गधा उसकी कद्र नहीं जानता। जो (मनुष्य) सुगन्धि का प्रेमी (रसिक) हो वही फूल को पहचान सकता है ॥ ९ ॥

हे नानक जो अमृत पीता है, उसका भ्रम में भटकना स्वतः ही समाप्त हो जाता है, (वह) सहज ही (हरि से) मिल जाता है और अमर पद पा लेता है ॥ १० ॥ १ ॥ ६ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु सूही, महला १, चउपदे, घरु १

सबद [१]

भांडा धोइ बैसि धूपु देवहु तउ दूधै कउ जावहु।
दूधु करम फुनि सुरति समाइणु होइ निरास जमावहु ॥१॥
जपहु त एको नामा। अवरि निराफल कामा ॥१॥रहाउ॥
इहु मनु ईटी हाथि करहु फुनि नेत्रउ नीद न आवै।
रसना नामु जपहु तब मथीऐ इन बिधि अंम्रितु पावहु ॥२॥
मनु सम्पटु जितु सतसरि नावणु भावन पाती त्रिपति करे।
पूजा प्राण सेवकु जे सेवे इन्ह बिधि साहिबु रवतु रहै ॥३॥
कहदे कहहि कहे कहि जावहि तुम सरि अवरु न कोई।
भगतिहीणु नानकु जनु जंपै हउ सालाही सचा सोई ॥४॥१॥

बरतन धोकर बैठ कर (उसमें) धूप दो तब फिर दूध लेने के लिए जाओ। (भावार्थ यह कि मन को पवित्र करके ऐसे नमो शुभ नाम का सम्मान हो सकता है)। (शुभ) कर्म दूध है फिर सुरति (दूध जमाने का) जामन है, (संसार से) निष्काम होकर (दूध) जमाओ ॥१॥

एक (परमात्मा) के ही नाम का जप करो। अन्य कार्य निष्फल है ॥१॥रहाउ॥

इस मन को (नेत्रों से बांधने की) डुम्मी बना कर हाथ में रक्खो। (दविका में) नींद न आना ही (मथानी की) नेती हो जिह्वा से नाम जपना हो (दही) मथना हो, इस विधि (दही मथ कर) मक्खन रूपी अमृत प्राप्त करो ॥२॥

मन को (परमात्मा के रखने का) संपुट (डिब्बा) बनावे, (और उसे) सत्संग रूपी नदी में स्नान कराके भाव (श्रद्धा, प्रेम) के पत्र चढ़ावे और (परमात्मा को) तृप्त करे। प्राण तक देकर जो सेवक सेवा-रूपी पूजा करे तो वही इन विधियों से साहब (परमात्मा) के साथ रमण करता रहेगा ॥३॥

कथन करनेवाले (तेरी महिमा का) कथन करते हैं और कथन करते करते (इस संसार से) चले जाते हैं (किन्तु तेरी महिमा का पार नहीं पाते)। (हे प्रभु), तेरे समान कोई दूसरा नहीं है। हे नानक! भक्ति से रहित दास विनती करता है कि मैं सच्चे (परमात्मा) की ही स्तुति करता रहूँ ॥४॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु २ ॥

[२]

अंतरि वसै न बाहरि जाइ । अमृतु छोडि काहे बिखु खाइ ॥१॥
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ॥१॥रहाउ॥
गिआनु धिआनु सभु कोई रवै । बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ॥२॥
सेवा करे सु चाकरु होइ । जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ ॥३॥
हम नही चंगे बुरा नही कोइ । प्रणवति नानकु तारे सोइ ॥४॥१॥२॥

(हे मन) (हरी तेरे) अंतस्तल ही बसता है, (कहीं) बाहर मत जा। (तू) अमृत छोड़ कर, विष क्या खाता है? ॥१॥

हे मेरे मन, ऐसे ज्ञान को दृढ़ कर कि सच्चे प्रभु के सेवक हो जा ॥१॥रहाउ॥

ज्ञान-ध्यान की बातें सब कोई करते हैं (पर वास्तव में) सारा जगत् (माया के) बंधन में बंधा हुआ फिरता है ॥२॥

जो प्रभु की सेवा करता है वही (उसका) दास होता है। (वह हरी) जल थल तथा पृथ्वी और आकाश के मध्य में रमा हुआ है ॥३॥

हम अच्छे नहीं हैं, कोई भी बुरा नहीं है। नानक विनती करता है कि वही (हरी ही) तारता है (नहीं तो मनुष्य स्वयं कभी भी तरने योग्य नहीं हो सकता ॥४॥१॥२॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ६ ॥

[३]

उजलु कैहा चिलकणा घोटिम कालड़ी मसु ।
धोतिआ जूठि न उतरै जे सउ धोवा तिसु ॥१॥
सजण सेई नालि मै चलदिआ नालि चलंनि ।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंनि ॥१॥रहाउ॥
कोठे मंडप माड़ीआ पासहु चितवीआहा ।
ढठीआ कंमि न आवन्ही विचहु सखणीआहा ॥२॥
बगा बगे कपड़े तीरथ मंझि वसंनि ।
घुटि घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीअनि ॥३॥

सिंमल रुखु सरीरु मै मैजन देखि भुलन्हि ।
से फल कमि न आवन्ही ते गुण मै तनि हंन्हि ॥४॥
अंधुलै भारु उठाइआ डूगर वाट बहुतु ।
अखी लोड़ी ना लहा हउ चड़ि लघा कितु ॥५॥
चाकरीआ चंगिआईआ अवर सिआणप कितु ।
नानक नामु समालि तू बधा छुटहि जितु ॥६॥१॥३॥

विशेष — यह पद मुलतान जिले में स्थित तुलंभा गाँव के निवासी शेख सज्जन के प्रति कहा गया है। शेख सज्जन ठग था। (वह) ऊपरी वेश तो साधु का बनाए था किन्तु मनुष्यों की हत्या करता था। गुरु नानक देव ने इसका उद्धार किया उन्होंने उसकी बुराइयों को दूर करके अपना शिष्य बनाया और उसे वहाँ का प्रचारक बना दिया।

अर्थ — काँसा अत्यन्त उज्ज्वल और चमकीली होती है, (पर यदि वह) रगड़ी जाय तो काली स्याही हो जाती है। (आन्तरिक) झूठ (अपवित्रता) (बाहरी) सफाई से नहीं दूर होती है चाहे उसे सौ बार ही (क्यों न) धोया जाय ॥१॥

(सज्जन ठग के नाम के वास्तविक अर्थ की ओर संकेत करते हुए गुरु नानक देव कहते हैं कि) सज्जन वे ही होते हैं, जो जहाँ भी जाते हैं, (वहाँ साथी बन कर) साथ जाते हैं। (उनसे) जिस स्थान पर (जब भी जीवन की बुराइयों और अच्छाइयों का) लेखा माँगा जाता है, उसी स्थान पर खड़े-खड़े (अपना हिसाब) चुका देते हैं ॥१॥रहाउ॥

(चाहे) (बड़ी, बड़ी) अट्टालिकाएँ और मण्डप (महल) निर्मित कर लिए जायँ और पास से चित्रित भी कर दिए जायँ (किन्तु) ढिंढोरा (डुग्गी) पीटना (बाह्य प्रदर्शन) कुछ भी काम नहीं आयेगा (क्योंकि) भीतर से (ये सब ऊपरी तड़क-भड़क) खाली हैं ॥२॥

बगुलों के श्वेत कपड़े (पंख) होते हैं और तीर्थों में (तात्पर्य यह कि तीर्थस्थान के समीप जलाशयों में) निवास करते हैं (किन्तु वे) चीर फाड़ कर जीवों (मछलियाँ आदि) को खाते हैं, (अतएव वे अपनी इस हिंसक मनोवृत्ति के कारण) श्वेत—निर्दोष नहीं कहे जा सकते। [उपर्युक्त पंक्तियों का तात्पर्य शेख सज्जन से है—तुम भी सज्जनों का वेश बना कर हिंसा कर रहे हो अतएव तुम्हारी और बगुले की समान अवस्था है।] ॥३॥

मेरा शरीर (जीवन) सेमल के वृक्ष के समान है। (बाह्य दृष्टि से सुन्दर फूला हुआ है उसी प्रकार मेरी बाह्य वेशभूषा एवं आचार आदि को) देखकर लोग भूल जाते हैं भ्रमित हो जाते हैं। जिस प्रकार (सेमल वृक्ष के फल) किसी काम नहीं आते हैं, (उसी प्रकार) मेरे शरीर में (जो ऊपरी) गुण हैं (वे किसी भी काम नहीं आते) ॥४॥

अन्धे ने (मैंने) (पाप का अत्यन्त भारी) बोझा उठाया है मार्ग अत्यन्त ही पहाड़ी है। (मैं) आँखों से रास्ता ढूँढ़ता (तो अवश्य) हूँ (किन्तु) पाता नहीं हूँ; मैं किस प्रकार चढ़ चढ़ कर लाँघूँ? (गुरु नानक देव ने इन गुणों में सारे अवगुण अपने में दिखा कर शेख सज्जन का उद्धार किया है।) ॥५॥

(हरी के नाम के बिना) अन्य सेवाएँ नेकियाँ (अच्छाइयाँ) तथा चतुराइयाँ किस काम की? हे नानक तू नाम का स्मरण (कर जिससे तू) (बुरे कर्मों के) बन्धन से मुक्त हो जा ॥६॥१॥३॥

[४]

जप तप का बंधु बेड़ुला जितु लंघहि वहेला ।
ना सरवरु ना ऊछले ऐसा पंथु सुहेला ॥१॥
तेरा एको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सद रंग ढोला ॥१॥रहाउ॥
साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई ।
जे गुण होवहि गंठड़ीऐ मेलेगा सोई ॥२॥
मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिआ होई ।
आवागउणु निवारिआ है साचा सोई ॥३॥
हउमै मारि निवारिआ सीता है चोला ।
गुर बचनी फलु पाइआ सह के अंम्रित बोला ॥४॥
नानकु कहै सहेलीहो सहु खरा पिआरा ।
हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा ॥५॥२॥४॥

(हे मनुष्य) जप-तप के बेड़े को बाँधो, (जिससे संसार-सागर को) शीघ्रता से पार कर लो। (नाम के द्वारा) रास्ता ऐसा सुगम्य हो जायगा (जैसा कि) समुद्र (का मार्ग होता) नहीं और यदि हो भी तो उफान नहीं मारेगा ॥१॥

(हे हरी), तेरा एक नाम ही मजीठी रंग है, हे प्रियतम (उस मजीठी रंग में) मेरा चोला (वस्त्र शरीर) पक्के रंगवाला हो गया है। ('ढोला'=पश्चिमी पंजाब में ढोला एक प्रसिद्ध प्रेमी हो गया है। ढोला ऐसा प्रसिद्ध प्रेमी हुआ कि उसका नाम ही 'प्रियतम अथवा प्रेमी' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा] ॥१॥रहाउ॥

साजन (स्वामी) प्यारियों की ओर चल पड़े हैं किस प्रकार मिलाप होगा ? (इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित ढंग से गुरु नानक देव देते हैं)—(यदि उन स्त्रियों की) गाँठ में (पल्ले) गुण हों तो वह (प्यारा आप ही उनको अपने में) मिला लेगा ॥२॥

यदि (सच्चा) मिलाप हो तभी मिलने के पश्चात् बिछोह नहीं होता। जो सच्चा (प्रभु) है उसने आवागमन (जन्मना-मरना) निवारण कर दिया है। जिसने अहंकार को मारकर निवारण कर दिया है, उसका शरीर शीतल हो गया है (तात्पर्य यह कि उसके त्रिविध ताप शान्त हो गए हैं। [इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—' जिसने अहंकार को मार कर दूर कर दिया है उसने पति—परमेश्वर के मिलने के लिए यह चोला सिया है।]

[विशेष उपर्युक्त पद में चोला और 'सीता' शब्द श्लिष्ट हैं जिनके निम्नलिखित अर्थ हैं—चोला—(१) वस्त्र (२) शरीर। सीता—(१) सिया (२) शीतल] (उस व्यक्ति को) गुरु के उपदेश द्वारा पति (परमात्मा के) अमृत वचन रूपी फल प्राप्त हो गए हैं ॥४॥

नानक कहता है कि हे सहेलियो पति (परमात्मा) बड़ा प्यारा है। हम सभी पति (परमात्मा) की दासियाँ हैं वही हमारा सच्चा पति है ॥ ५ ॥ २ ॥ ४ ॥

[५]

जिन कउ भांडै भाउ तिना सवारसी।
सूखी करै पसाउ दूख विसारसी॥
सहसा मूले नाहि सरपर तारसी॥१॥
तिना मिलिआ गुरु आइ जिन कउ लीखिआ।
अंम्रितु हरि का नाउ देवै दीखिआ॥
चालहि सतिगुर भाइ भवहि न भीखिआ॥२॥
जा कउ महलु हजूरि दूजे निवै किसु।
दरि दरवाणी नाहि मूले पुछ तिसु॥
छुटै ता कै बोलि साहिबु नदरि जिसु॥३॥
घले आणे आपि जिसु नाही दूजा मतै कोइ।
ढाहि उसारे साजि जाणै सभ सोइ॥
नाउ नानक बखसीस नदरी करमु होइ॥४॥१॥५॥

जिनके पात्र (शरीर, तात्पर्य यह कि अन्तःकरण) में प्रेम है उन्हें (परमात्मा) सँवारेगा। (वह) प्रसन्न होकर उन्हें सुखी करेगा और (उनके) सारे दुःखों को विस्मृत कर देगा। (इसमें) बिल्कुल संशय नहीं है (वह उन्हें) अवश्य तार देगा॥१॥

जिन्हें (परमात्मा के यहाँ से पहले से) लिखा है, उन्हें गुरु आकर मिल जाता है और हरि के अमृत-नाम की दीक्षा देता है। (जो) सद्गुरु के आज्ञानुसार चलते हैं (उन्हें स्थान-स्थान पर) भिक्षा (माँगने के लिए) नहीं घूमना पड़ता॥२॥

जिसका महल सामने (निकट, समीप) ही है, (तात्पर्य यह कि आत्मस्वरूप का जिसके पास है), वह दूसरे से क्यों झुके? (अन्य से याचना क्यों करे)? (जो हरि के नाम में अनुरक्त हैं उनके लिए) परमात्मा के द्वार पर दरबानी (पहरा) नहीं है, जिससे (वहाँ) बिल्कुल पूछना पड़े। जिसके ऊपर साहब कृपादृष्टि करता है, उसका बोलना (व्यवहार करना) सफल हो जाता है॥३॥

(वह प्रभु) आप ही हमें भेजता या ले आता है, जिसे (उस प्रभु को) कोई दूसरा उपदेश देनेवाला नहीं है। (वही) प्रभु नष्ट करता है (नष्ट करके) फिर निर्माण करके सजाता है (और वही) सब कुछ जानता है। (जब प्रभु की) दृष्टि और कृपा होती है, हे नानक (तभी) (उसके) नाम की बख्शिश मिलती है॥४॥५॥

[६]

भांडा हछा सोइ जो तिसु भावसी।
भांडा अति मलीणु धोता हछा न होइसी॥
गुरू दुआरै होइ सोझी पाइसी।
एतु दुआरै धोइ हछा होइसी॥
मैले हछे का वीचारु आपि वरताइसी।

पतु को भाणै आइ पवै पाइसी ॥
जेहे करम कमाइ तेहा होइसी ।
अमृतु हरि का नाउ आपि वरसाइसी ॥
वडिआई पति सिउ जनमु सवारि वाजा वाइसी ।
माणसु किआ वेचारा तिहु लोक सुणाइसी ॥
नानक आपि निहाल सभि कुल तारसी ॥१॥७॥६॥

जो (उस प्रभु को) अच्छा लगेगा वही अच्छा पात्र (मनुष्य) सिद्ध होगा। जो बहुत मलिन पात्र है (पापी मनुष्य है) वह (बाहर के) धोने से अच्छा नहीं होगा। गुरु के द्वार पर होने से ही (आने से ही) समझ प्राप्त होगी। इसी द्वार पर (अन्तःकरण) धोने से (मनुष्य) अच्छा होगा।

पापात्मा (मैले) और पुण्यात्मा (अच्छे) का विचार (निर्णय) (प्रभु) स्वयं करेगा। किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि आगे जाकर (मनचाहा स्थान) प्राप्त होगा (क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों का निर्णय नहीं कर सकता। यह निर्णय तो परमात्मा ही करता है)।

(मनुष्य) जिस प्रकार के कर्म करता है उसी प्रकार का (फल भी प्राप्त) होगा। हरि के अमृत नाम को (प्रभु ही) बरसेगा (प्रदान करेगा) (ऐसा मनुष्य) (अपना) जन्म संसार पर प्रतिष्ठा के साथ (प्रभु के यहाँ) जाता है, (उसके जाने पर उसकी कीर्ति का) बाजा बजेगा ॥

एक बेचारे मनुष्यलोक का क्या कहना है, ऐसे मनुष्य की कीर्ति का डंका तीनों लोकों में बजेगा। हे नानक (ऐसा व्यक्ति) स्वयं तो निहाल होता ही है वह अपने समस्त कुल को भी तार देता ॥१॥७॥६॥

[७]

जोगी होवै जोगवै भोगी होवै खाइ ।
तपीआ होवै तपु करे तीरथि मलि मलि नाइ ॥१॥
तेरा सदड़ा सुणीजै भाई जे को बहै अलाइ ॥१॥रहाउ॥
जैसा बीजै सो लुणे जो खटे सो खाइ ।
अगै पुछ न होवई जे सणु नीसाणै जाइ ॥२॥
तैसो जैसा काढीऐ जैसी कार कमाइ ।
जो दमु चिति न आवई सो दमु बिरथा जाइ ॥३॥
इहु तनु वेची बै करी जे को लए विकाइ ।
नानक कमि न आवई जितु तनि नाही सचा नाउ ॥४॥५॥७॥

(यदि कोई) योगी होता है (तो वह) अपना योग पूर्ण करना (चाहता) है। (और कोई) भोगी होता है तो वह भोग भोगना (चाहता) है। (यदि कोई) तपस्वी होता है, (तो वह) तप करता है और तीर्थों में मल मल कर स्नान करता है ॥१॥

हे प्यारे, मैं तो तेरा सन्देशा ही सुनना चाहता हूँ यदि कोई बढ़कर सुनावे ॥१॥रहाउ॥

(मनुष्य) जैसा बोता है वैसा ही काटता है और जो श्रम करता है वही खाता है। यदि कोई (नाम के) परवाने के साथ (समेत) जाय (तो उसकी) आगे (परलोक में) पूछ नहीं होती ॥२॥

(मनुष्य) जैसा कर्म करता है वैसा ही कहा जाता है। जिस श्वास में (परमात्मा) चित्त में नहीं आता है, वह श्वास व्यर्थ ही जाती है ॥३॥

(प्रियतम को पाने के निमित्त) यदि कोई व्यक्ति (मेरे) इस शरीर को बिक्री में खरीदे तो (मैं इसे) बेच कर सकती हूँ हे नानक, जिस शरीर में सच्चे (हरी के) नाम का (निवास) नहीं होता (वह शरीर) (किसी भी) काम नहीं आता ॥४॥१॥७॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ७ ॥

[८]

जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिंङी वाईऐ ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥१॥
गली जोगु न होई ।
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई ॥१॥रहाउ॥
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईऐ ।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥२॥
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ ।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥३॥
नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ ।
वाजे बाझहु सिंङी वाजै तउ निरभउ पदु पाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ तउ जोग जुगति तउ पाईऐ ॥४॥१॥८॥

योग (की प्राप्ति) न तो कंथा (पहनने) में है न डंडा (लेने) में है और न शरीर पर भस्म लगाने में है। योग न तो (कानों में) मुद्रा (पहनने) में है न मुंड मुंडवाने में (सिर घुटाने में) और न शृंगी (बाजा) बजाने ही में है। (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) में (युक्त) रहा जाय (तो यही) योग की (वास्तविक) युक्ति है (और इसी से योग) प्राप्त होता है ॥१॥

(निरी कोरी) बातों से ही योग (की प्राप्ति) नहीं होती। (जो) एक दृष्टि करके (सभी को) समान समझे, (उसी को वास्तविक) योगी कहा जाता है ॥१॥रहाउ॥

योग बाहर—कब्रों (समाधि स्थानों) (तथा) श्मशानों (के बीच रहने में) नहीं है (और बाहरी) ध्यान लगाने में भी योग नहीं है। देश देशान्तरों के भ्रमण करने में भी

मोक्ष नहीं है और न तीर्थादिकों के स्नान में ही मोक्ष (की प्राप्ति होती) है। (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से (युक्त) रहा, जाय (तो यही) मोक्ष की (वास्तविक) युक्ति है (और इसी से मोक्ष) प्राप्त होता है ॥२॥

सद्गुरु मिले (तभी) भ्रम टूट सकता है (और विषयों की ओर) दौड़ते हुए (मन को) रोक कर रखा जा सकता है। तभी (आत्मानंद का) निर्झर (निरन्तर) झरने लगता है और सहजावस्था में धुनि (ध्वनि) लग जाती है (और) (अपने) घर ही में (आत्म स्वरूप में ही परमात्मा का) परिचय प्राप्त हो जाता है। (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से (युक्त) रहा जाय (तो यही) मोक्ष की (वास्तविक) युक्ति है (और इसी से मोक्ष) प्राप्त होता है ॥३॥

हे नानक, ऐसा योग कमाओ कि जीवितावस्था में ही (अहंकार से) मर कर रहो। (जब) बिना बजाए ही (नाद की) शृङ्गी बजती रहे, तभी निर्भय पद की प्राप्ति होती है। (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से युक्त रहा जाय (तो यही) योगी की (वास्तविक) युक्ति है (और तभी मोक्ष) प्राप्त होता है ॥४॥१॥८॥

[९]

कवणु तराजी कवणु तुला तेरा कवणु सराफु बुलावा।
कउणु गुरू कै पहि दीखिआ लेवा कै पहि मुलु करावा ॥१॥
मेरे लाल जीउ तेरा अंतु न जाणा।
तूं जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा तूं आपे सरब समाणा ॥१॥रहाउ॥
मनु ताराजी चितु तुला तेरी सेव सराफु कमावा।
घट ही भीतरि सो सहु तोली इन बिधि चितु रहावा ॥२॥
आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा।
आपे देखै आपे बूझै आपे है वणजारा ॥३॥
अंधुला नीच जाति परदेसी खिनु आवै तिलु जावै।
ता की संगति नानकु रहदा किउ करि मूड़ा पावै ॥४॥२॥९॥

कौन तराजू है, कौन तौल (बाट) है और तेरा कौन सर्राफ है (जो तौल करने के लिए) बुलाया गया है? किस गुरु के पास दीक्षा ली है और किससे (उस परम तत्व का मूल्य) कराया है? ॥१॥

हे मेरे लाल जी (प्रियतम) (मैं) तेरा अन्त नहीं जान सका। (हे प्रभु) तू जल तथा पृथ्वी और आकाश के बीच में पूर्ण रूप से व्याप्त है, तू स्वयं ही सर्वत्र समाया हुआ है ॥१॥रहाउ॥

मन तराजू है, चित्त तौल है, तेरी सेवा की कमाई मेरे लिए सर्राफ है, (तात्पर्य यह कि सेवा के द्वारा मन में प्रियतम हरी के परखने की क्षमता उत्पन्न होती है)। अपने हृदय के अंतर्गत उस प्रियतम को तोलूं—(इस प्रकार, अपने चित्त को स्थिर कर रखूं।—(यही) तौलने की सच्ची विधि है ॥२॥

प्रभु आप ही कुंडा है [कंडा—तराजू की डांडी के मध्य में जो सुई लगी होती और पल्लों के भार वाले पक्ष की ओर मुड़ जाती है।] आप ही बटन है, आप ही तराजू है और

सामान साधारणतया इनकी संख्या ९ मानी जाती है—(१) पद्म (सोना-चाँदी) (२) महापद्म (हीरे और जवाहर) (३) शंख (सुन्दर-सुन्दर भोजन और वस्त्र) (४) मकर (शस्त्र विद्या की प्राप्ति तथा राजदरबारों में मान) (५) कच्छप (कपड़े तथा अन्न का व्यापार) (६) कुन्द (सोने का व्यापार), (७) नील (मोती-मूंगे का व्यापार) (८) मुकुन्द (राग आदि ललित कलाओं की प्राप्ति) (९) खर्व]॥६॥

(हे हरि) अनेक जन्मों में (तुमसे) बिछुड़ कर (बहुत) दुःख पाए हैं। हे मेरे प्रियतम प्रभु, राजा (अब मेरे) हाथ पकड़ कर (बचा ले)॥७॥

नानक कहता है कि प्रभु (हरी) (वर्तमान काल में) है, (भूतकाल में) था (और भविष्य में) रहेगा। प्रियतम जिसे चाहता है उसे भोगता है, (तात्पर्य यह कि जिस भक्त को प्रभु चाहता है, उसे अपना बना कर मानता है)॥८॥१॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ३ ॥

[२]

कचा रंगु कसुंभ का थोड़ड़िआ दिन चारि जीउ।
विणु नावै भ्रमि भुलीआ ठगि मुठी कूड़िआरि जीउ॥
सचे सेती रतिआ जनमु न दूजी वार जीउ॥१॥

रंगे का किआ रंगीऐ जो रते रंगु लाइ जीउ।
रंगण वाला सेवीऐ सचे सिउ चितु लाइ जीउ॥१॥रहाउ॥

चारे कुंडा जे भवहि बिनु भागा धनु नाहि जीउ।
अवगणि मुठी जे फिरहि बधिक थाइ न पाहि जीउ॥
गुरि राखे से उबरे सबदि रते मन माहि जीउ॥२॥

चिटे जिन के कपड़े मैले चित कठोर जीउ।
तिन मुखि नामु न ऊपजै दूजै विआपे चोर जीउ॥
मूलु न बूझहि आपणा से पसूआ से ढोर जीउ॥३॥

नित नित खुसीआ मनु करे नित नित मंगै सुख जीउ।
करता चिति न आवई फिरि फिरि लगहि दुख जीउ॥
सुख दुख दाता मनि वसै तितु तनि कैसी भुख जीउ॥४॥

बाकी वाला तलबीऐ सिरि मारे जंदारु जीउ।
लेखा मंगै देवणा पुछै करि बीचारु जीउ॥
सचे की लिव उबरै बखसे बखसणहारु जीउ॥५॥

अन को कीजै मितड़ा खाकु रलै मरि जाइ जीउ।
बहु रंग देखि भुलाइआ भुलि भुलि आवै जाइ जीउ॥
नदरि प्रभू ते छुटीऐ नदरी मेलि मिलाइ जीउ॥६॥

मनमुख गिआनु विहूणीआ गुर बिनु गिआनु न भालि जीउ ।
खिंचोताणि विगुचीऐ बुरा भला दुइ नालि जीउ ॥
बिनु सबदै भै रतिआ सभ जोही जम कालि जीउ ॥७॥
जिनि करि कारणु धारिआ सभसै देइ आधारु जीउ ।
सो किउ मनहु विसारीऐ सदा सदा दातारु जीउ ॥
नानक नामु न वीसरै निधारा आधारु जीउ ॥८॥१॥२॥

विशेष : इस पद में 'जीउ' शब्द प्रत्येक तुक में लगा हुआ है। 'जीउ' का तात्पर्य 'जी' है। यह संबोधन-सूचक शब्द है। गुरु नानक देव जी के अनेक पदों में इस प्रकार संबोधन सूचक शब्द के प्रयोग मिलते हैं, जैसे 'राम' 'जीउ' 'भाई' 'पिआरे' 'अभिराम जाउ' आदि।

अर्थ कुसुंभी रंग कच्चा और थोड़े (दिनों) का—चार दिनों का होता है, (तात्पर्य यह कि मायिक पदार्थों के आकर्षण नश्वर और क्षणभंगुर होते हैं)। (मनमुख स्त्री) नाम विहीन होने के कारण (माया के) भ्रम में भूली रही और यह झूठी (स्त्री) ठगी जाकर लूटी गयी। सच्चे (हरी) से अनुरक्त हो जाने पर, (फिर) दूसरी बार जन्म नहीं (धारण करना पड़ता) ॥१॥

नाम में रँगे हुए (व्यक्ति) को (माया के) रंग से किस प्रकार रँगा जाय? (तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति हरि के मजीठी रंग में रँगा हुआ है उसे माया के कुसुंभी रंग में नहीं रँगा जा सकता)। (जो नाम के रंग में) सच्चा रँगनेवाला (गुरु) है (उसी सच्चे से) चित्त लगाना चाहिए (और उसी की) सेवा करनी चाहिए ॥१॥रहाउ॥

चाहे (लोग संसार की) चारों दिशाओं में भटकें किन्तु बिना (पूर्व कर्मों के) भाग्य के (नाम रूपी) धन नहीं प्राप्त होता। अवगुणों द्वारा लूटे जाकर जो (माया के बन्धनों) में बँधे हुए (कंकरियों की तरह) फिरते रहते हैं उन्हें ठिकाना नहीं मिलता। जिन (भाग्यवालों की) गुरु ने रक्षा की है वे ही बचे हैं (और उनका) मन शब्द (नाम) से रँग गया है ॥२॥

जिनके वस्त्र (गुण) उजले हैं पर चित्त मैला और कठोर है उनके मुख से नाम नहीं निकलता वे चोरों (की भाँति) द्वैतभाव में निमग्न रहते हैं। (जो व्यक्ति) अपना मूल स्थान (उत्पत्ति-स्थान) नहीं समझते वे पशुओं और ढोरों के समान हैं ॥३॥

(मनुष्य) नित्य-नित्य (नयी-नयी) खुशियों में मन लगाता है और नित्य नित्य (नवीन) सुखों को माँगता है। उसके चित्त में कर्ता पुरुष (परमात्मा का) (ध्यान) नहीं आता (अतएव वह) बार-बार दुःखों में लगता है। जिसके मन में सुखों और दुःखों का देनेवाला (हरी) बस जाता है उसके शरीर में भूख कैसे लगेगी? ॥४॥

(किए हुए कर्मों की) बाकी निकालनेवाला—(यमराज) (शीघ्र ही हिसाब लेने के लिए) बुलायेगा (और बाकी निकलने पर) यम सिर में (डण्डों) मारेगा। जब (कर्मों का) लेखा माँगा जाता है (तो उसे अवश्य) देना होगा। हिसाब पूछ कर (उस पर) विचार किया जायगा। सच्चे (परमात्मा) के एकनिष्ठ ध्यान से मनुष्य (संसार-सागर से) उबर जाता है क्षमा करनेवाला (प्रभु ही मनुष्य को) क्षमा करता है ॥५॥

(यदि मनुष्य परमात्मा को छोड़कर) किसी अन्य को (अपना) मित्र बनाता है, (तो वह) मर जायगा और खाक में मिल जायगा। (मनुष्य माया के) अनेक रंगों को देख

कर (उसी में) भटक गया है (वह बार बार) भटक भटक कर (जन्म मरण के चक्कर में) आता-जाता रहता है। (किन्तु हरी की) कृपादृष्टि से (वह अवश्यमेव ही) छूट जायगा (और वह परमात्मा उसे अपने में सदैव के लिये) मिला लेगा ॥ ६ ॥

ऐ ज्ञान-विहीन गाफिल (मनुष्य) गुरु के बिना ज्ञान को मत खोज (क्योंकि गुरु के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता है)। (मनुष्य) दुरे मन की खींचातानी (संशय) में नष्ट होता है, ये दोनों (भले और बुरे मनुष्य के) साथ ही रहते हैं। बिना (गुरु के) शब्द तथा (परमात्मा के) भय में रंगे हुए, यमराज-काल देखता रहता है ॥ ७ ॥

जिसने सृष्टि रच कर धारण कर रखी है, और जो सब को आश्रय देता है, उस धारणा वाला (प्रभु) को (भला) मन से कैसे भुलाया जाय? नानक उस नाम को (कभी) न भूले जो निराधारों का आधार है ॥ ८ ॥ १ ॥ २ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सूही, महला १ काफी, घरु १०

[३]

माणस जनमु दुलंभु गुरमुखि पाइआ ।
मनु तनु होइ चुलंभु जे सतिगुर भाइआ ॥१॥
चलै जनमु सवारि वखरु सचु लै ।
पति पाए दरबारि सतिगुर सबदि भै ॥१॥रहाउ॥
मनि तनि सचु सलाहि साचे मनि भाइआ ।
लालि रता मनु मानिआ गुरु पूरा पाइआ ॥२॥
हउ जीवा गुण सारि अंतरि तू वसै ।
तूं वसहि मन माहि सहजे रसि रसै ॥३॥
मूरख मन समझाइ आखउ केतड़ा ।
गुरमुखि हरि गुण गाइ रंगि रंगेतड़ा ॥४॥
नित नित रिदै समालि प्रीतमु आपणा ।
जे चलहि गुण नालि नाही दुखु संतापणा ॥५॥
मनमुख भरमि भुलाणा ना तिसु रंगु है ।
मरसी होइ विडाणा मनि तनि भंगु है ॥६॥
गुर की कार कमाइ लाहा घरि आणिआ ।
गुरबाणी निरबाणु सबदि पछाणिआ ॥७॥
इक नानक की अरदासि जे तुधु भावसी ।
मै दीजै नाम निवासु हरि गुण गावसी ॥८॥१॥३॥

मनुष्य का जन्म बहुत ही दुर्लभ है (वास्तव में) गुरमुखों को ही (यह जीवन) है (तात्पर्य यह कि गुरमुख ही मानव जीवन की वास्तविक कीमत जानते हैं)। यदि

सत्गुरु को (मनुष्य) अच्छा लगने लगा, तो उसके तन और मन दोनों ही शान्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

सद्गुरु की शिक्षा और भय के द्वारा (मनुष्य) सच्चाई का सौदा लेकर और अपना जन्म सँवार कर (इस संसार से) विदा होता है (वह परमात्मा के) दरबार में प्रतिष्ठा पाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तन और मन से सच्चे (परमात्मा की) स्तुति करने पर मन सच्चे (हरि का) अच्छा लगने लगा। पूर्ण गुरु के पा जाने पर, मन नाम (सिमरन) में अनुरक्त होकर मान गया ॥२॥

मैं (तेरे) गुणों का स्मरण करके जीता हूँ (हे प्रभु) तू मेरे अन्तःकरण में बसता है। (हे प्रभु) तू (मेरे) मन में निवास करता है (और मन) सहज ही भाव से आनन्द से भर जाता है ॥ ३ ॥

(हे मेरे) मूर्ख मन (मैं) तुझे कितना समझा समझा कर कहूँ ? गुरु के द्वारा हरि के गुणों को गा कर, (उसके) रंग में रंग जा ॥ ४ ॥

अपने प्रियतम (परमात्मा) को नित्य निज हृदय में स्मरण कर। यदि गुणों को (अपने) साथ लेकर चले, तो दुःख संताप नहीं देगा ॥ ५ ॥

मनमुख (माया के) भ्रम में भटक रहा है उसे कोई रंग (आनन्द) नहीं है (भाव यह कि मनमुख में प्रेम की लगन जागती ही नहीं)। (मनमुख) मर कर बेगाना हो जाता है (और उसके) तन और मन विष स्वरूप हो जाते हैं ॥ ६ ॥

गुरु का काम करके (उसका) नाम घर में ले आया। गुरु की वाणी और उसके उपदेश द्वारा सहजावस्था (निर्वाण पद चतुर्थ पद तुरीयापद) को पहचान लिया ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), यदि तुझे अच्छा लगे तो नानक की यह प्रार्थना है कि मुझे नाम में निवास दे (ताकि) (तेरा) गुण गाऊँ ॥ ८ ॥ १ ॥ ३ ॥

[४]

जिउ आरणि लोहा पाइ भंनि घड़ाईऐ।
तिउ साकतु जोनी पाइ भवै भवाईऐ ॥१॥

बिनु बूझे सभु दुखु दुखु कमावणा।
हउमै आवै जाइ भरमि भुलावणा ॥१॥रहाउ॥

तू गुरमुखि रखणहारु हरि नामु धिआईऐ।
मेलहि तुझै रजाइ सबदु कमाईऐ ॥२॥

तू करि करि वेखहि आपि देहि सु पाईऐ।
तू देखहि थापि उथापि दरि बीनाईऐ ॥३॥

देही होवगि खाकु पवणु उडाईऐ।
इहु किथै घरु अउताकु महलु न पाईऐ ॥४॥

दिहु दीवी अंध घोरु घबु मुहाईऐ।
गरबि मुसै घरु चोरु किसु रूआईऐ ॥५॥

गुरमुखि चोट न लागि हरि नामि समाइऐ ।
सबदि निवारी आपि जोति दीपाइऐ ॥६॥
लालु रतनु हरि नामु गुरि सुरति बुझाइऐ ।
सदा रहै निहकामु जे गुरमति पाइऐ ॥७॥
राति दिहै हरि नाउ मनि वसाइऐ ।
नानक मेलि मिलाइ जे तुधु भाइऐ ॥८॥२॥४॥

जिस प्रकार भट्ठी में लोहा डाल कर तोड़ कर गढ़ा जाता है (लोहा गढ़ने के लिए उसे बार बार भट्ठी में डाला जाता है) उसी प्रकार शाक्त (माया का उपासक) योनि के अंतर्गत पड़कर (बार-बार) (इस संसार में) भटकता रहता है ॥ १ ॥

बिना (हरि को) समझे हुए सब दुःख ही होते हैं और दुःख ही कमाना होता है। (इस प्रकार) अहंकार (के वशीभूत) (मनुष्य) आता जाता रहता है और भ्रम में भटकता रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे हरि) तू गुरु द्वारा बचा लेनेवाला है (अतएव) हरि का नाम स्मरण करना चाहिए। (यदि तेरी) मर्जी हो (तो) तू (गुरु) मिला देता है (और फिर हम उसका) धर्म कमाते हैं, (उसके धर्म पर आचरण करके अपना जीवन बनाते हैं) ॥ २ ॥

तू (सृष्टि) रच रच कर (उसे) देखता रहता है (उसकी देखभाल करता रहता है) (तू, जो कुछ) देता है, (वही हम) पाते हैं। तू (आप ही) निगरानी में (सृष्टि को) बना बिगाड़ कर देखता रहता है ॥ ३ ॥

(यह) शरीर खाक हो जायगा (और शरीर में स्थित) प्राण भी उड़ जायँगे। (संसार में मनुष्यों के) घरों की जो बैठकें थीं वे किधर (चली गईं) ? (अब तो उनकी) जगह भी नहीं मिलती। [बइठाक फारसी आताक=बैठक। महल (अरबी)=मकान इमारत, मौका अवसर] ॥ ४ ॥

(यद्यपि) सूर्य स्थित है, (फिर भी) घनघोर अंधकार है और घर (तात्पर्य यह कि घर का माल-असबाब) लुटा जा रहा है। (यह घर) अहंकार (के हाथों) लुटा जा रहा है यह घरेलू चोर है फिर (किसस) रोवें (और अपना दुखड़ा सुनावें) ? ॥ ५ ॥

गुरु द्वारा (अहंकार रूपी) चोर नहीं लगता (क्योंकि वह) नाम (के पहरेदार द्वारा) जगाता रहता है। (गुरु ने अपनी) शिक्षा द्वारा (तृष्णा की) अग्नि शान्त कर दी (और अन्तःकरण में ज्ञान के दीपक की) ज्योति प्रदीप्त कर दी ॥ ६ ॥

गुरु ने नाम रूपी लाल और रत्न को ध्यान द्वारा समझा दिया। यदि गुरु की शिक्षा प्राप्त हो जाती है (तो शिष्य) सदैव निष्काम (भाव से संसार में) रहता है ॥ ७ ॥

(वह शिष्य) रात दिन (अपने) मन में हरिनाम बसा लेता है। नानक कहते हैं (कि हे प्रभु) यदि तुझे अच्छा लगता है (तो) तू (उसे) (अपने में) मिला लेता है ॥ ८ ॥ २ ॥ ४ ॥

[५]

मनहु न नामु विसारि अहिनिसि धिआईऐ ।
जिउ राखहि किरपा धारि तिवै सुखु पाईऐ ॥१॥

मै अंधुले हरि नामु लकुटी टोहणी ।
रहउ साहिब की टेक न मोहै मोहणी ॥१॥रहाउ॥

जह देखउ तह नालि गुरि देखालिआ ।
अंतरि बाहरि भालि सबदि निहालिआ ॥२॥

सेवी सतिगुर भाइ नामु निरंजना ।
तुधु भावै तिवै रजाइ भरमु भउ भंजना ॥३॥

जनमत ही दुखु लागै मरणा आइ कै ।
जनमु मरणु परवाणु हरि गुण गाइ कै ॥४॥

हउ नाही तू होवहि तुध ही साजिआ ।
आपे थापि उथापि सबदि निवाजिआ ॥५॥

देही भसम रुलाइ न जापी कह गइआ ।
आपे रहिआ समाइ सो विसमादु भइआ ॥६॥

तूं नाही प्रभ दूरि जाणहि सभ तू है ।
गुरमुखि वेखि हदूरि अंतरि भी तू है ॥७॥

मै दीजै नाम निवासु अंतरि सांति होइ ।
गुण गावै नानकु दासु सतिगुरु मति देइ ॥८॥३॥५॥

(हे मनुष्य) मन में नाम को सत् जानकर अहर्निश (उसी का) ध्यान करो। जिस प्रकार कृपा कर के (प्रभु) रखे, उसी प्रकार (रहो) (और उसी में) सुख पाओ ॥१॥

मुझ अंधे के लिए हरि का नाम टटोलने की लकड़ी (छड़ी) है। मैं (अपने) साहब के आसरे रहता हूँ (इसलिए) मोहिनी (माया) मुझे नहीं मोहित कर सकती ॥१॥रहाउ॥

(मैं) जहाँ देखता हूँ, वहीं (प्रभु मेरे) साथ है। गुरु ने (इस वस्तु को मुझे) दिखा दिया है। भीतर और बाहर खोज कर (गुरु के) शब्द द्वारा (इसे) देख लिया है ॥२॥

(मैं) प्रेम से सद्गुरु की सेवा करता हूँ (जिसके द्वारा) नाम निरंजन (की प्राप्ति होती है)। हे भ्रम और भय को नष्ट करनेवाले (हरी) (जैसा) तुझे अच्छा लगे वही आज्ञा (मुझे) दे ॥३॥

जन्म लेते ही मरने का दुःख आकर घेर लेता है। (किन्तु साधक) हरि का गुण गाकर जन्म-मरण (से छूट कर) (परमात्मा के यहाँ) प्रामाणिक समझा जाता है ॥४॥

(हे प्रभु) मैं नहीं (हूँ) तू ही है, तुझी ने (सब कुछ) बनाया है। तू आप ही उत्पन्न करके नाश करता है, (पर किसी किसी को ही) नाम (शब्द) के द्वारा बड़ाई देता है ॥५॥

शरीर को खाक में मिला कर, पता नहीं (जीव) कहाँ चला जाता है? आश्चर्यमयी अवस्था यह है कि दोनों दशाओं में—जन्मावस्था और संहारावस्था में—मनुष्य के रहने में और न रहने में (प्रभु) आप ही समाया हुआ है ॥६॥

हे प्रभु, तू दूर नहीं है तू सब कुछ जानता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (उस प्रभु को) समीप ही देखो (हे प्रभु) तू ही (सबके) अन्तर्गत है ॥७॥

जिन सखियों ने पति के साथ रमण किया है वे आम (वृक्ष) की छाया के नीचे हैं (भाव यह कि वे परम सुखी हैं)। उनके गुण मुझमें नहीं हैं (अतएव) मैं किसे दोष दूँ?

मैं तेरे किन गुणों को विस्तारपूर्वक (कहूँ)? और तेरे किन किन नामों को लूँ? मैं तेरी एक बड़ाई तक भी नहीं पहुँच सकती। मैं तुझ पर सदैव कुरबान हो जाती हूँ॥

सोना चाँदी आनन्द प्रदान करनेवाले मोती माणिक्य—आदि (मूल्यवान) वस्तुएँ (मेरे) पति (परमात्मा) ने मुझे दी हैं। मैंने इन्हीं में अपना चित्त लगा दिया है (और दाता को भूल गयी)॥

मिट्टी के बनाए गए और पत्थरों द्वारा सजाए हुए (बड़े-बड़े) मकानों (आदि) में, बड़ाई और शोभा के सामानों में मैं (बिलकुल) भूली रही और अपने उस पति के पास नहीं बैठी (जिसने यह सब वस्तुएँ मुझे दीं)।

आकाश में (भाव यह कि सिर में) कौंच पक्षियों का कुरलना (आवाज़ करना) सुनाई पड़ने लगा (तात्पर्य यह कि वृद्धावस्था के कारण सिर श्वेत होने लगा) और बगुले आकर बैठ गए (मानो बाल सफ़ेद हो गए) हैं। ऐसा (प्राणी) ससुराल (परलोक) चली है, आगे (परलोक में) जाकर वह क्या मुँह दिखायेगी?

(अज्ञान निद्रा में) सोते ही प्रातः सवेरा हो गया (आयु रूपी रात्रि व्यतीत हो गई) (और वह स्त्री अपना) मार्ग भूल गई। (ऐ मूर्ख स्त्री) तू पति के साथ बिछुड़ गई और दुःखों को ही एकत्र किया॥

(हे प्रभु) तुझ में तो (सभी) गुण हैं, और (मुझमें) सारे अवगुण हैं। नानक की एक प्रार्थना है—(हे प्रभु) (तूने) सुहागिनों को तो सारी रातें (दे रखी हैं) मुझ दुहागिनी को भी कोई रात दो॥१॥

(२)

सुचजी

जा तू ता मै सभु को तू साहिबु मेरी रासि जीउ।
तुधु अंतरि हउ सुखि वसा तू अंतरि साबासि जीउ॥
भाणै तखति वडाईआ भाणै भीख उदासि जीउ।
भाणै थल सिरि सरु वहै कमलु फुलै आकासि जीउ॥
भाणै भवजलु लंघीऐ भाणै मंझि भरीआसि जीउ।
भाणै सो सहु रंगुला सिफति रता गुणतासि जीउ॥
भाणै सहु भीहावला हउ आवणि जाणि मुईआसि जीउ।
तू सहु अगमु अतोलवा हउ कहि कहि ढहि पईआसि जीउ॥
किआ मागउ किआ कहि सुणी मै दरसन भूख पिआसि जीउ।
गुर सबदी सहु पाइआ सचु नानक की अरदासि जीउ॥२॥

(हे प्रभु) यदि तू है तो मेरे लिए सब कुछ है। हे स्वामी तू ही मेरी राशि (पूँजी) है। तेरे भीतर मैं सुखी होकर निवास करती हूँ। तू मेरे भीतर है, यही (मेरी) बड़ाई (प्रशंसा) है॥

(हे हरि) यदि तुझे अच्छा लगे (तो मुझे) सिंहासन पर (बैठा कर) बड़ाइयाँ (दे) (और यदि तुझे) अच्छा लगे (तो मुझे) उदासी (बना कर घर घर) भीख मँगवा। (हे स्वामी) यदि तुझे अच्छा लगे तो स्थल में समुद्र बह चले और आकाश में कमल खिल पड़े (भाव यह है कि परमात्मा असंभव को संभव तथा असत्य को सत्य बना सकता है। यदि उसकी कृपा हो, तो शुष्क और नीरस हृदयों में प्रेम तथा भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित होने लगे) ॥

(हे स्वामी) यदि तुझे अच्छा लगे (तो मेरा जहाज) संसार-सागर के पार लगा दे और यदि तुझे अच्छा लगे (तो यह जहाज) पानी में भर कर (डुबा दे) (हे प्रभु) यदि तुझे अच्छा लगे, तो तू मुझे रंगीला (आनन्दमय) होकर (दिखाई देता है) और गुणों के भाण्डार (हरी) की स्तुति में मैं रम जाता हूँ॥

(हे साहब) यदि तुझे अच्छा लगे (तो तू मुझे) डरावना (दिखाई पड़ सकता है) और मैं जन्म-मरण (के चक्कर में पड़ कर) मर सकता हूँ। हे पति (परमात्मा) तू अगम और अतुलनीय है मैं तेरा कथन करते करते अपनी विह्वलता में गिर पड़ती हूँ॥

(हे प्रभु) मैं तुझसे क्या माँगू क्या कहूँ सुनूँ ? मुझे तो तेरे दर्शन की ही भूख और प्यास है। नानक की यह सच्ची भावना है कि गुरु के उपदेश द्वारा मैंने पति (परमात्मा) को पा लिया है॥ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु सूही, महला १, घरु १

छंत

[१]

भरि जोबनि मै मत पेईअड़ै घरि पाहुणी बलिराम जीउ।
मैली अवगणि चिति बिनु गुर गुण न समावनी बलिराम जीउ॥
गुण सार न जाणी भरमि भुलाणी जोबनु बादि गवाइआ।
वरु घरु दरु दरसनु नही जाता पिर का सहजु न भाइआ॥
सतिगुरि पूछि न मारगि चाली सूती रैणि विहाणी।
नानक बालतणि राडेपा बिनु पिर धन कुमलाणी॥१॥
बाबा मै वरु देहि मै हरि वरु भावै तिसकी बलिराम जीउ।
रवि रहिआ जुग चारि त्रिभवण बाणी जिसकी बलिराम जीउ॥
त्रिभवण कंतु रवै सोहागणि अवगणवंती दूरे।
जैसी आसा तैसी मनसा पूरि रहिआ भरपूरे॥
हरि की नारि सु सरब सुहागणि रांड न मैलै वेसे।
नानक मै वरु साचा भावै जुगि जुगि प्रीतम तैसे॥२॥
बाबा लगनु गणाइ हंभी वंञा साहुरै बलिराम जीउ।
साहा हुकमु रजाइ सो न टलै जो प्रभु करै बलिराम जीउ॥
किरतु पइआ करतै करि पाइआ मेटि न सकै कोई।

माता (माया) लड़की और लड़के (जीवात्मा और परमात्मा) के मिलन से रोती है, [क्यों कि लड़की—(जीवात्मा) माँ — (माया) से] बिछुड़ जाती है । हे नानक सच्चे शब्द द्वारा (पति-परमात्मा के) महलों में (वह सुहागिनी स्त्री) सुख पूर्वक निवास करती है और गुरु के चरणों में लग कर प्रभु को पहचानती है ॥४॥

(सद्गुरु रूपी) पिता ने (माया के देश से) इतनी दूर ससुराल (कर) दिया है, (कि वह अब कभी सुहागिनी स्त्री) लौट कर फिर मायके (माया के प्रदेश) में नहीं जाती, (मैं) राम पर न्यौछावर हो जाती हूँ । (वह स्त्री) पति (परमात्मा) को समीप देख कर बहुत आनन्दित हुई पति, ने उसके साथ रमण किया (जिससे वह) घर में सुहावनी लगती है । सच्चे पति को उसकी आवश्यकता थी तभी तो उस प्रियतम ने (उसे अपने साथ) युक्त कर लिया (जोड़ लिया मिला लिया) (इसी कारण उस स्त्री की) बुद्धि पूर्ण (हो गई) (और वह) प्रधान (मान्य हो गई) । संयोग (सुन्दर भाग्य) से (उसका) मिलाप (पति-परमात्मा से) हुआ है सुप्रशस्त स्थान में (उसका निवास हुआ है) गुरु के ज्ञान से वह गुण-वंती बन गई है । सत्य दान और संतोष उसके सच्चे पल्ले में पड़े हैं (जिससे वह) सत्य ही बोलती है और प्रियतम (उसे) चाहता है । हे नानक न तो वह (पति-परमात्मा से) बिछुड़ती है और न दुःख पाती है गुरु की शिक्षा द्वारा वह (हरी के) अंक में समा गई है ॥५॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु २ ॥

[२]

हम घरि साजन आए । साचै मेलि मिलाए ॥
सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ ।
साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ ॥
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए ।
पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए ॥१॥

आवहु मीत पिआरे । मंगल गावहु नारे ॥
सचु मंगलु गावहु ता प्रभ भावहु सोहिलड़ा जुग चारे ।
अपनै घरि आइआ थानि सुहाइआ कारज सबदि सवारे ॥
गिआन महा रसु नेत्री अंजनु त्रिभवण रूपु दिखाइआ ।
सखी मिलहु रसि मंगलु गावहु हम घरि साजनु आइआ ॥२॥

मनु तनु अम्रिति भिंना । अंतरि प्रेमु रतंना ॥
अंतरि रतनु पदारथु मेरै परम ततु वीचारो ।
जंत भेख तू सफलिओ दाता सिरि सिरि देवणहारो ॥
तू जानु गिआनी अंतरजामी आपे कारणु कीना ।
सुनहु सखी मनु मोहनि मोहिआ तनु मनु अम्रिति भीना ॥३॥

अगम रूपु अपारा । साचा खेलु तुम्हारा ॥
सचु खेलु तुम्हारा अगम अपारा तुधु बिनु कउणु बुझाए ।
सिध साधिक सिआणे केते तुझ बिनु कवणु कहाए ॥
कालु बिकरालु भए बेताले मनु राखिआ गुरि ठाए ।
नानक अवगण सबदि जलाए गुण संगमि प्रभु पाए ॥४॥१॥२॥

हमारे घर में मित्रगण (गुरमुख) आ गए। सच्चे (हरी) ने (उनका) मिलाप करा दिया। (उन संतों ने मुझे) सहजावस्था में मिला दिया है (जिससे) मन को हरी अच्छा लगने लगा। संत जनों (पंच) के मिलने से बहुत सुख की प्राप्ति हुई। जिस (वस्तु) में मन लगाया था वह वस्तु प्राप्त हो गई। (उस प्रभु से) शाश्वत मिलन हो गया (जिससे) मन मान गया और घर तथा महल सुशोभित हो गए। (मेरे अंतर्गत) पाँच (बाजों की) ध्वनि (बिना बजाए ही) अनाहत गति से बजने लगी। हमारे घर में मित्रगण आ गए। [पंच शब्द = तार, चमड़ा, धातु, घड़े तथा फूंक से बजाए जाने वाले बाजे।] ॥१॥

हे प्यारे मित्रो, आओ। हे सखियो (सत्संगियों), मंगल के गीत गाओ। यदि (प्रभु के) सच्चे मंगल के गीत गाओगे तभी उस प्रभु को अच्छे लगोगे (उसकी) बड़ाई चारों युगों में (व्याप्त है)। (आत्मस्वरूप) घर में (हरी) आकर बस गया है, (जिससे हृदय रूपी) स्थान सुहावना हो गया है। शब्द (नाम) से (सारे) काज बन गए हैं। ब्रह्मज्ञान नेत्रों का परम अमृतमय अंजन है, (इसी अंजन ने) त्रिभुवन के स्वरूप (हरी) को दिखाया है। हे सखियो (गुरमुखो), मिलकर आनन्दपूर्वक मंगल-गीत गाओ। हमारे घर में (परमात्मा रूपी) साजन आ गया है ॥२॥

मेरे तन और मन अमृत से भीग गए हैं। (मेरे) अन्तःकरण में प्रेम रूपी रत्न (प्रकट हो गया है)। परम तत्त्व (परमात्म तत्त्व) के विचार से मेरे अन्तःकरण में (नाम रूपी) रत्न-पदार्थ (प्रकट हो गया है)। (हे हरी) जीव भिखारी हैं और तू सबका दाता है (ऐसा दाता, जो सबकी इच्छाओं को पूर्ण करता है)। प्रत्येक प्राणी—जीव को (तू ही) देनेवाला है। (हे प्रभु) तू ही सुजान (सयाना है) ज्ञानी (ज्ञाता) और अन्तर्यामी है, (और) तूने ही सृष्टि रची है। हे सखियो (गुरमुखो) सुनो हरी ने मन को मोहित कर लिया है (जिससे मेरे) तन और मन अमृत में भीग गए हैं ॥३॥

(हे प्रभु) तू ही संसार का आत्मा राम है, (अर्थात् हे हरी तू ही समस्त संसार में रम रहा है)। (हे हरी) तेरा खेल सच्चा है (वह) अगम और अपार है। तेरे बिना (सृष्टि के इस समस्त रहस्य को) कौन समझा सकता है? कितने ही सिद्ध साधक तथा सयाने लोग हैं (किन्तु) बिना (तुझे जाने हुए) कौन व्यक्ति (सिद्ध साधक अथवा सयाना) कहला सकता है? (अर्थात् कोई भी नहीं तेरे ही जानने से वे लोग सिद्ध साधक आदि बनते हैं बिना तेरे उनका कोई पृथक अस्तित्व नहीं है)। काल और यम बावले हो गए। गुरु ने मन को टिकाने रख दिया है, (गुरु ने मन को अपने स्थान में प्रतिष्ठित कर दिया है)। हे नानक गुरु के उपदेश द्वारा (मैंने) अवगुणों को दग्ध कर दिया है और गुणों के मेल से प्रभु को पा लिया है। [विशेष काल-मृत्यु ॥ बिकरालु = भयंकर नहीं, (अर्थात् मृत्यु का उलटा

जन्म) । काज सिधारु भए दसाम = जन्म और मरण पक्के हो गए हैं, (अर्थात जन्म-मरण समाप्त हो गए ।] ॥ ४ ॥ १ ॥ २ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ३ ॥

[३]

आवहो सजणा हउ देखा दरसनु तेरा राम ।
घरि आपनड़ै खड़ी तका मै मनि चाउ घनेरा राम ॥
मनि चाउ घनेरा सुणि प्रभ मेरा मै तेरा भरवासा ।
दरसनु देखि भई निहकेवल जनम मरण दुखु नासा ॥
सगली जोति जाता तू सोई मिलिआ भाइ सुभाए ।
नानक साजन कउ बलि जाईऐ साचि मिले घरि आए ॥१॥
घरि आइअड़े साजना ता धन खरी सरसी राम ।
हरि मोहिअड़ी साच सबदि ठाकुर देखि रहंसी राम ॥
गुण संगि रहंसी खरी सरसी जा रावी रंगि रातै ।
अवगण मारि गुणी घरु छाइआ पूरै पुरखि बिधातै ॥
तसकर मारि वसी पंचाइणि अदलु करे वीचारे ।
नानक राम नामि निसतारा गुरमति मिलहि पिआरे ॥२॥

वरु पाइअड़ा बालड़ीए आसा मनसा पूरी राम ।
पिरि राविअड़ी सबदि रली रवि रहिआ नह दूरी राम ॥
प्रभु दूरि न होई घटि घटि सोई तिस की नारि सबाई ।
आपे रसीआ आपे रावे जिउ तिसदी वडिआई ॥
अमर अडोलु अमोलु अपारा गुरि पूरै सचु पाईऐ ।
नानक आपे जोग सजोगी नदरि करे लिव लाईऐ ॥३॥

पिरु उचड़ीऐ माड़ड़ीऐ तिहु लोआ सिरताजा राम ।
हउ बिसम भई देखि गुणा अनहद सबद अगाजा राम ॥
सबदु वीचारी करणी सारी राम नामु नीसाणो ।
नाम बिना खोटे नही ठाहर नामु रतनु परवाणो ॥
पति मति पूरी पूरा परवाना ना आवै ना जासी ।
नानक गुरमुखि आपु पछाणै प्रभ जैसे अविनासी ॥४॥१॥३॥

हे साजन (हरी) आओ। मैंने तेरा दर्शन कर लिया है। (मैं) अपने घर में खड़ी होकर तुम्हें ताक रही हूँ (तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ) मेरे मन (में तेरे मिलन की) उत्कट चाह है। हे मेरे प्रभु, सुन, मेरे मन में (तेरे मिलन की) उत्कट इच्छा है, मुझे तेरा ही भरोसा है। (हे स्वामी) (तेरा) दर्शन करके (मैं) निर्मल (पवित्र) हो गई हूँ (और मेरे) जन्म-मरण के दुःख नष्ट हो गए हैं। (हे प्रभु) सब में तेरी ही ज्योति है (और उसी

ज्योति से (तू) जाना जाता है, प्रेम से (तू) स्वाभाविक ही मिल जाता है। हे नानक, मैं अपने साजन (प्रभु) पर न्योछावर हो जाती हूँ, सत्य (वाणी जिन्होंने व्यतीत करने से) (वह हरी) (हृदय रूपी) घर में आ (बसता है) ॥ १ ॥

घर में साजन (हरी) के आने पर (जीवात्मा रूपी) स्त्री अत्यधिक प्रसन्न होती है। उसने शब्द (नाम) द्वारा हरि से उसे मोहित किया है। (सुन्दर) ठाकुर (प्रभु) को देख कर (वह) आनन्दित होती है। रस में अनुरक्त, अर्थात् आनन्दस्वरूप (हरी) से जब (जीव रूपी) स्त्री की सगा है, तो वह गुणों के संग में अत्यधिक आनन्दित और प्रफुल्लित हुई है। सिरजनहार पुरुष (हरी) ने गुणों से (हृदय, रूपी) घर को छा दिया है (जिसके फलस्वरूप कामक्रोधादि) चोरों को मार कर सूक्ष्म बुद्धि आ बसी है और (वह सत्य-झूठ का) निर्णय करती है [अथवा (कामादिक) चोरों का मार कर पथभ्रष्ट (ध्यान) करने वाली (बुद्धि) आ बसी है और विचारपूर्वक (सत्य और झूठ) का न्याय करती है अथवा (कामादिक) चोरों को मार कर (बुद्धि) पंचों के समूह (सत्य संतोष दया धर्म और धैर्य) के वशीभूत हो गई है और विचारपूर्वक (सत्य झूठ का) निर्णय करता है।] हे नानक, राम नाम ने (मुझे) पार उतार दिया है। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) प्यारे (हरी) को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

ज्ञान-विहीन लड़की ने (हरी को) वर प्राप्त कर लिया है (जिससे उसकी समस्त) आशाएँ और इच्छाएँ पूरी हो गई हैं। प्रियतम (हरी) ने (उसे) माना है और शब्द द्वारा (उसे अपने में) मिला लिया है; अब उस अत्यन्त प्यारे हरी रमा हुआ दिखाई पड़ता है (वह) दूर नहीं है। प्रभु दूर नहीं है घर घर में (वहां) है। सभी कोई (समस्त प्राणी) (उसी की) स्त्रियाँ हैं। (प्रभु) आप ही रसिक है और आप ही रमण करता है, जैसा कि (उसकी) बड़ाई के (अनुरूप है)। (वह प्रभु) अमर, अडिग, अमूल्य और अपार है। पूर्ण गुरु से (उस) सत्यस्वरूप (हरी) की प्राप्ति होती है। हे नानक, (प्रभु) आप ही संयोग मिलाने वाला है। जब (वह) कृपादृष्टि करता है, (तो भूले हुओं को मार्ग दिखा कर) अपने एकनिष्ठ ध्यान (लिव) में जोड़ लेता है ॥ ३ ॥

प्रियतम (हरी) ऊँचे मंडप वाला (दशम द्वार वाला, सबसे ऊँचे निवास वाला) है और तीनों लोकों का सिरताज है। मैं (उसके गुणों को देखकर) विस्माद अवस्था (आश्चर्यमयी आनन्दमयी अवस्था) में पड़ गई और अनाहत शब्द प्रकट हो गया है। (मैंने) शब्द (नाम) (के ऊपर) विचार करके श्रेष्ठ करनी (का आचरण किया), (जिसके फलस्वरूप) राम नाम का निशान (चिह्न, हस्ताक्षर) (प्राप्त हो गया)। नाम से विहीन (पुरुष) खोटे (होते हैं) (उन्हें) स्थान नहीं (प्राप्त होता)। (जिसने नाम रूपी रत्न (पा लिया है) (वही) प्रामाणिक है। (ऐसे व्यक्ति की) पूर्ण बुद्धि है (और उसकी पूर्ण) प्रतिष्ठा होती है (उसे) पूरा परवाना (प्राप्त हो गया है) (वह आत्मस्वरूप में स्थित हो गया है, अतः) न वह कहीं आता है और न कहीं जाता (तात्पर्य यह कि वह जीवन-मरण के बंधनों से मुक्त हो गया है)। हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) अपने आप को तथा अविनाशी प्रभु को पहचान लेता है ॥ ४ ॥ १ ॥ २ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ४ ॥

[४]

जिनि कीआ तिनि देखिआ जगु धंधड़ै लाइआ।
दाति तेरा घटि चानणा तनि चंदु दीपाइआ ॥
चंदो दीपाइआ दानि हरि कै दुखु अंधेरा उठि गइआ।
गुण जंञ लाड़े नालि सोहै परखि मोहणीऐ लइआ ॥
वीवाहु होआ सोभ सेती पंच सबदी आइआ।
जिनि कीआ तिनि देखिआ जगु धंधड़ै लाइआ ॥१॥

हउ बलिहारी साजना मीता अवरीता।
इहु तनु जिन सिउ गाडिआ मनु लीअड़ा दीता ॥
लीआ त दीआ मानु जिन्ह सिउ से सजन किउ वीसरहि।
जिन्ह दिसि आइआ होहि रलीआ जीअ सेती गहि रहहि ॥
सगल गुण अवगणु न कोई होहि नीता नीता।
हउ बलिहारी साजना मीता अवरीता ॥२॥

गुणा का होवै वासुला कढि वासु लईजै।
जे गुण होवनि साजना मिलि साझ करीजै ॥
साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ।
पहिरे पटम्बर करि अडम्बर आपणा पिड़ु मलीऐ ॥
जिथै जाइ बहीऐ भला कहीऐ झोलि अम्रितु पीजै।
गुणा का होवै वासुला कढि वासु लईजै ॥३॥

आपि करे किसु आखीऐ होरु करे न कोई।
आखण ता कउ जाईऐ जे भूलड़ा होई ॥
जे होइ भूला जाइ कहीऐ आपि करता किउ भुलै।
सुणे देखे बाझु कहीऐ दानु अणमंगिआ दिवै ॥
दानु देइ दाता जगि बिधाता नानका सचु सोई।
आपि करे किसु आखीऐ होरु करे न कोई ॥४॥१॥४॥

जिस (प्रभु) ने (सृष्टि) उत्पन्न की है उसी ने (उसकी) देखभाल (निगरानी) भी की है (उसी ने समस्त) जगत् को धंधे (रोजगार आजीविका) में लगाया है। (हे प्रभु) तेरी कृपा से (मेरे) अन्तःकरण में प्रकाश हो गया है (मेरे) शरीर में चन्द्रमा का प्रकाश हो गया है (तात्पर्य यह है कि मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है)। हरी के दान (कृपा) से (अन्तःकरण में) चन्द्रमा का प्रकाश हो गया है, (जिसके फलस्वरूप) दुःख और अन्धकार (अज्ञान) समाप्त हो गए हैं। (परमात्मा रूपी) दूल्हे के साथ गुणों की बारात सुशोभित है (जिसे जिज्ञासु रूपी) स्त्री ने परख कर चुन लिया है। (जीवात्मा रूपी

स्त्री तथा परमात्मा रूपी पति का) विवाह बड़े ठाट-बाट (शोभा) के साथ हो गया है (उस विवाह में) पंच शब्दों का बाजा भी बजने लगा [पंच प्रकार के बाजों के शब्द निम्नलिखित हैं—धातु चाम तार, घड़े तथा फूँक के द्वारा बजाये जाने वाले बाजों का शब्द । पंच शब्द परमानन्द का प्रतीकात्मक है। आत्मा एवं परमात्मा के विवाह—मिलन में परमानन्द की अनुभूति होती है।] जिस (प्रभु) ने (सृष्टि) उत्पन्न की है, उसी ने (उसकी) सारसँभाल (निगरानी) भी की है (उसी ने समस्त) जगत् को धंधे (रोजगार आजीविका) में लगाया है ॥ १ ॥

मैं (अपने) (उन) साजन मित्रों के ऊपर न्योछावर हूं (जो) आचरण तथा दोष से रहित हैं। जिन गुरमुखों के साथ (अपना) शरीर मिला दिया है और जिनके पास मन (अन्तःकरण के भाव) रख दिया है (उन साजन मित्रों के ऊपर मैं न्योछावर हूं)। मैंने (अपना) मन देकर जिनसे (वस्तु) ली है, (भला) वे सज्जन क्यों भूल सकते हैं ? जिन्हें देखकर आनन्द प्राप्त हो (उन्हें सामने पाकर) हृदय से लगा लेना चाहिए। (सन्तों के मिलन में) गुण ही गुण हैं कोई भी अवगुण नहीं है (उनके मिलने में) सदैव (आनन्द) होता है। मैं (अपने उन) साजन मित्रों के ऊपर न्योछावर हूं (जो) आचरण तथा दोष-रहित हैं ॥ २ ॥

यदि गुणों की सुगंधि के डिब्बे (संकलन) मिल जायें तो उनसे (गुण रूपी) सुगन्धि ग्रहण कर लीजिए। यदि साजन (संत पुरुषों) के गुण मिल जायें तो उनसे साझा कर लीजिए (अर्थात् गुणों को व्यवहार में लाइए)। गुणों का साझा करके तथा अवगुणों का त्याग कर, (इस संसार में) चलना चाहिए (बरतना चाहिए)। पाटम्बर वस्त्र पहनिये (तात्पर्य यह कि स्वच्छ जीवन व्यतीत कीजिए) (और गुणों को) मंडप (आडम्बर) कीजिए तथा मन के मैदान को स्थापित कीजिए (अर्थात् अपने जीवन के आदर्शों का दृढ़तापूर्वक निर्वाह कीजिए)। जहाँ भी जाकर बैठिए (अपनी शुभ-ग्रहण करने वाली वृत्ति से सभी को) भला कहिए और टाला न मटकाकर अमृत पीजिए (तात्पर्य यह कि वृत्ति को सुन्दर बना कर परमात्म-रस का पान कीजिए)। यदि गुणों की सुगन्धि के डिब्बे (सन्त जन) मिल जायें तो उनसे (गुण रूपी) सुगंध ग्रहण कर लीजिए ॥ ३ ॥

(प्रभु) स्वयं ही (सब कुछ) करता है ; (उसकी रचना की बातें) किससे कही जायें ? (क्योंकि उस हरी को छोड़कर) और कोई करनेवाला नहीं है। यदि कोई भूला हो, तो उसके सम्बन्ध में कहने सुनने के लिए जाना चाहिए। (अतएव) यदि कोई भूल किए हो तो उसके सम्बन्ध में जाकर कहो स्वयं कर्ता पुरुष किस प्रकार भूल कर सकता है ? (प्रभु) बिना कुछ कहे ही (सब कुछ) सुनता और देखता है (वह) बिना माँगे ही दान देता है। हे नानक बड़ा अच्छा (प्रभु), दाता जगत् का रचयिता (बिना किसी के माँगे ही) दान देता है। (प्रभु) स्वयं ही (सब कुछ) करता है (उसकी रचना की बातें) किससे कही जायें ? (क्योंकि उस हरी को छोड़कर) और कोई करनेवाला नहीं है ॥ ४ ॥ १ ॥ ४ ॥

[५]

मेरा मनु राता गुण रवै मनि भावै सोई ।
गुर की पउड़ी साच की साचा सुखु होई ॥
सुखि सहजि आवै साचि भावै साच की मति किउ टलै ।
इसनानु दानु सुगिआनु मजनु आपि अछलिओ किउ छलै ॥

परपंच मोह बिकार थाके कूड़ु कपटु न दोई ।
मेरा मनु राता गुण रवै मनि भावै सोई ॥१॥

साहिबु सो सालाहीऐ जिनि कारणु कीआ ।
मैलु लागी मनि मैलिऐ किनै अंम्रितु पीआ ॥
मथि अंम्रितु पीआ इहु मनु दीआ गुर पहि मोलु कराइआ ।
आपनड़ा प्रभु सहजि पछाता जा मनु साचै लाइआ ॥
तिसु नालि गुण गावा जे तिसु भावा किउ मिलै होइ पराइआ ।
साहिबु सो सालाहीऐ जिनि जगतु उपाइआ ॥२॥

आइ गइआ की न आइओ किउ आवै जाता ।
प्रीतम सिउ मनु मानिआ हरि सेती राता ॥
साहिब रंगि राता सच की बाता जिनि बिंब का कोटु उसारिआ ।
पंच भू नाइको आपि सिरंदा जिनि सच का पिंडु सवारिआ ॥
हम अवगणिआरे तू सुणि पिआरे तुधु भावै सचु सोई ।
आवण जाणा ना थीऐ साची मति होई ॥३॥

अंजनु तैसा अंजीऐ जैसा पिर भावै ।
समझै सूझै जाणीऐ जे आपि जाणाव ॥
आपि जाणावै मारगि पावै आपे मनूआ लेवए ।
करम सुकरम कराए आपे कीमति कउणु अभेवए ॥
तंतु मंतु पाखंडु न जाणा रामु रिदै मनु मानिआ ।
अंजनु नामु तिसै ते सूझै गुरसबदी सचु जानिआ ॥४॥

साजन होवनि आपणे किउ परघर जाही ।
साजन राते सच के संगे मन माही ॥
मन माहि साजन करहि रलीआ करम धरम सबाइआ ।
अठसठि तीरथ पुंन पूजा नामु साचा भाइआ ॥
आपि साजे थापि वेखै तिसै भाणा भाइआ ।
साजन रांगि रंगीलड़े रंगु लालु बणाइआ ॥५॥

अंधा आगू जे थीऐ किउ पाधरु जाणै ।
आपि मुसै मति होछीऐ किउ राहु पछाणै ॥
किउ राहि जावै महलु पावै अंध की मति अंधली ।
विणु नाम हरि के कछु न सूझै अंधु बूडौ धंधली ॥
दिनु राति चानणु चाउ उपजै सबदु गुर का मनि वसै ।
कर जोड़ि गुर पहि करि बिनंती राहु पाधरु गुरु दसै ॥६॥

मनु परदेसी जे थीऐ सभु देसु पराइआ ।
किसु पहि खोल्हउ गंठड़ी दूखी भरि आइआ ॥
दूखी भरि आइआ जगतु सबाइआ कउणु जाणै बिधि मेरीआ

आखणि आखे सरे अराखले तोटि न आवै केतीआ ।
नाम विहूणे भ्रमि भूले ना गुरि सबदु बुझाइआ ।
मनु परदेसी जे थीऐ सभु देसु पराइआ ॥७॥

गुर महली घरि आपणै सो भरपुरि लीणा ।
सेवकु सेवा ता करे सच सबदि पतीणा ॥
सबदे पतीजै अंकु भीजै सु महलु महला अंतरे ।
आपि करता करे सोई प्रभु आपि अंति निरंतरे ॥
गुर सबदि मेला तां सुहेला बाजंत अनहद बीणा ।
गुर महली घरि आपणै सो भरपुरि लीणा ॥८॥

कीता किआ सालाहीऐ करि वेखै सोई ।
ता की कीमति ना पवै जे लोचै कोई ॥
कीमति सो पावै आपि जाणावै आपि अभुलु न भुलए ।
जै जैकारु करहि तुधु भावहि गुर कै सबदि अमुलए ॥
हीणउ नीचु करउ बेनंती साचु न छोडउ भाई ।
नानक जिनि करि देखिआ देवै मति साई ॥९॥२॥५॥

मेरा मन (हरी में) अनुरक्त है और (उसी के) गुणों को उच्चारण करता है (और हरी ही मेरे) मन को अच्छा लगता है। (यह गुणों का उच्चारण करना) गुरु की (सिखाई हुई) बोली है, (जो) सत्यस्वरूप (हरी) तक पहुँचा देती है (और इसमें मुख्य गुण) (नाम) होता है। (जब मन) सहजावस्था के सुख में आ जाता है (टिक जाता है), (तो) सत्य प्रिय लगता है। यह सत्य की प्रतिष्ठावाली बुद्धि कभी नहीं टलती (तात्पर्य यह सत्य में स्थित होनेवाली बुद्धि कभी विचलित नहीं होती, वह निश्चयात्मिका होती है)। स्नान दान, ज्ञान तथा मज्जन यदि उसे न रुचें जानेवाले (मन) को किस प्रकार छल सकते हैं? (क्योंकि वह तो परमात्मा की प्रेमा भक्ति में मग्न है)। (सांसारिक) प्रपंच मोह तथा विकार समाप्त हो गए हैं, झूठ कपट तथा द्वैतभाव (भी) नहीं (रह गए हैं)। मेरा मन (हरी में) अनुरक्त है, (उसी के) गुणों का उच्चारण करता है (और हरी ही मेरे) मन को अच्छा लगता है ॥ १ ॥

उस साहब की स्तुति करनी चाहिए, जिसने सृष्टि (की रचना) की है। मल धोने से मन पवित्र हो जाता है, (क्या अशुद्ध मन होने से) किस व्यक्ति ने (परमात्मा के प्रेम रूपी) अमृत को पिया है? (अर्थात् मलिन मन से परमात्मा का प्रेम रूपी अमृत पीना असम्भव है)। इस मन को गुरु को दिया है और उसी से इसका मूल्य पड़ाया है (जिसके फलस्वरूप) (इस मन ने) जब तक (परमात्मा के प्रेम रूपी) अमृत को पिया है। जब मन को सत्य (प्रभु) में लगाया, तो सहज भाव से ही अपने प्रभु को पहचान लिया। (जिसने मुझे प्रभु में अपना मन लगाया है उसके) साथ (मिलकर मैंने परमात्मा का) गुणगान किया (यह गुणगान) उसे (परमात्मा को) (बहुत) अच्छा लगा। उस साहब की स्तुति करनी चाहिए, जिसने सृष्टि की रचना की है ॥ २ ॥

(यदि हरी हृदय में) आ गया तो शेष क्या रह गया ? फिर जन्म-मरण क्यों हो ? (तात्पर्य यह कि जन्म-मरण नहीं होते)। प्रियतम से मन मान गया और हरी में (वह) अनुरक्त हो गया। सत्य (परमात्मा) की बातों में पड़कर (प्रभु में) मन अनुरक्त हो गया (वह ऐसा अद्भुत सिरजनहार है) कि उसने (वीर्य के) बुलबुले से (शरीर रूपी) घाट का निर्माण किया है। पंच भूत (आकाश पवन अग्नि, जल पृथ्वी) के शरीर का आप ही (हरी ही) मालिक (स्वामी) है (और) आप ही (उसे बनानेवाला है) उस (प्रभु) ने शरीर को सच्चे रूप में सवारा है। हे प्यारे, तू सुन हम अवगुण करनेवाले हैं जो तुझे अच्छा लगता है वही सच्चा (होता) है। (ऐसे व्यक्ति की) सच्ची बुद्धि हो जाती है (और) उसका आना-जाना नहीं होता ॥ ३ ॥

ऐसा (नाम का) अंजन आँखों में लगाओ जैसा प्रियतम (परमात्मा) को अच्छा लगे। यदि (परमात्मा) स्वयं ही अपनी जानकारी करा दे (तभी मनुष्य द्वारा) (वह) समझा जाता है सुझाई पड़ता है और जाना जाता है। (प्रभु जब) स्वयं बतलाता है, तभी (मनुष्य) मार्ग पाता है (अन्यथा वह अविद्या के अन्धकार में भटकता रहता है)। (प्रभु) स्वयं ही मन को प्रेरित कर के (अपनी ओर आकर्षित कर लेता है)। प्रभु (जीवों से) कर्म और कुकर्म स्वयं ही कराता है। (उस) अभेद (हरी की) कीमत कौन जान सकता है ? (मैं) न तो (कोई) तंत्र जानता हूँ न मंत्र (जानता हूँ) और न कोई बाह्य प्रदर्शन (पाखण्ड ही) (मुझे ज्ञात है)। मेरे हृदय में राम (समाये हैं) और (उसी से) (मेरा) मन मान गया है। (नाम रूपी) अंजन उसी को सूझता है जिसने गुरु के उपदेश द्वारा सत्य स्वरूप (हरी) को जाना है ॥ ४ ॥

यदि सत्संगी (गुरु) अपने (घर ही में) मिल जाय तो अन्य (द्वैत बुद्धिवालों के) घर में क्यों टक्कर मारा जाय ? ये सत्संगी राजन सच्चे (हरी) के प्रेमी होते हैं (और वही हरी) इन (सत्संगियों) के मन में (सदैव स्थित) रहता है। उनके मन में सत्संगी गुरु सदैव आनन्द करते हैं (जिसके फलस्वरूप उनमें) सभी कर्म धर्म (स्वाभाविक ही आ जाते हैं)। जिसके मन को) सच्चा नाम अच्छा लगने लगता है उसे अड़सठ तीर्थों (के स्नान का) पुण्य तथा (सारी) पूजाओं (के फल स्वाभाविक ही प्राप्त हो जाते हैं)। (हरी) आप ही (सृष्टि) रचता है (और उस सृष्टि की) स्थापना करके (स्वयं ही उसकी) देखभाल करता है जो उसे अच्छा लगता है वही उसकी मर्जी होती है। सत्संगी (गुरु) ने (हरी के) (प्रेम के) रंग में रँग कर (मजीठी रंग का) लाल बना दिया है (अर्थात् परमात्मा के गहरे अनुराग में रँग कर पक्का बना दिया है) ॥ ५ ॥

यदि अगुआ (गुरु उपदेश कर्ता) अंधा हो तो किस प्रकार मार्ग जाना जाय ? (वह अंधा गुरु तो) थोथी बुद्धि के कारण स्वयं भूला हुआ है, (भला वह) किस प्रकार मार्ग जान सकता है ? (जब वह स्वयं अविद्या के अंधकार में भटक रहा है तो दूसरों को क्या मार्ग बतायेगा ? उसकी स्थिति तो ठीक वैसी ही है जैसे अंधे को अपने मार्ग प्रदर्शन की होती है)। वह किस प्रकार रास्ता पाकर (हरी का) महल पा सकता है ? अंधे की बुद्धि भी अंधी ही होती है। बिना हरी के नाम न कुछ भी नहीं सुझाई पड़ता अंधा सांसारिक धंधों (प्रपंचों) में ही डूबा रहता है। (जिसके) मन में गुरु का शब्द बसता है, (उसके मन में) अहर्निश (ज्ञान का) प्रकाश तथा उत्साह (चाव)—उमंग—उल्लास उत्पन्न होते रहते हैं। हाथ जोड़ कर गुरु के पास प्रार्थना करो कि गुरु (परमात्मा का) मार्ग दिखावे ॥ ६ ॥

सलोकु : (माया के) कुसुंभी रंग रात के स्वप्न की भाँति (क्षणभंगुर) है (अथवा) उस हार के समान है, जो धागे के बिना गले में (स्थित) हो। (और दूसरी ओर) गुरु के द्वारा ब्रह्म का विचार करना मजीठ के पक्के रंग के समान है। हे नानक जो (जीवात्मा) प्रेम के महा रस में रची (आनन्दित) हुई (उसकी) सारी बुराइयाँ (जल कर) खाक हो जाती हैं॥ १ ॥

पउड़ी
एहु जगु आपि उपाइओनु करि चोज विडानु।
पंच धातु विचि पाईअनु मोहु झूठु गुमानु॥
आवै जाइ भवाईऐ मनमुखु अगिआनु।
इकना आपि बुझाइओनु गुरमुखि हरि गिआनु॥
भगति खजाना बखसिओनु हरि नामु निधानु॥१॥

पउड़ी आश्चर्यजनक कौतुक करके इस जगत की रचना (हरी ने) आप ही की है। (उसी हरी ने शरीर में) पंच धातु (भूत—आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी) प्रविष्ट कराए हैं और साथ ही मोह झूठ और अहंकार (आदि विकार भी) प्रविष्ट कराए हैं। अज्ञानी मनमुख (अविद्या में) रत होने के कारण (संसार-चक्र में) आता जाता और भटकता रहता है। कुछ (व्यक्तियों) को गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का ज्ञान करा कर (परमात्मा) स्वयं ही उन्हें समझा देता है (बोध करा देता है)। (परमात्मा उन्हें) हरि नाम प्रदान कर देता है, (जो समस्त गुणों) का निधान और भक्ति का भाण्डार है॥ १ ॥

सलोकु
वाहु खसम तू वाहु जिनि रचि रचना हम कीए।
सागर लहरि समुंद सर वेलि वरस वराहु।
आपि खड़ोवहि आपि करि आपीणै आपाहु॥
गुरमुखि सेवा थाइ पवै उनमनि ततु कमाहु।
मसकति लहहु मजूरीआ मंगि मंगि खसम दराहु॥
नानक पुर दर वेपरवाह तउ दरि ऊणा नाहि को सचा वेपरवाहु॥२॥

उजल मोती सोहणे रतना नालि जुड़ंनि।
तिन जरु वैरी नानका जि बुढे थीइ मरंनि॥१॥

सलोक : हे स्वामी तू धन्य है तू धन्य है जिसने (सृष्टि) रचना रच कर हमें बनाया है। (सृष्टि रचना और सृष्टि रचयिता का बड़ा संबंध है) जो समुद्र की लहरों और समुद्र-भर का है और हरी भरी बेलि तथा बरसने वाले बादल का है जो उस बेलि को वृष्टि द्वारा सींच कर हरी भरी करता है। (हरी) आप ही (सृष्टि) रच कर (उसके बीच में) आप ही स्थित रहता है (तात्पर्य यह कि वही सृष्टि को सहारा देता है)। (हरी) आप ही सब है। (यदि) गुरु की शिक्षा द्वारा सेवा करो और सहजावस्था (उन्मनी अवस्था) में होकर तत्त्वस्वरूप हरी का अभ्यास करो (तो उसका) स्थान प्राप्त हो जाता है। (अपने) परिश्रम (की कमाई) की मजदूरी स्वामी के दरबार पर माँग माँग कर ली जाती है। हे नानक, उस बेपरवाह (परमात्मा) का दरवाजा पूर्ण है तुम्हारा (यहाँ जीव से तात्पर्य है) दरवाजा तो खाली है। [उनमनि (अवस्था—योगियों के मन की ऊँची अवस्था को 'उनमनी' अवस्था कहते हैं। इसी को 'सहजावस्था' भी कहते हैं।] ॥ २ ॥

जो (मनुष्य) जगमगाते और मूंगावाले मोतियों तथा रत्नों के साथ जुड़े हैं [तात्पर्य यह कि (जिनके दाँत) मोती के समान श्वेत और मुगावत हैं और जिनकी (दाँमें) रत्नों की भाँति कान्तिमयी हैं], उनका शत्रु वृद्धावस्था है और जो बूढ़े होकर मर जायँगे ॥ १ ॥

पउड़ी : हरि सालाही सदा सदा तनु मनु सउपि सरीरु ।
गुर सबदी सचु पाइआ सचा गहिर गंभीरु ॥
मनि तनि हिरदै रवि रहिआ हरि हीरा हीरु ।
जनम मरण का दुखु गइआ फिरि पवै न फीरु ॥
नानक नामु सलाहि तू हरि गुणी गहीरु ॥२॥

पउड़ी अपने तन मन और शरीर को समर्पित करके हरी की सदैव ही स्तुति करनी चाहिये । गुरु के शब्द (उपदेश, शिक्षा) से (मैंने) सत्यस्वरूप अगाध और गंभीर (हरी) को पा लिया है । हीरों में श्रेष्ठ हीरा हरी तन मन और हृदय में रम रहा है (व्याप्त है) । (हरी के प्राप्त हो जाने पर) जन्म तथा मरण के दुःख समाप्त हो गए (और) अब फिर (पुनर्जन्म) का फेरा नहीं पड़ेगा । हे नानक तू गुणी और गंभीर हरि के नाम की स्तुति कर ॥ २ ॥

सलोकु : नानक इहु तनु जालि जिनि जलिए नामु विसारिआ ।
पउदी जाइ परालि पिछै हथु न अंबड़ै तितु निवंधी तालि ॥४॥
नानक मन के कम फिटिआ गणत न आवही ।
किती लहा सहंम जा बखसे ता धका नही ॥५॥

सलोक हे नानक जिस जले हुए (शरीर में) नाम को भुला दिया है उस शरीर को जला दो । (पापों का) पुआल इकट्ठा होता जाता है (और उन्हें ढँकने के लिए) पीछे (शरीर रूपी) ताल के नीचे हाथ नहीं पहुँचेगा [तात्पर्य यह कि शरीर रूपी तालाब में पापों का पाल-फूस इकट्ठा होता रहता है । यदि उन्हें साथ ही साथ साफ न करते जायँ तो बाद में उनकी सफाई करनी बहुत कठिन हो जाती है । इसी प्रकार जिस हरिजाने शरीर को भी या तालाब कहा गया है जिसमें पाप-कर्मों का पुआल पड़ता रहता है । यदि नाम के द्वारा इस गंदगी को साथ ही साथ साफ न करते जायँ तो बाद में यह काम हमारी सामर्थ्य से बाहर हो जाता है ।] ॥ ४ ॥

हे नानक मन के काम फिटे हुए हैं, (वे इतने फिटे हुए हैं कि) उनकी गणना नहीं की जा सकती । (उन फिटे हुए कामों के) कितने दुःख (मुझे) प्राप्त हैं (यह मुझे ज्ञात नहीं है) । (पर) यदि (हरी) बख्श दे, तो (उन दुःखों का) धक्का (दुःख) नहीं लग सकता ॥ ५ ॥

पउड़ी : सचा अमरु चलाइओनु करि सचु फुरमाणु ।
सदा निहचलु रवि रहिआ सो पुरखु सुजाणु ।
गुरपरसादी सेवीऐ सचु सबदि नीसाणु ।
पूरा थाटु बणाइआ रंगु गुरमति माणु ॥
अगम अगोचर अलखु है गुरमुखि हरि जाणु ॥३॥

पउड़ी (प्रभु ने) सच्चा हुक्म करके (अपनी) सच्ची आज्ञा चलाई है। वह सुजान पुरुष (परमात्मा) अटल (शाश्वत) निश्चल है (और वही सर्वत्र व्याप्त है)। गुरु की कृपा से (उसकी) आराधना करनी चाहिए, (गुरु के) शब्द (उपदेश) द्वारा जीवन का सच्चा निशान (चिह्न अथवा आदर्श) (प्राप्त होता है)। (शब्द द्वारा जीवन का सच्चा निशान—लक्ष्य प्राप्त हुआ) और पूरा ठाट बन गया। (अब) गुरु द्वारा अचल बुद्धि में स्थिर होकर खुशियाँ मनाओ। (जो हरी) अगम अगोचर और अलक्ष्य है उस हरी को गुरु की शिक्षा द्वारा जानो ॥ १ ॥

सलोकु : नानक बदरा माल का भीतरि धरिआ आणि ।
खोटे खरे परखीअनि साहिब कै दीबाणि ॥१॥

नावण चले तीरथी मनि खोटै तनि चोर ।
इकु भाउ लथी नातिआ दुइ भा चड़ीअसु होर ॥
बाहरि धोती तूमड़ी अंदरि विसु निकोर ।
साध भले अणनातिआ चोर सि चोरा चोर ॥२॥

सलोक : हे नानक रुपया की थैली (मनुष्य) लाकर (अपने घर के) भीतर रखता है (और उन्हें परखता है) (इसी प्रकार) प्रभु के दरबार में खोटे और खरे (मनुष्यों) की परख होगी। [बदरा < अरबी बदरह = तोड़ा थैली] ॥ १ ॥

(लोग) तीर्थों में स्नान करने तो जाते हैं, (किन्तु वे) मन के खोटे और शरीर के चोर (होते हैं)। स्नान करने से एक भाग (तात्पर्य यह कि शरीर का बाहरी मल) तो (धुलकर) उतर जाता है, (किन्तु मन का) दूसरा भाग तो और अधिक चढ़ जाता है, [तात्पर्य यह कि शरीर की बाहरी गंदगी तो अवश्य नष्ट हो जाती है, किन्तु मानसिक गंदगी—अहंकार और पाखण्ड तो और भी अधिक बढ़ जाते हैं।] तुमड़ी (तितलौकी कड़वी लौकी) को (चाहे बाहर से खूब) धो दिया जाय (किन्तु भीतर वह) अत्यधिक विषयुक्त (तीती कड़वी) होती है [अथवा इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—(पाखण्डी व्यक्ति) बाहर से धोती (पहने हैं) और तुमड़ी लिए हैं, किन्तु (उनके) भीतर अत्यधिक विष है]। साधु लोग बिना नहाए (भी) भले हैं (पर) जो चोर हैं (वे नहा कर भी) चोर ही रहते हैं ॥ २ ॥

पउड़ी आपे हुकमु चलाइदा जगु धंधै लाइआ ।
इकि आपे ही आपि लाइअनु गुर ते सुखु पाइआ ॥
दहदिसि इहु मनु धावदा गुरि ठाकि रहाइआ ।
नावै नो सभ लोचदी गुरमती पाइआ ॥
धुरि लिखिआ मेटि न सकीऐ जो हरि लिखि पाइआ ॥३॥

पउड़ी : (प्रभु अपना) हुक्म आप ही चलाता है (और सारे) जगत् को (उसी ने) धंधे (सांसारिक) में लगाया है। कुछ (व्यक्तियों को प्रभु ने) अपने आप ही अपने साथ लगाया है (और उन्होंने) गुरु द्वारा सुख प्राप्त किया है। यह मन दसों दिशाओं में दौड़ता

(वही स्वीकृत होगा, सिद्ध होगा)। (तूने ही) सारे जगत् को खेल (के समान) रचा है (और उस जगत् के मध्य में) आप ही बरत रहा है ॥ ५ ॥

सलोकु

चोरा जारा रंडीआ कुटणीआ दीबाणु ।
वेदीना की दोसती वेदीना का खाणु ॥
सिफती सार न जाणनी सदा वसै सैतानु ।
गदहु चंदनि खउलीऐ भी साहू सिउ पाणु ॥
नानक कूड़ै कतिऐ कूड़ा तणीऐ ताणु ।
कूड़ा कपड़ु कछीऐ कूड़ा पैनणु माणु ॥१०॥

बांगा बुरगू सिंङीआ नाले मिली कलाण ।
इकि दाते इकि मंगते नामु तेरा परवाणु ॥
नानक जिन्ही सुणि कै मंनिआ हउ तिना विटहु कुरबाणु ॥११॥

सलोक : चोरों व्यभिचारियों वेश्याओं कुटनियों—(इन सब की आपस में) मित्रता बनती है, (साथ साथ उठने-बैठने और सलाह करते हैं)। (इन) अधर्मियों की (आपस में) मित्रता है (और आपस में) खाने-पीने का (व्यवहार) है। (अतएव ये लोग परमात्मा की) प्रशंसा और बड़ाई तत्व नहीं जानते। उनमें सदैव शैतान ही बसता है। (तात्पर्य यह कि ये लोग सदैव पापयुक्त कर्म करते हैं)। गधे को (चाहे जितना) चंदन लगाइए (मलिए) (किन्तु) फिर भी वह धूल (भूल) में पड़ता (लोटता) है। हे नानक झूठ के कातने से झूठ का ही ताना-बाना बनता है (तात्पर्य यह कि बुरे कर्मों का बुरा ही फल होता है जैसे कर्म किए जाते हैं वैसे ही फल भी प्राप्त होते हैं)। (इस प्रकार) झूठ का कपड़ा नाप कर उसे पहनना और उसके पहनने का मान करना झूठा ही है ॥ १ ॥

(मुल्ले) बांग (देकर) (फकीर) तुरी (बजा कर) (और योगी) सिंगी (बजा कर) (और भाटे मिली) 'कल्याण हो' 'कल्याण हो' कहकर मांगना ही मिला है (मांगते हैं)। (इस प्रकार संसार में) कुछ लोग दाते हैं और कुछ लोग मांगते हैं; पर तेरे दरबार का प्रमाण तो नाम ही है। हे नानक जिन्होंने (तेरा नाम) सुनकर (उसपर) मनन किया मैं उनके ऊपर कुरबान हूँ ॥ ११ ॥

पउड़ी

माइआ मोहु सभु कूड़ु है कूड़ो होइ गइआ ।
हउमै झगड़ा पाइओनु झगड़ै जगु मुइआ ॥
गुरमुखि झगड़ु चुकाइओनु इको रवि रहिआ ।
सभु आतम रामु पछाणिआ भउजलु तरि गइआ ॥
जोति समाणी जोति विचि हरि नामि समइआ ॥६॥

पउड़ी : माया और मोह सब झूठे हैं (वे सब) झूठे हो जाते हैं (नश्वर हैं)। (इस संसार के) लोग अहंकार और झगड़े में पड़कर, (अंत में) झगड़े में ही मर जाते हैं। गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) झगड़े (संघर्ष) को समाप्त कर देता है (और वह समझता है कि) एक (परमात्मा ही सबमें) रमा हुआ है। (वह साधक) सर्वत्र आत्मा राम को

पउड़ी (हे प्रभु मैं) मँगता (तेरे) दरवाजे पर दान की याचना करता हूँ (हे) हरी कृपा करके (मुझे) (दान) दे। गुरु द्वारा (मुझे अपने में) मिला ले, (जिससे) (यह) मन (भक्त) हरि के नाम को पा जाय। (हे प्रभु, मेरे अन्तर्गत) अनाहत शब्द (आत्मिक मंडल का संगीत जो बिना बजाये बजता है) बजा और (मुझ जीवात्मा की) ज्योति (अपनी अगम्य) ज्योति में मिला ले। (हे प्रभु, ऐसा विधान रच कि) हृदय हरी के गुण गाय (और मुह) हरी के 'जय जय' शब्द करे। (सारे) जगत् में (हरी) आप ही बरत रहा है, (अतएव उसी) हरी से प्रीति कर ॥ ७ ॥

सलोकु जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंत न पाइओ साउ।
सुंञे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाउ ॥१६॥
सउ ओलाम्हे दिनै के राती मिलन्हि सहंस।
सिफति सलाहणु छडि कै करंगी लगा हंसु ॥
फिटु इवेहा जीविआ जितु खाइ वधाइआ पेटु।
नानक सचे नाम विणु सभो दुसमनु हेतु ॥१७॥

सलोक जिन्होंने प्रेम रस को तथा परमात्मा के स्वाद को नहीं पाया वे सूने घर के मेहमान (की भाँति) हैं (सूने घर के मेहमान) जैसे आते हैं, वैसे ही चले जाते हैं ॥ १६ ॥

(जीव) दिन में सैकड़ों और रात में हजारों (पापों को करके) प्रायश्चित (सहन करता है)। [ओलाम्हे=उलाहना प्रायश्चित]। (जीव रूपी) हंस (परमात्मा की) स्तुति और प्रशंसा (रूपी मोती) को (खाना) छोड़कर (विषय रूपी मुरदार खाने में लग गया है। [करंगी=पंजाबी करंग=मुए हुए पशुओं की ठठरी]। ऐसे (मनुष्यों) के जीवन को धिक्कार है, जिन्होंने (विषय रूपी मुरदार को) खा खा कर अपना पेट बढ़ाया है। हे नानक सच्चे नाम के बिना सभी प्रकार के प्यार हमारे दुश्मन—वैरी ही हैं ॥ १७ ॥

पउड़ी ॥ ढाढी गुण गावै नित जनमु सवारिआ।
गुरमुखि सेवि सलाहि सचा उर धारिआ ॥
घरु दरु पावै महलु नामु पिआरिआ।
गुरमुखि पाइआ नामु हउ गुर कउ वारिआ ॥
तू आपि सवारहि आपि सिरजणहारिआ ॥८॥

पउड़ी: (परमात्मा के) यश का गुणगान करनेवाला, (उसके) गुणों का गान करके (अपने) जन्म का सँवार लेता है। गुरु द्वारा सेवा और स्तुति करके वह (अपने) हृदय में सच्चे (प्रभु) को धारण कर लेता है। जो नाम को धारण कर लेता है वह अपने वास्तविक घर (तात्पर्य यह कि अपने प्रभु के महल) को प्राप्त करता है। (मैंने) गुरु द्वारा नाम को प्राप्त कर लिया है मैं गुरु के ऊपर न्योछावर हूँ। (हे प्रभु), तू आप ही सँवारने वाला और आप ही सिरजनेवाला है ॥ [प्रस्तुत उपर्युक्त पउड़ी में 'सवारिआ' 'उरधारिआ' आदि क्रियाएँ भूत काल की हैं किन्तु अनुवाद में स्वाभाविकता के लिए इनका अर्थ वर्तमान काल की क्रियाओं में किया गया है] ॥ ८ ॥

सलोकु   दीवा बलै अंधेरा जाइ ।
बेद पाठ मति पापा खाइ ॥
उगवै सूरु न जापै चंदु ।
जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु ॥
बेद पाठ संसार की कार ।
पढ़ि पढ़ि पंडित करहि बीचार ॥
बिनु बूझे सभ होइ खुआर ।
नानक गुरमुखि उतरसि पार ॥१८॥

सबदै सादु न आइओ नामि न लगो पिआरु ।
रसना फिका बोलणा नित नित होइ खुआरु ॥
नानक पइऐ किरति कमावणा कोइ न मेटणहारु ॥१९॥

सलोक : दीपक के जलने पर अन्धकार (स्वतः) नष्ट हो जाता है। वेद-पाठ पाप वाली बुद्धि को खा जाता है। सूर्य के उदय होने पर चन्द्रमा नहीं दिखाई देता (क्योंकि) जहाँ ज्ञान का प्रकाश होता है, (वहाँ) अज्ञान स्वतः मिट जाता है। (पर हो क्या रहा है ?) वेदपाठ सांसारिक व्यवहार (मात्र बन गया है)। (वेदों को) पढ़ पढ़ कर पंडित गण तर्क वितर्क (विचार) तो करते हैं (किन्तु उसे समझते नहीं) समझे बिना (सभी पंडित) बरबाद होते हैं। हे नानक ! गुरु द्वारा ही पार उतर सकते हैं॥ १८ ।

(जिन व्यक्तियों को) शब्द—नाम में स्वाद नहीं आता और नाम में प्यार नहीं होता (वे) जीभ से नीरस (फीका) बोलते हैं और नित्य नष्ट होते रहते हैं। (किन्तु) किए हुए कर्मों के द्वारा जो स्वभाव और संस्कार (किरत) बन जाते हैं (उसी के अनुसार जीव) कर्म करते हैं, (उन्हें) कोई मेट नहीं सकता॥ १९ ॥

पउड़ी :   जि प्रभु सालाहे आपणा सो सोभा पाए ।
हउमै विचहु दूरि करि सचु मंनि वसाए ।
सचु बाणी गुण उचरै सचा सुखु पाए ।
मेलु भइआ चिरी विछुंनिआ गुर पुरखि मिलाए ॥
मनु मैला इव सुधु है हरि नामु धिआए ॥९॥

पउड़ी : जो अपने प्रभु की स्तुति करता है वही शोभा पाता है। (वह अपने) बीच (अन्तःकरण) से अहंकार को दूर कर सत्य (परमात्मा) को अपने मन में बसा लेता है। (वह प्रभु की) सच्ची वाणी और गुणों का उच्चारण करता है (और जिसके फलस्वरूप वह) सच्चा सुख पाता है। (इस प्रकार) चिरकाल से बिछुड़ी हुई (जीवात्मा का परमात्मा से) मेल हो जाता है। (उन्हें) सद्गुरु-पुरुष ने मिलाया है। हरि के (निर्मल) नाम (को) ध्यान करने से मलिन मन पवित्र हो जाता है॥ ९ ॥

सलोकु   काइआ कूमल फुल गुण नानक गुपसि माल ।
एनी फुली रउ करे अवर कि चुणीअहि डाल ॥२ ॥

पहिल बसंते आगमनि पहिला मउलिओ सोइ ।
जितु मउलिऐ सभ मउलीऐ तिसहि न मउलिहु कोइ ॥२१॥

सन्तोष (पवित्र) काया की कोमल पत्तियां (विषमय) तथा गुणों के फूलों की नानक माला गूंथता है। (प्रभु) इसी प्रकार के फूलों को पसन्द करता है। और इसको चुन कर (पुष्प तोड़ने की क्या आवश्यकता) है? (परमात्मा के उपहार योग्य माला तो उपर्युक्त विधि से ही निर्मित होती है) ॥ २ ॥

सबसे पहले बसन्त ऋतु आती है, (तब सारी वस्तुएँ प्रफुल्लित होती हैं) (पर बसन्त ऋतु के आगमन के) पूर्व ही (परमात्मा) प्रफुल्लित है। जिस (परमात्मा के) प्रफुल्लित होने से सारी (वस्तुएं) प्रफुल्लित होती हैं, उसे कोई भी नहीं प्रफुल्लित कर सकता है ॥ २१ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु बिलावलु महला १, चउपदे, घरु १

सबद

[१]

तू सुलतानु कहा हउ मीआ तेरी कवन वडाई।
जो तू देहि सु कहा सुआमी मै मूरखु कहणु न जाई ॥१॥
तेरे गुण गावा देहि बुझाई। जैसे सच महि रहउ रजाई ॥१॥ रहाउ ॥
जो किछु होआ सभु किछु तुझ ते तेरी सभ असनाई।
तेरा अंतु न जाणा मेरे साहिब मै अंधुले किआ चतुराई ॥२॥
किआ हउ कथी कथे कथि देखा मै अकथु न कथना जाई।
जो तुधु भावै सोई आखा तिलु तेरी वडिआई ॥३॥
एते कूकर हउ बेगाना भउका इसु तन ताई।
भगति हीणु नानकु जे होइगा ता खसमै नाउ न जाई ॥४॥१॥

(हे प्रभु) तू तो सुलतान (बादशाह—तात्पर्य यह कि सबसे बड़ा) है, (यदि) मैं (तुझे) मियाँ (अथवा चौधरी) कहूँ तो इसमें तेरी कौन सी प्रशंसा होगी? (तात्पर्य यह कि तेरी महिमा अनन्त है। मैं उस महिमा का जितना भी वर्णन करूँ सब अल्प ही है)। (अतएव) जो तू (मुझे) देता है (उसी के अनुसार) हे स्वामी मैं तेरा कथन करता हूँ। मुझ मूर्ख से (तेरा) कुछ भी कथन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

(हे हरि मुझे ऐसी) बुद्धि दे जिससे तेरे गुणों का गान करूँ और जिससे (मैं तेरा) हुक्मी बन्दा होकर सत्य में निवास करूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है सब कुछ तुझी से (हुआ) है। तेरी जानकारी सब से है (अर्थात् तू जड़ और चैतन्य सब कुछ जानता है)। हे मेरे मालिक, मैं तेरा अन्त नहीं जानता मुझ अन्धे से क्या चतुराई हो सकती है ॥ १ ॥ २ ॥

मैं (तेरी महिमा का) क्या कथन करूँ? मैंने कथन कर कर के देख लिया (कि

तू) अकथनीय है और (तेरे संबंध में) कथन नहीं किया जा सकता। जो कुछ तुझे अच्छा लगता है (उसी के अनुसार मैं) तिल मात्र (थोड़ी सी) (तेरी) महिमा कहता हूं ॥ १ ॥

ये (बहुत से) भूंकने वाले कुत्ते (मनमुखी मनुष्य हैं) मैं (इन्हीं कुत्तों में से एक हूं) मैं इस शरीर के निमित्त ही भूंकता रहता हूं। (हां मुझे यह चिन्ता अवश्य है कि मैं) भाव भक्ति से हीन हूं पर प्रभु हरी का नाम तो (किसी भी दशा में) निष्फल नहीं जा सकता। (क्योंकि वह बख्शने वाला बना है और मैं उसका कुत्ता कहलाता हूं) ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा।
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा ॥१॥
मनु बेधिआ दइआल सेती मेरी माई। कउणु जाणै पीर पराई ॥
हम नाही चिंत पराई ॥१॥ रहाउ ॥
अगम अगोचर अलख अपारा चिंता करहु हमारी।
जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुम्हारी ॥२॥
सिख मति सभ बुधि तुम्हारी मंदिर छावा तेरे।
तुझ बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे ॥३॥
जीअ जंत सभि सरणि तुम्हारी सरब चिंत तुधु पासे।
जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे ॥४॥२॥

मैंने शरीर में कलंदर (कलंदर) के वेश पहने हैं, और मन को (परमात्मा के रहने के लिए) मन्दिर (बनाया है) और (मैं) अपने घट के ही तीर्थ में स्नान करता हूं। एक हरी का नाम ही मेरे प्राणों में बसता है (इसीलिए) मैं फिर जन्म के अन्तर्गत नहीं आऊंगा ॥ १ ॥

हे मेरी माँ (मेरा) मन दयालु (परमात्मा) से बिंध गया है। पराई पीर को कौन जान सकता है? (तात्पर्य यह है कि मेरे प्रेम की व्याकुलता को और कौन जान सकता है)? हम तो हरी के बिना और किसी का ध्यान तक नहीं करते ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे) अगम, अगोचर अलख और अपार (हरी) हमारी चिन्ता कर। (तू) जल स्थल तथा धरती और आकाश के बीच में पूर्ण रूप से व्याप्त है घट-घट में तेरी ही ज्योति (विराजमान) है ॥ २ ॥

(हे हरी) सारी शिक्षा मति और बुद्धि तेरी ही (प्रदान की हुई) है। (सारे) घर और विश्राम के स्थान तेरे ही (दिए हुए हैं)। हे मेरे साहब मैं तुझे छोड़कर अन्य किसी को नहीं जानता (इसीलिए) नित्य सदा गुणगान करता हूं ॥ ३ ॥

सारे जीव जन्तु तेरी शरण में पड़े हुए हैं और सभी की चिन्ता तुझे है। (हे हरी) जो (कुछ) तुझे अच्छा लगे (मुझे) अच्छा लगे यही नानक की प्रार्थना है ॥ ४ ॥ २ ॥

शब्द के द्वारा (अहंभाव से) मर जाय और (ज्योतिर्मय) मन द्वारा (अहंकारयुक्त) मन को मार दे। मन को (माया की ओर से) रोक कर उसे (हरि) में टिकाए। (गुरु के अतिरिक्त) अन्य कोई न सूझ पड़े, गुरु के ऊपर ही न्यौछावर हो जाया जाय। नानक (कहते हैं कि इस प्रकार) नाम में अनुरक्त होकर (साधक का) उद्धार हो जाता है।

[टिप्पणी : उपर्युक्त पंक्तियों में क्रियाएँ भूतकाल की प्रयुक्त हैं, किन्तु अर्थ में स्वाभाविकता के लिए उनका प्रयोग वर्तमान काल में किया गया है।] ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

गुरबचनी मनु सहज धिआनै । हरि कै रंगि रता मनु मानै ।
मनमुख भरमि भुले बउराने । हरि बिनु किउ रहीऐ गुर सबदि पछाने ॥१॥
बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी माई ।
हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥१॥ रहाउ ॥
मेरा प्रभु बिसरै हउ मरउ दुखाली । सासि गिरासि जपउ अपुने हरि भाली ॥
सद बैरागनि हरि नामु निहाली । अब जाने गुरमुखि हरि नाली ॥२॥
अकथ कथा कहीऐ गुर भाइ । प्रभु अगम अगोचरु देइ दिखाइ ॥
बिनु गुर करणी किआ कार कमाइ । हउमै मेटि चलै गुर सबदि समाइ ॥३॥
मनमुखु विछुड़ै खोटी रासि । गुरमुखि नामि मिलै साबासि ॥
हरि किरपाधारी दासनिदास । जन नानक हरि नाम धनु रासि ॥४॥४॥

गुरु के वचनों द्वारा मन सहज ध्यान (करने वाला) हो गया है (तात्पर्य यह कि मन स्वाभाविक ही हरी के ध्यान में लगा रहता है)। हरि के रंग में रँगने से मन मान जाता है (स्थिर हो जाता है और अपनी चंचलता त्याग देता है)। (इसके विपरीत) मनमुख भ्रमित होकर पागल (के समान) भटकता रहता है। हरि के बिना किस प्रकार शान्ति हो ? (हरि को) गुरु के शब्द द्वारा पहचाना जाता है ॥ १ ॥

हे मेरी माँ, बिना (हरि के) दर्शन के कैसे जीवित रहूँ ? बिना हरी के मेरा जी क्षण भर नहीं रह सकता, सद्गुरु ने (मन में) मुझे समझ दे दी (और परमात्मा से मिला दिया) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जिस क्षण) मेरा प्रभु विस्मृत होता है (उस क्षण) मैं दुःखी होकर मर जाती हूँ। (इसीलिये मैं) (प्रत्येक) श्वास में और (प्रत्येक) ग्रास में (तात्पर्य यह कि निरन्तर) हरि को जपती हूँ (और उसे) खोजती हूँ। (मैं) सदैव की बैरागिनी थी (किन्तु) हरि नाम (को पाकर) निहाल हो गयी—कृतार्थ हो गयी। गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने अब हरी को अपने साथ जान लिया ॥ २ ॥

हे भाई (हरी की) अकथनीय कथनी गुरु के द्वारा (कुछ सीमा तक) कही जाती है। (गुरु ही) अगम अगोचर प्रभु को दिखा देता है। बिना गुरु के क्या करनी करते हो और क्या कार्य करते हो ? (अर्थात् गुरु के बिना कितनी ही करनी तथा कार्य करने व्यर्थ सिद्ध होते हैं)। (जो व्यक्ति) गुरु के शब्द द्वारा अहंकार को मिटाकर चलता है (वह प्रभु में) समा जाता है ॥ ३ ॥

मनमुख (अपने) खोटे गुणों (दुर्गुणों) के कारण (परमात्मा से) बिछुड़ जाता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) नाम में मिल जाता है (वह) धन्य है। हरि ने (स्वयमेव) कृपा करके (मुझे) (अपने) दासों का दास बना लिया। हे नानक, जन (भक्त) (के पास) हरिनाम की ही धनराशि होती है ॥ ४ ॥ ४ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु, महला १, घरु १०

असटपदीआ [१]

निकटि वसै देखै सभु सोई । गुरमुखि विरला बूझै कोई ॥
बिनु भै पइऐ भगति न होई । सबदि रते सदा सुखु होई ॥१॥
ऐसा गिआनु पदारथु नामु । गुरमुखि पावसि रसि रसि मानु ॥१॥ रहाउ ॥
गिआनु गिआनु कथै सभु कोई । कथि कथि बादु करे दुखु होई ॥
कथि कहणै ते रहै न कोई । बिनु रस राते मुकति न होई ॥२॥
गिआनु धिआनु सभु गुर ते होई । साची रहत साचा मनि सोई ॥
मनमुख कथनी है परु रहत न होई । नावहु भूले थाउ न कोई ॥३॥
मनु माइआ बंधिओ सर जालि । घटि घटि बिआपि रहिओ बिखु नालि ॥
जो आंजै सो दीसै कालि । कारजु सीधो रिदै समालि ॥४॥
सो गिआनी जिनि सबदि लिव लाई । मनमुखि हउमै पति गवाई ॥
आपे करतै भगति कराई । गुरमुखि आपे दे वडिआई ॥५॥
रैणि अंधारी निरमल जोति । नाम बिना झूठे कुचल कछोति ।
बेदु पुकारै भगति सरोति । सुणि सुणि मानै वेखै जोति ॥६॥
सासत्र सिम्रिति नामु द्रिड़ामं । गुरमुखि सांति ऊतम करामं ॥
मनमुखि जोनी दूख सहामं । बंधन तूटे इकु नामु वसामं ॥७॥
मंने नामु सची पति पूजा । किसु वेखा नाही को दूजा ।
देखि कहउ भावै मनि सोइ । नानकु कहै अवरु नही कोइ ॥८॥१॥

(हरि) (सभी के अति निकट) बसता है और (सब कुछ) देखता है। कोई विरला ही (गुरमुख) गुरु की शिक्षा द्वारा (इस तथ्य को) समझता है। (मन में) बिना (परमात्मा का भय पाए हुए भक्ति नहीं होती। (हरी के) शब्द—नाम में अनुरक्त होने से शाश्वत सुख (प्राप्त) होता है ॥ १ ॥

ऐसा (हरी का) नाम ज्ञान-पदार्थ है। (ऐसे पवित्र और अविनाशी) नाम को गुरु द्वारा प्राप्त करके स्वाद से मानो ॥१॥रहाउ॥

सभी कोई ज्ञान का कथन करते हैं। कथन कर कर के वाद-विवाद करते हैं (इस वाद विवाद से) दुःख होता है (वास्तविक शान्ति नहीं प्राप्त होती)। कथन (एवं वाद

शब्द के द्वारा (अहंभाव से) मर जाय और (ज्योतिर्मय) मन से (अहंकारयुक्त) मन को मार दे। मन को (माया की ओर से) रोक कर सच्चे (हरि) में टिकाए। (गुरु के अतिरिक्त) अन्य कोई न सूझ पड़े, गुरु के ऊपर ही न्यौछावर हो जाया जाय। नानक (कहते हैं कि इस प्रकार) नाम में अनुरक्त होकर (साधक का) उद्धार हो जाता है।

[टिप्पणी — उपर्युक्त पंक्तियों में क्रियाएँ भूतकाल की व्यवहृत हैं, किन्तु अर्थ में स्वाभा-विकता के लिए उनका प्रयोग वर्तमान काल में किया गया है।] ॥ ४ ॥ १ ॥

[४]

गुरबचनी मनु सहज धिआने। हरि कै रंगि रता मनु माने।
मनमुख भरमि भुले बउराने। हरि बिनु किउ रहीऐ गुर सबदि पछाने ॥१॥
बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी माई।
हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥१॥ रहाउ ॥
मेरा प्रभु बिसरै हउ मरउ दुखाली। सासि गिरासि जपउ अपुने हरि भाली ॥
सद बैरागनि हरि नामु निहाली। अब जाने गुरमुखि हरि नाली ॥२॥
अकथ कथा कहीऐ गुर भाइ। प्रभु अगम अगोचरु देइ दिखाइ ॥
बिनु गुर करणी किआ कार कमाइ। हउमै मेटि चलै गुर सबदि समाइ ॥३॥
मनमुखु विछुड़ै खोटी रासि। गुरमुखि नामि मिलै साबासि ॥
हरि किरपाधारी दासनिदास। जन नानक हरि नाम धनु रासि ॥४॥४॥

गुरु के वचनों द्वारा मन सहज-ध्यान (करने वाला) हो गया है (तात्पर्य यह कि मन स्वाभाविक ही हरी के ध्यान में समा रहता है)। हरि के रंग में रंगने से मन मान जाता है (स्थिर हो जाता है और अपनी चंचलता त्याग देता है)। (इसके विपरीत) मनमुख भ्रमित होकर पागल (के समान) भटकता रहता है। हरि के बिना किस प्रकार शान्ति हो ? (हरि को) गुरु के शब्द द्वारा पहचाना जाता है ॥ १ ॥

हे मेरी माँ बिना (हरि के) दर्शन के कैसे जीवित रहूँ ? बिना हरी के मेरा जी क्षण भर नहीं रह सकता, सद्गुरु ने (मन में) मुझे समझ दे दी (और परमात्मा से मिला दिया) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जिस क्षण) मेरा प्रभु विस्मृत होता है, (उस क्षण) मैं दुःखी होकर मर जाती हूँ। (इसीलिये मैं) (प्रत्येक) श्वास में और (प्रत्येक) ग्रास में (तात्पर्य यह कि निरन्तर) हरि को जपती हूँ (और उसे) खोजती हूँ। (मैं) सदैव की वैरागिनी थी (किन्तु) हरि नाम (को पाकर) निहाल हो गयी—कृतार्थ हो गयी। गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने अब हरी को अपने साथ जान लिया ॥ २ ॥

हे माई (हरी की) अकथनीय कहानी गुरु के द्वारा (कुछ सीमा तक) कही जाती है। (गुरु ही) अगम अगोचर प्रभु को दिखा देता है। बिना गुरु के क्या करनी करते हो और क्या कार्य करते हो ? (अर्थात् गुरु के बिना कितनी ही करनी तथा कार्य करते व्यर्थ सिद्ध होते हैं)। (जो व्यक्ति) गुरु के शब्द द्वारा अहंकार को मिटाकर चलता है (वह प्रभु में) समा जाता है ॥ ३ ॥

शब्द के द्वारा (अहंभाव से) मर जाय और (ज्योतिर्मय) मन से (अहंकारयुक्त) मन को मार दे। मन को (माया की ओर से) रोक कर सच्चे (हरी) में टिकाए। (गुरु के अतिरिक्त) अन्य कोई न सूझ पड़े गुरु के ऊपर ही न्यौछावर हो जाया जाय। नानक (कहते हैं कि इस प्रकार) नाम में अनुरक्त होकर (साधक का) उद्धार हो जाता है।

[टिप्पणी : उपर्युक्त पंक्तियों में क्रियाएँ भूतकाल की व्यवहृत हैं, किन्तु अर्थ में स्वाभाविकता के लिए उनका प्रयोग वर्तमान काल में किया गया है।] ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

गुरबचनी मनु सहज धिआनै। हरि कै रंगि रता मनु मानै।
मनमुख भरमि भुले बउराने। हरि बिनु किउ रहीऐ गुर सबदि पछाने ॥१॥
बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी माई।
हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥१॥ रहाउ ॥
मेरा प्रभु बिसरै हउ मरउ दुखाली। सासि गिरासि जपउ अपुने हरि भाली ॥
सद बैरागनि हरि नामु निहाली। अब जाने गुरमुखि हरि नाली ॥२॥
अकथ कथा कहीऐ गुर भाइ। प्रभु अगम अगोचरु देइ दिखाइ ॥
बिनु गुर करणी किआ कार कमाइ। हउमै मेटि चलै गुर सबदि समाइ ॥३॥
मनमुखु विछुड़ै खोटी रासि। गुरमुखि नामि मिलै साबासि ॥
हरि किरपाधारी दासनिदास। जन नानक हरि नाम धनु रासि ॥४॥४॥

गुरु के वचनों द्वारा मन सहज-ध्यान (करने वाला) हो गया है (तात्पर्य यह कि मन स्वाभाविक ही हरी के ध्यान में लगा रहता है)। हरि के रंग में रमने से मन मान जाता है (स्थिर हो जाता है और अपनी चंचलता त्याग देता है)। (इसके विपरीत) मनमुख भ्रमित होकर पागल (के समान) भटकता रहता है। हरि के बिना किस प्रकार शान्ति हो ? (हरि को) गुरु के शब्द द्वारा पहचाना जाता है ॥ १ ॥

हे मेरी माँ बिना (हरि के) दर्शन के कैसे जीवित रहूँ ? बिना हरी के मेरा जी क्षण भर नहीं रह सकता सद्गुरु ने (मन में) मुझे समझ दे दी (और परमात्मा से मिला दिया) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जिस क्षण) मेरा प्रभु विस्मृत होता है, (उस क्षण) मैं दुःखी होकर मर जाती हूँ। (इसीलिए मैं) (प्रत्येक) श्वास में और (प्रत्येक) ग्रास में (तात्पर्य यह कि निरन्तर) हरि को जपती हूँ (और उसे) खोजती हूँ। (मैं) सदैव की बैरागिनी थी (किन्तु) हरि नाम (को पाकर) निहाल हो गयी—कृतार्थ हो गयी। गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने अब हरी को अपने साथ जान लिया ॥ २ ॥

हे भाई (हरी की) अकथनीय कहानी गुरु के द्वारा (कुछ सीमा तक) कही जाती है। (गुरु ही) अगम अगोचर प्रभु को दिखा देता है। बिना गुरु के क्या करनी करते हो और क्या कार्य करते हो ? (अर्थात् गुरु के बिना कितनी ही करनी तथा कार्य करने व्यर्थ सिद्ध होते हैं)। (जो व्यक्ति) गुरु के शब्द द्वारा अहंकार को मिटाकर चलता है, (वह प्रभु में) समा जाता है ॥ ३ ॥

विचार) किए बिना कोई भी नहीं रहता, (अर्थात् सभी व्यक्ति कथन एव वादविवाद के चक्कर मे पड़ जाते है) । (किन्तु कोरे कथन से कुछ भी हाथ में नहीं आता) । (परमात्मा के) रस मे अनुरक्त हुए बिना मुक्ति नही (प्राप्त) हो सकती ॥२॥

ज्ञान और ध्यान सब (कुछ) गुरु से (प्राप्त) होते है । सच्चे मन से ही सच्ची रहनी (प्राप्त) होती है । मनमुख तो (केवल) कथन करनेवाला है किन्तु (वह) रहनी नहीं रहता । (हरि के) नाम के भूलने से कोई भी स्थान नही (प्राप्त होता है) ॥३॥

माया ने मन को (संसार रूपी) तालाब के जाल मे बाँध रखा है । घट घट मे (प्रत्येक प्राणी के हृदय में माया का यह जाल) व्याप्त है (बिछा है) (उस जाल में) (माया का) विष भी व्याप्त हो रहा है । जो उत्पन्न होता है वह काल (के अधीन) दिखलाई पड़ता है । (परमात्मा को) हृदय मे स्मरण करने से कार्य सिद्ध होता है ॥४॥

जिसने नाम—शब्द मे एकनिष्ठ ध्यान लगाया है वही ज्ञानी है । मनमुख तो अहंकार (मे पड़कर अपनी) प्रतिष्ठा गँवा देता है । करता-पुरुष स्वय ही अपनी भक्ति (सायकों से) कराता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (परमात्मा) आप ही (शिष्य को) बड़ाई प्रदान करता है ॥५॥

(आयु रूपी) रात्रि अँधेरी है (उसमे परमात्मा की) ज्योति का निर्मल (प्रकाश) है । नाम के बिना (सारे) झूठे मैले कुचैल और अछूत अपवित्र होते है । वेद भक्ति की ध्वनि का पुकार पुकार (कर प्रतिपादन करता है) । इस ध्वनि को सुन सुन कर (जो व्यक्ति) मानता है, (वह परमात्मा की उस) ज्योति को देखता है ॥६॥

(जितने भी) शास्त्र और स्मृतियाँ है (सभी) नाम को ही दृढ़ कराते है । गुरु द्वारा यह उत्तम कर्म (करके) शान्ति मिलती है । (किन्तु) मनमुख होने से योनि (के अन्तर्गत आकर) दुःख सहना पड़ता है । एक (परमात्मा के) नाम को (हृदय में) बसाने से बंधन टूटता है ॥७॥

नाम को मानना ही सच्ची प्रतिष्ठा और पूजा है । (परमात्मा को छोड़ कर) और किस देखूँ ? (वह आप ही सब कुछ है), दूसरा कोई नहीं । (सब कुछ) देखकर (मैं) कहता हूँ कि वही (प्रभु) मन को अच्छा लगता है । नानक कहता है (कि उस प्रभु को छोड़ कर) और कोई नहीं है ॥८॥१॥

[२]

मन का कहिआ मनसा करै । इहु मनु पुंनु पापु उचरै ॥
माइआ मदि माते त्रिपति न आवै । त्रिपति मुकति मनि साचा भावै ॥१॥
तनु धनु कलतु सभु देखु अभिमाना । बिनु नावै किछु संगि न जाना ॥१॥ रहाउ ॥
कीचहि रस भोग खुसीआ मन केरी । धनु लोकां तनु भसमै ढेरी ॥
खाकू खाकु रलै सभु फैलु । बिनु सबदै नही उतरै मैलु ॥२॥
गीत राग घन ताल सि कूरे । त्रिहु गुण उपजै बिनसै दूरे ॥
दूजी दुरमति दरदु न जाइ । छूटै गुरमुखि दारू गुण गाइ ॥३॥
धोती ऊजल तिलकु गलि माला । अंतरि क्रोधु पड़हि नाटसाला ॥
नामु विसारि माइआ मदु पीआ । बिनु गुर भगति नाही सुखु थीआ ॥४॥

पूर्ण ही होती है)। (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) हुक्म को मानता है वही उसके दरवाजे पर कामयाब होता है ॥६॥

(जब) (साधक को) सद्गुरु प्राप्त होता है, तभी (वह) उस (परमात्मा) को जानता है (वह) हुक्म को पहचान कर (उसकी) आज्ञा में रहता है। (प्रभु के) हुक्म को पहचानने से सच्चे दरवाजे पर निवास होता है। मरण और जन्म नाम—शब्द के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। [काल=मरण। बिकाल=मृत्यु का विपरीत तात्पर्य जन्म] ॥७॥

(साधक) सब से अतीत होकर रहे और सारी (वस्तुएँ उसी (प्रभु) की जाने (वह) अपने तन और मन को उसे अर्पित करे, जिसके ये सब हैं। हे नानक (इस वृत्तिवाला साधक) न कहीं आता है और न जाता है (वह) सच्चा (साधक) सत्य में ही समा जाता है ॥८॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु, महला १, थिती, घरु १०, जति

[१]

एकम एकंकारु निराला । अमरु अजोनी जाति न जाला ॥
अगम अगोचरु रूपु न रेखिआ । खोजत खोजत घटि घटि देखिआ ॥
जो देखि दिखावै तिस कउ बलि जाई । गुरपरसादि परम पदु पाई ॥१॥
किआ जपु जापउ बिनु जगदीसै । गुर कै सबदि महलु घरु दीसै ॥१॥ रहाउ ॥
दूजै भाइ लगे पछुताणे । जम दरि बाधे आवण जाणे ॥
किआ ले आवहि किआ ले जाहि । सिरि जम कालु सि चोटा खाहि ॥
बिनु गुर सबद न छूटसि कोइ । पाखंडि कीन्है मुकति न होइ ॥२॥
आपे सचु कीआ कर जोड़ि । अंडज फोड़ि जोड़ि विछोड़ि ॥
धरति अकासु कीए बैसण कउ थाउ । राति दिनंतु कीए भउ भाउ ॥
जिनि कीए करि वेखणहारा । अवरु न दूजा सिरजणहारा ॥३॥
त्रितीआ ब्रहमा बिसनु महेसा । देवी देव उपाए वेसा ॥
जोती जाती गणत न आवै । जिनि साजी सो कीमति पावै ॥
कीमति पाइ रहिआ भरपूरि । किसु नेड़ै किसु आखा दूरि ॥४॥
चउथि उपाए चारे बेदा । खाणी चारे बाणी भेदा ॥
असट दसा खटु तीनि उपाए । सो बूझै जिसु आपि बुझाए ॥
तीनि समावै चउथै वासा । प्रणवति नानक हम ता के दासा ॥५॥
पंचमी पंच भूत बेताला । आपि अगोचरु पुरखु निराला ॥
इकि भ्रमि भूखे मोह पिआसे । इकि रसु चाखि सबदि त्रिपतासे ।
इकि रंगि राते इकि मरि धूरि । इकि दरि घरि साचै देखि हदूरि ॥६॥
झूठे कउ नाही पति नाउ । कबहु न सूचा काला काउ ॥
पिंजरि पंखी बंधिआ कोइ । छेरी भरमै मुकति न होइ ॥
तउ छूटै जा खसमु छडाए । गुरमति मेले भगति द्रिड़ाए ॥७॥

अमावसिआ चंदु गुपतु गैणारि । बूझहु गिआनी सबदु बीचारि ॥
ससीअरु गगनि जोति तिहु लोई । करि करि वेखै करता सोई ॥
गुर ते दीसै सो तिस ही माहि । मनमुखि भूले आवहि जाहि ॥१६॥
घरु दरु थापि थिरु थानि सुहावै । आपु पछाणै जा सतिगुरु पावै ॥
जह आसा तह बिनसि बिनासा । फूटै खपरु दुबिधा मनसा ॥
ममता जाल ते रहै उदासा । प्रणवति नानक हम ताके दासा ॥२०॥१॥

विशेष थिती=तिथि । महीने में चंद्रमा की गति के अनुसार दो पक्ष होते हैं और एक एक पक्ष में पन्द्रह तिथियाँ होती हैं । उनके नाम एकम से लेकर चतुर्दशी या चौदसि तक समान होते हैं । केवल कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि अमावस्या कही जाती है और शुक्लपक्ष की अन्तिम तिथि पूर्णमासी अथवा पूर्णिमा । इन तिथियों के एक एक के नाम मिलाकर गुरु नानक ने सांसारिक मनुष्यों को चेतावनी देकर भक्ति ज्ञान एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट किया है ।

कवि पोथी बनाने का एक ढंग ।

अर्थ : [पहिली तिथि 'एकम' है । इसके द्वारा गुरु जी ने बतलाया है कि] (हरी) एक ही है और सबसे निराला (पृथक) है । (वह प्रभु) अमर और अयोनि है (उसकी) न (कोई) जाति है (और) न (उसे कोई) जंजाल—प्रपंच—बन्धन ही है । (वह) अगम और अगोचर (इन्द्रियों की पहुँच से परे) है न (उसका कोई) रूप है और न (उसकी कोई) रेखा है । खोजते खोजते (मैंने उसे) घट-घट में (व्याप्त) देखा । जो (ऐसे प्रभु को स्वयं) देख कर (दूसरों को) दिखाये, उसके ऊपर मैं न्यौछावर हूँ । गुरु की कृपा से (मैंने) परम पद को पा लिया है ॥१॥

(मैं) बिना जगदीश (परमात्मा) के (और) का क्या जपूँ ? गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा का) महल और घर दिखाई पड़ता है ॥१॥रहाउ॥

द्वितीया (दूइज) तिथि द्वारा यह अभिप्राय है कि द्वैतभाव में लग कर मनुष्य पछताता है । दरवाजे पर यमराज बाँधता है और आना जाना बना रहता है । (मनुष्य) क्या लेकर (इस संसार में) आता है और क्या लेकर यहाँ से चला जाता है ? वह (मनुष्य) सिर पर काल रूपी यमराज की चोटें खाता है । (इस प्रकार) बिना गुरु के शब्द के कोई भी नहीं छूटेगा । (अनेक) पाखण्ड करने से मुक्ति नहीं प्राप्त होती ॥२॥

सच्चे (हरी) ने आप ही अपने हाथों से सृष्टि की रचना की । (जगत् के) अंडे (ब्रह्माण्ड गोलाकार) को तोड़कर दो भाग किये । फिर धरती के सिरों को मिलाकर बीच से एक दूसरों से अलग कर दिया । इस प्रकार धरती और आसमान रहने के लिए दो स्थान बनाए । (उसी हरी ने) रात और दिन तथा भय और प्रेम उत्पन्न किया । जिस (प्रभु) ने सृष्टि की रचना की है वही उसकी निगरानी करनेवाला भी है । (उस प्रभु को छोड़ कर) अन्य कोई सिरजनहार नहीं है ॥३॥

तृतीया (में यह अनुभव कर रहे हैं कि उसने हरी ने ही) ब्रह्मा विष्णु महेश—(त्रिदेवों) (तथा और) देवी—देवताओं के (पृथक् पृथक) वेष उत्पन्न किए हैं । (उस प्रभु ने इतनी अधिक) ज्योतियों और जातियों (की रचना की कि उनकी) गणना ही नहीं की जा सकती ।

जिसने (उसका) निर्माण किया है, वही उसकी कीमत पा सकता है । (वही प्रभु उसकी) कीमत पाकर परिपूर्ण रूप से (विराजमान है) (उसकी सृष्टि में सत्ता) किसे निकट कहा जाय और किसे दूर कहा जाय ? ॥४॥

चउथी (चतुर्थी तिथि से यह समझना चाहिए कि उसी हरी ने) चारों वेदों की उत्पत्ति की है । (उसीने जीवों की) चार खानियाँ—अण्डज, जेरज उद्भिज्ज स्वेदज तथा विभिन्न वाणियों (बोलियों) की रचना की है अठारह (पुराणों) षट् (शास्त्रों) और तीन (गुणों) की उत्पत्ति से (उसी प्रभु की है) । (इस रहस्य का) वही समझ सकता है, जिसे वह स्वयं समझा दे । जो तीन अवस्थाओं —जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति को पार कर (अथवा तीन गुणों—सत्व रज और तम को पार कर) चौथी अवस्था—तुरीयावस्था सहजावस्था, चतुर्थ पद निर्वाण पद मोक्ष पद में स्थित हो जाय नानक विनय करके कहते हैं हम ऐसे पुरुष के दास हैं ॥५॥

पंचमी (से यह आशय है कि) पंच तत्वों म (जिनमें यह सारा संसार बना रहा है) भूत हैं (तात्पर्य है कि पंचभौतिक संसार म रहनेवाले जीव भूतों की तरह इधर उधर घूम रहे हैं) किन्तु (हरी) वाक् मन वाणी से परे निराला पुरुष है । कुछ लोग तो माया की प्यास में भ्रमित होकर भटक रहे हैं और कुछ लोग (हरी) रस का आस्वादन करके शब्द—नाम में लीन हो गए हैं । कुछ लोग तो (प्रेम के) रंग मे रंगे हैं और कुछ मर कर धूल हो रहे हैं । कुछ लोग सच्चे घर और सच्चे दरवाजे पर (हरी को अति) निकट से देखते हैं ॥६॥

झूठे (व्यक्ति) को न प्रतिष्ठा (प्राप्त होती है) और न नाम ही (प्राप्त होता है) । काना कौवा कभी नहीं पवित्र होता है । (यदि) कोई पक्षी पिंजड़े में बंधा हो और (पिंजड़े के) छिद्रों को मार घूमता हो तो (उसकी इस क्रिया से उसकी) मुक्ति नहीं हो सकती । वह तभी छूट सकता है जब स्वामी कृपा करके छुड़ा दे । गुरु की बुद्धि द्वारा मिलने से ही भक्ति की दृढता प्राप्त होती है ॥७॥

षष्ठी (छठि) तिथि द्वारा गुरु नानक देव जी का यह उपदेश है कि) प्रभु (हरी ने) छः दर्शनों—शास्त्रों [वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा (व्यास कृत) पूर्व मीमांसा अथवा कर्म काण्ड (जैमिनि कृत) योग (पतञ्जलि कृत) न्याय (गौतम कृत) वैशेषिक (कणाद कृत) तथा सांख्य (कपिल द्वारा रचित)] की रचना की है । (प्रभु की रचना मे) अनाहत शब्द तो निराले ढंग से बजता है (अनाहत शब्द पारिभाषिक शब्द का यह तात्पर्य गीत है जो बिना बजाए ही बजता है) । यदि प्रभु को अच्छा लगता है तो (वह साधक को अपने) महल में बुला लेता है । (यदि) (गुरु के) शब्द द्वारा (अपने मन का भेद दे तभी) (प्रभु के निकट) प्रतिष्ठा पा सकता है (पाखण्डी लोग तो अनेक प्रकार के) भेष बना बना कर नष्ट होकर जल जाते हैं किन्तु सच्चे (साधक) तो सत्य स्वरूप (हरी) में ही समा जाते हैं ॥८॥

सप्तमी (तिथि द्वारा गुरु नानक महाराज यह समझाते हैं कि) यदि शरीर में (तात्पर्य यह कि जीवन में) सत्य संतोष (सद्गुण) हों तो सातों समुद्र (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि) (नाम के अमृत जल से) भर जाते हैं [तात्पर्य यह कि अपरिमित आनन्द की प्राप्ति हो जाती है] । हृदय में सच्चे (हरी) को विचार कर शील (पवित्रतापूर्ण संयम) ही (सच्चा) स्नान है । गुरु का शब्द सभी को तार देता है । (जिसके) मन और मुख सच्चे

है (और जिसमें) सच्चा भाव है, (उन्हें) सत्य रूपी निरंजन (परमात्मा) प्राप्त होता है (जिसमें) उसकी कोई पोंछ नहीं होती ॥९॥

सप्तमी (तिथि से यह भाव है कि) (साधक) अष्ट सिद्धियों वाली बुद्धि के ऊपर विजय प्राप्त करे (तात्पर्य यह चमत्कारी शक्तियों की ओर बुद्धि न जाने दे)। (वह) सच्चे और निरंजन (हरी की) (शुभ) कर्मों द्वारा आराधना करे और वायु, जल तथा अग्नि (के क्रमशः रजोगुणी सत्त्वगुणी एवं तमोगुणी स्वभाव को) भुला दे ऐसे ही स्थान में (अर्थात् ऐसे ही मनुष्य के शुद्ध अन्तःकरण में) सच्चा नाम बसता है। ऐसे (सच्चे नाम) में (साधक का मन नित्य (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर रहता है। नानक विनती करके कहता है (कि ऐसे साधक को) काल नहीं ग्रसता है (अर्थात् वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो कर साक्षात् परब्रह्म-स्वरूप हो जाता है और उस पर काल का कोई वश नहीं चलता है) ॥१०॥

नवमी (से यह आशय है कि हरी का) नाम (योगियों के बड़े) नौ नाथों (पृथ्वी के) नौ खण्डों (और प्रत्येक) घट का महा बलवंत (शक्तिशाली) स्वामी है। वह माता (रूपी हरी) की सन्तान यह सारा जगत् है। (उस) आदि पुरुष प्रभु को (हम सब का) प्रणाम है। (वह प्रभु) आदिकाल (एवं) युग-युगान्तरों से है था (और) होगा (तात्पर्य यह कि परमात्मा भूतकाल में था वर्तमान में है और भविष्य में होगा। वह अपरंपार (प्रभु सभी कुछ) करने में समर्थ है ॥ ११ ॥

दशमी (तिथि द्वारा गुरु नानक देव यह समझाते हैं कि) नाम (जपो), दान दो (बांट कर खाओ) और स्नान करो (पवित्र रहो)। (हरी के) गुणों का सच्चा ज्ञान (लेना ही)—इसी को नित्य का स्नान (समझो)। सच्चे (व्यक्ति को) मैल नहीं लगती (और उसके समस्त) भ्रम और भय भग जाते हैं। कच्चे धागे को टूटने में विलम्ब नहीं लगता। (अतएव इस बात को) जानो कि जैसे धागा (कच्चा) है, वैसे ही यह जगत् भी (कच्चा है)। (यदि) सत्य (परमात्मा में) आनन्द प्राप्त करे (तभी) चित्त स्थिर होता है ॥ १२ ॥

एकादशी (तिथि से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि) एक (परमात्मा को) (अपने) हृदय में बसा ले और हिंसा, ममता तथा मोह को समाप्त कर दे। (इसका) फल होगा—(सत्य) रस की प्राप्ति और आत्म-स्वरूप की पहचान। पाखण्ड में अनुरक्त होने से (पाखण्डी व्यक्ति) (परमात्म) तत्त्व को नहीं देख सकता। (हरी) निर्मल, निराधार और निर्लेप (निर्लेपन) है। (इस प्रकार से) पवित्र (हरी) द्वारा जो (व्यक्ति) पवित्र होता है, उसे मैल नहीं लग सकती ॥ १३ ॥

(मैं) जहाँ देखता हूँ (वहाँ) एक ही प्रभु (एक मात्र हरी ही) (दिखाई पड़ता है)। (उसी एक हरी ने) भाँति भाँति के जीव उत्पन्न किए हैं। (इन जीवों में से कुछ तो ऐसे हैं जो सदैव) फलाहार ही करते हैं, (पर इस फलाहार का) (वास्तविक) फल (उनसे) चला जाता है। (कुछ लोग ऐसे हैं जो नाना प्रकार की) स्वादिष्ट (वस्तुओं को) खाते हैं (पर फिर भी स्वाद) फीका देते हैं। (इस प्रकार दोनों प्रकार के लोग—(१) फलाहारी तथा (२) अनेक प्रकार की स्वादिष्ट वस्तुओं को खाने वाले) झूठी आशा में

मत जानना चाहिए। (यदि) अच्छा (हरी) मन को अच्छा लगने लगे (तो यही) तत्त्व का विश्राम (प्राप्त होता है) ॥१७॥

चतुर्दशी (तिथि का यह अभिप्राय है कि यदि कोई) चतुर्थ स्थान—तुरीयावस्था को प्राप्त करता है, (तो उसके) रजोगुण तमोगुण एवं सत्त्वगुण काल में समा जाते हैं, (अर्थात् वह त्रिगुणात्मक बन्धन से मुक्त होकर त्रिगुणातीत हो जाता है) चन्द्रमा के घर में सूर्य जाकर समा जाता है, [भावार्थ यह कि मनुष्य की अज्ञानावस्था के चन्द्रमा में गुरु का उपदेश रूपी सूर्य प्रकाश भर जाता है]। (ऐसा शिष्य—साधक) योग-विधियों के (समस्त) मूल्य को (अनायास ही) पा जाता है। (वह इस महायोग के कारण इतना व्यापक और महान् हो जाता है कि) (वह) चतुर्दश भुवनों एवं (समस्त) पाताल में व्याप्त हो जाता है वह समस्त खण्ड-ब्रह्माण्ड में एकनिष्ठ ध्यान (चित्त) लगाकर (परिपूर्ण) हो जाता है ॥१८॥

अमावस्या (तिथि से गुरु नानक देव यह समझाते हैं कि इस तिथि में) (व्यष्टिगत) चन्द्रमा (समष्टिगत चिदाकाश के) आकाश में अन्तर्हित हो जाता है। ऐ ज्ञानी, (गुरु के) शब्द को विचार कर (इस परम रहस्य को) समझने (की चेष्टा करो)। चन्द्रमा में गगन में और चारों ओरों में (उसी परमात्मा की अखण्ड और सर्वव्यापिनी) ज्योति (व्याप्त है)। वही कर्ता-पुरुष (सृष्टि) रच रच कर, (उसको) देखभाल करता है। गुरु से (वह महान् रहस्य) दिखाई पड़ता है (कि परमात्मा की वह अखण्ड और सर्वव्यापिनी ज्योति) उस (शिष्य) के भीतर भी है। (किन्तु) मनमुख (इस रहस्य को नहीं समझता, वह तो अपनी इन्द्रिय परायणता के कारण बारंबार इस संसार-चक्र में) भटक कर आता-जाता रहता है ॥१९॥

जब (शिष्य) सद्गुरु को पा लेता है (तभी वह परमात्मा के सच्चे) घर और दरबार पर स्थापित होता है (और तभी वह आत्मस्वरूप के) स्थिर स्थान में सुशोभित होता है (और तभी वह) अपने आप को पहचानता है। जहाँ पर आशा होती है, वहाँ (मनुष्य) नष्ट होकर बरबाद हो जाता है। (गुरु के प्राप्त हो जाने पर) द्वैतभाव एवं (मनमुखी) काम वासना का खप्पर फूट जाता है। (ऐसा व्यक्ति) ममता के समूह से उदासीन हो जाता है, नानक विनम्रपूर्वक कहता है कि हम ऐसे (व्यक्ति के) दास हैं ॥२०॥ १॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु, महला १, दखणी,

छंत

[१]

मुन्ध नवेलड़ीआ गोइलि आई राम।
मटुकी डारि धरी हरि लिव लाई राम ॥
लिव लाइ हरि सिउ रही गोइलि सहजि सबदि सीगारीआ।
कर जोड़ि गुर पहि करि बिनंती मिलहु साचि पिआरीआ ॥
धन भाइ भगती देखि प्रीतम काम क्रोधु निवारिआ ॥१॥
नानक मुंध नवेल सुंदरि देखि पिरु साधारिआ ॥१॥

श्रीधर (परमात्मा) द्वारा मोहित की हुई स्त्री अपने पति (परमात्मा) के ही साथ शयन करती है। गुरु के भावानुसार चलने से (वह) सच्चे (हरी) के साथ जुड़ी हुई है। सत्य (परमात्मा) के साथ जुड़ी होने से (वह सौभाग्यशालिनी स्त्री अपने पति) हरी के साथ ही शयन करती है, (और उसके) साथ में (उसकी) सखियाँ-सहेलियाँ (भी आनन्द मनाती हैं)। एक रस और एकाग्र मन होने से (हमारे अन्तर्गत) नाम बस गया है; सद्गुरु ने हम (परमात्मा से) मिला दिया है। (अब परिणाम यह हुआ है) कि निरंजन (माया से रहित हरी) दिन रात, घड़ी तथा पल का तीसवाँ भाग भी नहीं भूलता है; (वह) प्रत्येक साँस में (याद आता रहता है)। [विशेष —चसा=पन्द्रह बार आँखों की पलकों के गिरने को 'विसा' कहा जाता है। पन्द्रह 'विसों' का एक 'चसा' होता है। तीस विसों का एक 'पल' और साठ पल की एक घड़ी होती है।] हे नानक भय को नष्ट करनेवाले हरी ने (गुरु के) शब्द की ज्योति द्वारा (हृदय में) (ज्ञान का) दीपक प्रज्वलित कर दिया है ॥३॥

हे सखी के मध्य आई हुई (परमात्मा की सर्वव्यापिनी और अखण्ड) ज्योति (तू) सारे त्रिभुवन में (व्याप्त) है। अलक्ष्य और अपार हरी घट घट में रमा हुआ है। (हे साधक, अपने) आपेपन को मार कर (अपने को) अलक्ष्य, अपार, सच्चे हरी से मिला दो। अहंकार, ममता और लोभ को (गुरु के) शब्द द्वारा जला दो (और आन्तरिक) मैल को समाप्त कर दो। (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर (मैंने) उसका दर्शन किया (और) तारनेवाले हरी ने (अपनी) आज्ञा से—मर्जी से—इच्छा से (मुझे संसार-सागर से) तार लिया। हे नानक (मैं) हरि के अमृत नाम को चख कर तृप्त हो गई और (उस नाम को अपने) हृदय में धारण कर लिया ॥४॥१॥

[२]

मै मनि चाउ घणा साचि विगासी राम।
मोही प्रेम पिरे प्रभि अबिनासी राम॥
अविगतो हरि नाथु नाथह तिसै भावै सो थीऐ।
किरपालु सदा दइआलु दाता जीआ अंदरि तूं जीऐ॥
मै अवरु गिआनु न धिआनु पूजा हरि नामु अंतरि वसि रहे।
भेखु भवनी हठु न जाना नानका सचु गहि रहे॥१॥
भिंनड़ी रैणि भली दिनस सुहाए राम।
निज घरि सूतड़ीए पिरमु जगाए राम॥
नवहाणि नव धन सबदि जागी आपणे पिर भाणीआ।
तजि कूड़ कपटु सुभाउ दूजा चाकरी लोकाणीआ।
मै नामु हरि का हारु कंठे साच सबदु नीसाणिआ।
कर जोड़ि नानकु साचु मागै नदरि करि तुधु भाणीआ॥२॥
जागु सलोनड़ीए बोलै गुरबाणी राम।
जिनि सुणि मंनिअड़ी अकथ कहाणी राम॥
अकथ कहाणी पदु निरबाणी को विरला गुरमुखि बूझए।
ओहु सबदि समाए आपु गवाए त्रिभवण सोझी सूझए॥

रहै अतीतु अपरंपरि राता साचु मनि गुण सारिआ।
ओहु पूरि रहिआ सरब ठाई नानका उरि धारिआ ॥३॥

महलि बुलाइड़ीए भगति सनेही राम।
गुरमति मनि रहसी सीझसि देही राम॥
मनु मारि रीझै सबदि सीझै त्रै लोक नाथु पछाणए।
मनु डीगि डोलि न जाइ कतही आपणा पिरु जाणए॥
मै आधारु तेरा तू खसमु मेरा मै ताणु तकीआ तेरओ।
साचि सूचा सदा नानक गुर सबदि झगड़ु निबेरओ ॥४॥२॥

मेरे मन में अत्यधिक चाव (उमंग) है, मैं सच (हरी) द्वारा विरक्त हो गई। अविनाशी प्रियतम, प्रभु ने मुझे (अपने महान्) प्रेम में मोहित कर लिया। अव्यक्त हरी स्वामियों का भी स्वामी है (जो कुछ) उसे अच्छा लगता है वही होता है। हे दयालु, हे सदैव दया करनेवाले दाता, जीवों के अन्तर्गत तू ही जीवित है, (अर्थात् तेरी ही सत्ता से प्राणधारियों का जीवन है)। मुझमें (तुझे छोड़कर) न और कोई ज्ञान है, न ध्यान है और न पूजा है (मेरे) अन्तर्गत हरि का नाम ही बस रहा है। हे नानक (मैं) न (तो कोई) वेश (बनाना) जानता हूँ न (तीर्थों में) भ्रमण ही (करता हूँ) (और न कोई) हठ-निग्रह ही जानता हूँ—मैंने तो सत्य (हरी) को ही ग्रहण कर रक्खा है ॥१॥

रात्रि (आनन्द से) भीगी हुई और दिन सुहावने (प्रतीत होते हैं)। (मैं) अपने घर में सोई थी प्रियतम (हरी ने मुझे अज्ञान-निद्रा से) जगा कर (अपने स्वरूप में स्थित कर दिया है)। नवयुवती भार्या भी (गुरु के) शब्द द्वारा जग गई है और अपने प्रियतम (परमात्मा) को अच्छी लगी है। (उस स्त्री ने) झूठ, कपट-स्वभाव तथा दूसरे मनुष्यों की चाकरी (नौकरी) छोड़ दी है (और एक मात्र परमात्मा में लिव लगाती है)। मेरे गले में हरी के नाम का हार और सच्चे शब्द का निशान पड़ा है। नानक हाथ जोड़ कर सच (की भीख) माँगता है (हे प्रभु) कृपादृष्टि करो (ताकि मैं) तुझे अच्छा लगूँ ॥२॥

ऐ सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्री (उठो) जागो और गुरुवाणी बोलो। जिस (गुरुवाणी को) सुन कर (परमात्मा की) अकथनीय कहानी को मानो समझो। (परमात्मा की) अकथनीय कहानी तथा निर्वाण पद—चतुर्थ पद—तुरीय पद को कोई विरला ही गुरु की शिक्षा द्वारा समझता है। वह (पुरुष) अहंकार को मिटा कर शब्द—नाम में समा जाता है और (उसे) तीनों लोकों का ज्ञान हो जाता है। (सच्चा शिष्य) अपने मन में (परमात्मा के) गुणों का धारण करके अपरंपार (परमात्मा) में अनुरक्त होकर उससे अतीत (त्यागी, निर्लिप्त) हो गया है। हे नानक (उस साधक ने उस हरी को अपने) अन्तःकरण में धारण कर लिया है जो सभी स्थानों में परिपूर्ण है (व्याप्त है) ॥३॥

भक्ति से स्नेह करनेवाले उस (परमात्मा) ने (मुझे) अपने महल में बुलाया है। गुरु की बुद्धि द्वारा तू मन में प्रसन्न है और तू ने अपने शरीर (जीवन) को भी सफल कर लिया है। (जो) अपने (चंचल) मन को मार कर (गुरु के) शब्द से रीझता है, (वही) सिद्ध होता है और त्रिलोकीनाथ (हरी) का पहचानता है। (मेरा) मन डिग कर और डोल कर (चंचल होकर) कहीं भी न जाये ताकि (तू अपने) प्रियतम को पहचान। (हे प्रभु) तुझे

तेरा ही आधार है, तू ही मेरा पति है, मुझे तेरा ही बल और सहारा है। हे नानक, सच्चा सदैव ही पवित्र (होता है) गुरु के शब्द ने (मेरे) झगड़े को समाप्त कर दिया है ॥७॥२॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु की वार महला १

सलोकु　　कोई वाहे को लुणै को पाए खलिहानि ।
　　　　नानक एव न जापई कोई खाइ निदानि ॥१॥
　　　　जिसु मनि वसिआ तरिआ सोइ ।
　　　　नानक जो भावै सो होइ ॥२॥

सलोकु　कोई तो (खेत) बोता है और कोई (उसे) काटता है, और कोई उसे खलिहान में लाता है। (पर) हे नानक यह नहीं दिखाई पड़ता कि अंत में किसे खाना है ॥१॥

जिसके मन में (हरी) बस गया है, वही (इस संसार-सागर से) पार होता है। हे नानक (जो कुछ) उस हरी को अच्छा लगता है, वही होता है ॥२॥

पउड़ी　　पारब्रहमि दइआलि सागरु तारिआ ।
　　　　गुरि पूरै मिहरवानि भरमु भउ मारिआ ॥
　　　　काम क्रोधु बिकरालु दूत सभि हारिआ ।
　　　　अमृत नामु निधानु कंठि उरि धारिआ ॥
　　　　नानक साधू संगि जनमु मरणु सवारिआ ॥१॥

पउड़ी : दयालु परब्रह्म ने (मुझे) (इस संसार रूपी) सागर से तार दिया है। मेहरबान (दयालु) पूर्ण गुरु ने (मेरे) भ्रम और भय को समाप्त कर दिया है। काम क्रोध (इत्यादि) विकराल दूत सब हार खाकर (बैठ गए हैं)। (मैंने) अमृत के भण्डार (हरी के) नाम को गले लगे और हृदय में धारण कर लिया है। हे नानक साधु-संग में मैंने अपना जन्म-मरण बना लिया है ॥१॥

हे हरी (मैं कुछ भी) नहीं जानता कि मेरी क्या गति होगी ? हे प्रभु, मैं मूर्ख और अज्ञानी हूँ, तेरी शरण में पड़ा हूँ। हे स्वामी, कृपा करके मेरी लज्जा रखो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

कभी तो यह जी (मन) (खूब) ऊँचे (आकाश में) चढ़ जाता है और कभी पाताल में चला जाता है, (तात्पर्य यह कि कभी तो चित्तवृत्ति खूब ऊँचे चढ़ जाती है और कभी नीचे गिर जाती है)। (इस प्रकार) यह लोभी जी (मन) स्थिर नहीं रहता, यह चारो दिशाओं में खोजता रहता है ॥ २ ॥

(मनुष्य तो परमात्मा के यहाँ से अपना) मरण लिखा कर संसार के बीच आया है (किन्तु) है यहाँ (इस संसार में आकर वह) (स्वार्थी) जीवन की आस बाँधने लगता है। हे स्वामी हमारे देखते देखते कुछ (लोग) तो (इस संसार से) विदा हो गए, (मृत्यु की) आग जलती हुई चली आ रही है (मौत सभी को बारी बारी से जलाती चली आ रही है) ॥ ३ ॥

(इस संसार में कोई) न किसी का मित्र है, न (कोई) किसी का भाई है, न (कोई) किसी का माता-पिता है, (क्योंकि यहाँ के नाते क्षण भंगुर हैं)। नानक विनय करके के कहता है (कि हे प्रभु) यदि तू (कृपा करके नाम का दान) दे, तो अन्त में वही सहायक (सिद्ध) होगा ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

सरब जोति तेरी पसरि रही ।
जह जह देखा तह नरहरी ॥१॥
जीवन तलब निवारि सुआमी ।
अंध कूपि माइआ मनु गाडिआ किउ करि उतरउ पारि सुआमी ॥१॥ रहाउ ॥
जह भीतरि घटि भीतरि बसिआ बाहरि काहे नाही ।
तिन की सार करे नित साहिबु सदा चिंत मन माही ॥२॥
आपे नेड़ै आपे दूरि । आपे सरब रहिआ भरपूरि ।
सतगुरु मिलै अंधेरा जाइ । जह देखा तह रहिआ समाइ ॥३॥
अंतरि सहसा बाहरि माइआ नैणी लागसि बाणी ।
प्रणवति नानक दासनि दासा परतपहिगा प्राणी ॥४॥२॥

(हे प्रभु) तेरी ज्योति सर्वत्र फैल रही है। (मैं) जहाँ भी देखता हूँ, नरहरी (परमात्मा) (दिखाई पड़ रहा है) ॥ १ ॥

(हे हरी) जीवन की इच्छाओं का निवारण कर। (मेरा मन) माया के अंधे (घनघोर अंधकारपूर्ण) कुएँ में गड़ा हुआ है, हे स्वामी (मैं) यहाँ से किस प्रकार (बाहर) निकलूँ ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिनके हृदय के अन्तर्गत (परमात्मा) बसा हुआ है (भला उनके) बाहर क्यों न हो ? (तात्पर्य यह कि परमात्मा जिनके भीतर बसा हुआ है उनके बाहर भी वही है)। साहब (प्रभु) ऐसे (व्यक्तियों) की सदैव देख-भाल करता है और उनका सदैव (अपने) मन में चिन्तन करता है ॥ २ ॥

(प्रभु) आप ही समीप है और आप ही दूर है और आप ही सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। सद्गुरु के प्राप्त होने पर ही अन्धकार (अज्ञान) दूर होता है। (मैं तो) जहाँ देखता हूँ वहीं प्रभु व्याप्त (दिखलाई) पड़ता है ॥ ३ ॥

(प्राणियों के) अन्तर्गत (भीतर) तो संशय (व्याप्त है) और बाहर माया नेत्रों में बाणों की भाँति लगती है। दासों का दास नानक विनयपूर्वक कहता है कि प्राणी (इस माया के कारण) बहुत ही दुःखी होगा ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

जितु दरि वसहि कवनु दरु कहीऐ दरा भीतरि दरु कवनु लहै ।
जिसु दर कारणि फिरा उदासी सो दरु कोई आइ कहै ॥१॥
किन बिधि सागरु तरीऐ । जीवतिआ नह मरीऐ ॥१॥ रहाउ ॥
दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े ।
माइआ जलु खाई पाणी घरु बाधिआ सत कै आसणि पुरखु रहै ॥२॥
किंते नामा अंतु न जाणिआ तुम सरि नाही अवरु हरे ।
ऊचा नही कहणा मन महि रहणा आपे जाणै आपि करे ॥३॥
जब आसा अंदेसा तब ही किउ करि एकु कहै ।
आसा भीतरि रहै निरासा तउ नानक एकु मिलै ॥४॥
इन बिधि सागरु तरीऐ । जीवतिआ इउ मरीऐ ॥१॥ रहाउ दूजा ॥५॥

जिस दरवाजे में (वह प्रभु) बसता है (वह) कौन सा दरवाजा कहा जाता है? (शरीर के) दरवाजे के भीतर कौन से स्थान पर (परमात्मा का) दरवाजा प्राप्त होता है? जिस (परमात्मा के) दरवाजे (की प्राप्ति) के लिए (बहुत से लोग) विरक्त (उदासीन) होकर फिर रहे हैं, उस दरवाजे को (मुझे) कोई आकर (बातें तो) बतलाए ॥ १ ॥

किस उपाय से (यह संसार रूपी) सागर तरा जाय? जीवित भाव से तो मरा नहीं जा सकता। (किस प्रकार जीवित भाव से मरा जाय)? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(उस दरवाजे का पता गुरु नानक देव इस प्रकार बतलाते हैं)—दुःख तो दरवाजा है, रोष—क्रोध (उस दुःख के दरवाजे का) रक्षक—प्रहरी है, आशा और चिन्ता के दो किवाड़े (पट) जड़े हुए हैं। माया के जल की (अथाह) खाई है और पानी में घर बनाया है। (इन सब कठिनाइयों के लाँघने के पश्चात् परमात्मा) सत्य के आसन पर (विराजमान) (दिखाई पड़ता) है ॥ २ ॥

(हे प्रभु) (तेरे) कितने नाम हैं उनका अन्त नहीं जाना जाता (अर्थात् तेरे अनन्त नाम हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती)। हे हरी तेरे समान (और कोई) दूसरा नहीं है। (मनुष्य अपने को) ऊँचा न कहे वह अपने मन में (अन्तर्मुखी वृत्ति में) स्थित रहे जो कुछ (वह) करता है उसे आप ही जानता है ॥ ३ ॥

जब तक (मन में) आशा और चिन्ता है तब तक (आशा लगाये मनुष्य) एक (हरी) को किस प्रकार कह सकता है (स्मरण कर सकता है)? हे नानक (जब

मनुष्य) अन्तःकरण से आशाओं के प्रति निराश हो जाता है तभी उसे एक (हरी) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इस प्रकार (संसार रूपी) समुद्र को तरा जाता है और इसी (विधि से) जीवित भाव से मरा जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दूजा ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

सुरति सबदु साखी मेरी सिंङी बाजै लोकु सुणे ।
पतु झोली मंगण कै ताई भीखिआ नामु पड़े ॥१॥
बाबा गोरखु जागै ।
गोरखु सो जिनि गोइ उठाली करते बार न लागै ॥१॥ रहाउ ॥
पाणी प्राण पवणि बंधि राखे चंदु सूरजु मुखि दीए ।
मरण जीवण कउ धरती दीनी एते गुण विसरे ॥२॥
सिध साधिक अरु जोगी जंगम पीर पुरस बहुतेरे ।
जे तिन मिला त कीरति आखा ता मनु सेव करे ॥३॥
कागदु लूणु रहै घ्रित संगे पाणी कमलु रहै ।
ऐसे भगत मिलहि जन नानक तिन जमु किआ करै ॥४॥४॥

(गुरु नानक देव ने इस शब्द में बतलाया है कि वास्तविक योगी कौन है)। गुरु की शिक्षा मेरे लिए शृंगी बाजा का बजना है और (वही शिक्षा) मेरे लिए सुरति तथा शब्द है। (क्योंकि मेरी सुरति में वह शब्द टिकता है) और लोग इस नाद को सुनते हैं। प्रतिष्ठा अथवा इज्जत ही माँगने के लिए झोली है (और उस झोली में) नाम की भीख पड़ती है ॥ १ ॥

हे बाबा वह गोरख (परमात्मा) जागती ज्योति है। गोरख (परमात्मा) वही है जिसने (समस्त) पृथ्वी को उठा रखी है (थाम्ह रखी है) (परमात्मा को सृष्टि रचना) करने में (तनिक भी) देर नहीं लगती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(उसी प्रभु ने) प्राणों को पवन और जल आदि से बाँध रखा है चंद्रमा और सूर्य दो मुख्य (बड़े) दीपक दिए हैं। (अर्थात् जगत में) मरने और जीने के लिए इस धरती का निर्माण किया है; (फिर भी प्राणी) इन सभी उपकारों को भूल जाता है ॥ २ ॥

(बड़े बड़े) सिद्ध साधक योगी जंगम और तथा अन्य बड़े बड़े पुरुषों—जिनके साथ भी मैं मिलूँ हरि की कीर्ति कहूँगा (मैं किसी सम्प्रदाय अथवा मत विशेष से सम्बन्धित नहीं हूँ सभी मेरे हैं और सभी का मैं) मन से सेवा करता हूँ ॥ ३ ॥

कागज और नमक घी के साथ होने से निर्मल रहते हैं और कमल भी पानी में निर्लेप रहता है इसी प्रकार भक्त भी इनसे मिलते हैं (किन्तु) उनका यम क्या बिगाड़ सकता है ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

सुणि माछिंद्रा नानकु बोलै । वसगति पंच करे नह डोलै ॥
ऐसी जुगति जोग कउ पाले । आपि तरै सगले कुल तारे ॥१॥

सो अउधूतु ऐसी मति पावै । अहिनिसि सुंनि समाधि समावै ॥१॥ रहाउ ॥
भिखिआ भाइ भगति भै चलै । होवै सु तृपति सतोखि अमुलै ॥
धिआन करि होइ आसणु पावै । सचि नामि ताड़ी चितु लावै ॥२॥

नानकु बोलै अमृत बाणी । सुणि माछिंद्रा अउधू नीसाणी ।
आसा माहि निरासु वलाए । निहचउ नानक करते पाए ॥३॥

प्रणवति नानकु अगमु सुणाए । गुर चेले की संधि मिलाए ।
दीखिआ दारू भोजनु खाइ । छिअ दरसन की सोझी पाइ ॥४॥५॥

विशेष यह और इसके साथ के दो शब्द गोरख-हटड़ी के योगियों के प्रति उच्चारण किये गए हैं।

अर्थ नानक कहता है, हे मत्स्येन्द्रनाथ सुनो। (काम क्रोध लोभ, मोह और अहंकार)—इन पाँचों को वश में करो और अपने आसन से (तनिक भी) न विचलित हो। इस प्रकार की युक्ति से योग कमाओ (निभाओ) स्वयं भी तर जाओ और अपने समस्त कुल को भी तार दो ॥ १ ॥

वही अवधूत ऐसी बुद्धि पाता है कि अहर्निश शून्य समाधि—निर्विकल्प समाधि—अफुर समाधि म लीन रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(योगी की वास्तविक) भिक्षा यह है कि (वह) भक्ति भाव और भय में चले। अमूल्य संतोष (मन को धारण करना ही) (योगी की सच्ची) तृप्ति है। (हरी का) ध्यान रूप हो जाना ही (यही योगी का सच्चा) आसन है। सत्य नाम चित्त में लगाना ही (यही योगी का) ताड़ी—ध्यान लगाना है ॥ २ ॥

नानक अमृत वाणी बोलता है ऐ मत्स्येन्द्रनाथ अवधूतों की निशानी सुनो—(योगी) आशा में निराश होकर (अपनी आयु) व्यतीत करे। हे नानक (इस प्रकार का योगी) निश्चय ही कर्ता-पुरुष को पाता है ॥ ३ ॥

नानक विनयपूर्वक यही अगम बात सुनाता है—यह ईश्वर और जीव की संधि—मिलाप (की युक्ति बताता है)। (साधक) (गुरु के) उपदेश को औषधि और भोजन (बना कर) खावे। (इससे) छः शास्त्रों—(वेदान्त (उत्तर मीमांसा) पूर्व मीमांसा न्याय योग वैशेषिक एवं सांख्य)—सभी की समझ आ जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

हम डोलत बेड़ी पाप भरी है पवणु लगै मतु जाई ।
सनमुख सिध भेटण कउ आए निहचउ देहि वडिआई ॥१॥

गुर तारि तारणहारिआ ।
देहि भगति पूरन अविनासी हउ तुझ कउ बलिहारिआ ॥१॥ रहाउ ॥

सिध साधिक जोगी अरु जंगम एकु सिधु जिनी धिआइआ ।
परसत पैर सिझत ते सुआमी अखरु जिन कउ आइआ ॥२॥
जप तप संजम करम न जाना नामु जपी प्रभ तेरा ।
गुरु परमेसरु नानक भेटिओ साचै सबदि निबेरा ॥३॥६॥

हमारी (जीवन की) नौका पापों (के भार से) भरी हुई है (अतएव) डगमगा रही है, (भय यह लग रहा है कि) हवा लगने से कहीं यह डूब न जाय । (हे परमात्मा), सामने सिद्धमण मिलने के लिए आए हैं, हमें निश्चय ही मिलने का मान प्रदान (कर) ॥ १ ॥

हे तारनेवाले गुरु (मुझे) तार दे । हे पूर्ण अविनाशी (परमात्मा) मुझे भक्ति प्रदान कर, मैं तुझ पर बलिहारी हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वे ही (वास्तविक) सिद्ध साधक योगी और जंगम हैं, जिन्होंने एक सिद्ध (परमात्मा) का ध्यान किया है । वे स्वामी (हरी) के चरण-स्पर्श करते ही सिद्ध (सफल) हो गए हैं जिन्हें अक्षर (गुरु-उपदेश) प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

(हे प्रभु) मैं जप तप संयम कर्म (कुछ भी) नहीं जानता, (केवल) तेरा नाम (जाप) जपता हूँ । नानक ने गुरु (रूपी) परमेश्वर का साक्षात्कार कर लिया है (और उसके) सच्चे शब्द के द्वारा छुटकारा प्राप्त हो गया है ॥ ३ ॥ ६ ॥

[७]

सुरती सुरति रलाईऐ एतु । तनु करि तुलहा लंघहि जेतु ॥
अंतरि भाहि तिसै तू रखु । अहिनिसि दीवा बलै अथकु ॥१॥
ऐसा दीवा नीरि तराइ । जितु दीवै सभ सोझी पाइ ॥१॥रहाउ॥
हछी मिटी सोझी होइ । ता का कीआ मानै सोइ ॥
करणी ते करि चकहु ढालि । ऐथै ओथै निबही नालि ॥२॥
आपे नदरि करे जा सोइ । गुरमुखि विरला बूझै कोइ ॥
तितु घटि दीवा निहचलु होइ ।
पाणी मरै न बुझाइआ जाइ । ऐसा दीवा नीरि तराइ ॥३॥
डोलै वाउ न वडा होइ । जापै जिउ सिंघासणि लोइ ॥
खत्री ब्राहमणु सूदु कि वैसु । निरति न पाईआ गणी सहंस ॥
ऐसा दीवा बाले कोइ । नानक सो पारंगति होइ ॥४॥७॥

सभी आत्मा के स्वामी (परमात्मा के साथ) इस प्रकार सुरति लगाइए—(अपने) इस शरीर को बेड़ा बनाइए—जिससे तर जाएं । (मेरे) अन्तर्गत तृष्णा की अग्नि है, (उसे) तू रोक रख । अहर्निश (ज्ञान का) अनवरत दीपक (हृदय के अन्तर्गत) जले ॥ १ ॥

ऐसा (ज्ञान रूपी) दीपक (हृदय रूपी) नीर में (प्रवाहित करो) कि जिसके प्रकाश से सभी को ज्ञान प्राप्त हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अच्छे विचार ही इस दीपक के लिए मिट्टी हों। इस प्रकार की मिट्टी के बने हुए दीपक को परमात्मा प्रामाणिक मानता है। शुभ करनी के चाक पर उस मिट्टी को ढालो। (इस प्रकार के दीपक तैयार होने से) यहाँ (इस ओर) और वहाँ (परलोक) दोनों के साथ निर्वाह होता है ॥ २ ॥

(परमात्मा) जब स्वयं ही कृपादृष्टि करता है (तभी) गुरु की कृपा द्वारा कोई विरला (इस रहस्य को) समझता है और तभी उसके घट में (ज्ञान के) दीपक का निवास (प्रकाश) होता है। (ऐसे ज्ञान का दीपक) पानी में मरता (डूबता) नहीं (उसकी अखण्ड ज्योति जलती रहती है कभी) बुझती नहीं। ऐसा दीपक पानी में भी तरता रहता है ॥ ३ ॥

(इस दीपक को) वायु हिला नहीं सकती और न वह बुझता ही है। (इस दीपक के) प्रकाश में (परमात्मा इस प्रकार) दिखाई पड़ता है (जैसे वह सुन्दर ढंग से) सिंहासन पर विराजमान है। क्षत्रियों, ब्राह्मणों, शूद्रों अथवा वैश्यों आदि ने (उस दीपक के निर्णय के लिए) हजारों गिनतियाँ कीं पर उसका निर्णय (मोल) (वे) न पा सके। नानक कहते हैं कि जो कोई व्यक्ति इस प्रकार (ज्ञान का दीपक अपने अन्तःकरण में) जलाता है वही पारंगत होता है ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

तुधनो निवणु मंनणु तेरा नाउ। साचु भेट बैसण कउ थाउ ॥
सतु संतोखु होवै अरदासि। ता सुणि सदि बहाले पासि ॥१॥
नानक बिरथा कोइ न होइ। ऐसी दरगह साचा सोइ ॥१॥रहाउ॥
प्रापति पोता करमु पसाउ। तू देवहि मंगत जन चाउ ॥
भाडै भाउ पवै तितु आइ। धुरि तै छोडी कीमति पाइ ॥२॥
जिनि किछु कीआ सो किछु करै। अपनी कीमति आपे धरै ॥
गुरमुखि परगटु होआ हरि राइ। ना को आवै ना को जाइ ॥३॥
लोकु धिकारु कहै मंगत जन मागत मानु न पाइआ।
सह कीआ गला दर कीआ बाता तै ता कहणु कहाइआ ॥४॥८॥

तुम्हारा नाम मानना तुममें विनम्र होना है। सत्य की भेंट देनी होती है जिससे बैठने का स्थान मिलता है। (यदि) सत्य और सन्तोष की प्रार्थना की जाय (तो) उसे सुन कर (परमात्मा) तुरन्त (अपने) पास बैठा लेता है ॥ १ ॥

हे नानक, वह सच्चा (परमात्मा) ऐसा है और उसका दरबार ऐसा है कि वहाँ कोई प्राणी व्यर्थ नहीं किया जाता। (परमात्मा के दरबार में प्रत्येक जीव की थोड़ी से थोड़ी कमाई की गणना की जाती है और उसका उसे पुरस्कार मिलता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(परमात्मा के यहाँ) कृपा और दान का भण्डार प्राप्त होता है। मुझ याचक के मन में यही उमंग है कि तू यह दान (मुझे) दे। हृदय रूपी पात्र में प्रेम (परमात्मा ही) आ पड़ता है। यह कीमत तू ने धुर (परमात्मा) से ही पाई है ॥ २ ॥

जिस (प्रभु ने सब) कुछ किया है, वही (सब) कुछ करता भी है। वह अपनी कीमत आप ही जानता है, (दूसरा कोई भी उसकी कीमत नहीं जान सकता)। गुरु की शिक्षा द्वारा राजा हरी हृदय में प्रकट हुआ है। (वह निश्चल है) न तो कहीं आता है और न कहीं जाता है ॥ ३ ॥

लोग याचना (मंगता) को धिक्कारते हैं और कहते हैं कि याचक-जनों को कभी मान नहीं मिला करता। पर मैं कहता हूँ कि (ये पारमार्थिक बातें) तू ने आप ही मुझसे कहलाया है, (अतएव मैं धिक्कार का पात्र नहीं हो सकता हूँ) ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

सागर महि बूंद बूंद महि सागरु कवणु बुझै बिधि जाणै ।
उतभुज चलत आपि करि चीनै आपे ततु पछाणै ॥१॥
ऐसा गिआनु बीचारै कोई । तिस ते मुकति परमगति होई ॥१॥रहाउ॥
दिन महि रैणि रैणि महि दिनीअरु उसन सीत बिधि सोई ।
ता की गति मिति अवरु न जाणै गुर बिनु समझ न होई ॥२॥
पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बूझहु ब्रहम गिआनी ।
धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहाणी ॥३॥
मन महि जोति जोति महि मनूआ पंच मिले गुर भाई ।
नानक तिन कै सदि बलिहारी जिन एक सबदि लिव लाई ॥४॥९॥

जो जीवन की युक्ति को जानता हो वही इस (परम रहस्य को समझ सकता है कि) समुद्र में बूंद है और बूंद में समुद्र है, (अर्थात्) (परमात्मा में जीवात्मा है और जीवात्मा में परमात्मा है)। उद्भिज तथा जंगम (चलते हुए) की रचना आप ही करके आप ही (उन्हें) पहचानता है तथा आप ही (उनका) भेद समझता है ॥ १ ॥

(जब) कोई इस प्रकार का ज्ञान विचार करता है (तभी) उस (ज्ञान) से मुक्ति-परम गति (प्राप्त) होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

दिन में रात और रात में सूर्य इसी प्रकार उष्णता में शीत (और शीत में उष्णता व्याप्त है)। (उस प्रभु की) गति-मिति अन्य कोई नहीं समझ पाता। गुरु के बिना इसकी समझ नहीं हो सकती ॥ २ ॥

पुरुष (के बीज से) नारी और नारी (के रज एवं उदर से) पुरुष (उत्पन्न होते हैं)। हे ब्रह्मज्ञानी (परमात्मा के इस विचित्र रहस्य को) समझने की (चेष्टा) करो। गुरु-शब्द की ऐसी अकथनीय कहानी है कि शब्द की ध्वनि उठते ही ध्यान लग जाता है और ध्यान लगते ही (परमात्मा का) ज्ञान हो जाता है। (तात्पर्य यह है कि अन्य साधना में शब्दोच्चारण, ध्यान और ज्ञान की तीन पृथक्-पृथक् अवस्थाएं हैं, जो बड़े परिश्रम से प्राप्त होती हैं। पर गुरु-शब्द की कमाई से तीनों अवस्थाएं एक साथ मिल जाती हैं) ॥ ३ ॥

मन में (परमात्मा की) ज्योति है और (परमात्मा की) ज्योति में मन है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर (एकाग्रता प्राप्त कर) गुरु भाई के सदृश (मित्रवत्) हो गई हैं। हे नानक

(मैं) उन पर सदैव बलिहारी होता हूँ जिन्होंने एक शब्द—नाम में (अपना) एकनिष्ठ ध्यान (चित्त) लगाया है॥८॥९॥

[१०]

जा हरि प्रभि किरपाधारी। ता हउमै विचहु मारी॥
सो सेवकि राम पिआरी। जो गुरसबदी बीचारी॥१॥
सो हरि जनु हरि प्रभ भावै॥
अहिनिसि भगति करे दिनु राती लाज छोडि हरि के गुण गावै॥१॥रहाउ॥
धुनि वाजे अनहद घोरा। मनु मानिआ हरि रसि मोरा॥
गुर पूरै सचु समाइआ। गुरु आदि पुरखु हरि पाइआ॥२॥
सभि नाद बेद गुरबाणी। मनु राता सारिगपाणी॥
तह तीरथ वरत तप सारे। गुर मिलिआ हरि निसतारे॥३॥
जह आपु गइआ भउ भागा। गुर चरणी सेवकु लागा॥
गुरि सतिगुरि भरमु चुकाइआ। कहु नानक सबदि मिलाइआ॥४॥१ ॥

जब प्रभु हरी ने कृपा कर दी है, तो भीतर से अहंकार को मार दिया है। वही सेविका राम को अच्छी प्यारी है, जिसने गुरु के शब्द पर (भलीभाँति) विचार किया है॥१॥

वही हरि भक्त प्रभु हरी को अच्छा लगता है, जो अहर्निश दिन-रात (प्रभु की) भक्ति करता है और लज्जा त्याग कर हरि का गुणगान करता है॥१॥ रहाउ॥

अनाहत की घनघोर ध्वनि बजने लगी। हरि-रस में मेरा मन मान गया (शान्त हो गया)। पूर्ण गुरु द्वारा (मेरे अन्तर्गत) सत्य (परमात्मा) समा गया (व्याप्त हो गया)। गुरु द्वारा आदि पुरुष हरी को पा लिया॥२॥

गुरुवाणी ही नाद है और गुरुवाणी ही वेद है। (मेरा) मन चक्रपाणि (शारङ्ग पाणि) में अनुरक्त हो गया है। (उसी हरी में) समस्त तीर्थ, व्रत और तप है। गुरु के मिलने पर हरि (मिला) और (उसने) निस्तार कर दिया॥३॥

जहाँ आपापन नष्ट हो गया (वहीं) भय दूर हो गया। सेवक गुरु के चरणों में लग गया। सद्गुरु ने भ्रम दूर कर दिया। नानक कहता है (कि गुरु ने निश्चय को शब्द से) मिला दिया॥४॥१ ॥

[११]

छादनु भोजनु मागतु भागै। खुधिआ दुसट जलै दुखु आगै॥
गुरमति नही लीनी दुरमति पति खोई। गुरमति भगति पावै जनु कोई॥१॥
जोगी जुगति सहज घरि वासै।
एक द्रिसटि एको करि देखिआ भीखिआ भाइ सबदि त्रिपतासै॥१॥रहाउ॥

पंच बैल गडीआ देह धारी रामकला निबहै पति सारी ॥
धर तूटी गाडो सिर भारि । लकरी बिखरि जरी मंझ भारि ॥२॥

गुर का सबदु वीचारि जोगी । दुखु सुखु सम करणा सोग बिओगी ॥
भुगति नामु गुर सबदि बीचारी । असथिरु कंधु जपै निरंकारी ॥३॥
सहज जगोटा बंधन ते छूटा । कामु क्रोधु गुर सबदी लूटा ॥
मन महि मुंद्रा हरि गुर सरणा । नानक राम भगति जन तरणा ॥४॥११॥

(योगी) भोजन और वस्त्र के लिए मांगता फिरता है। (वह यहाँ) दुःख भूख में जलता रहता है और भविष्य में (जन्म-मरण के) दुःख के रूप में जलता है। (उस अभागे ने) गुरु की शिक्षा नहीं ग्रहण की (और अपनी) दुर्बुद्धि द्वारा प्रतिष्ठा गंवा दी। कोई (विरला ही) व्यक्ति गुरु की बुद्धि द्वारा भक्ति प्राप्त करता है ॥ १ ॥

(सच्चे) योगी की युक्ति यह है कि वह सहजावस्था के गृह में निवास करता है। वह एक दृष्टि से एक (परमात्मा) को सभी में देखता है उसकी भिक्षा (यह) है (कि) वह प्रेम से शब्द (नाम) द्वारा तृप्त होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पंच ज्ञानेन्द्रियाँ बस (होकर) (इस) शरीर (रूपी) गाड़ी को चलाती हैं। राम की शक्ति से सारी प्रतिष्ठा का निर्वाह होता जाता है। जब (नाम रूपी) गाड़ी का धुरा टूट जाता है, (तो शरीर रूपी) गाड़ी सिर के बल गिर जाती है और गाड़ी की सारी लकड़ियाँ अपने भार से बिखर कर जल जाती हैं ॥ २ ॥

हे योगी गुरु के शब्द पर विचार करो। दुःख सुख शोक और वियोग को एक समान समझो। (योगियों का) भोजन नाम हो जो गुरु के शब्द के विचार द्वारा (प्राप्त हुआ हो)। (योगी) स्थिर शरीर से निरंकारी परमात्मा का जप करे (इससे जीवन स्थिर हो जायगा) ॥ ३ ॥

(ऐ योगी) सहजावस्था का लंगोटा (बाँध) (जिससे तू सांसारिक) बंधनों से छूट जाय। गुरु के शब्द द्वारा काम क्रोध को लूटा दे (समाप्त कर दे)। गुरु की शरण में हो कर हरी को मन में बसाना (यही तेरी) मुद्रा हो। हे नानक राम की भक्ति से ही भक्तजन तरते हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥

ੴ सतिगुर प्रसादि ॥ रामकली, महला १

असटपदीआ   [१]

सोई चंदु चड़हि से तारे सोई दिनीअरु तपत रहै ।
सा धरती सो पउणु झुलारे जुग जीअ खेले थाव कैसे ॥१॥
जीवन तलब निवारि ।
होवै परवाणा करहि धिङाणा कलि लखण वीचारि ॥१॥रहाउ॥
किते देसि न आइआ सुणीऐ तीरथ पासि न बैठा ।
दाता दानु करे तह नाही महल उसारि न बैठा ॥२॥

जिसे सरदारी मिली होती है, उसी की अप्रतिष्ठा (बेइज्जती) होती है (भला) नौकरों को किसका डर है ? जब भी सरदारों (के पैरों में) जंजीरें पड़ती हैं तो (वे) नौकरों के ही हाथ मरते हैं (तात्पर्य यह है कि नौकर कृतज्ञता के स्थान पर कृतघ्नता करते हैं और स्वामियों को टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं) ॥ ४ ॥

(हरी का) गुण गान करो (क्योंकि) कलियुग आया है। पहिले तीनों युगों का न्याय अब नष्ट हो गया है, यदि (तू अपने) गुणों को दे (तो उसके बदले में नाम को) पावे (और नाम ही इस युग का प्रमुख सार है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

इस कलह (दुःख वास) कलियुग में फैसला शर्रा (मुसलमानों की धार्मिक पुस्तक) करती है (और नीला वस्त्र पहन कर) काजी ही कृष्ण बना हुआ है। आजकल की वाणी क्या है ? ब्रह्मा का अथर्वण वेद। किन्तु अमल में क्या आ रहा है ? हरि की कीर्ति (यश) ॥५॥

बिना प्रतीति के पूजा किस काम की ? बिना सत्य के संयम किस काम का ? और बिना पवित्रता के जनेऊ किस काम का ? नहाते हो धोते हो, तिलक लगाते हो किन्तु (आन्तरिक) पवित्रता के बिना पवित्रता कैसे आ सकती है ? ॥ ६ ॥

कलियुग में कुरान ही प्रामाणिक ग्रंथ है। पोथी पंडित और पुराण दूर हो गए हैं (नहीं माने जाते)। हे नानक (इस युग में परमात्मा का नाम भी) 'रहमान' पड़ गया है। (हे भाई) तू उस कर्ता को (सभी समय) एक करके समझ ॥ ७ ॥

हे नानक नाम से ही बड़ाई प्राप्त होती है इससे बढ़ कर कोई भी कर्म नहीं है। यदि (कोई वस्तु) घर में होते हुए (बाहर) माँगने जाइए तो फिर वहाँ उलाहना ही मिलता है, (तात्पर्य यह कि परमात्मा तेरे भीतर ही है तू बाहर क्या भटकता फिरता है) ? ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

जगु परबोधहि मड़ी बधावहि । आसणु तिआगि काहे सचु पावहि ॥
ममता मोहु कामणि हितकारी । ना अउधूती ना संसारी ॥१॥
जोगी बैसि रहहु दुबिधा दुखु भागै । घरि घरि मागत लाज न लागै ॥१॥रहाउ॥
गावहि गीत न चीनहि आपु । किउ लागी निवरै परतापु ॥
गुर कै सबदि रचै मन भाइ । भिखिआ सहज वीचारी खाइ ॥२॥
भसम चड़ाइ करहि पाखंडु । माइआ मोहि सहहि जम डंडु ॥
फूटै खापरु भीख न भाइ । बंधनि बाधिआ आवै जाइ ॥३॥
बिंदु न राखहि जती कहावहि । माई मागत त्रै लोभावहि ॥
निरदइआ नही जोति उजाला । बूडत बूडे सरब जंजाला ॥४॥
भेख करहि खिंथा बहु थटूआ । झूठो खेलु खेलै बहु नटूआ ॥
अंतरि अगनि चिंता बहु जारे । विणु करमा कैसे उतरसि पारे ॥५॥
मुंद्रा फटक बनाई कानि । मुकति नही बिदिआ बिगिआनि ॥
जिहवा इंद्री सादि लोभाना । पसू भए नही मिटै नीसाना ॥६॥

त्रिबिधि लोगा त्रिबिधि जोगा । सबदु वीचारै चूकसि सोगा ॥
ऊजलु साचु सु सबदु होइ । जोगी जुगति वीचारे सोइ ॥७॥
तुझ पहि नउनिधि तू करणै जोगु । थापि उथापे करे सु होगु ॥
जत सत संजमु सचु सु चीतु । नानक जोगी त्रिभवण मीतु ॥८॥२॥

(हे योगी) तू जगत् को तो उपदेश देता है, किन्तु (अपनी पेट-पूजा के निमित्त) मठ बनाता है। (स्वयं तो) एकाग्रता के आसन को त्याग बैठा है, भला सत्य कैसे पा सकता है ? तू ममता, मोह और स्त्री का प्रेमी है। तू न तो त्यागी है और न संसारी ही है, (संशय के झूले में झूल रहा है। इस लोक को तो नष्ट ही कर चुका है परलोक भी नष्ट कर रहा है) ॥ १ ॥

हे योगी (अपने स्वरूप में) स्थिर हो जाओ (जिससे तेरे) द्वन्द्वात्मक घोर दुःख दूर हो जायँ। (हे योगी), तुझे घर घर में माँगते हुए लज्जा नहीं लगती ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू अलख निरंजन का) गीत तो गाता है किन्तु अपने (वास्तविक) स्वरूप को नहीं पहचानता। तेरा लगा हुआ परिताप (दुःख) किस प्रकार दूर हो ? (हे योगी) गुरु के शब्द में (अपने मन को प्रेम से अनुरक्त कर (साथ ही) सहजावस्था की भिक्षा विचारपूर्वक ला ॥ २ ॥

(तू) भस्म (विभूति) लगा कर पाखण्ड करता है, माया और मोह में पड़ कर यमराज के डंडे सहता है। (तेरा हृदय क्यों) खप्पर फूट गया ? (जिससे) भाव रूपी भिक्षा (उसमें) नहीं आती। (तू) (माया के) बंधनों में बाँधा जा कर (इस संसार-चक्र में) आता-जाता रहता है ॥ ३ ॥

(तू) वीर्य की तो रक्षा नहीं करता, (फिर भी) यती कहलाता है। तीनों गुणों में मुग्ध होकर माया माँगता है। (तू) दया रहित है (अतएव परमात्मा की) ज्योति का प्रकाश (तेरे अन्तःकरण में नहीं होता)। (तू) नाना प्रकार के (सांसारिक) जंजालों में डूबा हुआ है ॥ ४ ॥

(तू नाना प्रकार के) वेश बनाता है, और बहुत प्रकार के रूप सजाता है। मदारी की भाँति अनेक प्रकार के झूठे खेलों को खेलता है। (तेरे) हृदय में चिन्ता की अग्नि बड़े वेग से प्रज्वलित हो रही है। बिना (शुभ) कर्मों के (संसार-सागर से) (तू) कैसे पार उतर सकता है ? ॥ ५ ॥

कानों में स्फटिक (बिल्लौर) की मुद्रा पहनता है। (हे योगी तू मन में समझ ले कि) विद्या और ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं (प्राप्त हो सकती)। (तू) जीभ तथा (अन्य) इन्द्रियों के स्वाद में मुग्ध हुआ है। (इस कारण तू) पशु हो गया है (और भाव तक भी इसका) चिह्न नहीं मिट रहा है ॥ ६ ॥

(सांसारिक) लोगों की भाँति योगीजन भी त्रिगुणात्मक माया में पड़ रहे हैं। (जो योगी गुरु के) शब्द को विचारता है (उसी का) शोक दूर होता है (क्योंकि) वह शब्द उज्ज्वल (पवित्र) और सच्चा होता है। ऐसा ही योगी योग की (वास्तविक) युक्ति पहचानता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), तेरे ही पास नौ निधियाँ हैं—[नवनिधियाँ निम्नलिखित हैं—१ पद्म (सोना चाँदी) २ महा पद्म (हीरे-जवाहर) ३ शंख (सुन्दर सुन्दर भोजन और वस्त्र) ४ मकर (शस्त्रविद्या की प्राप्ति और राज-दरबार में सम्मान) ५ कच्छप (कपड़े और अन्न की सौदागरी) ६ कुन्द (सोने का व्यापार) ७ नील (मोती मूँगे का व्यापार) ८ मुकुंद (राग आदि ललित कलाओं की प्राप्ति) ९ खर्व ।] तू ही आराधना करने योग्य है । (तू ही) निर्माण करता है (और फिर) ढाहता है (नष्ट करता है), और जो करता है, वही होता है । हे नानक, (जिस योगी में) यत, सत, संयम सत्य और सुन्दर चित्त है वह योगी तीनों लोकों का मित्र है ॥८॥ २॥

[३]

छटु मटु देही मनु बैरागी । सुरति सबदु धुनि अंतरि जागी ।
वाजै अनहदु मेरा मनु लीणा । गुरबचनी सचि नामि पतीणा ॥१॥

प्राणी राम भगति सुखु पाईऐ ।
गुरमुखि हरि हरि मीठा लागै हरि हरि नामि समाईऐ ॥१॥रहाउ॥

माइआ मोहु बिवरजि समाए । सतिगुरु भेटै मेलि मिलाए ॥
नामु रतनु निरमोलकु हीरा । तितु राता मेरा मनु धीरा ॥२॥

हउमै ममता रोगु न लागै । राम भगति जम का भउ भागै ।
जमु जंदारु न लागै मोहि । निरमल नामु रिदै हरि सोहि ॥३॥

सबदु बीचारि भए निरंकारी । गुरमति जागे दुरमति परहारी ॥
अनदिनु जागि रहे लिव लाई । जीवन मुकति गति अंतरि पाई ॥४॥

अलिपत गुफा महि रहहि निरारे । तसकर पंच सबदि संघारे ॥
परघर जाइ न मनु डोलाए । सहज निरंतरि रहउ समाए ॥५॥

गुरमुखि जागि रहे अउधूता । सद बैरागी ततु परोता ॥
जगु सूता मरि आवै जाइ । बिनु गुर सबद न सोझी पाइ ॥६॥

अनहद सबदु वजै दिनु राती । अविगत की गति गुरमुखि जाती ॥
तउ जानी जा सबदि पछानी । एको रवि रहिआ निरबानी ॥७॥

सुंन समाधि सहजि मनु राता । तजि हउ लोभा एको जाता ।
गुर चेले अपना मनु मानिआ । नानक दूजा मेटि समानिआ ॥ ८ ॥३॥

षट्-चक्रों वाला देह रूपी मठ है, (उसमें रहनेवाला) वैराग्यवान् मन है उसके अन्तर्गत अनहद शब्दवाला शब्द गूँज रहा है। वही सुरति की उठती ध्वनि (समझो)। अनाहत स्वर बज रहा है मेरा मन उसमें लीन हो गया है। गुरु के उपदेश से (मेरा मन) सच्चे नाम में मान गया।

विशेष [योग के अनुसार शरीर में छः चक्र माने जाते हैं—जिन्हें प्राण लाँघ कर दशम द्वार तक पहुँचती है। छः चक्र निम्नलिखित हैं—१ मूलाधार (गुदा-लिंग का चक्र)

२ स्वाधिष्ठान (लिङ्ग के मूल में स्थित) ३ मणिपूर (नाभि-प्रदेश में स्थित) ४ अनाहत (हृदय में स्थित) ५ विशुद्ध (कण्ठ में स्थित) ६ आज्ञा चक्र (दोनों भौंहों के मध्य में स्थित)] ॥ १ ॥

हे प्राणी, राम की भक्ति द्वारा सुख प्राप्त कर। गुरु की शिक्षा द्वारा तुझे 'हरि हरि' (का उच्चारण करना) मीठा लगने लगे और तू हरि नाम में ही समा जा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया और मोह का नाश कर (मेरा मन हरी में) समाहित हो गया है। सद्गुरु के मिलने पर ही (वही परमात्मा से) मिलाप कराता है। नामरूपी अमूल्य हीरे में मेरा (मन) अनुरक्त हो गया है और उसी में बिंध गया है ॥ २ ॥

राम की भक्ति से अहंकार और ममता का रोग नहीं ममता और यम का भय भी भग जाता है। मुझे जालिम यमराज भी नहीं लगता (क्योंकि) हरि का निर्मल नाम (मेरे) हृदय में सुशोभित है ॥ ३ ॥

गुरु के शब्द पर विचार करके (मैं) निरंकार (हरी का) हो गया हूँ। दुर्बुद्धि का परित्याग करके गुरु की बुद्धि में जग गया हूँ। (मैं) अहर्निश (सदैव) परमात्मा का एकनिष्ठ ध्यान लगा कर जग गया हूँ। (मैंने) जीवन्मुक्ति अवस्था को (अपने) अन्तःकरण में ही पा ली है ॥ ४ ॥

(मैं) (शरीर की) निर्लिप्त गुफा में निराले भाव से रहता हूँ। (गुरु के) शब्द द्वारा पंच कामादिक चोरों का संहार कर दिया है। दूसरों के घरों में (विषयों में) जा कर मन नहीं डगमगाता है (विचलित करता है)। मैं सहज ही सहजावस्था—तुरीयावस्था—अनूप पद में समाया रहता हूँ ॥ ५ ॥

(जो) गुरु की शिक्षा द्वारा अनासक्त (त्यागी) बन कर जगता है (ऐसे साधक) सत्य को अपने अन्तःकरण धारण करके सदैव विरागी (बने रहते) हैं। (सारा) जगत् (अज्ञान-निद्रा में) सोया हुआ है और मर मर कर आता जाता रहता है बिना गुरु के शब्द के उसे ज्ञान नहीं होता ॥ ६ ॥

अनाहद शब्द (वाद्य-वादन का संगीत जो बिना बजाए ही बजता रहता है) दिन रात बजता रहता है। अलक्ष्य (हरी) की गति गुरु की शिक्षा द्वारा जान ली गई। जब गुरु का शब्द पहचाना जाता है तभी (अलक्ष्य हरी की गति) जानी जाती है। (बोध हो जाने पर यह अनुभव होता है कि) एक मात्र निर्लेप (हरी) (सर्वत्र) रम रहा है ॥ ७ ॥

शून्य-समाधि (निर्विकल्प समाधि—अमूर्त समाधि) में सहज भाव से ही मेरा मन लग गया है। अहंकार और लोभ का त्याग कर एक (हरी) को जान लिया है। अपना मन गुरु का बना (हो गया) और मान गया है। हे नानक, वह द्वैतभाव को मेट कर (गुरु परमात्मा में) समाहित हो गया है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

कहा गावहि न करहि बीचारु। जाके ऊपरि एककारु ॥
बिनु गुर किनै कोई बिधि जानी। गुरमुखि होइ त हुकमु पछानै ॥१॥
कछु न बोलि काहो कछु कहीऐ। हउमै मारि भगति पद लहीऐ ॥१॥रहाउ॥

(गुरु-भक्ति को) धारण करने से हृदय के लिए संतोष और सुख (बने रहते हैं)। गुरु की शरण में पड़ने से ही सुख होता है। हम अपराध करते गुरु की शरण में आये हैं। हमने (अपने) पूर्व (जन्मों के शुभ कर्मों की) कमाई से ही गुरु (रूपी) हरि से मिलाप किया है ।।५।।

गुरु की शरण में आए बिना शान्ति की प्राप्ति नहीं होती। (परिणाम यह होता है कि संसार-चक्र में) भ्रमित होकर भटकना पड़ता है (और बार बार) जन्म मरण के थपेड़े खाना पड़ता है। हृदय में नाम और शब्द की ध्वनि न होने के कारण यमराज के दरवाज़े पर बँध कर विकारों में मरना पड़ता है ।।६।।

कुछ लोग 'पाँडे' (पुरोहित) 'पंडित' और मिश्र कहलाते हैं। (किन्तु वे सब) द्वैतभाव में लगे हैं। जिससे (परमात्मा का) महल नहीं पाते। गुरु की कृपा से जिसका आधार हरि-नाम हो गया है, करोड़ों में कोई विरला ही ऐसा सन्तोषी पुरुष है ।।७।।

(यह) (एक परमात्मा ही) निश्चयपूर्वक (सत्य है) सारा बुरा और भला हो रहा है। हे ज्ञानी (इस गुप्त रहस्य को) सद्गुरु के आसरे समझ। किसी विरले ही (साधक ने) गुरु के उपदेश द्वारा एक (परमात्मा को) जाना है। (वे अपने इस ज्ञान के फलस्वरूप) जन्म-मरण समाप्त कर उसमें समा गए हैं ।।८।।

जिनके हृदय में एकंकार (अद्वैत प्रभु का) निवास है वे समस्त गुण वाले हैं और उनका विचार सच्चा है। (वे लोग इस संसार में लोक कल्याणार्थ) गुरु के आदेशानुसार कर्म करते हैं। हे नानक (अन्त में), (वे) सच्चे (पुरुष) सत्य (परमात्मा) में समाहित हो जाते हैं ।।९।।७।।

[५]

हठु निग्रहु करि काइआ छीजै । वरतु तपनु करि मनु नहि भीजै ।।
राम नाम सरि अवरु न पूजै ।।१।।

गुरु सेवि मना हरि जन संगु कीजै ।
जमु जंदारु जोहि नही साकै सरपनि डसि न सकै हरि का रसु पीजै ।।१।।रहाउ।।

बादु पड़ै रागी जगु भीजै । त्रैगुण बिखिया जनमि मरीजै ।।
राम नाम बिनु दूखु सहीजै ।।२।।

चाड़सि पवनु सिंघासनु भीजै । निउली करम खटु करम करीजै ।।
राम नाम बिनु बिरथा सासु लीजै ।।३।।

अंतरि पंच अगनि किउ धीरजु धीजै । अंतरि चोरु किउ सादु लहीजै ।।
गुरमुखि होइ काइआ गड़ु लीजै ।।४।।

अंतरि मैलु तीरथ भरमीजै । मनु नही सूचा किआ सोच करीजै ।
किरतु पइआ दोसु का कउ दीजै ।।५।।

अंनु न खाहि देही दुखु दीजै । बिनु गुर गिआन त्रिपति नही थीजै ।।
मनमुखि जनमै जनमि मरीजै ।।६।।

सतिगुरि बुधि समति मन कीजै । मनु हरि राचै नही जनमि मरीजै ॥
राम नाम बिनु किआ करमु कीजै ॥७॥

अंतर दूबर पासि परीजै । गुर की सेवा साधु रवीजै ।
नानक नामु मिलै किरपा प्रभ कीजै ॥८॥५॥

हठयोग (आदि की क्रियाओं के) निग्रह करने से, काया छीजती है (कमजोर होती है) । (अनेक प्रकार के) व्रत एवं तप करने से मन रसाई नही होता (अर्थात् परमात्मा के प्रेम में भीजता नही) । राम नाम के समान अन्य (कोई साधन) समता नहीं कर सकता ॥१॥

हे मन गुरु की सेवा कर तथा हरि के भक्तों का संग कर । (इसका फल यह होगा कि तुझे) बलिष्ठ यमराज देख नहीं सकेगा (तात्पर्य यह कि दुःख न दे सकेगा) (माया रूपी) सर्पिणी भी (तुम्हें) न डस सकेगी (अतएव) हरि का (अमृत) रस पी ॥१॥ रहाउ॥

(हे योगी तू) विवादों में पड़ता है सांसारिक रागों आदि के द्वारा (मन को) खुश करना चाहता है । त्रिगुणात्मक (माया के) विषयों में पड़ कर (तू) जन्मता और मरता रहता है । (इस प्रकार) बिना राम नाम के (अनेक) दुःखों को सहता है ॥२॥

(हे योगी तू) वायु को दशम द्वार में चढ़ाता है और उसका स्वाद लेता है नेवली आदि षट्-कर्मों को करता है । परन्तु राम नाम के बिना (तू) व्यर्थ ही सांसें ले रहा है ॥

[विशेष—हठयोग के षट् कर्म निम्नलिखित हैं— १ धोती (कपड़े की पट्टी निगल कर भीतरी सफाई करके बाहर निकाल देना) २ नेती (नासिका रन्ध्र से सूत डाल कर मुँह से निकाल कर सफाई करना) ३ नेवली (पेट को चारों ओर घुमा कर अंतड़ियों की सफाई करना) ४ बस्ती (बाँस की नली गुदा द्वार में डाल कर श्वास द्वारा उससे पेट में पानी खींच लेना, पेट की सफाई करके फिर उसी नली से पानी को निकाल देना), ५ त्राटक (आँखों को किसी नियत केन्द्र-बिन्दु पर स्थिर कर एक दृष्टि से उसे देखना) तथा ६ कपाल भाति (लुहार की भट्ठी के समान श्वासों का भीतर ले जाना और बाहर निकालना, जिससे नाड़ियों की शुद्धि हो) ।] ॥३॥

(हे योगी) (तेरे) अन्तर्गत पंच (कामादिकों की) अग्नियाँ जल रही हैं (भला तू) कैसे धैर्य धारण करेगा ? (तेरे) अन्तर्गत (कामादिक) चोर (छिपे) हैं, (भला परमात्मा के अमृत रस का) कैसे स्वाद ले सकेगा ? (तू) गुरु के द्वारा शिक्षित होकर काया रूपी गढ़ को जीत ॥ ४ ॥

(यदि) अन्तःकरण में मल है (पर) तीर्थ भ्रमण करते हो (तो इसमें कोई लाभ नहीं होता) । (यदि) मन ही पवित्र नहीं है (तो) (स्नानादिक) पवित्रता क्या करते हो ? (यह तेरे पूर्व जन्म के किए कर्मों का) संस्कार (किरत) है (भला इसके लिये) दोष किसे दिया जाय ? ॥ ५ ॥

(हे योगी तू) अन्न नहीं खाता और शरीर को कष्ट देता है । (किन्तु यह समझ लो कि शरीर को कष्ट देने से कोई भी लाभ नहीं है) बिना गुरु के न तो ज्ञान होता है और न तृप्ति (ही होती है) । मनमुख जन्मता है और जन्म कर (फिर) मरता है ॥ ६ ॥

(हे योगी तू) सद्गुरु से पूछ कर (हरि के) भक्तों की संगति कर (जिससे तेरा)

मन हरि में अनुरक्त हो, (अन्यथा) जन्मता मरता रहेगा। राम नाम के बिना तू कर्मों को क्या करता है ? (बिना राम नाम के ये समस्त कर्म बन्धनप्रद ही होते हैं मुक्तिप्रद नहीं हैं) ॥ ७ ॥

चूहे की भाँति (भीतर ही भीतर) शोर मचानेवाले (मन के संकल्पों-विकल्पों को) दूर कर दो (ताकि मन स्थिर होकर) अपनी (परमात्मा द्वारा) (दिखाई हुई) सेवा में अर्थात् राम नाम (के स्मरण में) रम सके। नानक (कहता है कि) हे प्रभु कृपा करो, जिससे नाम प्राप्त हो।

[विशेष ऊँदर—चूहा। दूँद—शोर द्वन्द्व] ॥ ८ ॥ ५ ॥

[६]

अंतरि उतभुजु अवरु न कोई। जो कहीऐ सो प्रभ ते होई ॥
जुगह जुगंतरि साहिबु सचु सोई। उतपति परलउ अवरु न कोई ॥१॥
ऐसा मेरा ठाकुरु गहिर गंभीरु।
जिनि जपिआ तिन ही सुखु पाइआ हरि कै नामि न लगै जम तीरु ॥१॥ रहाउ ॥
नामु रतनु हीरा निरमोलु। साचा साहिबु अमरु अतोलु ॥
जिहवा सूची साचा बोलु। घरि दरि साचा नाही रोलु ॥२॥
इकि बन महि बैसहि डूगरि असथानु। नामु बिसारि पचहि अभिमानु ॥
नाम बिना किआ गिआन धिआनु। गुरमुखि पावहि दरगहि मानु ॥३॥
हठु अहंकारु करै नही पावै। पाठ पड़ै ले लोक सुणावै ॥
तीरथि भरमसि बिआधि न जावै। नाम बिना कैसे सुखु पावै ॥४॥
जतन करै बिंदु किवै न रहाई। मनूआ डोलै नरके पाई।
जमपुरि बाधो लहै सजाई। बिनु नावै जीउ जलि बलि जाई ॥५॥
सिध साधिक केते मुनि देवा। हठि निग्रहि न त्रिपतावहि भेवा।
सबदु वीचारि गहहि गुर सेवा। मनि तनि निरमल अभिमान अभेवा। ६॥
करमि मिलै पावै सचु नाउ। तुम सरणागति रहउ सुभाउ।
तुम ते उपजिओ भगती भाउ। जपु जापउ गुरमुखि हरि नाउ ॥७॥
हउमै गरबु जाइ मन भीनै। झूठि न पावसि पाखंडि कीनै।
बिनु गुर सबद नही घरु बारु। नानक गुरमुखि ततु बीचारु ॥८॥६॥

(सृष्टि की चारों खानियों)—उद्भिज अंडज, जेरज सेतज—की (उत्पत्ति) (उस हरी के) अन्तर्गत ही है अन्य कोई (रचयिता अथवा सृष्टिकर्ता) नहीं है। जिस (वस्तु) को कहो (नाम लो) वह (सब) प्रभु से ही होती है। युग-युगान्तरों से वही सच्चा स्वामी (विद्यमान) है। (उसके अतिरिक्त) अन्य दूसरा कोई (सृष्टि की) उत्पत्ति और प्रलय करनेवाला नहीं है ॥ १ ॥

मेरा ठाकुर (स्वामी प्रभु) बहुत ही गहरा और गंभीर है। जिन्होंने (उस प्रभु को) जपा है उन्होंने सुख पाया है। हरि का नाम (जपने से) यमराज का बाण (तीर) नहीं लगता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नाम रूपी रत्न अमूल्य हीरा है। वह शाश्वत सच्चा, अमर और अतुलनीय है। (उसकी) जिह्वा पवित्र है (जिसे नाम रूपी रत्न प्राप्त हुआ है) (अतएव उस) सच्चे (प्रभु) को बोलो (जपो)। (हृदय रूपी) घर के दरवाजे के बीच सच्चे (परमात्मा का निवास है) (वहाँ किसी प्रकार का) द्वन्द्व—पड़दा नहीं है—(पूर्ण स्थिति है) ॥ २ ॥

कुछ मनुष्य तो वनों (में जा कर तपस्या के निमित्त) बैठ जाते हैं, और (कुछ लोग) पर्वतों (पर जाकर अपना डेरा जमाते हैं)। (किन्तु, वे लोग) नाम को भुला कर (तपस्या के) अभिमान में जलते हैं। नाम के बिना क्या ज्ञान है और क्या ध्यान है? (अर्थात् ज्ञान-ध्यान सभी नाम के बिना व्यर्थ हैं)। गुरु के अनुगामी ही (परमात्मा के) दरबार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ ३ ॥

हठ और अहंकार करने से (परमात्मा की) प्राप्ति नहीं होती। (अहंकार में मनुष्य) पाठ करता है और लोगों को (एकत्र करके) सुनाता है तीर्थों में भ्रमण करता है, (किन्तु, मन की) भ्रान्ति नहीं जाती। (अतः) नाम के बिना (वह कैसे सुख पा सकता है? ॥ ४ ॥

(ब्रह्मचर्य धारण करने का अनेक) यत्न करता है (किन्तु) बोध किसी भी प्रकार नहीं (स्थिर) होता। मन (अनेक रमणियों से रमण करने के लिए) चंचल होता रहता है (और अन्त में) नरक में (जाकर) पड़ता है। वह (अपने किए पापों के कारण) यमपुरी में बाँधा जा कर सजा पाता है। (इस प्रकार) बिना नाम (की प्राप्ति) के जीव जल-जल जाता है ॥ ५ ॥

कितने ही सिद्ध साधक मुनि तथा देवतागण हठ-निग्रह करते हैं (किन्तु वे) लोग (अन्तःकरण के) रहस्य को नहीं बूझ कर सकते। (यदि वे) (गुरु के) शब्द को विचार कर गुरु-सेवा ग्रहण कर लें (तो वे) तन और मन से निर्मल हो जायें और अभिमान-विहीन हो जायें। [अभेवा=अभाव। अभिमान अभेवा" का अभिप्राय 'अभिमानविहीन" है।] ॥ ६ ॥

(यदि परमात्मा की) कृपा हो, (तभी) सच्चे नाम की प्राप्ति होती है। (हे प्रभु), (मैं) सुन्दर (सच्चे) भाव से तेरा शरणागत हूँ। भक्ति और भाव की उत्पत्ति तुम्हीं से होती है। (मैं) गुरु द्वारा हरि नाम का जप करता हूँ ॥ ७ ॥

(परमात्मा के शब्द में) मन के भीजने से ही अहंकार और मल नष्ट होते हैं। छल और बाहरी करने से (परमात्मा की) प्राप्ति नहीं होती। बिना गुरु के शब्द के दरबार (तात्पर्य यह कि परमात्मा का स्थान) नहीं (प्राप्त होता)। हे नानक गुरु द्वारा इस तत्त्व का विचार कर ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

जिउ आइआ तिउ जावहि बउरे जिउ जनमे तिउ मरणु भइआ।
जिउ रस भोग कीए तेता दुखु लागै नामु विसारि भवजलि पइआ ॥१॥
तनु धनु देखत गरबि गइआ।
किरपन कनिक सिउ हेतु वधाइहि की नामु विसारि भरमि गइआ ॥१॥ रहाउ ॥

न (तुझ में) पुण्य है, न दान है, न स्नान (पवित्रता) है और न संयम है। साधु-संगति के बिना (तेरा) जन्म-लेना व्यर्थ हो गया ॥ २ ॥

लालच में पड़कर (तू ने) नाम को भुला दिया और (तेरा) यह जीवन (जन्म) आने जाने में ही चला गया। जब यमराज दौड़कर (तेरा) केश पकड़ कर मारेगे और (जब तू) काल के मुख में पड़ जायगा (तो तुझे प्रायश्चित्त करने की भी) स्मृति नहीं रहेगी ॥ ३ ॥

(तू) अहर्निश दूसरों की निन्दा और ईर्ष्या (आदि) करता है न तो तेरे हृदय में (हरि का नाम) है और न सब (प्राणियों) पर दया ही है। बिना गुरु के शब्द के (तेरी) न गति ही होगी और न (तू) प्रतिष्ठा ही पायेगा राम नाम के बिना (तू निश्चय ही) नरक जायगा ॥ ४ ॥

(तू) किसी नाट्य कलाकार की भांति (लोगों को दिखाने के लिये सच्चरित्रों का) वेष बनाता है (परन्तु तू) मोह और पाप के बीच ही डूबा हुआ है, (बाह्य वेष से कुछ भी नहीं होता है)। (अपनी) माया (धन-दौलत) के इधर उधर के फैलाव को देख कर तू माया के मोह में निमग्न हो गया है ॥ ५ ॥

(तू) बड़े विस्तार से विकार (पाप) करता है और बिना (गुरु के) शब्द की स्मृति से भ्रम में पड़ गया है। (तुझे) अहंकार के रोग का महान् दुःख लग गया है गुरु की शिक्षा लेने से ही यह रोग जायगा ॥ ६ ॥

शाक्त (माया का उपासक) सुख और सम्पत्ति को आते हुए देख कर मन में (बहुत) अभिमान करने लगता है। (जिस प्रभु का) यह तन और धन है (यदि) वह फिर (इन्हें) ले लेता है (तो उसके) अन्तःकरण में संशय और दुःख हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अन्तिम समय में कोई भी (वस्तु) साथ नहीं जायगी जो कुछ भी (वस्तु यहाँ) दिखाई पड़ रही है, सब (उस प्रभु की) माया है, (और माया नश्वर है) वह प्रभु ही (परमात्मा ही) आदि पुरुष और अपरंपार है (जो व्यक्ति उस प्रभु का) नाम (अपने) हृदय में धारण करता है उसका उद्धार हो जाता है (वह पार हो जाता है) ॥ ८ ॥

(तू) मृत (व्यक्ति) के लिए रोता है। (तू जाना यह रोना-धोना) किसे सुनाता है ? (संभव है कि वह मृत व्यक्ति) भयानक संसार-सागर में पड़ा हो। शाक्त (माया का उपासक) कुटुम्ब धन-दौलत पर, अहं (मादि) लग कर प्रपंच के पचड़े (यहाँ का सिफरा तात्पर्य यह कि तुच्छ कर्मों) में पड़ गया है। [विशेष : ममरपिम—तीर तात्पर्य यह कि भयानक] ॥ ९ ॥

(जब मनुष्य इस संसार में) आता है तो उस (हरी का) भेजा हुआ (आता है) और उसके बुलाने से ही (वह इस संसार से) चला जाता है। (प्रभु को) जो कुछ भी करना है कर दिया है क्षमा करनेवाला (परमात्मा) (सदैव ही) क्षमा करता है ॥ १० ॥

हे भाई जिन्होंने राम रसायन चखा है उन्हीं की संगति की खोज कर। गुरु की शरण में आने से ही अष्ट सिद्धियाँ, नव निधियाँ बुद्धि ज्ञान तथा मुक्ति रूपी पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

सच्चे गुरु को (वह हरी) प्राप्त होता है जिसने (सृष्टि) रचना रची है (और जो) (हमारी) (शुभ) करनी को विचार करके विश्वास करता है, (तात्पर्य यह कि हमारी शुभ करनी हो तभी परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न होता है नहीं तो नहीं ॥ ४ ॥

एक (परमात्मा) में सब (जड़ चेतन) हैं, और सभी (जड़-चेतन) में एक (परमात्मा) है—सद्गुरु ने (इस तथ्य को स्वयं) देखा है (और तब दूसरों को) दिखाया है ॥ ५ ॥

जिस प्रभु ने खण्ड मण्डल और ब्रह्माण्डों की रचना की है, वह (इन चर्म चक्षुओं से) नहीं देखा जा सकता ॥ ६ ॥

(गुरु रूपी) दीपक ने (साधकों के हृदय रूपी) दीपक को प्रकाशित किया है (और) तीनों लोकों में (हरी की फैली हुई) ज्योति दिखलाई है ॥ ७ ॥

निर्भय (परमात्मा) सच्चे महल में सच्चे सिंहासन (तख्त) पर ध्यान लगा कर बैठा है ॥ ८ ॥

वैरागी योगी (गुरु) ने हमें मोह लिया है और प्रत्येक घट में किंगरी (छोटी सारंगी) बजा दी है (परमात्मा के आनन्दस्वरूप का परिचय दिया है) ॥ ९ ॥

हे नानक प्रभु की शरण में पड़ने से (हम सांसारिक बन्धनों से) मुक्त हो गए, सद्गुरु ही सच्चा सहायक है ॥ १० ॥ ८ ॥

[९]

अउहठि हसत मड़ी घरु छाइआ धरणि गगन कल धारी ॥१॥
गुरमुखि केती सबदि उधारी संतहु ॥१॥ रहाउ ॥
ममता मारि हउमै सोखै त्रिभवणि जोति तुमारी ॥२॥
मनसा मारि मनै महि राखै सतिगुर सबदि वीचारी ॥३॥
सिंङी सुरति अनाहदि वाजै घटि घटि जोति तुमारी ॥४॥
परपंच बेणु तही मनु राखिआ ब्रहम अगनि परजारी ॥५॥
पंच ततु मिलि अहिनिसि दीपकु निरमल जोति अपारी ॥६॥
रवि ससि लउके इहु तनु किंगुरी वाजै सबदु निरारी ॥७॥
सिव नगरी महि आसणु अउधू अलखु अगमु अपारी ॥८॥
काइआ नगरी इहु मनु राजा पंच वसहि वीचारी ॥९॥
सबदि रवै आसणि घरि राजा अदलु करे गुणकारी ॥१०॥
कालु बिकालु कहे कहि बपुरे जीवत मूआ मनु मारी ॥११॥
ब्रहमा बिसनु महेस इक मूरति आपे करता कारी ॥१२॥
काइआ सोधि तरै भव सागरु आतम ततु वीचारी ॥१३॥
गुर सेवा ते सदा सुखु पाइआ अंतरि सबदु रविआ गुणकारी ॥१४॥
आपे मेलि लए गुणदाता हउमै त्रिसना मारी ॥१५॥
त्रै गुण मेटे चउथै वरतै एहा भगति निरारी ॥१६॥
गुरमुखि जोग सबदि आतमु चीनै हिरदै एकु मुरारी ॥१७॥

(जो) मन को मार कर जीवित ही मर चुका है, (उस व्यक्ति से) बेचारे जीवन और मरण क्या कह सकते हैं ? (अर्थात् जो जीवित अवस्था में ही वासनाओं इच्छाओं और अहंकार को मार चुका है, वह जीवन मरण से मुक्त हो गया है)।

[विशेष : कालु = मरण । बिकालु = काल का उल्टा जन्म । अतः कालु बिकालु = मरण और जीवन] ॥ ११ ॥

ब्रह्मा विष्णु और महेश एक ही मूर्तियाँ हैं। (इन देवों की) रचना प्रभु ने स्वयं ही की है ॥ १२ ॥

(हे योगी, अवधो) काया की शुद्धि करके तथा आत्म-तत्त्व विचार करके, (इस) संसार-सागर से तर जा ॥ १३ ॥

गुरु की सेवा से (मुझे) शाश्वत सुख प्राप्त हुआ है और (मेरे) अन्तःकरण में सुखकारी शब्द रम गया है ॥ १४ ॥

सुखदाता (प्रभु) ने (मेरे) अहंकार और तृष्णा को मार कर (अपने में) मिला लिया है ॥ १५ ॥

तीनों गुणोंवाली अवस्था को मिटा कर (लाँघ कर) चौथी अवस्था—सहजावस्था में रहे, यही निराली भक्ति है ॥ १६ ॥

गुरमुख का योग यह है कि शब्द—नाम के द्वारा (वह) आत्म-तत्त्व को (खोजता है) और (अपने) हृदय में एक मुरारी (परमात्मा) को पहचानता है ॥ १७ ॥

(यदि) मन स्थिर होकर शब्द में अनुरक्त हो जाय (तो) यही श्रेष्ठ कर्म है ॥१८॥

(हे अवधूत) (ऐसा योगी) वेद के वाद विवाद अथवा तर्क-वितर्क तथा पाखण्ड में नहीं पड़ता वह गुरु के उपदेश द्वारा शब्द—नाम का ही विचार करता है ॥ १९ ॥

(हे अवधूत) (ऐसा योगी) गुरु द्वारा योग समझता है गुरु के शब्द पर विचार करता ही (उसका) जप और तप है ॥ २० ॥

(हे अवधूत) (गुरमुख योगी) (वास्तविक) योग की युक्ति विचार कर (गुरु के) शब्द में (अपने अहंभाव से) मर जाता है और (अपने) मन को भी मार देता है ॥ २१ ॥

(हे अवधूत) माया का मोह ही (कठिन) संसार-सागर है (किन्तु गुरु के) शब्द द्वारा (योगी) स्वयं तरता है (और अपने) कुल को भी तार देता है ॥ २२ ॥

(हे अवधूत) शब्द द्वारा ही (वे) चारों युगों में योद्धा हुए हैं और (उन्होंने) भक्ति की वाणी का विचार किया है ॥ २३ ॥

(हे अवधूत) यह मन माया में मोहित हो गया है, शब्द को ही विचार कर (यह अवधूत) निकल सकता है ॥ २४ ॥

नानक (कहता है कि हे प्रभु मैं) तेरी शरण में हूँ (तू) दया ही करता है (और अपने में मिला लेता है) ॥ २५ ॥ ८ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रामकली, महला १, दखणी, ओअंकार ॥

ओअंकारि ब्रहमा उतपति । ओअंकारु कीआ जिनि चिति ॥
ओअंकारि सैल जुग भए । ओअंकारि बेद निरमए ॥

ओअंकारि सबदि उधरे । ओअंकारि गुरमुखि तरे ॥
ओनम अखर सुणहु बीचारु । ओनम अखरु त्रिभवण सारु ॥१॥
सुणि पाडे किआ लिखहु जंजाला ।
लिखु राम नाम गुरमुखि गोपाला ॥१॥ रहाउ ॥
ससै सभु जगु सहजि उपाइआ तीनि भवन इक जोती ।
गुरमुखि वसतु परापति होवै चुणि लै माणक मोती ॥
समझै सूझै पड़ि पड़ि बूझै अंति निरंतरि साचा ।
गुरमुखि देखै साचु समाले बिनु साचे जगु काचा ॥२॥
धधै धरमु धरे धरमापुरि गुणकारी मनु धीरा ।
धधै धूलि पड़ै मुखि मसतकि कंचन भए मनूरा ॥
धनु धरणीधरु आपि अजोनी तोलि बोलि सचु पूरा ।
करते की मिति करता जाणै कै जाणै गुरु सूरा ॥३॥
ङिआनु गवाइआ दूजा भाइआ गरबि गले बिखु खाइआ ।
गुर रसु गीत बाद नही भावै सुणीऐ गहिर गंभीरु गवाइआ ॥
गुरि सचु कहिआ अंम्रितु लहिआ मनि तनि साचु सुखाइआ ।
आपे गुरमुखि आपे देवै आपे अंम्रितु पीआइआ ॥४॥
एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु विआपै ।
अंतरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिञापै ॥
प्रभु नेड़ै हरि दूरि न जाणहु एको स्रिसटि सबाई ।
एकंकारु अवरु नही दूजा नानक एकु समाई ॥५॥
इसु करते कउ किउ गहि राखउ अफरिओ तुलिओ न जाई ।
माइआ के देवाने प्राणी झूठि ठगउरी पाई ।
लबि लोभि मुहताजि विगूते इब तब फिरि पछुताई ।
एकु सरेवै ता गति मिति पावै आवणु जाणु रहाई ॥६॥
एकु अचारु रंगु इकु रूपु । पउण पाणी अगनी असरूपु ॥
एको भवरु भवै तिहु लोइ । एको बूझै सूझै पति होइ ॥
गिआनु धिआनु लै समसरि रहै । गुरमुखि एकु विरला को लहै ॥
जिस नो देइ किरपा ते सुखु पाए । गुरू दुआरै आखि सुणाए ॥७॥
ऊरम धूरम जोति उजाला । तीनि भवण महि गुर गोपाला ॥
ऊगविआ असरूपु दिखावै । करि किरपा अपुनै घरि आवै ॥
ऊनवि बरसै नीझर धारा । ऊतम सबदि सवारणहारा ॥
इसु एके का जाणै भेउ । आपे करता आपे देउ ॥८॥
उगवै सूरु असुर संघारै । ऊचउ देखि सबदि बीचारै ॥
ऊपरि आदि अंति तिहु लोइ । आपे करै कथै सुणै सोइ ॥
ओहु बिधाता मनु तनु देइ । ओहु बिधाता मनि मुखि सोइ ॥
प्रभु जगजीवनु अवरु न कोइ । नानक नामि रते पति होइ ॥९॥

राजन राम रवै हितकारि । रण महि लूझै मनूआ मारि ॥
राति दिनंति रहै रंगि राता । तीनि भवन जुग चारे जाता ॥
जिनि जाता सो तिसही जेहा । अति निरमाइलु सीझसि देहा ॥
रहसी रामु रिदै इक भाइ । अंतरि सबदु साचि लिव लाइ ॥१०॥

रोसु न कीजै अमृतु पीजै रहणु नही संसारे ।
राजे राइ रंक नही रहणा आइ जाइ जुग चारे ॥
रहण कहण ते रहै न कोई किसु पहि करउ बिनंती ।
एकु सबदु रामनाम निरोधरु गुरु देवै पति मती ॥११॥
लाज मरती मरि गई घूघटु खोलि चली ।
सासु दिवानी बावरी सिर ते संक टली ॥
प्रेमि बुलाई रली सिउ मन महि सबदु अनंदु ।
लालि रती लाली भई गुरमुखि भई निचिंदु ॥१२॥
लाहा नामु रतनु जपि सारु । लबु लोभु बुरा अहंकारु ॥
लाड़ी चाड़ी लाइतबारु । मनमुखु अंधा मुगधु गवारु ॥
लाहे कारणि आइआ जगि । होइ मजूरु गइआ ठगाइ ठगि ॥
लाहा नामु पूंजी वेसाहु । नानक सची पति सचा पातिसाहु ॥१३॥
आइ विगूता जगु जम पंथु । आई न मेटणु को समरथु ॥
आथि सैल नीच घरि होइ । आथि देखि निवै जिसु दोइ ॥
आथि होइ ता मुगधु सिआना । भगति बिहूना जगु बउराना ॥
सभ महि वरतै एको सोइ । जिस नो किरपा करे तिसु परगटु होइ ॥ ॥
जुगि जुगि थापि सदा निरवैरु । जनमि मरणि नही धंधा धैरु ॥
जो दीसै सो आपे आपि । आपि उपाइ आपे घट थापि ॥
आपि अगोचरु धंध लोई । जोग जुगति जगजीवनु सोई ॥
करि आचारु सचु सुखु होई । नाम विहूणा मुकति किव होई ॥१५॥
विणु नावै वेरोधु सरीर । किउ न मिलहि काटहि मन पीर ।
वाट बटाऊ आवै जाइ । किआ ले आइआ किआ पलै पाइ ॥
विणु नावै तोटा सभ थाइ । लाहा मिलै जा देइ बुझाइ ॥
वणजु वापारु वणजै वापारी । विणु नावै कैसी पति सारी ॥१६॥
गुण वीचारे गिआनी सोइ । गुण महि गिआनु परापति होइ ॥
गुणदाता विरला संसारि । साची करणी गुर वीचारि ॥
अगम अगोचरु कीमति नही पाइ । ता मिलीऐ जा लए मिलाइ ॥
गुणवंती गुण सारे नीत । नानक गुरमति मिलीऐ मीत ॥१७॥
कामु क्रोधु काइआ कउ गालै । जिउ कंचन सोहागा ढालै ॥
कसि कसवटी सहै सु ताउ । नदरि सराफ वंनीं सचड़ाउ ॥
जगत पसू अहं कालु कसाई । करि करतै करणी करि पाई ॥
जिनि कीती तिनि कीमति पाई । होर किआ कहीऐ किछु कहणु न जाई ॥१८॥

खोजत खोजत अंम्रितु पीआ । खिमा गही मनु सतिगुरि दीआ ॥
खरा खरा आखै सभु कोइ । खरा रतनु जुग चारे होइ ॥
खात पीअत मूए नही जानिआ । खिन महि मूए जा सबदु पछानिआ ॥
असथिरु चीतु मरनि मनु मानिआ । गुर किरपा ते नामु पछानिआ ॥१९॥

गगन गमीरु गगनंतरि वासु । गुण गावै सुख सहजि निवासु ॥
गइआ न आवै आइ न जाइ । गुर परसादि रहै लिव लाइ ॥
गगनु अगमु अनाथु अजोनी । असथिरु चीतु समाधि सगोनी ॥
हरि नामु चेति फिरि पवहि न जूनी । गुरमति सारु होर नाम बिहूनी ॥२०॥

घर दर फिरि थाकी बहुतेरे । जाति असंख अंत नही मेरे ॥
केते मात पिता सुत धीआ । केते गुर चेले फुनि हूआ ॥
काचे गुर ते मुकति न हूआ ॥
केती नारि वरु एकु समालि । गुरमुखि मरणु जीवणु प्रभ नालि ॥
दहदिस ढूढि घरै महि पाइआ । मेलु भइआ सतिगुरू मिलाइआ ॥२१॥

गुरमुखि गावै गुरमुखि बोलै । गुरमुखि तोलि तोलावै तोलै ॥
गुरमुखि आवै जाइ निसंगु । परहरि मैलु जलाइ कलंकु ॥
गुरमुखि नाद बेद बीचारु । गुरमुखि मजनु चजु अचारु ॥
गुरमुखि सबदु अमृतु है सारु । नानक गुरमुखि पावै पारु ॥२२॥

चंचलु चीतु न रहई ठाइ । चोरी मिरगु अंगूरी खाइ ॥
चरन कमल उरधारे चीत । चिरु जीवनु चेतनु नित नीत ॥
चिंतत ही दीसै सभु कोइ । चेतहि एकु तही सुखु होइ ॥
चिति वसै राचै हरि नाइ । मुकति भइआ पति सिउ घरि जाइ ॥२३॥

छीजै देह खुलै इक गंढि । छेआ नित देखहु जगि हंढि ॥
धूप छाव जे सम करि जाणै । बंधन काटि मुकति घरि आणै ॥
छाइआ छूछी जगतु भुलाना । लिखिआ किरतु धुरे परवाना ॥
छीजै जोबनु जरूआ सिरि कालु । काइआ छीजै भई सिबालु ॥२४॥

जापै आपि प्रभु तिहु लोइ । जुगि जुगि दाता अवरु न कोइ ॥
जिउ भावै तिउ राखहि राखु । जसु जाचउ देवै पति साखु ॥
जागतु जागि रहा तुधु भावा । जा तू मेलहि ता तुझै समावा ॥
जै जै कारु जपउ जगदीस । गुरमति मिलीऐ बीस इकीस ॥२५॥

झखि बोलणु किआ जग सिउ वादु । झूरि मरै देखै परमादु ॥
जनमि मूए नही जीवण आसा । आइ चले भए आस निरासा ॥
झुरि झुरि झखि माटी रलि जाइ । कालु न चांपै हरि गुण गाइ ॥
पाई नवनिधि हरि कै नाइ । आपे देवै सहजि सुभाइ ॥२६॥

ञिआनो बोलै आपे बूझै ॥ आपे समझै आपे सूझै ॥
गुर का कहिआ अंकि समावै । निरमल सूचे साचो भावै ॥

गुर सागर रतनी नही तोट । लाल पदारथ साचु अखोट ॥
गुरि कहिआ सा कार कमावहु । गुर की करणी काहे धावहु ॥
नानक गुरमति साचि समावहु ॥ २७ ॥
टूटै नेहु कि बोलहि सही । टूटै बाह दुहू दिसि गही ॥
टूटि परीति गई बुर बोलि । दुरमति परहरि छाडी ढोलि ॥
टूटै गंठि पड़ै वीचारि । गुर सबदी घरि कारजु सारि ॥
लाहा साचु न आवै तोटा । त्रिभवण ठाकुरु प्रीतमु मोटा ॥२८॥
ठाकहु मनूआ राखहु ठाइ । ठहकि मुई अवगुणि पछुताइ ॥
ठाकुरु एकु सबाई नारि । बहुते वेस करे कूड़िआरि ॥
पर घर जाती ठाकि रहाई । महलि बुलाई ठाक न पाई ॥
सबदि सवारी साचि पिआरी । साई सोहागणि ठाकुरि धारी ॥२९॥
ढोलत ढोलत हे सखी फाटे चीर सीगार ।
ढूंढेलणि तनि सुखु नही बिनु डर बिणठी डार ॥
डरपि मुई घरि आपणै डीठी कंति सुजाणि ।
डरु राखिआ गुरि आपणै निरभउ नामु वखाणि ॥
डूगरि वासु तिखा घणी जब देखा नही दूरि ।
तिखा निवारी सबदु मनि अंम्रितु पीआ भरपूरि ॥
देहि देहि आखै सभु कोई जै भावै तै देइ ।
गुरू दुआरै देवसी तिखा निवारै सोइ ॥३०॥
डंडोलत डरु होइ फिरी ढहि ढहि पवनि करारि ।
भारे ढहते ढहि पए हउले निकसे पारि ॥
अमर अजाची हरि मिले तिन कै हउ बलि जाउ ।
तिन की धूड़ि अघुलीऐ संगति मेलि मिलाउ ॥
मनु दीआ गुरि आपणै पाइआ निरमल नाउ ।
जिनि नामु दीआ तिसु सेवसा तिसु बलिहारै जाउ ॥
जो उसारे सो ढाहसी तिसु बिनु अवरु न कोइ ।
गुर परसादी तिसु संम्हला ता तनि दूखु न होइ ॥३१॥
णा को मेरा किसु गही णा को होआ न होगु ।
आवणि जाणि विगुचीऐ दुबिधा विआपै रोगु ॥
णाम विहूणे आदमी कलर कंध गिरंति ।
विणु नावै किउ छूटीऐ जाइ रसातलि अंति ॥
गणत गणावै अखरी अगणतु साचा सोइ ।
अगिआनी मतिहीणु है गुर बिनु गिआनु न होइ ॥
तूटी तंतु रबाब की वाजै नही विजोगि ।
विछुड़िआ मेलै प्रभू नानक करि संजोग ॥ ॥३२॥
तरवरु काइआ पंखि मनु तरवरि पंखी पंच ।
ततु चुगहि मिलि एकसे तिन कउ फास न रंच ॥

गुर सागरु रतनी नही तोट । लाल पदारथ साचु अखोट ॥
गुरि कहिआ सा कार कमावहु । गुर की करणी काहे धावहु ॥
नानक गुरमति साचि समावहु ॥ २७ ॥
टूटै नेहु कि बोलहि सही । टूटै बाह दुहू दिसि गही ॥
टूटि परीति गई बुर बोलि । दुरमति परहरि छाडी ढोलि ॥
टूटै गंठि पड़ै वीचारि । गुर सबदी घरि कारजु सारि ॥
लाहा साचु न आवै तोटा । त्रिभवण ठाकुरु प्रीतमु मोटा ॥२८॥
ठाकहु मनूआ राखहु ठाइ । ठहकि मुई अवगुणि पछुताइ ॥
ठाकुरु एकु सबाई नारि । बहुते वेस करे कूड़िआरि ॥
पर घरि जाती ठाकि रहाई । महलि बुलाई ठाक न पाई ॥
सबदि सवारी साचि पिआरी । साई सोहागणि ठाकुरि धारी ॥२९॥
डोलत डोलत हे सखी फाटे चीर सीगार ।
डाहपणि तनि सुखु नही बिनु डर बिणठी डार ॥
डरपि मुई घरि आपणै डीठी कंति सुजाणि ।
डरु राखिआ गुरि आपणै निरभउ नामु वखाणि ॥
डूगरि वासु तिखा घणी जब देखा नही दूरि ।
तिखा निवारी सबदु मंनि अंम्रितु पीआ भरपूरि ॥
देहि देहि आखै सभु कोई जै भावै तै देइ ।
गुरू दुआरै देवसी तिखा निवारै सोइ ॥३०॥
ढंढोलत ढूढत हउ फिरी ढहि ढहि पवनि करारि ।
भारे ढहते ढहि पए हउले निकसे पारि ॥
अमर अजाची हरि मिले तिन कै हउ बलि जाउ ।
तिन की धूड़ि अघुलीऐ संगति मेलि मिलाउ ॥
मनु दीआ गुरि आपणै पाइआ निरमल नाउ ।
जिनि नामु दीआ तिसु सेवसा तिसु बलिहारै जाउ ॥
जो उसारे सो ढाहसी तिसु बिनु अवरु न कोइ ।
गुर परसादी तिसु संम्हला ता तनि दूखु न होइ ॥३१॥
णा को मेरा किसु गही णा को होआ न होगु ।
आवणि जाणि विगुचीऐ दुबिधा विआपै रोगु ॥
णाम विहूणे आदमी कलर कंध गिरंति ।
विणु नावै किउ छूटीऐ जाइ रसातलि अंति ॥
गणत गणावै अखरी अगणतु साचा सोइ ।
अगिआनी मतिहीणु है गुर बिनु गिआनु न होइ ॥
तूटी तंतु रबाब की वाजै नही विजोगि ।
विछुड़िआ मेलै प्रभू नानक करि संजोग ॥ ॥३२॥
तरवरु काइआ पंखि मनु तरवरि पंखी पंच ।
ततु चुगहि मिलि एकसे तिन कउ फास न रंच ॥

नदरि पइआ जिउ रहै जिउ भावै तिव राखु ।
जिउ भावए आखा बीसरै झूठु बुरा से कामु ॥
मनु कमाली बेड़िआ भी कमाला माहि ।
बिणु नावै जिउ छूटीऐ पावै पचहि पचाहि ॥३८॥
फिर फिरि कहिओ कसे कहआ । फिरि पछुताना सब किआ हूआ ॥
पापा चोग चुगे नही बूझे । सतगुरु मिलै त आखी सूझे ॥
जिउ मछुली फाथी जम जालि । बिणु गुर दाते मुकति न भालि ॥
फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जाइ । इक रंगि रचै रहै लिव लाइ ॥
इव छूटै फिरि फास न पाइ ॥३९॥
बोरा बीरा करि रही बीर भए बराइ ।
बीर चले घरि आपणै बहिण बिरहि जलि जाइ ॥
बाबुल कै घरि बेटड़ी बाली बालै नेहि ।
जे लोड़हि वरु कामणी सतिगुरु सेवहि तेहि
बिरलो गिआनी बूझणउ सतिगुरु साचि मिलेइ ।
ठाकुर हाथि वडाईआ जै भावै तै देइ ॥
बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ ।
इह बाणी महापुरख की निज घरि वासा होइ ॥४०॥
भनि भनि घड़ीऐ घड़ि घड़ि भजै ढाहि उसारै उसरे ढाहै ।
सर भरि सोखै भी भरि पोखै समरथ वेपरवाहै ॥
भरमि भुलाने भए दिवाने विणु भागा किआ पाईऐ ।
गुरमुखि गिआनु डोरी प्रभि पकड़ी जिन खिंचै तिन जाईऐ ॥
हरि गुण गाइ सदा रंगि राते बहुड़ि न पछोताईऐ ।
भभै भालहि गुरमुखि बूझहि ता निज घरि वासा पाईऐ ॥
भभै भउजलु मारगु विखड़ा आस निरासा तरीऐ ।
गुर परसादी आपो चीन्है जीवतिआ इव मरीऐ ॥४१॥
माइआ माइआ करि मुए माइआ किसै न साथि ।
हंसु चलै उठि डुमणो माइआ भूली आथि ॥
मनु झूठा जमि जोहिआ अवगुण चलहि नालि ।
मन महि मनु उलटो मरै जे गुण होवहि नालि ॥
मेरी मेरी करि मुए विणु नावै दुखु भालि ॥
गड़ मंदर महला कहा जिउ बाजी दीबाणु ।
नानक सचे नाम विणु झूठा आवण जाणु ॥
आपे चतुरु सरूपु है आपे जाणु सुजाणु ॥४२॥
जो आवहि से जाहि फुनि आइ गए पछुताहि ।
लख चउरासीह मेदनी घटै न वधै उताहि ॥
से जन उबरे जिन हरि भाइआ ।
धंधा मुआ विगुती माइआ ॥

जो दीसै सो चालसी किस कउ मीतु करेउ ।
जीउ समपउ आपणा तनु मनु आगै देउ ॥
असथिरु करता तू धणी तिस ही की मै ओट ।
गुण की मारी हउ मुई सबदि रती मनि चोट ॥५३॥
राणा राउ न को रहै रंगु न तुंगु फकीरु ।
वारी आपो आपणी कोइ न बंधै धीर ॥
राहु बुरा भीहावला सर डूगर असगाह ।
मै तनि अवगण झुरि मुई विणु गुण किउ घरि जाह ॥
गुणीआ गुण ले प्रभ मिले किउ तिन मिलउ पिआरि ।
तिन ही जैसी थी रहां जपि जपि रिदै मुरारि ॥
अवगुणी भरपूर है गुण भी वसहि नालि ।
विणु सतगुर गुण न जापनी जिचरु सबदि न करे बीचारु ॥५४॥
लसकरीआ घर संमले आए वजहु लिखाइ ।
कार कमावहि सिरि धणी लाहा पलै पाइ ॥
लबु लोभु बुरिआईआ छोडे मनहु विसारि ।
गड़ि दोही पातिसाह की कदे न आवै हारि ॥
चाकरु कहीऐ खसम का सउहे उतर देइ ।
वजहु गवाए आपणा तखति न बैसहि सेइ ॥
प्रीतम हथि वडिआईआ जै भावै तै देइ ।
आपि करे किसु आखीऐ अवरु न कोइ करेइ ॥५५॥
बीजउ सूझै को नही बहै दुलीचा पाइ ।
नरक निवारणु नरह नरु साचउ साचै नाइ ॥
वणु त्रिणु ढूढत फिरि रही मन महि करउ बीचारु ।
लाल रतन बहु माणकी सतिगुर हाथि भंडारु ॥
ऊतमु होवा प्रभु मिलै इक मनि एकै भाइ ।
नानक प्रीतम रसि मिले लाहा लै परथाइ ॥
रचना राचि जिनि रची जिनि सिरिआ आकारु ।
गुरमुखि बेअंतु धिआईऐ अंतु न पारावारु ॥५६॥
ड़ाड़ै रूड़ा हरि जीउ सोई ।
तिसु बिनु राजा अवरु न कोई ॥
ड़ाड़ै गारुड़ु तुम सुणहु हरि वसै मन माहि ।
गुर परसादी हरि पाईऐ मतु को भरमि भुलाहि ॥
सो साहु साचा जिसु हरि धनु रासि ।
गुरमुखि पूरा तिसु साबासि ॥
रूड़ी बाणी हरि पाइआ गुर सबदी बीचारि ।
आपु गइआ दुखु कटिआ हरि वरु पाइआ नारि ॥५७॥

सुइना रुपा संचीऐ धनु काचा बिखु छारु ।
साहु सदाए संचि धनु दुबिधा होइ खुआरु ॥
सचिआरी सचु संचिआ साचउ नामु अमोलु ।
हरि निरमाइलु ऊजलो पति साची सचु बोलु ॥
साजनु मीतु सुजाणु तू तू सरवरु तू हंसु ।
साचउ ठाकुरु मनि वसै हउ बलिहारी तिसु ॥
माइआ ममता मोहणी जिनि कीती सो जाणु ।
बिखिआ अम्रितु एकु है बूझै पुरखु सुजाणु ॥४८॥
खिमा विहूणे खपि गए खूहणि लख असंख ।
गणत न आवै किउ गणी खपि खपि मुए बिसंख ॥
खसमु पछाणै आपणा खूलै बंधु न पाइ ।
सबदि महली खरा तू खिमा सचु सुख भाइ ॥
खरचु खरा धनु धिआनु तू आपे वसहि सरीरि ।
मनि तनि मुखि जापै सदा गुण अंतरि मनि धीर ॥
हउमै खपै खपाइसी बीजउ वथु विकारु ।
जंत उपाइ विचि पाइअनु करता अलगु अपारु ॥४९॥
स्रिसटे भेउ न जाणै कोइ । स्रिसटा करै सु निहचउ होइ ॥
संपै कउ ईसरु धिआईऐ । संपै पुरबि लिखे की पाईऐ ॥
संपै कारणि चाकर चोर । संपै साथि न चालै होर ॥
बिनु साचे नही दरगह मानु । हरि रसु पीवै छुटै निदानि ॥५०॥
हेरत हेरत हे सखी होइ रही हैरानु ।
हउ हउ करती मै मुई सबदि रवै मनि गिआनु ॥
हार डोर कंकन घणे करि थाकी सीगारु ।
मिलि प्रीतम सुखु पाइआ सगल गुणा गलि हारु ॥
नानक गुरमुखि पाईऐ हरि सिउ प्रीति पिआरु ।
हरि बिनु किनि सुखु पाइआ देखहु मनि बीचारि ॥
हरि पड़णा हरि बुझणा हरि सिउ रखहु पिआरु ।
हरि जपीऐ हरि धिआईऐ हरि का नामु अधारु ॥५१॥
लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि ।
आपे कारणु जिनि कीआ करि किरपा पगु धारि ।
करते हथि वडिआईआ बूझहु गुर बीचारि ।
लिखिआ फेरि न सकीऐ जिउ भावी तिउ सारि ॥
नदरि तेरी सुखु पाइआ नानक सबदु वीचारि ।
मनमुख भूले पचि मुए उबरे गुर बीचारि ॥
जि पुरखु नदरि न आवई तिस का किआ करि कहिआ जाइ ।
बलिहारी गुर आपणे जिनि हिरदै दिता दिखाइ ॥५२॥

निर्वैर (परमात्मा) युग-युगान्तरों से सदैव विराजमान है। उसे न तो जन्म-मरण है (न वह किसी) धंधे में ही दौड़ता है। जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है, वह सब (परमात्मा) आप ही आप है। वह आप ही (सब को) उत्पन्न करता है और आप ही घट-घट को स्थापित करता है। (परमात्मा) आप तो अगोचर है (किन्तु) लोग धंधे में (लिप्त हैं)। योग की युक्ति में ही वह जग जीवन (परमात्मा) है। उत्तम कर्मों के करने से ही सत्य और सुख (की प्राप्ति) होती है। बिना (परमात्मा के) नाम के मुक्ति (भला) किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? ॥ १५ ॥

बिना नाम के शरीर ही विरोधी हो जाता है। (नाम) क्यों नहीं मिलता (जिससे हम अपने) मन की पीड़ा काट लें ? पथिक—मुसाफिर (जीवात्मा) बार-बार आता जाता है। (समझ में नहीं आता कि वह) क्या ले कर (इस संसार में) आया है और क्या पल्ले में लेकर (यहाँ से) (चला जाता है)। बिना नाम के सभी स्थानों में घाटा है। यदि (गुरु नाम को) समझा दे तभी लाभ मिल सकता है। (सच्चा) व्यापारी (राम नाम का ही) व्यापार करता है। बिना नाम के यश मान (वास्तविक सम्मान) कैसे (मिल सकता है) ? ॥ १६ ॥

(जो) गुणों को विचारता है, (वही) ज्ञानी होता है। गुणों (को धारण करने) में ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। (किन्तु) इस संसार में कोई विरला ही गुणों को प्रदान करनेवाला है। सच्ची करनी को गुरु के द्वारा विचार करो। अगम अगोचर (मन और इन्द्रियों से परे परमात्मा) की कीमत नहीं प्राप्त होती। यदि (परमात्मा अपने में) मिला ले तभी (उसकी कीमत) प्राप्त होती है। गुणवती स्त्री नित्य प्रति (अपने पति परमात्मा के) गुणों को याद करती है। नानक (कहता है कि) हे मित्र गुरु की शिक्षा को प्राप्त करो ॥ १७ ॥

काम और क्रोध काया को (उसी प्रकार) गला डालते हैं, (जिस भाँति) सोने को सोहागा गला देता है। जो सोना (जितनी ही अधिक) कसौटी के कष्ट को (तथा अग्नि के) ताप को सहता है सर्राफ की दृष्टि में वह उतने ही (सुन्दर) वर्ण वाला होता है। जगत् पशु है और अहंकार का काम-कसाई है। कर्ता-पुरुष ने (रचना) रच कर, (जीवों के) हाथ में करनी डाल दी है। (भाव यह कि जो जैसा कर्म करते हैं वे वैसा फल पाते हैं)। जिस प्रभु ने सृष्टि-रचना की है वही उसकी कीमत जान सकता है। (प्रभु की रचना के सम्बन्ध में) और क्या कहा जाय ? कुछ कहते नहीं बनता है ॥ १८ ॥

खोजते-खोजते (नाम रूपी) अमृत (मैंने) पी लिया। (मैंने) मन में जब क्षमा ग्रहण कर ली (तब) सद्गुरु ने (नाम रूपी अमृत) दे दिया। सभी कोई खरा खरा कहते हैं। किन्तु सब चारों युगों में (कोई विरला ही होता है) (तात्पर्य यह कि सच्चे साधक और सिद्ध बहुत कम होते हैं)। (जीवन पर्यन्त) खाते-पीते मर गए, (किन्तु परमात्मा को) नहीं जान पाए। यदि शब्द—नाम को पहचान लिया तो तत्क्षण (अहंभावना से) मुक्त हो गये। (अहंकार से) इस भाँति मरने से चित्त स्थिर हो गया और मन मान गया (शान्त हो गया)। (इस प्रकार) गुरु की कृपा से नाम पहचान लिया गया ॥ १९ ॥

(इसी) आकाश को अति गंभीर (और अगाध है) जब यह अगाध (इसी) हृदय रूपी आकाश में बस जाता है, (तो जीवात्मा उसका) गुणगान करने लगती है और उसका

(तात्पर्य यह कि टूटा हुआ सम्बन्ध फिर जुड़ सकता है, यदि मनुष्य यह विचार करे कि मुझसे क्या भूल हुई थी और क्यों वियोग हुआ है)। गुरु के शब्द द्वारा (अपने आन्तरिक) घर (आत्मस्वरूपी घर) का नाम सँभालो (इससे) अन्य (परमात्मा) का नाम होगा (और किसी प्रकार का) भाग नहीं होगा। त्रिभुवन का स्वामी (अपने भक्तों का) बड़ा प्रेमी है ॥ २८ ॥

मन को रोको और (अपने) स्थान पर रक्खो। (जीवात्मा रूपी स्त्रियाँ भ्रम में) दरवार खा खा कर मर गई (और अपने) अवगुणों के कारण पछताती हैं। स्वामी तो एक मात्र (परमात्मा) है (और लोग तो) सब उसकी स्त्रियाँ हैं। झूठी (स्त्री) अनेक वेश धारण करती है। (किन्तु) दूसरे के घर में जाती हुई रोक दी जाती है। (पर जब उसे) महल में (पति-परमात्मा ने स्वयं) बुला लिया (तो उसे कोई) रुकावट नहीं होती। जो (स्त्री) शब्द द्वारा सवारी गई है, (वही परमात्मा को) सच्चा प्रियतमा है। वही सुहागिनी है (जिसे) स्वामी (परमात्मा) ने अंगीकार कर लिया है ॥ २९ ॥

हे सखी, (प्रियतम की खोज में) खोजते खोजते (मेरे सारे) वस्त्र फट गए और शृङ्गार (बिगड़ गए)। ईर्ष्या से शरीर में सुख नहीं होता (और) बिना (परमात्मा के) डर के (सारा) समूह (डार) नष्ट हो जाता है। (जब मैं संसार के) भय से भागने घर में ही मरने लगी तो सुजान कंत ने (कृपादृष्टि से) मुझे देखा। मेरे गुरु ने निर्भय (परमात्मा) के नाम का वर्णन करके (मेरा) भय खोल दिया। (जब मैं अहंकार रूपी) पर्वत पर बस्ती थी तो मेरे अन्तर्गत अत्यंत तृषा (सांसारिक तृष्णा) थी (किन्तु) जब (मैंने) (ज्ञान की दृष्टि से) देखा, तो (तृषा निवारण करनेवाला पति परमात्मा को) अति निकट—(दूर नहीं) पाया। (मैंने) शब्द—नाम का मनन करके (अपनी सांसारिक) प्यास का निवारण कर लिया (और नाम रूपी) अमृत (पेय) भर भर पिया। सभी कोई यही कहते हैं—(हे प्रभु) दो, दो" (किन्तु) जो (उसे) अच्छा लगता है उसी को वह देता है। गुरु के द्वार पर ही (परमात्मा) देगा और वही गुरु तृषा निवारण करेगा ॥ ३० ॥

ढूँढती ढूँढती मैं फिर रही हूँ (पर पति परमात्मा को नहीं पा रही हूँ) (संसार एक नदी के समान है, जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है। साधारणतया अधिकांश मनुष्य इसके किनारे पर ही) ढह ढह के गिर पड़ते हैं। (जो) (पापों के बोझ से) भारी हैं (वे तो) ढह ढह के गिर पड़ते हैं, (और जो गुणों से) हल्के हैं, (वे) पार हो जाते हैं। (जिन्हें) अमर और अथाह (वैकुण्ठनाथ) हरी प्राप्त होता है उन पर मैं बलिहारी हो जाता हूँ। उनकी धूलि (संसार में) मुक्त करती है (छुड़ाती है) (अतएव) सत्संगति के मिलाप में मिलो (क्योंकि यह सत्संगति मोक्षदायिनी है)। गुरु के द्वारा (मैंने) अपना मन (परमात्मा को) दे दिया है (जिसके फलस्वरूप) (उसका) निर्मल नाम पा लिया है। जिस (गुरु ने) मुझे (हरी का) नाम दिया है उसकी सेवा करूँगा और उस पर बलिहारी हो जाता हूँ। जिस (प्रभु ने) (सृष्टि का) निर्माण किया है (वही उसका) विनाश भी करेगा उसके बिना दूसरा और कोई न (रचयिता है न पालनकर्ता है और न संहारकर्ता है)। गुरु की कृपा से (यदि) वह स्मरण किया जाए (तो) शरीर में कष्ट नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

(इस संसार में) मेरा कोई नहीं है किस किसे (व्यथा के लिए) कहूँ ? (प्रभु के अतिरिक्त) दूसरा न कोई हुआ है और न होगा। आने जाने में (जन्म धारण करने में और

मरने में) (मनुष्य) नष्ट होता है (और उसे) हउमै का (महान्) रोग व्याप्त हो जाता है (धर लेता है) । नाम से विहीन मनुष्य रेत की दीवाल की भाँति (क्षणभंगुर है) और गिर जाते हैं । बिना नाम के (मनुष्य का) छुटकारा किस भाँति हो सकता है ? अंत में वह (यहाँ से) रसातल (पाताल—निम्न लोकों नरक से अभिप्राय है) को जाता है । उस सच्चे और अगणित (अनन्त) प्रभु को (मनुष्य) गिनती देकर अक्षरों द्वारा वर्णन करता है, (पर भला वह अनन्त ब्रह्म की किस प्रकार गणना कर सकता है) ? (माया में ग्रस्त) अज्ञानी (मनुष्य) बुद्धिहीन है (तभी तो वह परमात्मा को गिनती के अन्तर्गत ले आना चाहता है) । गुरु के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता । (परमात्मा से) बिछुड़े हुए जीव रबाब के टूटे तार की भाँति हैं (जिस भाँति टूटे तार से कोई स्वर नहीं निकल सकता उसी भाँति बिछुड़े जीव में आनन्द का कोई स्वर नहीं निकलता) । हे नानक उन बिछुड़े हुओं को प्रभु ही संयोग से (अपने में) मिला लेता है ॥ १२ ॥

शरीर रूपी वृक्ष पर मन रूपी पक्षी (निवास करता है), [शरीर मन का अधिष्ठान है । मन का स्वरूप संकल्प-विकल्प करना और सुख दुःख भोगना है । मन बुद्धि चित्त और अहंकार के समूह को 'अन्तःकरण चतुष्टय' कहते हैं । इसलिए अगली तुकों में पक्षी का रूप बहुवचन लिया गया है । गुरुवाणी में 'मन' का अर्थ प्रायः 'जीवात्मा' होता है] । [देह रूपी वृक्ष पर) एक और पक्षी है, (जो) श्रेष्ठ (पंच) है—(वह है परमात्मा') । [इस प्रकार, मन रूपी पक्षी और परमात्मा रूपी पक्षी एक ही काया रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं] । एक (परमात्मा) से मिल कर, (जब वे पक्षी) (मन, बुद्धि चित्त अहंकार) तत्व (परमात्म-तत्व) चुगते हैं (तो उन्हें) रंच मात्र भी फंदे (में पड़ने का भय नहीं रहता—वे सांसारिक बन्धनों में नहीं आते) । (किन्तु यदि वे पक्षी परमात्मा से) पृथक् पृथक् हो कर उड़ते हैं (और विषय रूपी) सुन्दर चारे को देखते हैं तो उनके पंख टूट जाते हैं, (अर्थात् साधन-सम्पत्ति-विहीन हो जाते हैं और फिर पक्षी भी) फंदे में आकर फँसी हो जाती है । (बंधन में पड़ जाने से) बिना सत्य (परमात्मा) के किस प्रकार छूटा जाय ? हरी—गुण रूपी मणि—गुण (से ही प्राप्त होती है) । (प्रभु-हरी) (जब) आप (इस बंधन से) छुड़ाए, (तभी जीव) छूट सकता है, (क्योंकि) वह स्वामी (बहुत) बड़ा है । (जब) (प्रभु) आप ही कृपा करें तभी गुरु की कृपा से जीव (बंधनों से) छूट जाता है (अन्यथा नहीं) । सभी (प्रभु के) अपने हाथ में बड़ाई है (किन्तु) जिस (देने को) प्रिय लगती है, उसी को (वह) प्रदान करता है ॥ १३ ॥

(जब) जीव (अपने वास्तविक स्थान से बिछुड़ कर) स्थान-विहीन हो जाता है, (तो वह) थरथर काँपने लगता है । स्थान वाला और मान वाला एक सच्चा (हरी) ही है, (उसके द्वारा बनाया हुआ कोई भी) काम नहीं बिगड़ता है । (इस जगत् में) नारायण स्थिर है गुरु स्थिर है अथवा विचार (ब्रह्मज्ञान) स्थिर है (बाकी सब कुछ नश्वर और अस्थिर है) । (हे हरी) देवताओं मनुष्यों और नाथों का नाथ (तू ही है), निराधारों का आधार भी (तू ही है) । हे दाताओं का दाता तू सभी स्थान-स्थानान्तरों (में व्याप्त है, रमा है) । जहाँ देखता हूँ वहाँ एक तू ही (दिखाई देता है), तेरा किनारा और अन्त नहीं है । गुरु के शब्दों पर विचार करने से (यह भलीभाँति अनुभव हो जाता है कि) तू ही स्थान-स्थानान्तरों में रमा हुआ है । (मांगता पदार्थ (हरी) तू बिना मांगे ही दान देता ॥ १४ ॥

मरने में) (मनुष्य) नष्ट होता है (और उसे) दुर्भाग्य का (महान्) रोग व्याप्त हो जाता है (लग जाता है)। नाम से विहीन मनुष्य रेत की दीवाल की भाँति (क्षणभंगुर हैं) और गिर जाते हैं। बिना नाम के (मनुष्य का) छुटकारा किस भाँति हो सकता है ? अंत में वह (यहाँ से) रसातल (पाताल—निम्न लोकों अथवा नरक से अभिप्राय है) को जाता है। उस सच्चे और अपरिमित (अनन्त) प्रभु को (मनुष्य) गिनती देकर अक्षरों द्वारा वर्णन करता है (पर भला वह अनन्त प्रभु की किस प्रकार गणना कर सकता है) ? (माया में ग्रस्त) अज्ञानी (मनुष्य) बुद्धिहीन है (तभी तो वह परमात्मा को गिनती के अन्तर्गत ले आना चाहता है)। गुरु के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। (परमात्मा से) बिछुड़े हुए जीव रबाब के टूटे तार की भाँति है (जिस भाँति टूटे तार से कोई स्वर नहीं निकल सकता, उसी भाँति बिछुड़े जीव में आनन्द का कोई स्वर नहीं निकलता)। हे नानक उन बिछुड़े हुओं को प्रभु ही संयोग से (अपने में) मिला लेता है ॥ १२ ॥

शरीर रूपी वृक्ष पर मन रूपी पक्षी (निवास करता है) [शरीर मन का अधिष्ठान है। मन का इधर-उधर सैर-विहार करना और सुख दुःख भोगना है। मन बुद्धि चित्त और अहंकार के समूह को 'अन्तःकरण चतुष्टय' कहते हैं। इसलिए अगली तुकों में पक्षी का रूप बहुवचन किया गया है। गुरुवाणी में 'मन' का अर्थ प्रायः 'जीवात्मा' होता है]। (उस काया रूपी वृक्ष पर) एक और पक्षी है, (जो) श्रेष्ठ (पंच) है—(यह है 'परमात्मा')। [इस प्रकार, मन रूपी पक्षी और परमात्मा रूपी पक्षी एक ही काया रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं]। एक (परमात्मा) से मिल कर (जब वे पक्षी) (मन, बुद्धि चित्त अहंकार) तत्व (परमात्म-तत्त्व) चुगते हैं (तो उन्हें) रंच मात्र भी फाँस (में पड़ने का भय नहीं रहता—वे सांसारिक बन्धनों में नहीं आते)। (किन्तु यदि वे पक्षी परमात्मा से) पृथक् पृथक् हो कर उड़ते हैं (और विषय रूपी) सुन्दर चारे को देखते हैं तो उनके पंख टूट जाते हैं, (अर्थात् साधन-सम्पत्ति-विहीन हो जाते हैं और विषय चारों की) भीड़ पाकर इकट्ठी हो जाती है। (बंधन में पड़ जाने से) बिना सत्य (परमात्मा) के किस प्रकार छुटकारा हो ? हरी—गुण रूपी हीरा—रत्न (से ही प्राप्त होती है)। (प्रभु-हरी) (जब) आप (इस बंधन से) छुड़ाए, (तभी जीव) छूट सकता है, (क्योंकि) वह स्वामी (बहुत) बड़ा है। (जब) (प्रभु) आप ही कृपा करे तभी गुरु की कृपा से जीव (बंधनों से) छूट सकता है (अन्यथा नहीं)। उसी (प्रभु के) अपने हाथ में बड़ाई है (किन्तु) जिस (देने को) रुचि समझता है, उसी को (वह) प्रदान करता है ॥ १३ ॥

(जब) जीव (अपने वास्तविक स्थान से बिछुड़ कर) स्थान-विहीन हो जाता है, (तो वह) थरथर काँपने लगता है। स्थान वाला और मान बनाने वाला सच्चा (हरी) ही है, (उसके द्वारा बनाया हुआ कोई भी) काम नहीं बिगड़ता है। (इस जगत् में) नारायण स्थिर है, गुरु स्थिर है, उसका विचार (ब्रह्मज्ञान) स्थिर है (बाकी सब कुछ नश्वर और अनित्य है)। (हे हरी) देवताओं मनुष्यों और नाथों का नाथ (तू ही है) निराधारों का आधार भी (तू ही है)। हे दाताओं का दाता तू सभी स्थान-स्थानान्तरों (में व्याप्त है, रमा है)। जहाँ देखता हूँ वहाँ एक तू ही (दिखाई देता है) तेरा विस्तार और अन्त नहीं है। गुरु के शब्दों पर विचार करने से (यह अनुभव हो जाता है कि) तू ही स्थान-स्थानान्तरों में रमा हुआ है। हे नानक बिना माँगे (हरी), तू बिना माँगे ही दान देता ॥ १४ ॥

से घिरा हुआ है। बिना नाम का (आश्रय ग्रहण किए हुए) (मनुष्य) किस प्रकार छूट सकते हैं? (वे तो बिना नाम के) पापों में सड़ते-गलते हैं ? ॥१८॥

(कौवा) कौवे की वृत्ति वाला दुष्ट मनुष्य बार बार जाल में फँसता है और बार बार पछताता है। (किन्तु) अब (पछताने से) हो क्या सकता है? (वह) फँसा हुआ (जीव रूपी पक्षी) (विषय रूपी) चारे को चुगता है, और यह नहीं समझता (कि यह चारा नहीं है बल्कि मेरी मृत्यु का सामान है)। (यदि संयोगवश उसे) सद्गुरु प्राप्त हो जाय तो उसे आँखों से सुझाई पड़े। (उन फँसे हुए जीव की ठीक वही दशा होती है), जैसे मछली यमराज के जाल में फँस गई हो। बिना दाता गुरु के मुक्ति मत खोजो, (वह नहीं प्राप्त हो सकती और बिना मुक्ति-प्राप्ति के जीव) बार बार आता है और बार बार जाता है, (जन्म-मरण के चक्र में निरन्तर पड़ता रहता है)। (गुरु की शिक्षा से) एक (हरि) के रंग में रंग जाय और उसके एकनिष्ठ ध्यान में निमग्न रहे— (मनुष्य) इस प्रकार (जाल से) छूटता है और फिर जाल में नहीं पड़ता ॥१९॥

(शरीर रूपी बहिन जीवात्मा रूपी भाई के चले जाने पर) "हे भाई, हे भाई", करती रहती है, किन्तु भाई (जीवात्मा) तो परदेशी (के समान) हो गया है और एक बार भी अपनी बहिन (शरीर) की ओर नहीं देखता है। भाई (जीवात्मा) तो जाने पर बस देता है और बहिन (शरीर) (भाई के) वियोग में जल जाती है। पिता के घर की पुत्री (इस संसार में जीवात्मा), (अभी पीहर में—माया में) (अन्य) बालिकाओं तथा बालकों (माया के आकर्षणों से) स्नेह करती है। किन्तु हे कामिनी (स्त्री) यदि तू सचमुच (परमात्मा रूपी) वर को चाहती है, (तो इस देश की बालिकाओं और बालकों को— सांसारिक आकर्षणों को त्याग दे और) सद्गुरु की सेवा कर, (क्योंकि वही पति-परमात्मा से मिलानेवाला दूसरा कोई नहीं)। ब्रह्मज्ञानी को समझनेवाला विरला ही होता है सद्गुरु को सच्चा (परमात्मा) प्राप्त होता है। ठाकुर (परमात्मा) के हाथ में ही (सारी) बड़ाई है जिस पर उसकी कृपा हो उसी को प्रदान करता है। कोई विरला ही व्यक्ति गुरुवाणी पर विचार करता है यदि कोई गुरुमुख हो तो। महापुरुष (सद्गुरु) की इस वाणी (पर विचार करने से अपने आत्मस्वरूप के घर में निवास होता है) ॥२०॥

(सर्व शक्तिमान् प्रभु) तोड़ तोड़ करके बनाता है और बना बना कर तोड़ता है ढहा कर निर्माण करता है और निर्माण करके फिर ढहाता है। (वह प्रभु) (संसार रूपी) तालाब को भर भर सुखाता है और (उसे) फिर भरता और पोषण करता है (तात्पर्य यह कि वह सामर्थ्यवान् प्रभु सृष्टि उत्पन्न करता है पालन करता है और संहार करता है। उसके उत्पत्ति-पालन-संहार का यह चक्र अनवरत गति से चलता रहता है)। (किन्तु प्राणी माया में आसक्त हो कर) भ्रम में भूल गए हैं और पगले हो गये हैं। बिना भाग्य के (वे बेचारे) क्या पा सकते हैं? गुरुमुखों की तो डोर उसी प्रभु ने (स्वयं) पकड़ रखी है (वह प्रभु उन्हें) जिधर खींचता है (वे) उधर जाते हैं। (वे) हरि का गुणगान कर सदा (उसके) रंग में रँगे रहते हैं और फिर कभी नहीं पछताते हैं। 'नानक' (कहते हैं यह पक्तिवाद है कि हरी को) भजो और गुरु द्वारा समझो तभी अपने (वास्तविक) निज घर में निवास पा सकते हो। 'नानक' (कहते हैं यह भी दृढ़ निश्चय है कि) संसार-सागर (के तरने का) मार्ग

ऊभउ खपरु पंच भू टोपी कांइआ कड़ासणु मनु जागोटी।
सतु संतोखु संजमु है नालि। नानक गुरमुखि नामु समालि ॥११॥

कवनु सु गुपता कवनु सु मुकता।
कवनु सु अंतरि बाहरि जुगता॥
कवनु सु आवै कवनु सु जाइ।
कवनु सु त्रिभवणि रहिआ समाइ ॥१२॥
घटि घटि गुपता गुरमुखि मुकता।
अंतरि बाहरि सबदि सु जुगता॥
मनमुखि बिनसै आवै जाइ।
नानक गुरमुखि साचि समाइ ॥१३॥
किउ करि बाधा सरपनि खाधा।
किउ करि खोइआ किउ करि लाधा॥
किउ करि निरमलु किउ करि अंधिआरा।
इहु ततु बीचारै सु गुरू हमारा ॥१४॥
दुरमति बाधा सरपनि खाधा॥
मनमुखि खोइआ गुरमुखि लाधा॥
सतिगुरु मिलै अंधेरा जाइ।
नानक हउमै मेटि समाइ ॥१५॥
सुंन निरंतरि दीजै बंधु।
उडै न हंसा पड़ै न कंधु॥
सहज गुफा घरु जाणै साचा।
नानक साचे भावै साचा ॥१६॥
किसु कारणि ग्रिहु तजिओ उदासी।
किसु कारणि इहु भेखु निवासी॥
किसु वखर के तुम वणजारे।
किउ करि साथु लंघावहु पारे ॥१७॥

गुरमुखि खोजत भए उदासी। दरसन कै ताई भेख निवासी॥
साच वखर के हम वणजारे। नानक गुरमुखि उतरसि पारे ॥१८॥
कितु बिधि पुरखा जनमु वटाइआ। काहे कउ तुझु इहु मनु लाइआ।
कितु बिधि आसा मनसा खाई। कितु बिधि जोति निरंतरि पाई॥
बिनु दंता किउ खाईऐ सारु। नानक साचा करहु बीचारु ॥१९॥
सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ। अनहति राते इहु मनु लाइआ॥
मनसा आसा सबदि जलाई। गुरमुखि जोति निरंतरि पाई॥
त्रैगुण मेटे खाईऐ सारु। नानक तारे तारणहारु ॥२०॥
आदि कउ कवनु बीचारु कथीअले सुंन कहा घर वासो।
गिआन की मुद्रा कवन कथीअले घटि घटि कवन निवासो॥

कमला का दीवा किउ आराधिऐ किउ निरमल घरि आसि ।
सहज संतोख का आसणु जाणै किउ छेदे बैराई ॥
गुर कै सबदि हउमै बिखु मारै ता निज घरि होवै वासो ।
जिनि रचि रचिआ तिसु सबदि पछाणै नानक ता का दासो ॥२१॥

कहा ते आवै कहा इहु जावै कहा इहु रहै समाई ।
एसु सबद कउ जो अरथावै तिसु गुर तिलु न तमाई ॥
किउ ततै अविगतै पावै गुरमुखि लगै पिआरो ।
आपे सुरता आपे करता कहु नानक बीचारो ॥
हुकमे आवै हुकमे जावै हुकमे रहै समाई ।
पूरे गुर ते साचु कमावै गति मिति सबदे पाई ॥२२॥

आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले सुंन निरंतरि वासु लीआ ।
अकलपत मुद्रा गुर गिआनु बीचारीअले घटि घटि साचा सरब जीआ ॥
गुर बचनी अविगति समाईऐ ततु निरंजनु सहजि लहै ।
नानक दूजी कार न करणी सेवै सिखु सु खोजि लहै ।
हुकमु बिसमादु हुकमि पछाणै जीअ जुगति सचु जाणै सोई ।
आपु मेटि निरालमु होवै अंतरि साचु जोगी कहीऐ सोई ॥२३॥

अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुणु थीआ ।
सतिगुर परचै परम पदु पाईऐ साचै सबदि समाइ लीआ ॥
एके कउ सचु एका जाणै हउमै दूजा दूरि कीआ ।
सो जोगी गुर सबदु पछाणै अंतरि कमलु प्रगासु थीआ ॥
जीवतु मरै ता सभु किछु सूझै अंतरि जाणै सरब दइआ ।
नानक ता कउ मिलै वडाई आपु पछाणै सरब जीआ ॥२४॥

साचौ उपजै साचि समावै साचे सूचे एक मइआ ।
झूठे आवहि ठवर न पावहि दूजै आवा गउणु भइआ ॥
आवा गउणु मिटै गुर सबदी आपे परखै बखसि लइआ ।
एका बेदन दूजै बिआपी नामु रसाइणु वीसरिआ ॥
सो बूझै जिसु आपि बुझाए गुर कै सबदि सु मुकतु भइआ ।
नानक तारे तारणहारा हउमै दूजा परहरिआ ॥२५॥

मनमुखि भूलै जम की काणि । पर घरु जोहै हाणे हाणि ॥
मनमुखि भरमि भवै बेबाणि । वेमारगि मूसै मंत्रि मसाणि ॥
सबदु न चीनै लवै कुबाणि । नानक साचि रते सुखु जाणि ॥२६॥

गुरमुखि साचे का भउ पावै । गुरमुखि बाणी अघड़ु घड़ावै ॥
गुरमुखि निरमल हरि गुण गावै । गुरमुखि पवित्रु परम पदु पावै ॥
गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै । नानक गुरमुखि साचि समावै ॥२७॥

गुरमुखि परचै बेद बीचारी । गुरमुखि परचै तरीऐ तारी ॥
गुरमुखि परचै सु सबदि गिआनी । गुरमुखि परचै अंतर बिधि जानी ॥
गुरमुखि पाईऐ अलख अपारु । नानक गुरमुखि मुकति दुआरु ॥२८॥

गुरमुखि अकथु कथै बीचारि । गुरमुखि निबहै सपरवारि ॥
गुरमुखि जपीऐ अंतरि पिआरि । गुरमुखि पाईऐ सबदि अचारि ॥
सबदि भेदि जाणै जाणाई । नानक हउमै जालि समाई ॥२९॥

गुरमुखि धरती साचै साजी । तिस महि ओपति खपति सु बाजी ॥
गुर कै सबदि रपै रंगु लाइ । साचि रतउ पति सिउ घरि जाइ ॥
साच सबद बिनु पति नही पावै । नानक बिनु नावै किउ साचि समावै ॥३०॥

गुरमुखि असट सिधी सभि बुधी । गुरमुखि भवजलु तरीऐ सच सुधी ॥
गुरमुखि सर अपसर बिधि जाणै । गुरमुखि परविरति नरविरति पछाणै ॥
गुरमुखि तारे पारि उतारे । नानक गुरमुखि सबदि निसतारे ॥३१॥

नामे राते हउमै जाइ । नामि रते सचि रहे समाइ ।
नामि रते जोग जुगति बीचारु । नामि रते पावहि मोख दुआरु ॥
नामि रते त्रिभवण सोझी होइ । नानक नामि रते सदा सुखु होइ ॥३२॥

नामि रते सिध गोसटि होइ । नामि रते सदा तपु होइ ॥
नामि रते सचु करणी सारु । नामि रते गुण गिआन बीचारु ॥
बिनु नावै बोलै सभु वेकारु । नानक नामि रते तिन कउ जैकारु ॥३३॥

पूरे गुर ते नामु पाइआ जाइ । जोग जुगति सचि रहै समाइ ॥
बारह महि जोगी भरमाए संनिआसी छिअ चारि ।
गुर कै सबदि जो मरि जीवै सो पाए मोख दुआरु ॥
बिनु सबदै सभि दूजै लागे देखहु रिदै बीचारि ।
नानक वडे से वडभागी जिनी सचु रखिआ उरधारि ॥३४॥

गुरमुखि रतनु लहै लिव लाइ । गुरमुखि परखै रतनु सुभाइ ॥
गुरमुखि साची कार कमाइ । गुरमुखि साचे मनु पतीआइ ॥
गुरमुखि अलखु लखाए तिसु भावै । नानक गुरमुखि चोट न खावै ॥३५॥

गुरमुखि नामु दानु इसनानु । गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ॥
गुरमुखि पावै दरगह मानु । गुरमुखि भउ भंजनु परधानु ॥
गुरमुखि करणी कार कराए । नानक गुरमुखि मेलि मिलाए ॥३६॥

गुरमुखि सासत्र सिम्रिति बेद । गुरमुखि पावै घटि घटि भेद ॥
गुरमुखि वैर विरोध गवावै । गुरमुखि सगली गणत मिटावै ॥
गुरमुखि राम नामि रंगि राता । नानक गुरमुखि खसमु पछाता ॥३७॥

बिनु गुर भरमै आवै जाइ । बिनु गुर घाल न पवई थाइ ॥
बिनु गुर मनूआ अति डोलाइ । बिनु गुर त्रिपति नही बिखु खाइ ॥
बिनु गुर बिसीअरु डसै मरि वाट । नानक गुर बिनु घाटे घाट ॥३८॥

नाम ततु सभ ही सिरि जापै । बिनु नावै दुखु कालु संतापै ॥
ततो ततु मिलै मनु मानै । दूजा जाइ इकतु घरि आनै ॥
बोलै पवना गगनु गरजै । नानक निहचलु मिलणु सहजै ॥५०॥
अंतरि सुंनं बाहरि सुंनं त्रिभवण सुंनमसुंनं ।
चउथे सुंनै जो नरु जाणै ता कउ पापु न पुंनं ॥
घटि घटि सुंन का जाणै भेउ । आदि पुरखु निरंजन देउ ॥
जो जनु नाम निरंजन राता । नानक सोई पुरखु बिधाता ॥५१॥
सुंनो सुंनु कहै सभु कोई । अनहत सुंनु कहा ते होई ॥
अनहत सुंनि रते से कैसे । जिस ते उपजे तिस ही जैसे ॥
ओइ जनमि न मरहि न आवहि जाहि । नानक गुरमुखि मनु समझाहि ॥५२॥
नउ सर सुभर दसवै पूरे । तह अनहत सुंन वजावहि तूरे ॥
साचै राचे देखि हजूरे । घटि घटि साचु रहिआ भरपूरे ॥
गुपती बाणी परगटु होइ । नानक परखि लए सचु सोइ ॥५३॥
सहज भाइ मिलीऐ सुखु होवै । गुरमुखि जागै नीद न सोवै ॥
सुंन सबदु अपर्मपरि धारै । कहते मुकतु सबदि निसतारै ॥
गुर की दीखिआ से सचि राते । नानक आपु गवाइ मिलणु नही भ्राते ॥५४॥
कुबुधि चवावै सो कितु ठाइ । किउ ततु न बूझै चोटा खाइ ॥
जम दरि बाधे कोइ न राखै । बिनु सबदै नाही पति साखै ॥
किउ करि बूझै पावै पारु । नानक मनमुखि न बुझै गवारु ॥५५॥
कुबुधि मिटै गुर सबदु बीचारि । सतिगुरु भेटै मोख दुआर ॥
ततु न चीनै मनमुखु जलि जाइ । दुरमति विछुड़ि चोटा खाइ ॥
मानै हुकमु सभे गुण गिआन । नानक दरगह पावै मानु ॥५६॥
साचु वखरु धनु पलै होइ । आपि तरै तारे भी सोइ ॥
सहजि रता बूझै पति होइ । ता की कीमति करै न कोइ ॥
जह देखा तह रहिआ समाइ । नानक पारि परै सच भाइ ॥५७॥
सु सबद का कहा वासु कथीअले जितु तरीऐ भवजलु संसारो ।
त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिसु कहु कवनु अधारो ॥
बोलै खेलै असथिरु होवै किउ करि अलखु लखाए ।
सुणि सुआमी सचु नानकु प्रणवै अपणे मन समझाए ॥
गुरमुखि सबदे सचि लिव लागै करि नदरी मेलि मिलाए ।
आपे दाना आपे बीना पूरै भागि समाए ॥५८॥
सु सबद कउ निरंतरि वासु अलखं जह देखा तह सोई ।
पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई ॥
नदरि करे सबदु घट महि वसै विचहु भरमु गवाए ।
तनु मनु निरमलु निरमल बाणी नामो मंनि वसाए ।
सबदि गुरू भवसागरु तरीऐ इत उत एको जाणै ।
चिहनु वरनु नही छाइआ माइआ नानक सबदु पछाणै ॥५९॥

हिरदा देहु न होती अउधू तउ मनु सुंनि रहै बैरागी ।
नाभि कमलु असथंभु न होतो ता निज घरि बसतउ पवनु अनरागी ॥
रूपु न रेखिआ जाति न होती तउ अकुलीणि रहतउ सबदु सुसारु ।
गउनु गगनु जब तबहि न होतउ त्रिभवण जोति आपे निरंकारु ॥
वरनु भेखु असरूपु सो एको एको सबदु विडाणी ।
साच बिना सूचा को नाही नानक अकथ कहाणी ॥६७॥
कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा कितु कितु दुखि बिनसि जाई ।
हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई ॥
गुरमुखि होवै सु गिआनु ततु बीचारै हउमै सबदि जलाए ।
तनु मनु निरमलु निरमल बाणी साचै रहै समाए ॥
नामे नामि रहै बैरागी साचु रखिआ उरिधारे ।
नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै बीचारे ॥६८॥

गुरमुखि साचु सबदु बीचारै कोइ ।
गुरमुखि सचु बाणी परगटु होइ ॥
गुरमुखि मनु भीजै विरला बूझै कोइ ।
गुरमुखि निज घरि वासा होइ ॥
गुरमुखि जोगी जुगति पछाणै ।
गुरमुखि नानक एको जाणै ॥६९॥
बिनु सतिगुर सेवे जोगु न होई ।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न कोई ॥
बिनु सतिगुर भेटे नामु पाइआ न जाइ ।
बिनु सतिगुर भेटे महा दुखु पाइ ॥
बिनु सतिगुर भेटे महा गरब गुबारि ॥
नानक बिनु गुर मुआ जनमु हारि ॥७०॥
गुरमुखि मनु जीता हउमै मारि ।
गुरमुखि साचु रखिआ उरधारि ॥
गुरमुखि जगु जीता जमकालु मारि बिदारि ॥
गुरमुखि दरगह न आवै हारि ॥
गुरमुखि मेलि मिलाए सो जाणै ।
नानक गुरमुखि सबदि पछाणै ॥७१॥

सबदै का निबेड़ा सुणि तू अउधू बिनु नावै जोगु न होई ।
नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई ॥
नामै ही ते सभु परगटु होवै नामे सोझी पाई ।
बिनु नावै भेख करहि बहुतेरे सचै आपि खुआई ॥
सतिगुर ते नामु पाइ अउधू जोग जुगति ता होई ।
करि बीचारु मनि देखहु नानक बिनु नावै मुकति न होई ।७२॥

चरपट (एक योगी विशेष) पूछता है "हे अवधूत (त्यागी) नानक (सुनिए) (यह) जगत् दुस्तर सागर कहा जाता है। (मुझसे) बताइए कि किस प्रकार (इसको) पार हुआ जाय ? (इस समस्या—प्रश्न पर) (आप अपने सच्चे विचार दीजिए, (प्रकट कीजिए) । (चरपट योगी के उपर्युक्त प्रश्न को सुन कर गुरु नानक जी इस प्रकार कहते हैं)— (हे योगी), तू आप ही प्रश्न करता है और आप ही समझता है, (भला) ऐसे (व्यक्ति) को क्या उत्तर दिया जाय ? (तात्पर्य यह कि तूने तो जगत् को स्वयं ही दुस्तर कह दिया है इसका उत्तर भी नहीं हो सकता क्योंकि जो दुस्तर है, वह तरा किस प्रकार जा सकता है) ? हे पार पहुँचे हुए (सिद्ध), ['पारगरामी' शब्द गुरु नानक देव ने व्यंग्य रूप में कहा है], सच बता तुझे (इस विचार में) क्या बैठने दिया जाय ? (तात्पर्य यह कि तू ने तो इसका निर्णय पहले से कर लिया है; जगत् को दुस्तर समझ कर पहले छोड़ बैठा है और इससे अपने को पार पहुँचा हुआ मान लिया है। भला जिस वस्तु को तू छोड़ बैठा, उससे पार कैसे हो गया ? तुझे तो विचार में बैठने नहीं देना चाहिए, क्योंकि तू तो प्रश्न करके उसका उत्तर स्वयं देकर फिर पूछने बैठा है कि संसार को किस प्रकार तरना चाहिए) ॥५॥

(गुरु नानक जी इस पद में योगियों को और भी स्पष्ट उत्तर देते हैं)—जिस प्रकार जल में (रहते हुए भी) कमल निर्लिप्त रहता है और (जिस प्रकार) जल-मुर्गी नदी के सामने (नदी में तरती है और उसके पंख नहीं भीगते हैं) (उसी प्रकार तुम लोग भी संसार में रहते हुए, इससे अलिप्त रहो) । अपनी सुरति (स्मृति) शब्द—नाम में लगा कर, संसार सागर तरना चाहिए। नानक (तो हरी के) नाम का वर्णन करता है। एकान्त में रहकर एकनिष्ट मन में निवास करे और आशाओं में निराश रहे। स्वयं अगम अगोचर (हरी) का साक्षात्कार करे (और दूसरों को भी साक्षात्कार कराए; नानक कहते हैं कि ऐसे (पुरुषों के) हम दास हैं ॥६॥

(उन सिद्धों—योगियों में से एक सिद्ध प्रश्न करता है)— "हे स्वामी, हमारी प्रार्थना सुनिए, (मैं) सच्चे विचार पूछता हूँ। प्रश्न सुन कर रोष न कीजिए, (और विचार पूर्वक स्पष्ट) उत्तर दीजिए—गुरु के द्वार की किस प्रकार प्राप्ति होती है ?" (गुरु नानक देव उत्तर देते हैं)— नानक (कहता है, यदि (हरि-नाम) मनुष्य का आधार बन जाय तो वह चलायमान मन अपने अपनी घर में टिक जाता है। (यदि) सच (परमात्मा) जिस अपने आप का कर्ता पुरुष स्वयं ही (अपने से जीव को मिला) लेता है ॥ ६ ॥

(उस गोष्ठी में एक योगी—"लोहारीपा गोरखनाथ का शिष्य गुरु नानक से कहता है कि— हम लोग हाट और रास्तों से विरक्त (दूर) (वन में) वृक्षों-पुष्पों तथा वनों में निवास करते हैं। कन्दमूल (आदि) का आहार करते हैं (और हे) अवधूत (नानक) (हम लोग) ज्ञान की ही बात बोलते हैं। तीर्थों में स्नान करने से सुख तथा फल की प्राप्ति होती है (और इनसे) किसी प्रकार की मैल नहीं लगती। (और हम सिद्ध—योगी करीब ही भ्रमण कर करके तीर्थों में स्नान करते हैं यह हम दिखाता है) ।' गोरखनाथ जी का पुत्र लोहारीपा कह रहा है कि यही योग की विधि है ॥ ७ ॥

(गुरु नानक देव लोहारीपा की बातों का खण्डन कर अपनी बातों का प्रतिपादन करते हैं)— हाट और बाट में निसे (सजग) नींद न आवे (और) पर-स्त्री (तथा पर-धन) के

किस प्रकार (जीव) बँधा है और किस प्रकार सर्पिणी (माया) ने (उसे) खा लिया है ? किस प्रकार (जीव ने) (हरी को) खो दिया और किस प्रकार (उसे) प्राप्त किया ? (जीव) किस प्रकार निर्मल (पवित्र) होता है ? और किस प्रकार (उसके) अंधकार (अज्ञान) का नाश होता है ? जो इन तत्त्वों का विचार करे, वह हमारा गुरु है ॥ १४ ॥

दुर्बुद्धि से ही (जीव को) बाँध रखा है और सर्पिणी (माया ने (उसे) खा लिया है। मनमुख ने (हरी को) खो दिया है और गुरमुख ने (हरी को) प्राप्त कर लिया है। सद्गुरु के मिलने पर ही अंधकार नष्ट होता है। नानक कहते हैं कि अहंकार को मेट कर (जीव परमात्मा में) समा जाता है ॥१५॥

शून्यावस्था (अफुर अवस्था में) (मन को) बाँध दो, (टिका दो)। फिर (मन रूपी) हंस नहीं उड़ता और (शरीर रूपी) दीवाल भी नहीं गिरती। (गोपी) सहजावस्था—चतुर्थ अवस्था—तुरीयावस्था रूपी गुफा को (अपना) सच्चा घर जानता है। हे नानक सच्चे (प्रभु) का सच्चा (मनुष्य) ही अच्छा (लगता) है ॥१६॥

किस कारण घरबार छोड़ कर उदासी (विरक्त; त्यागी) हो गए ? किस कारण इस वेश में निवास किया, (तात्पर्य यह कि इस वेश को धारण किया) ? तुम किस सौदे के व्यापारी (व्यापारी हो) ? किस प्रकार (इस) साथ (समूह) को पार करोगे ?

गुरमुखों को खोजते हुए (मैं) (विरक्त-त्यागी हो गया। (प्रभु के) दर्शन के निमित्त इस वेश को धारण किया। हम सत्य रूपी सौदे के ही व्यापारी हैं और गुरमुखों के द्वारा साथियों (समूह) का पार उतारेंगे ॥१८॥

(हे पुरुष) किस विधि से (तू ने) अपने जीवन को सफल किया है, (जिससे मनुष्य से देवता जैसे रूप दिखाई पड़ते हो) ? किस (वस्तु) से तू ने अपना मन जोड़ा है (अपनी चित्तवृत्ति कहाँ लगाई है) ? किस उपाय से (तूने) (जीवों को बन्धन में डालनेवाली) माया और इच्छा को खा लिया है ? किस विधि से (तूने हरी की अनन्य और) निरन्तर ज्योति प्राप्त की है ? बिना दाँतों के तू ने (विकार रूपी) लोहे को किस प्रकार भक्षण कर लिया ? हे नानक (इस वस्तु का) सच्चा सच्चा विचार करो ॥१९॥

सद्गुरु के घर में आकर जन्म लिया तो (उसने) आवागमन को मिटा दिया। [तात्पर्य यह है कि सद्गुरु के सम्पर्क में आने से पिछले संस्कारों (विघ्न) को मिटा कर गुरु के आदेशानुसार नवीन आध्यात्मिक जीवन बिताना प्रारम्भ किया जिससे फलस्वरूप पिछले संस्कार नष्ट हो गए परमात्मा और उस की भक्ति का आनन्दमय जीवन प्राप्त हो गया जिससे जीवन और मरण समाप्त हो गए।] अनाहत (शब्द-नाद के संगीत) में (मैं) अनुरक्त हूँ (और शब्द से) इस मन को युक्त कर लिया है। (गुरु के) शब्द द्वारा (मैंने) आशा और इच्छा भी जला दी है। गुरु की शिक्षा द्वारा (परमात्मा की अनन्य और) निरन्तर ज्योति प्राप्त की है। तीनों गुणों—सत्त्व रज तम—को मिटा कर (विकार रूपी) लोहे को खा गया। हे नानक तारनेवाला (हरी) ही (जीवों को) तारता है ॥२०॥

(सृष्टि रचना के पूर्व) आदि (काल) की क्या अवस्था थी ? इसका किस प्रकार विचार करते हो ? उस समय) शून्य (निर्विकार) कहाँ बसता था ? ज्ञान की कौन कौन सी मुद्रायें कहलाती हैं ? [योगियों के पाँच प्रकार के आसन—(चचरी भूचरी अगोचरी खेचरी

गुरु के द्वारा (हरी का) नाम, दान और स्नान (पवित्रता आदि गुण) प्राप्त होते हैं। गुरु के द्वारा उन्मनावस्था में ध्यान लग जाता है और गुरु की शिक्षा द्वारा ही (शिष्य) (हरी के) दरबार में सम्मान पाता है। गुरुमुख भय को नष्ट करनेवाले और अभय (हरी) को प्राप्त कर लेता है। गुरुमुख (गुरु की बताई हुई) अच्छी करनी और काम (स्वयं करता है और दूसरों से भी) कराता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख को (हरी अपने में) मिला कर एक कर लेता है ॥१६॥

गुरुमुख शास्त्रों, स्मृतियों और वेद के ज्ञान को जानता है। गुरुमुख घट-घट के भेद को अपने घट में जानता है (अर्थात् वह यह समझता है कि जो हरी मेरे घट में रम रहा है वही प्रत्येक घट में व्याप्त है)। गुरुमुख वैर विरोध को नष्ट कर देता है। गुरुमुख (अहंकार में होने वाले) सारे हिसाब-किताब को मिटा देता है। गुरुमुख रामनाम के रंग में रंगा रहता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख पति (परमात्मा) को पहचान लेता है ॥१७॥

बिना गुरु के (मनुष्य माया के) भ्रम में पड़कर आता-जाता रहता है (जन्मता मरता रहता है)। बिना गुरु के की हुई कमाई (परमात्मा के यहाँ) प्रामाणिक नहीं होती। बिना गुरु के मन (चंचल होकर) अत्यधिक डोलता रहता है। बिना गुरु के (मनुष्य माया) का विष खाता है, (जिससे) तृप्त नहीं होता है। बिना गुरु के (मनुष्य को) (विषयों का) सर्प डस लेता है, और (वह) रास्ते ही में मर जाता है। नानक कहते हैं कि (इस प्रकार) बिना गुरु के घाटा ही घाटा है ॥१८॥

जिसे गुरु मिलता है, उसे (संसार-सागर से) पार उतार देता है। (वह गुरु शिष्य के) अवगुणों को दूर कर गुणों द्वारा उसका उद्धार कर देता है। (गुरु के) शब्द पर ही विचार करने से मुक्ति और महान् आनन्द (की प्राप्ति होती है)। गुरुमुख (इस संसार के युद्ध में) कभी हार कर नहीं आता। शरीर हाट (बाजार) है और यह मन (उस बाजार का) व्यापारी है (तात्पर्य है मन रूपी व्यापारी से ही शरीर रूपी बाजार चलता है। यदि व्यापारी सच्चा है, तो बाजार भी सुन्दर ढंग से चलता है)। नानक कहते हैं (कि इस शरीर रूपी बाजार में मन रूपी व्यापारी) सहज भाव से सत्य (परमात्मा) का व्यापार करता है ॥१९॥

विशेष : निम्नलिखित (२० वें पद में) श्रीरामचन्द्र जी द्वारा सेतु-बाँधने और लंका जीतने के रूपक के माध्यम से गुरु नानक देव ने गुरुमुख की महत्ता प्रदर्शित की है।

अर्थ : गुरुमुखों ने विधाता (कर्तार, परमात्मा रूपी) पुल बाँध कर देह रूपी लंका जीत ली। (देह रूपी लंका से जब रावण असुर दूर किए गए) (तो कामादिक) दैत्यों का ([illegible]) संहार हुआ। (इस प्रकार) (गुरुमुख रूपी) रामचन्द्र ने अहंकार रूपी रावण को मार डाला। गुरु द्वारा जो परिचय (ज्ञान) प्राप्त हुआ वह विभीषण का भेद (बताना था)। गुरुमुखों ने (संसार—)—सागर से (भारी) पत्थरों को तार दिया। गुरुमुखों ने तैंतीस करोड़ (तात्पर्य यह कि असंख्य मनुष्यों) का उद्धार किया ॥२० ॥

गुरु के द्वारा (मनुष्य) का आना-जाना (जन्मना, मरना) समाप्त हो जाता है। गुरु के द्वारा (परमात्मा के) दरबार में सम्मान प्राप्त होता है। गुरु के द्वारा ही खोटे-खरे (बुरे और अच्छे) की पहचान होती है। गुरु के द्वारा ही सहज ध्यान लगता है।

से तन-मन शीतल हो जाते हैं (और मनुष्य हरी के) रंग में रंग जाता है। नानक कहते हैं कि परमात्मा की कृपादृष्टि से काम-क्रोध रूपी विष को अग्नि का निवारण हो जाता है ॥४७॥

किस प्रकार चन्द्रमा (मनुष्य का मन) ठंढक का घर और अँधेरा बना रहता है ? किस प्रकार प्रकाश करता हुआ सूर्य (ज्ञान) प्रकट होता है ? किस प्रकार काल का देखना समाप्त होता है ? किस विधि से गुरु के द्वारा प्रतिष्ठा होती है ? कौन और (ऐसा) शूरवीर है जो काल का भी संहार करता है ? नानक (इन प्रश्नों को) विचारता है (और उनके उत्तर में) इस प्रकार वचन बोलता है ॥ ४८ ॥

शब्द—नाम का उच्चारण करने से चन्द्रमा में (भाव यह कि चन्द्रमा की भाँति ठंढे और अँधेरे मन में) अनन्त प्रकाश हो जाता है। (जिस प्रकार) चन्द्रमा के घर में सूर्य आकर बसता है तो चन्द्रमा का अन्धकार नष्ट हो जाता है, (तात्पर्य यह कि जब ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश अन्धकारयुक्त (अज्ञानी) मन में पड़ता है तो मन में परम प्रकाश हो जाता है और उसकी कठोर भावना (ठंढक) दूर हो जाती है)। (हरि के) नाम का आश्रय लेकर सुख-दुख को समान (समझा जा सकता है)। (परमात्मा) स्वयं ही (संसार-सागर से) पार उतारने वाला है। गुरु की प्रतीति से मन सत्य (परमात्मा) में मिल जाता है। नानक विनय-पूर्वक कहता है (कि ऐसे व्यक्ति को) काल ग्रसता नहीं करता (वह काल के पाश से मुक्त हो जाता है) ॥ ४९ ॥

नाम-तत्त्व सब का शिरोमणि प्रतीत होता है। (परमात्मा के) तत्त्व में (जब) (जीवात्मा का) तत्त्व मिल जाता है तो मन मान जाता है, (तात्पर्य यह कि मन अपनी चंचलता को त्याग कर शान्त हो जाता है)। (इसमें) द्वैतभाव चला जाता है और हृदय में एक भाव (अद्वैतभाव) आ जाता है। (ऐसी अवस्था में) प्राण बोलने लगते हैं, (भाव यह कि आत्मा में नवीन उमंग आ जाती है, जिससे नवीन जीवन की लहर चल पड़ती है) और गगन (दशम द्वार) गरजने लगता है, (तात्पर्य यह कि परमात्मा के मिलाप की अवस्था प्रबल हो जाती है)। नानक कहते हैं (कि तब मन) निश्चल हो जाता है और (हरी के साथ) मिलाप भी सहज ही हो जाता है ॥ ५० ॥

शून्य (निर्गुण हरी) (सबके) भीतर है, वहाँ (सब के) बाहर भी है (इस प्रकार समस्त) त्रिभुवन शून्य (निर्गुण हरी) से (ही व्याप्त है)। जो व्यक्ति चतुर्थ पद—सहजावस्था के द्वारा शून्य (निर्गुण हरी) को जानता है, उसे पाप-पुण्य (का लेप) नहीं लगता। सारे घटों के बीच निर्गुण और आकार हरी का भेद जो जानता है वह आदि पुरुष और निरंजन देव (का ही स्वरूप है)। जो व्यक्ति निरंजन (निर्गुण हरी) के नाम में अनुरक्त है (उसमें शक्ति का आगमन होता है और वह औरों के जीवन का) निर्माता हो जाता है—ऐसा नानक (का कथन है) ॥ ५१ ॥

सभी कोई 'शून्य शून्य' ('निर्गुण ब्रह्म' 'निर्गुण ब्रह्म') कहते हैं। किन्तु उस अनाहत शून्य—(निर्गुण हरी) (की प्राप्ति) किस प्रकार हो ? जो अनाहत (निर्गुण हरी) में अनुरक्त हैं, वे किस प्रकार के मनुष्य हैं ? इसका उत्तर यह है कि जो अनाहत शून्य में निमग्न हैं) वे उसी के समान हैं जिससे उत्पन्न हुए हैं। वे (पुरुष) न जन्मते हैं न मरते हैं न (कहीं) जाते हैं (और) न (कहीं) आते हैं (क्योंकि वे निर्गुण परमात्मा में मिलकर एक हो गए हैं)। नानक कहता है कि गुरु के द्वारा मन को समझाओ ॥५२॥

नौ गोलकों (दो नासिका-छिद्र, दो कर्णेन्द्रिय के छिद्र, दो आँखें, एक मुख, एक लिंगद्वार और एक गुदा-द्वार) को (पूर्ण रीति से) बंद करे और फिर दसवें द्वार को पूर्ण रीति से बंद करे, (तात्पर्य यह कि इन्द्रियों को विवेक, वैराग्य और अभ्यास द्वारा इतना अधिक साध ले कि विषयों के प्रति न तो उनकी इच्छा हो और न आसक्ति हो और परमात्मा के चिन्तन की वृत्ति भी परमात्मा में सहज युक्त रहे) वहाँ अनाहत-शून्य का तूर (तुरही बाजा) बजने लगता है (तात्पर्य यह कि आत्मिक-मण्डल का संगीत होने लगता है, पूर्ण आनन्द प्राप्त होने लगता है)। (ऐसे साधक) सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त होकर, (उसके) अति निकट रहते हैं (और यह अनुभव करते हैं कि) सत्य (परमात्मा) प्रत्येक घट में परिपूर्ण है (व्याप्त है)। वाणी का गुप्त अर्थ भी प्रकट हो जाता है। नानक कहते हैं कि जिस सत्य की ओर वाणी संकेत करती थी वह प्रत्यक्ष हो जाता है ॥५३॥

सहज भाव से (परमात्मा के साथ) मिलने से, (प्रेम) रस होता है। गुरुमुख (परमात्मा से सहज भाव से मिल कर) (ज्ञान में) जगता है, (वह फिर अज्ञान-निद्रा में) नहीं सोता। सत्य शब्द (अजपा जाप) (उसे) अन्तःकरण (हृदय) में धारण किए रहता है— पिरोए रहता है। (वह) नाम जपते हुए मुक्त होकर (औरों को भी) शब्द द्वारा तार देता है। गुरु के उपदेश (दीक्षा) से (वह) सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त हुआ है। नानक कहते हैं कि (वह) अहंकार गँवा कर (परमात्मा से) मिला है, (अब उसमें) कोई भ्रान्ति—संशय भावना नहीं है ॥५४॥

(जो व्यक्ति शब्द को छोड़ कर) दुर्बुद्धि (की बातें) बोलता है, (भाव यह कि ऊटपटांग बातें करता है) (उसका) क्या ठिकाना है? (वह) (परमात्मा के) तत्त्व को क्यों नहीं समझता, (जिसके फलस्वरूप) चोटें खाता है? (वह) यमराज के दरवाजे पर बाँधा जाता है और उसकी रक्षा कोई भी नहीं कर सकता। बिना शब्द के (उसकी) न तो कहीं प्रतिष्ठा होती है और न कोई साख। (ऐसा व्यक्ति) (परमात्मा को) कैसे समझे (जिससे वह संसार-सागर से) पार हो? नानक कहते हैं कि मनमुख घोर गँवार (परमात्मा को) नहीं समझता ॥५५॥

गुरु के शब्द पर विचार करने से दुर्बुद्धि मिट जाती है। सद्गुरु के मिलने पर मोक्ष का द्वार (प्राप्त हो जाता है)। मनमुख शब्द को नहीं पहचानता, (जिससे वह) जल जाता है। (वह पगला) दुर्बुद्धि (के कारण परमात्मा से) बिछुड़ कर चोटें खाता है। (परमात्मा का) हुक्म मानने पर सभी सुख और ज्ञान (अपने आप आ जाते हैं)। नानक कहते हैं (कि ऐसा व्यक्ति) (परमात्मा के) दरबार में सम्मान पाता है ॥५६॥

(यदि) (मनुष्य के) पल्ले—पास में सत्य के सौदे का धन होता है (तो) वह स्वयं तरता है (और दूसरों को भी) तारता है। (जो परमात्मा को) समझ कर सहजावस्था—चतुर्थ पद में अनुरक्त है (उसकी सम्यक्) प्रतिष्ठा होती है। ऐसे व्यक्ति का मूल्य कोई भी नहीं आँक सकता। (ऐसा व्यक्ति) जहाँ भी देखता है वहीं ही (पूर्ण निरंजन प्रभु को) व्याप्त (देखता है)। नानक कहते हैं कि सत्य भाव के कारण वह संसार से पार हो जाता है ॥५७॥

हो (इसका वास्तविक) अर्थ समझता है। नानक जो कुछ भी कहता है, सत्य ही कहता है सत्य (हरी) में रंगने से (उसका रंग) कभी नहीं जाता है ॥ ६५ ॥

(योगियों का प्रश्न है)— जब यह हृदय और शरीर नहीं थे (तात्पर्य यह कि जब इनका निर्माण नहीं हुआ था) तो मन किस स्थान पर रहता था ? जब नाभि कमल (प्राणों का) स्तम्भ— सहारा नहीं था तो प्राणवायु किस घर में टिकती थी ? (श्वासों का आसरा नाभि को माना गया है)। जब न कोई रूप था न रेखा थी तब शब्द द्वारा किस प्रकार लिव लग सकती थी ? जब (माता के) रज (और पिता के) वीर्य (से निर्मित) यह शरीर न था, (तो परमात्मा की) मिति और कीमत तो पाई नहीं जाती थी ? जब न कोई वर्ण तथा रूप दिखते थे उस समय सत्य (परमात्मा) कैसे दिखाई देता था ? (गुरु नानक देव ने अंतिम प्रश्न का उत्तर पहले दिया है। प्रश्न यह था कि जब हरी का न कोई वर्ण है न रूप है, तो उसका ध्यान किस प्रकार किया जाता था ?) (उत्तर इस प्रकार है)— नानक (कहता है) कि हे वैरागी (जब प्रभु के) नाम में अनुरक्त होया जाय तो (प्रत्येक स्थान में) सच्चा (हरी दिखने लग जाता है) ॥ ६६ ॥

विशेष यहाँ पहले प्रश्नों के उत्तर दिये जा रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर में विशेष बात यह है कि संसार निर्माण के पूर्व सारी चेतन सत्ता जो पृथक् पृथक् प्रतीत हो रही है (जैसे प्राण वायु, पृथ्वी आकाश आदि) वह अपने आदि स्रोत— निर्गुण ब्रह्म में लीन थी।

अर्थ —हे अवधूत वैरागी जब हृदय और शरीर न थे (जब वे सत्ता में नहीं आए थे) उस समय मन शून्य (निर्गुण ब्रह्म) में ही स्थित था। नाभि-कमल (जो प्राणवायु का) सहारा है नहीं था तो उस समय वायु (प्राणवायु) अपने निज घर (निर्गुण स्वरूप) में ही लगती थी। जब न कोई रूप था न कोई रेखा थी उस समय तत्त्व रूप शब्द कुल-रहित (परमात्मा—निर्गुण ब्रह्म) में बसता था। जिस समय पृथ्वी (भुवन) और आकाश नहीं थे उस समय त्रिभुवन में व्याप्त (परमात्मा की अगाध) ज्योति अपने ही निरंकार स्वरूप में स्थित थी। (समस्त) वर्ण वेष और रूप (एक हरी के ही हैं)। एक आश्चर्य रूप शब्द (परब्रह्म) के ही (सारे वर्ण वेष और रूप हैं)। सत्यस्वरूप (हरी), जिसकी कहानी अकथनीय है, (उसे जाने बिना) कोई भी (प्राणी) पवित्र नहीं हो सकता ॥६७॥

(हे अवधूत) पुरुष किस-किस ढंग से जगत् की उत्पत्ति होती है और किस-किस दुःख से यह नष्ट हो जाता है ? (अगली पंक्तियों में गुरु नानक देव का उत्तर है)—(हे अवधूत) पुरुष अहंकार से जगत् उत्पन्न होता है और नाम भुलाने पर दुःख पाता है। (जो व्यक्ति) गुरु द्वारा दीक्षित होता है वही ब्रह्मज्ञान के तत्त्व पर विचार करता है और शब्द—नाम के द्वारा अहंकार जला देता है। (उसका) तन और मन निर्मल हो जाते हैं (और उसकी) वाणी भी पवित्र हो जाती है। वह सत्यस्वरूप (हरी) में समाया रहता है। (वह व्यक्ति) नाम में ही (अनुरक्त होने के कारण संसार से) विरागी—विरक्त रहता है और अपने हृदय में सत्य (हरी) को धारण किए रहता है। नानक (का यह मत है) कि नाम के बिना योग कभी (सिद्ध) नहीं हो सकता (इस तथ्य को) हृदय में विचार कर देख लो ॥६८॥

ही (इसका वास्तविक) अर्थ समझता है। नानक जो कुछ भी कहता है, सत्य ही कहता
सत्य (हरी) में रँगने से (उसका रँग) कभी नहीं जाता है ॥ ६५ ॥

(योगियों का प्रश्न है)— जब यह हृदय और शरीर नहीं थे (तात्पर्य यह कि
इनका निर्माण नहीं हुआ था) तो मन किस स्थान पर रहता था ? जब नाभि-कमल (
का) स्तम्भ— सहारा नहीं था तो प्राणवायु किस घर में टिकती थी ? (श्वासों का
नाभि को माना गया है)। जब न कोई रूप था न रेखा थी तब शब्द द्वारा किस
लिव लग सकती थी ? जब (माता के) रज (और पिता के) वीर्य (से निर्मित) यह
नहीं था (तो परमात्मा की) मिति और कीमत तो पाई नहीं जाती थी ? जब न कोई
तथा रूप दिखते थे उस समय सत्य (परमात्मा) कैसे दिखाई देता था ? (गुरु नानक
अन्तिम प्रश्न का उत्तर पहले दिया है। प्रश्न यह था कि जब हरी का न कोई वर्ण है न
तो उसका ध्यान किस प्रकार किया जाता था ?) (उत्तर इस प्रकार है)— नानक (
है) कि हे वैरागी (जब प्रभु के) नाम में अनुरक्त होया जाय तो (प्रत्येक स्थान में)
(हरी दिखने लग जाता है) ॥ ६६ ॥

विशेष यहाँ पहले प्रश्नों के उत्तर दिये जा रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर में विशेष
यह है कि संसार निर्माण के पूर्व सारी चेतन सत्ता जो पृथक् पृथक् प्रतीत हो रही है (
प्राण, वायु, पृथ्वी आकाश आदि) वह अपने आदि स्रोत— निर्गुण ब्रह्म में लीन थी।

अर्थ —हे अवधूत वैरागी जब हृदय और शरीर न थे (जब ये सत्ता में नहीं
थे) उस समय मन शून्य (निर्गुण ब्रह्म) में ही स्थित था। नाभि-कमल (जो प्राणवायु
सहारा है नहीं था तो उस समय वायु (प्राणवायु) अपने निज घर (निर्गुण स्वरूप
ही बसती थी। जब न कोई रूप था न कोई रेखा थी उस समय तत्त्व रूप शब्द शून्य
(परमात्मा—निर्गुण ब्रह्म) में बसता था। जिस समय पृथ्वी (भुवन) और आकाश
थे उस समय त्रिभुवन में व्याप्त (परमात्मा की अखण्ड) ज्योति अपने ही निरंकार
में स्थित थी। (समस्त) वर्ण वेष और रूप (एक हरी के ही हैं) एक आश्चर्य रूप
(परमात्मा) के ही (सारे वर्ण वेष और रूप हैं)। सत्यस्वरूप (हरी), जिसको
अकथनीय है, (उसे जाने बिना) कोई भी (प्राणी) पवित्र नहीं हो सकता ॥६७॥

(हे सम्माननीय) पुरुष किस किस ढंग से जगत् की उत्पत्ति होती है और किस-
दुःख से यह नष्ट हो जाता है ? (आगे की पंक्तियों में गुरु नानक देव का उत्तर है)—
सम्माननीय) पुरुष अहंकार से जगत् उत्पन्न होता है और नाम भूलने पर दुःख पाता
(जो व्यक्ति) गुरु द्वारा दीक्षित होता है, वही ब्रह्मज्ञान के तत्त्व पर विचार करता है
शब्द—नाम के द्वारा अहंकार जला देता है। (उसके) तन और मन निर्मल हो जा
(और उसकी) वाणी भी पवित्र हो जाती है। वह सत्यस्वरूप (हरी) में समाया र
है। (वह अहर्निश) नाम में ही (अनुरक्त होने के कारण संसार से) विरागी—विरक्त र
है और अपने हृदय में सच्चे (हरी) को धारण किए रहता है। नानक (का यह मत
कि नाम के बिना योग कभी (सिद्ध) नहीं हो सकता (इस तथ्य को) हृदय में विचार
देख लो ॥६८॥

कोई (विरला) ही गुरु के द्वारा सत्य शब्द—(हरी) का विचार करता है। गुरु के द्वारा ही सच्ची वाणी प्रकट होती है। गुरु द्वारा मन (परमात्मा के प्रेम-रस में) भीगता है (इस तथ्य को) कोई (विरला) ही समझ सकता है। गुरु की शिक्षा द्वारा ही अपने निज घर (आत्मस्वरूप) में निवास होता है। गुरु द्वारा ही योगी (योग की) युक्ति को समझ लेता है। नानक कहते हैं कि गुरु द्वारा ही (साधक) एक (परमात्मा) को जानता है ॥६९॥

बिना सद्गुरु की सेवा किये योग (कभी सिद्ध) नहीं होता। बिना सद्गुरु के मिले कोई मुक्ति भी नहीं मिलती। [भेटे =भेंट लेकर मिलने को भेंटना कहते हैं]। बिना सद्गुरु के मिले नाम भी नहीं पाया जाता। बिना सद्गुरु के मिले अत्यधिक दुःख प्राप्त होता है। बिना सद्गुरु के मिले अहंकार के महान् अन्धकार में (रहना पड़ता है)। हे नानक बिना गुरु के मिले (मनुष्य) जन्म—जीवन (की बाजी) हार कर (सांसारिक प्रपंचों में ही) मर जाता है ॥७०॥

गुरुमुख (गुरु के अनुयायी) ने अहंकार को नष्ट कर मन जीत लिया है। गुरुमुख ने सत्यस्वरूप (हरी) को हृदय में धारण कर रखा है। गुरुमुख ने यमराज-काल (मृत्यु) को मार कर विदीर्ण करके जगत् जीत लिया है। गुरुमुख (परमात्मा के) दरबार में कभी हार कर नहीं आता (तात्पर्य यह कि शुभ गुणों के आचरण से परमात्मा के दरबार में उसकी प्रतिष्ठा होती है)। जिसे गुरु के द्वारा संयोग करके मिलाता है, वही (इस रहस्य को) जान सकता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख शब्द—नाम को (सच्चे रूप में) पहचानता है ॥७१॥

विशेष —७२ वें और ७३ वें पद में सारी गोष्ठी का सारांश दिया गया है कि नाम के बिना योग नहीं सिद्ध हो सकता। नाम से ही वास्तविक सुख पूर्ण ज्ञान और भक्ति मिलती है। यह नाम गुरु के द्वारा प्राप्त होता है।

अर्थ :—हे अवधूत योगी तू सारे उपदेश—गोष्ठी (शब्द) का निर्णय सुन बिना नाम के योग कभी नहीं (प्राप्त) हो सकता (जो व्यक्ति) नाम में अनुरक्त है वह सच्चा (प्रतिदिन) मतवाला बना रहता है नाम से सुख प्राप्त होता है। नाम से ही समस्त (रहस्य) प्रकट हो जाते हैं नाम से ही सूझ-बूझ—समझ प्राप्त होती है। बिना नाम के (योगी) बहुत से वेश बनाते हैं (पर उस हरी को नहीं पा सकते क्योंकि) प्रभु ने उन्होंने भुला दिया है। हे अवधूत सद्गुरु से नाम प्राप्त होता है और उसी योग की युक्ति भी (प्राप्त) होती है। नानक (का यह कथन है कि) विचार करके मन में (अच्छी तरह से) समझ ले कि बिना नाम के मुक्ति नहीं (प्राप्त) होती ॥७२॥

(हे प्रभु) अपनी गति-मिति तू स्वयं ही जानता है कोई कह कर (उसे) क्या वर्णन करे ? तू आप ही गुप्त है आप ही प्रकट है और आप ही सभी रंगों (आनन्दों) में (रमकर) आनन्द मनाता है। तेरी ही आज्ञा से अनेक साधक-सिद्ध एवं गुरु-शिष्य (तुझे) खोजते फिरते हैं। वे नाम माँगते हैं (और कहते हैं कि)—'यह भिक्षा हमें प्राप्त हो' वे तेरे दर्शन के निमित्त कुरबान (न्योछावर) हैं। अविनाशी प्रभु ने ऐसा खेल रचा है, (कि यह समझ में नहीं आता) (हाँ) गुरु की शिक्षा द्वारा उसकी समझ होती है। नानक कहता

ही (इसका वास्तविक) अर्थ समझता है। नानक जो कुछ भी कहता है, सत्य ही कहता है। धन्य (हरी) में रँगने से (उसका रँग) कभी नहीं जाता है ॥ १५ ॥

(योगियों का प्रश्न है)— जब यह हृदय और शरीर नहीं थे (तात्पर्य यह कि जब इनका निर्माण नहीं हुआ था) तो मन किस स्थान पर रहता था ? जब नाभि-कमल (प्राणों का) स्तम्भ— सहारा नहीं था तो प्राणवायु किस घर में टिकती थी ? (श्वासों का आसरा नाभि को माना गया है)। जब न कोई रूप था न रेखा थी तब शब्द द्वारा किस प्रकार लिव लग सकती थी ? जब (माता के) रज (और पिता के) वीर्य (से निर्मित) यह शरीर न ही था, (तो परमात्मा की) मिति और कीमत तो पाई नहीं जाती थी ? जब न कोई वर्ण तथा रूप दिखते थे उस समय सत्य (परमात्मा) कैसे दिखाई देता था ? (गुरु नानक देव ने अंतिम प्रश्न का उत्तर पहले दिया है। प्रश्न यह था कि जब हरी का न कोई वर्ण है न रूप है, तो उसका ध्यान किस प्रकार किया जाता था ?) (उत्तर इस प्रकार है)— नानक (कहता है) कि हे बैरागी (जब प्रभु के) नाम से अनुरक्त होया जाय तो (प्रत्येक स्थान में) सच्चा (हरी दिखने लग जाता है) ॥ १६ ॥

विशेष यहाँ पहले प्रश्नों के उत्तर दिये जा रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर में विशेष बात यह है कि संसार निर्माण के पूर्व सारी चेतन सत्ता जो पृथक् पृथक् प्रतीत हो रही है (जैसे प्राण, वायु, पृथ्वी आकाश आदि) वह अपने आदि स्रोत— निर्गुण ब्रह्म में लीन थी।

अर्थ —हे मनमुख बैरागी जब हृदय और शरीर न थे (जब ये सत्ता में नहीं आये थे) उस समय मन शून्य (निर्गुण ब्रह्म) में ही स्थित था। नाभि-कमल (जो प्राणवायु का) सहारा है नहीं था तो उस समय वायु (प्राणवायु) अपने निज घर (निर्गुण स्वरूप) में ही बसती थी। जब न कोई रूप था न कोई रेखा थी उस समय तत्व रूप शब्द शून्य रहित (परमात्मा—निर्गुण ब्रह्म) में बसता था। जिस समय पृथ्वी (भुवन) और आकाश नहीं थे उस समय त्रिभुवन में व्याप्त (परमात्मा की ज्योति) ज्योति अपने ही निरंकार स्वरूप में स्थित थी। (समस्त) वर्ण वेश और रूप (एक हरी के ही हैं) एक आश्चर्य रूप शब्द (परमात्मा) के ही (सारे वर्ण वेश और रूप हैं)। सत्यस्वरूप (हरी), जिसको वह्मी अकथनीय है, (उसे जाने बिना) कोई भी (प्राणी) पवित्र नहीं हो सकता ॥१७॥

(हे सम्माननीय) पुरुष किस-किस ढंग से जगत् की उत्पत्ति होती है और किस-किस दुःख से यह नष्ट हो जाता है ? (आगे की पंक्तियों में गुरु नानक देव का उत्तर है)—(हे सम्माननीय) पुरुष अहंकार से जगत् उत्पन्न होता है और नाम भूलने पर दुःख पाता है। (जो व्यक्ति) गुरु द्वारा बोधित होता है, वही ब्रह्मज्ञान के तत्व पर विचार करता है और शब्द—नाम के द्वारा अहंकार जला देता है। (उसके) तन और मन निर्मल हो जाते हैं (और उसकी) वाणी भी पवित्र हो जाती है। वह सत्यस्वरूप (हरी) में समाया रहता है। (वह अहर्निश) नाम में ही (अनुरक्त होने के कारण संसार से) विरागी—विरक्त रहता है और अपने हृदय में सच्चे (हरी) को धारण किए रहता है। नानक (का यह मत है) कि नाम के बिना योग कभी (सिद्ध) नहीं हो सकता (इस तथ्य को) हृदय में विचार कर देख लो ॥१८॥

कोई (विरला) ही गुरु के द्वारा सत्य शब्द—(हरि) का विचार करता है। गुरु के द्वारा ही सच्ची वाणी प्रकट होती है। गुरु द्वारा मन (परमात्मा के प्रेम-रस में) भीगता है (इस तथ्य को) कोई (विरला) ही समझ सकता है। गुरु की शिक्षा द्वारा ही अपने निज घर (आत्मस्वरूप) में निवास होता है। गुरु द्वारा ही योगी (योग की) युक्ति को समझ लेता है। नानक कहते हैं कि गुरु द्वारा ही (साधक) एक (परमात्मा) को जानता है ॥६९॥

बिना सद्गुरु की सेवा किये योग (कभी सिद्ध) नहीं होता। बिना सद्गुरु के मिले कोई मुक्ति भी नहीं मिलती। [भेटे = भेंट लेकर मिलने को भेंटना कहते हैं]। बिना सद्गुरु के मिले नाम भी नहीं पाया जाता। बिना सद्गुरु के मिले अत्यधिक दुःख प्राप्त होता है। बिना सद्गुरु के मिले अहंकार के महान् अन्धकार में (रहना पड़ता है)। हे नानक बिना गुरु के मिले (मनुष्य) जन्म—जीवन (की बाजी) हार कर (सांसारिक प्रपंचों में ही) मर जाता है ॥७०॥

गुरुमुख (गुरु के अनुयायी) ने अहंकार को नष्ट कर मन जीत लिया है। गुरुमुख ने सत्यस्वरूप (हरि) को हृदय में धारण कर रक्खा है। गुरुमुख ने यमराज-काल (मृत्यु) को मार कर विदीर्ण करके जगत् जीत लिया है। गुरुमुख (परमात्मा के) दरबार में कभी हार कर नहीं आता, (तात्पर्य यह कि शुभ गुणों के आचरण से परमात्मा के दरबार में उसकी प्रतिष्ठा होती है)। जिसे गुरु के द्वारा संयोग करके मिलाता है, वही (इस रहस्य को) जान सकता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख शब्द—नाम को (सच्चे रूप में) पहचानता है ॥७१॥

विशेष —७२ वें और ७३ वें पद में सारी गोष्ठी का सारांश दिया गया है कि नाम के बिना योग नहीं सिद्ध हो सकता। नाम से ही वास्तविक सुख पूर्ण ज्ञान और मुक्ति मिलती है। यह नाम गुरु के द्वारा प्राप्त होता है।

अर्थ —हे अवधूत योगी तू सारे उपदेश—गोष्ठी (शब्द) का निचोड़ सुन बिना नाम के योग कभी नहीं (प्राप्त) हो सकता (जो व्यक्ति) नाम में अनुरक्त है वह सदैव (प्रतिदिन) मतवाला बना रहता है नाम से सुख प्राप्त होता है। नाम से ही समस्त (रहस्य) प्रकट हो जाते हैं, नाम से ही सूझ-बूझ—समझ प्राप्त होती है। बिना नाम के (लोग) बहुत से वेश बनाते हैं, (पर उस हरि को नहीं पा सकते, क्योंकि) प्रभु ने उन्होंने भुला दिया है। हे अवधूत सद्गुरु से नाम प्राप्त होता है और तभी योग की युक्ति भी (ज्ञात) होती है। नानक (का यह कथन है कि) विचार करके मन में (अच्छी तरह से) समझ ले कि बिना नाम के मुक्ति नहीं (प्राप्त) होती ॥७२॥

(हे प्रभु) अपनी गति-मिति तू स्वयं ही जानता है कोई क्या कह कर (उसे) क्या वर्णन करे ? तू आप ही गुप्त है आप ही प्रकट है और आप ही सभी रंगों (आनन्दों) में (रमकर) आनन्द मनाता है। तेरी ही आज्ञा से असंख्य साधक-सिद्ध एवं गुरु-शिष्य (तुझे) खोजते फिरते हैं। वे नाम माँगते हैं (और कहते हैं कि)—'यह भिक्षा हमें प्राप्त हो' वे तेरे दर्शन के निमित्त कुरबान (न्यौछावर) हैं। अविनाशी प्रभु ने ऐसा खेल रचा है, (कि यह समझ में नहीं आता) (हाँ) गुरु की शिक्षा द्वारा उसकी समझ होती है। नानक कहता

है कि सभी युगों में (प्रभु) आप ही बरत रहा है, (उसके अतिरिक्त) कोई दूसरा नहीं है ॥७३॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रामकली की वार, महला १,

जोधै वीरै पूरबाणी की धुनी,

सलोकु

सती पापु करि सतु कमाहि । गुर दीखिआ घरि देवण जाहि ॥
इसतरी पुरखै खटिऐ भाउ । भावै आवउ भावै जाउ ॥
सासतु बेदु न मानै कोइ । आपो आपै पूजा होइ ॥
काजी होइ कै बहै निआइ । फेरे तसबी करे खुदाइ ॥
वढी लै कै हकु गवाए । जे को पुछै ता पड़ि सुणाए ॥
तुरक मंत्रु कनि रिदै समाहि । लोक मुहावहि चाड़ी खाहि ॥
चउका दे कै सुचा होइ । ऐसा हिंदू वेखहु कोइ ॥
जोगी गिरही जटा बिभूत । आगै पाछै रोवहि पूत ॥
जोगु न पाइआ जुगति गवाई । कितु कारणि सिरि छाई पाई ॥
नानक कलि का एहु परवाणु । आपे आखणु आपे जाणु ॥१॥

हिंदू कै घरि हिंदू आवै । सूतु जनेऊ पड़ि गलि पावै ।
सूतु पाइ करे बुरिआई । नाता धोता थाइ न पाई ॥
मुसलमानु करे वडिआई । विणु गुर पीरै को थाइ न पाई ॥
राहु दसाइ ओथै को जाइ । करणी बाझहु भिसति न पाइ ॥
जोगी कै घरि जुगति दसाई । तितु कारणि कनि मुंद्रा पाई ॥
मुंद्रा पाइ फिरै संसारि । जिथै किथै सिरजणहारु ॥
जेते जीअ तेते वाटाऊ । चीरी आई ढिल न काऊ ॥
एथै जाणै सु जाइ सिञाणै । होरु फकड़ु हिंदू मुसलमाणै ॥
सभना का दरि लेखा होइ । करणी बाझहु तरै न कोइ ॥
सचो सचु वखाणै कोइ । नानक अगै पुछ न होइ ॥२॥

विशेष :—जोधा और वीरा दो राजपूत थे । ये दोनों भाई भाई थे । वे "राबिनहुड" की भाँति जंगल में रहते थे । अकबर इन्हें वश में करना चाहता था । किन्तु उन्होंने कहलवाया, 'हम ऐसे-वैसे राजपूत नहीं हैं जो अपनी पुत्रियों को देकर तुम्हारे गुलाम हुए हैं ।" अकबर ने इन पर चढ़ाई कर दी । ये दोनों भाई युद्धस्थल में लड़कर स्वर्गधाम सिधारे । चारणों ने इनके शौर्य के गीत बनाए, जिनका उदाहरण निम्नलिखित है—

जगमुख होए राजपूत सुतरी पग्गवारीयां ।
ईवर वणे मण्यारा मिथि करमि चुहारीयां ॥"

इस वार की पौड़ियों को गाने का संकेत इसी वार की धुन पर किया गया है ॥

ऐसे शरीर को हरि का रहनेवाला घर कहना चाहिए, (बल्कि उसका) सिंहा ही कहना चाहिए। गुरु के द्वारा हरि-नाम पाओ (तो इसके) अन्तर्गत लाल-जवाहर (के समान अमूल्य गुण प्राप्त होंगे)। हरी के रहने का स्थान (यह) शरीर बड़ा ही सुहावना है (किन्तु) हरी-हरी नाम को दृढ़ करो। मनमुख अपने आप को नष्ट कर देते हैं; (वे) माया-मोह में ही नित्य दग्ध होते रहते हैं। सभी (प्राणियों) का स्वामी एक मात्र (हरी) है, वह बड़े भाग्यों से पाया जाता है ॥ १ ॥

सलोकु ना सति दुखीआ ना सति सुखीआ ना सति पाणी जंत फिरहि ।
ना सति मूंड मुडाई केसी ना सति पड़िआ देस फिरहि ॥
ना सति रुखी बिरखी पथर आपु तछावहि दुख सहहि ।
ना सति हसती बधे संगल ना सति गाई घाहु चरहि ॥
जिसु हथि सिधि देवै जे सोई जिस नो देइ तिसु आइ मिलै ।
नानक ता कउ मिलै वडाई जिसु घटि भीतरि सबदु रवै ॥
सभि घट मेरे हउ सभना अंदरि जिसहि खुआई तिसु कउणु कहै ।
जिसहि दिखाला वाटड़ी तिसहि भुलावै कउणु ॥
जिसहि भुलाई पंध सिरि तिसहि दिखावै कउणु ॥१॥

सो गिरही जो निग्रहु करै । जपु तपु संजमु भीखिआ करै ॥
पुंन दान का करे सरीरु । सो गिरही गंगा का नीरु ॥
बोलै ईसरु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥४॥

सो अउधूती जो धूपै आपु । भिखिआ भोजनु करै संतापु ॥
अउहठ पटण महि भीखिआ करै । सो अउधूती सिव पुरि चड़ै ॥
बोलै गोरखु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥५॥

सो उदासी जि पाले उदासु । अरध उरध करे निरंजन वासु ॥
चंद सूरज की पाए गंढि । तिसु उदासी का पड़ै न कंधु ॥
बोलै गोपी चंदु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥६॥

सो पाखंडी जि काइआ पखाले । काइआ की अगनि ब्रहमु परजाले ॥
सुपनै बिंदु न देई झरणा । तिसु पाखंडी जरा न मरणा ॥
बोलै चरपटु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥७॥

सो बैरागी जि उलटे ब्रहमु । गगन मंडल महि रोपै थमु ॥
अहिनिसि अंतरि रहै धिआनि । ते बैरागी सत समानि ॥
बोलै भरथरि सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥८॥

किउ मरै मंदा किउ जीवै जुगति । कंन पड़ाइ किआ खाजै भुगति ॥
आसति नासति एको नाउ । कउणु सु अखरु जितु रहै हिआउ ॥
धूप छाव जे सम करि सहै । ता नानकु आखै गुरु को कहै ॥
छिअ वरतारे वरतहि पूत । ना संसारी ना अउधूत ।
निरंकारि जो रहै समाइ । काहे भीखिआ मंगणि जाइ ॥९॥

सन्तोष दुखी होने में सत् (की प्राप्ति) (वास्तव सिद्धि) नहीं है, न सुखी होने में सिद्धि है और न जल-जन्तुओं की भाँति पानी के फिरने में ही सिद्धि है। न तो सिर के बाल मुंडाने में सिद्धि है, न पढ़ने में सिद्धि है और न देश-देशान्तरों के भ्रमण में ही सिद्धि है। रूख-वृक्ष एवं पत्थर (की भाँति स्थिर हो जाने में भी) सिद्धि नहीं है (बहुत से लोग) अपने आप को कटाते हैं तथा दुःख सहते हैं, (इसमें भी सिद्धि नहीं है)। (सांसारिक ऐश्वर्यों में—उदाहरणार्थ) हथियों को सांकल के बाँधने और गायों के इधर-उधर चरने में भी सिद्धि नहीं है। वह (परमात्मा) जिसके हाथ में सिद्धि देता है, (उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है) जिसे वह देता है, उसी को (सिद्धि) आकर मिलती है। नानक कहता है कि उसी व्यक्ति को बड़ाई प्राप्त होती है, जिसके हृदय के भीतर शब्द—नाम का स्मरण होता है। (परमात्मा कहता है) —"सभी घटों के भीतर मैं हूँ जिसे मैं भुलाता देता हूँ उसे और कौन मार्ग बता सकता है ? और जिसे मैं मार्ग दिखाता हूँ उसे कौन भुलावा दे सकता है ? जिसे मार्ग के प्रारम्भ में ही भुला दूँ (भटका दूँ) उसे (मार्ग), कौन दिखा सकता है ?" ॥ ३ ॥

वही (वास्तविक) गृहस्थ है जो (इन्द्रियों तथा मन का) निग्रह करता है (वह) (परमात्मा से) जप तप और संयम की भिक्षा माँगे (अपने) शरीर को पुण्य-दान (करने वाला) बनावे। जो गंगा-जल (की भाँति पवित्र और निर्मल है) वही गृहस्थ है। ईश्वर [एक साधु गृहस्थ का नाम है], कहता है (कि वह परमात्मा) सत्य-स्वरूप है उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है। [अथवा उपर्युक्त पंक्तियों का इस भाँति में अर्थ हो सकता है—ईश्वर (परमात्मा) सत्यस्वरूप कहलाता है। उस परम तत्त्व में कोई रूप-रेखा नहीं है।] ॥ ४ ॥

वही अवधूत है जो अहंकार जला दे (और) कष्ट-सहन को ही भिक्षा का भोजन बनावे। (वह) (हृदय रूपी) नगर में (नाम की) भिक्षा माँगे। वही (वास्तविक) अवधूत है, जो परमात्मा के देश में चढ़ता है। गोरखनाथ (अवधूत—योगी विशेष) कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है, उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ५ ॥

वही (वास्तविक) उदासी है जो उदासीन—विरक्त धर्म का (यथोचित) पालन करता है। (वह) नीचे-ऊँचे (सभी स्थानों में) उस निरंजन का निवास-स्थान समझे। वह अपने ही अन्तर्गत चन्द्रमा (की शीतलता) और सूर्य (का ज्ञान) एकत्र करे। ऐसे उदासी के शरीर का नाश नहीं होता। गोपीचन्द (उदासी विशेष का नाम) कहते हैं कि परमात्मा सत्य स्वरूप है। उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ६ ॥

वही (सच्चा) पाखण्डी है, जो शरीर को धोता है (तात्पर्य यह कि शुद्ध करता है)। (वह) शरीर की अग्नि में ब्रह्माग्नि प्रज्वलित करे। (वह) स्वप्न में भी बीर्य को न गिरने दे ऐसे पाखण्डी की न जरावस्था (वृद्धावस्था) होती है और मरण ही होता है। चर्पटनाथ कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है, उस परम तत्त्व में न कोई रेखा है और न कोई रूप है।

[विशेष : पाखण्डी एक मत है, जिसके अनुसार लोगों की दृष्टि से बचने के लिए जान-बूझ कर घोर से घोर कर्म किए जाते हैं। यह वाम मार्ग का एक पंथ है] ॥ ७ ॥

वही (वास्तविक) वैरागी है, जो ब्रह्म को (मन की ओर) उलटे और आत्म (स्वरूप) रूप (परमात्मा को) दशम द्वार में आरोपित कर दे। (वह) अहर्निश आन्तरिक ध्यान में (निमग्न) रहे। वह वैरागी सत्यस्वरूप (परमात्मा) का ही रूप हो जाता है। भरथरी कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है। उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ८ ॥

कान फड़वा कर भोजन करने से क्या (लाभ)? (भला) इससे बुराई क्यों मरे और (वास्तविक) जीवन की युक्ति किस प्रकार (प्राप्त हो)? वह कौन सा अक्षर है, जिसके साथ हृदय (स्थिर होकर) टिके? वह केवल नाम ही है, जो (संसार के) 'अस्ति' (होने में) और 'नास्ति' (न होने में) विद्यमान था। नानक कहते हैं (कि हे योगी तुझे) कोई गुरु ही समझा सकता है कि धूप-छाँह (दुःख सुख) को समान समझो। (लोग ऊपर कहे हुए) छः व्यवहारों (तात्पर्य यह है कि (१) गृहस्थ, (२) अवधूत (३) उदासी (४) वानप्रस्थी (५) बैरागी और (६) कनफटा)—के बीच गुरु (शिष्य) होकर बरत रहे हैं किन्तु न तो वे सुन्दर गृहस्थ ही होते हैं, और न त्यागी विरक्त ही। जो (व्यक्ति) निर्गुण (परमात्मा) में लीन हो जायगा (वह भला द्वार द्वार) भीख क्यों माँगने जायगा? ॥ ९ ॥

पउड़ी हरि मंदरु सोई आखीऐ जिथहु हरि जाता।
मानस देह गुर बचनी पाइआ सभु आतम रामु पछाता॥
बाहरि मूलि न खोजीऐ घर माहि बिधाता।
मनमुख हरि मंदर की सार न जाणनी तिनी जनमु गवाता॥
सभ महि इकु वरतदा गुर सबदी पाइआ जाई॥ २॥

पउड़ी जहाँ पर हरि जाना गया उसी (स्थान) को 'हरि-मन्दिर' कहना चाहिए। मनुष्य के देह में गुरु के उपदेश द्वारा (हरी को प्राप्त किया और) सभी (स्थानों) में आत्मा राम को पहचाना। (कहीं) बाहर मूल (आदि पुरुष) को खोजने मत जाओ (तुम्हारे) घर (हृदय) में ही रचयिता (कर्ता-पुरुष) विद्यमान है। मनमुख 'हरि-मन्दिर' का पता (खोज-खबर) नहीं जानते उन्होंने (मायिक प्रपंचों में ही) अपना (अमूल्य मानव)-जन्म गँवा दिया। सभी में एक (परमात्मा) व्याप्त रहा है (किन्तु) वह गुरु के शब्दों से ही पाया जाता है ॥ २ ॥

सलोकु : नानकु आखै रे मना सुणीऐ सिख सही।
लेखा रबु मंगेसीआ बैठा कढि वही॥
तलबा पउसनि आकीआ बाकी जिना रही।
अजराईलु फरेसता होसी आइ तई॥
आवणु जाणु न सुझई भीड़ी गली फही।
कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही॥ १ ॥

सलोक नानक कहता है कि हे मन (तू) सच्ची शिक्षा सुन—परमात्मा (अपनी) बही निकाल कर (कर्मों का) लेखा-जोखा माँगने बैठेगा। उन बागियों (मनमुखों) के बुलावे आ पड़ेंगे जिनके (जिनमें) लेन का बाकी (हिसाब) है। फरिश्ता अजराईल (मुसलमानों के अनुसार मौत का देवता) (द्वार पर) तैयार होकर (सज़ा देने के लिए) आया होगा। उन

समय तंग गले में फँसी हुई (जीवात्मा) को आना-जाना कुछ नहीं सूझेगा। हे नानक (ऐसी परिस्थिति में) झूठे हार जाते हैं अन्त में सत्य ही से बचाव (रक्षा) है ॥ १ ॥

पउड़ी : हरि का सभु सरीरु है हरि रवि रहिआ सभु आपै ।
हरि की कीमति ना पवै किछु कहणु न जापै ॥
गुरपरसादी सालाहीऐ हरि भगती रापै ।
सभु मनु तनु हरिआ होइआ अहंकारु गवापै ॥
सभु किछु हरि का खेलु है गुरमुखि किसै बुझाई ॥१॥

पउड़ी (जितने भी शरीर दिखाई पड़ रहे हैं) सभी हरि के शरीर हैं, और हरी आप ही सभी (शरीरों) में व्याप्त है। हरी की कीमत नहीं पाई जा सकती और कुछ कहते को भी नहीं सूझ पड़ता। गुरु की कृपा से (हरी को) स्तुति करके उसकी भक्ति में रँग जाना चाहिए। (ऐसा करने से) सारा तन मन हरा (प्रफुल्लित) हो जाय और (सारे) अहंकार को नष्ट कर दे। (यह) सब कुछ हरी का खेल है गुरु के द्वारा किसी को (यह रहस्य) समझ पड़ता है ॥ १ ॥

सलोकु सहंसर दान दे इंद्रु रोआइआ । परसराम रोवै घरि आइआ ॥
अजै सु रोवै भीखिआ खाइ । ऐसी दरगह मिलै सजाइ ॥
रोवै रामु निकाला भइआ । सीता लखमणु विछुड़ि गइआ ॥
रोवै दहसिरु लंक गवाइ । जिनि सीता आदी डउरू वाइ ॥
रोवहि पांडव भए मजूर । जिन कै सुआमी रहत हदूरि ॥
रोवै जनमेजा खुइ गइआ । एकी कारणि पापी भइआ ॥
रोवहि सेख मसाइक पीर । अंति कालि मतु लागै भीड़ ॥
रोवहि राजे कन पड़ाइ । घरि घरि मागहि भीखिआ जाइ ॥
रोवहि किरपन संचहि धनु जाइ । पंडित रोवहि गिआनु गवाइ ॥
बाली रोवहि नाहि भतारु । नानक दुखीआ सभु संसारु ॥
मंने नाउ सोई जिणि जाइ । अउरी करम न लेखै लाइ ॥११॥

लावणु राति मुहाइ विहु कामु कोधु दुइ नेतु ।
लबु बख दरोगु बीज हाली राहकु हेत ॥
हलु बीचारु विकार मण हुकमी खटे खाइ ।
नानक लेखै मंगिऐ अउतु जणेदा जाइ ॥११॥

भउ भुइ पवितु पाणी सतु संतोखु बलेदु ।
हलु हलेमी हाली चितु चेता वत वखत संजोगु ॥
नाउ बीजु बखसीस बोहल दुनीआ सगल दरोग ।
नानक नदरी करमु होइ जावहि सगल विजोग ॥१३॥

सलोक (गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का योग से सतीत्व नष्ट करने के लिए) इन्द्र को सहस्र भगोंवाला (बनने का) दण्ड दे कर रुलाया गया। (श्री रामचन्द्र जी के द्वारा शक्ति न सत्त पर) परशुराम घर आ कर रोने लगे। (श्री रामचन्द्र के पितामह राजा) अज

वही (वास्तविक) वैरागी है, जो श्वास को (मन की ओर) उलटे और आकाश (स्तम्भ) रूप (परमात्मा को) दशम द्वार में आरोपित कर दे। (वह) अहर्निश आन्तरिक ध्यान में (निमग्न) रहे। वह वैरागी सत्यस्वरूप (परमात्मा) का ही रूप हो जाता है। भरथरी कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है। उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ८ ॥

कान फड़वा कर भोजन करने से क्या (लाभ) ? (भला) इससे बुराई क्यों मरे और (वास्तविक) जीवन की युक्ति किस प्रकार (प्राप्त हो) ? वह कौन सा अक्षर है, जिसके साथ हृदय (स्थिर होकर) टिके ? वह केवल नाम ही है, जो (संसार के) 'अस्ति' (होने में) और 'नास्ति' (न होने में) विद्यमान था)। नानक कहते हैं (कि हे योगी तुम्हें) कोई गुरु ही समझा सकता है कि धूप-छाँह (दुःख सुख) को समान समझो। (लोग ऊपर कहे हुए) छः व्यवहारों (तात्पर्य यह है कि (१) गृहस्थ, (२) अवधूत (३) उदासी (४) जंगमी (५) वैरागी और (६) कनफटा)—के शिष्य (शिष्य) होकर बरत रहे हैं; किन्तु न तो वे सुन्दर गृहस्थ ही होते हैं, और न त्यागी विरक्त ही। जो (व्यक्ति) निर्गुण (परमात्मा) में लीन हो जायगा (वह भला द्वार द्वार) भीख क्यों माँगने जायगा ? ॥ ९ ॥

पउड़ी   हरि मंदरु सोई आखीऐ जिथहु हरि जाता।
          मानस देह गुर बचनी पाइआ सभु आतम रामु पछाता ॥
          बाहरि मूलि न खोजीऐ घर माहि बिधाता।
          मनमुख हरि मंदर की सार न जाणनी तिनी जनमु गवाता ॥
          सभ महि इकु वरतदा गुर सबदी पाइआ जाई ॥ २ ॥

पउड़ी जहाँ पर हरि जाना गया उसी (स्थान) को "हरि-मन्दिर" कहना चाहिए। मनुष्य के देह में गुरु के उपदेश द्वारा (हरी को प्राप्त किया और) सभी (स्थानों) में आत्मा-राम को पहचाना। (कहीं) बाहर मूल (आदि पुरुष) को खोजने मत जाओ (तुम्हारे) घर (हृदय) में ही रचयिता (कर्ता-पुरुष) विद्यमान है। मनमुख हरि-मन्दिर का पता (खोज-खबर) नहीं जानते उन्होंने (मायिक प्रपंचों में ही) अपना (मनुष्य मानव)-जन्म गँवा दिया। सभी में एक (परमात्मा) बरत रहा है (किन्तु) वह गुरु के शब्दों से ही पाया जाता है ॥ २ ॥

सलोकु :   नानकु आखै रे मना सुणीऐ सिख सही।
          लेखा रबु मंगेसीआ बैठा कढि वही ॥
          तलबा पउसनि आकीआ बाकी जिना रही।
          अजराईलु फरेसता होसी आइ तई ॥
          आवणु जाणु न सुझई भीड़ी गली फही।
          कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही ॥ १ ॥

सलोक नानक कहता है कि हे मन (तू) सच्ची शिक्षा सुन—परमात्मा (अपनी) बही निकाल कर (कर्मों का) लेखा-जोखा माँगने बैठेगा। उन बागियों (मनमुखों) के बुलावे आ पड़ेंगे जिनके (जिम्मे) शेष का बाकी (हिसाब) है। फरिश्ता अजराईल (मुसलमानों के अनुसार मौत का देवता) (द्वार पर) तैयार होकर (सजा देने के लिए) आया होगा। उस

में जो (अमृत्य) मिला (एक साधु को पाने की थी जो पीछे अपने भाग म उसी को) खाने के लिए पा कर रोने लगे। (परमात्मा के) दरबार में (किए हुए अपराधों को) सजा इसी प्रकार मिलती है। देश-निकाला होने पर राम को भी दुखी होना पड़ा। (श्री रामचन्द्र के साथ वन में सीता और लक्ष्मण भी आए किन्तु (वन में) सीता का वियोग हो गया। दस सिरोंवाला रावण (अपनी सोने की) लंका गँवा कर बहुत रोया जिस (रावण) ने (भिखारी के वेश में) डमरू बजा कर सीता का हरण किया था। जिन पाण्डवों के स्वामी (श्री कृष्ण) उनके सदैव समीप रहते थे (प्रारब्धवश अज्ञातवास में उन्हें भी राजा विराट के दरबार में) मजदूर बन कर दुखी होना पड़ा। राजा जन्मेजय को कुराह में जाने के कारण रोना पड़ा। एक पाप के कारण (अश्वमेध यज्ञ में एक ब्राह्मण के मारने के अपराध के निमित्त) (राजा जन्मेजय को) (कोढ़ी के रूप में) पापी होना पड़ा। शेख मशायख (शेख का बहु वचन) (सभी) रोते हैं। (वे यह सोच कर दुखी होते हैं कि कहीं) अन्तिम समय में कोई विपत्ति (तंगी) न आ जाय। (भरथरी गोपीचन्द आदि) राजे कान फड़वा कर रोते हैं वे घर घर जा कर भीख माँगते हैं। कृपण धन संग्रह करते हैं और धन चले जाने पर दुखी होते हैं। पंडितगण अपना ज्ञान गँवा कर रोते हैं। (जिस लड़की का) पति घर नहीं है, वह लड़की (अपने पति के लिए) रोती है। हे नानक (इस प्रकार) सारा संसार दुखी है। जो व्यक्ति नाम को मानते हैं, वे ही जीतते हैं। (नाम के अतिरिक्त) और कर्म लेखे में नहीं लगने चाहिए॥ ११ ॥

[निम्नलिखित बारहवें सलोक में मनमुखों की खेती का वर्णन है]।[1] (मनमुखों के) रात-दिन सावन और असाढ़ (की फसलें) हैं, जिनमें काम क्रोध के खेत बोए जाते हैं, (तात्पर्य यह कि दिन रात काम क्रोध में रत रहना ही मनमुखों की असाढ़ और सावन की खेती है)। लालच ही (उनके खेत के) बोने का समय है, झूठ बीज है, मोह हल चला कर बोनेवाला (किसान) है। विकारी (बुरा) विचार ही हल है, मन के हुक्म के अनुसार वह (ऐसी कृषि) पैदा करता है और खाता है। नानक कहते हैं कि लेखा माँगने के समय में जननेवाला (पिता) निपूता ही जाना जाता है, (तात्पर्य यह कि हिसाब-किताब के समय उसका जीवन व्यर्थ ही साबित होता है)॥ १२ ॥

['तेरहवें सलोक" में गुरु नानक देव ने गुरमुखों की खेती के रूपक के माध्यम से चित्रित की है]। (गुरमुखों की खेती में परमात्मा का) भय ही पृथ्वी है पवित्रता ही (उस खेती के के लिए) जल है, सत्य और संतोष (दो) बैल हैं, विनम्रता ही हल है, चित्त हल चलानेवाला है, (परमात्मा का) स्मरण ही खेत की नमी वाली अवस्था है, (परमात्मा से) मिलन—संयोग यही बोने का (उपयुक्त) समय है; (हरि का) नाम ही बीज है, (भगवान् की) कृपा फलित होना है। (इस खेती को छोड़कर) और सारी दुनिया झूठी है। नानक कहते हैं कि यदि कृपालु (हरी) की कृपादृष्टि हो जाय तो समस्त बिछोह दूर हो जायँ॥ १३ ॥

पउड़ी

मनमुखि मोहु गुबारु है दूजै भाइ बोलै।
दूजै भाइ सदा दुखु है नित नीरु विरोलै॥
गुरमुखि नामु धिआईऐ मथि ततु कढोलै।
अंतरि परगासु घटि चानणा हरि लधा टोलै॥
आपे भरमि भुलाइदा किछु कहणु न जाई॥१४॥

पउड़ी : मनमुख के (हृदय में सदैव) मोह (रूपी) अन्धकार (व्याप्त) रहता है (जिससे वह अहर्निश) द्वैतभाव में ही बोलता है। द्वैतभाव (के आचरण में) सदैव दुःख ही दुःख है। (द्वैतभाव में आचरण करके सुख पाना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार) नित्य पानी को मथ कर (मक्खन प्राप्त करना); (तात्पर्य यह कि द्वैतभाव के आचरण से सुख की आशा करना ठीक उसी भाँति है जिस भाँति पानी मथ कर मक्खन की प्राप्ति की आशा रखना)। गुरमुख नाम का ध्यान करता है। (वह) (उस नाम रूपी दही) को मथ कर तत्व रूपी (मक्खन) निकालता है। उसके अन्तःकरण में और घट (शरीर) में (ज्ञान का) प्रकाश हो गया है; (उसने) ढूंढ़ कर (परमात्मा को) प्राप्त कर लिया है। (जीव) आप ही (अज्ञान में) भ्रमित होकर भटकता रहता है, (परमात्मा की इस लीला के संबन्ध में) कुछ कहा नहीं जा सकता ॥४॥

सलोकु : 　नानक प्रभु जीउ मछुली जीवरु त्रिसना कालु ।
　　　　मनूआ अंधु न चेतई पड़ै अचिंता जालु ॥
　　　　नानक चितु अचेतु है चिंता बधा जाइ ।
　　　　नदरि करे जे आपणी ता आपे लए मिलाइ ॥१४॥

सलोक : नानक कहते हैं कि यह प्राणी (जीव) मछली (के समान) है और तृष्णा रूपी काल मछुआ (के समान) है। (किन्तु) अन्धा (अज्ञानी) मन (कुछ) समझता नहीं (जिससे) बिना जाने ही (धोखे में) (काल के) जाल में पड़ जाता है। हे नानक (यह) चित्त (अत्यंत) असावधान है (और अपनी) चिन्ताओं के कारण ही बाँधा जाता है। (हाँ) यदि (प्रभु) अपनी कृपादृष्टि करे, तो स्वयं ही (भटकते हुए जीव को) अपने में मिला कर (एक कर ले) ॥ १४ ॥

पउड़ी : 　से जन साचे सदा सदा जिनी हरि रसु पीता ।
　　　　गुरमुखि सचा मनि वसै सचु सउदा कीता ॥
　　　　सभु किछु घर ही माहि है वडभागी लीता ॥
　　　　अंतरि त्रिसना मरि गई हरि गुण गावीता ॥
　　　　आपे मेलि मिलाइअनु आपे देइ बुझाई ॥५॥

पउड़ी : जिन (व्यक्तियों) ने हरि-रस को पी लिया है, वे पुरुष सदैव सदैव से सच्चे हो गए हैं। गुरु की शिक्षा द्वारा सच्चा (परमात्मा) मन में (आकर) बस जाता है, (उन्होंने) सच्चे सौदे को किया है। सभी कुछ (वस्तु) इसी घर (शरीर) में है बड़भागी (अत्यन्त भाग्यशाली) ही ने (उस) (प्राप्त) कर लिया है। हरि का गुणगान करने से आन्तरिक तृष्णा शान्त हो जाती है। (प्रभु) स्वयं अपने में (प्राणी को) मिला लेता है और स्वयं (उसे) बोध करा देता है ॥ ५ ॥

सलोकु 　वेलि पिंञाइआ कति वुणाइआ ।
　　　　कटि कुटि करि खुंबि चड़ाइआ ॥
　　　　लोहा वढे दरजी पाड़े सूई धागा सीवै ।
　　　　इउ पति पाटी सिफती सीपै नानक जीवत जीवै ॥

होइ पुराणा कपड़ु पाटै सूई धागा पावै ।
माहु पखु किहु चलै नाही घड़ी मुहतु किछु हंढै ॥
सचु पुराणा होवै नाही सीता कदे न पाटै ।
नानक साहिबु सचो सचा तिचरु जापी जापै ॥१५॥

सच की काती सचु सभु सारु ।
घाड़त तिस की अपर अपार ॥
सबदे साण रखाई लाइ ।
गुण की थेकै विचि समाइ ॥
तिस दा कुठा होवै सेखु ।
लोहू लबु निकथा वेखु ॥
होइ हलालु लगै हकि जाइ ।
नानक दरि दीदारि समाइ ॥१६॥

कमरि कटारा बंकुड़ा बंके का असवारु ।
गरबु न कीजै नानका मतु सिरि आवै भारु ॥१७॥

सलोक (पहले रुई को) ओट कर, (फिर) धुन कर, (फिर) कातकर, (तब) बुना जाता है। (तत्पश्चात् फिर उस बुने हुए वस्त्र को) काट कूट कर (ठीक कर) (रंगने के पहले) खुंब पर चढ़ाया जाता है। [खुंब—जिस पात्र में वस्त्र तपाये जाते हैं; उसे खुंब कहते हैं]। (तत्पश्चात् उस वस्त्र को) लोहा (तात्पर्य यह कि)—कैंची काटती है, (तब) दरजी उसे फाड़ता है (और अंत में) सुई-धागा से उसे सीते हैं। इसी प्रकार फटी हुई प्रतिष्ठा को (परमात्मा की) स्तुति करनेवाला (पुरुष) (उसके गुणगान रूपी सुई-धागे से) सी देता है। हे नानक (इस प्रकार वह व्यक्ति अमरत्व का) जीवन जीता है। (यदि) वस्त्र पुराना होकर फट जाता है तो सुई-धागा (उसे) सी देते हैं, (परन्तु ऐसा वस्त्र बहुत दिनों तक नहीं चलता, वह अन्त में नष्ट हो जाता है; इसी प्रकार सांसारिक जीवन बहुत दिनों तक नहीं चलता चाहे वह कितनी सतर्क युक्ति से क्यों न रहा जाय)। (सांसारिक जीवन) महीना पक्ष कुछ भी नहीं चलता घड़ी मुहूर्त न हो (वह) नष्ट हो जाता है। सत्य पुराना (कभी) नहीं होता, (क्योंकि वह शाश्वत और चिर-नवीन है)। सत्य सिया जाने पर (फिर) कभी नहीं फटता (तात्पर्य यह कि सत्य का साक्षात्कार कर लेने पर, फिर च्युत होने का भय नहीं रहता)। नानक कहते हैं कि साहब (परमात्मा) शाश्वत सत्य है, हम उसे जितना अधिक जपते रहें, वह उतना ही अधिक स्थायी और शाश्वत (हमें) दिखलाई पड़ता है ॥ १५ ॥

विशेष १६ वें सलोक' में गुरु नानक देव जी ने बताया है कि मनुष्य-जीवन 'हलाल' का जीवन किस प्रकार बनाया जा सकता है। इसे रूपक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। जो मनुष्य इस प्रकार अपने को 'हलाल' करता है, वही परमात्मा के दरबार में पहुँचता है।

अर्थ सत्य की छुरी (बनावे) और सारा लोहा भी (उस छुरी का) सत्य का ही होवे। अपरंपार (निर्गुण हरी) ही उस (छुरी) की बनावट हो। (उस छुरी को) शब्द रूपी—नाम की सान पर (पैनी करके) रखा जाय। (शुभ) गुणों की म्यान में (इस नाम रूपी छुरी को) रख। यदि शेख इस प्रकार की छुरी का कुठ्ठा किया हुआ हो (हलाल किया हुआ

हो) (तात्पर्य यह कि यदि शेख का जीवन इस प्रकार निर्मित किया गया हो), तो (ऐसे शेख के) सोम रूपी रक्त को निकला हुआ ही समझो। (ऐसा पुण्यात्मा) हलाल होकर हक— सत्य (हरी) में जा लगता है और उसके दर्शन से उसके दरबार म प्रविष्ट हो जाता है। ['हलाल'—जिस जानवर का रक्त निःशेष निकल जाय उसे 'हलाल' कहते हैं] ॥ १६ ॥

(चाहे) कमर में सुन्दर कटार (बँधी हो) और सुन्दर (घोड़े पर) सवार हो (पर) नानक कहते हैं, (कि इस सांसारिक ऐश्वर्य पर) फूले मत समाओ (क्योंकि यह क्षणभंगुर है) बल्कि सिर के बल पड़ जाओ (और अपनी विनम्रता प्रदर्शित करो) ॥१७॥

पउड़ी सो सतसंगति सबदि मिलै जो गुरमुखि चलै।
सचु धिआइनि से सचे जिन हरि खरचु धनु पलै॥
भगत सोहनि गुण गावदे गुरमति अचलै।
रतन बीचारु मनि वसिआ गुर कै सबदि भलै॥
आपे मेलि मिलाइदा आपे देइ वडिआई॥९॥

पउड़ी : जो गुरमुखों के कथनानुसार चलता है, उसे सत्संगति में शब्द—नाम की प्राप्ति होती है। जिनके पास (पल्ले) हरि-धन रूपी खर्च है वे सच्चे (पुरुष) सत्यस्वरूप (हरी) का ही ध्यान करते हैं। ऐसे भक्त गुरु द्वारा दी गई बुद्धि में अचल हैं, (वे प्रभु का) गुणगान करके (उसके दरबार में) सुशोभित होते हैं। गुरु के उत्तम (भल) उपदेश द्वारा (उनके) मन में विचार रूपी रत्न बस गया है। (प्रभु) (साधक को) स्वयं ही अपने में मिलाता है और स्वयं ही बड़ाई (प्रतिष्ठा) प्रदान करता है ॥ ९ ॥

सलोकु । सरवर हंस धुरे ही मेला खसमै एवै भाणा।
सरवर अंदरि हीरा मोती सो हंसा का खाणा॥
बगुला कागु न रहई सरवरि जे होवै अति सिआणा।
ओना रिजकु न पइओ ओथै ओन्हा होरो खाणा॥
सचि कमाणै सचो पाईऐ कूड़ै कूड़ा माणा।
नानक तिन कौ सतिगुरु मिलिआ जिना धुरे पैया परवाणा॥१८॥

साहिबु मेरा उजला जेको चिति करेइ।
नानक सोई सेवीऐ सदा सदा जो देइ॥
नानक सोई सेवीऐ जितु सेविऐ दुखु जाइ।
अवगुण वंञनि गुण रवहि मनि सुखु वसै आइ॥ १९॥

सलोक : (गुरु रूपी) सरोवर और (गुरमुख रूपी) हंस का मिलाप प्रियतम (हरी) ने अपनी मर्जी के अनुसार पहले से रच रक्खा है। (उस गुरु रूपी) सरोवर में (जो गुण रूपी) हीरा और मोती हैं वे ही (गुरमुख रूपी) हंसों के आहार हैं। जो अत्यन्त चतुर (सांसारिक बुद्धि वाले) (मनमुख रूपी) बगुले और कौवे हैं, वे (गुरु रूपी) सरोवर में नहीं रह सकते। (उनका विषय रूपी) आहार (घोंघे मेढक आदि) उस स्थान पर नहीं प्राप्त होता उनका आहार (विषय—मेढक घोंघा) तो अन्य ही है। (गुरु रूपी सरोवर में तो गुण रूपी हीरा मोती विद्यमान है, और वह मनमुख रूपी बगुलों और कौवों को प्रिय नहीं है)।

सत्य की कमाई से सत्य की ही प्राप्ति होती है। झूठे का झूठ ही भोग होता है। नानक कहते हैं कि जिन्हें प्रारम्भ से ही (परमात्मा का) परवाना (हुक्म) मिला रहता है, उन्हें ही गुरु प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

यदि कोई (परमात्मा को) चित्त में स्मरण करे, (तो) वह मेरा साहब (परम) प्रकाशक (अनुभव होता) है। हे नानक उसी प्रभु की आराधना कर जो सदैव सदैव देता ही रहता है। हे नानक उसी प्रभु की सेवा करनी चाहिए, जिसकी सेवा से (समस्त) दुःख नष्ट हो जाते हैं, अवगुण दूर हो जाते हैं, गुण अन्दर आ कर बस जाते हैं और मन में सुख आकर निवास करने लगता है ॥ १९ ॥

पउड़ी   आपे आपि वरतदा आपि ताड़ी लाइअनु ।
आपे ही उपदेसदा गुरमुखि पतीआइअनु ।
इकि आपे उझड़ि पाइअनु इकि भगती लाइअनु ।
जिसु आपि बुझाए सो बुझसी आपे नाइ लाइअनु ॥
नानक नामु धिआइए सची वडिआई ॥७॥

पउड़ी (प्रभु) आप ही (सर्वत्र) बरत कर रहा है आप ही ताड़ी (ध्यान) लगा कर (अपने में) (निमग्न) है (तात्पर्य यह कि प्रभु अपनी ही महिमा में स्वयं प्रतिष्ठित है)। (वह) स्वयं ही उपदेश देता है और स्वयं ही गुरु के द्वारा धैर्य प्रदान कराता है। कुछ (व्यक्तियों) को (वह) स्वयं कुमार्ग में डाल देता है और कुछ को भक्ति में लगाता है। (वह प्रभु) स्वयं जिसे समझाता है, वही समझता है; (प्रभु) स्वयं ही (साधक को अपने) नाम में लगाता है। हे नानक नाम का ध्यान कर (वही) सच्ची बड़ाई (प्रतिष्ठा) है ॥ ७ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु मारू महला १, चउपदे, घरु १

सबद [१]

सलोकु साजन तेरे चरन की होइ रहा सद धूरि ।
नानक सरणि तुहारीआ पेखउ सदा हदूरि ॥१॥

सलोक हे साजन (मैं) सदा तेरे चरणों की धूलि हो रहा हूँ। (मैं) नानक (सदा) तेरी शरण में (रह कर) (तुझे) सदा (अपने) सामने देखता रहूँ ॥ १ ॥

सबद पिछहु राती सदड़ा नामु खसम का लेहि ।
खेमे छत्र सराइचे दिसनि रथ पीड़े ।
जिनी तेरा नामु धिआइआ तिन कउ सदि मिले ॥१॥
बाबा मै करमहीणु कूड़िआरु ।
नामु न पाइआ तेरा अंधा भरमि भूला मनु मेरा ॥१॥रहाउ॥
साद कीते दुख परफुड़े पूरबि लिखे माइ ।
सुख थोड़े दुख अगले दूखे दूखि विहाइ ॥२॥
विछुड़िआ का किआ वीछुड़ै मिलिआ का किआ मेलु ।
साहिबु सो सालाहीऐ जिनि करि देखिआ खेलु ॥३॥
संजोगी मेलावड़ा इनि तनि कीते भोग ।
विजोगी मिलि विछुड़े नानक भी संजोग ॥४॥१॥

सबद (जिन्हें) पिछली रात्रि (ब्राह्म-मुहूर्त अथवा अमृत वेला) में (प्रभु का) बुलावा होता है, (वे ही) पति (परमात्मा) का नाम लेते हैं। उनके लिए तम्बू छत्र कनातें और रथ (सदैव) बने तैयार मिलते हैं, (तात्पर्य यह कि उन्हें बड़ाई प्राप्त होती है)। (हे प्रभु) जिन्होंने तेरे नाम का ध्यान किया है उन्हें (तू) बुलाकर देता है ॥ १ ॥

हे बाबा, मैं भाग्यहीन और झूठा हूँ। (मैं) अज्ञानी—अन्धे ने तेरे नाम को नहीं पाया मेरा मन (सांसारिक भ्रमों में) भ्रमित होकर भटक गया। ॥ १ ॥ रहाउ ॥

स्वादों के करने से दुःख प्रफुल्लित हुए, (अर्थात् स्वादों के चक्कर में पड़ने से दुःखों की ही अभिवृद्धि हुई)। हे माँ (मेरे ये दुःख) पहले के लिखे थे। (मानव-जीवन में) सुख थोड़े हैं और दुःख बहुत से हैं, (सारी आयु) दुःख ही दुःख में व्यतीत होती है ॥ २ ॥

(जो हरी से) बिछुड़े हैं, उनका और बिछोह क्या हो सकता है ? (क्योंकि बड़ा से बड़ा वियोग तो संसार में यही है)। जो (प्रभु परमात्मा से) मिले हैं, उनका और मिलाप क्या हो सकता है ? (क्योंकि प्रभु-मिलन से बढ़ कर और कौन मिलन हो सकता है) ? उस प्रभु की स्तुति करनी चाहिए, जो (सृष्टि-रचना का) खेल रच कर, उसे देख रहा है। (तात्पर्य यह कि सृष्टि रच कर उसकी देखभाल कर रहा है) ॥ ३ ॥

संयोग करके (मानव-जन्म में) (हरी से) मेल हुआ; पर इस शरीर में आकर भोगों में रम गए और इस प्रकार वियोग में आ कर मिल कर भी (प्रभु से) बिछुड़ गए। पर हे नानक संयोग (लौट कर) फिर भी (प्राप्त हो सकता है) ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

मिलि मात पिता पिंडु कमाइआ । तिनि करतै लेखु लिखाइआ ॥
लिखु दाति जोति वडिआई । मिलि माइआ सुरति गवाई ॥१॥
मूरख मन काहे करसहि माणा । उठि चलणा खसमै भाणा ॥१॥रहाउ॥
तजि साद सहज सुखु होई । घर छडणे रहै न कोई ॥
किछु खाजै किछु धरि जाइऐ । जे बाहुड़ि दुनीआ आईऐ ॥२॥
सजु काइआ पटु हढाए । फुरमाइसि बहुतु चलाए ॥
करि सेज सुखाली सोवै । हथी पउदी काहे रोवै ॥३॥
घर घुमणवाणी भाई । पाप पथर तरणु न जाई ।
भउ बेड़ा जीउ चड़ाउ । कहु नानक देवै काहू ॥४॥२॥

माता-पिता के संयोग से (यह) शरीर प्राप्त किया। (फिर) उस (शरीर) में कर्त्ता-पुरुष ने (अपनी मर्जी का) लेख लिख दिया। (कर्त्ता-पुरुष की लिखावट) 'ज्योति' और 'बड़ाई' की थी—[तात्पर्य यह कि हमारे शरीर में हरी ने दो बातें—शक्तियाँ रक्खीं पहली तो अपनी ज्योति थी, जिसके प्रकाश के द्वारा मनुष्य को सत् और 'असत्' का बोध होता है और दूसरी बड़ाई (प्रतिष्ठा) थी जिसके सहारे मनुष्य ऊँचे उठने की अभिलाषा करता है। ये दोनों भाव हमारे अन्तर्गत 'प्रभु के संयोग' का काम करते हैं और हमें परमात्मा की ओर खींच ले जाते हैं]। किन्तु हमारे अन्तर्गत अपनी प्रकृति (संस्कार) के अनुसार नीचे गिराने वाले भाव भी होते हैं, जो वियोग का काम करते हैं। वे (निम्न भाव हमें) माया के (आकर्षण में डाल कर) (हरी की) सुरति नष्ट कर देते हैं ॥ १ ॥

अरे मूर्ख मन अभिमान क्यों कर रहा है ? पति (परमात्मा) के आज्ञानुसार (तुझे यहाँ से) उठ कर चले जाना है ॥१ ॥ रहाउ ॥

(अरे मनुष्य), (माया के) स्वादों को त्याग दे तो सहजावस्था—तुरीयावस्था—अनुपम घर का सुख (प्राप्त) हो। घर छोड़ने पर कोई भी नहीं रह जाता। (अतएव) कुछ

तो खाओ और कुछ (शुभ कर्म के रूप में भविष्य के लिए) रख जाओ। यदि फिर कर दुनिया में आना पड़े (तो तेरी रखी हुई वस्तुएं—शुभ कर्म के रूप में तेरा साथ दें) ॥ २ ॥

(अरे मानव) शरीर को वस्त्रों से सजा कर (खूब ऐश्वर्य) भोगता है। (अपना) हुक्म भी खूब चलाता है। आराम देनेवाली सेजों को रच कर (खूब सुखपूर्वक) सोता है। (किन्तु फिर) (यमराज के) हाथों में पड़कर रोता क्यों है ? ॥ ३ ॥

(एक तो) घर-गृहस्थी ही भंवर है, (और दूसरे) पापों के पत्थर (गले में बंधे हैं) पापों के पत्थरों के साथ (संसार-सागर) तरा नहीं जा सकता। (अतएव परमात्मा के) भय रूपी बेड़े पर जीव को चढ़ा दे (और भवसागर पार हो जा)। नानक कहता है कि किसी विरले को ही (प्रभु इस शुभ अवसर को प्राप्त करने का सौभाग्य) प्रदान करता है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

कराणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंतु हरे ॥१॥
चित चेतसि की नही बावरिआ।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥रहाउ॥
जाली रैनि जालु दिनु हूआ जेती घड़ी फाही तेती।
रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी ॥२॥
काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही।
कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ संनी चिंत भई ॥३॥
भइआ मनूरु कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिलै तिनेहा।
एकु नामु अम्रितु ओहु देवै तउ नानक त्रिसटसि देहा ॥४॥३॥

(हमारा) कर्म कागज है (और उस कागज पर लिखने का साधन तात्पर्य) दवात मन है। बुरे और भले (दो प्रकार के) लेख (लिख) लिखे जा रहे हैं। (ये लेख हमारे किए-कर्म स्वभाव बन जाते हैं)। ये ही किरत (संस्कार) जिस जिस प्रकार (कर्म करने के लिए) (हमें) चलाते हैं (प्रेरित करते हैं) उस उस प्रकार (हम चलते हैं (कर्म करने के लिए प्रेरित होते हैं)। (कर्मों के प्रभाव को दूर करने के लिए, शुभ गुणों के धारने की आवश्यकता है। परमात्मा ही शुभ गुणों का भण्डार है)। हरि के गुणों का अन्त नहीं है ॥ १ ॥ अरे बावले चित्त (तू शुभ गुणों के भण्डार प्रभु परमात्मा का) स्मरण क्यों नहीं करता ? हरि के विस्मरण से तेरे गुण नष्ट हो गए हैं ॥१॥ रहाउ ॥

(हमें फँसाने के लिए) रात जाली (छोटे जाल) और दिन जाल (बने हैं) (दिन और रात में) जितनी घड़ियाँ हैं उतने ही फाहे (बन्धन हैं) हैं (तात्पर्य यह कि प्रत्येक घड़ी में माया के आकर्षण फाहों की भाँति हमें बाँधने रहते हैं)। (हम) आनन्द से—स्वाद ले ले कर (जाल और जाली में पड़े हुए) चारे को (मायिक आकर्षणों को) चुगते हैं और नित्य फँसते जाते हैं। अरे मूर्ख किन गुणों से (इस जाल और जाली के फन्दों से) मुक्त होगे ? ॥२॥

(यह) शरीर भट्ठी है और मन (उस शरीर रूपी भट्ठी में डाला हुआ) लोहा है; पंच कामादिक अग्नियाँ हैं, जो (शरीर रूपी भट्ठी में) लगी हैं (और मन रूपी लोहे को जला रही हैं)। पाप रूपी कोयले (उस शरीर रूपी भट्ठी में) पड़ कर, (उस) मन रूपी लोहे को (और भी अधिक) दग्ध कर रहे हैं चिंता रूपी संसी से (मन जकड़ कर पकड़ा गया है, जिससे वह छूटकर कहीं जा भी नहीं सकता) ॥ ३ ॥

यदि ऐसे लोगों को गुरु मिल जाय तो उनका (मन रूपी) निकम्मा लोहा फिर कंचन हो सकता है, (तात्पर्य यह कि अहंकारी और विषयासक्त मन गुरु के प्राप्त होने पर ज्योतिर्मय मन के रूप में परिवर्तित हो सकता है) (जब) वह (गुरु) एक नाम रूपी अमृत प्रदान करेगा, तभी यह शरीर (जीवन) स्थिर होगा (अन्यथा जीवन का भटकना कभी समाप्त नहीं होगा ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

बिमल मझारि बससि निरमल जल पदमनि जावल रे।
पदमनि जावल जल रस संगति संग दोख नही रे ॥१॥
दादर तू कबहि न जानसि रे।
भखसि सिबालु बससि निरमल जल अमृतु न लखसि रे ॥१॥रहाउ॥
बसु जल नित न वसत अलीअल मेर चचा गुन रे।
चंद कुमुदिनी दूरहु निवससि अनभउ कारनि रे ॥२॥
अंमृत खंडु दूधि मधु संचसि तू बन चातुर रे।
अपना आपु तू कबहु न छोडसि पिसन प्रीति जिउ रे ॥३॥
पंडित संगि वसहि जन मूरख आगम सास सुने।
अपना आपु तू कबहु न छोडसि सुआन पूछि जिउ रे ॥४॥
इकि पाखंडी नामि न राचहि इकि हरि हरि चरणी रे।
पूरबि लिखिआ पावसि नानक रसना नामु जपि रे ॥५॥४॥

विशेष : इस 'शबद' में गुरु नानक जी ने बताया है कि मनुष्य की दो वृत्तियाँ होती हैं, एक 'कमल' वाली है, और दूसरी 'दादुर' वाली वृत्ति है। गुरुमुखों की 'कमल' वाली वृत्ति और मनमुख की 'दादुर' वृत्ति है।

अर्थ : पवित्र (सरोवर) में निर्मल जल बसता है उस (सरोवर में) कमल और सेवाल (सिवार) (दोनों ही) हैं। कमल सेवाल और जल (दोनों की) संगति करता हुआ, संग दोष से रहित रहता है, (अर्थात् दोनों से निर्लिप्त रहता है) ॥ १ ॥

हे दादुर, तू (कमल की इस निर्लिप्त वृत्ति) को कभी नहीं जानता। तू भी (कमल की ही भाँति) उसी सरोवर में निवास करता है, पर अमृत जल (की विशेषता नहीं जानता) (तू सदैव) सिवार (एक प्रकार की काई की घास) का ही भक्षण करता है ॥१॥ रहाउ॥

हे दादुर तू नित्य जल में निवास करता है और भौंरे वहाँ नहीं बसते। पर फिर भी वे भौंरे कमल के गुणों की चर्चा में मस्त रहते हैं। (चंद्रमा और कुमुदिनी का अन्य उदाहरण

लो)। चंद्रमा और कुमुदिनी (परस्पर कितनी) दूर निवास करते हैं। (किन्तु चन्द्रमा को उदय हुआ जानकर कुमुदिनी भी आनन्द से खिल उठती है। यह क्या)? (कुमुदिनी की प्रसन्नता का कारण चन्द्रमा की महत्ता का) अनुभव करना है। इसी कारण (कुमुदिनी इतनी दूर रहते हुए भी खिल जाती है)। (यही दशा परमात्मा के भक्तों की है। वे परमात्मा की समीपता का अनुभव करते हुए, सदैव आनन्दित रहते हैं)॥ २॥

(हे दादुर, अब तो) तू चतुर बन और अमृत के खण्ड दूध और मधु मालिक (सुमधुर वस्तुओं का) संग्रह कर, (अर्थात् हे मनमुख अब तो चतुर बन कर सात्विकी वृत्तियों का संचय कर)। किन्तु यह निश्चय है कि) तू अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ेगा जिस प्रकार खूनखोर (अच्छी से अच्छी) प्रीति पाकर भी (अपने चुगली करनेवाले स्वभाव को नहीं छोड़ सकता उसी प्रकार तू भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ेगा)।

उपर्युक्त पद का अर्थ कुछ सिक्ख विद्वान् इस भाँति करते हैं—[हे जल (मन) में ही अपने आप को चतुर समझनेवाले दादुर, देख दूध में अमृत-खण्ड मधु मालिक वस्तुएं पड़ी हैं पर जोंक (रिसन) उन्हें छोड़ कर केवल रक्त चूसने में ही प्रीति रखती है। उसी प्रकार तू भी अपने स्वभाव को न छोड़ते हुए गंदगी ही ग्रहण करता है।]॥ ३॥

पंडितों के साथ मूर्ख व्यक्ति निवास करते हैं और (नाना प्रकार के) वेद-शास्त्र सुनते हैं, (किन्तु वे अपने स्वभाव को नहीं त्यागते वे मूर्ख के मूर्ख बने रहते हैं), (उसी प्रकार) तू भी अपने स्वभाव को कभी नहीं त्यागेगा जैसे कुत्ते की पूँछ (को चाहे जितनी सीधी की जाय किन्तु वह टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है)॥ ४॥

कुछ ऐसे पाखण्डी हैं, (जो) (हरि के) नाम में अनुरक्त नहीं होते और कुछ ऐसे (भक्त हैं) (जो सदैव) हरि के चरणों में ही लगे हैं। हे नानक पूर्व का लिखा हुआ (अवश्य) पाओगे; हे जीव (हरि का) नाम जप॥ ५॥ ४॥

[५]

सलोकु: पतित पुनीत असंख होहि हरि चरणी मनु लाग।
अठसठि तीरथ नामु प्रभ नानक जिसु मसतकि भाग। १।

सलोकु हरि के चरणों में मन लगाने से असंख्य पतित (तत्क्षण) पुनीत हो जाते हैं। हे नानक प्रभु का (केवल एक नाम) अड़सठ तीर्थों (के समान) है) (किन्तु) जिसके भाग्य में होता है, (वही ऐसे पवित्र नाम को पाता है)॥ १॥

सबद सखी सहेली गरबि गहेली।
सुणि सह की इक बात सुहेली॥१॥
जो मै बेदन सा किसु आखा माई।
हरि बिनु जीउ न रहै कैसे राखा माई॥१॥रहाउ॥
हउ दोहागणि खरी रंजाणी।
गइआ सु जोबनु धन पछुताणी॥२॥
तू दाना साहिबु सिरि मेरा।
खिजमति करी जनु बंदा तेरा॥३॥

कहति नानकु बेनती एही ।

बिनु दरसन कैसे रवउ सनेही ॥४॥५॥

सखइ : अहंकार में भरी हुई, ऐ सखी-सहेली प्रियतम की (एक) सुखदायिनी बात सुन ॥ १ ॥

हे माँ मेरे अन्तर्मन को कुछ वेदना है, उसे मैं कह रही हूँ। बिना हरि के मेरे प्राण नहीं रहते। अरी माँ, (मैं कैसे इन प्राणों को) धारण करूँ ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं दुहागिनी हूँ (और) बहुत ही दुखी हूँ। युवावस्था चली गई है (और अब) मैं पछता रही हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु) तू (सब) जानता है और कुबेर का भी सिर है, (तात्पर्य यह कि सर्वोपरि है) । (मैं) तेरी खिदमत (सेवा) करता हूँ। (मैं तेरा) बंदा (दास) हूँ ॥ ३ ॥

नानक कहता है कि (मुझे केवल एक) यही चिन्ता है कि दर्शन के बिना स्नेही (प्रेमी) से कैसे रमण करूँ ? ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाउ सभागा ।
गुर की बचनी हाटि बिकाना जितु लाइआ तितु लागा ॥१॥

तेरे लाले किआ चतुराई । साहिब का हुकमु न करणा जाई ॥१॥रहाउ॥

मा लाली पिउ लाला मेरा हउ लाले का जाइआ ।
लाली नाचै लाला गावै भगति करउ तेरी राइआ ॥२॥

पीअहि त पाणी आणी मीरा खाहि त पीसण जाउ ।
पखा फेरी पैर मलोवा जपत रहा तेरा नाउ ॥३॥

लूणहरामी नानकु लाला बखसिहि तुधु वडिआई ।
आदि जुगादि दइआपति दाता तुधु विणु मुकति न पाई ॥४॥६॥

(मैं तो दाम बाजार में) मूल्य देकर खरीदा हुआ (स्वामी हरी का) गुलाम हूँ। (तेरा) गुलाम ही मेरा नाम है, (और मैं तेरा गुलाम होकर) सौभाग्यशाली हूँ। गुरु के वचनों पर मैं हाट-हाट में बिका हूँ और जिस (कर्म) में (उसने मुझे) लगा दिया है, उसी में (मैं) लगा हूँ ॥ १ ॥

तेरे गुलाम की क्या चतुराई हो सकती है ? (हे प्रभु) (तुझ) साहब का हुक्म मुझसे (ठीक-ठीक) नहीं माना जाता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे स्वामी), मेरे रग रग में तेरे प्रति सेवा-भाव समाया हुआ है। मेरे आगे-पीछे का सारा सम्बन्ध तेरे सेवक ही होने का है। (हे प्रभु), दासी (माँ) नाचती है और दास गाता है हे राम (स्वामी), मैं तेरी भक्ति करता हूँ। [उपर्युक्त पंक्तियों का यही भाव है कि हे स्वामी मेरी पीढ़ियों से तेरी सेवा होती आ रही है। मैं खानदानी गुलाम हूँ। (उस समय में बादशाहों और अमीरों के पास कई पीढ़ियों से गुलाम चले आते थे। जिनका एक मात्र सेवा करना ही धर्म था। न तो उनका कोई निजी अधिकार था, और न कोई निजी सम्पत्ति) ॥२॥

हे स्वामी (यदि) (तू) कहे तो तुझे जल ले आऊँ (और यदि तू) कहे (तो तेरे निमित्त आटा) पीसने जाऊँ (तात्पर्य यह कि जो कुछ भी तुझे मंजूर हो वही काम मैं करूँ)। (यदि तेरी आज्ञा हो तो) पंखा झलूँ, पैर दबाऊँ (जो कुछ भी कार्य करता रहूँ) तेरा नाम (अवश्य) जपता रहूँ ॥ ३ ॥

हे नानक (मैं) नमकहरामी सेवक हूँ। (यदि मेरे अवगुणों को) क्षमा कर दे, (तो इसमें तेरी) बड़ाई ही है। हे दया के स्वामी (तू) आदि काल तथा युग-युगान्तरों से है। तेरे बिना मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती ॥ ४ ॥ ६ ॥

[७]

कोई आखै भूतना को कहै बेताला ।
कोई आखै आदमी नानकु वेचारा ॥१॥
भइआ दिवाना साह का नानकु बउराना ।
हउ हरि बिनु अवरु न जाना ॥१॥रहाउ॥
तउ देवाना जाणीऐ जा भै देवाना होइ ।
एकी साहिब बाहरा दूजा अवरु न जाणै कोइ ॥२॥
तउ देवाना जाणीऐ जा एका कार कमाइ ।
हुकमु पछाणै खसम का दूजी अवर सिआणप काइ ॥३॥
तउ देवाना जाणीऐ जा साहिब धरे पिआरु ।
मंदा जाणै आप कउ अवरु भला संसारु ॥४॥७॥

बेचारे नानक को कोई भूत कहता है, कोई बेताल कहता है, तो कोई आदमी कहता है ॥ १ ॥

नानक अपने शाह (परमात्मा के प्रेम में डूब कर) दीवाना और पगला हो गया है। मैं हरी के बिना अन्य किसी (बड़े से बड़े सांसारिक व्यक्ति) को नहीं जानता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वास्तव में उसी व्यक्ति को सच्चा) दीवाना तब समझना चाहिए, जब वह (परमात्मा के) भय में दीवाना हो और (वह) एक साहब (हरी) को छोड़ कर दूसरे और (व्यक्ति) को न जाने ॥ २ ॥

(मनुष्य को सच्चा) दीवाना, तभी समझना चाहिए, जब (वह) एक (परमात्मा) का ही काम करे। पति परमात्मा का हुक्म पहचाने (यही बुद्धिमानी है) और बुद्धिमानी किस लिए है? ॥ ३ ॥

मनुष्य को सच्चा दीवाना तभी समझना चाहिए जब वह (अपने हृदय में) मालिक का प्रेम धारण करे; वह अपने को (बहुत) निकृष्ट समझे और संसार (के सभी प्राणियों को) भला समझे ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

इहु धनु सरब रहिआ भरपूरि ।
मनमुखि फिरहि सि जाणहि दूरि ॥१॥

कर, (शुद्धि कर) और युक्तिपूर्वक, मरुत (वायु—प्राणवायु को रोक कर) (सुषुम्ना नाड़ी में) सम्यक् स्थापित कर। [समस्त पंक्ति का भावार्थ है तमोगुणी स्वभाव को अपनाना ही इड़ा-नाड़ी में प्राणों को ले जाना है, सत्वगुण अपनाना ही पिंगला नाड़ी में प्राणों को स्थिर करना है और जीवन का युक्तिपूर्वक बिताना ही प्राणों को सुषुम्ना में स्थिर करना है]। मीन के समान मन की चंचल गति को युक्तिपूर्वक रोकनी चाहिए। (इससे) आत्मा (अपने सत्-स्वरूप में टिक जायगी और) (इधर-उधर) नहीं भटकेगी और फिर शरीर भी नहीं नष्ट होगा, (अर्थात्, जीवन-मरण समाप्त हो जायगा) ॥ १ ॥

ऐ मूर्ख (मनुष्य) किस लिए भ्रम में भूला हुआ है? (तू ने) निर्लेप परमानंद रूप (हरी को) नहीं समझा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू) दृढ़ न होनेवाली (माया) को पकड़ कर जला डाल और न मरनेवाले (मन) को पकड़ कर मार डाल। भ्रान्ति को त्याग दे (तथा अन्य मायिक आकर्षणों को) छोड़ तभी (हरिनाम रूपी) अमृत पी सकता है। मीन के समान मन की चंचल गति को युक्तिपूर्वक रोकनी चाहिए, (इससे) आत्मा (अपने सत्-स्वरूप में टिक जायगी और) (इधर उधर) नहीं भटकेगी और फिर शरीर भी नष्ट नहीं होगा (अर्थात्, जीवन-मरण समाप्त हो जायगा) ॥ २ ॥

नानक कहता है हे मनुष्यो (सुनो) जो हरी को मन ही मन स्मरण करता है उसको प्राणवायु के साथ-साथ अमृत भीतर जाता है (और वह व्यक्ति आनन्दपूर्वक रस) अमृत को पीता है, (तात्पर्य यह कि वह व्यक्ति श्वास-प्रश्वास में नाम जपता हुआ आनन्द में तन्मय रहता है)। मीन के समान मन की चंचल गति को युक्तिपूर्वक रोकनी चाहिए; (इससे) आत्मा (अपने सत्-स्वरूप में टिक जायगी और) (इधर-उधर) नहीं भटकेगी और फिर शरीर भी नष्ट नहीं होगा (अर्थात्, जीवन-मरण समाप्त हो जायगा) ॥ ३ ॥ ९ ॥

[१०]

माइआ मुई न मनु मुआ सरु लहरी मै मतु।
बोहिथु जल सिरि तरि टिकै साचा वखरु जिसु॥
माणकु मन महि मनु मारसी सचि न लागै कतु।
राजा तखति टिकै गुणी भै पंचाइण रतु॥१॥

बाबा साचा साहिबु दूरि न देखु।
सरब जोति जगजीवना सिरि सिरि साचा लेखु ॥१॥रहाउ॥

ब्रहमा बिसनु रिखी मुनि संकरु इंदु तपै भेखारी।
मानै हुकमु सोहै दरि साचै आकी मरहि अफारी।
जंगम जोध जती संनिआसी गुरि पूरै वीचारी।
बिनु सेवा फलु कबहु न पावसि सेवा करणी सारी॥२॥

निधनिआ धनु निगुरिआ गुरु निमाणिआ तू माणु।
अंधुलै माणकु गुरु पकड़िआ निताणिआ तू ताणु॥

होम जपा नही जाणिआ गुरमती साचु पछाणु ।
नाम बिना नाहा दरि कोई झूठा आवणु जाणु ॥३॥
साचा नामु सलाहीऐ साचे ते त्रिपति होइ ।
गिआन रतनि मनु माजीऐ बहुड़ि न मैला होइ ॥
जब लगु साहिबु मनि वसै तब लगु बिघनु न होइ ।
नानक सिरु दे छुटीऐ मनि तनि साचा सोइ ॥४॥१०॥

(मनुष्य) न तो माया को मार सका और न मन को ही वशीभूत कर सका (वह) संसार-सागर की लहरों में ही मस्त है। जिसके अन्तगत सच्चे (हरि के नाम का) सौदा है, ऐसा शरीर रूपी जहाज इस (संसार रूपी) सागर की लहरों पर तैर कर पार लग कर टिक जाता है। (नाम रूपी) माणिक्य जो मन के भीतर है, वही (अहंकारी) मन को मारता है, (वशीभूत करता है); सत्य के कारण, उसमें कटौती नहीं होती। (परमात्मा के) भय के कारण, (जीवात्मा) पाँच गुणों—सत्य संतोष दया धर्म और धैर्य—में अनुरक्त होता है; (और इन्हीं) गुणों के कारण (जीवात्मा रूपी) राजा सिंहासन (तख्त) पर विराजमान होता है ॥ १ ॥

हे भाई सच्चे साहब (हरी) को दूर न देख। वह जगजीवन है और उसकी ज्योति सर्वत्र है और प्रत्येक सिर के ऊपर (उसकी) सच्ची लिखावट है (तात्पर्य यह कि प्रत्येक प्राणी उसके विधान के अन्तर्गत है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ब्रह्मा विष्णु ऋषि मुनि शंकर, इन्द्र तपस्वी, भिखारी (कोई भी हों) इनमें से जो भी उसके हुक्म को मानता है, (वह उसके) सच्चे दरवाजे पर सुशोभित होता है, (जो उसका हुक्म नहीं माननेवाले हैं—(बागी अथवा विद्रोही हैं), वे घुल-घुल कर (अत्यन्त दुखी होकर) मर जाते हैं। पूर्ण गुरु के द्वारा (यह) विचार किया गया है कि जंगम—(योगियों का एक सम्प्रदाय विशेष) योद्धा सती संन्यासी आदि बिना सेवा के फल नहीं प्राप्त कर सकते सेवा ही सर्वश्रेष्ठ करनी है ॥ २ ॥

(सद्गुरु ही) निर्धनियों का धन है, कुल-विहीनों (निगुरों) का गुरु है, मान-विहीनों का मान है। (मैं) अज्ञानी—(अन्धे) ने गुरु रूपी माणिक्य को पकड़ लिया है, (क्योंकि) तू ही शक्तिहीनों की शक्ति है। (मैं) होम जप आदि (कोई भी वस्तु) नहीं जानता गुरु की सच्ची शिक्षा की ही (मुझे) पहचान (परिचय जानकारी) है। नाम के बिना (हरी के) दरवाजे पर कोई भी आसरा—पनाह—नहीं होगा; (सारी वस्तुएँ) मिथ्या हैं; (नाम के बिना मनुष्य का) आना-जाना (बना रहता है) ॥ ३ ॥

(हे साधक) सच्चे नाम की स्तुति करो (क्योंकि) उसी सच्चे (नाम) से (वास्तविक) तृप्ति होती है। ज्ञान रूपी रत्न से मन को पवित्र करो (ऐसा करने से मन निर्मल हो जायगा और) फिर मैला नहीं होगा। जब तक साहब (प्रभु, हरी) मन में बसता है तब तक कोई भी विघ्न-बाधा नहीं उपस्थित होगी। हे नानक, (परमात्मा को अथवा सद्गुरु को) सिर समर्पित कर (सर्व त्याग करके) (इस संसार-सागर से) छुटकारा पाओ (इसी तुम) तन मन से सच्चे हो जाओगे ॥ ४ ॥ १ ॥

[११]

मोती सुगति नामु निरमाइलु ता कै मैलु न राती ।
प्रीतम नामु सदा सचु संगे जनम मरणु गति बीती ॥१॥
गुसाईं तेरा कहा नामु कैसे जाती ।
जा तउ भीतरि महलि बुलावहि पूछउ बात निरती ॥१॥रहाउ॥
ब्रहमणु ब्रहमु गिआन इसनानी हरि गुण पूजे पाती ।
एको नामु एकु नाराइणु त्रिभवण एका जोती ॥२॥
जिहवा डंडी इहु घटु छाबा तोलउ नामु अजाची ।
एको हाटु साहु सभना सिरि वणजारे इक भाती ॥३॥
दोवै सिरे सतिगुरू निबेड़े सो बूझै जिसु एक लिव लागी जीअहु रहै निभराती ।
सबदु वसाए भरमु चुकाए सदा सेवकु दिनु राती ॥४॥
ऊपरि गगनु गगन परि गोरखु ता का अगमु गुरू पुनि वासी ।
गुर बचनी बाहरि घरि एको नानकु भइआ उदासी ॥५॥११॥

(यह) मोती (जिसकी) मोक्ष-मुक्ति निर्मल नाम है, उस रत्ती भर भी मल नहीं लगती। जिसके साथ प्रियतम, नाथ (हरी) सदैव है, उसकी जन्म-मरण की अवस्था समाप्त हो जाती है ॥ १ ॥

हे गोस्वामी तेरा नाम कैसा है (और वह) किस प्रकार जाना जाता है ? यदि (तू) अपने महल के भीतर बुला ले तो मैं अभेदता की बातें पूछूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) ब्रह्मज्ञान में स्नान करता है, (वही) ब्राह्मण है, हरि के गुणों का गान करना ही पत्तों द्वारा (परमात्मा की) पूजा करनी है। एक ही नाम है, एक नारायण है और त्रिभुवन में (उसी नारायण की) ज्योति व्याप्त है—(इसी की अनुभूति ब्रह्मज्ञान है) ॥ २ ॥

(यह) जीभ (तराजू की) डाँड़ी है, (और) यह हृदय (घट) पलड़ा है (इस तराजू पर मैं) अतुलनीय नाम को तौलता हूँ। (हरी का दरवाजा) हाट है, (और वही उसका) तथा सभी का साहु (स्वामी) है, (गुरमुख) एक ही प्रकार के बनजारे हैं (जो उसके दरबार रूपी हाट में एकत्र होते हैं) ॥ ३ ॥

सद्गुरु लोक-परलोक (दोनों छोरों) का (अन्तिम) निर्णय करता है (अर्थात् सद्गुरु साधक के लोक-परलोक दोनों को सुधारता है)। (जिसे) एक (परमात्मा) से लिव लग गई है वही (इस परम रहस्य को) समझता है; (उसका) मन भी भ्रान्ति-रहित हो जाता है। जो सेवक दिन-रात शब्द को अपने मन में बसा लेता है, (उसका) भ्रम सदैव के लिए नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

सब से ऊपर (श्रेष्ठ) गगन (दशम-द्वार) है और वहाँ गोरख (आत्मा) का निवास है। फिर अगम गुरु (परमात्मा) वहाँ (जीवात्मा) का सह-निवासी है (अर्थात् वहाँ जीवात्मा और परमात्मा एक है)। नानक कहता है कि गुरु के उपदेश द्वारा (मेरे लिए) घर और बाहर एक हो गए हैं (इसीलिए अब मैं सच्चा) उदासी (त्यागी विरक्त) हो गया हूँ ॥ ५ ॥ ११ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ५ ॥

[१२]

अहिनिसि जागै नीद न सोवै । सो जाणै जिसु वेदन होवै ॥
प्रेम के कान लगे तनि भीतरि वैदु कि जाणै कारी जीउ ॥१॥
जिसनो साचा सिफती लाए । गुरमुखि विरले किसै बुझाए ॥
अम्रित की सार सोई जाणै जि अम्रित का वापारी जीउ ॥१॥ रहाउ ॥
पिर सेती धन प्रेमु रचाए । गुर कै सबदि तथा चितु लाए ।
सहज सेती धन खरी सुहेली त्रिसना तिखा निवारी जीउ ॥ २ ॥
सहसा तोड़े भरमु चुकाए । सहजै सिफती धणखु चड़ाए ॥
गुर कै सबदि मरै मनु मारे सुंदरि जोगाधारी जीउ ॥३॥
हउमै जलिआ मनहु विसारे । जमपुरि वजहि खड़ग करारे ॥
अब कै कहिऐ नामु न मिलई तू सहु जीअड़े भारी जीउ ॥४॥
माइआ ममता पवहि खिआली । जमपुरि फासहिगा जमजाली ॥
हेत के बंधन तोड़ि न साकहि ता जमु करे खुआरी जीउ ॥५॥
ना हउ करता ना मै कीआ । अंम्रितु नामु सतिगुरि दीआ ।
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा नानक सरणि तुमारी जीउ ॥६॥१॥१२॥

(हरी का प्रेमी) दिन रात (उसके प्रेम में) जगता है (वह अज्ञान की) निद्रा में नहीं सोता । (किन्तु इस मर्म को) वही जान सकता है, जिसके (हृदय में प्रेम की) वेदना हो । जिसके शरीर में प्रेम के तीर लग जाते हैं, (भला), वैद्य (उसकी) औषधि क्या जान सकता है ? ॥ १ ॥

सच्चा (परमात्मा) जिसे (अपनी) स्तुति में लगाता है, (वही उसकी स्तुति करता है) । किसी विरले ही गुरमुख को (वह अपने स्वरूप का) बोध कराता है । जो व्यक्ति अमृत का व्यापारी होता है, वही अमृत का मूल्य समझता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिस प्रकार स्त्री (अपने) पति के साथ प्रेम करती है, उसी प्रकार (शिष्य को भी) अपने गुरु के शब्द में चित्त लगाना चाहिए । उस अत्यन्त सुखी स्त्री ने सहज भाव से (पूर्ण आनन्द और शान्ति से) (अपनी) तृष्णा और तृषा (प्यास) का निवारण कर दिया ॥ २ ॥

(जो साधक) संशय तोड़ देता है, भ्रम नष्ट कर देता है और सहज भाव से (परमात्मा की) स्तुति का धनुष चढ़ाता है, (तात्पर्य यह कि सहज रीति से परमात्मा के गुणगान में लीन रहता है), गुरु के शब्द द्वारा (अपने अहंकार से) मर जाता है और मन को मार देता है, वही सुन्दर योग को धारण करनेवाला (पुरुष) है ॥ ३ ॥

(जो) अहंकार में जला पड़ा है, (उसने मानो) मन को भी भुला दिया है । यमपुरी में (ऐसे व्यक्तियों के ऊपर) कठिन—भयंकर तलवारें पड़ेंगी (बजेंगी) । मार पड़ते समय माँगने से नाम नहीं मिलता तब तो हे जीव तुझे कठोर (भारी) सजा सहनी पड़ेगी ॥ ४ ॥

(हे जीव तू भ्रमी) माया और ममता के चिन्तन में पड़ा है (किन्तु स्मरण रख) यमपुरी में यमजाल में अवश्य फँसाया जायगा। (यदि) तू मोह के बन्धन नहीं तोड़ सकता (तो समझ ले कि) यमराज (तुझे अत्यधिक) दुखी बनायेगा ॥ ५ ॥

न तो मैंने (पहले) कुछ किया है और न (अब) कुछ कर रहा हूँ। सद्गुरु ने मुझे (हरिनाम रूपी) अमृत प्रदान कर दिया है। (हे प्रभु) जिसे तू देता है, उसके ऊपर किसी का क्या चारा (चल सकता) है ? नानक तो तेरी शरण में है ॥ ६ ॥ १ ॥ १२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मारू, महला १, घरु १

असटपदीआं [१]

बेद पुराण कथे सुणे हारे मुनी अनेका।
अठसठि तीरथ बहु घणा भ्रमि थाके भेखा ॥
साचो साहिबु निरमलो मनि मानै एका ॥१॥

तू अजरावरु अमरु तू सभ चालणहारी।
नामु रसाइणु भाइ लै परहरि दुखु भारी ॥१॥ रहाउ ॥

हरि पड़ीऐ हरि बुझीऐ गुरमती नामि उधारा।
गुरि पूरै पूरी मति है पूरै सबदि बीचारा ॥
अठसठि तीरथ हरि नामु है किलविख काटणहारा ॥२॥

जलु बिलोवै जलु मथै ततु लोड़ै अंधु अगिआना।
गुरमती दधि मथीऐ अम्रितु पाईऐ नामु निधाना ॥
मनमुख ततु न जाणनी पसू माहि समाना ॥३॥

हउमै मेरा मरी मरु मरि जमै वारोवार।
गुर कै सबदे जे मरै फिरि मरै न दूजी वार ॥
गुरमती जगजीवनु मनि वसै सभि कुल उधारणहार ॥४॥

सचा वखरु नामु है सचा वापारा।
लाहा नामु संसारि है गुरमती वीचारा ॥
दूजै भाइ कार कमावणी नित तोटा सैसारा ॥५॥

साची संगति थानु सचु सचे घरबारा।
सचा भोजनु भाउ सचु सचु नामु अधारा।
सची बाणी संतोखिआ सचा सबदु वीचारा ॥६॥

रस भोगण पातिसाहीआ दुख सुख संसारा।
वडा नाउ गणाईऐ गलि अउगण भारा ॥
माणस दाति न होवई तू दाता सारा ॥७॥

अगम अगोचर तू धणी अविगतु अपारा ।
गुर सबदी दरु जोईऐ मुकते भंडारा ॥
नानक मेलु न चूकई साचे वापारा ॥८॥१॥

बहुत से मुनि वेदों और पुराणों का कथन और श्रवण करके हार गए; (अनेक) वेशधारी अड़सठ तीर्थों का अत्यधिक भ्रमण करके थक गए, (किन्तु शान्ति न प्राप्त कर सके)। एक सच्चे और निर्मल साहब (हरी के स्मरण से ही यह) मन मानता है, (शान्त होता है) ॥ १ ॥

(हे प्रभु, तू) अमर है अपार (सबसे परे) है, अमर है और सभी को बनानेवाला है। (जो व्यक्ति) तेरे नाम रसामृत को प्रेमपूर्वक लेता है, वह महान् दुःखों को दूर कर लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे शिष्य) हरी को ही पढ़ और हरी को ही समझ। गुरु द्वारा नाम (लेने से) उद्धार होता है। पूर्ण गुरु से ही पूर्ण बुद्धि होती है (और उसी में) पूर्ण शब्द का विचार है। हरिनाम ही अड़सठ तीर्थ है (और वही) पापों को काटनेवाला है ॥ २ ॥

अंधा अज्ञानी (मनुष्य) पानी बिलोता है और पानी मथता है, (किन्तु उस पानी के मथने से) तत्व (मक्खन) निकालना चाहता है, (तात्पर्य यह कि सांसारिक कर्मों को तो करता है और चाहता है परम सुख)। (यदि) गुरु के उपदेश द्वारा (शब्द को) मथा जाय, तो नाम-निधान (रूपी मक्खन) प्राप्त होता है। मनमुख तत्व को नहीं जानता, (वह अपने तमोगुणी स्वभाव के कारण) पशु-स्वभाव में ही समा जाता है ॥ ३ ॥

(जो व्यक्ति) अहंकार और 'मैंपन' की मृत्यु से मरता है, (वह) बारंबार जन्मता और मरता रहता है। (जो व्यक्ति) गुरु के शब्द द्वारा (अपने अहंभाव से) मर जाता है, (वह) फिर दूसरी बार नहीं मरता। गुरु की शिक्षा द्वारा (जिसके) मन में जगजीवन (हरी) बसता है (वह व्यक्ति अपने) समस्त कुल का उद्धारकर्ता हो जाता है ॥ ४ ॥

नाम ही सच्चा सौदा है और सच्चा व्यापार है। गुरु द्वारा विचार करने से (हरि का) नाम संसार (का परम) लाभ प्रतीत होता है। (एक हरी को छोड़ कर) अन्य द्वैत भाव में काम करने से संसार में नित्य घाटा ही घाटा होता है ॥ ५ ॥

(गुरमुखों की) सच्ची संगति होती है (उनका) स्थान सच्चा होता है (और उनका) घर-बार भी सच्चा ही होता है। (उनका) भोजन सच्चा होता है, उनका प्रेम (भाव) भी सच्चा ही होता है। उनका सहारा (आधार) सच्चा (हरि का) नाम होता है। (वे) सच्ची वाणी और सच्चे शब्द के विचार से संतुष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

बादशाही आनन्द और भोग (और अन्य सांसारिक) दुःख-सुख (मनुष्य का) संहार करते हैं, (तात्पर्य यह कि मनुष्य मानव जीवन आनन्द भोग और रँगरलियाँ मनाने में ही नष्ट हो जाता है)। (मनुष्य अपना) नाम तो बहुत बड़ा रखता है, किन्तु (उसके) गले में अवगुणों का भार है। (हे प्रभु), मनुष्य के किए हुए कोई दान नहीं होते, (असली और) श्रेष्ठ दाता तो तू ही है ॥ ७ ॥

हे स्वामी तू अगम अगोचर और अविनाशी है। गुरु के शब्द द्वारा (हरी का) दरवाजा ढूँढा जाय तो मुक्ति का भण्डार प्राप्त हो जाता है। हे नानक सच्चे व्यापार का

।

मिलाप कभी समाप्त नहीं होता (तात्पर्य यह कि सच्चे व्यापार—सच्ची भक्ति से परमात्मा की प्राप्ति सदैव के लिये हो जाती है) ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

बिखु बोहिथा लादिआ दीआ समुंद मंझारि ।
कंधी दिसि न आवई ना उरवारु न पारु ॥
वंझी हाथि न खेवटू जलु सागरु असरालु ॥१॥

बाबा जगु फाथा महा जालि ।
गुरपरसादी उबरे सचा नामु समालि ॥१॥ रहाउ ॥

सतिगुरु है बोहिथा सबदि लंघावणहारु ।
तिथै पवणु न पावको ना जलु ना आकारु ॥
तिथै सचा सचि नाइ भवजल तारणहारु ॥२॥

गुरमुखि लंघे से पारि पए सचे सिउ लिव लाइ ।
आवागउणु निवारिआ जोती जोति मिलाइ ।
गुरमती सहजु ऊपजै सचे रहै समाइ ॥३॥

सपु पिड़ाई पाईऐ बिखु अंतरि मनि रोसु ।
पूरबि लिखिआ पाईऐ किस नो दीजै दोसु ॥
गुरमुखि गारड़ु जे सुणे मंने नाउ संतोसु ॥४॥

मागर मछु फहाईऐ कुंडी जालु वताइ ।
दुरमति फाथा फाहीऐ फिरि फिरि पछोताइ ॥
जंमणु मरणु न सुझई किरतु न मेटिआ जाइ ॥५॥

हउमै बिखु पाइ जगतु उपाइआ सबदु वसै बिखु जाइ ।
जरा जोहि न सकई सचि रहै लिव लाइ ॥
जीवन मुकतु सो आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ ॥६॥

धंधै धावत जगु बाधिआ ना बूझै वीचारु ।
जंमण मरणु विसारिआ मनमुख मुगधु गवारु ॥
गुरि राखे से उबरे सचा सबदु वीचारि ॥७॥

सूहटु पिंजरि प्रेम कै बोलै बोलणहारु ।
सचु चुगै अंम्रितु पीऐ उडै त एका वार ॥
गुरि मिलिऐ खसमु पछाणीऐ कहु नानक मोख दुआरु ॥८॥२॥

(मनुष्य) विषयों का जहाज लाद कर संसार-सागर में डाल देता है। (परिणाम यह होता है उसे संसार-सागर का) किनारा नहीं दिखाई पड़ता (सुझाई पड़ता) (उसे) न तो यह पार दिखाई देता है और न वह पार। न तो हाथ में डांड (लग्गी) है, न मल्लाह है (और इसके विपरीत) संसार-सागर का जल बड़ा ही भयावह है ॥ १ ॥

हे बाबा यह संसार (माया के) महा जाल में फँसा हुआ है। गुरु की कृपा से सच्चे नाम को स्मरण करके (इस महा जाल से) बचा जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सद्गुरु (संसार-सागर से पार उतरने के लिए) जहाज है (वह अपने) शब्द द्वारा (मनुष्यों को) पार लगा देता है। (उस सद्गुरु रूपी जहाज का आश्रय लेने से) वहाँ वायु, अग्नि जल तथा अन्य किसी प्रकार के आकार (का भय) नहीं (रह जाता)। उस स्थान पर (सद्गुरु के सान्निध्य में) सत्य (परमात्मा है), (और उसका) सच्चा नाम है, (जो) संसार-सागर से पार करनेवाला है ॥ २ ॥

गुरु के माध्यम से (जो व्यक्ति) सच्चे (परमात्मा) से लिव लगा कर (संसार-सागर) लाँघना चाहते हैं, वे उसके पार हो जाते हैं। (सद्गुरु ने) (शिष्य के) आवागमन (जन्म-मरण) का निवारण कर दिया और (जीवात्मा की) ज्योति को (परमात्मा की) ज्योति से मिलाकर (उन्हें एक कर दिया)। गुरु की शिक्षा द्वारा ही सहजावस्था—तुरीयावस्था की उत्पत्ति होती है, (जिसके फलस्वरूप शिष्य) सत्यस्वरूप (परमात्मा) मे समाहित हो जाता है ॥ ३ ॥

चाहे साँप को पिटारी (में डाल कर) बंद कर दिया जाय (फिर भी) (उसके) भीतर विष (और उसके) मन में रोष रहता है (उसी प्रकार मनुष्य अपने भाव को चाहे किसी वेश में परिवर्तित कर दे तो भी उसके भीतर विषय रूपी विष विद्यमान रहते हैं) किन्तु इसमें उसका कोई दोष नहीं है, वह तो अपने पूर्व जन्म के कर्मों के स्वभाव के अनुसार व्यवहार कर रहा है। (हाँ यदि वह) गुरु के द्वारा शब्द—नाम रूपी गारुड़-मन्त्र सुने और नाम को माने तो उसके (विषय रूपी) विष दूर हो जायँ (और उसका मन) संतुष्ट—शान्त हो जाय ॥ ४ ॥

(जिस प्रकार समुद्र अथवा अन्य बड़े जलाशयों में) कँडी (काँटा) और जाल डाल कर मगरमच्छ फँसाए जाते हैं (उसी प्रकार माया के विषयों द्वारा) दुर्बुद्धि (मनुष्य) फँसाया जाता है (वह बंधन में फँसने के कारण बार-बार पछताता है। (उसे) जन्म-मरण की सूझ नहीं होती (उसके किए हुए कर्मों के पूर्व) संस्कार नहीं मेटे जा सकते ॥ ५ ॥

(प्रभु ने) अहंकार का विष डाल कर जगत की उत्पत्ति की (तात्पर्य यह कि अहंकार ही सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है) (यदि मनुष्य के मन में) शब्द—नाम का निवास हो जाय (तो अहंकार का) विष दूर हो जाता है। (ऐसे मनुष्य को) वृद्धावस्था दुःख नहीं दे सकती, (क्योंकि वह) सत्य में लिव लगाए रहता है। जिसके भीतर से अहंकार नष्ट हो जाता है उसी को जीवन्मुक्त कहना चाहिए ॥ ६ ॥

(सारा) जगत प्रपंचों (के पीछे) दौड़ते हुए बँधा है; (किसी व्यक्ति में) इस विचार की समझ नहीं होती। मूर्ख और गँवार मनमुख ने जन्म-मरण (के कष्टों को) भुला दिया है (इसी से वह मनमानी काम करता है)। जिसकी गुरु रक्षा करता है, वह सच्चे शब्द को विचार कर बच जाता है ॥ ७ ॥

(हरी ने) प्रेम के पिंजड़े में (पड़कर) (जीवात्मा रूपी) तोता (सुग्गा) प्रेम के बोल बोलता है। (वह प्रेम रूपी पिंजड़े) में सत्य रूपी (चारा) चुगता और (परमात्मा के प्रेम

रस रूपी) अमृत (का पान) पीता है, और वह यहाँ न एक बार भी नहीं उड़ता (तात्पर्य यह कि जीवात्मा रूपी हंस का जन्म-मरण समाप्त हो जाता है)। नानक कहते हैं कि गुरु से मिलकर पति (परमात्मा) को पहचाना, वही (गुरु ही) मोक्ष का द्वार है ॥ ८ ॥२ ॥

[३]

सबदि मरै ता मारि मरु भागो किसु पहि जाउ ।
जिसकै डरि भै भागीऐ अमृतु ताको नाउ ॥
मारहि राखहि एकु तू बीजउ नाही थाउ ॥१॥

बाबा मै कुचीलु काचउ मति हीन ।
नाम बिना को कछु नही गुरि पूरै पूरी मति कीन ॥१॥ रहाउ ॥

अवगणि सुभर गुण नही बिनु गुण किउ घरि जाउ ।
सहजि सबदि सुखु ऊपजै बिनु भागा धनु नाहि ।
जिन कै नामु न मनि वसै से बाधे दूख सहाहि ॥२॥

जिनी नामु विसारिआ से कितु आए संसारि ।
आगै पाछै सुखु नही गाडे लादे छारु ॥
विछुड़िआ मेला नही दूखु घणो जम दुआरि ॥३॥

अगै किआ जाणा नाहि मै भूले तू समझाइ ।
भूले मारगु जो दसे तिस कै लागउ पाइ ॥
गुर बिनु दाता को नही कीमति कहणु न जाइ ॥४॥

साजनु देखा ता गलि मिला साचु पठाइओ लेखु ।
मुखि धिमाणै धन खड़ी गुरमुखि आखी देखु ॥
तुधु भावै तू मनि वसहि नदरी करमि विसेखु ॥५॥

भूख पिआसो जे भवै किआ तिसु मागउ देइ ।
बीजउ सूझै को नही मनि तनि पूरनु देइ ॥
जिनि कीआ तिनि देखिआ आपि वडाई देइ ॥६॥

नगरी नाइकु नवतनो बालकु लील अनूपु ॥
नारि न पुरखु न पंखणू साचउ चतुरु सरूपु ॥
जो तिसु भावै सो थीऐ तू दीपकु तू धूपु ॥७॥

गीत साद चाखे सुणे बाद साद तनि रोगु ।
सचु भावै साचउ चवै छूटै सोग विजोगु ॥
नानक नामु न वीसरै जो तिसु भावै सु होगु ॥८॥३॥

(हे साधक) शब्द—नाम में (अहंकार भावना से) मर कर, (इस) मृत्यु को मार, (नहीं तो) भग कर किसके पास जायगा ? जिस हरी के भय से भय डरने भाग जाता हो जाता है, उसका नाम ही अमृत (अमर करनेवाला) है। (हे प्रभु), एक तू ही मार

सकता है और रक्षा भी कर सकता है, मेरे लिए (तुम्हें छोड़ कर) दूसरा कोई स्थान नहीं है ॥ १ ॥

हे बाबा मैं अन्धा अन्धा और बुद्धिहीन हूँ। नाम के बिना कोई कुछ भी नहीं हो सकता पूर्ण गुरु ने पूर्ण बुद्धि प्रदान की है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं अवगुणों से भली भाँति परिपूर्ण हूँ (मुझमें कोई भी) गुण नहीं है; बिना गुणों के अपने (वास्तविक) घर (परमात्मा के निकट) कैसे जाऊँ ? सहज (पूर्ण स्थिरता और शान्ति प्रदान करनेवाले) शब्द के द्वारा सुख उत्पन्न होता है। (परन्तु) बिना भाग्य के (यह) धन (हाथ में) नहीं आता। जिनके मन में नाम नहीं बसता वे बाँधे जाते हैं और दुःख सहन करते हैं ॥ २ ॥

जिन (व्यक्तियों) ने नाम भुला दिया है, (भला) वे संसार में आए ही क्यों? (उत्पन्न ही क्यों हुए) ? (उन्हें) आगे-पीछे (कहीं भी) सुख नहीं है; वे राख से भरे हुए छकड़े हैं, (तात्पर्य यह कि उनके शरीर पापों से भरे हुए हैं)। जो बिछुड़े हैं, उनका मेल नहीं होता और यम के द्वार पर (उन्हें) महान् कष्ट (भोगना होता) ॥ ३ ॥

(मार्ग में) आगे क्या है (यह) मेरा जाना हुआ नहीं है; (हे प्रभु) (मार्ग) भटके हुओं को तू ही (मार्ग) दिखाता है (समझाता है)। भूले हुए को जो मार्ग दिखाता है (बताता है) (मैं) उसके चरणों में लगता हूँ। गुरु के बिना कोई भी दाता (इस संसार में) नहीं है (उस गुरु की) कीमत कही नहीं जा सकती ॥ ४ ॥

पति (साजन) के देखने पर, उससे गले लग कर मिल, सत्य रूपी चिट्ठी (शिक्षाप्रद) उसने भेजी है। स्त्री मुँह (लटकाए) सोच-विचार (ध्यान) में खड़ी है, हे स्त्री उसे (पति-परमात्मा को) गुरु द्वारा आँखों से देख ले। (हे हरी) जब तुझे अच्छा लगता है, तभी तू मन में बसता है, (जिसके मन में तू बसता है, उसके ऊपर विशेष) कृपादृष्टि होती है ॥ ५ ॥

(जो स्वयं ही) भूख-प्यास में (इधर-उधर) भटक रहा है, उससे क्या माँगूँ ? (वह माँगने पर) दे ही (क्या सकता) है ? देनेवाला और कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता जो (हमारे) शरीर और मन में पूर्ण रूप (से व्याप्त) है, (वही) देता है। (जिस प्रभु ने हमारी) रचना की है, वही (हमारी) देखभाल भी करता है (और वह) मान ही बड़ाई देता है ॥ ६ ॥

(शरीर रूपी) नगरी का स्वामी (हरी है) (वह) नवीन शरीरवाला है और बालकों (की भाँति) नित्य (नई-नई) अनुपम लीला कर रहा है। (वह हरी) स्त्री पुरुष और पक्षियों (की सीमा से परे है) (वह) चतुर और सत्यस्वरूप है। जो (कुछ) उस प्रभु को अच्छा लगता है, वही होता है (हे प्रभु) तू ही (प्रकाश रूपी) दीपक है (और तू ही सुगन्धि रूपी) धूप है ॥ ७ ॥

(मैंने बहुत से) गीतों को सुना (और अनेक) स्वादों का रसास्वादन किया (किन्तु सारे) स्वाद व्यर्थ हैं और शरीर में रोग (उत्पन्न करनेवाले हैं)। (यदि मनुष्य) सत्य (परमात्मा से ही) प्रेम करे, सत्य ही बोले (तो वह नाशवान) शोक और (परमात्मा के) वियोग से दूर जाता है। हे नानक नाम को नहीं भुलाना चाहिए; जो उस (प्रभु) को अच्छा लगेगा, वही होगा ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

साची कार कमावणी होरि लालच बादि ।
इहु मनु साचै मोहिआ जिहवा सचि सादि ॥
बिनु नावै को रसु नही होरि चलहि बिखु लादि ॥१॥
ऐसा लाला मेरे लाल को सुणि खसम हमारे ।
जिउ फुरमावहि तिउ चला सचु लाल पिआरे ॥१॥ रहाउ ॥
अनदिनु लाले चाकरी गोले सिरि मीरा ।
गुर बचनी मनु वेचिआ सबदि मनु धीरा ॥
गुर पूरे साबासि है काटै मन पीरा ॥२॥
लाला गोला धणी को किआ कहउ वडिआईऐ ।
भाणै बखसे पूरा धणी सचु कार कमाईऐ ॥
विछुड़िआ कउ मेलि लए गुर कउ बलि जाईऐ ॥३॥
लाले गोले मति खरी गुर की मति नीकी ।
साची सुरति सुहावणी मनमुख मति फीकी ॥
मनु तनु तेरा तू प्रभू सचु धीरक धुर की ॥४॥
साचै बैसणु उठणा सचु भोजनु भाखिआ ।
चिति सचै वितो सचा साचा रसु चाखिआ ॥
साचै घरि साचै रखे गुर बचनि सुभाखिआ ॥५॥
मनमुख कउ आलसु घणो फाथे ओजाड़ी ।
फाथा चुगै नित चोगड़ी लगि बधु विगाड़ी ॥
गुरपरसादी मुकतु होइ साचे निज ताड़ी ॥६॥
अनहति लाला बेधिआ प्रभ हेति पिआरी ।
बिनु साचे जीउ जलि बलउ झूठे वेकारी ॥
बादि कारा सभि छोडीआ साची तरु तारी ॥७॥
जिनी नामु विसारिआ तिना ठउर न ठाउ ।
लालै लालचु तिआगिआ पाइआ हरि नाउ ॥
तू बखसहि ता मेलि लैहि नानक बलि जाउ ॥८॥४॥

(सच्चे साधक) सच्ची करनी करते हैं (उनके लिए) (संसार के) और लोभ व्यर्थ हैं। (ऐसे मनुष्यों का) मन सत्य (परमात्मा) में मोहित है (और उनकी) जिह्वा सच्चे (नाम के) स्वाद (में रत) है। बिना नाम के (इस संसार में) कोई रस नहीं है, और (सांसारिक) लोग (माया का) विष लाद कर (यहाँ से चले जाते हैं) ॥ १ ॥

हमारे स्वामी (हरी के समान) और कौन सुना जाता है ? मैं अपने लाल (प्रियतम स्वामी) का ऐसा गुलाम हूँ कि जो कुछ भी वह आज्ञा देता है, उसी में मैं चलता हूँ (वह हमारा) प्यारा लाल सत्यस्वरूप है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) प्रतिदिन (अपने स्वामी की) सेवावाली चाकरी में हूँ (मुझ) सेवक के सिर पर (मेरा) स्वामी (मौरा) है। गुरु के आदेशानुसार (मैंने अपने मन को) वेध दिया और शब्द—ज्ञान से (मेरा) मन चैतन्य हो गया है। (उस) पूर्ण गुरु को धन्य है, (जिसने) मन की पीड़ा काट दी है ॥ २ ॥

स्वामी (हरी) के गुलाम की क्या बड़ाई बतलाई जाय ? पूर्ण स्वामी (अपनी) मर्जी से (किसी भी मनुष्य को) बख्श देता है, (हरी के आदेश से मनुष्य को) सत्य काम करने चाहिए। (गुरु ही हरी से) बिछुड़े हुए (मनुष्यों को उससे) मिलाता है, (ऐसे गुरु पर) बलिहारी हो जाना चाहिए ॥ ३ ॥

गुरु की बुद्धि उत्तम होने से, (उसके) सेवक की बुद्धि भी उत्तम और स्वच्छ हो गई है। सच्ची (वृत्ति) होने के कारण (उसकी सुरति) सुहावनी हो गई है (किन्तु जो व्यक्ति) मनमुख है, (उनकी) बुद्धि फीकी (होती है)। (गुरमुख यह समझता है कि हे प्रभु, यह मेरा) मन और शरीर सब कुछ तेरा ही है तू ही (मेरा) प्रभु है, सत्य आरम्भ से ही उन्हें वेध प्रदान करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

(गुरमुखों का) सत्य में ही बैठना और उठना (होता है); (वे) सत्य का ही भोजन करते हैं। (उनके) चित्त में सत्य (हरी) के होने से उनका वचन भी सच्चा ही होता है (वे) सत्य-रस (परमात्म-प्रेम) का ही आस्वादन करते हैं। जिन (गुरमुखों) की वाणी गुरु के उपदेश (वचन) द्वारा सुन्दर हो गई है, उन्हें सत्य (हरी) ने (अपने) चरण घर में रक्खा है ॥ ५ ॥

मनमुख को (हरी के भजन करने में) बहुत आलस्य होता है (वह संसार के विकट) वन में बैठ गया है। (वह) फंसा हुआ (प्राणी) (माया के पदार्थ रूपी) चारे के चुगने में लग कर (हरी से) सम्बन्ध बिगाड़ लेता है। गुरु की कृपा से अपने सच्चे स्वरूप में उसकी (प्यार) लगा कर (वह) मुक्त हो सकता है ॥ ६ ॥

(प्रभु का) दास अपने स्वामी के प्रेम और प्यार में निरन्तर बिंधा रहता है। (जो) सच्चे (हरी) के बिना हैं, (वे) झूठे और विकारी हैं, (उनका) जी जलता-बलता रहता है। (हे मनुष्य) सारे व्यर्थ कार्यों को त्याग दे, (प्रभु की) सच्ची तराजी तैर ॥ ७ ॥

जिन्होंने नाम भुला दिया है, उनका कोई भी ठौर-ठिकाना नहीं होता। (प्रभु के) सेवक ने (सांसारिक) लोभ का परित्याग कर दिया (जिससे उसे) हरि के नाम की प्राप्ति हो गई। (हे हरी यदि) तू कृपा करे तो अपने में मिला लेता है। नानक (तुझ पर) बलिहारी है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

ताते मारगु छोडिआ गुर कै पै लहरि सुमाई ॥
मासे चतनु पछाड़िआ वडी वडिआई ॥
चरनि मिलिए सुख पाइआ कीमति कहणु न जाई ॥१॥
साचा गोला खसम का खसमै वडिआई ।
गुरपरसादी उबरे हरि की सरणाई ॥१॥ रहाउ ॥

दासे नो सिरिकार है धुरि खसमि फुरमाई ।
दासे हुकमु पछाणिआ सदा रहै रजाई ॥
दासे मीरा बखसि लए वडी वडिआई ॥२॥

आपि सचा सभु सचु है गुर सबदि बुझाई ।
तेरी सेवा सो करे जिसनो लैहि तू लाई ॥
बिनु सेवा किनै न पाइआ दूजै भरमि खुआई ॥३॥

सो किउ मनहु विसारीऐ नित देवै चड़ै सवाइआ ।
जीउ पिंडु सभु तिसदा साहु तिनै विचि पाइआ ॥
जा क्रिपा करे ता सेवीऐ सेवि सचि समाइआ ॥४॥

दासा सो जीवतु मरै मरि विचहु आपु गवाए ।
बंधन तुटहि मुकति होइ त्रिसना अगनि बुझाए ॥
सभ महि नामु निधानु है गुरमुखि को पाए ॥५॥

दासे विचि गुणु किछु नही दाता अवगणिआरु ।
तुधु जेवडु दाता को नही तू बखसणहारु ॥
तेरा हुकमु दासा मंनै एहु करणी सारु ॥६॥

गुरु सागरु अमृतसरु जो इछे सो फलु पाए ।
नामु पदारथु अमरु है हिरदै मंनि वसाए ॥
गुर सेवा सदा सुखु है जिसनो हुकमु मनाए ॥७॥

सुइना रुपा सभ धातु है माटी रलि जाई ।
बिनु नावै नालि न चलई सतिगुरि बूझ बुझाई ॥
नानक नामि रते से निरमले साचै रहे समाई ॥८॥५॥

(प्रभु के) सेवक ने गुरु से मन और सहज (शान्त) स्वभाव (सीख कर) अहंकार का परित्याग कर दिया है। सेवक ने पति (परमात्मा) को पहचान लिया है (इससे वह) बहुत बड़ी बड़ाई (का पात्र बना है)। स्वामी (हरी) के मिलने से (उसे) (परम) सुख प्राप्त हुआ है (उस सुख की) कीमत कही नहीं जा सकती ॥ १ ॥

(सच्चा साधक) प्रभु का दास—सेवक है स्वामी की ही (सारी) बड़ाई है। गुरु की कृपा से हरि की शरण में (आने से) सेवक तर जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(प्रभु का हुक्म मानना ही) दास के सिर का कार्य है (प्रभु ने) प्रारम्भ से ही उस (हुक्म में लगने की) आज्ञा दे दी है। (सच्चा) सेवक (प्रभु के) हुक्म को पहचान कर सदैव उसकी आज्ञा में (रत) रहता है। मालिक—स्वामी ने (हरि ने सेवक के ऊपर) स्वयं ही बड़ी कृपा की है (यह उसकी) बड़ी महत्ता है ॥ २ ॥

गुरु के उपदेश से (शिष्य को यह) बोध हुआ है कि (प्रभु) स्वयं भी सच्चा है (और उसकी) समस्त (रचना भी) सच्ची है। (हे प्रभु) तेरी सेवा वही (भाग्यशाली) कर सकता है जिसे तूने पकड़ कर उसमें लगा दिया है। बिना सेवा के किसी ने भी

(हरी को) नहीं प्राप्त किया है (बिना सेवा के मनुष्य) द्वैतभाव में पड़ कर नष्ट हो गए हैं ॥ ३ ॥

(भला उस प्रभु को) मन से कैसे भुलाया जाय जो नित्य देता रहता है, (और जिसका दिया हुआ) खजाना बढ़ता रहता है ? (प्राणिमात्र के) समस्त प्राण और शरीर उसी (प्रभु) के हैं (समस्त प्राणियों के) भीतर (उसी प्रभु ने) श्वास भी डाल रक्खी है (जिसके सहारे प्राणी जीते हैं)। जब (वह प्रभु) कृपा करता है, तभी (उसकी) आराधना हो सकती है सेवा करने से (साधक) सत्य (हरी में) समा जाते हैं ॥ ४ ॥

(सच्चा) सेवक वही है, जो जीते ही मर जाय (और इस प्रकार मर कर अपने) अन्तर्गत से (इस मरने के) अहंकार को भी दूर कर दे। (जो साधक अपनी) तृष्णा की अग्नि को बुझा देता है (उसके) बन्धन टूट जाते हैं (और वह) मुक्त हो जाता है। सभी के अन्तर्गत (हरि के) नाम का भाण्डार है गुरु के उपदेश द्वारा कोई विरला ही (साधक इस नाम रूपी धन को) पाता है ॥ ५ ॥

(मुझ) सेवक में कोई भी गुण नहीं है, (मैं) सेवक (बहुत ही) अवगुणी हूँ। (हे प्रभु) तुमसे बड़ा कोई भी दाता नहीं है, तू ही क्षमा करनेवाला है। तेरा दास तेरे हुक्म को माने (यही उसके लिए) श्रेष्ठ करनी है ॥ ६ ॥

गुरु (नाम रूपी) अमृत का सागर है (शिष्य गुरु के पास) जो कुछ भी इच्छा करे वही (उसे) प्राप्त होता है। (शिष्य) नाम रूपी अमर पदार्थ (को गुरु से ग्रहण करके उसे अपने) मन और हृदय में बसा लेता है। गुरु की सेवा ही सर्वश्रेष्ठ सुख है जिससे (प्रभु) हुक्म समझाता है (वही इस हुक्म को मानता है) ॥ ७ ॥

सोना चाँदी सभी धातु है, (और एक न एक दिन) मिट्टी में मिल जाती है। (हरी के) नाम के बिना (कोई अन्य वस्तुएँ मनुष्य के) साथ नहीं जाती, सद्गुरु ही इस समझ को समझाता है। हे नानक, जो नाम में रत हैं, वे ही निर्मल (पवित्र) हैं (वे) सत्य (परमात्मा) में समा जाते हैं ॥ ८ ॥ ५ ॥

[६]

हुकमु भइआ रहणा नही धुरि फाटे चीर ।
एहु मनु अवगणि बाधिआ सहु देह सरीर ॥
पूरै गुरि बखसाईअहि सभि गुनह फकीर ॥१॥
किउ रहीऐ उठि चलणा बुझु सबद बीचारु ।
जिसु तू मेलै सो मिलै धुरि हुकमु अपारु ॥१॥ रहाउ ॥
जिउ तू राखहि तिउ रहा जो देहि सु खाउ ॥
जिउ तू चलावहि तिउ चला मुखि अंम्रित नाउ ॥
मेरे ठाकुर हथि वडिआईआ मेलहि मनि चाउ ॥२॥
कीता किआ सालाहीऐ करि वेखै सोई ।
जिनि कीआ सो मनि वसै मै अवरु न कोई ॥
सो साचा सालाहीऐ साची पति होई ॥३॥

पड़िआ पड़ि न पहुचई बहु आल जंजाला ।
पाप पुंन दुइ संगमे खुधिआ जमकाला ॥
विसरोवहु भउ बीसरै पूरा रखवाला ॥८॥

जिस की सेवै सतिगुरै से पूरे भाई ।
पूरे पूरी मति है सची वडिआई ॥
देवै तोटि न आवई लै लै चडि बाई ॥९॥

खार समुद्र ढंढोलीऐ इकु मणीआ पावै ।
दुइ दिन चारि सुहावणा माटी तिसु खावै ॥
गुरु सागरु सति सेवीऐ दे तोटि न आवै ॥१०॥

मेरे प्रभ भावनि से ऊजले सभ मैलु भरीजै ।
मैला ऊजलु ता थीऐ पारस संगि भीजै ।
वंनी साचे लाल की किनि कीमति कीजै ॥११॥

भेखी हाथ न लभई तीरथि नही दाने ।
पूछउ बेद पड़ंतिआ मूठी विणु माने ॥
नानक कीमति सो करे पूरा गुरु गिआने ॥१२॥६॥

प्रारम्भ से ही चिट्ठी के फटने से, (तात्पर्य यह कि हरी के पास से फटी हुई चिट्ठी आने से)—(यह समझ लेना चाहिए कि अब उसका) हुक्म हो गया है। (अब इस संसार में) नहीं रहना है। [उत्तरी भारत में कहीं कहीं यह रिवाज है कि मृत्यु का संदेशा देनेवाली चिट्ठी को ऊपरी भाग में फाड़ दिया जाता है]। यह मन अवगुणों से बँधा हुआ है और इस देह-शरीर में (अवगुणों के कारण) दुःख ही सहायक है। (किन्तु यह विश्वास है कि) मुझ कठोर (दास) के अपराध पूर्ण गुरु द्वारा क्षमा किए जायँगे ॥ १ ॥

(इस संसार से) उठ कर चलना किस प्रकार समाप्त हो (तात्पर्य यह कि जन्म मरण का चक्र किस प्रकार समाप्त हो)? (इस बात को गुरु के) शब्द के द्वारा विचार करके समझ। (हे प्रभु) जिसे तू अपने में मिलाता है, वही तुझ में) मिलता है यह अकाट्य हुक्म प्रारम्भ से ही (लिखा रहता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु, मेरी यही इच्छा है कि) जिस प्रकार तू (मुझे) रखे (मैं) उसी प्रकार रहूँ। तू जो (कुछ भी) दे, (मैं) वही खाऊँ। तू जिस प्रकार मुझे चलावे (व्यवहार में लगावे) मैं तेरा अमृत रूपी नाम मुख में रख कर, उसी प्रकार चलूँ (तात्पर्य यह कि उसी प्रकार व्यवहार करूँ जैसा तू मुझे करने के लिए प्रेरणा दे)। मेरे ठाकुर के हाथ में सभी बड़ाइयाँ (ऐश्वर्य) हैं मेरे मन में यही चाव है कि मुझे (वह अपने में) मिला ले ॥ २ ॥

(परमात्मा द्वारा उत्पन्न) किए हुए (जीव) की क्या प्रशंसा की जाय जब कि (उन्हें उत्पन्न करके हरी अपनी स्वयं) देखभाल (निगरानी) करता है? जिस (प्रभु ने हम सब का निर्माण) किया है वह (मेरे) मन में निवास करे, मेरे लिए (तो उस प्रभु के अतिरिक्त) और कोई दूसरा नहीं है। उस सच्चे (हरी) की प्रशंसा करने से सच्ची प्रतिष्ठा होती है ॥ ३ ॥

अंतरि अगनि न गुर बिनु बूझै बाहरि पूअर तापै ।
गुर सेवा बिनु भगति न होवी किउकरि चीनसि आप ॥
निंदा करि करि नरक निवासी अंतरि आतम जापै ।
अठसठि तीरथ भरमि विगूचहि किउ मलु धोपै पापै ॥१॥
छाणी खाकु बिभूत चड़ाई माइआ का मगु जोहै ।
अंतरि बाहरि एकु न जाणै साचु कहे ते छोहै ॥
पाठु पड़ै मुखि झूठो बोलै निगुरे की मति ओहै ।
नामु न जपई किउ सुखु पावै बिनु नावै किउ सोहै ॥२॥
मूंडु मुडाइ जटा सिख बाधी मोनि रहै अभिमाना ।
मनूआ डोलै दहदिस धावै बिनु रत आतम गिआना ॥
अंम्रितु छोडि महा बिखु पीवै माइआ का देवाना ।
किरतु न मिटई हुकमु न बूझै पसूआ माहि समाना ॥३॥
हाथ कमंडलु कापड़ीआ मनि तृसना उपजी भारी ।
इसत्री तजि करि कामि विआपिआ चितु लाइआ पर नारी ॥
सिख करे करि सबदु न चीनै लंपटु है बाजारी ।
अंतरि बिखु बाहरि निभरांती ता जमु करे खुआरी ॥४॥
सो संनिआसी जो सतिगुर सेवै विचहु आपु गवाए ।
छादन भोजन की आस न करई अचिंतु मिलै सो पाए ।
बकै न बोलै खिमा धनु संग्रहै तामसु नामि जलाए ।
धनु गिरही संनिआसी जोगी जि हरि चरणी चितु लाए ॥५॥
आस निरास रहै संनिआसी एकसु सिउ लिव लाए ।
हरि रसु पीवै ता साति आवै निजघरि ताड़ी लाए ॥
मनूआ न डोलै गुरमुखि बूझै धावतु वरजि रहाए ।
गृहु सरीरु गुरमती खोजे नामु पदारथु पाए ॥६॥
ब्रहमा बिसनु महेसु सरेसट नामि रते वीचारी ।
खाणी बाणी गगन पताली जंता जोति तुमारी ॥
सभि सुख मुकति नाम धुनि बाणी सचु नामु उरधारी ॥
नाम बिना नही छूटसि नानक साची तरु तू तारी ॥७॥७॥

मनमुख किसी जोश (अथवा क्षणिक वैराग्य की) लहर में आकर (अपना) घर त्याग कर नष्ट होता है (और फिर पेट भरने के लिए) दूसरों के घरों की ओर ताकता है। (वह अपने) गृहस्थ-धर्म को नष्ट कर देता है सद्गुरु के न मिलने से दुर्बुद्धि के भंवर में पड़ा रहता है। (वह) देश-देशान्तरों में भ्रमण करता है, (धार्मिक ग्रंथों के) पाठ करके थक जाता है (किन्तु उसकी) तृष्णा और भी अधिक बढ़ती जाती है। इस कच्चे (नश्वर) शरीर से (यह) शब्द—नाम नहीं पहचानने (की चेष्टा करता) और पशु के समान अपना पेट भरता रहता है ॥ १ ॥

ऐ बाबा! संन्यासी को इस प्रकार रहनी रहनी चाहिए—(वह) गुरु के शब्द में एकनिष्ठ लिव लगाए रहे (और हे प्रभु), तेरे ही नाम में वह तृप्त होता रहे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(किन्तु पाखण्डी संन्यासी) गेरू घोल कर (अपने) वस्त्र रंग लेता है और भिखारी का सा वेष बना लेता है। ममताधारी संन्यासी कपड़ों को फाड़ कर कंथा और झोली बना लेता है। (वह स्वयं तो) घर घर में (भीख) माँगता है, किन्तु जगत को उपदेश देता (फिरता) है, वह मन से अंधा है (विवेक-विहीन) है, (और अपनी) प्रतिष्ठा गँवा देता है। (वह माया के) भ्रम में भटक गया है, शब्द—नाम नहीं पहचानता, वह (जीवन रूपी) जुए की बाजी हार जाता है ॥ २ ॥

ऐसे मनुष्य के भीतर तो (तृष्णा की) अग्नि जल रही है किन्तु बिना गुरु के वह समझ नहीं आती। (वह) बाहर से धूनी तापता है, (पर इस धूनी तापने से कुछ भी नहीं होता)। गुरु की सेवा के बिना भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती (और बिना भक्ति-प्राप्ति के मनुष्य) अपने आप को (असली स्वरूप को) कैसे पहचान सकता है ? (ऐसा मनुष्य) (दूसरों की) निन्दा कर-कर के नरक का निवासी होता है (और उसके) भीतर घनघोर अन्धकार प्रतीत होता है [विशेष गुबार—तम=घनघोर अंधकार]। (वह) अड़सठ तीर्थों में भ्रमण करके नष्ट होता है। (उसके) पापों की मैल (भला) किस प्रकार धोई जाय ? ॥ ३ ॥

(वह) खाक छान कर, विभूति (भभूत) लगा कर (अपने शरीर में) मल कर माया का मार्ग देखता है। (वह) एक (परमात्मा) को भीतर-बाहर नहीं जानता है (और यदि उसे कोई) सत्य (वस्तु) बतलाता है, (तो वह) क्रुद्ध होता है। (वह) पाठ पढ़ता है, (किन्तु साथ ही) मुख से झूठ भी बोलता है; उसकी बुद्धि बिना गुरु की है, (इसीलिए वह ठीक मार्ग पर नहीं चलता)। (वह) नाम तो जपता नहीं (और बिना नाम के जपे) किस प्रकार सुख पा सकता है ? बिना नाम के वह कैसे सुशोभित होगा ? ॥ ४ ॥

(कुछ लोग तो) मूँड़ मुड़ा लेते हैं, (सिर घुटा लेते हैं) (कुछ लोग) जटा (रख लेते हैं) (कुछ लोग लम्बी) शिखा (चोटी) (रखते हैं) (और कुछ लोग) अभिमान में मौन धारण कर लेते हैं। (किन्तु) बिना आत्म-ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) में रत हुए (उनका) मन (स्थिर न होकर) दसों दिशाओं में दौड़ता रहता है। माया में दीवाने होकर (वे नाम रूपी) अमृत (को पीना) छोड़ कर, (विषयों के) महा विष को पीते हैं। (उनके पूर्व जन्मों के कर्मों द्वारा निर्मित) संस्कार (किंचित) नहीं मिटते (जिससे वे परमात्मा के) हुक्म को नहीं समझते (और अन्त में वे) पशु (योनि में) जन्म जाते हैं ॥ ५ ॥

कापड़ी (सम्प्रदाय विशेष का साधु) हाथ में कमण्डल ले लेता है, (जिससे कि लोग उसे त्यागी और विरक्त समझें, किन्तु उसके) मन में बहुत भारी तृष्णा उत्पन्न रहती है। (उसने अपनी) स्त्री तो छोड़ दी है (किन्तु) कामातुर होने के कारण (वह) पर-नारी का चिन्तन करता है। वह शिक्षा तो देता है (किन्तु स्वयं) शब्द नहीं पहचानता है, वह (महान्) लम्पट और बाजारी (संसारी) है। उसके भीतर तो विष (भरा हुआ है), (किन्तु) बाहर से (वह ऐसा ढोंग—पाखण्ड रचता है कि) अमृत (दिखाई पड़े), पर यम राज (ऐसे मनुष्य की अवश्य) बरबाद करेंगे ॥ ६ ॥

जो सद्गुरु की सेवा करता है (और अपने) भीतर से आपापन (अहंकार) नष्ट कर देता है, वही (वास्तविक) संन्यासी है। (वह) वस्त्र और भोजन की (कुछ भी) आशा नहीं करता (जो कुछ) बिना चिन्ता किए (स्वाभाविक रूप से) मिल जाता है, उसी को पाकर (संतुष्ट रहता है)। (वह) बकवास नहीं करता, क्षमा-धन का संग्रह करता है और तमोगुण को (हरि के) नाम द्वारा जला डालता है। (ऐसा) गृहस्थ संन्यासी अथवा योगी धन्य है, जो हरि के चरणों में (अपना) चित्त लगाता है ॥ ७ ॥

(जो) (समस्त) आशाओं से निराश हो जाता है और एक (परमात्मा से) लिव लगाए रहता है, (वही) संन्यासी है। (जो व्यक्ति) हरि-रस पीता है (और अपने) निज घर (आत्म-स्वरूप) में ताड़ी लगाता है, (ध्यान लगाता है) उसी को शान्ति प्राप्त होती है। (जो व्यक्ति) मन से चलायमान नहीं होता और गुरु की शिक्षा द्वारा दौड़ते हुए (मन को) रोक रखता है (वह हठी को) समझता है। (जो व्यक्ति) गुरु की शिक्षा द्वारा (अपने) गृह रूपी शरीर में ही खोजता है, (वह) नाम रूपी पदार्थ पा जाता है ॥ ८ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश (इसीलिए) श्रेष्ठ है (कि वे) नाम को विचार कर (उसमें) रत हुए हैं। (हे प्रभु) तेरी ज्योति (चारों) खानियों में—(अंडज जेरज उद्भिज और स्वेदज) (तथा उनकी) बोलियों में आकाश में पाताल में (तथा सभी) प्राणियों में व्याप्त हो रही है, (अर्थात् ये सब तेरी ही सत्ता से प्रकाशित हैं)। समस्त सुख और मुक्ति नाम और वाणी के उच्चारण में है (इसीलिए मैं) सत्यनाम को हृदय में धारण करता हूँ। हे नानक नाम के बिना (कोई भी) नहीं मुक्त होगा (अतएव) सच्चो तैराकी तैर ॥ ९ ॥ ७ ॥

[८]

माता पिता संजोगि उपाए रकतु बिंदु मिलि पिंडु करे ।
अंतरि गरभ उरधि लिव लागी सो प्रभु सारे दाति करे ॥१॥
संसारु भउजलु किउ तरै ।
गुरमुखि नामु निरंजनु पाईऐ अफरिओ भारु टरै ॥१॥रहाउ॥
ते गुण विसरि गए अपराधी मै बउरा किआ करउ हरे ।
तू दाता दइआलु सभै सिरि अहिनिसि दाति समारि करे ॥२॥
चारि पदारथ लै जगि जनमिआ सिव सकती घरि वासु धरे ।
लागी भूख माइआ मगु जोहै मुकति पदारथु मोहि खरे ॥३॥
करण पलाव करे नही पावै इत उत ढूढत थाकि परे ।
कामि क्रोधि अहंकारि बिआपे कूड़ कुटंब सिउ प्रीति करे ॥४॥
खावै भोगै सुणि देखै पहिरि दिखावै काल घरे ॥
बिनु गुर सबद न आपु पछाणै बिनु हरि नाम न काल टरे ॥५॥
जेता मोहु हउमै करि भूले मेरी मेरी करते छीनि खरे ।
तनु धनु बिनसै सहसै सहसा फिरि पछुतावै मुखि धूरि परे ॥६॥

बिरधि भइआ जोबनु तनु खिसिआ कफु कंठु बिरूधो नैनहु नीरु ढरे ।
चरण रहे कर कंपण लागे साकत रामु न रिदै हरे ॥७॥

सुरति गई काली हू धउले किसै न भावै रखिओ घरे ।
बिसरत नाम ऐसे दोख लागहि जमु मारि समारे नरकि खरे ॥८॥

पूरब जनम को लेखु न मिटई जनमि मरै का कउ दोसु धरे ।
बिनु गुर बादि जीवणु होरु मरणा बिनु गुर सबदै जनमु जरे ॥९॥

खुसी खुआर भए रस भोगण फोकट करम विकार करे ।
नामु बिसारि लोभि मूलु खोइओ सिरि धरमराइ का डंडु परे ॥१०॥

गुरमुखि राम नाम गुण गावहि जा कउ हरि प्रभु नदरि करे ।
ते निरमल पुरख अपरंपर पूरे ते जग महि गुर गोविंद हरे ॥११॥

हरि सिमरहु गुर बचन समारहु संगति हरि जन भाउ करे ।
हरि जन गुरु परधानु दुआरै नानक तिन जन की रेणु हरे ॥१२॥८॥

(प्रभु ने) माता-पिता के संयोग से—अर्थात् (माता के) रज (और पिता के) वीर्य से इस शरीर की उत्पत्ति की। (माता के) गर्भ के अन्तर्गत (जीव) ऊर्ध्व होकर (सिर हरे से) लिव (ध्यान) लगाए था वही प्रभु बाहर भी संभाल करता है और दान देता है ॥ १ ॥

इस संसार-सागर को किस प्रकार तरा जाय ? गुरु द्वारा निरंजन (माया से रहित) नाम पाने से अहंकार-जनित (पापों का) बड़ा बोझ टल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(परमात्मा के दिये हुए) वे सारे गुण भूल गए; (मैं) अपराधी हूँ हे हरी मैं तुझसे क्या कहूँ ? (हे हरी) तू दाता है, समर्थ है और सभी के सिर पर है (अर्थात् सबका स्वामी है); (तू) दिन-रात संभाल कर (प्यार करके) (सभी को) दान देता रहता है ॥ २ ॥

(मनुष्य) चार पदार्थों (अर्थ धर्म काम और मोक्ष) को (लक्ष्य बनाकर) जन्म लेता है, (किन्तु जगत् में आकर वह इन्हें भूल कर) शिव की शक्ति (माया) ही में निवास करने लगता है। (विद्या की) भूल जाने पर वह माया का ही मार्ग देखने लगता है और महान मोह में मुक्ति रूपी पदार्थ को (भुला देता है ॥ ३ ॥

(मनुष्य माया के बंधन में भटक कर सही रास्ता नहीं पाता) (वह) कारण्य-प्रलाप करता है (किन्तु मार्ग) नहीं पाता (वह) इधर उधर ढूँढ़ कर थककर पड़ जाता है। काम क्रोध और अहंकार (उसे) व्याप्त हो जाते हैं झूठे कुटुम्ब से वह प्रीति करता है ॥४॥

(मनुष्य) काल के घर में (तात्पर्य यह की नश्वर संसार में) (नाना भाँति के व्यंजनों को) खाता है (अनेक भोगों को) भोगता है, (सुन्दर संगीत) सुनता है (सुन्दर स्वरूप) देखता है, (और पार्थिव वस्त्र तथा आभूषण) पहन कर (दूसरों को) दिखाता है। बिना गुरु की शिक्षा के वह (अपने वास्तविक स्वरूप को)—अपने आप को नहीं पहचान पाता और बिना हरिनाम (के प्राप्त किए) काल (उसके सिर पर से) नहीं टलता ॥ ५ ॥

(मनुष्य) जितना ही मोह और अहंकार करके (इसे को) चूसता है (उतना ही) 'मेरी मेरी' (अर्थात् यह वस्तु "मेरी है मेरी है") कहता है (किन्तु काल सभी वस्तुओं का) भली भाँति छीन कर (उसे ले जाता है)। (जो) भ्रम रूप उसका शरीर और धन था, (वह सब) नष्ट हो जाता है (और उसके साथ ही साथ) भ्रम भी दूर हो जाता है और मुख में धूल पड़ने से वह पछताता है ॥ ६ ॥

(धीरे धीरे मनुष्य) वृद्ध हो जाता है यौवन और शरीर शिथिल पड़ जाते हैं कंठ में कफ अवरुद्ध हो जाती है और नेत्रों से जल बहने लगता है, चरण शिथिल पड़ जाते हैं हाथ कँपने लगते हैं (किन्तु ऐसी अवस्था में भी वह) शाक्त (माया का उपासक) (अपने) हृदय में राम-हरी को नहीं धारण करता ॥ ७ ॥

(वृद्धावस्था में) (मनुष्य की) स्मरण-शक्ति (सुरति) नष्ट हो जाती है काले (बाल) श्वेत हो जाते हैं (ऐसे वृद्ध व्यक्ति को) किसी का घर में रखना अच्छा नहीं लगता। (हरि) नाम के विस्मरण से ही मनुष्य को इस प्रकार के दोष लगते हैं (तात्पर्य यह मानव जीवन में वृद्धावस्था के दुःख सहन करने पड़ते हैं)। (अन्त में ऐसे मायासक्त व्यक्तियों को) यम मार-मार के समान लेता है (अपने वश में कर लेता है) और नरक में ले जाता है ॥ ८ ॥

पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों का प्रभाव नहीं जाता (जिससे मनुष्य बार-बार) जन्मता और मरता रहता है (परन्तु) किसे दोष दिया जाय ? बिना गुरु के (मनुष्य मानव-जीवन) व्यर्थ है (बिना गुरु के बारबार) मरना पड़ता है और बिना गुरु-शब्द के जन्म जल जाता है (तात्पर्य यह कि जन्म नष्ट हो जाता है) ॥ ९ ॥

रसों के भोगने की खुशी में (मनुष्य) ख्वार (दुःखी) हो रहे हैं (और उन्हीं खुशी के पाने के लिए वे) व्यर्थ और विकार-युक्त (पापपूर्ण) कर्म कर रहे हैं। (मनुष्य) नाम को भुला कर लोभ के कारण मूल भी गँवा बैठा है (इन्हीं कारणों से उसके सिर पर) धर्मराज (यमराज) के डंडे पड़ते हैं ॥ १० ॥

गुरु द्वारा (वे ही पुरुष) रामनाम का गुण गाते हैं जिनके ऊपर प्रभु अपनी कृपादृष्टि करता है। ऐसे पुरुष निर्मल निरंकार और पूर्ण होते हैं। वे संसार में गुरु और गोविन्द हरी के ही स्वरूप हैं ॥ ११ ॥

(हे मनुष्य) हरी का स्मरण कर, गुरु के वचनों का संभाल (स्मरण कर) और हरि-भक्तों की संगति में भाव (प्रेम) कर। हरी का भक्त ही गुरु है (और वह उसके) दरबार का प्रधान है। हे हरी नानक ऐसे भक्तों के (चरणों की) रज है ॥ १२ ॥ ८ ॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ मारू काफी महला १, घर २

[९]

[illegible]

[illegible]

(चाहे मैं) कितने ही स्वादों को चखूं　कितने ही वेश बनाऊँ　(किन्तु) बिना प्रियतम के (मेरा) यौवन व्यर्थ चला जाता है, (प्रियतम से) बिछुड़ी हुई (मैं) दुःख में ही दुखी होती हूँ ॥ ५ ॥

सच्चे का उपदेश गुरु के विचार द्वारा सुनो। सच्चे का (सत्यम रूपी) सच्चा स्थान है (प्रभु की) कृपादृष्टि हो, (तभी उसके) प्रेम में (मनुष्य लग पाता है) ॥ ६ ॥

ज्ञानी सत्य का अंजन लगाकर देखनेवाले (हरी) को देखता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) अहंकार और गर्व का निवारण करके (हरी को) समझता और जानता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु, हरी) जो तुझे अच्छे लगते हैं वे तेरे ही समान हैं मेरे समान (तुच्छ) तो कितने ही हैं। हे नानक (जिनसे) पति (परमात्मा) नहीं बिछुड़ता, वे ही सच्च (परमात्मा में ठीक-ठीक) अनुरक्त हैं ॥ ८ ॥ १ ॥ ९ ॥

[१०]

ना भैणा भरजाईआ ना से ससुड़ीआह ।
सचा साकु न तुटई गुरु मेले सहीआह ॥१॥

बलिहारी गुर आपणे सद बलिहारै जाउ ।
गुर बिनु एता भवि थकी गुरि पिरु मेलिमु दितमु मिलाइ ॥१॥रहाउ॥

फुफी नानी मासीआ देर जेठानड़ीआह ।
आवनि वंञनि ना रहनि पूर भरे पहीआह ॥२॥

मामे तै मामाणीआ भाइर बाप न माउ ।
साथ लडे तिन नाठीआ भीड़ घणी दरीआउ ॥३॥

साचउ रंगि रंगावलो सखी हमारो कंतु ।
सचि विछोड़ा ना थीऐ सो सहु रंगि रवंतु ॥४॥

सभे रुती चंगीआ जितु सचे सिउ नेहु ।
सा धन कंतु पछाणिआ सुखि सुती निसि डेहु ॥५॥

पतणि कूके पातणी वंञहु ध्रुकि विलाड़ि ।
पारि पवंदड़े डिठु मै सतिगुर बोहिथि चाड़ि ॥६॥

हिकनी लदिआ हिकि लदि गए हिकि भारे भर नालि ।
जिनी सचु वणंजिआ से सचे प्रभ नालि ॥७॥

ना हम चंगे आखीअह बुरा न दिसै कोइ ।
नानक हउमै मारीऐ सचे जेहड़ा सोइ ॥८॥२॥१०॥

(इन) बहिनों भौजाइयों और सासुओं के बीच (कोई भी जीवात्मा सदा भी) नहीं रहती। सच्चा सम्बन्ध (जो परमात्मा का ही है), (जो) कभी नहीं टूटता गुरु निश्चय ही (सही ही) (उससे) मिलाता है ॥ १ ॥

(मैं) अपने गुरु पर बलिहारी हूँ , उस पर सदैव बलिहारी हूँ । गुरु के बिना मैं इतना भटक कर थक गई , (परन्तु) कहीं भी शरण नहीं मिली । गुरु ने (मुझे अपने साथ) मिला कर (फिर) पति (परमात्मा) से मिला दिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बूआ , भाभी , मौसी देवर जेठानी—ये सब सम्बन्धी आते-जाते रहते हैं ये (स्थिर) नहीं रहते (ऐसे आनेजाने वाले) पथिकों से (मार्ग) भरा-पूरा रहता है (अर्थात् वे संसार-चक्र में आते जाते रहते हैं) ॥ २ ॥

मामा और मामी , भाई तथा माँ-बाप (इस संसार में कोई भी) नहीं रहते ॥ (इस चार दिन के) पाहुना के जो काफिले लदे हुए हैं (वे सब नश्वर हैं) । (संसार रूपी) सागर में (आवागमन—जन्म-मरण की) यह बड़ी भीड़ लगी रहती है ॥ ३ ॥

हे सखी हमारा कंत (पति) सच्चे रंग का रसिक—रंगीला—मौजी है । (जो स्त्री) उस पति (परमात्मा) को प्यार से स्मरण करती है उसका सत्य (परमात्मा) से (कभी) बिछोह नहीं होता ॥ ४ ॥

जिस समय सत्य (हरी) से प्रेम होता है (उस समय) सारी ऋतुएँ सुहावनी (सुन्दर) हो जाती हैं । स्त्री (अपने) कंत को पहचान कर रात-दिन सुख-पूर्वक (उसके साथ) शयन करती है ॥ ५ ॥

(गुरु रूपी) मल्लाह पुकार कर कहता है कि दौड़ कर (इस संसार-सागर से) पार हो जाओ । मैंने सद्गुरु रूपी जहाज पर चढ़ कर (अपने को संसार-सागर के) पार पहुँचा हुआ देखा ॥ ६ ॥

कुछ लोग लद चुके हैं (तात्पर्य यह कि यहाँ से चलने के लिए तैयार हो चुके हैं) कुछ लोग लद कर चले गए हैं और कुछ लोग (पापों के) भारी बोझे के साथ हैं । (किन्तु) जिन्होंने सत्य (परमात्मा) का ही व्यापार किया है , (जो न कहीं आता है और न कहीं जाता है), वे सत्य प्रभु के साथ ही हैं ॥ ७ ॥

हम (अपने को) अच्छा नहीं कहते हैं (हमें) कोई भी (व्यक्ति) बुरा नहीं दिखाई पड़ता है । हे नानक (जो व्यक्ति) अहंकार को मारता है (वह) सत्य (परमात्मा) के ही समान होता है ॥ ८ ॥ २ ॥ १ ॥

[११]

ना जाणा मूरखु है कोई ना जाणा सिआणा ।
सदा साहिब कै रंगे राता अनदिनु नामु वखाणा ॥१॥
बाबा मूरखु हा नावै बलि जाउ ।
तू करता तू दाना बीना तेरै नामि तराउ ॥१॥
मूरखु सिआणा एकु है एक जोति दुइ नाउ ।
मूरखा सिरि मूरखु है जि मनै नाही नाउ ॥२॥
गुरदुआरै नाउ पाईऐ बिनु सतिगुर पलै न पाइ ।
सतिगुर कै भाणै मनि वसै ता अहिनिसि रहै लिव लाइ ॥३॥

राजु रंगु रूपु मालु जोबनु ते जूआरी।
हुकमी बाधे पासै खेलहि चउपड़ि एका सारी ॥४॥

जगि चतुरु सिआणा भरमि भुलाणा नाउ पंडित पड़हि गावारी।
नाउ विसारहि बेदु समालहि बिखु भूले लेखारी ॥५॥

कलर खेती तरवर कंठे बागा पहिरहि कजलु झरै।
एहु संसारु तिसै की कोठी जो पैसै सो गरबि जरै ॥६॥

रयति राजे कहा सबाए दुहु अंतरि सो जासी।
कहत नानकु गुर सचे की पउड़ी रहसी अलखु निवासी ॥७॥३॥११॥

(मैं) न तो किसी को मूर्ख समझता हूँ और न किसी को चतुर। साहब (हरी) के रंग में रँगा हुआ (मैं) सदैव (उसके) नाम का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

हे बाबा हम (मैं तो) मूर्ख हूँ ! (किन्तु प्रभु के) नाम के ऊपर बलिहारी हूँ। (हे हरी) तू कर्त्ता है, तू ज्ञाता है (तू) द्रष्टा है तेरे नाम के द्वारा (मैं) तर जाऊँगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मूर्ख और चतुर (सयाने) (हरी की सृष्टि में) एक हैं (कहने के लिए मूर्ख और चतुर) दो नाम हैं (किन्तु वास्तव में उन दोनों के बीच परमात्मा की) एक ही ज्योति है। (मेरी दृष्टि में) जो (व्यक्ति) हरी का नाम नहीं मानता वह मूर्खों का शिरोमणि है ॥ २ ॥

गुरु के द्वार पर नाम पाया जाता है बिना सद्गुरु के (नाम रूपी धन) पल्ले नहीं पड़ता। सद्गुरु के आज्ञानुसार (जिस व्यक्ति के मन में) नाम बस जाता है तो (वह) अहर्निश (उसी में) लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाए रहता है ॥ ३ ॥

(जिनके) राज्य, सुख-सामग्री रूप सम्पत्ति और यौवन हैं, (वे सब) जुआड़ी (के समान हैं) (क्योंकि जैसे जुआड़ी का धन क्षणभंगुर है वैसे यौवन रूप सम्पत्ति आदि भी क्षणभंगुर हैं)। (परमात्मा के) हुक्म में बँधे हुए (सभी प्राणी (सृष्टि रूपी) चौपड़ के खेल में (अपनी-अपनी) मुहरों के पासे फेंक रहे हैं ॥ ४ ॥

चतुर और सयाना संसार नाम को भुला कर भ्रम में भटक रहा है (नाम के बिना) मूर्ख पण्डित (व्यर्थ ही शास्त्रादिक) अध्ययन करते हैं। (जो विद्वान्) नाम को भुला कर वेद को ही सँभालते हैं (स्मरण करते हैं) वे (माया के) विष में भूल कर (व्यर्थ की बातें) लिखते हैं ॥ ५ ॥

(जिस प्रकार) बालू (ऊसर) कल्लर की खेती तथा नदी के किनारे के वृक्ष (क्षणभंगुर हैं) (उसी प्रकार नाम के बिना अन्य साधन भी मिथ्या हैं) (संसार में) बहुत से लोग सफ़ेद (कपड़े) तो पहनते हैं (किन्तु उनके भीतर से) कालिमा झरती है (तात्पर्य यह कि बहुत से लोग बाहर वेश तो साधु का बनाए रहते हैं किन्तु भीतर से अत्यन्त [illegible] होते हैं)। यह संसार तृष्णा की कोठरी है, (जो व्यक्ति इसमें) प्रविष्ट होता है [illegible] में जलता है ॥ ६ ॥

प्रजा और राजा सब कहाँ हैं ? (अर्थात् सभी क्षणभंगुर हैं) ([illegible] स्थिर नहीं है, वह चला जाता है (नष्ट हो जाता है)। नानक कहते हैं कि गुरु [illegible]

आत्मा की प्राप्ति की) सीढ़ी है, (उसी के उपदेश से यह अनुभव होता है कि) यह समस्त (हरि) ही सर्वत्र रहता है ॥ ७ ॥ ३ ॥ ११ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मारू सोलहे, महला १,

[१]

साचा सचु सोई अवरु न कोई ।
जिनि सिरजी तिन ही फुनि गोई ॥
जिउ भावै तिउ राखहु रहणा तुम सिउ किआ मुकराई हे ।१॥
आपि उपाए आपि खपाए । आपे सिरि सिरि धंधै लाए ॥
आपे वीचारी गुणकारी आपे मारगि लाई हे ॥२॥
आपे दाना आपे बीना । आपे आपु उपाइ पतीना ॥
आपे पउणु पाणी बैसंतरु आपे मेलि मिलाई हे ॥३॥
आपे ससि सूरा पूरो पूरा । आपे गिआनि धिआनि गुरु सूरा ॥
कालु जालु जमु जोहि न साकै साचे सिउ लिव लाई हे ॥४॥
आपे पुरखु आपे ही नारी । आपे पासा आपे सारी ॥
आपे पिड़ बाधी जगु खेलै आपे कीमति पाई है ॥५॥
आपे भवरु फुलु फलु तरवरु । आपे जलु थलु सागरु सरवरु ॥
आपे मछु कछु करणी कर तेरा रूपु न लखणा जाई हे ॥६॥
आपे दिनसु आपे ही रैणी । आपि पतीजै गुर की बैणी ॥
आदि जुगादि अनाहदि अनदिनु घटि घटि सबदु रजाई हे ॥७॥
आपे रतनु अनूपु अमोलो । आपे परखे पूरो तोलो ॥
आपे किसही कसि बखसे आपे दे लै भाई हे ॥८॥
आपे धनखु आपे सरबाणा । आपे सुघड़ सरूपु सिआणा ॥
कहता बकता सुणता सोई आपे बणत बणाई हे ॥९॥
पउणु गुरू पाणी पित जाता । उदर संजोगी धरती माता ॥
रैणि दिनसु दुइ दाई दाइआ जगु खेलै खेलाई हे ॥१०॥
आपे मछुली आपे जाला । आपे गऊ आपे रखवाला ॥
सरब जीआ जगि जोति तुमारी जैसी प्रभि फुरमाई हे ॥११॥
आपे जोगी आपे भोगी । आपे रसीआ परम संजोगी ॥
आपे वेबाणी निरंकारी निरभउ ताड़ी लाई हे ॥१२॥
खाणी बाणी तुझहि समाणी । जो दीसै सभ आवण जाणी ॥
सेई साह सचे वापारी सतिगुर बूझ बुझाई हे ॥१३॥

सबदु तुम्हारा सतिगुरु पूरा । सरब कला साचे भरपूरा ॥
अफरिओ वेपरवाहु सदा तू ना तिसु तिलु न तमाई हे ॥१४॥

कालु बिकालु भए देवाने । सबदु सहज रसु अंतरि माने ॥
आपे मुकति त्रिपति वर दाता भगति भाइ मनि भाई हे ॥१५॥

आपि निरालमु गुरगम गिआना । जो दीसै तुझ माहि समाना ॥
नानकु नीचु भिखिआ दरि जाचै मै दीजै नामु वडाई हे ॥१६॥१॥

विशेष : सोलह पदों वाले शब्द को 'सोलहे' कहा गया है पर सोलहे १५ १७ तथा २१ पदों के भी प्राप्त हैं।

अर्थ : वही (एक) सत्यस्वरूप (हरी) ही सत्य है (उसके अतिरिक्त) और कोई दूसरा नहीं है। जिस (प्रभु) ने (यह सृष्टि) रची है वही फिर इसका नाश करता है। (हे हरी) तुझे जैसा रुचे वैसे मुझे रख (और मुझे भी वैसे ही) रहना है, तुझसे क्या उज्र की जाय? ॥ १ ॥

(प्रभु) आप ही (सृष्टि) उत्पन्न करता है, आप ही (उसका) संहार करता है और आप ही प्रत्येक प्राणी को धंधे में लगाता है। (प्रभु) आप ही विचारवान् और गुणवान् है और आप ही (भटके हुए प्राणियों को) मार्ग पर लगाता है ॥ २ ॥

(प्रभु) आप ही ज्ञाता है, आप ही द्रष्टा है और आप ही अपने को (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न करके प्रसन्न होता है। (वह) आप ही पवन जल और अग्नि (आदि पंच तत्व) है और आप ही (इन पंच तत्वों का) मेल मिला कर (प्राणियों के शरीर का निर्माण करता है) ॥ ३ ॥

(वह) परिपूर्ण (हरी) आप ही चन्द्रमा है और आप ही सूर्य है। आप ही ज्ञान-ध्यान है और आप ही शूरवीर गुरु है। (जो व्यक्ति) सच्चे (परमात्मा) से लिव लगाता है (उसे) यमराज के काल का त्रास छू नहीं है सकता ॥ ४ ॥

(हरी) आप ही पुरुष है और आप ही नारी है। आप ही (संसार रूपी) चौपड़ है और आप ही (जीव रूपी) मुहर है। (हे प्रभु) तू ने यह खेल रच दिया है और (सारा) जगत् इसी में खेल रहा है और तू स्वयं ही इसकी कीमत का (अनुमान करता है) ॥ ५ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही भँवर है, फूल फल है और वृक्ष है। (तू) आप ही जल, थल सागर और सरोवर है। आप ही मच्छ और कच्छप है, आप ही करण और कारण है। (हे हरी) तेरा रूप नहीं देखा जा सकता है ॥ ६ ॥

(हे हरी तू) आप ही दिन है और आप ही रात है। गुरु के वचनों में (तू शिष्य के रूप में) आप ही प्रसन्न होता है। आदि काल तथा युग-युगान्तरों से प्रतिदिन और निरन्तर घट-घट में (प्राणी प्राणी में) तेरा ही हुक्म और मरजी बरत रही है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही अनुपम और अमूल्य रत्न है और आप ही (उस अनुपम रत्न का) पूरी तौल से परखनेवाला (जौहरी) है। (तू) आप ही (अपनी) कसौटी पर कस कर निधी-निधी (गुरमुख रूपी) रत्न को खरा देता है (तात्पर्य यह कि मुक्त कर देता है)। हे भाई, (प्रभु) आप ही देता है और आप ही लेता है ॥ ८ ॥

(हे हरी, तू) आप ही पुरुष है और आप ही नारी बनानेवाला है। (तू) आप ही सुन्दर स्वरूपवाला और चतुर है। (तू आप ही) कथन करनेवाला वक्ता और श्रोता है और आप ही (अपने को) बनानेवाला है ॥ ६ ॥

पवन (सृष्टि भर का) गुरु है और जल ही मानो पिता है अपने उदर के संयोग से (सभी को उत्पन्न करने से) पृथ्वी ही माता है, (पृथ्वी माता इसलिये कहलाती है कि यह भी माता के समान सभी वस्तुओं को अपने ऊपर म रखती है और उदर से उत्पन्न करती है)। रात्रि और दिन दोनों ही दाई और दाया है [दाया=दाई का पति]। सारा जगत इसी (विराट् खेल म) खेलता रहता है ॥ १ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही मछली है और आप ही (उसे फँसानेवाला) जाल है। (तू) आप ही गाय और आप ही (उसकी) रक्षा करनेवाला (ग्वाला) है। (हे निरंकार हरी) समस्त जीवों आर (सारे) जगत मे तेरी ही ज्योति (व्याप्त) है। (हे स्वामी तेरी) आज्ञा (सभी के ऊपर) है ॥ ११ ॥

(सृष्टि मे निर्लिप्त रहने क कारण हे प्रभु, तू) आप ही योगी है (और जीव रूपी भोक्ता के अन्तर्गत विराजमान होने से) तू भोगी भी है। आप ही संयोग करानेवाला परम रसिक भी है। (हे स्वामी तू) आप ही वाणी से रहित निराकार-देव और निर्भयस्वरूप है, तू आप ही अपने ध्यान मे (निमग्न है) (तात्पर्य यह कि स्वय ही अपनी महिमा म प्रतिष्ठित) है ॥ १२ ॥

(ह प्रभ यारा) खानियो के बोल—(अण्डज जेरज स्वेदज और उद्भिज) (और उनकी) वाणियाँ तुझ मे ही समाहित हो जाती है। (इस सृष्टि में तुझे छोड़कर) जो भी (वस्तुएँ) दिखाई पड़ती है (सभी) आने-जाने वाली है, (नश्वर है)। जिन्हे सद्गुरु ने समझ दी है (वे ही) शाह (परमात्मा) के सच्चे व्यापारी है ॥ १३ ॥

पूर्ण सद्गुरु शब्द के द्वारा (अपने शिष्य को यह) समझा देता है कि सच्चा परिपूर्ण (हरी) समस्त तमाशा (खानियां) (मे मुक्त है)। (हे स्वामी) तू पहुँच के बाहर है और बेपरवाह है तुझ म तिल भर भी लालच अथवा इच्छा नही है ॥ १४ ॥

(जो साधक) शब्द—नाम रूपी सहज रस को अपने अन्तर्गत मानते है, (तात्पर्य यह कि नाम का रसास्वादन करते है) उनके लिए मरण और जन्म (काल-विकाल) मीठाने हो जाते है (भाव यह कि उनके जन्म-मरण समाप्त हो जाते है)। (हे प्रभु, तू) आप ही मुक्ति-तृप्ति के वरो को देनेवाला है मन को अच्छी लगनेवाली प्रेमा भक्ति (को भी तू ही प्रदान करता है) ॥ १५ ॥

(हे हरी) तू आप निर्लेप है; (जिन्हे) गुरु-जन्य ज्ञान है (यह बोध होता है कि) जो कुछ भी दिखाई पड़ता है (वह) तुझ मे ही समा जाता है। दीन नानक तेरे दरवाजे पर खड़ी होकर मांगता है कि मुझे (अपने) नाम की महत्ता प्रदान कर ॥ १६ ॥ १ ॥

[२]

आपे धरती धउलु अकासं। आपे साचे गुण परगासं।

जती सती संतोखी आपे आपे कार कमाई है ॥१॥

जिनु करणा सो करि करि वेखै । कोइ न मेटै साचे लेखा ॥
आपे करे कराए आपे आपे दे वडिआई हे ॥२॥
पंच चोर चंचल चितु चालहि । पर घर जोहहि घरु नही भालहि ॥
काइआ नगरु ढहै ढहि ढेरी बिनु सबदै पति जाई हे ॥३॥
गुर ते बूझै त्रिभवणु सूझै । मनसा मारि मनै सिउ लूझै ॥
जो तुधु सेवहि से तुध ही जेहे निरभउ बाल सखाई हे ॥४॥
आपे सुरगु मछु पइआला । आपे जोति सरूपी बाला ॥
जटा बिकट बिकराल सरूपी रूपु न रेखिआ काई हे ॥५॥
बेद कतेबी भेदु न जाता । ना तिसु मात पिता सुत भ्राता ॥
सगले सैल उपाइ समाए अलखु न लखणा जाई हे ॥६॥
करि करि थाकी मीत घनेरे । कोइ न काटै अवगुण मेरे ॥
सुरि नर नाथु साहिबु सभना सिरि भाइ मिलै भउ जाई हे ॥७॥
भूले चूके मारगि पावहि । आपि भुलाइ तू है समझावहि ॥
बिनु नावै मै अवरु न दीसै नावहु गति मिति पाई हे ॥८॥
गंगा जमुना केल केदारा । कासी कांती पुरी दुआरा ॥
गंगा सागरु बेणी संगमु अठसठि अंकि समाई हे ॥९॥
आपे सिध साधिक वीचारी । आपे राजनु पंचा कारी ॥
तखति बहै अदली प्रभु आपे भरमु भेदु भउ जाई हे ॥१०॥
आपे काजी आपे मुला । आपि अभुलु न कबहू भुला ॥
आपे मिहर दइआपति दाता ना किसै को बैराई हे ॥११॥
जिसु बखसे तिसु दे वडिआई । सभसु दाता तिलु न तमाई ॥
भरपुरि धारि रहिआ निहकेवलु गुपतु प्रगटु सभ ठाई हे ॥१२॥
किआ सालाही अगम अपारै । साचे सिरजणहार मुरारै ॥
जिसनो नदरि करे तिसु मेले मेलि मिलै मेलाई हे ॥१३॥
ब्रहमा बिसनु महेसु दुआरै । ऊभे सेवहि अलख अपारै ॥
होर केती दरि दीसै बिललादी मै गणत न आवै काई हे ॥१४॥
साची कीरति साची बाणी । होर न दीसै बेद पुराणी ॥
पूंजी साचु सचे गुण गावा मै धर होर न काई हे ॥१५॥
जुगु जुगु साचा है भी होसी । कउणु न मूआ कउणु न मरसी ॥
नानकु नीचु कहै बेनंती दरि देखहु लिव लाई हे ॥१६॥२॥

(हे प्रभु, तू) आप ही पृथ्वी है (और आप ही उस पृथ्वी को धारण करने वाला धर्म रूपी) बैल है, (आप ही) आकाश है। आप ही सच्चे गुणोंवाला और प्रकाश-स्वरूप है। (तू) आप ही सतो- सत्वगुणी और संतोषी है और आप ही (सारे) कर्मों को करता है ॥ १ ॥

(जो हरी के द्वारा किया हुआ सृष्टि-रूपी) काम है उसे रच रच कर (हरी स्वयं उसको) देखभाल करता है। (उस हरी की) सच्ची लिखावट को कोई भी

(व्यक्ति) मेट नहीं सकता। (प्रभु) स्वयं ही करता है, स्वयं ही (जीवों को प्रेरित करके उनके द्वारा) कराता है और स्वयं ही प्राणियों को बड़ाई प्रदान करता है ॥ २ ॥

(काम, क्रोध मद लोभ और अहंकार—ये) पाँचों और चंचल चित्त को (और भी) चलायमान करते हैं। (ये पाँचों चित्त को अपने साथ मिलाकर) दूसरों का घर ताकते हैं, किन्तु अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूप) को नहीं देखते। यह शरीर कभी अमर नहीं रहता बह बह कर ढेर हो जाता है बिना शब्द—नाम के अनुभव किए (प्राणी की) प्रतिष्ठा चली जाती है ॥ ३ ॥

गुरु से समझने पर (शिष्य को) त्रिभुवन की समझ आ जाती है। (अतः शिष्य को) वासनाओं—इच्छाओं अथवा संकल्पों को वशीभूत करके मन से ही युद्ध करना चाहिए। (हे प्रभु) जो (लोग) तेरी सेवा करते हैं, वे तेरे ही समान हैं हे निर्भय (हरी, तू) बाल्यावस्था से ही उनका मित्र है ॥ ४ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक है आप ही ज्योति है और आप ही रूपवान नवयुवक है विकट (भयानक) जटाओंवाला और विकराल स्वरूपवाला भी (तू) आप ही है (साथ ही हे हरी) न तेरा कोई रूप है और न तेरी कोई रेखा है (अतएव हरी सगुण और निर्गुण दोनों आप ही है) ॥ ५ ॥

वेद और कतेब (मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ) (हरी का) भेद नहीं जान सके। (उस हरी के) न कोई माता-पिता हैं न पुत्र हैं और न भाई है। सारे पर्वतों को उत्पन्न करके (उन्हें फिर अपने में) लीन कर लेता है; वह अलक्ष्य हरी (इन चर्म-चक्षुओं से) नहीं देखा जा सकता ॥ ६ ॥

(मैं) बहुत से मित्र बना-बना कर थक गयी किन्तु मेरे अवगुणों को कोई भी नहीं काट सका (दूर कर सका) जो साहब देवता मनुष्य और नाग आदि सभी के सिर पर है (उसी से) प्रेमपूर्वक मिलने से (संसार का) भय दूर हो जाता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु) भूले भक्तों को (तू ही) (ठीक) मार्ग पर लगाता है। (तू) स्वयं ही (प्राणियों को मार्ग से) भटकाता है, (और फिर तू ही उन्हें मार्ग भी) बताता है। मुझे तो नाम के बिना और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। नाम से ही मति-मिति पाई जाती है ॥ ८ ॥

गंगा, यमुना (आदि पवित्र नदियाँ) (श्री कृष्ण की) क्रीड़ाभूमि (वृन्दावन) केदारनाथ, काशी, कांची जगन्नाथपुरी, द्वारिकापुरी गंगासागर, त्रिवेणी (गंगा, यमुना और सरस्वती) का संगम (प्रयागराज) (तथा अन्य) अड़सठ तीर्थस्थान (हरी के ही) अंक में समाए हैं।

[विशेष काशी' को कुछ विद्वान विद्वानों ने 'मथुरापुरी' बतलाया है, किन्तु मेरी समझ में इसका अभिप्राय 'कांची' (कांजीवरम्) से है जो मद्रास प्रान्त में है। यह शैवों और वैष्णवों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। 'कांतीपुरा' नेपाल राज्य का भी प्रसिद्ध स्थान है] ॥ ९ ॥

(हे हरी तू) आप ही सिद्ध साधक और विचारवान् है। आप ही राजा और पंचायत का काम करनेवाला—न्याय करनेवाला है (तात्पर्य यह कि ईश्वर आप ही न्यायकारी है)। न्यायकर्ता (हरी ही) सिंहासन पर बैठ कर (न्याय करता है) (हे प्रभु, तेरा साक्षात्कार करने पर नानक के सारे) भ्रम भेद और भय दूर हो जाते हैं ॥ १ ॥

(हे स्वामी तू) आप ही काजी है (और आप ही) मुल्ला है। (तू) आप ही न भूल करनेवाला है और (तूने) कभी भूल नहीं की है। (हे प्रभु, तू) आप ही कृपा है दयानिधि है और दाता है (तू) किसी का भी वैरी नहीं है ॥ ११ ॥

(हे प्रभु, तू) (जिसके ऊपर) कृपा करता है उसे बड़ाई प्रदान करता है। (तू) सभी का दाता है और (तुझमें) तिल मात्र भी लालच नहीं है। हे निरंजन (निर्लेप हरी) (तूने सभीको) पूर्णरूप से धारण किया है (तू) सभी स्थानों में गुप्त और प्रकट रूप से (विराजमान) है ॥१२॥

सच्चे सिरजनहार मुरारी अगम और अपार (परमात्मा की) क्या प्रशंसा की जाय ? जिसके ऊपर (वह) कृपादृष्टि करता है (उसे गुरु से) मेल मिलाता है (तत्पश्चात् उसके माध्यम से स्वयं अपने) मेल में मिला लेता है ॥ १३ ॥

(हे प्रभु) ब्रह्मा, विष्णु, महेश तेरे दरवाजे पर खड़े होकर (तुझ) अलक्ष्य अपार की सेवा करते हैं। और कितनी ही (शक्तियाँ) तेरे दरवाजे पर बिलखती हुई दिखलाई पड़ती हैं (उनमें से) किसी की गणना मुझसे नहीं हो सकती (अर्थात् वे असंख्य हैं और उनकी गणना नहीं हो सकती) ॥ १४ ॥

वेदों और पुराणों में (उस प्रभु की) सच्ची कीर्ति और सच्ची वाणी है (इसके अतिरिक्त) और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। (हरी ही) सच्ची पूँजी है (इसलिए मैं उस) सच्चे (हरी) का गुणगान करता हूँ मुझे तो और कोई आसरा (आश्रय) नहीं है ॥ १५ ॥

युग-युगान्तरों से (वही) सच्चा (हरी) (वर्तमान काल में) है, (भूतकाल में) था (और भविष्य में) रहेगा। (उस अविनाशी परमात्मा के अतिरिक्त इस दृश्यमान जगत् में) कौन (ऐसा जड़ अथवा चेतन है) जो नहीं मरा अथवा जो नहीं मरेगा ? (परमात्मा के अतिरिक्त इस जगत् में सभी कुछ नाशवान है)। नीच नानक एक विनती करता है (कि हे मनुष्य) चित्त (एकनिष्ठ ध्यान) लगाकर (उस हरी का) दरवाजा देख (जिससे तेरे सारे दुःख नष्ट हो जायेंगे और अपार सुख होगा) ॥ १६ ॥ २ ॥

[३]

दूजी दुरमति अंनी बोली। काम क्रोध की कची चोली ॥
घरि वरु सहजु न जाणै छोहरि बिनु पिर नीद न पाई हे ॥१॥

अंतरि अगनि जलै भड़कारे। मनमुखु तके कुंडा चारे ॥
बिनु सतिगुर सेवे किउ सुखु पाईऐ साचे हाथि वडाई हे ॥२॥

कामु क्रोधु अहंकारु निवारे। तसकर पंच सबदि संघारे ॥
गिआन खड़गु लै मन सिउ लूझै मनसा मनहि समाई हे ॥३॥

मा की रकतु पिता बिंदु धारा। मूरति सूरति करि आपारा ॥
जोति दाति जेती सभ तेरी तू करता सभ ठाई हे ॥४॥
तुझ ही कीआ जमण मरणा। गुर ते समझ पड़ी किआ डरणा ॥
तू दइआलु दइआ करि देखहि दुखु दरदु सरीरहु जाई हे ॥५॥
निज घरि बैसि रहे भउ खाइआ। धावत राखे ठाकि रहाइआ ॥
कमल बिगास हरे सर सुभर आतम रामु सखाई हे ॥६॥

मरणु लिखाइ मंडल महि आए । किउ रहीऐ चलणा परथाए ॥
सचा अमरु सचे अमरापुरि सो सचु मिलै वडाई हे ॥७॥

आपि उपाइआ जगतु सबाइआ । जिनि सिरिआ तिनि धंधै लाइआ ॥
सचै ऊपरि अवर न दीसै साचे कीमति पाई हे ॥८॥

ऐथै गोइलड़ा दिन चारे । खेलु तमासा धुंधूकारे ॥
बाजी खेलि गए बाजीगर जिउ निसि सुपनै भखलाई हे ॥९॥

तिन कउ तखति मिली वडिआई । निरभउ मनि वसिआ लिव लाई ॥
खंडी ब्रहमंडी पातालो पुरीई त्रिभवण ताड़ी लाई हे ॥१०॥

साची नगरी तखतु सचावा । गुरमुखि साचु मिलै सुखु पावा ॥
साचे साचै तखति वडाई हउमै गणत गवाई हे ॥११॥

गणत गणीऐ सहसा जीऐ किउ सुखु पावै दूऐ तीऐ ॥
निरमलु एकु निरंजनु दाता गुर पूरे ते पति पाई हे ॥१२॥

जुगि जुगि विरली गुरमुखि जाता । साचा रवि रहिआ मनु राता ॥
तिस की ओट गही सुखु पाइआ मनि तनि मैलु न काई हे ॥१३॥

जीभ रसाइणि साचै राती । हरि प्रभु संगी भउ न भराती ॥
स्रवण स्रोत रजे गुर बाणी जोती जोति मिलाई हे ॥१४॥

रखि रखि पैर धरे पउ धरणा । जत कत देखउ तेरी सरणा ॥
दुखु सुखु देहि तू है मनि भावहि तुझही सिउ बणि आई हे ॥१५॥

अंत कालि को बेली नाही । गुरमुखि जाता तुधु सालाही ॥
नानक नामि रते बैरागी निजघरि ताड़ी लाई हे ॥१६॥३॥

द्वैतभाव और दुर्बुद्धि के कारण (जीवात्मा रूपी स्त्री) अंधी और बहरी (बनकर फिरती है)। उसने काम क्रोध की कच्ची (नश्वर) चोली पहनी है। अपने घर (शरीर) के भीतर ही पति (परमात्मा) और (उसका) सहज प्रेम स्थित है, (पर वह) छोहरि (छोकरी—अनजान लड़की) उसे नहीं जानती बिना प्रियतम के उसे नींद नहीं आ सकती ॥ १ ॥

(मनमुख के) भीतर (तृष्णा की भयंकर) अग्नि 'भड़ भड़' करके जल रही है मनमुख (तृष्णा से) चारों दिशाओं में ताकता फिरता है (जिससे उसे सुख प्राप्त हो)। (किन्तु) बिना सद्गुरु की सेवा किए (उसे) सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? सच्चे (गुरु अथवा परमात्मा) के हाथ में ही सारी बड़ाइयाँ हैं ॥ २ ॥

(जो साधक) काम क्रोध और अहंकार का निवारण करता है शब्द—नाम के द्वारा पाँच चोरों—(काम क्रोध लोभ, मोह और अहंकार)—का संहार करता है और ज्ञान की तलवार लेकर मन से जूझता है, (उसकी सारी) वासनाएँ—कामनाएँ (उसके ज्योतिमय) मन में लीन हो जाती हैं ॥ ३ ॥

(हे हरी) माता के रज एवं पिता के वीर्य को धारण (तू ने) अनन्त आकारों (मूरति सूरति) का निर्माण किया है। जितने भी प्रकाश और रत्न हैं, सब तेरे ही हैं, तू सभी स्थानों का निर्माता (रचयिता) है॥ ४॥

(हे स्वामी) तू ने ही जन्म और मरण बनाए हैं (मुझे) गुरु से यह समझ आई (कि तू ही सब कुछ है), (अतएव) अब क्या करा जाय? हे दयालु (हरी), तू दया (की दृष्टि से) मेरी ओर देख ले (जिससे मेरे) शरीर के दुःख और क्लेश नष्ट हो जायें॥ ५॥

अपने (आत्मस्वरूप) घर में बैठ जाने से भय समाप्त हो गया। दौड़ते मन को (मैंने) रोका (और उसे रोककर) असली स्वरूप में टिका दिया। (इसी कारण मेरा हृदय रूपी) कमल विकसित हो गया (इन्द्रिय रूपी) सरोवर हरे-भरे होकर प्रेम से सराबोर भर गए, (तात्पर्य यह कि पूर्ण आनन्द प्राप्त हो गया)॥ ६॥

(मनुष्य परमात्मा के यहाँ) मरना लिखा कर (भूमण्डल) (मर्त्यलोक) में आता है। (अतएव वह यहाँ सदैव) किस प्रकार रह सकता है? (अन्त में तो) परलोक जाना ही है। सच्चे (लोग) अमर (परमात्मा) की सच्ची अमरपुरी में (जाते हैं) वह सत्य स्वरूप (हरी) उन्हें मिलता है (यही उनकी) बड़ाई है॥ ७॥

(हरी ने) आप ही समस्त जगत् को उत्पन्न किया है। जिस (हरी ने) सब को रचा है उसी ने (सबको अपने अपने) धंधे में भी लगाया है। सत्य (हरी) के ऊपर (कोई) और (दूसरा) नहीं दिखाई पड़ता। सच्चे (पुरुषों) के द्वारा ही उसकी कीमत पाई जाती है॥८॥

इस (संसार रूपी) चारागाह में चार दिन रहना है। यहाँ अंधकार (अज्ञान) में सारे खेल-तमाशे होते हैं। (जीवात्मा रूपी) बाजीगर अपनी अपनी बाजी खेल कर चले गये जिस प्रकार रात्रि की स्वप्नावस्था में (मनुष्य) बड़बड़ाता है (पर उसकी वास्तविकता नहीं होती) (उसी प्रकार संसार के समस्त व्यवहार और क्रिया-कलाप भी मिथ्या ही हैं)॥ ९॥

(जिन्होंने) चित्त लगा कर निर्भय हरी को (अपने) मन में बसा लिया है उन्हें (हरी के) तख्त (सिंहासन) पर बड़ाई प्राप्त होती है। (ऐसे सिद्ध पुरुष सदैव यही देखते हैं कि) (हरी ही) खण्डों, ब्रह्माण्डों, पाताल तथा त्रिभुवन की (समस्त) पुरियों में ताड़ी (ध्यान) लगाकर (बैठा है) (अर्थात् हरी ही सर्वत्र व्याप्त है)॥ १०॥

(शरीर रूपी) सच्ची नगरी में (हृदय रूपी) सिंहासन पर सत्यस्वरूप (हरी) का (निवास है)। गुरु द्वारा (यह) सत्य (हरी) मिलता है (जिससे) सुख की प्राप्ति होती है। सच्चे (व्यक्तियों) को (हरी के) सच्चे तख्त की बड़ाई प्राप्त होती है (ऐसे व्यक्ति) अहंकार की ममता को नष्ट कर देते हैं (तात्पर्य यह है कि वे लोग परमात्मा का साक्षात्कार करके अपने समस्त अहंकार को मिटा देते हैं)॥ ११॥

(मनमुख अहंकार में अपने कर्मों को) गिनती गिनता रहता है और संशय में आवृत रहता है। (वह) त्रिगुणात्मक (माया के) अंधकार में कैसे सुख पा सकता है? एक (हरी ही) निर्मल निरंजन और दाता है, पूर्ण गुरु से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है॥ १२॥

युग-युगान्तरों में किसी विरले (साधक) ने ही गुरु के द्वारा (सत्यस्वरूप हरी को) जाना है। (जो) सत्य (हरी सर्वत्र) रम रहा है (उसमें मेरा) मन अनुरक्त हो गया है। (मैंने) उस (प्रभु की) शरण ग्रहण की (जिससे मुझे परम) सुख प्राप्त हुआ (और मेरे) तन और मन में किसी प्रकार की मैल नहीं रह गई ॥ १३ ॥

(मेरी) जीभ अच्छे (राम) रसायन में अनुरक्त है। (मुझे) प्रभु, हरी स्वयं (मिल गया है, जिससे मुझमें) भय और भ्रम नहीं (रह गए हैं)। मेरे कान गुरुवाणी की ध्वनि से तृप्त हो गए हैं (और मुझ जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की अखण्ड और सर्वव्यापिनी) ज्योति से मिल गई है ॥ १४ ॥

(मैंने इस) पृथ्वी पर सोच सोच कर पग रखे हैं (अर्थात्, विचारपूर्वक जीवन व्यतीत किए हैं)। (मैं) जहाँ कहीं भी देखता हूँ, (तेरी ही) शरण (खोजता हूँ) (तात्पर्य यह है कि मैं जहाँ भी रहता हूँ तेरी ही शरण पकड़ता हूँ)। (हे प्रभु तू चाहे मुझे) दुख दे (और चाहे) सुख दे (किन्तु दोनों ही दशाओं में) तू (मेरे) मन को अच्छा लगता है। (मेरी) तुझ ही से बनती है ॥ १५ ॥

(हे प्रभु) अंतकाल में (तुझे छोड़कर) कोई (अन्य) सहायक नहीं होता। गुरु की शिक्षा से (तुझे) जान कर (मैंने) तेरी स्तुति की। हे नानक बैरागी (त्यागी विरक्त) भी (तेरे) नाम में अनुरक्त हो कर, अपने (वास्तविक) घर में (आत्मस्वरूप में) ध्यान लगाता है ॥ १६ ॥ ३ ॥

[४]

आदि जुगादी अपर अपारे । आदि निरंजन खसम हमारे ॥
साचे जोग जुगति वीचारी साचे ताड़ी लाई हे ॥१॥
केतड़िआ जुग धुंधूकारै । ताड़ी लाई सिरजणहारै ॥
सचु नामु सची वडिआई साचै तखति वडाई हे ॥२॥
सतजुगि सतु संतोखु सरीरा । सति सति वरतै गहिर गंभीरा ॥
सचा साहिबु सचु परखै साचै हुकमि चलाई हे ॥३॥
सत संतोखी सतिगुरु पूरा । गुर का सबदु मने सो सूरा ॥
साची दरगह साचु निवासा मानै हुकमु रजाई हे ॥४॥
सतजुगि साचु कहै सभु कोई । सचि वरतै साचा सोई ॥
मनि मुखि साचु भरमु भउ भंजनु गुरमुखि साचु सखाई हे ॥५॥
त्रेतै धरम कला इक चूकी । तीनि चरण इक दुबिधा सूकी ॥
गुरमुखि होवै सु साचु वखाणै मनमुखि पचै अवाई हे ॥६॥
मनमुखि कदे न दरगह सीझै । बिनु सबदै किउ अंतरु रीझै ॥
बाधे आवहि बाधे जावहि सोझी बूझ न काई हे ॥७॥
दइआ दुआपुरि अधी होई । गुरमुखि विरला चीनै कोई ॥
धरि धरमु धरे धरणीधर गुरमुखि साचु तिथाई हे ॥८॥

राजे धरमु करहि परथाए । आसा बंधे दानु कराए ॥
राम नाम बिनु मुकति न होई थाके करम कमाई हे ॥९॥
करम धरम करि मुकति मंगाही । मुकति पदारथु सबदि सलाही ॥
बिनु गुर सबदै मुकति न होई परपंचु करि भरमाई हे ॥१०॥
माइआ ममता छोडी न जाई । से छूटे सचु कार कमाई ।
अहिनिसि भगति रते वीचारी ठाकुर सिउ बणि आई हे ॥११॥
इकि जप तप करि करि तीरथ नावहि । जिउ तुधु भावै तिवै चलावहि ॥
हठि निग्रहि अपतीजु न भीजै बिनु हरि गुर किनि पति पाई हे ॥१२॥
कलीकाल महि इक कल राखी । बिनु गुर पूरे किनै न जाती ॥
मनमुखि कूड़ि वरतै वरतारा बिनु सतिगुर भरमु न जाई हे ॥१३॥
सतिगुरु वेपरवाहु सिरंदा । ना जम काणि न छंदा बंदा ॥
जो तिसु सेवे सो अबिनासी ना तिसु कालु संताई हे ॥१४॥
गुर महि आपु रखिआ करतारे । गुरमुखि कोटि असंख उधारे ॥
सरब जीआ जगजीवनु दाता निरभउ मैलु न काई हे ॥१५॥
सगले जाचहि गुर भंडारी । आपि निरंजनु अलख अपारी ।
नानकु साचु कहै प्रभ जाचै मै दीजै साचु रजाई हे ॥१६॥४॥

हे आदिकालीन और युग-युगान्तरों (में विराजमान, हरी) हे सब से परे और अपार (प्रभु) हे आदि निरंजन (और) हमारे स्वामी हे सच्चे तुमसे युक्त होने की युक्ति (मैं) विचारता हूँ और तुझ सच्चे से ताड़ी लगाता हूँ (ध्यान जोड़ता हूँ) ॥ १ ॥

निरंकार (हरी) ने कितने ही युगों के घनघोर अंधकार में शून्य-समाधि लगाई, [तात्पर्य यह कि सृष्टि-रचना के पूर्व असंख्य युगों तक घनघोर अन्धकार था। उस समय निर्गुण हरी अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित था]। (हरी के) सच्चे नाम की सच्ची महत्ता है और (उसके) सच्चे सिंहासन की भी सच्ची बड़ाई है ॥ २ ॥

(शून्य समाधि के पश्चात्, फिर अपने सगुण रूप के अन्तर्गत हरी ने युगों का निर्माण किया। सतयुग का वर्णन करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं कि)—सतयुग के शरीरों में (तात्पर्य यह कि मनुष्यों में) सत् और सन्तोष (की प्रमुखता थी)। (लोग) गहरे और गंभीर होने से और सत्य ही सत्य का व्यवहार करते थे। सच्चा साहब (हरी) (उनको) सच्चाई परख कर (अपना) सच्चा हुक्म चलाता था ॥ ३ ॥

पूर्ण सद्गुरु सच्चा और सन्तोषी होता था। जो (व्यक्ति) गुरु की शिक्षा मानता था वह शूरवीर होता था। (सतयुग के लोग) सच्चे दरबार में सच्चे (हरी) का निवास (समझ कर), (उसका) हुक्म और मर्जी मानते थे ॥ ४ ॥

सतयुग में सभी लोग सत्य बोलते थे (और यह ध्रुव नियम है कि) (जो कोई) सत्य का व्यवहार करता है, (वह) सच्चा हो होता है। (उस समय मनुष्यों के) मन और मुख

(वीणा) में सत्य होता था (सत्य का यह व्यवहार उनके) भ्रम और भय को दूर कर देता था (और इस प्रकार के) गुरमुखों (सत्यवादी पुरुषों) का सत्य ही सहायक होता था ॥ ५ ॥

त्रेतायुग में (धर्म रूपी बैल के चार पैरों में से एक पैर टूट गया) धर्म की एक कला (शक्ति) का ह्रास हो गया। उस युग में (धर्म के चार पैरों में से) तीन पैर रह गए; (धर्म के एक पैर का स्थान द्विविधा ने ले लिया और) दुविधा प्रबल पड़ गई। (यदि) गुरमुख (सत्यवादी पुरुष) हो (तो) वह सत्य (परमात्मा) का कथन करता है; मनमुख तो व्यर्थ की बातों में पचता है—नष्ट होता है ॥ ६ ॥

मनमुख (हरी के) दरबार में कभी नहीं सफल होता है। बिना (गुरु के) शब्द के अन्तःकरण किस प्रकार प्रसन्न हो ? (ऐसे मनमुख व्यक्ति) बँधे ही आते हैं और बँधे ही चले जाते हैं, (उन्हें) कोई समझ-बूझ नहीं होती है ॥ ७ ॥

द्वापरयुग में (धर्म की दूसरी कला) दया (के चले जाने पर) धर्म की आधी शक्ति रह जाती है (क्योंकि चार कलाओं में से सत्य और दया का ह्रास हो जाता है)। गुरु की शिक्षा द्वारा कोई विरला ही (साधक इस रहस्य को) समझता है। (इस प्रकार, द्वापरयुग में) पृथ्वी को धारण करनेवाले धर्म (रूपी बैल) के (केवल) दो चरण रह जाते हैं, गुरु के द्वारा ही उसके स्थान पर सत्य प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

राजा लोग किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए धर्म करते हैं (निस्वार्थ भाव से नहीं) (इस प्रकार) (वे) आशा के बंधन में बँध कर दान करते हैं। (अतएव चाहे जितने कर्मों को कर के (मनुष्य) थक जायँ किन्तु राम नाम के बिना मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

(लोग) कर्म-धर्म (कर्मकाण्ड) करके मुक्ति माँगते हैं (किन्तु कर्मकाण्ड से मुक्ति नहीं प्राप्त होती)। शब्द—नाम की स्तुति करने से ही मुक्ति-पदार्थ (प्राप्त होता है)। (लोग चाहे) जितना (जगत् के) प्रपंचों (कर्मकाण्डों) को करके भ्रमित हों (किन्तु) बिना गुरु के शब्दों के मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १० ॥

(सांसारिक मनुष्यों से) माया और ममता नहीं छोड़ी जा सकती है। (जो साधक गुरु के द्वारा) सच्ची करनी की कमाई करते हैं, वे ही (माया और ममता से) छूटते हैं। (ऐसे व्यक्ति) दिनरातपूर्वक अहर्निश (हरी की) भक्ति में रत रहते हैं ठाकुर—स्वामी (हरी) से उनकी खूब बनती है ॥ ११ ॥

कुछ लोग जप-तप करके तीर्थस्थिरों में स्नान करते हैं। (हे प्रभु) तुझे जैसा रुचता है वैसा ही उन्हें चलाता है (कार्य में लगाता है)। हठपूर्वक (इन्द्रियों के) निग्रह करने से वह अविश्वसनीय (मन) (हरी के प्रेम में) नहीं भीगता—अनुरक्त होता है। (भला बताओ) बिना हरि रूपी गुरु (के मिले हुए) किसने प्रतिष्ठा पाई है ? ॥ १२ ॥

कलियुग में धर्म की केवल एक कला (शक्ति) (हरी में) बचा रहती है। बिना पूर्ण गुरु के कोई भी (हरी का वर्णन) नहीं कर सका (अर्थात् बिना पूर्ण गुरु के हरी का साक्षात्कार हो ही नहीं सकता और बिना साक्षात्कार के कोई व्यक्ति हरी का क्या वर्णन कर सकेगा ?)। मनमुख तो (सदैव) झूठे ही व्यापार में बरतता है बिना सद्गुरु के (उसका) भ्रम नहीं मिट सकता ॥ १३ ॥

विशेष [निम्नलिखित पद में 'सद्गुरु' शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिए हुआ है ।]

अर्थ सद्गुरु बेपरवाह और सिरजनहार है न तो (उस) मन का (कोई) भय है और न (तो उसमें) किसे (मनुष्य) की वीनता—मुहताजी ही है । (जो साधक) उसकी आराधना करता है वह अविनाशी (परमात्मा) ही (हो जाता है) (उसे फिर) काल संत्रस्त नहीं करता ॥ १४ ॥

कर्त्तार (कर्त्तापुरुष परमात्मा) ने अपने आपको गुरु में रखा है और गुरु के माध्यम से (उसने) करोड़ों—असंख्य (व्यक्तियों) का उद्धार किया है । जगत् के सभी जीवों का जीवनदाता निर्भय हरी ही है उसमें किसी प्रकार की मैल (कल्मष पाप) नहीं है ॥ १५ ॥

समस्त (प्राणी) गुरु रूपी भंडारी से ही याचना करते हैं (क्योंकि हरी स्वयं तो) निरंजन (माया से रहित) अगम्य और अपार है, (इसीलिए उसने भंडार का भंडारी गुरु को बनाया है) । हे प्रभु नानक सच कहता है और हे दाता दयालु (हरी) (तुमसे) यही माँगना है कि (मुझे) सत्य (की भीख) दे ॥ १६ ॥ ४ ॥

[५]

साचै मेले सबदि मिलाए । जा तिसु भाणा सहजि समाए ।
त्रिभवण जोति धरी परमेसरि अवरु न दूजा भाई हे ॥१॥
जिसके चाकर तिसकी सेवा । सबदि पतीजै अलख अभेवा ॥
भगता का गुणकारी करता बखसि लए वडिआई हे ॥२॥
देदे तोटि न आवै साचे । लै लै मुकरि पउदे काचे ॥
मूलु न बूझहि साचि न रीझहि दूजै भरमि भुलाई हे ॥३॥
गुरमुखि जागि रहे दिन राती । साचे की लिव गुरमति जाती ॥
मनमुख सोइ रहे से लूटे गुरमुखि साबतु भाई हे ॥४॥
कूड़े आवै कूड़े जावै । कूड़े राती कूड़ु कमावै ॥
सबदि मिले से दरगह पैधे गुरमुखि सुरति समाई हे ॥५॥
कूड़ि मुठी ठगी ठगवाड़ी । जिउ वाड़ी ओजाड़ि उजाड़ी ॥
नाम बिना किछु सादि न लागै हरि बिसरिऐ दुखु पाई हे ॥६॥
भोजनु साचु मिलै आघाई । नाम रतनु साची वडिआई ॥
चीनै आपु पछाणै सोई जोती जोति मिलाई हे ॥७॥
नावहु भुली चोटा खाए । बहुतु सिआणप भरमु न जाए ।
पचि पचि मुए अचेत न चेतहि अजगरि भारि लदाई हे ॥८॥
बिनु बाद बिरोधहि कोई नाही । मै देखालिहु तिसु सालाही ॥
मनु तनु अरपि मिलै जगजीवनु हरि सिउ बणत बणाई हे ॥९॥
प्रभ की गति मिति कोइ न पावै । जे को वडा कहाइ वडाई खावै ॥
साचे साहिब तोटि न दाती सगली तिनहि उपाई हे ॥१०॥

बडी वडिआई वेपरवाहे । आपि उपाए दानु समाहे ।
आपि दइआलु दूरि नही दाता मिलिआ सहजि रजाई हे ॥११॥
इकि सोगी इकि रोगि विआपे । जो किछु करे सु आपे आपे ॥
भगति भाउ गुर की मति पूरी अनहदि सबदि लखाई हे ॥१२॥
इकि नागे भूखे भवहि भवाए । इकि हठु करि मरहि न कीमति पाए ॥
गति अविगत की सार न जाणै बूझै सबदु कमाई हे ॥१३॥
इकि तीरथि नावहि अंनु न खावहि । इकि अगनि जलावहि देह खपावहि ॥
राम नाम बिनु मुकति न होई कितु बिधि पारि लंघाई हे ॥१४॥
गुरमति छोडहि उझड़ि जाई । मनमुखि रामु न जपै अवाई ॥
पचि पचि बूडहि कूड़ु कमावहि कूड़ि कालु बैराई हे ॥१५॥
हुकमे आवै हुकमे जावै । बूझै हुकमु सो साचि समावै ॥
नानक साचु मिलै मनि भावै गुरमुखि कार कमाई हे ॥१६॥५॥

(जब साधक) सत्य (गुरु) से मिलता है (तो वह गुरु उसे) शब्द—नाम से मिला देता है। (यदि) उस (हरी की) इच्छा हुई (तो वह) सहजावस्था में समा जाता है। परमेश्वर ने तीनो भुवनों (को प्रकाशित करनेवाली) ज्योति (हमारे अन्तर्गत) रख दी है (जिससे अब) और कोई दूसरा अच्छा ही नही लगता ॥ १ ॥

जिसका चाकर हो, उसी की सेवा (करनी चाहिए) (तात्पर्य यह कि हरी के सेवक को एकमात्र हरी की ही आराधना करनी चाहिए)। अगम्य और अगोचर (हरी) शब्द—नाम के द्वारा प्रसन्न होता है। कर्ता (हरी) भक्तों का कल्याण करनेवाला है (वह उन्हें) क्षमा करके (अपनी शरण में) लेकर बड़ाई प्रदान करता है ॥ २ ॥

सच्चे प्रभु को (प्राणियों के) देने में (किसी प्रकार की) कमी नहीं आती किन्तु कच्चे (अविवेकी और अज्ञानी) लोग (हरी से) ले ले कर मुकर जाते हैं। वे (कच्चे लोग) संसार के भ्रम में भटक कर न तो अपने मूलस्वरूप (आत्म-स्वरूप) को समझते हैं और न सत्य (हरी) में ही रीझते हैं—(प्रसन्न होते हैं) ॥ ३ ॥

गुरमुख (हरी के चिन्तन में) अहर्निश जगते रहते हैं गुरु की बुद्धि द्वारा (गुरमुख ने) सत्य (हरी) में चित्त लगाना जान लिया है। मनमुख (अज्ञान-निद्रा में) सोते रहते हैं (इसी से वे माया द्वारा) लूटे जाते हैं (किन्तु) गुरमुख सही-सलामत रहते हैं ॥ ४ ॥

(मनमुख) झूठ में ही आते हैं और झूठ में ही चले जाते हैं (तात्पर्य यह कि झूठ में ही मनमुख का जन्म-मरण होता है)। झूठ में अनुरक्त होने से वे झूठ में समा जाते हैं। (जो साधक) शब्द—नाम में मिलते हैं वे (हरी के) दरबार में सम्मान पाते हैं। गुरु की शिक्षा द्वारा (वे) (हरी की) मूर्ति में समा जाते हैं ॥ ५ ॥

झूठी (जीवात्मा रूपी स्त्री) (कामादिक) ठगों की बाड़ी में ठगा गई है। जिस प्रकार (पशु आदि) बाड़ी उजाड़ देते हैं (उसी प्रकार शरीर रूपी) बाड़ी को (कामादिकों ने) उजाड़ दिया है। (वास्तव में) नाम के बिना कुछ स्वाद नहीं आता हरि के विस्मृत होने पर (अन्त) दुःख प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

सच्चे भोजन (परमात्मा) के मिलने पर ही (साधक) अघाता है—तृप्त होता है। नाम रूपी रत्न के मिलने पर ही सच्ची बड़ाई प्राप्त होती है। (यदि साधक) अपने आप को पहचाने तो (उस हरी को भी) पहचान लेता है (और उसकी) ज्योति (परमात्मा की प्रकाश) ज्योति से मिल जाती है ॥ ७ ॥

नाम के भूलने पर (मनुष्य) चोटें खाते हैं (तात्पर्य यह कि यातनाएँ सहते हैं)। बहुत सयानापन (चतुरता) होने पर भी भ्रम नहीं दूर होता। अविवेकी—मूर्ख मनुष्य (पापों के) बहुत भार (बोझ) से भरे हुए पच पच कर मर जाते हैं (किन्तु फिर भी) नहीं सावधान होते हैं ॥ ८ ॥

कोई भी व्यक्ति बिना झगड़े और विरोध के नहीं है (यदि कोई व्यक्ति ऐसा है तो) मुझे दिखा दो (मैं) उसकी प्रशंसा करूँ और तन-मन (उसे) अर्पित करूँ ताकि जगत् का जीवन (हरी) मुझे प्राप्त हो जाय और हरी से मेरी बात बन जाय ॥ ९ ॥

प्रभु की गति-मिति कोई भी नहीं पा सकता। यदि कोई व्यक्ति अपने को बड़ा कहलाता है, तो बड़ाई ही (उसे) खा जाती है (तात्पर्य यह कि मान उसे ले डूबता है)। सच्चे साहब के दानों में (किसी प्रकार की) कमी नहीं है सारी (सृष्टि) की उत्पत्ति उसी (प्रभु) ने की है ॥ १० ॥

बेपरवाह (हरी) की महत्ता (बड़ाई) (बहुत) बड़ी है। (सारे प्राणियों को) उत्पन्न करके (उन्हें) दान पहुँचाता है (तात्पर्य यह कि स्वयं प्राणियों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही उनकी खोज-खबर लेता है)। (प्रभु) आप ही दयालु है (वह) कहीं दूर नहीं है अपना प्रदान करनेवाला (परमात्मा) (साधकों से) स्वाभाविक ही मिल जाता है, (क्योंकि वह दूर तो है नहीं) ॥ ११ ॥

(संसार में) कुछ लोग शोकातुर हैं और कुछ ताप रोग में फँसे हैं (अतएव प्रभु) जो कुछ भी करता है वह अपने ही आप करता है। गुरु की पूर्ण बुद्धि से प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है (गुरु के) अनाहत शब्द द्वारा (हरी विषयक) समझ आती है ॥१२॥

कुछ लोग नंगे और भूखे (रहकर) (तीर्थस्थिरों में) भ्रमण करते हैं कुछ लोग हठ निग्रह करके मरते हैं, (किन्तु प्रभु हरी की) कीमत नहीं जान पाते। (वे लोग) अगम्य (अविनाशी हरी) की गति का पता नहीं जानते (यह तो) (गुरु के) शब्द की कमाई द्वारा ही जाना जा सकता है ॥१३॥

कुछ लोग तीर्थों में स्नान करते हैं और अन्न नहीं खाते हैं, (पंचाग्नि आदि करते हैं) कुछ लोग आग में जला कर देह को खपा देते हैं। (किन्तु) बिना रामनाम के मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती (बिना रामनाम के) किस प्रकार (संसार-सागर से) पार हुआ जा सकता है ? ॥१४॥

(जो लोग) गुरु की बुद्धि का परित्याग करते हैं, वे कुमार्ग पर चल जाते हैं। अपार लोभ (प्रमाद को रोका न जा सके) मनमुख रामनाम को नहीं जपता (मनमुख) पच पच कर (संसार-सागर में) डूबते हैं (वे) झूठ ही कमाते हैं (और अन्त में इसी) झूठ के कारण उनका बड़ी हो जाता है ॥१५॥

(सारे प्राणी प्रभु के) हुक्म से आते हैं और (उसी के) हुक्म से चले जाते हैं। (जो व्यक्ति परमात्मा के इस) हुक्म को समझता है, वह सत्यस्वरूप (हरी) में ही समा जाता है। नानक कहते हैं कि गुरु के द्वारा जाप करने से सत्य (हरी) प्राप्त हो जाता है (जो) मन को (बहुत ही) अच्छा लगता है ॥१६॥५॥

[६]

आपे करता पुरखु बिधाता । जिनि आपे आपि उपाइ पछाता ॥
आपे सतिगुरु आपे सेवकु आपे स्रिसटि उपाई हे ॥१॥

आपे नेड़ै नाही दूरे । बूझहि गुरमुखि से जन पूरे ॥
तिनकी संगति अहिनिसि लाहा गुर संगति एह वडाई हे ॥२॥

जुगि जुगि संत भले प्रभ तेरे । हरि गुण गावहि रसन रसेरे ॥
उसतति करहि परहरि दुखु दालदु जिन नाही चिंत पराई हे ॥३॥

ओइ जागत रहहि न सूते दीसहि । संगति कुल तारे साचु परीसहि ॥
कलिमल मैलु नाही ते निरमल ओइ रहहि भगति लिव लाई हे ॥४॥

बूझहु हरिजन सतिगुर बाणी । एहु जोबनु सासु है देह पुराणी ॥
आजु कालि मरि जाईऐ प्राणी हरि जपु जपि रिदै धिआई हे ॥५॥

छोडहु प्राणी कूड़ कबाड़ा । कूड़ु मारे कालु उछाहाड़ा ॥
साकत कूड़ि पचहि मनि हउमै दुहु मारगि पचै पचाई हे ॥६॥

छोडिहु निंदा ताति पराई । पड़ि पड़ि दझहि साति न आई ॥
मिलि सतसंगति नामु सलाहहु आतम रामु सखाई हे ॥७॥

छोडहु काम क्रोधु बुरिआई । हउमै धंधु छोडहु लंपटाई ।
सतिगुर सरणि परहु ता उबरहु इउ तरीऐ भवजलु भाई हे ॥८॥

आगै बिमल नदी अगनि बिखु झेला । तिथै अवरु न कोई जीउ इकेला ॥
भड़ भड़ अगनि सागरु दे लहरी पड़ि दझहि मनमुख ताई हे ॥९॥

गुर पहि मुकति दानु दे भाणै । जिनि पाइआ सोई बिधि जाणै ॥
जिन पाइआ तिन पूछहु भाई सुखु सतिगुर सेव कमाई हे ॥१०॥

गुर बिनु उरझि मरहि बेकारा । जमु सिरि मारे करे खुआरा ॥
बाधे मुकति नाही नर निंदक डूबहि निंद पराई हे ॥११॥

बोलहु साचु पछाणहु अंदरि । दूरि नाही देखहु करि नंदरि ॥
बिघनु नाही गुरमुखि तरु तारी इउ भवजलु पारि लंघाई हे ॥१२॥

देही अंदरि नामु निवासी । आपे करता है अबिनासी ॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई हे ॥१३॥

ओहु निरमलु है नाही अंधिआरा । ओहु आपे तखति बहै सचिआरा ॥
साकत कूड़े बंधि भवाईअहि मरि जनमहि आई जाई हे ॥१४॥

गुर के सेवक सतिगुर पिआरे । ओइ बैसहि तखति सु सबदु वीचारे ॥
ततु लहहि अंतरगति जाणहि सतसंगति साचु वडाई हे ॥१५॥
आपि तरै जनु पितरा तारे । संगति मुकति सु पारि उतारे ॥
नानकु तिसका लाला गोला जिनि गुरमुखि हरि लिव लाई हे ॥१६॥५॥

(प्रभु) आप ही कर्तापुरुष और सृष्टि-रचयिता (विधाता) है। जिस (प्रभु) ने अपने आप को उत्पन्न किया है (वही अपने आप को) पहचानता है। (प्रभु हरी) आप ही सद्गुरु है, आप ही सेवक है और आप ही ने सृष्टि उत्पन्न की है ॥१॥

(प्रभु) पास ही समीप है (वह) दूर नहीं है। (जो व्यक्ति) गुरु के द्वारा (उपर्युक्त बातें) समझते हैं, वही पूर्ण पुरुष हैं। (ऐसे पूर्ण पुरुष को) संगति में अहर्निश (सदैव) लाभ ही लाभ है। गुरु की संगति में ऐसी ही बड़ाई (प्राप्त होती) है ॥२॥

(हे हरी) तेरे संत युग-युगान्तरों से भले (अच्छे) रहे हैं वे जीभ द्वारा आनन्द से हरि का गुणगान करते हैं। वे दुःख-दारिद्र्य का परित्याग करके (प्रभु की) स्तुति करते हैं उन्हें दूसरों से चिन्ता (भय) नहीं है ॥३॥

वे (ब्रह्मज्ञान में) जगते रहते हैं, (और कभी अज्ञान की निद्रा में) सोते हुए नहीं दिखाई पड़ते। (वे भगवान् के भक्त) सत्य को परोस कर (वितरित कर) संगति और कुल को तारते हैं। (उन्हें) पापों की मैल नहीं (लगती) वे निर्मल रहते हैं वे (हरी की) भक्ति में लिव लगाए रहते हैं ॥४॥

ऐ हरि के भक्तो सद्गुरु की वाणी समझो—यह यौवन श्वास और देह पुराने हो जाने वाले हैं। यह (नश्वर) प्राणी आज अथवा कल में (निश्चित ही) मर जायगा, (अतएव) हृदय में ध्यान कर के हरि का जप करो ॥५॥

ऐ प्राणी, झूठ गर्व छोड़ झूठ बोलनेवाले को काल उठाकर मारता है। शाक्त (माया के उपासक) झूठ में दग्ध होते हैं, (जिनके) मन में अहंकार है (और जो) द्वैत भाव में हैं वे पच-पच कर (दग्ध हो हो कर) (नष्ट हो जाते हैं)।

[विशेष—कबाड़ा=टूटी-फूटी वस्तुओं को इकट्ठी बनाकर दिखाना जैसा कि कबाड़ी लोग करते हैं तात्पर्य यह कि गर्व मारता] ॥६॥

(ऐ प्राणी) पराई निन्दा और ईर्ष्या त्याग दे (बड़े-बड़े विद्वान्) पढ़-पढ़ कर दग्ध होते हैं (उन्हें) शान्ति नहीं आती। (अतएव हे प्राणी) सत्संगति में मिल कर (हरी के) नाम की प्रशंसा कर, (क्योंकि) सभी में रमा हुआ (परमात्मा) ही (सब का) अपना है ॥७॥

(हे प्राणी) काम क्रोध (आदि) बुराइयों को त्याग दे अहंकार के धंधों (प्रपंचों) एवं लम्पटता को भी त्याग दे। (तू यदि) सद्गुरु की शरण में पड़ेगा तभी उबर (बच) सकेगा; हे भाई इस प्रकार संसार-सागर से तर कर (पार हो) ॥८॥

(हे मनुष्य) (इस संसार से जाने पर) आगे आग की निर्मल नदी है और विष की लहरें (निकल रही हैं) (तात्पर्य यह कि नारकीय यंत्रणाएँ हैं) वहाँ और कोई नहीं है अकेला जीव (जाता) है। अग्नि का सागर 'भड़भड़' शब्द करके (भयंकर रूप से) (लपटें रूपी) लहरें निकाल रहा है मनमुख उसी स्थान पर पड़ कर दग्ध होते हैं ॥९॥

गुरु के पास मुक्ति है, (जिसे) वह अपनी मर्जी—इच्छा के अनुसार देता है। जिस (भाग्यशाली) ने इसे प्राप्त किया है, वही (इसकी प्राप्ति की) विधि जानता है। हे भाई, जिन्होंने (इसे) प्राप्त किया है, उनसे पूछो (वे लोग यही उत्तर देंगे कि) आनन्दपूर्वक सद्गुरु की सेवा करके (यह वस्तु) कमाई गई है ॥१०॥

(मनमुख) गुरु के बिना विकारों में उलझ कर मरते हैं। यमराज (उनके) सिर पर (चोटें) मार-मार कर (उन्हें) दुखी करता है। (माया के विषयों में) बद्ध (प्राणियों को) मुक्ति नहीं (प्राप्त होती) लोगों की निन्दा करनेवाले (प्राणी) पराई निन्दा में ही डूब (मरते) हैं ॥११॥

(हे प्राणी) सत्य बोलो (और अपने) अन्तर्गत (स्थिर हरी को) पहचानो। (अपनी) दृष्टि डाल कर देखो (प्रभु हरी) दूर नहीं है। गुरु की शिक्षा द्वारा तैराकी तैरो (इसमें) कोई भी विघ्न नहीं (मार्ग में) इस प्रकार (कुशल तराकी तैर कर तुम) संसार सागर से पार हो जाओगे ॥१२॥

जीवात्मा (देही) के अन्तर्गत परमात्मा (नाम) का निवास है। (वह) अविनाशी (परमात्मा) स्वयं ही रचयिता है। (परमात्मा द्वारा निर्मित यह) जीव न तो मरता है और न मारा जाता है अपनी इच्छावाला हरी [रजा वाला हरी=रजाई] (अपने) हुक्म (हुक्म) द्वारा (सृष्टि) रच-रच कर (उसकी) देखभाल करता है ॥१३॥

वह (परमात्मा) (परम) निर्मल है, (उसमें रंचमात्र) अंधकार (अज्ञान) नहीं है। वह सच्चा (हरी) स्वयं ही सिंहासन पर बैठ कर (न्याय करता है)। शाक्त (माया के उपासक) मूढ़ में बंध कर भटकते रहते हैं (और बारंबार) जन्मते-मरते तथा आते-जाते रहते हैं ॥१४॥

गुरु के सेवक सद्गुरु (परमात्मा) के अत्यंत प्यारे हैं। जो (व्यक्ति) (गुरु के) शब्दों पर विचार करते हैं (वे हरी के दरबार में) सिंहासन पर बैठते हैं। वे (परमतत्व)-तत्व को प्राप्त कर लेते हैं और आन्तरिक दशा को जान लेते हैं, (सचमुच ही) सत्संगति की सच्ची महत्ता है ॥१५॥

हरि-भक्त (गुरमुख) स्वयं तरता है (और अपने) पितरों को भी तार देता है। (इस प्रकार) सत्संगति से मुक्ति होती है, (और वह मुक्ति लोगों को संसार-सागर से) पार उतार देती है। जिन्होंने गुरु के उपदेश द्वारा परमात्मा से समाधि (मित्र) बनाई है, नानक उनका गुलाम है ॥१६॥६॥

[विशेष—लाला=फारसी गुलाम दास, सेवक। गोला=गुलाम सेवक]

[७]

केते जुग वरते गुबारै। ताड़ी लाई अपर अपारै ॥
धुंधूकारि निरालमु बैठा ना तदि धंधु पसारा हे ॥१॥
जुग छतीह तिनै वरताए। जिउ तिसु भाणा तिवै चलाए ॥
तिसहि सरीकु न दीसै कोई आपे अपर अपारा हे ॥२॥

गुपते बूझहु जुग चतुआरे । घटि घटि वरतै उदर मझारे ॥
जुगु जुगु एका एकी वरतै कोई बूझै गुर वीचारा हे ॥३॥

बिंदु रकतु मिलि पिंडु सरीआ । पउणु पाणी अगनी मिलि जीआ ॥
आपे चोज करे रंग महली होर माइआ मोह पसारा हे ॥४॥

गरभ कुंडल महि उरध धिआनी । आपे जाणै अंतरजामी ।
सासि सासि सचु नामु समाले अंतरि उदर मझारा हे ॥५॥

चारि पदारथ लै जगि आइआ । सिव सकती घरि वासा पाइआ ॥
एकु विसारे ता पिड़ हारे अंधुलै नामु विसारा हे ॥६॥

बालकु मरै बालक की लीला । कहि कहि रोवहि बालु रंगीला ॥
जिस का सा सो तिन ही लीआ भूला रोवणहारा हे ॥७॥

भरि जोबनि मरि जाहि कि कीजै । मेरा मेरा करि रोवीजै ॥
माइआ कारणि रोइ विगूचहि ध्रिगु जीवणु संसारा हे ॥८॥

काली हू फुनि धउले आए । विणु नावै गथु गइआ गवाए ॥
दुरमति अंधुला बिनसि बिनासै मूठे रोइ पूकारा हे ॥९॥

आपु वीचारि न रोवै कोई । सतिगुरु मिलै त सोझी होई ॥
बिनु गुर बजर कपाट न खूलहि सबदि मिलै निसतारा हे ॥१ ॥

बिरधि भइआ तनु छीजै देही । रामु न जपई अंति सनेही ॥
नाम विसारि चलै मुहि कालै दरगह झूठु खुआरा हे ॥११॥

नाम विसारि चलै कूड़िआरो । आवत जात पड़ै सिरि छारो ॥
साहुरड़ै घरि वासु न पाए पेईअड़ै सिरि मारा हे ॥१२॥

खाजै पैझै रली करीजै । बिनु अभ भगती बादि मरीजै ॥
सर अपसर की सार न जाणै जमु मारे किआ चारा हे ॥१३॥

परविरती नरविरति पछाणै । गुर कै संगि सबदि घरु जाणै ॥
किस ही मंदा आखि न चलै सचि खरा सचिआरा हे ॥१४॥

साच बिना दरि सिझै न कोई । साच सबदि पैझै पति होई ।
आपे बखसि लए तिसु भावै हउमै गरबु निवारा हे ॥१५॥

गुर किरपा ते हुकम पछाणै । जुगह जुगंतर की बिधि जाणै ॥
नानक नामु जपहु तरु तारी सचु तारे तारणहारा हे ॥१६॥७॥

विशेष — परमात्मा पहले निर्गुण था । तत्पश्चात् सगुण होकर उसने सृष्टि-रचना की और जीव उत्पन्न किए । जन्म के समय मनुष्य उच्च भावनाओं को लेकर आता है, पर संसार की माया में पड़कर वह उन भावनाओं को भूल जाता है । वह दुर्बुद्धि में पड़ कर हरी का स्मरण नहीं करता । गुरु के बताए सोचने पर, वह परमात्मा के हुक्म को पहचान कर सत्य में लगता है ।

अर्थ जितने ही युगों तक अंधकार विद्यमान था। अगम्य और अपरंपार (निर्गुण हरी अपने में ही) ताड़ी लगाए था। (उस समय) अंधकार में—शून्यावस्था में निर्लिप्त (हरी) बैठा था उस समय कोई धंधे (प्रपंच) और प्रसार (सृष्टि के फैलाव) नहीं थे ॥१॥

इस प्रकार छत्तीस युग (तात्पर्य यह कि अनन्त समय) व्यतीत हो गए। जिस प्रकार उस (प्रभु) की इच्छा होती है, उसी प्रकार (वह) (सृष्टि-क्रम) चलाता है। उसके समान कोई (दूसरा) नहीं दिखाई पड़ता (वह प्रभु) आप ही सबसे परे और अनन्त है ॥२॥

चारों युगों में गुप्त होकर सभी (जड़-चेतन में) वह (हरी) ही बरतता था—(विद्यमान था)। घट-घट में तथा हृदय-हृदय में वही बरतता था। युग-युगान्तरों में एक मात्र (हरी ही) विद्यमान था (है और रहेगा), (इस तत्त्व को) कोई विरला ही गुरु के विचार द्वारा समझ पाता है ॥३॥

(हरी ने) (पिता के) बीज (तथा माता के) रक्त (रज) से शरीर का निर्माण कर दिया पवन जल और अग्नि (आदिक पंच तत्त्वों) से जीव खड़ा कर दिया। (शरीर रूपी) रंग महल में (हरी ही) कौतुक—लीला कर रहा है, और माया तथा मोह का प्रसार (फैलाव) भी (उसी ने) कर रखा है ॥४॥

(माता के) गर्भ में (जीव) ऊर्ध्व होकर (हरी के) ध्यान में लीन रहता है। (उसकी इस दशा को) अन्तर्यामी (हरी) ही जानता है। जीव (माता के) उदर-मध्य श्वास-श्वास से उसके नाम को स्मरण करता है ॥५॥

(मनुष्य) चार पदार्थों—(अर्थ, धर्म काम और मोक्ष)—के (आदर्शों की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर) इस जगत् में उत्पन्न हुआ (किन्तु अपने आदर्शों को भूल कर उसने) शिव की शक्ति (परमात्मा की शक्ति)—माया के घर में अपना निवास बना लिया। अंधे (अज्ञानी) मनुष्य ने नाम को बिसरा दिया (यदि मनुष्य) एक (परमात्मा) के नाम को भुला देता है तो (संसार रूपी) खेल (तात्पर्य यह कि अमूल्य मानव-जीवन) हार जाता है ॥६॥

(जब) बालक मर जाता है (तो उसके माता-पिता अपने बालक की) लीलाओं को (याद करते हैं) और "बालक बड़ा रँगीला था" कह-कह कर रोते हैं। (किन्तु) रोनेवाला (इस बात को) भूल जाता है कि जिस (हरी) का (वह बालक) था उसी ने (उसे) ले लिया (अतः रोना-खीझना व्यर्थ है) ॥७॥

(यदि) भरी जवानी में ही (लोग) मर जाते हैं तो क्या किया जा सकता है? (केवल) 'मेरा मेरा' कह कर (उनके परिवार के लोग) रोते हैं। माया के कारण (लोग) रो-रो कर नष्ट होते हैं (और कहते हैं कि) हम संसार के जीवन को धिक्कार है ॥८॥

(धीरे धीरे अवस्था बढ़ती है और) फिर काले बाल सफेद हो जाते हैं। बिना नाम के उनकी (अमूल्य जीवन रूपी) पूँजी-नष्ट हो जाती है, (वे उसे) नष्ट कर देते हैं। दुर्बुद्धि अंधा (अविवेकी) पुरुष (स्वयं) नष्ट हुआ है और (दूसरों को भी) नष्ट करता है, (जब) वह ठगा जाता है, (तो) रो-रो कर बिलखता है ॥९॥

(यदि) कोई अपने आपको (अपने वास्तविक स्वरूप) को विचारता है, (तो) वह नहीं रोता है। (किन्तु) सद्गुरु के मिलने पर ही (इस प्रकार की) समझ (प्राप्त) होती

है। बिना गुरु के (अज्ञान की) अन्धकार मिटाने नहीं जाता (गुरु के) मन्त्र के प्राप्त होने पर ही उद्धार होता है ॥१० ॥

वृद्ध हो जाने पर जीवात्मा का शरीर छीजने लगता है। (किन्तु ऐसी अवस्था में भी) वह अन्तिम समय के साथी राम को नहीं जपता। (अन्त में वे) नाम भुला कर और मुँह काला करके (यहाँ से) चले जाते हैं, (अपनी) झूठ के कारण (वे) (हरी के) दरबार में दुःखी होते हैं ॥११॥

(माया में आसक्त) झूठे लोग नाम भुला कर (इस संसार से) चल जाते हैं। (उनके) प्राण जाने में सिर पर गर्द पड़ती है, (अर्थात् कलंकता होती है)। मायके (इस लोक) में भी उनके सिर पर मार पड़ती है और ससुराल (परलोक) में भी (उन्हें) घर में निवास नहीं मिलता ॥१२॥

(माया में आसक्त प्राणी) खाता पहनता और मौज उड़ाता है। (किन्तु) बिना वास्तविक भक्ति के (वह) व्यर्थ ही मर जाता है। उसे भले-बुरे का समझ नहीं होती (यदि उसे) यमराज मारता है, तो (किसी का क्या चारा हो सकता है) ? ॥ १३ ॥

(मनुष्य को) प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग के (यथोचित रूप को) समझना चाहिए। (तत्पश्चात्) गुरु की सम्मति से (उसके) उपदेश द्वारा (अपने वास्तविक) घर (आत्मस्वरूप) को जानना चाहिए। (संसार में) किसी को बुरा कह कर व्यवहार नहीं करना चाहिए, मनुष्य सत्य द्वारा ही खरा और सच्चा होता है ॥ १४ ॥

सत्य के बिना कोई भी (व्यक्ति) (हरी के) दरवाजे पर मकबूल नहीं होता। सत्य शब्द——नाम के द्वारा ही (मनुष्य परमात्मा के दरबार में सम्मान के) वस्त्र पहनने को पाता है (और उसकी) प्रतिष्ठा होती है। (यदि हरी को) अच्छा लगता है तो स्वयं ही उसे क्षमा कर देता है (और उसके) अहंकार तथा मद को दूर कर देता है ॥ १५ ॥

गुरु की कृपा द्वारा (साधक परमात्मा के) हुक्म को पहचान लेता है (और वह युग-युगान्तरों की (साधना की) विधि भी जान जाता है, (तात्पर्य यह कि उसे यह भलीभाँति ज्ञात हो जाता है कि किस युग में ज्ञानमार्ग की साधना श्रेयस्कर है और किस युग में भक्तिमार्ग, अथवा कर्ममार्ग की। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस युग में नाम जपना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है)। हे नानक नाम जपो और (संसार-सागर) पार करो। नाम की नौका में तेरे (निवास करने से) तारनेवाला (हरी) (निश्चय ही) तार देगा ॥१६॥१॥७ ॥

[८]

हरि सा मीतु नाही मै कोई। जिनि तनु मनु दीआ सुरति समोई ॥
सरब जीआ प्रतिपालि समाले सो अंतरि दाना बीना हे ॥१॥

गुरु सरवरु हम हंस पिआरे। सागर महि रतन लाल बहु सारे ॥
मोती माणक हीरा हरि जसु गावत मनु तनु भीना हे ॥२॥

हरि अगम अगाहु अगाधि निराला। हरि अंतु न पाईऐ गुर गोपाला ॥
सतिगुर मति तारे तारणहारा मेलि लए रंगि लीना हे ॥३॥

सतिगुर बाझहु मुकति किनेही । ओहु आदि जुगादी राम सनेही ॥
दरगह मुकति करे करि किरपा बखसे अवगुण कीना हे ॥४॥

सतिगुरु दाता मुकति कराए । सभि रोग गवाए अंम्रित रसु पाए ॥
जमु जागाति नाही करु लागै जिसु अगनि बुझी ठरु सीना हे ॥५॥

काइआ हंस प्रीति बहु धारी । ओहु जोगी पुरखु ओहु सुंदरि नारी ॥
अहिनिसि भोगै चोज बिनोदी उठि चलतै मता न कीना हे ॥६॥

स्रिसटि उपाइ रहे प्रभ छाजै । पउण पाणी बैसंतरु गाजै ॥
मनूआ डोलै दूत संगति मिलि सो पाए जो किछु कीना हे ॥७॥

नामु विसारि दोख दुख सहीऐ । हुकमु भइआ चलणा किउ रहीऐ ॥
नरक कूप महि गोते खावै जिउ जल ते बाहरि मीना हे ॥८॥

चउरासीह नरक साकतु भोगाईऐ । जैसा कीचै तैसो पाईऐ ॥
सतिगुर बाझहु मुकति न होई किरति बाधा ग्रसि दीना हे ॥९॥

खंडे धार गली अति भीड़ी । लेखा लीजै तिल जिउ पीड़ी ॥
मात पिता कलत्र सुत बेली नाही बिनु हरि रस मुकति न कीना हे ॥१० ॥

मीत सखे केते जग माही । बिनु गुर परमेसर कोई नाही ॥
गुर की सेवा मुकति पराइणि अनदिनु कीरतनु कीना हे ॥११॥

कूड़ु छोडि साचे कउ धावहु । जो इछहु सोई फलु पावहु ॥
साच वखर के वापारी विरले लै लाहा सउदा कीना हे ॥१२॥

हरि हरि नामु वखरु लै चलहु । दरसनु पावहु सहजि महलहु ॥
गुरमुखि खोजि लहहि जन पूरे इउ समदरसी चीना हे ॥१३॥

प्रभ बेअंत गुरमति को पावहि । गुर कै सबदि मन कउ समझावहि ॥
सतिगुर की बाणी सति सति करि मानहु इउ आतम रामै लीना हे ॥१४॥

नारद सारद सेवक तेरे । त्रिभवणि सेवक वडहु वडेरे ॥
सभ तेरी कुदरति तू सिरि सिरि दाता सभु तेरो कारणु कीना हे ॥१५॥

इकि दरि सेवहि दरदु वञाए । ओइ दरगह पैधे सतिगुरू छडाए ॥
हउमै बंधन सतिगुरि तोड़े चितु चंचलु चलणि न दीना हे ॥१६॥

सतिगुर मिलहु चीनहु बिधि साई । जितु प्रभु पावहु गणत न काई ॥
हउमै मारि करहु गुर सेवा जन नानक हरि रंगि भीना हे ॥१७॥२॥८॥

हरी के समान मेरा कोई दूसरा मित्र नहीं है, जिस (हरी) ने मुझे तन और मन दिए हैं (उसी ने) (मेरे अन्तर्गत) बुद्धि भी प्रविष्ट की है, (अर्थात् स्मरण-शक्ति भी उसी ने प्रदान की है)। (जो) समस्त जीवों को पालता और संभालता है, (वही) ज्ञाता और द्रष्टा (हरी) हमारे भीतर भी है ॥ १ ॥

गुरु सरोवर है और हम (उसके) प्रिय हंस हैं। (गुरु रूपी) सागर में (बहुमूल्य गुण और हरि-यश रूपी) रत्न में लाल और रत्न (विद्यमान) हैं। हरियश रूपी मोती

माणिक्य और हीरा का गुणगान करने से मेरे तन और मन भीग जाते हैं, (प्रसन्न हो जाते हैं।) ॥ २ ॥

हरी अगम, अथाह, अगाध और निराला है। उसका का अन्त नहीं पाया जा सकता। गुरु रूपी हरी (गोपाल) द्वारा ही (वह जाना जाता है)। सद्गुरु के उपदेश द्वारा तारने वाला हरी (साधकों को) तार देता है और अपने प्रेम में लीन करके मिला लेता है ॥ ३ ॥

सद्गुरु के बिना (भला) मुक्ति कैसी? (अर्थात्, सद्गुरु के बिना मुक्ति किसी प्रकार भी नहीं प्राप्त हो सकती)। वह राम (हरी) आदि काल से तथा युगों से (हमारा) स्नेही (सहायक) है। (वह हरी अपने) दरबार में कृपा करके मुक्त कर देता है और (सारे) किए हुए अपराधों को क्षमा कर देता है ॥ ४ ॥

दाता सद्गुरु ही (शिष्यों को) मुक्त कराता है वह (साधकों के) सभी रोगों को नष्ट कर देता है (और हरि प्रेम रूपी) अमृत को प्राप्त कराता है। (हरी के प्रेम में) जिसकी (आन्तरिक) अग्नि तृष्णा शान्त हो जाती है, और (जिसका) सीना ठंढा हो जाता है (छाती शीतल हो जाती है) (उसके ऊपर) कर वसूल करनेवाले यमराज का कर नहीं लगता (तात्पर्य यह कि वह यमराज के कष्टों से बच जाता है) ॥ ५ ॥

जीव रूपी हंस (शरीर रूपी स्त्री से) अनेक प्रकार की प्रीति करता है। वह (जीवात्मा) तो योगी पुरुष है, (अर्थात् योगी के समान चक्कर लगा कर चला जानेवाला है) और यह (शरीर) सुन्दर स्त्री है। वह कौतुकी और विनोदी (जीवात्मा) अहर्निश (उस शरीर रूपी सुन्दर स्त्री) को भोगता है (और उसके साथ विविध भाँति के) भोग (कौतुक विनोद) करता है, (किन्तु अन्त में वह) उठ कर चल देता है, (तो उस शरीर रूपी स्त्री से) सलाह नहीं करता, (उसे यों ही छोड़ कर चल देता है) ॥ ६ ॥

सृष्टि उत्पन्न करके प्रभु (हरी) उसमें छा रहा—व्याप्त हो रहा है। पवन जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों से निर्मित यह शरीर) मर्यता है, और मन (कामादिक) दूतों की संगति में मिल कर (विषयों में) डोलता रहता है। (अन्त में मनुष्य) जो कुछ किए रहता है, वही पाता है ॥ ७ ॥

(मनुष्य) नाम को भुला कर (बहुत से) रोगों और दुःखों को सहन करता है। (अन्त में जब परमात्मा का) हुक्म हो जाता है, (तो वह इस संसार से) चल देता है (भला तब वह) किस प्रकार रह सकता है? (मनुष्य अपने पुनीत और पापपूर्ण कर्मों के अनुसार) नरक-कुण्ड में (पड़ कर) गोते खाता है (और उसे उसी प्रकार नष्ट होना है), जिस प्रकार जल से बाहर कर देने पर मछली (को नष्ट होना है) ॥ ८ ॥

चौरासी (लाख योनियों में भ्रमण रूपी) नरक शाक्तों (माया में आसक्त व्यक्तियों) को भोगने पड़ते हैं। (मनुष्य) जैसा करता है, वैसा ही (फल) पाता है। बिना सद्गुरु के मुक्ति नहीं हो सकती। (पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों के) संस्कारों (किरत) के बंधन में वह जकड़ कर बाँध लिया गया है ॥ ९ ॥

(आगे जहाँ जीवात्मा को जाना है, वह) गली बहुत ही तंग (सँकरी) है और खड्ग की धार के समान तीक्ष्ण है। (वहाँ कर्मों के) लेखे लिए जायँगे (यदि कर्म पुनीत

और पापमय है तो मनुष्य उसी प्रकार कोल्हू में पेरे जायेंगे) जिस भाँति तिल (कोल्हू में डाल कर) पेरा जाता है। (उस समय) माता, पिता भी और पुत्र (कोई भी) सहायक नहीं होंगे बिना हरी के प्रेम के (कोई भी व्यक्ति) मुक्त नहीं कर सकता ॥ १ ॥

जगत् में मित्र और संगी-साथी (चाहे) कितने ही हों, (किन्तु) बिना गुरु अथवा परमेश्वर के (अन्त में) कोई भी (साथ) नहीं (निबाहता)। मुक्ति का द्वार गुरु की सेवा ही है (उस सेवा में) प्रति दिन हरि-कीर्तन किया जाता है ॥ ११ ॥

(हे मनुष्य, यदि तुम) झूठ त्याग कर सत्य की ओर दौड़ने लगो (प्रवृत्त हो जाओ) (तो तुम जिस फल की) इच्छा करो वही फल पा जाओ। किन्तु (इस) सत्य (रूपी) सौदे के विरले ही व्यापारी होते हैं वे (सत्य रूपी) सौदे से (मुक्ति रूपी) लाभ प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

(हे साधक यदि तुम) हरि-नाम रूपी सौदे को लेकर चलो (तो) सहज ही (हरी के) महलों में (उसका) दर्शन पा जाओगे। पूर्ण पुरुष गुरु की शिक्षा द्वारा (हरी को) खोज कर प्राप्त कर लेते हैं इस प्रकार (वे लोग) समदर्शी हरी को पहचान लेते हैं ॥ १३ ॥

गुरु की शिक्षा द्वारा कोई (विरला) ही अगम्य प्रभु को पाता है। (अतएव हे साधक) गुरु के उपदेश द्वारा (अपने चंचल) मन को समझाओ और सद्गुरु की सत्य वाणी को सत्य ही मानो इस प्रकार आत्माराम (हरी) में लीन हो जाओ ॥ १४ ॥

(हे हरी), नारद (ऋषि) और सरस्वती देवी— (सभी) तेरे सेवक हैं और त्रिभुवन में (जो) बड़े से बड़े (लोग) हैं (वे सब) भी तेरे सेवक हैं। (हे प्रभु) सारी कुदरत तेरी ही है, तू प्रत्येक (जीव) का दाता है यह सारा कारण (संसार) तेरा ही बनाया हुआ है ॥ १५ ॥

कुछ लोग (हरी के) दरवाजे में (उसकी) आराधना करके, (अपने) दुःख-दर्दों को नष्ट कर देते हैं। सद्गुरु (उन्हें सभी प्रकार के बन्धनों से) छुड़ा देता है (और वे) (परमात्मा के) दरबार में (सम्मान का वस्त्र) पहनते हैं ॥ १६ ॥

(हे साधक), सद्गुरु से मिल कर यह विधि समझ लो (जिससे) प्रभु को प्राप्त कर लो (और कर्मों का) कोई हिसाब न रह जाय। अहंकार को मार कर गुरु की सेवा करो सेवक नानक तो हरी के प्रेम में भीग गया है ॥१७॥२॥८॥

[६]

अगम अपारा साचु हमारा । घटि घटि रमईआ रामु पिआरा ॥
जाके मरमु न जानीऐ बूझै गुरमुखि सिखु बीचारा हे ॥१॥
गुरमुखि साधु सरणि तुमारी । करि किरपा प्रभि पारि उतारी ॥
अगनि पाणी सागरु अति गहरा गुरु सतिगुरु पारि उतारा हे ॥२॥
मनमुख अंधुले सोझी नाही । आवहि जाहि मरहि मरि जाही ॥
पूरबि लिखिआ लेखु न मिटई जमदरि अंधु खुआरा हे ॥३॥
इकि आवहि जावहि घरि वासु न पावहि । किरत के बाधे पाप कमावहि ॥
अंधुले सोझी बूझ न काई लोभु बुरा अहंकारा हे ॥४॥

अंधे (अज्ञानी) मनमुखों को समझ नहीं होती। (वे अपनी अज्ञानता के कारण) (बारंबार) आते-जाते रहते हैं और मर-मर कर (इस संसार से) चले जाते हैं। (किन्तु) पहले का लिखा हुआ (भाग्य) लेख नहीं मिटता, (अतएव) वे अंधे यमराज के दरवाजे पर दुखी होते हैं ॥३॥

कुछ लोग (इस संसार में) आते-जाते जन्मते-मरते रहते हैं और (अपने वास्तविक) घर में (परमात्मा के दरबार) में स्थान नहीं पाते। (वे अपने पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों के) संस्कारों (किरत) में बंध कर पाप ही कमाते हैं। उन अंधों में कोई सूझ-बूझ नहीं होती (क्योंकि वे) लोभ और बुरे अहंकार में (फँसे हुए हैं) ॥४॥

बिना प्रियतम के स्त्री का शृङ्गार किस काम का ? (अपने वास्तविक) पति (हरी) को भूल कर (वह) पर-पति (विषयों) में आसक्त हुई है। जिस प्रकार वेश्या के पुत्र का पिता किसे कहा जाय ? (तात्पर्य यह कि उसका पिता कोई नहीं होता) (उसी प्रकार प्रभु हरी को न माननेवाला होता है)। उसके सारे कार्य व्यर्थ और बेकार होते हैं ॥५॥

(जो शरीर रूप रूपी) प्रेत के रहने का पिंजड़ा है, (उसमें) बहुत से दुःख हैं। (दुष्कर्मी व्यक्ति) अज्ञानान्धकार के (घनघोर) नरक में नष्ट होते हैं। जिन्होंने हरि-नाम को बिसराया है उनके जिम्मे धर्मराज का (हिसाब) बाकी रहता है; (अर्थात् उन्हें कर्मों के अनुसार फल भोगना पड़ता है) ॥६॥

(मनमुख व्यक्ति) माया और वासना (की पूर्ति की लिए) झूठ ही कमाते हैं (उनके अहंकार का) रोग बहुत ही बुरा (भयानक) होता है। (इसीलिए मनमुख जब यहाँ से प्रस्थान करते हैं, तो उन्हें नारकीय यंत्रणाएँ सहनी पड़ती हैं। (उनके निमित्त) धूप अग्नि की भाँति तपता है और उससे विष की लपटें निकलती हैं। प्रतिष्ठाहीन पशु और बेताल (भूत) मनमुख (उसी भयंकर अग्नि में नष्ट होता है) ॥७॥

(मनमुख के) मस्तक पर (पाप रूपी) ऐसी मिट्टी का भारी बोझा (लदा) होता है। (ऐसी परिस्थिति में वह) संसार-सागर से किस प्रकार पार हो ? (इस प्रश्न का उत्तर यह है—) आदि और युग-युगान्तरों से (संसार-सागर से पार करने के लिए) सद्गुरु ही जहाज है; राम नाम के द्वारा (सद्गुरु महा पापियों का भी) उद्धार कर देता है ॥८॥

(सांसारिक प्राणी) पुत्र-स्त्री और जगत के निमित्त प्रेम तथा माया के मोह के फँसे हुए प्रसार (फैलाव) (में बँध जाता है)। किन्तु जिन्होंने गुरु का अनुयायी होकर तत्त्व का विचार किया है उनके (सारे) बंधन-पाश सद्गुरु (परमात्मा) तोड़ डालता है ॥९॥

झूठ की ठगी हुई (दुनिया एक को छोड़ कर) कई और मार्गों से चलती है। मनमुख (विषयों में लिप्त होने के कारण) अग्नि में पड़-पड़ कर नष्ट होता है। गुरु ने अमृत रूपी (हरी के) नाम का महान् दान दे दिया है; अतएव समस्त गुणों के तत्त्व—नाम को जपो ॥१० ॥

सद्गुरु संतुष्ट होकर नाम को दृढ़ करता है। (वह) सारे दुःखों को मेट कर (सही) मार्ग बताता है। जिसकी रक्षा करनेवाला सद्गुरु है, उसके पाँवों में बिनकूल भी काँटा नहीं गड़ता ॥११॥

खाक से खाक में मिल कर (यह) शरीर नष्ट हो जाता है। (किन्तु इस तथ्य को देख कर भी) पत्थर की शिला (के समान) मनमुख (का अन्तःकरण) नहीं द्रवीभूत होता (और

वह अपनी ही नाश करता है)। वह बारंबार (अपने बुरे-भले कर्मों के अनुसार) नरक और स्वर्ग में पड़ता रहता है। (किन्तु जब नरक में जाता है तो) अत्यधिक क्रन्दन प्रलाप करता है ॥१२॥

(मन रूपी) साँप को माया का विष चढ़े हुए है। इस द्वैतभाव (दुविधा) ने बहुत से घरों को नसाया है, (नष्ट किया है)। (यह ध्रुव सिद्धान्त है कि) सद्गुरु के बिना (हरी विषयक) प्रीति नहीं उत्पन्न होती (जो व्यक्ति हरी की) भक्ति में अनुरक्त है, (वही) प्रसन्न होता है ॥१३॥

शाक्त (माया के उपासक) माया के निमित्त अत्यधिक दौड़ते-धूपते रहते हैं। (किन्तु वे) नाम को भुला कर (भला) सुख कहाँ पा सकते हैं ? वे इस त्रिगुणात्मक (संसार) में खप-खप जाते हैं; (वे इस संसार-सागर से) पार नहीं उतर पाते हैं ॥१४॥

झूठों को कूकर और शूकर कहना चाहिए। वे भयभीत होकर 'भौं-भौं' भूँक कर मर जाते हैं। (वे) तन और मन (दोनों से) से झूठे हैं वे झूठ ही कमाते हैं (और अपनी इसी) दुर्बुद्धि के कारण (हरी के) दरबार में हार जाते हैं ॥१५॥

(भाग्यवश यदि) सद्गुरु मिल जाय, तो (वही) (शिष्य के) मन को स्थिर करता है। शरण में पड़े हुए को (सद्गुरु ही) रामनाम देकर (उसका उद्धार करता है)। (सद्गुरु ही) हरि-नाम रूपी अमूल्य धन देता है, (हरी के) दरबार में हरि-यश ही प्यारा होता है ॥१६॥

राम नाम (का आश्रय लेने से) साधु की शरण में (आने से) एवं सद्गुरु के वचनों से (शिष्य को) गति-मिति प्राप्त हो जाती है। नानक कहते हैं कि हरि जपने से हरी मेरे मन में (बस गया है) और मिलानेवाले (हरी) ने (मुझे) अपने में मिला लिया है ॥१७॥१॥९॥

[१०]

घरि रहु रे मन मुगध इआने। रामु जपहु अंतरगति धिआने ॥
लालच छोडि रचहु अपरंपरि इउ पावहु मुकति दुआरा हे ॥१॥
जिसु बिसरिऐ जमु जोहणि लागै। सभि सुख जाहि दुखा फुनि आगै ॥
राम नामु जपि गुरमुखि जीअड़े एहु परम ततु वीचारा हे ॥२॥
हरि हरि नामु जपहु रसु मीठा। गुरमुखि हरि रसु अंतरि डीठा ॥
अहिनिसि रामु रहहु रंगि राते एहु जपु तपु संजमु सारा हे ॥३॥
राम नामु गुरबचनी बोलहु। संत सभा महि इहु रसु टोलहु ॥
गुरमति खोजि लहहु घरु अपना बहुड़ि न गरभ मझारा हे ॥४॥
सचु तीरथि नावहु हरि गुण गावहु। ततु वीचारहु हरि लिव लावहु ॥
अंत कालि जमु जोहि न साकै हरि बोलहु रामु पिआरा हे ॥५॥
सतिगुरु पुरखु दाता वड दाणा। जिसु अंतरि साचु सु सबदि समाणा ॥
जिस कउ सतिगुरु मेलि मिलाए तिसु चूका जम भै भारा हे ॥६॥

पंच ततु मिलि काइआ कीनी। तिस महि राम रतनु लै चीनी॥
आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे॥७॥

सत संतोखि रहहु जन भाई। खिमा गहहु सतिगुर सरणाई॥
आतमु चीनि परातमु चीनहु गुर संगति इहु निसतारा हे॥८॥

साकत कूड़ कपट महि टेका। अहिनिसि निंदा करहि अनेका॥
बिनु सिमरन आवहि फुनि जावहि ग्रभ जोनी नरक मझारा हे॥९॥

साकत जम की काणि न चूकै। जम का डंडु न कबहू मूकै॥
बाकी धरमराइ की लीजै सिरि अफरिओ भारु अफारा हे॥१०॥

बिनु गुर साकतु कहहु को तरिआ। हउमै करता भवजलि परिआ॥
बिनु गुर पारु न पावै कोई हरि जपीऐ पारि उतारा हे॥११॥

गुर की दाति न मेटै कोई। जिसु बखसे तिसु तारे सोई॥
जनम मरण दुखु नेड़ि न आवै मनि सो प्रभु अपर अपारा हे॥१२॥

गुर ते भूले आवहु जावहु। जनमि मरहु फुनि पाप कमावहु॥
साकत मूड़ अचेत न चेतहि दुखु लागै ता रामु पुकारा हे॥१३॥

सुखु दुखु पुरब जनम के कीए। सो जाणै जिनि दातै दीए॥
किस कउ दोसु देहि तू प्राणी सहु अपणा कीआ करारा हे॥१४॥

हउमै ममता करदा आइआ। आसा मनसा बंधि चलाइआ॥
मेरी मेरी करत किआ ले चाले बिखु लादे छार बिकारा हे॥१५॥

हरि की भगति करहु जन भाई। अकथु कथहु मनु मनहि समाई॥
उठि चलता ठाकि रखहु घरि अपुनै दुखु काटे काटणहारा हे॥१६॥

हरि गुर पूरे की ओट पराती। गुरमुखि हरि लिव गुरमुखि जाती॥
नानक राम नामि मति ऊतम हरि बखसे पारि उतारा हे॥१७॥४॥१ ॥

हे मूर्ख और अज्ञानी मन (अपने वास्तविक) घर (आत्मस्वरूपी घर) में रहो (कहीं अन्यत्र मत भटको)। अन्तर्मुखी ध्यान से राम को जपो। लालच त्याग कर अपरंपार (मन से परे, हरी) में अनुरक्त हो। इस प्रकार (ऐसा करने से तुम) मुक्ति का द्वार पा जाओगे॥१॥

जिस (राम नाम) का विस्मरण होने से यमराज (मनुष्य को दुःख देने के लिए) प्रतीक्षा करने लगता है, (और जिसके भूलने से) सारे सुख नष्ट हो जाते हैं और दुःख आगे आने लगते हैं (ऐसे राम नाम को हे प्राणी क्या भूलते हो)? हे जीव, गुरु के द्वारा राम नाम का जप कर, यही परम तत्व (और महान्) विचार है॥२॥

(हे प्राणी) (अमृत रूपी) मीठे रस हरिनाम का जप करो। गुरु के माध्यम से हरि-रस हृदय में (स्पष्ट रूप से) दिखाई पड़ता है (अनुभव होता है)। (हे साधक) अहर्निश राम के रंग में रँगे रहो। यही जप तप और संयम का सार है॥३॥

(हे साधक), गुरु के उपदेशानुसार राम नाम जपो। संतों की सभा में रस (राम नाम-के) रस को ढूँढो। गुरु के द्वारा (अपना वास्तविक) घर (परमात्मरूपी घर) प्राप्त कर लो (ताकि) फिर यम के मध्य में न (जाना पड़े) ॥४॥

(ऐ साधक तुम) सत्य के तीर्थ में स्नान करो और हरि का गुणगान करो। (परम) तत्त्व का विचार करो (और) हरि में लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाओ। (ऐसा करने से) यमराज (तुम्हें दुःख देने के लिए) प्रतीक्षा नहीं करेंगे (अतएव हे साधक) प्यारे राम और हरी को बोलो (जपो) ॥५॥

सद्गुरु पुरुष दाता है और बहुत बड़े दान (देनेवाला है)। उस सद्गुरु के अन्तर्गत सत्य (हरी) और (उसका) शब्द—नाम समाया हुआ है। जिस (व्यक्ति) को सद्गुरु (अपने) साथ मिला कर (हरी) से मिलाता है उसका यमराज का बोझा समाप्त हो जाता है ॥६॥

(हरी ने) पंच तत्त्वों को मिलाकर काया का निर्माण किया है और उस (काया) में राम रूपी रत्न रखा है, (अर्थात् जीवों की काया में परमात्मा का निवास है)। (उस राम रूपी अलौकिक रत्न को) पहचानना चाहिए। जीवात्माएँ (आत्म) परमात्मा है और परमात्मा स्वयं भी जीवात्माओं में है। (ऐसा हरी) गुरु की वाणी के विचार द्वारा मिलता है ॥७॥

हे (हरी के) भक्त भाई सत्य और संतोष (का आश्रय ग्रहण करो)। सद्गुरु की शरण में पड़ कर क्षमा धारण करो। गुरु की संगति में रहकर (सब से पहले) आत्मा को पहचानो, (तत्पश्चात्) परमात्मा का साक्षात्कार करो इस प्रकार, (तुम्हारा) निस्तार हो जायगा ॥८॥

शाक्त (माया का उपासक) झूठ और कपट में ही आश्रय (सहारा) लेता है। (वह) अहर्निश (दूसरों की) अनेक प्रकार की निन्दा करता रहता है। बिना (हरी के स्मरण के) (शाक्त लोग) गर्भ-योनि तथा नरक में बारबार आते-जाते रहते हैं ॥९॥

शाक्त के लिए यमराज का भय (कभी) नहीं समाप्त होता। उनके ऊपर यमराज का डंडा कभी नहीं समाप्त होता। उनसे यमराज का बाकी हिसाब (पूरा-पूरा) लिया जाता है अहंकारी लोगों के सिर पर (पाप का) बहुत भारी बोझा है ॥१०॥

बिना गुरु के (भला) बताओ कौन शाक्त तरा है? (वह शाक्त) तो अहंकार करता हुआ संसार-सागर में ही पड़ा रहता है।। बिना गुरु के कोई भी व्यक्ति (संसार-सागर का) पार नहीं पा सकता (अतएव गुरु की शिक्षा द्वारा) हरि का जप करो (हरि नाम जप ही) (तुम्हें) पार उतार देगा ॥११॥

गुरु की दाति—बख्शिश को कोई मेट नहीं सकता। जिसके (अवगुणों को गुरु) क्षमा कर देता है उसे वह (हरी) तार देता है। जिसके मन में अपरंपार (सब से परे) प्रभु (बस) गया है जन्म-मरण के दुःख उस (व्यक्ति) के समीप नहीं आ सकते ॥१२॥

(यदि तुम) गुरु से विमुख हुए हो (तो इस संसार-चक्र के) आते-जाते रहो। जन्म धारण करो और मरो और फिर मार की कमाई करो। विवेकहीन मूर्ख शाक्त (माया के उपासक) इस बात को नहीं जानते यदि (उनके ऊपर) दुःख पड़ता है तब राम को पुकारते हैं ॥१३॥

पूर्व जन्म के कर्मानुसार (प्राणियों को) सुख-दुःख प्राप्त होता रहता है। जिस दाता (हरी) ने सुख-दुःख (भोगने को) दिए हैं, वही (इस रहस्य को) जान सकता है। (अतएव) हे प्राणी, तू (दुःख की प्राप्ति के लिए) किसे दोष देता है? अपने किए हुये (बुरे कर्मों) के अनुसार कठिन (दुःख) सहन कर॥ १४॥

(हे प्राणी) (तू) अहंकार और ममता करता हुआ (इस जगत् में) (अब तक) आता जाता, (किन्तु) माया और वासना के (बंधनों में) बंधे होने के कारण यहाँ से चला दिया गया। (तू इस संसार में) 'मेरी मेरी' तो (अवश्य) करता रहा (किन्तु अब) बताओ यहाँ से तू, कौन सी वस्तु ले कर अपने साथ चला? (माया का) विष और विकारों की छार ही लाद कर (तू) इस संसार से चला गया॥ १५॥

हे भक्त भाई, हरी की भक्ति करो। मन को मन में ही समाहित कर के अकथनीय (परमात्मा) का कथन करो। (अपने) उठ कर चलते हुये (मन) को— चलायमान (मन) को अपने (वास्तविक) घर, (आत्मस्वरूपी घर) में टिकाओ (ऐसा करने से) (दुःखों को) काटनेवाला हरी (तुम्हारे) दुःखों को काट देगा॥ १६॥

(गुरमुख ने) हरी रूपी पूर्ण गुरु की शरण पहचान ली है। गुरु-परमात्म शिष्य ने हरी की लगन गुरु द्वारा जान ली है। हे नानक रामनाम (के जपने से) मति उत्तम हो जाती है और हरी (साधना को) क्षमा करके (उन्हें संसार सागर से) पार उतार देता है।॥ १७॥
॥ ८॥ १०॥

[११]

सरणि परे गुरदेव तुमारी। तू समरथु दइआलु मुरारी॥
तेरे चोज न जाणै कोई तू पूरा पुरखु बिधाता हे॥१॥

तू आदि जुगादि करहि प्रतिपाला। घटि घटि रूपु अनूपु दइआला॥
जिउ तुधु भावै तिवै चलावहि सभु तेरो कीआ कमाता हे॥२॥

अंतरि जोति भली जग जीवन। सभि घट भोगै हरि रसु पीवन॥
आपे लेवै आपे देवै तिहु लोई जगत पित दाता हे॥३॥

जगतु उपाइ खेलु रचाइआ। पवणै पाणी अगनी जीउ पाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे सो दसवा गुपतु रहाता हे॥४॥

चारि नदी अगनी असराला। कोई गुरमुखि बूझै सबदि निराला॥
साकत दुरमति डूबहि दाझहि गुरि राखे हरि लिव राता हे॥५॥

अपु तेजु वाइ प्रिथमी आकासा। तिन महि पंच ततु घरि वासा॥
सतिगुर सबदि रहहि रंगि राता तजि माइआ हउमै भ्राता हे॥६॥

इहु मनु भीजै सबदि पतीजै। बिनु नावै किआ टेक टिकीजै।
अंतरि चोरु मुहै घरु मंदरु इनि साकति दूतु न जाता हे॥७॥

दुंदर दूत भूत भीहाले। खिंचोताणि करहि बेताले॥
सबद सुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता हे॥८॥

कूड़ु कलर तनु भसमै ढेरी । बिनु नावै कैसी पति तेरी ॥
बाधे मुकति नाही जुग चारे जमकंकरि कालि पराता हे ॥९॥
जमदरि बाधे मिलहि सजाई । तिसु अपराधी गति नही काई ।
करणपलाव करे बिललावै जिउ कुंडी मीनु पराता हे ॥१०॥
साकतु फासी पड़ै इकेला । जम वसि कीआ अंधु दुहेला ॥
राम नाम बिनु मुकति न सूझै आजु कालि पचि जाता हे ॥११॥
सतिगुर बाझु न बेली कोई । ऐथै ओथै राखा प्रभु सोई ॥
राम नामु देवै करि किरपा इउ सललै सलल मिलाता हे ॥१२॥
भूले सिख गुरू समझाए । उझड़ि जादे मारगि पाए ॥
तिसु गुर सेवि सदा दिनु राती दुख भंजन संगि सखाता हे ॥१३॥
गुर की भगति करहि किआ प्राणी । ब्रहमै इंद्रि महेसि न जाणी ॥
सतिगुरु अलखु कहहु किउ लखीऐ जिसु बखसे तिसहि पछाता हे ॥१४॥
अंतरि प्रेमु परापति दरसनु । गुरबाणी सिउ प्रीति सु परसनु ॥
अहिनिसि निरमल जोति सबाई घटि दीपकु गुरमुखि जाता हे ॥१५॥
भोजन गिआनु महारसु मीठा । जिनि चाखिआ तिनि दरसनु डीठा ॥
दरसनु देखि मिले बैरागी मनु मनसा मारि समाता हे ॥१६॥
सतिगुरु सेवहि से परधाना । तिन घट घट अंतरि ब्रहमु पछाना ॥
नानक हरि जसु हरि जन की संगति दीजै जिन सतिगुर हरि प्रभु जाता हे ॥
॥१७॥५॥११॥

हे गुरुदेव हम तेरी शरण में पड़े हैं। तू समर्थ है, दयालु है और परमात्मा (मरारी) है। (हे प्रभु) तेरे कौतुक को कोई भी नहीं जान सकता तू पूरा पुरुष और विधाता (सिरजनहार) है ॥ १ ॥

तू आदि काल तथा युग-युगान्तरों से (सारे प्राणियों की) प्रतिपालना करता आता है। हे दयालु (हरी) तेरा अनूप (अद्वितीय) रूप घट-घट में (व्याप्त है)। (हे प्रभु) जैसा तुझे अच्छा लगता है (तू) उसी प्रकार (प्राणियों को प्रेरित करके) चलाता है। सभी (प्राणी तेरे) किए हुए के अनुसार (अपने-अपने कार्यों को) कर रहे हैं ॥ २ ॥

हे जगत् के जीवन हरी (तेरी) आन्तरिक ज्योति भली प्रकार से (संसार के प्राणियों के अन्तर्गत) व्याप्त है। हरी ही सारे शरीरों को भोगता है और उनके स्वाद को ग्रहण करता है। हरी आप ही लेता है और आप ही देता है वही संसार के तीनों लोकों का पिता और दाता है ॥ ३ ॥

(हरी ने) जगत् उत्पन्न करके खेल रचा है पवन जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों) से प्राणियों का निर्माण किया है। इस देह रूपी नगरी में नव द्वार (दो कानों के छिद्र दो आँखें दो नासिका के द्वार, एक मुख एक गुदा द्वार और एक लिंग-द्वार) भी (उसी ने) बनाए हैं दशम द्वार (बना कर) उसे गुप्त रखा है ॥ ४ ॥

अग्नि की भयानक चार नदियाँ हैं—हिंसा मोह लोभ और क्रोध—
[मथा—हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नदीआ अगि।
पवहि दझहि नानका तरीऐ करमी लगि॥

महला १ वार माझ।]

(गुरु के) निरमल (अद्वितीय) शब्द द्वारा कोई विरला ही गुरमुख (इस तथ्य को) समझता है। दुर्बुद्धि शाक्त (माया के उपासक उपर्युक्त नदियों में) डूबते हैं और दग्ध होते हैं, (जिसकी) गुरु रक्षा करता है, (वह उपर्युक्त नदियों से बच कर) हरी की लिव में अनुरक्त रहता है॥५॥

जल अग्नि पवन, पृथ्वी और आकाश (इन पंच भूतों के संयोग से हुयी है प्राणियों का शरीर बनाया है। इन (प्राणियों) में से जो पंच तत्व (तद्रूप य' कि जो सत्यगुणी) हैं उनके बीच गुरमुखों का निवास है। गुरमुख सद्गुरु के उपदेश के रंग में रंगे होते हैं, (वे) माया अहंकार और भ्रान्ति (भ्रम) का त्याग कर देते हैं॥६॥

यह मन (जब) शब्द—नाम में विश्वास करता है, तभी (प्रेम रस में) भीगता है। बिना नाम के (भला) यह किस आसरे में टिक सकता है? अहंकार रूपी भीतरी चोर शरीर रूपी गृह को लूट रहा है, किन्तु इस शाक्त को (मायासक्त को) उस गृह—चोर का ज्ञान नहीं है॥७॥

(कामादिक बड़े ही) उगदागु (भगदागु) दूत हैं और भयानक भूत हैं। वे बेसुरे भूतों की भाँति खींचातानी—संघर्ष कर रहे हैं, (और जिसके फलस्वरूप मनुष्य कामादिका का जबर्दस्ती शिकार हो जाता है)। शब्द—नाम की सुरति के बिना (मनुष्य) (इस संसार चक्र म) आता-जाता रहता है और इस आने-जाने में वह (अपनी) प्रतिष्ठा खो देता है॥८॥

(यह) झूठा शरीर रेत और भस्म की ढेर है, (जो शीघ्र ही बह जाता है) बिना नाम का (आश्रय लिए, भला) तेरी किस प्रकार प्रतिष्ठा होगी? (ऐसे लोग) (माया म) बँधे हैं, चारों युगों में उनकी मुक्ति नहीं है यम के सेवक काल ने उन्हें पहचान लिया है (अतः उन्हें छोड़ नहीं सकता)॥९॥

(मनमुख) यमराज के दरवाजे पर बाँधा जाता है और उसे सजा मिलती है। ऐसे अपराधी की कोई (सद्)-गति नहीं होती। (वह सजा पाने पर) करुण प्रलाप करके (उसी प्रकार) तिलमिलाता है, जिस प्रकार मछली कांटे में फँस कर (दुखी होती है)॥१०॥

शाक्त (मायासक्त) अकेले ही (यमराज की) फाँसी में पड़ता है। यमराज उस (प्राण) को वश म करके अन्धा और दुखी (बनाते हैं। राम-नाम के बिना मुक्ति (की कोई भी विधि) समझ नहीं पड़ती (वह) आजकल में (शीघ्र ही) दग्ध हो जाता है॥११॥

सद्गुरु के बिना (मनुष्य का) कोई भी सहायक नहीं होता। वही प्रभु (सद्गुरु) यहाँ (इस संसार म) और वहाँ (परलोक में) रक्षा करता है। (वह सद्गुरु) कृपा करके रामनाम देता है (और रामनाम में मनुष्य को उसी प्रकार मिला देता है), जैसे पानी से पानी मिलकर (एक हो जाता है)॥१२॥

भूले हुए शिष्य को गुरु ही समझाता है कुमार्ग पर जाते हुए (उस शिष्य को) (गुरु ही ठीक) मार्ग पर लगाता है। (जो गुरु) दुखों को दूर करनेवाला और साथ का सहायक है, (हे साधक) उस गुरु की सदा दिनरात सेवा करो ॥ १३ ॥

साधारण (प्राणी) गुरु की भक्ति क्या कर सकते हैं ? गुरु की सच्ची भक्ति उनकी पहुँच से परे है। ब्रह्मा इन्द्र और महेश भी (गुरु की सच्ची भक्ति का मर्म) नहीं समझ सके। (ऐसी परिस्थिति में) अलक्ष्य सद्गुरु को किस प्रकार लखा जाय (जाना जाय) ? जिसके ऊपर (प्रभु) (अपनी) कृपा कर दे, वही (सद्गुरु को) पहचान सकता है ॥ १४ ॥

आंतरिक प्रेम से ही (गुरु का) दर्शन प्राप्त होता है। जिस गुरु की वाणी में प्रीति हो (उसे सद्गुरु का) सच्चा—प्रेम प्राप्त होता है। ऐसे गुरुमुख को प्रत्येक स्थान पर, और प्रत्येक समय निर्मल ज्योति (जगी हुई दिखाई पड़ती है) (और उसके) हृदय में भी (ज्ञान का) दीपक सदैव जलता हुआ दिखाई पड़ता है ॥ १५ ॥

ज्ञान का भोजन परम स्वादिष्ट और अत्यन्त मीठा होता है। जिन (भाग्यशालियों) ने इसका आस्वादन किया है (उन्होंने) इसका दर्शन भी किया है। बरागी (विरक्त त्यागी) (गुरु का) दर्शन करके (परमात्मा से) मिलते हैं, (वे) ज्योतिमय मन के द्वारा वासनाओं—इच्छाओं को मार कर (पूर्ण ब्रह्म में) समाहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥

(जो भाग्यशाली) सद्गुरु की आराधना करते हैं वे प्रधान (श्रेष्ठ) होते हैं। वे प्रत्येक घर (शरीर—जीव) के अन्तर्गत ब्रह्म को पहचान लेते हैं। (हे प्रभु) नानक को हरी का यश और उन हरि भक्तों की संगति दे जिन्होंने सद्गुरु के द्वारा प्रभु हरी को पहचान लिया है ॥ १७ ॥ ५ ॥ ११ ॥

[१२]

साचे साहिब सिरजणहारे। जिनि धर चक्र धरे वीचारे ॥
आपे करता करि करि वेखै साचा वेपरवाहा हे ॥१॥

वेकी वेकी जंत उपाए। दुइ पंथी दुइ राह चलाए ॥
गुर पूरे विणु मुकति न होई सचु नामु जपि लाहा हे ॥२॥

पड़हि मनमुख पर बिधि नही जाना। नामु न बूझहि भरमि भुलाना ॥
लै कै वढी देनि उगाही दुरमति का गलि फाहा हे ॥३॥

सिम्रिति सासत्र पड़हि पुराणा। वादु वखाणहि ततु न जाणा ॥
विणु गुर पूरे ततु न पाईऐ सच सूचे सचु राहा हे ॥४॥

सभ सालाहे सुणि सुणि आखै। आपे दाना सचु पराखै ॥
जिन कउ नदरि करे प्रभु अपनी गुरमुखि सबदि सलाहा हे ॥५॥

सुणि सुणि आखै केती बाणी। सुणि कहीऐ को अंतु न जाणी ॥
जा कउ अलखु लखाए आपे अकथ कथा बुधि ताहा है ॥६॥

जनमे कउ वाजहि वाधाए। सोहिलड़े अगिआनी गाए ॥
जो जनमै तिसु सरपर मरणा किरतु पइआ सिरि साहा हे ॥७॥

पाते हैं)। (प्रभु) आप ही जानता है (और वही) सत्य को (सच्चे रूप में) प्रगट करता है। प्रभु (हरि) जिन (भाग्यशालियों) के ऊपर अपनी कृपादृष्टि करता है (वे) गुरु द्वारा नाम (शब्द) की स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

(कितने ही मनुष्य) (प्रभु हरि के संबंध) में सुन-सुन कर कितनी ही बातों का कथन करते हैं। (किन्तु) सुनने और कहने से कोई भी (उस परमात्मा का) अन्त नहीं जान सकता। जिसे (प्रभु) स्वयं अलक्ष्य (अपने को) लक्षित करा दे उसी को अकथ हरि को कथन करनेवाली बुद्धि प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

(मनुष्यों के) जन्म लेने पर (बाजे) बजते हैं और बधाइयाँ मिलती हैं अज्ञानी लोग प्रसन्नता के गीत (भी) गाते हैं। (किन्तु वे लोग यह नहीं समझते) कि (जो व्यक्ति) जन्म लेता है, उसे मरना भी अवश्य होता है। जिस प्रकार के कर्म हैं, उसी प्रकार की सम (मृत्यु की लिपि) लिखी रहती है ॥ ७ ॥

(परमात्मा से मिलन और विरह (की अवस्था की सृष्टि) मेरे प्रभु ने ही की है। (उसी प्रभु ने) सृष्टि उत्पन्न करके (जीवों को उनके कर्मानुसार) सुख और दुःख भी दिए हैं। (आदर्श शिष्य) गुरु के द्वारा शील का कवच (धारण कर) दुःख (एवं) सुख से निर्लिप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥

सत्य (परमात्मा) के व्यापारी साफ-सुथरे (पवित्र) होते हैं। गुरु के द्वारा विचार कर (वे) सत्य रूपी सौदे का धन (जिसके) पल्ले है (पास है) सच्चे शब्द द्वारा (उसके अन्तर्गत अपूर्व) उत्साह होता है ॥ ९ ॥

कच्चे (सांसारिक) सौदे में कमी आती है। (यदि कोई साधक) गुरु के द्वारा सच्चे सौदे का) व्यापार करे, (तो वह) प्रभु को अच्छा लगता है। (उस व्यक्ति की) पूँजी (और) राशि पूर्ण (एवं) सुरक्षित रहती है (और उसके लिए) यम के बंधन समाप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

सभी व्यक्ति अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार बोलते हैं। द्वैतभाव में होने के कारण मनमुख बोलना भी नहीं जानता (वह जभी बोलता है, तभी द्वैतभाव की बातें ही बोलता है)। (माया में) अंधे (व्यक्ति) की बुद्धि और वचन अंधे ही होते हैं उसे जन्म धारण करने के और मरने के दुःख (सदैव) बने रहते हैं ॥ ११ ॥

(मनमुख) दुःख में ही उत्पन्न होता है और दुःख में ही मरता है। गुरु की शरण में गए बिना (उसका) दुःख (कभी) नहीं मिटता। (इस प्रकार वह) दुःख में ही उत्पन्न होकर दुःख में ही नष्ट हो जाता है (वह इस संसार में) क्या लेकर आता है और क्या लेकर (यहाँ से) चला जाता है? ॥ १२ ॥

(जो व्यक्ति) गुरु की प्रजा हैं, (तात्पर्य यह कि जो लोग गुरु के होकर रहते हैं) (उनकी) करनी सच्ची होती है। उनके ऊपर यम (के कानून) की धारा नहीं लगती (वे यम के कानून की धारा के अन्तर्गत इस संसार में न आते हैं और न जाते हैं) क्योंकि वे गुरु की हुकूमत में हैं, अतः (यमराज की हुकूमत से परे हो जाते हैं)। उन्होंने (माया रूपी) डाली को त्याग कर (परमात्मा रूपी) मूल को पहचान लिया है, (इसीलिए उनके) मन में (अपूर्व) उत्साह है ॥ १३ ॥

हरि के लोगों (भक्तों) को यम नहीं मारता है (कष्ट देता है)। (वे भक्त) कठिन मार्ग के दुःखों को भी नहीं देखते हैं। (उनके) घट के अन्तर्गत रामनाम की (निरन्तर) पूजा (होती रहती है) कोई और दूसरी (वस्तु) (उनके हृदय में) नहीं होती ॥ १४ ॥

हरी की सुन्दर (सची हुई) प्रशंसा का कोई अन्त नहीं है। (हे हरी), जैसा तुझे अच्छा लगे, तेरी ही मर्जी में रहना चाहिए। (जो व्यक्ति हरी के हुक्म और रजा में रहते हैं वे) सच्चे पातशाह (बादशाह) के हुक्म से (उसके) दरबार में सम्मान का पहनावा पहन कर सुख से जाते हैं ॥ १५ ॥

(अनेक प्रकार से हरी के गुण वर्णन किए जाते हैं, किन्तु) उन गुणों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है ? बड़े से बड़े (व्यक्ति भी) (उस हरी के गुणों का) अन्त नहीं पा सकते हैं। नानक कहते हैं (कि हे प्रभु) तू शाहों का श्रेष्ठ पातशाह है, (हे प्रभु, ऐसी कृपा कर जिससे) सत्य (हरी) की प्राप्ति हो (मेरी) प्रतिष्ठा रख ॥ १६ ॥ १ ॥ १२ ॥

[१३]

मारू, महला १ दखणी

काइआ नगरु नगर गड़ अंदरि । साचा वासा पुरि गगनंदरि ॥
असथिरु थानु सदा निरमाइलु आपे आपु उपाइदा ॥१॥

अंदरि कोट छजे हटनाले । आपे लेवै वखरु समाले ।
बजर कपाट जड़े जड़ि जाणै गुर सबदी खोलाइदा ॥२॥

भीतरि कोट गुफा घर जाई । नउ घर थापे हुकमि रजाई ॥
दसवै पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा ॥३॥

पउण पाणी अगनी इक वासा । आपे कीतो खेलु तमासा ॥
बलदी जलि निवरै किरपा ते आपे जलनिधि पाइदा ॥४॥

धरति उपाइ धरी धरमसाला । उतपति परलउ आपि निराला ॥
पवणै खेलु कीआ सभ थाई कला खिंचि ढहाइदा ॥५॥

भार अठारह मालणि तेरी । चउरु ढुलै पवणै लै फेरी ॥
चंदु सूरजु दुइ दीपक राखे ससि घरि सूरु समाइदा ॥६॥

पंखी पंच उडरि नही धावहि । सफलिओ बिरखु अंमृत फलु पावहि ॥
गुरमुखि सहजि रवै गुण गावै हरि रसु चोग चुगाइदा ॥७॥

झिलमिलि झिलकै चंदु न तारा । सूरज किरणि न बिजुलि गैणारा ॥
अकथी कथउ चिहनु नही कोई पूरि रहिआ मनि भाइदा ॥८॥

पसरी किरणि जोति उजिआला । करि करि देखै आपि दइआला ॥
अनहद रुण झुणकारु सदा धुनि निरभउ कै घरि वाइदा ॥९॥

अनहदु वाजै भ्रमु भउ भाजै । सगल बिआपि रहिआ प्रभु छाजै ॥
सभ तेरी तू गुरमुखि जाता दरि सोहै गुण गाइदा ॥१०॥

आदि निरंजनु निरमलु सोई । अवरु न जाणा दूजा कोई ।
एकंकारु वसै मनि भावै हउमै गरबु गवाइदा ॥११॥

अंम्रितु पीआ सतिगुरि दीआ । अवरु न जाणा दूआ तीआ ॥
एको एकु सु अपरपरंपरु परखि खजानै पाइदा ॥१२॥
गिआनु धिआनु सचु गहिर गंभीरा । कोइ न जाणै तेरा चीरा ॥
जेती है तेती तुधु जाचै करमि मिलै सो पाइदा ॥१३॥
करमु धरमु सचु हाथि तुमारै । वेपरवाह अखुट भंडारै ॥
तू दइआलु किरपालु सदा प्रभु आपे मेलि मिलाइदा ॥१४॥
आपे देखि दिखावै आपे । आपे थापि उथापे आपे ॥
आपे जोड़ि विछोड़े करता आपे मारि जीवाइदा ॥१५॥

जेती है तेती तुधु अंदरि । देखहि आपि बैसि बिसमंदरि ॥
नानकु साचु कहै बेनंती हरि दरसनि सुखु पाइदा ॥१६॥१॥१३॥

नगरों और मठों के बीच (एक) काया ही (वास्तविक) नगर है। सच्चे (हरी) का निवास गगनंतर पुरी (दशम द्वार) में है। (वह दशम द्वार) स्थिर स्थान है और सदैव निर्मल है। (प्रभु) अपने आप को स्वयं ही उस स्थान पर टिकाता है ॥ १ ॥

(शरीर रूपी) गढ़ के अन्तर्गत (अनेक) बाजार भी साथ-साथ सजे हैं। (प्रभु) आप ही वस्तु ग्रहण करता है (और) आप ही उसे सँभालता है। (उस शरीर रूपी गढ़ में) वज्र-कपाट जड़े हैं (वह हरी) आप ही दरवाजे बंद करना जानता है और गुरु के शब्द द्वारा आप ही दरवाजा खोलता भी है ॥ २ ॥

(शरीर रूपी) गढ़ के अन्तर्गत (दशम द्वार रूपी) गुफा है, (जिसे हरि ने) घर का स्थान (बनाया है)। (उसी हरी ने) अपने हुक्म और मर्जी से नौ-गोलक (रूपी) घरों (दो नासिका के छिद्र दो आँखें दो कान एक मुख एक लिंग-द्वार और एक मल-द्वार) की स्थापना की है। दशम (द्वार) में अलख और अपार पुरुष (स्वयं निवास) करता है वह अलख (पुरुष) आप ही अपने को दिखाता है ॥ ३ ॥

पवन जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों के अन्तर्गत) एक (जीवात्मा) का निवास है। (इस प्रकार) (सृष्टि रचना के) खेल-तमाशे (प्रभु) ने आप ही किया है। जो जलती हुई अग्नि जल से बुझ जाती है उसी (अग्नि को बड़वाग्नि के रूप में) प्रभु ने अपने द्वारा समुद्र में बाँध रखा है, (और वह ज्यों की त्यों बनी रहती है यही उसकी महत्ता है) ॥ ४ ॥

(प्रभु हरी ने) पृथ्वी रच कर उसे धर्म कमाने के स्थान में बनाया है। वह स्वयं उत्पत्ति और प्रलय करता है (फिर भी) निर्लेप रहता है। (हरी ही ने) श्वासों (पवन) का खेल प्रत्येक स्थान में (और प्रत्येक जीव के अन्तर्गत) रचा है (यदि वह) इस शक्ति को (प्राणी के अन्तर्गत से) खींच ले तो वह जड़ वत् ढेर हो जाता है ॥ ५ ॥

(समस्त वनस्पतियों का) अठारह भार (तेरे शरीर में सजने के लिये) बना है। [प्राचीन विचार है कि प्रत्येक पेड़-पौधे का एक-एक पत्ता लेकर एकत्र करने से जितना वजन हो उतना वजन अठारह भार होता है। एक भार का वजन पाँच कच्चे मन के बराबर होता है]। पवन का फेरी लगा (तेरे ऊपर) चँवर करता है। चंद्रमा और सूर्य तेरे दो दीपक के रूप में

रहने लगे हैं और चन्द्रमा के घर में सूर्य आता है, (भाव यह है कि सूर्य से चन्द्रमा प्रकाश ग्रहण करता है) ॥ ६ ॥

(गुरमुख रूपी वृक्ष के) पांच (ज्ञानेन्द्रिय रूपी) पक्षी उड़ कर (कहीं) दौड़ते नहीं हैं। (वे गुरमुख रूपी) वृक्ष फलयुक्त हैं और (नाम)—अमृतफल को पाते हैं। गुरमुख सहज भाव से (हरी में) रमण करता है और (उसका) गुण गाता है (वह सदैव) हरि रस के चारे को चुगता है ॥ ७ ॥

(दसम द्वार अथवा हरी का स्थान) चमक-चमक से प्रकाशित होता रहता है, जहाँ न चन्द्रमा है, न तारागण (वहाँ) न सूर्य की किरणें हैं, न बिजली है (और) न आकाश है। (मैं तो) उस अकथनीय अवस्था का वर्णन कर रहा हूँ, जिसका कोई भी चिह्नादिक नहीं है। (वह) मन को अच्छा लगनेवाला (हरी सर्वत्र) परिपूर्ण है ॥ ८ ॥

(ज्ञान की) किरणें (सर्वत्र) फैली हुई हैं (और उनकी) ज्योति का (सर्वत्र) प्रकाश है। दयालु (हरी ब्रह्मज्ञान की किरणों) एक एक कर स्वयं (उन्हें) देखता है। (इस ब्रह्मज्ञान की ज्योति के प्रकट होने से) अनाहत शब्द की मीठी ध्वनि (रुणझुनकार) निर्भय हरी के घर में सदैव बजती रहती है ॥ ९ ॥

(हरी के साक्षात्कार होने से) और अनाहत शब्द के बजने से भ्रम और भय (दूर) भग जाते हैं। जो प्रभु सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, वह (सभी लोगों की) छाया करता है, (रक्षा करता है)। (समस्त संसार की वस्तुएँ) तेरी ही हैं, तू गुरुद्वारा जाना जाता है (जो व्यक्ति गुरु द्वारा तुझे जान लेते हैं वे) वे तेरा गुणगान करते हुए, (तेरे) दरवाजे पर सुशोभित होते हैं ॥ १० ॥

वह (हरी) आदि है निरंजन (माया से रहित है) और निर्मल है। (मैं तो उस हरी को छोड़ कर) किसी और को नहीं जानता। (यदि) एक (ब्रह्म हृदय में) बस जाय (तो) मन को (बहुत) अच्छा लगता है। (प्रभु को हृदय में बसाने से साधक अपने) अहंकार और गर्व को नष्ट कर देता है ॥ ११ ॥

(मैंने) सद्गुरु के देने से (हरी रूपी) अमृत पी लिया (जिसके फलस्वरूप एक ब्रह्म दिखाई देने लगा) (अब मैं) दूसरे तीसरे को नहीं जानता। (वह हरी) एक ही है, वह अनन्त और परे से परे है। (वह अपने भक्तरूपी खरे सिक्कों को) परख कर (अपने) खजाने में डाल देता है ॥ १२ ॥

(वास्तव में) सच्चे (हरी के) ज्ञान और ध्यान (अत्यंत) गहरे और गम्भीर हैं। (हे प्रभु) तेरे विस्तार को कोई भी नहीं जान सकता। (इस संसार में) जितने भी हैं, उतने तुझी से याचना करते हैं। (जिसके ऊपर तेरी) कृपा होती है, वही (तुझे) पाता है ॥ १३ ॥

(हे प्रभु) कर्म धर्म और सत्य (सब कुछ) तेरे ही हाथ में है। (हे) बेपरवाह (हरी) (तेरा) भण्डार अनन्त है। (हे) प्रभु, तू सदैव ही (प्राणियों पर) दयालु (और) कृपालु है, (तू) आप ही (अपने) में मेल मिलाता है ॥ १४ ॥

(हे स्वामी) (तू) आप ही देखता है (और) आप ही (दूसरों को) दिखाता है। (तू) आप ही स्थापित करता है और आप ही नाश करता है। (तू) आप ही संयोग करता

है और आप ही वियोग करता है। हे कर्तापुरुष (तू) आप ही मारता है और आप ही जिलाता है ॥ १५ ॥

(हे हरे), (संसार की) जितनी (वस्तुएं) हैं सब तेरे ही अन्तर्गत हैं। (तू) इस (शरीर रूपी) पक्के मन्दिर में बैठकर (सब कुछ) देखता रहता है। नानक सच्ची विनती करके कहता है (कि मुझे तो) हरि के दर्शन से ही सुख प्राप्त होता है ॥१६॥१॥१३॥

[१४]

दरसनु पावा जे तुधु भावा । भाइ भगति साचे गुण गावा ॥
तुधु भाणे तू भावहि करते आपे रसन रसाइदा ॥१॥

सोहनि भगत प्रभू दरबारे । मुकतु भए हरि दास तुमारे ॥
आपु गवाइ तेरै रंगि राते अनदिनु नामु धिआइदा ॥२॥

ईसरु ब्रहमा देवी देवा । इंद्र तपे मुनि तेरी सेवा ॥
जती सती केते बनवासी अंतु न कोई पाइदा ॥३॥

विणु जाणाए कोइ न जाणै । जो किछु करे सु आपण भाणै ॥
लख चउरासीह जीअ उपाए भाणै साह लवाइदा ॥४॥

जो तिसु भावै सो निहचउ होवै । मनमुखु आपु गणाए रोवै ॥
नावहु भुला ठउर न पाए आइ जाइ दुखु पाइदा ॥५॥

निरमल काइआ ऊजल हंसा । तिसु विचि नामु निरंजन अंसा ॥
सगले दूख अम्रितु करि पीवै बाहुड़ि दूखु न पाइदा ॥६॥

बहु सादहु दूखु परापति होवै । भोगहु रोग सु अंति विगोवै ॥
हरखहु सोगु न मिटई कबहू विणु भाणे भरमाइदा ॥७॥

गिआन विहूणी भवै सबाई । साचा रवि रहिआ लिव लाई ॥
निरभउ सबदु गुरू सचु जाता जोती जोति मिलाइदा ॥ ॥

अटलु अडोलु अतोलु मुरारे । खिन महि ढाहि फेरि उसारे ॥
रूपु न रेखिआ मिति नही कीमति सबदि भेदि पतीआइदा ॥९॥

हम दासन के दास पिआरे । साधिक साच भले वीचारे ॥
मंने नाउ सोई जिणि जासी आपे साचु द्रिड़ाइदा ॥१०॥

पलै साचु सचे सचिआरा । साचे भावै सबदु पिआरा ॥
त्रिभवणि साचु कला धरि थापी साचे ही पतीआइदा ॥११॥

वडा वडा आखै सभु कोई । गुर बिनु सोझी किनै न होई ॥
साचि मिलै सो साचे भाए ना वीछुड़ि दुखु पाइदा ॥१२॥

धुरहु विछुंने धाही रुंने । मरि मरि जनमहि मुहलति पुंने ॥
जिसु बखसे तिसु दे वडिआई मेलि न पछोताइदा ॥१३॥

आपे करता आपे सुणता । आपे नदरि आपे मुकता ॥
आपे कुदरति धरतु सुकतीसव जमता मोहु कुमतइया ॥१४॥

जाका के सिरि धनु वीचारा । करतकारत्तु समरथु अपारा ॥
करि करि वेखै कीता आपणा करणी कार करादया ॥१५॥

से गुण गावहि साचे भावहि । तुझ ते उपजहि तुझ माहि समावहि ॥
नानक साचु कहै बेनंती मिलि साचे सुख पाइदा ॥१६॥२॥१४॥

यदि तुझे रुचता है तो (तेरा) दर्शन प्राप्त होता है और नाम-भक्ति से सच्चा गुणगान होता है । (हे) कर्ता-पुरुष तू अपनी मर्जी से (प्राणियों को) अच्छा लगता है; (तू) आप ही रसना के अन्तर्गत रस उत्पन्न करता है ॥

(हे) प्रभु, तेरे दरबार में (तेरे) भक्त सुशोभित होते हैं । (हे स्वामी) तेरे भक्त (तेरा चिन्तन करके) मुक्त हो गए हैं । (वे भक्त) अपने आपेपन को नष्ट कर तेरे रंग में अनुरक्त हुए हैं और प्रतिदिन (तेरे) नाम का ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

शिव ब्रह्मा देवी देवता, इन्द्र, तपस्वी मुनि (आदि) तेरी सेवा करते हैं । यती सत्यपुरुषी एवं कितने ही वनवासी (तेरा ध्यान करते हैं) किन्तु) कोई भी तेरा अन्त नहीं पाता ॥ ३ ॥

बिना (प्रभु के) जनाए कोई भी (उसे) नहीं जान पाता है । हरी जो कुछ भी करता है अपनी मर्जी से करता है । (उसी प्रभु ने) चौरासी लाख (योनियों के) जीवों की उत्पत्ति की है और अपनी आज्ञा से ही सभी (प्राणियों) को श्वास दिलाता है ॥ ४ ॥

जो (कुछ) उस (हरी) को रुचता है वह निश्चित रूप से होता है । मनमुख अपनी भार अपना करता है (इसीलिए वह) रोता है । (वह मनमुख) नाम को भूल कर (कहीं भी) स्थान नहीं पाता । वह (संसार-चक्र में) आ जा कर दुःख पाता रहता है ॥ ५ ॥

जिसकी काया में उज्ज्वल (पवित्र) हंस (जीवात्मा) का (निवास है) । उस (जीवात्मा) के अन्तर्गत निरंजन (माया से रहित) नाम का अंश (विद्यमान है) । (जो आत्मज्ञानी व्यक्ति उस नाम का साक्षात्कार कर लेता है, (वह) समस्त दुःखों को अमृत (समझ) कर पीता रहता है (और उसे) दुःख नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥

अनेक स्वादों (के भोगने) में दुःखों की ही प्राप्ति होती है । (इस प्रकार) भोगों में रोग (का भय सदैव बना रहता है) (जो मनुष्य भोगों के भोगने में रत रहता है) वह अन्त में नष्ट हो जाता है । (भोग भोगनेवाले मनुष्यों का) हर्ष और शोक कभी नहीं मिटता (परमात्मा की) आज्ञा में (अपने को मिलाए) बिना (मनुष्य) भटकता रहता है ॥ ७ ॥

ज्ञान के बिना सारी (दुनिया) भटकती रहती है । सच्चा (हरी) (सभी प्राणियों के अन्तर्गत) मिल मिला कर रम रहा है । गुरु के शब्द द्वारा निर्भय और सच्चा (हरी) जाना जाता है (और उसके जानने पर जीवात्मा परमात्मा से मिलकर उसी प्रकार एक हो जाती है जिस प्रकार) ज्योति से मिलकर ज्योति (एक हो जाती है) ॥ ८ ॥

मुरारी (परमात्मा) अमर अडोल और अतुलनीय है । (वह सर्व शक्तिमान् हरी) एक क्षण में (तो समस्त जगत्) नष्ट कर देता है (और दूसरे क्षण) फिर (उसका) निर्माण

कर देता है। (उस प्रभु का) न (कोई) रूप है, न (कोई) रेखा है न कोई मिति है और न कोई कीमत है, (गुरु के शब्द द्वारा बिंध कर (मनुष्य) प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥

(हे) प्यारे (हरी) हम तो (तेरे) दासों के दास हैं साधक ही सच्चे मने और विचारवान् होते हैं। (जो साधक) नाम का मनन करता है, (मत म संसार की बाजी) नहीं खोवेगा, (प्रभु) आप ही (अपने भक्तों को) अपना सच्चा (नाम) दृढ़ कराता है ॥ १ ॥

सच्चे सत्य के साधक को सत्य (हरी) ही अच्छे (लगता है)। सच्च (हरी को वही मनुष्य) अच्छा लगता है, जिसे सच्च (नाम) प्यारा लगता है। हरी ने त्रिभुवन में सत्य को ही शक्ति (के रूप में) स्थापित किया है (इसीलिए) (मनुष्य) सच्चा होने से ही आनन्दित होता है ॥ ११ ॥

सभी कोई (परमात्मा को) महान् महान्' कहते हैं, (परन्तु केवल मुख से कहते हैं हृदय से इस बात का नहीं अनुभव करते) वास्तव में गुरु के बिना (परमात्मा की) समझ किसी को भी नहीं (प्राप्त) होती। (जो व्यक्ति) सत्य (परमात्मा) में लीन होता है वही सच्च हरी को अच्छा लगता है (वह कभी हरी से) बिछुड़ कर दुःख नहीं पाता है ॥ १२ ॥

(जो मनुष्य) (हरी से) प्रारम्भ से ही बिछुड़े हैं, वे धाड़ें मार कर रोते हैं। (वे बारंबार इस संसार में) मर-मर कर जन्मते हैं और (अपना) समय पूरा करते हैं। (प्रभु) जिसके ऊपर कृपा करता है उसी को बड़ाई प्रदान करता है (और उसे अपने में) मिला लेता है (जिससे उसे फिर) पछताना नहीं पड़ता है ॥

(प्रभु) आप ही कर्ता (निर्माता) है और आप ही भोक्ता है (वह) आप ही तृप्त है (और) आप ही मुक्त है। (वह आप ही) (मुक्ति रूपी) दान है और आप ही मुक्ति का स्वामी है (वह जीवों को मुक्ति प्रदान कर उनकी) ममता और मोह को भी आप समाप्त करता है ॥ १४ ॥

(हे प्रभु, तेरा मुक्तिरूपी) दान (अन्य सभी) दानों से श्रेष्ठ विचारा गया है। समर्थ (प्रभु) अपार है और कारण (तथा) कारक है। (वह) अपने किए हुए को रच-रच कर स्वयं ही देखता है। (मनुष्यों को प्रेरित करके प्रभु आप ही) उनसे करणी और कार्य कराता है ॥ १५ ॥

(जो व्यक्ति) सच्चे (परमात्मा) को अच्छे लगते हैं, वे ही (उसका) गुणगान करते हैं। (हे हरी) तुझ ही से (जीव) उत्पन्न होते हैं (और अन्त में) तुझ ही में समा जाते हैं। नानक सच्ची विनती (करके) कहता है कि सच्चे (प्रभु) से मिलकर (परम) सुख प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ २ ॥ १४ ॥

[१५]

अरबद नरबद धुंधूकारा। धरणि न गगना हुकमु अपारा ॥
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि लगाइदा ॥१॥
खाणी न बाणी पउण न पाणी। ओपति खपति न आवण जाणी ॥
खंड पताल सपत नही सागर नदी न नीरु वहाइदा ॥२॥

ना तदि सुरगु मछु पइआला । दोजकु भिसतु नही खै काला ॥
नरकु सुरगु नही जमणु मरणा ना को आइ न जाइदा ॥३॥

ब्रहमा बिसनु महेसु न कोई । अवरु न दीसै एको सोई ॥
नारि पुरखु नही जाति न जनमा ना को दुखु सुखु पाइदा ॥४॥

ना तदि जती सती बनवासी । ना तदि सिध साधिक सुखवासी ॥
जोगी जंगम भेखु न कोई ना को नाथु कहाइदा ॥५॥

जप तप संजम ना ब्रत पूजा । ना को आखि वखाणै दूजा ॥
आपे आपि उपाइ विगसै आपे कीमति पाइदा ॥६॥

ना सुचि संजमु तुलसी माला । गोपी कानु न गऊ गुोआला ॥
तंतु मंतु पाखंडु न कोई ना को वंसु वजाइदा ॥७॥

करम धरम नही माइआ माखी । जाति जनमु नही दीसै आखी ॥
ममता जालु कालु नही माथै ना को किसै धिआइदा ॥८॥

निंदु बिंदु नही जीउ न जिंदो । ना तदि गोरखु ना माछिंदो ॥
ना तदि गिआनु धिआनु कुल ओपति ना को गणत गणाइदा ॥९॥

वरन भेख नही ब्रहमण खत्री । देउ न देहुरा गऊ गाइत्री ॥
होम जप नही तीरथि नावणु ना को पूजा लाइदा ॥१०॥

ना को मुला ना को काजी । ना को सेखु मसाइकु हाजी ॥
रईअति राउ न हउमै दुनीआ ना को कहणु कहाइदा ॥११॥

भाउ न भगती ना सिव सकती । साजनु मीतु बिंदु नही रकती ॥
आपे साहु आपे वणजारा साचे एहो भाइदा ॥१२॥

बेद कतेब न सिम्रिति सासत । पाठ पुराण उदै नही आसत ॥
कहता बकता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा ॥१३॥

जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइआ । बाझु कला आडाणु रहाइआ ॥
ब्रहमा बिसनु महेसु उपाए माइआ मोहु वधाइदा ॥१४॥

विरले कउ गुरि सबदु सुणाइआ । करि करि देखै हुकमु सबाइआ ॥
खंड ब्रहमंड पाताल अरंभे गुपतहु परगटी आइदा ॥१५॥

ता का अंतु न जाणै कोई । पूरे गुर ते सोझी होई ॥
नानक साचि रते बिसमादी बिसम भए गुण गाइदा ॥१६॥३॥१५॥

विशेष : निम्नलिखित पद में हरी के निर्गुण स्वरूप का वर्णन है।

अर्थ : कई वर्ष तथा वर्षों से परे (असंख्य युगों तक) अन्धकार ही अन्धकार था। (उस समय) न तो पृथ्वी थी और न आकाश था (प्रभु का) अपार हुक्म (शासन) था। न दिन था न रात थी न तो चन्द्रमा था और न सूर्य (प्रभु) शून्य-समाधि लगाए था ॥ १ ॥

(उस समय जीवों की) चार खानियाँ (अण्डज जरज सेत्ज और उद्भिज) नहीं थीं (और उनकी) वाणी भी नहीं थी। पवन और जल भी नहीं थे। उत्पत्ति विनाश जन्मना-मरना (कुछ भी) नहीं थे। न खण्ड थे न पाताल और न सप्त सागर ही थे नदियों में जल भी नहीं बहता था ॥ २ ॥

तब न तो स्वर्गलोक था न मर्त्यलोक न पाताल। (मुसलमानों के) दोजख और बिहिश्त भी नहीं थे। न तो क्षय था और न काल। (हिन्दुओं के) नरक और स्वर्ग भी नहीं थे न तो जन्म-मरण थे और न आवागमन ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश कोई भी नहीं थे। उस एक (निर्गुण ब्रह्म) को छोड़कर दूसरा और कोई नहीं दिखाई पड़ता था। स्त्री-पुरुष नहीं थे न जातियाँ थी और न जन्म था कोई दुःख-सुख भी नहीं पाता था ॥ ४ ॥

तब यती सतोगुणी और वनवासी (कोई) नहीं थे। तब सिद्ध, साधक और सुख भोगनेवाले (स्वामी) नहीं थे योगियों जंगमों के कोई वेश भी नहीं थे और न कोई नाथ ही संबोधित किया जाता था ॥ ५ ॥

जप तप, संयम व्रत पूजा (कुछ भी) नहीं थे। (उस निर्गुण ब्रह्म को छोड़कर) कोई द्वितीय का वर्णन करनेवाला नहीं था। (प्रभु) अपने आप को उत्पन्न करके स्वयं विकसित होता था। (वह) अपनी कीमत स्वयं ही आंक सकता था ॥ ६ ॥

शौच (पवित्रता) संयम तथा तुलसी (आदि) की माला भी (नहीं) थीं। न गोपियाँ थीं न कृष्ण (कान्ह); न गौएँ थीं और न ग्वाल-बाल ही थे। तंत्र मंत्र पाखण्ड आदि कुछ भी दिखाए न थे कोई (कृष्ण से तात्पर्य है) बंसी नहीं बजाता था ॥ ७ ॥

कर्मकाण्ड (और धर्म) धर्म भी नहीं थे और न माया रूपी मक्खी ही थी। लोगों में जाति और जन्म के दर्शन भी नहीं होते थे। किसी के भाग्य में न ममता का जाल था और न काल था। कोई किसी का ध्यान भी नहीं करता था। (अर्थात् ध्याता ध्येय और ध्यान—त्रिपुटी का सर्वथा अभाव था) ॥ ८ ॥

निन्दा और स्तुति (प्रशंसा) नहीं थी। जीव-जन्तु (कुछ भी) नहीं थे। न गोरखनाथ थे और न मत्स्येन्द्रनाथ। तब न ज्ञान था, न ध्यान और न कुलों (वंशों) की ही उत्पत्ति थी। कोई कर्मों-धर्मों की गिनती भी नहीं लेता था ॥ ९ ॥

(उस समय) वर्णाश्रम वेश (आदि) ब्राह्मण क्षत्रिय (कुछ) नहीं थे। देवता मन्दिर, गौ (और) गायत्री भी नहीं थे। यज्ञ-होम (कुछ भी) नहीं थे। तीर्थ-स्नान भी नहीं थे (और) न कोई पूजा ही करता था ॥ १० ॥

शेख मशायख (शेख का बहुवचन रूप) हाजी (आदि उस समय) नहीं थे। (तब) प्रजा और राजा कोई भी थे न अहंकार था और न संसार। कोई कुछ कहता-कहलाता भी नहीं था ॥ ११ ॥

(तब) भाव-भक्ति (एवं) शिव-शक्ति नहीं थीं। साजन और मित्र (तथा पिता के) वीर्य (एवं माता के) रज भी नहीं थे। (वह निर्गुण ब्रह्म) स्वयं ही अपना शाह और स्वयं ही अपना वणजारा (व्यापारी) था। (वह स्वयंभू) अपनी सत्य-महिमा में प्रतिष्ठित था ॥१२॥

(मुसलमानों के) कतेब (कुरान आदि धार्मिक ग्रंथ) (तथा हिन्दुओं के) वेद स्मृति और शास्त्र (कुछ भी) नहीं थे। पाठ पुराण सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं थे। (इस प्रकार) वह स्वयं कथन करनेवाला वक्ता था। वह अगोचर, वह अलक्ष्य स्वयं ही अपने को प्रदर्शित कर रहा था ॥१३॥

जब उस (प्रभु) की मर्जी हुई, तो उसने (पल मात्र में) जगत् को उत्पन्न कर दिया। (उस प्रभु ने) सृष्टि-रचना को बिना शारीरिक शक्ति के सहारा दिया है। ब्रह्मा विष्णु, महेश को भी (उसी हरी ने) उत्पन्न किया और माया-मोह की भी वृद्धि की ॥१४॥

(प्रभु हरी) किसी विरले (भाग्यशाली) को ही गुरु के शब्द सुनाता है। वह अपने हुक्म से सब कुछ रच-रचकर (उसकी) देख भाल करता रहता है (प्रभु ने) खण्ड ब्रह्माण्ड और पाताल का प्रारम्भ किया (निर्माण किया) (इस प्रकार जो वस्तुएँ अभी तक) गुप्त थी उन्हें प्रकाश में लाया (प्रकट किया) ॥१५॥

उस (प्रभु) का कोई अन्त नहीं जान सकता। पूर्ण गुरु से ही उसकी समझ (प्राप्त होती है)। नानक कहते हैं कि जो व्यक्ति सत्य में अनुरक्त होते हैं वे आश्चर्यान्वित होकर आनन्द (स्वरूप) में स्थित होकर (उस प्रभु का) गुणगान करते हैं ॥१६॥३॥१५॥

[१६]

आपे आपु उपाइ निराला । साचा थानु कीओ दइआला ॥
पउण पाणी अगनी का बंधनु काइआ कोटु रचाइदा ॥१॥

नउ घर थापे थापणहारै । दसवै वासा अलख अपारै ॥
साइर सपत भरे जलि निरमलि गुरमुखि मैलु न लाइदा ॥२॥

रवि ससि दीपक जोति सबाई । आपे करि वेखै वडिआई ॥
जोति सरूप सदा सुखदाता सचे सोभा पाइदा ॥३॥

गड़ महि हाट पटण वापारा । पूरै तोलि तोलै वणजारा ॥
आपे रतनु विसाहे लेवै आपे कीमति पाइदा ॥४॥

कीमति पाई पावणहारै । वेपरवाह पूरे भंडारै ॥
सरब कला ले आपे रहिआ गुरमुखि किसै बुझाइदा ॥५॥

नदरि करे पूरा गुरु भेटै । जम जंदारु न मारै फेटै ॥
जिउ जल अंतरि कमलु बिगासी आपे बिगसि धिआइदा ॥६॥

आपे वरखै अंम्रितधारा । रतन जवेहर लाल अपारा ॥
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ प्रेम पदारथु पाइदा ॥७॥

प्रेम पदारथु लहै अमोलो । कब ही न घाटसि पूरा तोलो ॥
सचे का वापारी होवै सचो सउदा पाइदा ॥८॥

सचा सउदा विरला को पाए । पूरा सतिगुरु मिलै मिलाए ॥
गुरमुखि होइ सु हुकमु पछाणै मानै हुकमु समाइदा ॥९॥

हुकमे आइआ हुकमि समाइआ । हुकमे दीसै जगतु उपाइआ ॥
हुकमे सुरगु मछु पइआला हुकमे कला रहाइदा ॥१०॥

हुकमे धरती धउल सिरि भारं । हुकमे पउण पाणी गैणारं ॥
हुकमे सिव सकती घरि वासा हुकमे खेल खेलाइदा ॥११॥

हुकमे आडाणे आगासी । हुकमे जल थल त्रिभवण वासी ।
हुकमे सास गिरास सदा फुनि हुकमे देखि दिखाइदा ॥१२॥

हुकमि उपाए दस अउतारा । देव दानव अगणत अपारा ॥
मानै हुकमु सु दरगह पैझै साचि मिलाइ समाइदा ॥१३॥

हुकमे जुग छतीह गुदारे । हुकमे सिध साधिक वीचारे ॥
आपि नाथु नथीं सभ जा की बखसे मुकति कराइदा ॥१४॥

काइआ कोटु गड़ै महि राजा । नेब खवास भला दरवाजा ॥
मिथिआ लोभु नाही घरि वासा लबि पापि पछुताइदा ॥१५॥

सतु संतोखु नगर महि कारी । जतु सतु संजमु सरणि मुरारी ॥
नानक सहजि मिलै जगजीवनु गुर सबदी पति पाइदा ॥१६॥४॥१६॥

(उस) निराले (प्रभु ने) अपने आप को (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न किया । (उस) दयालु हरी ने (अपना) सच्चा स्थान (समस्त सृष्टि के) अन्तर्गत बनाया । (उसी हरी ने) पवन, जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों) को एकत्र करके शरीर रूपी गढ़ का निर्माण किया ॥१॥

स्वामी जगन्नाथ (हरी ने शरीर के) नौ घरों (दो नासिका के छिद्र दो कान, दो आँखें, एक मुख-द्वार, एक मलद्वार और एक लिंगद्वार) की स्थापना की । दशम द्वार (जो दसवाँ घर) अलक्ष्य और अपार प्रभु ने (अपना) निवास-स्थान (बनाया) । गुरमुख के सात सरोवर (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि) (नाम रूपी) निर्मल जल से भर गए हैं (इसमें अब उन्हें) मैल नहीं लगती ॥२॥

सूर्य और चन्द्रमा (उसके) दीपक हैं (और उन दीपकों के अन्तर्गत) सारा प्रकाश (उसी का) है । (प्रभु) स्वयं ही रच कर (अपनी) महिमा को देखता रहता है । वह सुखदाता (प्रभु) शाश्वत ज्योति-स्वरूप है । सच्चा (हरी स्वयं ही अपनी) शोभा पाता है ॥३॥

(शरीर रूपी) गढ़ के अन्तर्गत बाजार, नगर और व्यापार (चल रहे हैं) । वह बनजारा (व्यापारी) पूरी तौल से (सारी वस्तुओं को) तौल रहा है । प्रभु आप ही (नाम रूपी) रत्न परीक्षता और ग्रहण करता है और आप ही उसकी कीमत पाता है ॥४॥

पलैयाला (हरी) आप ही (अपनी) कीमत पाता है । (वह हरी) बेपरवाह है और (उसका) भण्डार परिपूर्ण है । (प्रभु) समस्त कलाओं (शक्तियों) का मेल स्वयं ही (मिला) रहा है । गुरु की शिक्षा द्वारा (प्रभु इस रहस्य को) किसी (विरले) को ही समझाता है ॥५॥

(यदि प्रभु) कृपादृष्टि करे, (तभी) पूर्ण गुरु प्राप्त होता है । (गुरु के मिलने पर) फिर उसे यमराज मार नहीं मारता । (प्रभु उसका) ध्यान करके स्वयं (उसी प्रकार) विकसित होता है जिस प्रकार जल में कमल विकसित होता है ॥६॥

(हरी) नाम ही (नाम रूपी) अमृत-धार, अपार रत्न जवाहरों और लालों की वर्षा करता है। सद्गुरु के मिलने पर पूर्ण (हरी) प्राप्त होता है (जिससे) प्रेम-पदार्थ की प्राप्ति होती है ।।७।।

(साधक) जिस अमूल्य प्रेम-पदार्थ को प्राप्त कर लेता है, (वह) कभी नहीं घटता है (क्योंकि उसकी) पूँजी क्षीण होती है। (जो व्यक्ति) सत्य (हरी) का व्यापारी होता है, वही सच्चे सौदे को पाता है ।।८।।

कोई विरला ही (साधक) सच्चे सौदे (हरी) को पाता है। (यदि) पूर्ण सद्गुरु मिले (तभी) सच्चे सौदे का व्यापार करता है। (यदि कोई गुरुमुख हो तभी वह हुक्म को पहचानता है; (जो व्यक्ति प्रभु के) हुक्म को मानता है (वह उसी में) समाहित हो जाता है ।।९।।

(परमात्मा के) हुक्म से ही (समस्त प्राणी इस जगत् में) आए हैं (और उसके) हुक्म से ही (सभी) उसमें विलीन हो जाते हैं। (उसके) हुक्म से ही (यह) जगत् उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है। (उस प्रभु के) हुक्म से स्वर्गलोक मर्त्यलोक (और) पाताललोक (उत्पन्न हुए हैं) (और उसके) हुक्म से (समस्त लोक) शक्ति धारण करते हैं ।।१ ।।

(परमात्मा के) हुक्म ही से (धर्म रूपी) बैल के ऊपर पृथ्वी का (सारा) भार है। हुक्म से ही पवन जल आकाश (आदि पंच तत्त्व उत्पन्न हुए हैं)। हुक्म से जीवात्मा (शिव) का माया (शक्ति के घर में निवास होता है और हुक्म से ही (परमात्मा जीवात्मा को नाना सृष्टि के) खेल खिलाता है ।।११।।

हुक्म से आकाश का फैलाव हुआ है। हुक्म से ही जल स्थल और त्रिभुवन में (प्राणियों का) वास है। हुक्म से ही सदैव (श्वासों की) श्वासें और ग्रास (भोजन) चलते हैं, (और) फिर हुक्म से ही देख के दिखाता है, (तात्पर्य यह कि हुक्म से ही दृष्टि काम करती है) ।।१२।।

(परमात्मा ने अपने) हुक्म से ही दस अवतारों की उत्पत्ति की। अगणित और अपार देवताओं तथा दानवों (की भी उत्पत्ति) हुक्म से ही हुई। (जो व्यक्ति परमात्मा के) हुक्म को मानता है, उसे (हरी के) दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (वह) सत्य परमात्मा से मिल कर (उसी में) समाहित हो जाता है ।।१३।।

हुक्म से ही (हरी ने) छत्तीस युग (पर्यन्त) (शून्य समाधि में) व्यतीत किया। हुक्म के (अन्तर्गत) ही सिद्ध साधक (एवं) विचारवान् हुए। हरी आप ही आप है, (उसकी) सारी रचना (उसके) हुक्म में बँधी हुई है; (वह प्रभु मनुष्यों को) बख्श कर आप ही उन्हें मुक्ति देता है ।।१४।।

काया रूपी कोट और गढ़ में (मन रूपी) राजा का निवास है। (पंच कर्मेन्द्रियाँ नायब हैं, (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ) उत्तम सेवक (नवाब) हैं (दसम द्वार रूपी इस गढ़ का) सुन्दर दरवाजा है। (काया रूपी) घर में मिथ्या लोभ आदि का निवास नहीं रहता। लालच और पाप के कारण (मनुष्य को) पछताना पड़ता है ।।१५।।

(शरीर रूपी) नगर में सत्य और सन्तोष कारिन्दे हैं। परमात्मा (मुरारी) की शरण में (जाना ही मनुष्य का) मत सत्पुरुष और संयम हैं। नानक कहते हैं कि सहज भाव से ही जग जीवन प्राप्त होता है और गुरु के शब्द से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥१६॥७॥१६॥

[१७]

सुंन कला अपरंपरि धारी । आपि निरालमु अपर अपारी ॥
आपे कुदरति करि करि देखै सुंनहु सुंनु उपाइदा ॥१॥
पउणु पाणी सुंनै ते साजे । स्रिसटि उपाइ काइआ गड़ राजे ॥
अगनि पाणी जीउ जोति तुमारी सुंने कला रहाइदा ॥२॥
सुंनहु ब्रहमा बिसनु महेसु उपाए । सुंने वरते जुग सबाए ॥
इसु पद वीचारे सो जनु पूरा तिसु मिलीऐ भरमु चुकाइदा ॥३॥
सुंनहु सपत सरोवर थापे । जिनि साजे वीचारे आपे ॥
तितु सतसरि मनूआ गुरमुखि नावै फिरि बाहुड़ि जोनि न पाइदा ॥४॥
सुंनहु चंदु सूरजु गैणारे । तिस की जोति त्रिभवण सारे ॥
सुंने अलख अपार निरालमु सुंने ताड़ी लाइदा ॥५॥
सुंनहु धरति अकासु उपाए । बिनु थमा राखे सचु कल पाए ॥
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ आपि उपाइ खपाइदा ॥६॥
सुंनहु खाणी सुंनहु बाणी । सुंनहु उपजी सुंनि समाणी ॥
उतभुज चलतु कीआ सिरि करतै बिसमादु सबदि देखाइदा ॥७॥
सुंनहु राति दिनसु दुइ कीए । ओपति खपति सुखा दुख दीए ॥
सुख दुख ही ते अमरु अतीता गुरमुखि निजघरु पाइदा ॥८॥
साम वेदु रिगु जुजरु अथरबणु । ब्रहमे मुखि माइआ है त्रैगुण ॥
ता की कीमति कहि न सकै को तिउ बोले जिउ बोलाइदा ॥९॥
सुंनहु सपत पाताल उपाए । सुंनहु भवण रखे लिव लाए ॥
आपे कारणु कीआ अपरंपरि सभु तेरो कीआ कमाइदा ॥१०॥
रज तम सत कल तेरी छाइआ । जनम मरण हउमै दुखु पाइआ ॥
जिस नो क्रिपा करे हरि गुरमुखि गुणि चउथै मुकति कराइदा ॥११॥
सुंनहु उपजे दस अवतारा । स्रिसटि उपाइ कीआ पासारा ॥
देव दानव गण गंधरब साजे सभि लिखिआ करम कमाइदा ॥१२॥
गुरमुखि समझै रोगु न होई । इह गुर की पउड़ी जाणै जनु कोई ॥
जुगह जुगंतरि मुकति पराइण सो मुकति भइआ पति पाइदा ॥१३॥
पंच ततु सुंनहु परगासा । देह संजोगी करम अभिआसा ॥
बुरा भला दुइ मसतकि लीखे पापु पुंनु बीजाइदा ॥१४॥

आपु तिस का जाइआ जिसु बापु न माइआ । ना तिसु भेख न भराउ कमाइआ ॥
ना तिसु ओपति खपति कुल जाती ओहु अजरावरु मनि भाइआ ॥२॥

तू अकाल पुरखु नाही सिरि काला । तू पुरखु अलेख अगम निराला ॥
सत संतोखि सबदि अति सीतलु सहज भाइ लिव लाइआ ॥३॥

त्रै वरताइ चउथै घरि वासा । काल बिकाल कीए इक ग्रासा ॥
निरमल जोति सरब जगजीवनु गुरि अनहद सबदि दिखाइआ ॥४॥

ऊतम जन संत भले हरि पिआरे । हरि रस माते पारि उतारे ॥
नानक रेण संत जन संगति हरि गुर परसादी पाइआ ॥५॥

तू अंतरजामी जीअ सभि तेरे । तू दाता हम सेवक तेरे ॥
अंम्रित नामु क्रिपा करि दीजै गुरि गिआन रतनु दीपाइआ ॥६॥

पंच ततु मिलि इहु तनु कीआ । आतम राम पाए सुखु थीआ ॥
करम करतूति अम्रित फलु लागा हरि नाम रतनु मनि पाइआ ॥७॥

ना तिसु भूख पिआस मनु मानिआ । सरब निरंजनु घटि घटि जानिआ ॥
अम्रित रसि राता केवल बैरागी गुरमति भाइ सुभाइआ ॥८॥

अधिआतम करम करे दिनु राती । निरमल जोति निरंतरि जाती ॥
सबदु रसालु रसन रसि रसना बेणु रसालु वजाइआ ॥९॥

बेणु रसाल वजावै सोई । जा की त्रिभवण सोझी होई ॥
नानक बूझहु इह बिधि गुरमति हरि राम नामि लिव लाइआ ॥१०॥

ऐसे जन विरले संसारे । गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे ॥
आपि तरहि संगति कुल तारहि तिन सफल जनमु जगि आइआ ॥११॥

घरु दरु मंदरु जाणै सोई । जिसु पूरे गुर ते सोझी होई ॥
काइआ गड़ महल महली प्रभु साचा सचु साचा तखतु रचाइआ ॥१२॥

चतुरदस हाट दीवे दुइ साखी । सेवक पंच नाही बिखु चाखी ॥
अंतरि वसतु अनूप निरमोलक गुरि मिलिऐ हरि धनु पाइआ ॥१३॥

तखति बहै तखतै की लाइक । पंच समाए गुरमति पाइक ॥
आदि जुगादी है भी होसी सहसा भरमु चुकाइआ ॥१४॥

तखति सलामु होवै दिनु राती । इहु साचु वडाई गुरमति लिव जाती ॥
नानक रामु जपहु तरु तारी हरि अंति सखाई पाइआ ॥१५॥१॥१८॥

जहाँ देखता हूँ, वहीं दीनदयालु (हरि) दिखाई पड़ता है। वह कृपालु प्रभु न (कहीं) आता है और न कहीं जाता है। राजा (हरि) (सभी) जीवों के अन्तर्गत युक्तिपूर्वक व्याप्त है, (किन्तु फिर भी) निर्लेप है ॥ १ ॥

जिस प्रभु के न माँ है, न बाप (जो स्वयम्भू है), जगत् उसका प्रतिबिम्ब है। (उस प्रभु के न बहिन है, न भाई न उसकी उत्पत्ति है और न विनाश और न कुल है न जाति वह अजर है और सब से परे है और (सब के) मन को अच्छा लगनेवाला है ॥ २ ॥

(हे हरी) तू अकाल पुरुष है, तेरे सिर (के ऊपर) काल नहीं है तू अलख पुरुष है, अगम और निर्लेप है। सत्य संतोष से अगम्य शीतल शब्द (नाम) की प्राप्ति होती है तथा सहज भाव से सिव (एकनिष्ठ धारणा) लगती है ॥ ३ ॥

(प्रभु, हरि ने) तीनों गुणों का विस्तार करके तुरीयावस्था में (स्वयं) निवास किया। (उसने) मरण और जन्म (विकामुक्तकाल का उनग जन्म) एक ग्रास में खा लिया (अर्थात् जीवन और मरण समाप्त कर दिया)। उस निमल ज्योति एवं सबमत जगजीवन (हरी को) गुरु ने अपनी मनहर वाणी द्वारा दिखा दिया ॥ ४ ॥

संत-जन उत्तम एवं हरि को प्यारे तथा सखे होते हैं। (वे संत गण) हरि के रस में मतवाले (रहते हैं) (और हरी उन्हें) पार उतार देता है। हे नानक सन्त-जनों की (चरण धूलि) एवं संगति गुरु की कृपा से प्राप्त कर ली ॥ ५ ॥

(हे हरी) तू अंतर्यामी है और सभी जीव तेरे हैं तू (सभी का) दाता है और हम (सब) तेरे सेवक हैं। (हे प्रभु), कृपा करके (अपना) अमृत रूपी नाम को प्रदान कर गुरु ने ज्ञान (रूपी) रत्न को प्रकाशित कर दिया ॥ ६ ॥

पंच तत्वों के मिलाप से (हरी ने) इस शरीर का निर्माण किया। आत्माराम (हरी) के प्राप्त होने पर सुख की प्राप्ति हुई कर्म और करनी के अमृत-फल लग गए और मन ने हरि-नाम रूपी रत्न पा लिया ॥ ७ ॥

(जो व्यक्ति) निरवैमल वैरागी गुरु की बुद्धि और प्रेमभाव के अनुसार (हरि-नाम के) अमृत रस में अनुरक्त है, उस भूख-प्यास नहीं रह जाती (उसका) मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) क्योंकि) उसने सबसे निर्लेप (निरंजन हरी) को (समस्त) घटों में जान लिया है ॥ ८ ॥

(सच्चा शिष्य परमात्मा की) निमल और निरंतर ज्योति को प्राप्त कर दिनरात आत्मचिंतन कर करता है। शब्द (नाम) जो रत्नों का घर है, उसके रस में रमी हुई आभ रसीली वेणु बजाती है ॥ ९ ॥

(परमात्मा का ज्ञान हो जाने से शिष्य को) त्रिभुवन की समझ आ जाती है (और वह) रसीली वेणु बजाता है। हे नानक इस प्रकार गुरु की बुद्धि द्वारा हरि और रामनाम में चित्त लगा कर (उस प्रभु को) समझो ॥ १० ॥

(जो व्यक्ति) गुरु के शब्द को विचार कर निर्लेप रहते हैं ऐसे व्यक्ति संसार में विरले ही होते हैं। (वे स्वयं) तो तरते ही हैं (समस्त) संगति तथा कुल को भी तार देते हैं उनका जगत में जन्म लेकर आना सफल है ॥ ११ ॥

जिस पुरुष को गुरु द्वारा समझ होती है वह (परमात्मा के) घर दरवाजा तथा महल को जान लेता है। सच्चा प्रभु ही महल का स्वामी (महली) है (और उसी ने) काया रूपी गढ़ (तथा उसके भीतर) महलों की सच्ची रचना की है (और उसके बीच) (दसम द्वार रूपी) सच्चे तख्त को भी रचा है ॥ १२ ॥

चौदह भुवनों के हाट (तथा चन्द्रमा और सूर्य के) दीपक (इस बात के) साक्षी हैं (कि) सेवक और बंदा (भक्त जन) ने (माया के) विष को नहीं चखा, (क्योंकि उनके) अन्तर्गत अनुपम और अमूल्य वस्तु हरि-नाम है, (यही हरिनाम उन्हें माया के विष से बचाता है) गुरु के मिलने पर ही हरि-धन प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

उस तख्त पर वही बैठता है, (जो) उसके योग्य होता है। (पर उसके योग्य कौन है?)। वह दास जिसके (काम क्रोध आदि) पंच विकार नष्ट हो गये हैं और जिसने संशय और भ्रम दूर कर दिया है, वह आदि तथा युग-युगान्तरों में व्याप्त तथा (वर्तमान में) है (भूतकाल में) था तथा (भविष्य काल में) रहेगा (हरी को पहचान लेता है) ॥ १४ ॥

(ऐसे व्यक्ति के) सज्जन को नित राम सलाम होता है। सच्चे हरी की यह बड़ाई गुरु द्वारा (प्रदत्त) लिख से चली आती है। हे नानक राम-नाम जपो (और जीवन की) तराकी तैरो अन्त में हरी ही सहायक पाया जाता है ॥ १५ ॥ १ ॥ १७ ॥

[१८]

हरि धनु संचहु रे जन भाई । सतिगुर सेवि रहहु सरणाई ॥
तसकरु चोरु न लागै ता कउ धुनि उपजै सबदि जगाइआ ॥१॥

तू एकंकारु निरालमु राजा । तू आपि सवारहि जन के काजा ॥
अमरु अडोलु अपारु अमोलकु हरि असथिरु थानि सुहाइआ ॥२॥

देही नगरी ऊतमु थाना । पंच लोक वसहि परधाना ॥
ऊपरि एकंकारु निरालमु सुंनि समाधि लगाइआ ॥३॥

देही नगरी नउ दरवाजे । सिरि सिरि करणैहारै साजे ॥
दसवै पुरखु अतीतु निराला आपे अलखु लखाइआ ॥४॥

पुरखु अलेखु सचे दीवाना । हुकमि चलाए सचु नीसाना ॥
नानक खोजि लहहु घरु अपना हरि आतम राम नामु पाइआ ॥५॥

सरब निरंजन पुरखु सुजाना । अदलु करे गुर गिआन समाना ॥
कामु क्रोधु लै गरदनि मारे हउमै लोभु चुकाइआ ॥६॥

सचै थानि वसै निरंकारा । आपि पछाणै सबदु वीचारा ॥
सचै महलि निवासु निरंतरि आवण जाणु चुकाइआ ॥७॥

ना मनु चलै न पउणु उडावै । जोगी सबदु अनाहदु वावै ॥
पंच सबद झुणकारु निरालमु प्रभि आपे वाइ सुणाइआ ॥८॥

भउ बैरागा सहजि समाता । हउमै तिआगी अनहदि राता ॥
अंजनु सारि निरंजनु जाणै सरब निरंजनु राइआ ॥९॥

दुख भै भंजनु प्रभु अबिनासी । रोग कटे काटी जम फासी ॥
नानक हरि प्रभु सो भउ भंजनु गुरि मिलिऐ हरि प्रभु पाइआ ॥१०

सुनाता है। [तार, नाम, मधु, पके और फल वाले आमों का पाँच प्रकार के आमे कहते हैं] ॥ ८ ॥

(सच्चा शिष्य परमात्मा के) भय (और सांसारिक विषयों के) वैराग्य द्वारा सहजा-वस्था (तुरीयावस्था) में समा जाता है। (वह अहंकार को त्याग कर अनाहत शब्द में अनुरक्त हो जाता है। (वह) (काल का) मर्दन करा कर माया से रहित हरी निरंजन), तथा सबसे निर्लेप राजा (हरी) को जान लेता है ॥ ९ ॥

अविनाशी प्रभु दुःख और भय को नष्ट करनेवाला है। (ऐसे प्रभु के साक्षात्कार से सांसारिक) रोग कट जाते हैं (प्रभु का साक्षात्कार) यम की फाँसी को भी काट देता है। हे नानक वह प्रभु हरी भय को नष्ट करनेवाला है। गुरु के मिलने पर प्रभु हरी की प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

(जो व्यक्ति) निरंजन (हरी) को जानता है वह काल को ग्रास बना लेता है (अर्थात् काल को खा जाता है)। (जो) परमात्मा की) कृपा को समझता है, वह शब्द (नाम) को पहचान लेता है। उसी (प्रभु का) सब कौतुक है, (अपने) समस्त (कौतुक को) आप ही जानता है और आप ही पहचानता है ॥ ११ ॥

(प्रभु) आप ही साहूकार है और आप ही व्यापारी है। आप ही पारखी है और आप ही (सब कुछ) परखता है। आप ही (साधकों को) कसौटी पर कसता है और आप ही उनकी कीमत पाता है ॥ १२ ॥

प्रभु आपही दयालु है और आपही (जीवों पर) दया धारण करता है। वह बनवारी (हरी) घट घट में रमण कर रहा है। हरी निर्लेप है (वह) निष्काम (भाव से) बसता है। समर्थ गुरु समर्थ (हरी) को मिला देता है ॥ १३ ॥

प्रभु ज्ञाता और द्रष्टा है (साधकों के) अहंकार को (वही) नष्ट करता है। (प्रभु ही) द्वैतभाव को मिटाकर एक (अपने को अद्वैत) को दिखाता है। (मनुष्य) योनि के (अंतर्गत जन्म लेता हुआ भी) आशाओं से निर्लिप्त हो जाता है, (क्योंकि वह) अकुल और निरंजन हरी का गुणगान करता है ॥ १४ ॥

अहंकार को मिटाने से शब्द (नाम में रमण करने से) आनन्द (प्राप्त) होता है। (जो) अपने आप को विचारता है, वही (वास्तविक) ज्ञानी है। हे नानक हरि-यश (का गुणगान करने से) हरि के गुणों की प्राप्ति होती है और सत्संगति में सच्चे फल की प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ २ ॥ १९ ॥

[विशेष : उपर्युक्त पद में 'सुखदायक', 'दुखदायक' 'आत्मा' मारना आदि पुल्लिंग को लिया है किन्तु अर्थ की स्वाभाविकता के लिए इनका प्रयोग वर्तमान काल की क्रियाओं में किया गया है।]

[२०]

सचु कहहु सचै घरि रहणा । जीवत मरहु भवजलु जगु तरणा ॥
गुरु बोहिथु गुरु बेड़ी तुलहा मन हरि जपि पारि लंघाइआ ॥१॥

द्वार) (इसमें) अहंकार ममता और लोभ का नाश होता है। (दसम द्वार के) ऊपर परे से परे (हरि) है जिसने अपने आप को उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

(हे साधक) गुरु के द्वारा बुद्धि लेकर, हरि की मित्र द्वारा तर जा। अहंकार से रहित (हरि) के गुणगान (करने से) यमराज से क्यों डरा जाय ? (हे प्रभु), (मैं) जहाँ-जहाँ देखता हूँ वहाँ-वहाँ तुम्ही हो (इसीलिए मैं) अन्य दूसरे का गुणगान नहीं करता ॥ ३ ॥

हरी-नाम ही सच्चा है (उसकी) शरण ही सच्ची है। गुरु का शब्द ही सच्चा है, जिसके आश्रय से तरा जाता है। (गुरु के शब्द से ही) अकथनीय (परमात्मा) का कथन होता है (और) परे से परे हरी देखा जाता है, (जिसके फलस्वरूप साधक को) पुनः गर्भ और योनि के अन्तर्गत नहीं उत्पन्न होना पड़ता ॥ ४ ॥

सत्य (के आचरण के) बिना सत्यगुण और संतोष की प्राप्ति नहीं होती। बिना गुरु के मुक्ति नहीं होती (और बार बार संसार में) आना-जाना पड़ता है। हरिनाम ही मूल मंत्र और रसायन है नानक कहते हैं कि (उसी के द्वारा) पूर्ण (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

सत्य (के आचरण के) बिना संसार-सागर नहीं तरा जाता। यह (संसार रूपी) सागर अथाह है और महान् विष से भरा हुआ है। (साधक) गुरु द्वारा उपदेश ग्रहण कर (लेकर) (इस संसार-सागर से) निर्लिप्त रहता है और निर्भय हरी का घर प्राप्त कर लेता है। ६ ॥

जगत् के प्रेम (मोह) की चतुराई झूठी होती है। (जगत के प्रेम को नष्ट होने) देर नहीं लगती (मनुष्य फिर मर कर) आता-जाता रहता है। अहंकारी (प्राणी) नाम को भुलाकर (इस संसार से) चल देता है (इस प्रकार वह) उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है और नष्ट होता है ॥ ७ ॥

(अहंकारी जीव) (माया के) बंधनों में बंधकर उत्पन्न और नष्ट होता रहता है। (उसके) गले में अहंकार और ममता का फंदा (पड़ा रहता है)। जिस (व्यक्ति) को गुरु के उपदेश द्वारा बुद्धि नहीं प्राप्त है और राम नाम में (अनुराग) नहीं है वह बाँध कर यमपुरी ले जाया जाता है ॥ ८ ॥

गुरु के बिना मोक्ष-मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ? बिना गुरु के रामनाम का ध्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? (अतएव) गुरु का उपदेश ले कर दुस्तर (कठिन) संसार (सागर) से तर जा (सांसारिक बन्धनों से) मुक्त होने पर ही सुख की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

गुरु की शिक्षा से ही कृष्ण ने गोवर्धन (पर्वत) धारण किया। गुरु के उपदेश से ही समुद्र पर (श्री रामचन्द्र जी ने) पत्थर तैराए। (इसीलिए) गुरु की शिक्षा लेकर, परमपद को प्राप्त कर हे नानक गुरु (समस्त) भ्रम समाप्त कर देता है ॥ १० ॥

गुरु की शिक्षा लेकर सच्ची तैयारी करो और (अपने) हृदय में भगवान् मुरारी (परमात्मा) को पहचानो। (हे साधक), हरि जपकर यमराज के बंधन नष्ट करो और अतुल निरंजन (माया से रहित हरी) को प्राप्त कर ॥ ११ ॥

संत मित्र और गुरु भाई भी (साक्ष) गुरु के उपदेश द्वारा ही है। गुरु की शिक्षा तृष्णाग्नि को दूर कर समाप्त कर देती है। मन और मुख (दोनों) से जगजीवन (हरी) का नाम जपो (इससे) हृदय के अन्तर्गत अगम्य हरी दिखलाई पड़ता है ॥ १२ ॥

जिसे गुरु द्वारा समझ आ जाती है वह नाम से संतुष्ट हो जाता है (ऐसी स्थिति में वह) किसकी निन्दा करे और किसकी स्तुति ? (हे शिष्य) अपने आप को पहिचान और जगदीश्वर को जप अपमान रूपी मन को (बहुत) प्रिय) लगता है ॥ १३ ॥

जो (प्रभु) खण्ड-ब्रह्माण्ड में (व्याप्त) है उसे जान, गुरु के उपदेश द्वारा उसे समझ (और उसके) शब्द द्वारा (उस प्रभु को) पहचान। घट-घट में (रम कर जीव रूप में हुये सभी) भोगों का भोगनेवाला है (और फिर भी) सब से अतीत (निर्लेप) रहता है ॥ १४ ॥

गुरु के उपदेश द्वारा हरी के पवित्र यश का कथन करो। गुरु की शिक्षा द्वारा ऊँचे (प्रभु) को आँखों से देखा करो। हे नानक! श्रवणों से हरि-संबंधी वाणी (और उसके) नाम का श्रवण करो (इस प्रकार) हे प्राणी! वाणी नेत्र और श्रवण (द्वारा) हरि के रंग में रंग जाओ ॥ १५ ॥ ३ ॥ २ ॥

[विशेष : उपर्युक्त पद में भी 'जणाइआ', 'गाइआ', 'आइआ', 'गवाइआ', 'बनाइआ', 'बुझाइआ', 'लगाइआ', 'भाइआ', 'रंगाइआ', आदि क्रियाएँ भूतकाल की हैं किन्तु इनका प्रयोग वर्तमान काल के ही लिए अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इसी प्रकार अन्य पदों में भी यही बात है।] ॥

[२१]

कामु क्रोधु परहर पर निंदा। लबु लोभु तजि होहु निचिंदा ॥
भ्रम का संगलु तोड़ि निराला हरि अंतरि हरि रसु पाइआ ॥१॥

निसि दामनि जिउ चमकि चंदाइणु देखै। अहिनिसि जोति निरंतरि पेखै ॥
आनंद रूपु अनूपु सरूपा गुरि पूरै देखाइआ ॥२॥

सतिगुर मिलहु आपे प्रभु तारे। ससि घरि सूरु दीपकु गैणारे ॥
देखि अदिसटु रहहु लिव लागी सभु त्रिभवणि ब्रहमु सबाइआ ॥३॥

अम्रित रसु पाए त्रिसना भउ जाए। अनभउ पदु पावै आपु गवाए ॥
ऊची पदवी ऊचो ऊचा निरमलु सबदु कमाइआ ॥४॥

अद्रिसट अगोचर नामु अपारा। अति रसु मीठा नामु पिआरा ॥
नानक कउ जुगि जुगि हरि जसु दीजै हरि जपीऐ अंतु न पाइआ ॥५॥

अंतरि नामु परापति हीरा। हरि जपते मनु मन ते धीरा ॥
दुघट घट भउ भंजनु पाईऐ बाहुड़ि जनमि न जाइआ ॥६॥

भगति हेति गुर सबदि तरंगा। हरि जसु नामु पदारथु मंगा ॥
हरि भाणा गुर मेलि मिलाए हरि तारे जगतु सबाइआ ॥७॥

जिनि जपु जपिओ सतिगुर मति वा के। जमकंकर कालु सेवक पग ताके ॥
ऊतम संगति गति मिति ऊतम जगु भउजलु पारि तराइआ ॥८॥

(सच्चा शिष्य) गुरु के उपदेश द्वारा भक्ति के निमित्त उत्साह (तरंग) (माँगता है) (वह) हरी का यश और नाम रूपी पदार्थ माँगता है । (यदि) हरी चाहे, (तो साधक) गुरु से मिलाकर (अपने में) मिला लेता है हरी ही समस्त जगत् को तारता है ॥ ७ ॥

जो हरी का जप जपता है, उसे गुरु की बुद्धि (मति) प्राप्त होती है यम के दूत (किंकर दास) सदा काल उसके सेवक हो जाते हैं । उत्तम संगति व मति-गति भी उत्तम हो जाती है, और संसार-सागर (सुगमता से) पार तरा जा सकता है ॥ ८ ॥

(हे साधक) इस संसार-सागर को गुरु के उपदेश द्वारा तर जा आन्तरिक दुविधा को (अपने हुक्म के अनुगत बना डाल और दशम द्वार में (शब्द रूपी) धनुष को चढ़ाकर पंच बाणों (सत्य संतोष दया धर्म और धैर्य) से यमराज को मार डाल ॥ ९ ॥

शाक्त मनुष्य में शब्द की स्मृति कैसे आ सकती है ? बिना शब्द (नाम) की स्मृति के जन्म-मरण होता रहता है । हे नानक गुरुमुख ही मुक्तिपरायण होता रहता है पूर्ण भाग्य से हरी (ऐसे गुरुमुखों से) मिलाता है ॥ १० ॥

निर्भय सद्गुरु ही रक्षक होता है गुरु-गोपाल से ही भक्ति की प्राप्ति होती है । (गुरु के उपदेश से) अनाहत शब्द की आनन्द-ध्वनि बजती है । गुरु के उपदेश से ही निरंजन (माया से रहित हरी) पाया जाता है ॥ ११ ॥

निर्भय वही है, (जिसके) सिर पर किसी का लेखा (हुक्म) नहीं है । ऐसा अलेख (बिना किसी के हुक्म का, हरी) आप ही है (वह हरी) कुदरत—प्रकृति (के माध्यम) से देखा जाता है (हरी) आप ही सबसे अतीत अयोनि और स्वयंभू है हे नानक ऐसा (प्रभु) गुरु के उपदेश द्वारा प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

सद्गुरु ही (साधक की) आन्तरिक अवस्था जानता है । (जो) गुरु के शब्द—उपदेश को पहचानता है वह निर्भय (हो जाता है) । (साधक अपने) अन्तःकरण को देखकर (उसके अन्तर्गत) निरन्तर (व्याप्त हरी) को समझ लेता है और अन्यत्र मन नहीं डुलाता है ॥ १३ ॥

(जो सभी के) हृदय के अन्तर्गत बसा है, वही निर्भय (हरी) है (और सच्चा साधक वही है जो) निरंजन (हरी) के नाम में रमयुक्त (बना) है । हे नानक हरि का यश सत्संगति से प्राप्त होता है और हरी सहज भाव से सहजावस्था में मिला लेता है ॥ १४ ॥

(जो व्यक्ति) अंतर-बाहर उसी प्रभु को जानता है (वह संसार में) अलिप्त रहता है और चलायमान (मन) को अपने (आत्मस्वरूपी) घर में ले आकर (स्थिर कर देता है) । हे नानक (जो हरी) सबके ऊपर सब के आदि में और तीनों लोकों में व्याप्त है (शिष्य) उसी का अमृत रस प्राप्त कर लेता है ॥ १५ ॥ ४ ॥ २१ ॥

[२२]

कुदरति करनैहार अपारा । कीते का नाही किहु चारा ॥
जीअ उपाइ रिजकु दे आपे सिरि सिरि हुकमु चलाइआ ॥१॥

समीप सभी वस्तुएँ समान हैं) । (हे साधक) गुप्त और प्रकट हरी को प्रत्यक्ष घट म देख सभी के बीच सोच-समझ कर वही बरत रहा है ॥ २ ॥

(प्रभु) जिस (अपने में) मिलाता है, (वह) उसकी सुरति म समा जाता है (वह) गुरु के उपदेश द्वारा हरि के नाम का ध्यान करता है । आनन्दस्वरूप अद्वितीय (अनुपम) और अगोचर (हरि) गुरु द्वारा प्राप्त होता है (उसके प्राप्त होने पर समस्त) भ्रम भग जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं) ॥ ३ ॥

(हरी का) नाम तन, मन और धन (सबसे) प्यारा है । अन्त समय अंत में (वही प्रभु) सहायक होता है । मोह के प्रसार के साथ में कोई भी सहायक नहीं होता बिना हरी और गुरु के किसने सुख प्राप्त किया है ? (अंत में गुरु और परमात्मा ही सहायक होते हैं) ॥ ४ ॥

जिस पर पूर्ण गुरु कृपादृष्टि करता है, (उस) शूरवीर को अपनी बुद्धि द्वारा नाम में मिला देता है । हे नानक गुरु के चरणों की आराधना कर, जिससे भूले हुए भी मार्ग पा गए हैं ॥ ५ ॥

सन्त-जनों को हरि का धन और (उसका) यश प्यारा होता है । (हे हरी) गुरु के उपदेश द्वारा तेरा नाम पाया जाता है । याचक हरी के दरवाजे पर (उसकी) सेवा करता है और (उसके) दरबार में उसका यश गाता है ॥ ६ ॥

(यदि) सद्गुरु प्राप्त होता है (तो वही वास्तविक) घर में (परमात्मा के घर म) बुलाता है और परमात्मा के सच्चे दरबार म ही (मनुष्य) शुभ गति और प्रतिष्ठा पाता है । हरी के महल में साकत—मनमुख को ठौर (स्थान) नहीं प्राप्त होता (वह साकत व्यक्ति) जन्म धारण कर और मर मर दुःख पाता रहता है ॥ ७ ॥

(हे शिष्य) सद्गुरु (रूपी) अथाह समुद्र की सेवा कर (जिससे) नाम रूपी रत्न धन और लाभ को प्राप्त कर । (नाम रूपी) अमृत सरोवर में स्नान कर, (जिससे) विकार रूपी मैल नष्ट हो जाय गुरु रूपी सरोवर में ही संतोष की प्राप्ति होता है ॥ ८ ॥

(हे सच्चे शिष्य) सद्गुरु की सेवा कर (और किसी प्रकार की) शंका न कर (जगत् की) आशाओं के मध्य निराश होकर रह । संशय और दुःख को नष्ट करनेवाले (हरी) की आराधना कर, (जिससे) फिर लौटकर (सांसारिक) रोग नहीं लगेंगे ॥ ९ ॥

(जो व्यक्ति) सच्चे (हरी) को अच्छा लगता है, उसी को बड़ाई है । कोई और उसके योग्य नहीं है । हरी और गुरु की मूर्ति एक होकर बरत रही है हे नानक हरी को गुरु और गुरु को हरी अच्छा लगता है ॥ १० ॥

(लोग) वेदों-पुराणों की (धार्मिक) पुस्तकें बाँचते हैं कुछ लोग बढ़कर कर्मों म (धार्मिक प्रवचन) स्वयं सुनते हैं और दूसरों को सुनवाते हैं (किन्तु उनके अज्ञान-कपाट नहीं खुलते) । (भला बताओ) बहुत बड़ा (अज्ञान रूपी) कपाट किस प्रकार खुले ? बिना सद्गुरु के (अज्ञान रूपी कपाट नहीं खुलता और उसके खुले बिना) (परमात्म-) तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती ॥ ११ ॥

(कुछ लोग) त्रिपुण्ड्र (भस्म) लगाकर, (वही) भस्म (शरीर में) मलते हैं (किन्तु उनके अन्तर्गत) क्रोध रूपी चाण्डाल और अहंकार (छिपे रहते हैं) । (वेष)

पाखण्ड करने से (वास्तविक) मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती बिना सद्गुरु के अलक्ष्य (परमात्मा) नहीं पाया जाता ॥ १२ ॥

(कुछ लोग) वनों और तीर्थों में (वास कर) नियम-व्रत करते हैं (वे) मत सत्यगुण और संयम (का आचरण करते हैं) और ज्ञान का कथन करते हैं। किन्तु रामनाम के बिना सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? बिना सद्गुरु के भ्रम का नाश नहीं होता ॥ १३ ॥

(हठयोगियों के) नेवली-कर्म, तथा कुण्डलिनी (का उत्थान) एवं (दशम द्वार रूपी) भट्ठी (की प्राप्ति) तथा रेचक कुंभक एवं पूरक (आदि प्राणायाम) तथा मन को हठपूर्वक (निग्रह करने की अन्य क्रियाएँ) (बाह्य क्रियाएँ) हैं। पाखण्डपूर्ण धर्म से हरि से प्रीति नहीं प्राप्त हो सकती गुरु के शब्द से ही महा रस (परमात्म रस) की प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

(हरी की) कुदरत देखने से (और उस पर मनन करने से) मन मान जाता है, (शान्त हो जाता है) । गुरु के शब्द पर (विचार करने से) सभी (घटा) में प्रभु पहचान लिया जाता है। हे नानक सभी (जड़-चेतन) में व्यापक राम है सद्गुरु उस अलक्ष्य (हरी) का दिखा देता है ॥ १५ ॥ ५ ॥ २२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु मारू, वार, महला १,

सलोकु

विणु गाहक गुणु वेचीऐ तउ गुणु सहघो जाइ ।
गुण का गाहकु जे मिलै तउ गुणु लाख विकाइ ॥
गुण ते गुण मिलि पाईऐ जे सतिगुर माहि समाइ ॥

मोलि अमोलु न पाईऐ वणजि न लीजै हाटि ।
नानक पूरा तोलु है कबहु न होवै घाटि ॥१॥

भुली भुली मै फिरी पाधरु कहै न कोइ ॥
पूछहु जाइ सिआणिआ दुखु काटै मेरा कोइ ॥
सतिगुरु साचा मनि वसै साजनु उत ही ठाइ ।
नानक मनु त्रिपतासीऐ सिफती साचै नाइ ॥२॥

महल कुचजी मड़वड़ी काली मनहु कसुध ।
जे गुण होवनि ता पिरु रवै नानक अवगुण मुंध ॥३॥

साचु सील सचु संजमी सा पूरी परवारि ।
नानक अहिनिसि सदा भली पिर कै हेति पिआरि ॥४॥

सलोकु : (यदि) बिना ग्राहक के गुण बेचा जाय तो वह सस्ते में (बिक) जाता है। यदि गुण का कोई (सच्चा) ग्राहक मिल जाय तो वह लाखों में बिकता है। गुणवाले (गुणी) से ही मिलकर गुण की प्राप्ति होती है। (सारे गुण) सद्गुरु में ही समाए होते हैं। वे गुण अमूल्य हैं। (उनका कोई) मूल्य नहीं पा सकता (आँक सकता) और न वे (किसी) हाट

में ही खरीदे जा सकते हैं। हे नानक (गुणों की) तौल पूरी होती है, (इसम) किसी प्रकार घटी नहीं होती ॥ १ ॥

मैं घूमती घूमती फिर रही हूं कोई मुझसे (प्रियतम का) मार्ग नहीं बतलाता है। (मैं) किसी ज्ञानवान (के पास) (जाकर मार्ग पूछूं) (कदाचित उनमें से) कोई मेरे दुःख को काट दे। (जिस सच्चे शिष्य के) मन म सच्चा सद्गुरु निवास करता है, साजन (हरी) भी वहीं (उसके मन में) निवास करता हुआ दिखलाई पड़ता है। हे नानक सच्चे नाम की स्तुति से मन तृप्त कर ॥ २ ॥

शरीर के साथ अपने को एक समझने वाली स्त्री कुचज्जी (बुरे आचरण वाली) मन की कसली और अपवित्र होती है। नानक कहते हैं कि हे मनमुखा से भरी हुई स्त्री (तुझ म) गुण हों, (तभी) (तुझसे) प्रियतम रमण कर सकता है (अन्यथा नहीं) ॥ ३ ॥

हे नानक (जो स्त्री) प्रियतम के निमित्त अहर्निश प्यार करती है (वही) भली है, सच्चे आचरणवाली सच्ची रहनी वाली और परिवार में पूरी उतरने वाली है ॥ ४ ॥

पउड़ी : आपणा आपु पछाणिआ नामु निधानु पाइआ।
किरपा करि कै आपणी गुर सबदि मिलाइआ ॥
गुर की बाणी निरमली हरि रसु पीआइआ।
हरि रसु जिनी चाखिआ अनरस ठाकि रहाइआ ॥
हरि रसु पी सदा त्रिपति भए फिरि त्रिसना भुख गवाइआ ॥१॥

पउड़ी नाम निधान की प्राप्ति म अपने आप (अपने वास्तविक स्वरूप—आत्मा) की पहचान होती है। (प्रभु) अपनी (महती) कृपा करके गुरु के शब्द में मिला देता है। गुरु की वाणी (अत्यन्त) पवित्र होती है (यह) हरि रस को पिला देती है। जिन्होंने हरि-रस का आस्वादन कर लिया है, उनके अन्य रस समाप्त हो जाते हैं। (भक्त-गण) हरि रस पीकर सदैव तृप्त होते हैं तत्पश्चात् (वे अपनी) तृष्णा और क्षुधा नष्ट कर देते हैं ॥ १ ॥

[विशेष उपर्युक्त पउड़ी म 'पछाणिआ' 'पाइआ' 'मिलाइआ' 'पीआइआ', 'चाखिआ', 'रहाइआ' 'गवाइआ' आदि शब्द भूतकाल की क्रिया के हैं परन्तु इनका प्रयोग वर्तमान काल की क्रिया के लिए स्वाभाविक प्रतीत होता है।]

सलोकु ससुरै पेईऐ कंत की कंतु अगंमु अथाहु।
नानक धनु सोहागणी जो भावहि वेपरवाह ॥१॥

सलोकु (जो स्त्री अपने) ससुराल तथा नैहर में अगम, अथाह प्रभु (परमात्मा) की प्यारी होती है) (वह स्त्री धन्य है)। जो स्त्री वेपरवाह (पति परमात्मा) को प्यारी होती है, (वही) धन्य है और वही सुहागिनी है ॥ ५ ॥

पउड़ी : तखति राजा सो बहै जि तखतै लाइक होई।
जिनी सचु पछाणिआ सचु राजे सेई ॥
एहि भूपति राजे न आखीअहि दूजै भाइ दुखु होई।
कीता किआ सालाहीऐ जिसु जादे बिलम न होई
निहचलु सचा एकु है गुरमुखि बूझै सु निहचलु होई ॥२॥

पउड़ी : वही राजा तख्त (सिंहासन) पर बैठता है, जो तख्त के लायक होता है। जिन्होंने सत्य (परमात्मा) को पहचान लिया है सच्चे राजे वे ही हैं। (इन) भूपतियों को राजा नहीं कहना चाहिए, (क्योंकि ये सब) द्वैतभाव में दुःखी होते हैं। प्रभु के बनाए हुए (प्राणी) की क्या प्रशंसा की जाय ? इन (प्राणियों) के नष्ट होने में विलम्ब नहीं होता। सच्चा और एक (हरी ही) निश्चल है गुरु द्वारा (जो इस रहस्य को) समझ लेता है, वह निश्चल हो जाता है ॥ २ ॥

सलोकु
ना सैला ना कुपला ना ममला ना रंगु ।
नानक लालो लालु है सचै रता संगु ॥६॥
हुकमि रजाई साखती दरगह सचु कबूलु ।
साहिबु लेखा मंगसी दुनीआ देखि न भूलु ॥
दिल दरवानी जो करे दरवेसी दिलु रासि ।
इसक मुहबति नानका लेखा करते पासि ॥७॥
अलगउ जोइ मधूकड़उ सारंगपाणि सबाइ ।
हीरै हीरा बेधिआ नानक कंठि सुभाइ ॥८॥

सलोकु : (मेरे ऊपर) न मैला (तमोगुण) न कुपला (रजोगुण) न ममला (सत्वगुण) (और न इनके कारण माया का) कच्चा रंग चढ़ा है हे नानक सच्चे (नाम की) लाली के कारण सच्चा लाल रंग चढ़ा है, (अर्थात् पूर्ण आनन्द प्राप्त है क्योंकि) सत्य से सत्य मिल गया है ॥ ६ ॥

रजा वाले (हरी) के हुक्म में रहने से (हरी से) बन आती है। (हरी के) समीप सत्य ही स्वीकार किया जाता है। (हे प्राणी) दुनिया देखकर मत भूल (क्योंकि) साहब (हरी) (तुमसे कर्मों का) लेखा मांगेगा (तो क्या देगा) ? दिल की (ठीक-ठीक) निगरानी करनी (और उसे) सीधे रास्ते पर ले आना (यही सच्ची) फकीरी है। हे नानक इश्क और मुहब्बत का लेखा (हिसाब) कर्तापुरुष के पास है ॥ ७ ॥

जो (मनुष्य) (सांसारिक पदार्थों से) पृथक् होकर भौंरे की भांति (गुणग्राही होकर) रहता है (वह) सभी में सारंगपाणि (हरी) को देखता है, (उसका मन रूपी) हीरा (नाम रूपी) हीरे से बेधा गया है। हे नानक (हरी रूपी माला) स्वाभाविक ही (उसके हृदय रूपी) कंठ में आ बसती है ॥ ८ ॥

पउड़ी
मनमुख कालु विआपदा मोहि माइआ लागे ।
खिन महि मारि पछाड़सी भाइ दूजै ठागे ॥
फिरि वेला हथि न आवई जम का डंडु लागे ।
तिन जम डंडु न लगई जो हरि लिव जागे ॥
सभ तेरी तुधु छडावणी सभ तुधै लागे ॥९॥

पउड़ी : मोह और माया में लगने के कारण मनमुख (व्यक्ति) को काल व्यापता (सताता) है। द्वैतभाव में लगने (के कारण) (काल उसे) क्षण में पछाड़ देता है। जब यमराज के डंडे (ऊपर) पड़ने लगते हैं (तो) फिर (उससे बचने की) वेला हाथ में नहीं

पाता। जो (व्यक्ति) (हरी के) प्रेम में मस्त हैं, उन्हें यमराज का डंडा नहीं लगता। (हे हरी सारी सृष्टि) तेरी है तू ही (उसे) मुक्त करता है। सभी (कोई) तुझी से युक्त हैं॥ १॥

सलोकु : सरवै जोइ अगछमी दूखु घनेरो आथि।
कालरु लादसि सरु लाघणउ लाभु न पूंजी साथि॥९॥
पूंजी साचउ नामु तू अखुटउ दरबु अपारु।
नानक वखरु निरमलउ धंनु साहु वापारु॥१०॥
पूरब प्रीति पिराणि लै मोटउ ठाकुरु माणि
माथै ऊभै जमु मारसी नानक मेलणु नामि॥११॥

सलोक सभी के मध्य स्थिर रहनेवाले (अगछमी) हरी को देख माया में अत्यधिक दुःख है। (मनमुख अथवा शाक्त व्यक्ति) खारी और निकम्मी मिट्टी (कालर) तो लादे है, किन्तु तरना (चाहता) है समुद्र, (भला यह कैसे सम्भव है) ? साथ में न कोई पूँजी है और न कोई लाभ॥ ९॥

(हे हरी) तेरा सच्चा नाम ही (वास्तविक) पूँजी है (नाम ही) शाश्वत और अपार द्रव्य है। हे नानक (यह) सौदा (वस्तु) निर्मल है। इस धन का साहु (परमात्मा) (और इसका) व्यापार (हरि भक्ति) धन्य है॥ १०॥

(हे साधक), (हरी की) पुरानी प्रीति पहचान और महान्—बड़े ठाकुर (प्रभु) का पूज। हे नानक, नाम में मिलने से (इतनी सामर्थ्य आ जायगी कि) यमराज के भी मुँह के ऊपर मार सकेगा॥ ११॥

पउड़ी आपे पिंडु सवारिओनु विचि नवनिधि नामु।
इकि आपे भरमि भुलाइअनु तिन निहफल कामु॥
इकनी गुरमुखि बुझिआ हरि आतम रामु।
इकनी सुणि कै मंनिआ हरि ऊतम कामु॥
अंतरि हरि रंगु उपजिआ गाइआ हरि गुण नामु॥४॥

पउड़ी : (हे प्रभु तूने) आप ही (मनुष्य के) शरीर की रचना की है और (उस शरीर के) मध्य में नाम रूपी नवनिधि को रखा है। कुछ लोगों को (तूने) आप ही भ्रमित करके भुला रखा है, (ऐसे व्यक्तियों के) समस्त कार्य निष्फल हो जाते हैं। कुछ लोग गुरु के द्वारा आत्मा में रमे हुए हरी को जान लेते हैं। कुछ लोग (श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा) सुन कर यह बात मान लेते हैं कि हरि (की आराधना ही) उत्तम काम है। (सच्चा साधक अन्तःकरण में) हरि-प्रेम उपजने पर, हरि के गुणों का गान करता है॥ ४॥

सलोक भोलतणि भै मनि वसै हेकै पाधर हीडु।
अति डाहपणि दुखु घणो तीने थाव भरीडु॥१२॥
मांदलु बेदि सि बाजणो घणो धड़ीऐ जोइ।
नानक नामु समालि तू बीजउ अवरु न कोइ॥१३॥
सागरु गुणी अथाहु किनि हाथाला देखीऐ।
वडा वेपरवाहु सतिगुर मिलै त पारि पवा॥

पउड़ी : वही राजा तख्त (सिंहासन) पर बैठता है, जो तख्त के लायक होता है। जिन्होंने सत्य (परमात्मा) को पहचान लिया है, सच्चे राजे वे ही हैं। (इन) भूपतियों को राजा नहीं कहना चाहिए, (क्योंकि ये सब) द्वैतभाव में दुःखी होते हैं। प्रभु के बनाए हुए (प्राणी) की क्या प्रशंसा की जाय ? इन (प्राणियों) के नष्ट होने में विलम्ब नहीं होता। सच्चा और एक (हरी ही) निश्चल है। गुरु द्वारा (जो इस रहस्य को) समझ लेता है, वह निश्चल हो जाता है ॥ २ ॥

सलोकु
ना मैला ना धुंधला ना भगवा ना कचु।
नानक लालो लालु है सचै रता सचु ॥६॥

हुकमि रजाई साखती दरगह सचु कबूलु।
साहिबु लेखा मंगसी दुनीआ देखि न भूलु ॥
दिल दरवानी जो करे दरवेसी दिलु रासि।
इसक मुहबति नानका लेखा करते पासि ॥७॥

अलगउ जोइ मधूकड़उ सारंगपाणि सबाइ।
हीरै हीरा बेधिआ नानक कंठि सुभाइ ॥८॥

सलोकु : (मेरे ऊपर) न मैला (तमोगुण) न धुँधला (रजोगुण) न भगवा (सत्वगुण) (और न इनके कारण माया का) कच्चा रंग चढ़ा है, हे नानक सच्चे (नाम की) मस्ती के कारण सच्चा लाल रंग चढ़ा है (अर्थात् पूर्ण आनन्द प्राप्त है, क्योंकि) सत्य में सत्य मिल गया है ॥ ६ ॥

रजा वाले (हरी) के हुक्म में रहने से (हरी से) बन आती है। (हरी के) समीप सत्य ही स्वीकार किया जाता है। (हे प्राणी) दुनिया देखकर मत भूल (क्योंकि) साहब (हरी) (तुम्हारे कर्मों का) लेखा माँगेगा (तो क्या देगा) ? दिल की (ठीक-ठीक) निगरानी करनी (और उसे) सीधे रास्ते पर ले आना (यही सच्ची) कसौटी है। हे नानक इश्क और मुहब्बत का लेखा (हिसाब) कर्त्तापुरुष के पास है ॥ ७ ॥

जो (मनुष्य) (सांसारिक प्रपंचों से) पृथक् होकर भौंरे की भाँति (गुणग्राही होकर) रहता है (वह) सभी में सारंगपाणि (हरी) को देखता है (उसका मन रूपी) हीरा (नाम रूपी) हीरे से बेधा गया है। हे नानक (हरी रूपी माला) स्वाभाविक ही (उसके हृदय रूपी) कंठ में आ बसती है ॥ ८ ॥

पउड़ी
मनमुख कालु विआपदा मोहि माइआ लागे।
खिन महि मारि पछाड़सी भाइ दूजै ठागे ॥
फिरि वेला हथि न आवई जम का डंडु लागे।
तिन जम डंडु न लगई जो हरि लिव जागे ॥
सभ तेरी तुधु छडावणी सभ तुधै लागे ॥९॥

पउड़ी : मोह और माया में लगने के कारण मनमुख (व्यक्ति) को काल व्यापता (ग्रसता) है। द्वैतभाव में ठगे जाने (के कारण) (काल उसे) क्षण में पछाड़ देता है। जब यमराज के डंडे (ऊपर) पड़ने लगते हैं (तो) फिर (उनसे बचने को) वेला हाथ में नहीं

मन भरि दुख न दुख ।
नानक सचे नाम बिनु किसे न लथो दुख ॥१३॥

सलोक : मोलेपन से (हरी का) भय मन मे बसता है (यही) एक रास्ता है, (यही) एक नाम है । (इसमें) अत्यन्त दाहपन (ईर्ष्या जलन) और मना दुःख है (ईर्ष्या और दुख से) तीनों स्थान (मन वाणी और शरीर) भ्रष्ट रहते हैं ॥ १२ ॥

जो (व्यक्ति) (जीवन में) बहुत 'बड़-बड़' करता है (तात्पर्य यह कि जो बहुत बकवास करता है) उसके लिए वेदा में भी नहीं (बकवास का) होम बड़-बड़ बकता (हुआ प्रतीत होता है) हे नानक तू नाम को समझ, (नाम के सिवा) और कुछ दूसरा नहीं है ॥ १३ ॥

(संसार रूपी) सागर, तीनों दुखो से युक्त अथाह है । (उसकी) किस भाँति थाह पाई जाय ? बड़े और बेपरवाह सद्गुरु की (जब) प्राप्ति हो तभी (यह) पार पाया जा सकता है । (संसार के) मध्य दुःख ही दुःख भरा है । हे नानक सच्चे (हरी) के नाम बिना किसी की भी भूख नहीं नष्ट होती ॥ १४ ॥

पउड़ी : जिनी अंदरु भालिआ गुर सबदि सुहावै ।
जो इछनि सो पाइदे हरिनामु धिआवै ॥
जिसनो क्रिपा करे तिसु गुरु मिलै सो हरि गुण गावै ।
धरमराइ तिन का मितु है जम मगि न पावै ।
हरिनामु धिआवहि दिनसु राति हरि नामि समावै ॥५॥

पउड़ी : जिन्होंने गुरु के सुहावने उपदेश द्वारा (अपने) अन्तर्गत (परमात्मा को) खोजा है वे नाम का ध्यान कर, जो कुछ इच्छा करते हैं पा लेते हैं । जिसके ऊपर (परमात्मा) कृपा करता है, उसी को गुरु प्राप्त होता है और वही हरि के गुण गाता है । धर्मराज उनका मित्र हो जाता है (और वे) यम का मार्ग नहीं पाते हैं । (वे) अहर्निश हरिनाम का ध्यान करते हैं और अन्त में (उसी) हरिनाम में समा जाते हैं ॥ ५ ॥

सलोकु मः १ सुणीऐ एकु वखाणीऐ सुरगि मिरति पइआलि ।
हुकमु न जाई मेटिआ जो लिखिआ सो नालि ॥
कउणु मूआ कउणु मारसी कउणु आवै कउणु जाइ ।
कउणु रहसी नानका किस की सुरति समाइ ॥१४॥
हउ मुआ मै मारिआ पउणु वहै दरीआउ ।
त्रिसना थकी नानका जा मनु रता नाइ ॥
लोइण रते लोइणी कंनी सुरति समाइ ।
जीभ रसाइणि चूनड़ी रती लाल लवाइ ॥
अंदरु मुसकि झकोलिआ कीमति कही न जाइ ॥१६॥

सलोक : स्वर्गलोक, मृत्युलोक (और) पाताललोक में (एक हरी) सुना जाता है (और उसी का) वर्णन होता है । (उस हरी का) हुक्म मेटा नहीं जा सकता (उसका) लिखा जो कुछ भी होता है, वह साथ होता है । कौन मरता है और कौन मारता है ? कौन

आता है (जन्म लेता है) और कौन जाता है (मरता है) ? कौन हर्षित होता है और किसकी सुरति (हरी में) समाती है ? ॥ १५ ॥

(जीव) अहंभाव से मरता है और ममता (उसे) मारती है, और स्वास (प्राणवायु) नदी (के समान) चलती है। हे नानक जब मन (हरी के) नाम में अनुरक्त हो जाता है, तो तृष्णा शान्त हो जाती है, (समाप्त हो जाती है)। आँखें नेत्रवाले हरी में और (उसकी) सुरति नेत्रों में समा जाती है (तात्पर्य यह कि मनुष्य की सुरति कानों द्वारा हरी के यश श्रवण में लीन हो जाती है)। जीभ नाम-रसायन को चुगनेवाली है और नामजप कर तथा प्यारे में (अनुरक्त होकर) लाल हो जाती है। (इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है—प्रियतम (लाल) के नाम-स्मरण में जीभ चुनरी की भाँति रङ्ग गई है और रस का घर हो गई है); (इसका तीसरा अर्थ यह भी हो सकता है, जीभ नाम रूपी रसायन में पककर चुन्नी (रत्न) हो गई है, यह स्वयं तो नाम में रँगी ही है, दूसरों को भी नाम में लगाती है)। हृदय सुगन्ध में डूब गया है और उसकी कीमत कही नहीं जा सकती ॥ १६ ॥

पउड़ी　　इसु जुग महि नामु निधानु है नामो नालि चलै।
एहु अखुटु कदे न निखुटई खाइ खरचउ पलै॥
हरिजन नेड़ि न आवई जम ककर जम कलै।
से साह सचे वणजारिआ जिन हरि धनु पलै॥
हरि किरपा ते हरि पाईऐ जा आपि हरि घलै॥६॥

पउड़ी : इस युग में (कलियुग में) नाम ही (समस्त गुणों का) भाण्डार है और नाम ही (मनुष्य के) साथ (अन्त में) जाता है, (तात्पर्य यह कि अन्तिम समय में नाम ही साथी होता है)। (नाम) अक्षय है, (यह) खाने-खरचने पर कभी समाप्त नहीं होता (और सदैव) पल्ले (बना रहता है)। यमदूत तथा यमकाल हरि के भक्त के निकट नहीं आते जिनके पल्ले हरि धन है, वे ही सच्चे साहूकार और व्यापारी हैं। हरी की कृपा से जब प्रभु (आनन्द में) मिला दे तभी उसकी प्राप्ति होती है॥ ६ ॥

सलोकु :　　हउमै करी ता तू नाही तू होवहि हउ नाहि।
बूझहु गिआनी बूझणा एहु अकथ कथा मन माहि॥
बिनु गुर ततु न पाईऐ अलखु वसै सभ माहि।
सतिगुरु मिलै त जाणीऐ जां सबदु वसै मन माहि
आपु गइआ भ्रमु भउ गइआ जनम मरन दुख जाहि।
गुरमति अलखु लखाईऐ ऊतम मति तराहि॥
नानक सोहं हंसा जपु जापहु त्रिभवण तिसै समाहि॥१७॥
जिनि कीआ तिनि देखिआ आपे जाणै सोइ।
किसनो कहीऐ नानका जा घरि वरतै सभु कोइ॥१८॥

सलोक : (हे हरी), (यदि) अहंकार करता हूँ तो तू नहीं प्राप्त होता (और यदि) तू प्राप्त हो जाता है तो अहंभाव नहीं रह जाता। हे ज्ञानी इस अकथनीय बात को मन में समझने की चेष्टा करो। यद्यपि अलख (परमात्मा) सभी (जड़-चेतन) में व्याप्त है, (किन्तु) बिना गुरु के यह तत्त्व पाया नहीं जाता। यदि सद्गुरु प्राप्त हो, और उसका शब्द मन में बस

जाय, तभी इस तत्त्व का जाना जा सकता है। अपनापन नष्ट हो जाने से भय और भ्रम तथा जन्म-मरण के दुःख नष्ट हो जाते हैं। गुरु के द्वारा अलक्ष्य (हरी) देखा जाता है, (गुरु द्वारा दी गई) उत्तम बुद्धि से ही (संसार-सागर) तरा जाता है। नानक कहते हैं कि हे हंस (जीवात्मा) सोऽहं (मैं वही हूँ) का जप कर, इसी में तीनों लोक समाए हुए हैं।

जिस (हरी) ने (यह संसार) बनाया है वही (इसकी) देखभाल करता है। जब सब कुछ (अपने) भीतर ही बरतता है, तो हे नानक अन्य किसमें (क्या) कहा जाय? ॥ १८ ॥

पउड़ी

सभे थोक विसारि इको मितु करि।
मनु तनु होइ निहालु पापा दहै हरि॥
आवण जाणा चुकै जनमि न जाहि मरि॥
सचु नामु आधारु सोगि न मोहि जरि॥
नानक नामु निधानु मन महि संजि धरि॥७॥

पउड़ी सारे पदार्थों को भुला कर एक (हरी) को ही मित्र बना। हरी (समस्त) पापों को जला डालता है (जिस कारण हे प्राणी तू) तन और मन से निहाल हो जायगा। (तेरे) आवागमन भी समाप्त हो जायँगे और जन्म धारण कर (फिर) नहीं मरोगे। हे प्राणी तू सत्य (हरी) के नाम का आश्रय ग्रहण कर (जिससे) शोक और मोह में दग्ध न हो। हे नानक नाम रूपी निधान को मन में संग्रह करके रख ॥ ७ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु तुखारी, महला १, बारहमाहा

छंत

[१]

तू सुणि किरत करंमा पुरबि कमाइआ ।
सिरि सिरि सुख सहंमा देहि सु तू भला ॥
हरि रचना तेरी किआ गति मेरी हरि बिनु घड़ी न जीवा ।
प्रिअ बाझु दुहेली कोइ न बेली गुरमुखि अंम्रितु पीवां ॥
रचना राचि रहे निरंकारी प्रभ मनि करम सुकरमा ।
नानक पंथु निहाले साधन तू सुणि आतमरामा ॥१॥

बाबीहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीआ ।
साधन सभि रस चोलै अंकि समाणीआ ॥
हरि अंकि समाणी जा प्रभ भाणी सा सोहागणि नारे ।
नव घर थापि महल घरु ऊचउ निज घरि वासु मुरारे ॥
सभ तेरी तू मेरा प्रीतमु निसि बासुर रंगि रावै ।
नानक प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा कोकिल सबदि सुहावै ॥२॥

तू सुणि हरि रस भिंने प्रीतम आपणे ।
मनि तनि रवत रवंने घड़ी न बीसरै ॥
किउ घड़ी बिसारी हउ बलिहारी हउ जीवा गुण गाए ।
ना कोई मेरा हउ किसु केरा हरि बिनु रहणु न जाए ॥
ओट गही हरि चरण निवासे भए पवित्र सरीरा ।
नानक द्रिसटि दीरघ सुखु पावै गुरसबदी मनु धीरा ॥३॥

बरसै अंम्रित धार बूंद सुहावणी ।
साजन मिले सहजि सुभाइ हरि सिउ प्रीति बणी ॥

हरि मंदरि आवै जा प्रभ भावै धन ऊभी गुण सारी ।
घरि घरि कंतु रवै सोहागणि हउ किउ कंति विसारी ॥
उनवि घन छाए बरसु सुभाए मनि तनि प्रेमु सुखावै ।
नानक वरसै अंम्रित बाणी करि किरपा घरि आवै ॥४॥

चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े ।
बन फूले मंझ बारि मै पिरु घरि बाहुड़ै ॥
पिरु घरि नही आवै धन किउ सुखु पावै बिरहि बिरोध तनु छीजै ।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै ॥
भवरु भवंता फूली डाली किउ जीवा मरु माए ।
नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरि वरु घरि धन पाए ॥५॥

वैसाखु भला साखा वेस करे ।
धन देखै हरि दुआरि आवहु दइआ करे ॥
घरि आउ पिआरे दुतर तारे तुधु बिनु अढु न मोलो ।
कीमति कउण करे तुधु भावां देखि दिखावै ढोलो ॥
दूरि न जाना अंतरि माना हरि का महलु पछाना ।
नानक वैसाखीं प्रभु पावै सुरति सबदि मनु माना ॥६॥

माहु जेठु भला प्रीतम किउ बिसरै ।
थल तापहि सर भार सा धन बिनउ करै ॥
धन बिनउ करेदी गुण सारेदी गुण सारी प्रभ भावा ।
साचै महलि रहै बैरागी आवण देहि त आवा ॥
निमाणी निताणी हरि बिनु किउ पावै सुख महली ।
नानक जेठि जाणै तिसु जैसी करमि मिलै गुण गहिली ॥७॥

आसाड़ु भला सूरजु गगनि तपै ।
धरती दूख सहै सोखै अगनि भखै ॥
अगनि रसु सोखै मरीऐ धोखै भी सो किरतु न हारे ।
रथु फिरै छाइआ धन ताकै टीडु लवै मंझि बारे ॥
अवगण बाधि चली दुखु आगै सुखु तिसु साचु समाले ।
नानक जिस नो इहु मनु दीआ मरणु जीवणु प्रभ नाले ॥८॥

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए ।
मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ॥
पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए ।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए ॥
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ।
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए ॥९॥

भादउ भरमि भुली भरि जोबनि पछुताणी ।
जल थल नीरि भरे बरस रुते रंगु माणी ॥
बरसै निसि काली किउ सुखु बाली दादर मोर लवंते ।
प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा बोले भुइअंगम फिरहि डसंते ॥
मछर डंग साइर भर सुभर बिनु हरि किउ सुखु पाईऐ ।
नानक पूछि चलउ गुर अपुने जह प्रभ तह ही जाईऐ ॥१०॥

असुनि आउ पिरा साधन झूरि मुई ।
ता मिलीऐ प्रभ मेले दूजै भाइ खुई ॥
झूठि विगुती ता पिर मुती कुकह काह सि फुले ।
आगै घाम पिछै रुति जाडा देखि चलत मनु डोले ॥
दह दिसि साख हरी हरीआवल सहजि पकै सो मीठा ।
नानक असुनि मिलहु पिआरे सतिगुर भए बसीठा ॥११॥

कतकि किरतु पइआ जो प्रभ भाइआ ।
दीपकु सहजि बलै तति जलाइआ ॥
दीपक रस तेलो धन पिर मेलो धन ओमाहै सरसी ।
अवगण मारी मरै न सीझै गुणि मारी ता मरसी ॥
नामु भगति दे निज घरि बैठे अजहु तिनाड़ी आसा ।
नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खटु मासा ॥१२॥

मंघर माहु भला हरि गुण अंकि समावए ।
गुणवंती गुण रवै मै पिरु निहचलु भावए ॥
निहचलु चतुरु सुजाणु बिधाता चंचलु जगतु सबाइआ ।
गिआनु धिआनु गुण अंकि समाणे प्रभ भाणे ता भाइआ ।
गीत नाद कवित कवे सुणि राम नामि दुखु भागै ।
नानक साधन नाह पिआरी अभ भगती पिर आगै ॥१३॥

पोखि तुखारु पड़ै वणु त्रिणु रसु सोखै ॥
आवत की नाही मनि तनि वसहि मुखे ॥
मनि तनि रवि रहिआ जगजीवनु गुरसबदी रंगु माणी ।
अंडज जेरज सेतज उतभुज घटि घटि जोति समाणी ॥
दरसनु देहु दइआपति दाते गति पावउ मति देहो ।
नानक रंगि रवै रसि रसीआ हरि सिउ प्रीति सनेहो ॥१४॥

माघि पुनीत भई तीरथु अंतरि जानिआ ।
साजन सहजि मिले गुण गहि अंकि समानिआ ॥
प्रीतम गुण अंके सुणि प्रभ बंके तुधु भावा सरि नावा ।
गंग जमुन तह बेणी संगम सात समुंद समावा ॥

पुं न दान पूजा परमेसुर जुगि जुगि एको जाता ।
नानक माघि महारसु हरि जपि अठसठि तीरथ नाता ॥१५॥

फलगुनि मनि रहसी प्रेमु सुभाइआ ।
अनदिनु रहसु भइआ आपु गवाइआ ॥
मन मोहु चुकाइआ जा तिसु भाइआ करि किरपा घरि आओ ।
बहुते वेस करी पिर बाझहु महली लहा न थाओ ॥
हार डोर रस पाट पटंबर पिरि लोड़ी सीगारी ।
नानक मेलि लई गुरि अपणै घरि वरु पाइआ नारी ॥१६॥

बेदस माह रुती थिती वार भले ।
घड़ी मूरत पल साचे आए सहजि मिले ॥
प्रभ मिले पिआरे कारज सारे करता सभ बिधि जाणै ।
जिनि सीगारी तिसहि पिआरी मेलु भइआ रंगु माणै ।
घरि सेज सुहावी जा पिरि रावी गुरमुखि मसतकि भागो ।
नानक अहिनिसि रावै प्रीतमु हरि वरु थिरु सोहागो ॥१७॥१॥

(हे हरी), तू तुम (अपने) पिछले कमाए हुए कर्मों की किरत (कमाई) के अनुसार प्रत्येक जीव सुख (अथवा दुःख) सहता है जो तू दे वही भला है। हे हरी (यह सब) तेरी रचना है इसमें मेरी क्या गति हो सकती है ? बिना हरी के (जीवात्मा रूपी स्त्री) एक घड़ी भी नहीं जी सकती। बिना प्रियतम के (स्त्री) दुःखी रहती है, (उसका) कोई सहायक नहीं (होता)। (मैं तो) गुरु के द्वारा अमृत पीती हूँ। निरंकार (हरी) की रचना में (जीव मात्र) रमे हुए हैं (पर वास्तव में) हरी जी को मन में बसाना सबसे उत्तम कर्म है। नानक कहता है कि हे परमात्मा (हरी) तू तुम (जीवात्मा रूपी) स्त्री तेरा पथ निहार रही है ॥ १ ॥

(चित्त रूपी) पपीहा 'पी पी' बोलता है (और जीभ रूपी) कोयल प्यार की बोली बोलती है। (जो स्त्री) (पति के) अंक में बसी है वह सभी रसों को भोगती है। जो (स्त्री) प्रभु को अच्छी लगती है, वही हरी के अंक में समाती है वही सुहागिनी स्त्री है। (वह स्त्री) भी नौ घरों (दो कान, दो नासिका-रन्ध्र, दो आँखें, एक मुख, एक लिंग-द्वार, एक गुदा द्वार) (वाले शरीर को) पति का ऊँचा महल बना कर, (और वहाँ) अपने आत्मरूपी घर में हरी का निवास देखती है। हे प्रियतम (हरी) नारी (जीवात्मा रूपी स्त्री) तेरी है तू मेरा है। (मैं) (तेरे साथ) अहर्निश आनन्द मनाती हूँ। नानक कहता है कि (हे प्रियतम हरी) (चित्त रूपी) पपीहा 'पी-पी' बोलता है (और जीभ रूपी) कोयल (प्यार की) सुर से सुशोभित होती है ॥ २ ॥

अपने प्रियतम के हरि-रस में भीगे हुए तथा जिसके तन, मन में (वह हरी) रमा हुआ है और एक घड़ी भी नहीं भूलता (बिसरता) हार (भावार्थ मेरा हाथ) गुरु। (मैं) उस प्रियतम को एक घड़ी भी क्यों बिसराऊँ ? मैं (उसके ऊपर) न्यौछावर हूँ मैं उसका गुणगान करके ही जीवित हूँ। मैंने हरी के चरणों की शरण ग्रहण की है, (और उसी में समाया)

निवास (बनाया है) (इसी कारण) मेरा शरीर पवित्र हो गया है। नानक (का कथन है कि प्रभु की कृपा)—दृष्टि से महत् सुख की प्राप्ति हुई है और गुरु के उपदेश में मन टिक गया है ॥ ३ ॥

(परमात्मा के प्रेम रूपी) अमृत-धार की वर्षा होती है (उस अमृत-वर्षा की) बूंदें (बड़ी) सुहावनी होती हैं। (गुरु रूपी) मित्र (मुझे) सहज भाव में प्राप्त हो गए हैं, (जिससे) हरी से (गहरी) प्रीति (जुड़) गई है। जब प्रभु को रुचता है तभी हरी (हृदय रूपी) मन्दिर में आता है (और उस समय जीवात्मा रूपी) स्त्री खड़ी होकर (तत्पर होकर) गुणों को सम्हालती है, (स्मरण करती है)। घर-घर में (वह) प्रियतम (हरी) सुहागिनियों को भोगता है फिर मुझे उस कंत ने क्यों भुला दिया है ? झुक कर बादल छाए हैं सुन्दर वर्षा हो रही है (मेरे) तन और मन में प्रेम सुख दे रहा है। हे नानक, अमृत-वाणी की वर्षा हो रही है, (वह हरी) कृपा करके (हृदय रूपी) घर में आ बसा है ॥ ४ ॥

चैत में बसन्त (कितना सुहावना लगता है) भौंरों की गुंजार भी (बड़ी) सुहावनी है। वनों में वनराजि फूल पड़ती है, (यदि) मेरे घर प्रियतम आ जाय (तो वह भी फूल उठे), (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार बसन्त के आगमन से वनों में वनराजि फूल उठती है उसी प्रकार यदि मेरा प्रियतम मेरे घर में आ जाय तो आनन्द-मंगल हो जाय)। (यदि) प्रियतम घर नहीं लौटता तो स्त्री कैसे सुख पा सकती है ? विरह के विरोध (संघर्ष) में (उसका) शरीर (निरन्तर) छीजता रहता है। आमराइयों में कोयल सुहावनी बोली बोलती है, (भला वियोग का) दुःख मन (हृदय) में कैसे सहा जाय ? (बिना प्रियतम के बाह्य प्रकृति के उल्लास नारी के हृदय में वेदना का संचार करते हैं)। फूली हुई डालियों में भँवरा चक्कर लगा रहा है (हे मेरी) माँ, (यह तो) मौत है (मैं) किस प्रकार जीवित रहूँ ? हे नानक, (यदि) चैत में स्त्री अपने पति को घर में पा जाय (तो उसे) सहज सुख की प्राप्ति हो जाय ॥ ५ ॥

बैसाख (महीना बहुत) अच्छा है (इस महीने में) (वृक्षों की) शाखाएँ (नूतन) वेश बनाती हैं, (अर्थात् फूलती-फलती हैं)। स्त्री (अपने) द्वार (पर खड़ी होकर, प्रियतम) हरी की प्रतीक्षा करती है (और कहती है) "हे प्रियतम दया करके (अब) घर आ जा और इस दुस्तर (संसार-सागर) को पार करो बिना मेरा कौड़ी (मात्र) भी मूल्य नहीं है। किन्तु (यदि मैं) तुम्हें अच्छी लगूँ तो मेरी कीमत कौन पा सकता है ? (कोई प्रेम प्रियतम हरी को स्वयं) देख कर (मुझे) दिखाए। (हे प्रभु) मैं तुम्हें दूर नहीं जानती (अपने) अंतर्गत ही मानती हूँ (इसी से मैंने) हरि का निवास-स्थान (महल) पहचान लिया है।" हे नानक, (इस प्रकार) बैसाख में (सुहागिनी स्त्री का) प्रभु अच्छा लगता है (जब प्रभु की) सुरति और शब्द में (युक्त होकर) मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) ॥ ६ ॥

जेठ के सुन्दर (महीने) में (भला) प्रियतम किस प्रकार भूले ? (सारा) संसार (स्थल) भाड़ के समान तप रहा है। स्त्री (अपने प्रियतम से) विनय करती है। स्त्री (परमात्मा के) गुणों को स्मरण करती हुई विनती करती है कि हे प्रभु मैं तेरे गुणों को याद करती हूँ

ताकि (मैं तुझे) अच्छी लगूं । निर्मल (हरी) अपने महल में निवास करता है, (यदि वह अपने महल में) बुलाये, तो जाऊं । हरी के बिना मैं मान-विहीन और शक्ति-रहित हूँ (बिना हरी के जीवात्मा रूपी स्त्री उसके) मुख के महलों में कैसे सुख पा सकती है ? हे नानक, जेठ में (उस प्रभु के) जानने से (जीवात्मा रूपी) उसी के समान हो जाती है । (परमात्मा की) कृपा द्वारा (हरी) प्राप्त होता है, (और जीवात्मा रूपी स्त्री) गुणों को ग्रहण करने वाली (बन जाती है) ॥ ७ ॥

आषाढ़ (के) भले (महीने) में सूर्य आकाश में तपता है । (और उसकी तपन से) पृथ्वी दुःख सहन करती है, (निरन्तर) सूखती है और आग के समान तपती है । अग्नि (रूपी सूर्य) जल (रस) को सुखाता है, (बेचारा जल) झुलस-झुलस कर मरता है, (फिर भी निर्मोही सूर्य का) काम जारी है—(वह अपने जलानेवाले स्वभाव से बाज नहीं आता) । (इस सूर्य का) रथ (निरन्तर) फिरता रहता है और स्त्री (गर्मी से रक्षा पाने के लिए) छाया ताकती फिरती है, जंगल में टिड्डे (वृक्ष के नीचे) 'ची ची' शब्द करते रहते हैं, (भावार्थ यह कि टिड्डे पानी के लिए तड़पते रहते हैं) । (जो जीवात्मा रूपी स्त्री इस संसार में) अवगुणों (की पोटली) बाँध कर चलती है (उसे) आगे (परलोक में) दुःख मिलता है । सुख उसी को प्राप्त होता है (जो) सत्य को समझती है । हे नानक जिस (प्रभु) ने इस मन को दिया है उसी प्रभु के साथ जीवन और मरण (दोनों ही) है ॥ ८ ॥

सावन में (वर्षा) ऋतु आ गई है, बादल बरस रहे हैं, (हे मेरे मन) प्रसन्न हो । मेरे तन मन को प्रियतम अच्छे लगते हैं (किन्तु मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर) परदेश चले गए हैं । (मेरे) प्रियतम घर नहीं आ रहे हैं, (मैं) शोक में मर रही हूँ बिजली चमक कर डरा रही है । (मैं अकेली) सेज पर अकेली हूँ और अत्यधिक दुःखी हूँ । हे माँ यह दुःख मरण (के समान) हो गया है (भला) कहो, हरी के बिना कैसी भूख और नींद ? शरीर पर वस्त्र भी सुन्दर नहीं प्रतीत होते । हे नानक जो (स्त्री) प्रियतम के अंक में समा जाती है, वही सुहागिनी है (और उसके गर्भ में) कंत वाली (कोंपल) है ॥ ९ ॥

भादों (के महीने) में (स्त्री) यौवन से भरी है और भ्रम में पड़ कर भूल गई है (जिससे) पछता रही है । जलाशयों और स्थलों में जल भर गया है । (इस) ऋतु में वर्षा हो रही है (और लोग) रंग मना रहे हैं । अँधेरी (काली) रात्रि में वर्षा हो रही है (भला बिना प्रियतम के ऐसे समय में) स्त्री को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? मेढक और मोर बोल रहे हैं । पपीहा 'पी पी' कह कर बोल रहा है । साँप (अर्धांगिनी को) डसने फिरते हैं । मच्छर डंक मारते हैं (काटते हैं) सरोवर लबालब भरे हैं (ऐसे समय में स्त्री) बिना (प्रियतम) हरी के कैसे सुख पा सकती है ? हे नानक अपने गुरु से पूछ कर (हरी के मार्ग की ओर) चलो जहाँ प्रभु हो वहीं जाओ ॥ १० ॥

आश्विन (का महीना आ गया) प्रियतम (घर तो) आ जा (तेरी) स्त्री (तेरे) वियोग में) क्षय हो कर मर रही है । (जीवात्मा रूपी स्त्री प्रियतम हरी से) तभी मिलती है, जब प्रभु (स्वयं कृपा करके) मिलाता है, (वह) द्वैतभाव में नष्ट हो जाती है । झूठे (माया) में (पड़कर वह जीवात्मा रूपी स्त्री) नष्ट होती है और अपने प्रियतम (हरी) के

द्वारा त्याग दी जाती है। खोकफलो और काम आदि फूल गए हैं (उपयुक्त फूलों का पत्तन होता है, तात्पर्य यह कि जवानी गई, वृद्धावस्था आ पहुँची और काले बाल श्वेत हो गए)। आगे-आगे तो धूप (उष्णता चली जा रही है) और पीछे-पीछे जाड़े की ऋतु (चली आ रही है)। (इस) परिवर्तन को देखकर मन डरता है। दसों दिशाओं में शाखाएँ हरी-हरी (दिखाई पड़ रही हैं) (प्रत्येक स्थान में) हरियाली (दिखाई पड़ती है)। (वृक्षों में लगे हुए फल) सहज भाव से पक कर मीठे हो रहे हैं। नानक कहते हैं कि हे प्रियतम आश्विन के महीने में मिलो (अब तो मेरे और तुम्हारे बीच) मध्यस्थ सद्गुरु हो गए हैं॥ ११॥

कार्तिक में उसी को फल प्राप्त होता है जो (उस) प्रभु को अच्छा लगता है। वही दीपक सहज भाव से जलता है, जो ज्ञान-तत्त्व से जलाया जाता है। (उस) दीपक में प्रेम (रस) का तेल है (उस दीपक के प्रकाश में) स्त्री और पति—जीवात्मा और परमात्मा का मिलाप होता है, (और फिर जीवात्मा रूपी स्त्री) मिलन के उत्साह से आनन्दित हो जाती है। पापों की मारी हुई (जीवात्मा रूपी स्त्री) मर कर मुक्त नहीं होती गुणों से ही मारी जाकर (वह) मुक्त होती है। (हे प्रभु) जिन्हें तू नाम और भक्ति देता है, वे अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूप) में बैठते हैं और उन्हें निरन्तर तेरी आशा लगी रहती है। नानक कहते हैं कि हे प्रभु अपने (मायिक) कपाट के दरवाजे को खोल कर मिलो (अब तो विरह इतना तीव्र हो रहा है कि) एक घड़ी छः महीने के समान हो गई है॥१२॥

(यदि) हरि के गुण हृदय में बसा जाएँ (तो) अगहन का महीना बहुत अच्छा (हो जाय)। गुणवती (स्त्री) गुणस्वरूप (हरी) का स्मरण करती है, (काश कि) मुझे भी निश्चल हरी प्यारा लगता (और मैं भी उसे स्मरण करती)। विधाता (कर्तापुरुष) ही निश्चल चतुर और सुजान है, (अन्य) समस्त जगत् चंचल (और नश्वर) है। (जब) प्रभु की इच्छा—मर्जी होती है (तभी साधक के) हृदय में ज्ञान ध्यान (तथा अन्य दैवी) गुण आ बसते हैं (और वह प्रभु को) प्रिय लगता है। कवियों (के समीप) (मैंने) गीत, संगीत-नाद (एवं अनेक प्रकार की) कविताएँ सुनीं (किन्तु उनसे कुछ भी न हुआ) (अन्त में) राम नाम सुनने से मेरा दुःख समाप्त हो गया। हे नानक (जो) स्त्री पति में आन्तरिक भक्ति करती है वही स्वामी को प्यारी होती है॥१३॥

पौष (के महीने) में तुषार पड़ता है, वन (के वृक्षों) और तृणों का रस सूख जाता है। (हे प्रभु तू मेरे) तन मन तथा मुख में बसा हुआ है (फिर) क्यों नहीं (मेरे समीप) आता ? (प्रभु ही) तन और मन में रम रहा है (वही) जगत् का जीवन है गुरु के शब्द द्वारा (इस वस्तु के साक्षात्कार से) आनन्द प्राप्त होता है। अंडज जेरज अथवा सेतज स्वेदज तथा उद्भिज (आदि चारों खानियों) के प्रत्येक घट में (हरी की अगम्य और अलख) ज्योति व्याप्त हो रही है। हे दयापति हे दाता (अपना दिव्य) दर्शन (मुझे) दे तथा (ऐसी) मति—बुद्धि प्रदान कर कि (मैं) (शुभ) गति पा जाऊँ। हे नानक जिसे हरि से प्रीति और स्नेह हो गया है (वह जीवात्मा रूपी स्त्री) रस की रसिक (हरी को प्रेम से भोगती है॥१४॥

माघ में ज्ञान-तीर्थ को अपने अन्तर्गत ही जान कर (मैं) पवित्र हो गई। सहज भाव में (मुझे) साजन मिल गए (उनके) गुणों को ग्रहण करके (मैंने) अपने अन्तःकरण में धारण कर लिया। हे श्रेष्ठ (बड़े) प्रभु सुन (मैंने) प्रियतम के गुणों को (गा के) अंग—

रूपी सूर्य और शीतलता रूपी चंद्रमा उदय हो जाते हैं)। सच्चे मुख से (हरी का नाम ले) और सच्चे मन से (हरी का) ध्यान कर। नानक कहता है कि हे मूर्ख तू अब भी नहीं सचेत होती (भला) द्वैतभाव से सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? ॥२॥

(आयु रूपी रात्रि का) तीसरा प्रहर हो गया (अज्ञान रूपी) नींद व्याप्त हो गई है। पुत्र और स्त्री की माया में दुःख संतप्त कर रहा है। (मनुष्य) धन पुत्र और स्त्री तथा जगत के प्रिय (लोभ रूपी) चारे को चुगता है और नित्य उसमें फँसता जाता है। (जब मनुष्य हरी के) नाम का ध्यान करता है (उसे) तभी सुख प्राप्त होता है, गुरु की युक्ति द्वारा (साधक को) काल नहीं ग्रसता। (जब तक मनुष्य हरी के नाम का ध्यान नहीं करता) (तब तक उसे) जन्म मरण एवं काल नहीं छोड़ते हैं (इस प्रकार) बिना नाम के (मनुष्य) संतप्त होता रहता है। नानक कहता है (कि आयु के) तीसरे (प्रहर में) संसार की त्रिगुणात्मक (माया) एवं मोह व्याप्त हो गए हैं ॥३॥

(आयु रूपी रात्रि का) चौथा प्रहर आ पहुँचा (तात्पर्य यह कि आयु समाप्त होने को आ गई) दिन का प्रकाश (आ गया)। जो सदैव (ज्ञान में) जगता है, (वह) अपने (वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर की रक्षा कर लेता है। (जो साधक) गुरु से (ज्ञान) पूछ कर (उसमें) जगता है और नाम में लग जाता है, उसकी (जीवन रूपी) रात्रि सुखदायिनी (हो जाती है)। ऐसे लोग गुरु के शब्द की कमाई करते हैं। (वे) जन्म धारण कर, (फिर इस संसार में) नहीं आते। उनका स्वामी प्रभु हरि (स्वयं) हो जाता है। (आयु के अंतिम प्रहर में) हाथ-पैर तथा (समस्त) शरीर काँपने लगता है, नेत्र अंधे हो जाते हैं और शरीर भस्म (के समान कान्तिहीन) हो जाता है। हे नानक बिना हरि के मन में बसे, (संसार के प्राणी) चारों युगों में दुःखी रहते हैं ॥४॥

(पाप-पुण्य के) लेखे की गाँठ खुल गई (और परमात्मा का) हुक्म आ पहुँचा कि चलो। इसमें (अर्थात् छः प्रकार के) रस (तथा जीवन के अन्य) सुख समाप्त हो गए, (संसार के मोहग्रस्त प्राणी यमदूतों द्वारा) बाँध कर चलाये जाते हैं। प्रभु के आदेशानुसार (ऐसे प्राणी) बाँध कर चलाये जाते हैं। (ऐसी दशा में जीव) न तो देखता है और न सुनता है। सभी की (इस संसार से चलने की) बारी आती है पकी खेती काट ही ली जाती है। (हरी) घड़ी मुहूर्त का हिसाब लेता जीव को भले-बुरे को सहन करना होगा। हे नानक, (हरी ने) सुर-नर (भाव महात्माओं) को शब्द द्वारा अपने में मिला लिया है (उस प्रभु ने) ऐसा नाटक रचा है ॥५॥२॥

[३]

तारा चड़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम।
सेवक पूर करंमा सतिगुरि सबदि दिखालिआ राम॥
गुर सबदि दिखालिआ सचु समालिआ अहिनिसि देखि बीचारिआ।
धावत पंच रहे घरु जाणिआ कामु क्रोधु बिखु मारिआ॥
अंतरि जोति भई गुर साखी चीने राम करंमा।
नानक हउमै मारि पतीणे तारा चड़िआ लंमा॥१॥

गुरमुखि जागि रहे चूकी अभिमानी राम ।
अनदिनु भोरु भइआ साचि समानी राम ॥
साचि समानी गुरमुखि मनि भानी गुरमुखि साबतु जागे ।
साचु नामु अम्रितु गुरि दीआ हरि चरनी लिव लागे ॥
प्रगटी जोति जोति महि जाता मनमुखि भरमि भुलाणी ।
नानक भोरु भइआ मनु मानिआ जागत रैणि विहाणी ॥२॥

अउगुण वीसरिआ गुणी घरु कीआ राम ।
एको रवि रहिआ अवरु न बीआ राम ॥
रवि रहिआ सोई अवरु न कोई मनही ते मनु मानिआ ।
जिनि जल थल त्रिभवण घटु घटु थापिआ सो प्रभु गुरमुखि जानिआ ॥
करण कारण समरथ अपारा त्रिबिधि मेटि समाई ।
नानक अवगण गुणह समाणे ऐसी गुरमति पाई ॥३॥

आवण जाण रहे ,चूका भोला राम ।
हउमै मारि मिले साचा चोला राम ।
हउमै गुरि खोई परगटु होई चूके सोग संतापै ।
जोती अंदरि जोति समाणी आपु पछाता आपै ॥
पेईअड़ै घरि सबदि पतीणी साहुरड़ै पिर भाणी ।
नानक सतिगुरि मेलि मिलाई चूकी काणि लोकाणी ॥४॥३॥

प्रकाश स्वरूप हरी सब को प्रकाशित कर रहा है वह किस प्रकार देखा जाय ? [संझा तारा—सांझ तारा जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है] । जब सेवक पूरे कर्मोंवाला (भाग्य वाला) हो तो सद्गुरु अपने शब्द द्वारा वह तारा (आत्मप्रकाश) दिखा देता है । गुरु द्वारा शब्द दिखाने पर (साक्षात्कार कराने पर), सत्य पहचान लिया जाता है और अहर्निश देख कर विचार किया जाता है । पंच ज्ञानेन्द्रियाँ दौड़ने से समाप्त हो जाती हैं और (अपना वास्तविक) घर पहचान लिया जाता है तथा काम-क्रोध के विष मर जाते हैं । गुरु की शिक्षा द्वारा आन्तरिक ज्योति प्रकट हो जाती है और राम के (प्यारे) कर्म जान लिये जाते हैं । हे नानक अहंकार को मार कर (साधक) तृप्त हो जाता है प्रकाशस्वरूप हरी सब को प्रकाशित कर रहा है ॥१॥

[उपर्युक्त पद में 'दिखालिआ' 'वीचारिआ' 'मारिआ' आदि क्रियाएँ भूतकाल की हैं किन्तु अर्थ की स्वाभाविकता के लिए इनका अर्थ वर्तमान काल में लिखा गया है ।]

गुरु के अनुयायी (नाम में) जगते हैं, (उनकी) अभिमानावस्था समाप्त हो जाती है । (उनके लिए) सदैव (ज्ञान का) सबेरा हो जाता है और वे सत्यस्वरूप (हरी) में समा जाते हैं उन्हें गुरु की शिक्षा अच्छी लगती है और वे सत्य में समा जाते हैं गुरु की शिक्षा द्वारा वे पूर्ण रूप से जग जाते हैं । गुरु सच्चे नाम रूपी अमृत को दे देता है जिससे (उनका) दृढ़ ध्यान हरि के चरणों में लग जाता है । (उन्हें) (ज्ञान की अखण्ड) ज्योति प्रकट हो जाती है और (उसी) ज्योति में उन्हें ज्ञान हो जाता है । मनमुख तो भ्रम में भटकते रहते हैं । हे नानक (ज्ञान का) सबेरा हो जाने पर मन मान जाता है (और जागरण रूपी ज्ञान में जगने से) (अज्ञान रूपी रात्रि) स्वतः समाप्त हो जाती है ॥२॥

रूपी सूर्य और शीतलता रूपी चंद्रमा उदय हो जाते हैं)। सच्चे मुख से (हरी का नाम ले) और सच्चे मन से (हरी का) ध्यान कर। नानक कहता है कि हे मूर्ख तू अब भी नहीं सचेत होती (भला) द्वैतभाव से सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? ॥२॥

(आयु रूपी रात्रि का) तीसरा प्रहर हो गया (अज्ञान रूपी) नींद व्याप्त हो गई है। पुत्र और स्त्री की माया में दुःख संतप्त कर रहा है। (मनुष्य) धन पुत्र और स्त्री तथा जगत के प्रिय (लोभ रूपी) चारे को चुगता है और नित्य उसमें फँसता जाता है। (जब मनुष्य हरी के) नाम का ध्यान करता है, (उसे) तभी सुख प्राप्त होता है। गुरु की बुद्धि द्वारा (साधक का) काल नहीं ग्रसता। (जब तक मनुष्य हरी के नाम का ध्यान नहीं करता) (तब तक उसे) जन्म मरण एवं काल नहीं छोड़ते हैं; (इस प्रकार) बिना नाम के (मनुष्य) संतप्त होता रहता है। नानक कहता है (कि आयु के) तीसरे (प्रहर में) संसार की त्रिगुणात्मक (माया) एवं मोह व्याप्त हो गए हैं ॥३॥

(आयु रूपी रात्रि का) चौथा प्रहर आ पहुँचा (तात्पर्य यह कि आयु समाप्त होने को आ गई) दिन का प्रकाश (आ गया)। जो सर्वदा (नाम में) जगता है (वह) अपने (वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर की रक्षा कर लेता है। (जो साधक) गुरु से (ज्ञान) पूछ कर (उसमें) जगता है और नाम में लग जाता है, उसकी (जीवन रूपी) रात्रि सुखदायिनी (हो जाती है)। ऐसे लोग गुरु के शब्द की कमाई करते हैं। (वे) जन्म धारण कर, (फिर इस संसार में) नहीं आते। उनका साथी प्रभु हरि (स्वयं) हो जाता है। (आयु के अंतिम प्रहर में) हाथ-पैर तथा (समस्त) शरीर काँपने लगता है, नेत्र अंधे हो जाते हैं और शरीर भस्म (के समान कान्तिहीन) हो जाता है। हे नानक बिना हरि के मन में बसे (संसार के प्राणी) चारों युगों में दुःखी रहते हैं ॥४॥

(पाप-पुण्य के) लेखे की गाँठ खुल गई (और परमात्मा का) हुक्म आ पहुँचा कि चलो। रसकस (आदि छः प्रकार के) रस (तथा जीवन के सब) सुख समाप्त हो गए, (संसार के मोहग्रस्त प्राणी यमदूतों द्वारा) बाँध कर चलाये जाते हैं। प्रभु के आदेशानुसार (ऐसे प्राणी) बाँध कर चलाये जाते हैं। (ऐसी दशा में जीव) न तो देखता है और न सुनता है। सभी की (इस संसार में चलने की) बारी आती है पकी खेती काट ही ली जाती है। (हरी) घड़ी मुहूर्त का हिसाब लेगा जीव को भले-बुरे को सहन करना होगा। हे नानक, (हरी ने) सुर-नरों (और महात्माओं) को शब्द द्वारा अपने में मिला लिया है (उस प्रभु ने) ऐसा कारण रचा है ॥५॥२॥

[३]

तारा चड़िया लंमा किउ नदरि निहालिया राम।
सेवक पूर करंमा सतिगुरि सबदि दिखालिया राम॥
गुर सबदि दिखालिया सचु समालिया अहिनिसि देखि बीचारिया।
धावत पंच रहे घरु जाणिया कामु क्रोधु बिखु मारिया॥
अंतरि जोति भई गुर साखी चीने राम करंमा।
नानक हउमै मारि पतीणे तारा चड़िआ लंमा॥१॥

रूपी सूर्य और शीतलता रूपी चन्द्रमा उदय हो जाते हैं)। सच्चे मुख से (हरी का नाम ले) और सच्चे मन से (हरी का) ध्यान कर। नानक कहता है कि हे मूर्ख तू अब भी नहीं सचेत होती (अथवा) द्वैतभाव से सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? ॥२॥

(आयु रूपी रात्रि का) तीसरा प्रहर हो गया (अज्ञान रूपी) नींद व्याप्त हो गई है। पुत्र और स्त्री की माया में दुःख सहन कर रहा है। (मनुष्य) धन पुत्र और स्त्री तथा जगत् के प्रिय (भोग रूपी) चारे को चुगता है और नित्य उसमें फँसता जाता है। (जब मनुष्य हरी के) नाम का ध्यान करता है (उसे) तभी सुख प्राप्त होता है गुरु की बुद्धि द्वारा (यमराज को) काल नहीं ग्रसता। (जब तक मनुष्य हरी के नाम का ध्यान नहीं करता) (तब तक उसे) जन्म मरण एवं काल नहीं छोड़ते हैं, (इस प्रकार) बिना नाम के (मनुष्य) संतप्त होता रहता है। नानक कहता है (कि आयु के) तीसरे (प्रहर में) संसार की त्रिगुणात्मक (माया) एवं मोह व्याप्त हो गए हैं ॥३॥

(आयु रूपी रात्रि का) चौथा प्रहर आ पहुँचा (तात्पर्य यह कि आयु समाप्त होने को आ गई) दिन का प्रकाश (आ गया)। जो सदैव (ज्ञान में) जगता है, (वह) अपने (वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर की रक्षा कर लेता है। (जो साधक) गुरु से (ज्ञान) पूछ कर (उसम) जगता है और नाम में लग जाता है, उसकी (जीवन रूपी) रात्रि सुखदायिनी (हो जाती है)। ऐसे लोग गुरु के शब्द की कमाई करते हैं। (वे) जन्म धारण कर, (फिर इस संसार में) नहीं आते। उनका साथी प्रभु हरि (स्वयं) हो जाता है। (आयु के अंतिम प्रहर में) हाथ-पैर तथा (समस्त) शरीर कँपने लगता है, नेत्र अंधे हो जाते हैं और शरीर भस्म (के समान कान्तिहीन) हो जाता है। हे नानक बिना हरि के मन में बसे, (संसार के प्राणी) चारों युगों में दुःखी रहते हैं ॥४॥

(पाप-पुण्य के) लेखे की गाँठ खुल गई (और परमात्मा का) हुक्म आ पहुँचा कि चलो। कमाने (आदि छः प्रकार के) रस (तथा जीवन के अन्य) सुख समाप्त हो गए, (संसार के मोहग्रस्त प्राणी यमदूतों द्वारा) बाँध कर चलाये जाते हैं। प्रभु के आदेशानुसार (ऐसे प्राणी) बाँध कर चलाये जाते हैं। (ऐसी दशा में जीव) न तो देखता है और न सुनता है। सभी को (इस संसार से चलने की) बारी आती है पकी खेती काट ही ली जाती है। (हरी) घड़ी मुहूर्त का लेखा लेता जीव को भले-बुरे को सहन करना होगा। हे नानक, (हरी ने) गुरु-शब्द (आप महात्माओं) को शब्द द्वारा अपने से मिला लिया है (उस प्रभु ने) ऐसा कारण रचा है ॥५॥२॥

[३]

तारा चड़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम।
सेवक पूर करमा सतिगुरि सबदि दिखालिआ राम ॥
गुर सबदि दिखालिआ सचु समालिआ अहिनिसि देखि बीचारिआ।
धावत पंच रहे घरु जाणिआ कामु क्रोधु बिखु मारिआ ॥
अंतरि जोति भई गुर साखी चीने राम करंमा।
नानक हउमै मारि पतीणे तारा चड़िआ लंमा ॥१॥

गुरमुखि जागि रहे चूकी अभिमानी राम ।
अनदिनु भोरु भइआ साचि समानी राम ॥
साचि समानी गुरमुखि मनि भानी गुरमुखि साबतु जागे ।
साचु नामु अम्रितु गुरि दीआ हरि चरनी लिव लागे ॥
प्रगटी जोति जोति महि जाता मनमुखि भरमि भुलाणी ।
नानक भोरु भइआ मनु मानिआ जागत रैणि विहाणी ॥२॥

अउगण वीसरिआ गुणी घरु कीआ राम ।
एको रवि रहिआ अवरु न बीआ राम ॥
रवि रहिआ सोई अवरु न कोई मन ही ते मनु मानिआ ।
जिनि जल थल त्रिभवण घटु घटु थापिआ सो प्रभु गुरमुखि जानिआ ॥
करण कारण समरथ अपारा त्रिबिधि मेटि समाई ।
नानक अवगण गुणह समाणे ऐसी गुरमति पाई ॥३॥

आवण जाण रहे चूका भोला राम ।
हउमै मारि मिले साचा चोला राम ।
हउमै गुरि खोई परगटु होई चूके सोग संतापै ।
जोती अंदरि जोति समाणी आपु पछाता आपै ॥
पेईअड़ै घरि सबदि पतीणी साहुरड़ै पिर भाणी ।
नानक सतिगुरि मेलि मिलाई चूकी काणि लोकाणी ॥४॥३॥

ज्योतिस्वरूप हरी सब को प्रकाशित कर रहा है वह किस प्रकार देखा जाय ? [संझा तारा=बड़ा तारा जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है] । जब सेवक पूरे कर्मोंवाला (भाग्य वाला) हो तो सद्गुरु अपने शब्द द्वारा वह तारा (आत्मप्रकाश) दिखा देता है । गुरु द्वारा शब्द दिखाने पर (साक्षात्कार कराने पर) सत्य समान लिया जाता है और अहर्निश रम कर निखार ध्याया जाता है । पंच ज्ञानेन्द्रियाँ दौड़ने से समाप्त हो जाती हैं और (अपना वास्तविक) घर जान लिया जाता है तथा काम-क्रोध का विष मर जाता है । गुरु की शिक्षा द्वारा आन्तरिक ज्योति प्रकट हो जाती है और राम के (प्यारे) जन जान लिये जाते हैं । हे नानक अहंकार को मार कर (साधक) तृप्त हो जाता है ज्योतिस्वरूप हरी सब को प्रकाशित कर रहा है ॥१॥

[उपर्युक्त पद में 'निवारिआ' 'वीसारिआ' 'मारिआ' आदि क्रियाएँ भूतकाल की हैं किन्तु अर्थ की स्वाभाविकता के लिए इनका अर्थ वर्तमान काल में किया गया है ।]

गुरु के अनुयायी (ज्ञान में) जगते हैं, (उनकी) अभिमानावस्था समाप्त हो जाती है । (उनके लिए) सदैव (ज्ञान का) सवेरा हो जाता है और वे सत्यस्वरूप (हरी) में समा जाते हैं उन्हें गुरु की शिक्षा अच्छी लगती है और वे सत्य में समा जाते हैं गुरु की शिक्षा द्वारा वे पूर्ण रूप से जग जाते हैं । गुरु सच्चे नाम रूपी अमृत को दे देता है जिससे (उनका) एकनिष्ठ ध्यान हरि के चरणों में लग जाता है । (उन्हें) (ज्ञान की प्रखर) ज्योति प्रकट हो जाती है और (उसी) ज्योति में उन्हें ज्ञान हो जाता है । मनमुख तो भ्रम में भटकने लगते हैं । हे नानक (ज्ञान का) सवेरा हो जाने पर मन मान जाता है (और अज्ञान रूपी रात में जगने से) (अज्ञान रूपी रात्रि) स्वतः समाप्त हो जाती है ॥ ॥

रूपी सूर्य और शीतलता रूपी चंद्रमा उदय हो जाते हैं)। सच्चे मुख से (हरी का नाम ले) और सच्चे मन में (हरी का) ध्यान कर। नानक कहता है कि हे मूर्ख तू अब भी नहीं समझ होती (बता) द्वैतभाव से सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? ॥२॥

(आयु रूपी रात्रि का) तीसरा प्रहर हो गया (अज्ञान रूपी) नींद व्याप्त हो गई है। पुत्र और स्त्री की माया में दुःख सहन कर रहा है। (मनुष्य) मन पुत्र और स्त्री तथा धन के प्रिय (लोभ रूपी) चारे को चुगता है और नित्य उसमें फँसता जाता है। (जब मनुष्य हरी के) नाम का ध्यान करता है, (उसे) तभी सुख प्राप्त होता है गुरु की बुद्धि द्वारा (साधक को) काम नहीं ग्रसता। (जब तक मनुष्य हरी के नाम का ध्यान नहीं करता), (तब तक जम) जन्म मरण एवं काल नहीं छोड़ते हैं (इस प्रकार) बिना नाम के (मनुष्य) संतप्त होता रहता है। नानक कहता है (कि आयु के) तीसरे (प्रहर में) संसार की त्रिगुणात्मक (माया) एवं मोह व्याप्त हो गए हैं ॥३॥

(आयु रूपी रात्रि का) चौथा प्रहर आ पहुँचा (तात्पर्य यह कि आयु समाप्त होने को आ गई) दिन का प्रकाश (आ गया)। जो सदैव (ज्ञान में) जगता है, (वह) अपने (वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर की रक्षा कर लेता है। (जो साधक) गुरु से (ज्ञान) पूछ कर (उसमें) जगता है और नाम में लग जाता है, उसकी (जीवन रूपी) रात्रि सुखदायिनी (हो जाती है)। ऐसे लोग गुरु के शब्द की कमाई करते हैं। (वे) जन्म धारण कर, (फिर इस संसार में) नहीं आते। उनका साथी प्रभु हरि (स्वयं) हो जाता है। (आयु के अंतिम प्रहर में) हाथ-पैर तथा (समस्त) शरीर काँपने लगता है, नेत्र अंधे हो जाते हैं और शरीर भस्म (के समान कान्तिहीन) हो जाता है। हे नानक बिना हरि के मन में बसे, (संसार के प्राणी) चारो युगों में दुःखी रहते हैं ॥४॥

(पाप-पुण्य के) लेख की गाँठ खुल गई (और परमात्मा का) हुक्म आ पहुँचा कि चलो। रस (आदि छः प्रकार के) रस (तथा जीवन के अन्य) सुख समाप्त हो गए, (संसार के मोहग्रस्त प्राणी यमदूतों द्वारा) बाँध कर चलाये जाते हैं। प्रभु के आदेशानुसार (ऐसे प्राणी) बाँध कर चलाये जाते हैं। (ऐसी दशा में जीव) न तो देखता है और न सुनता है। सभी की (इस संसार से चलने की) बारी आती है पकी खेती काट ही ली जाती है। (हरी) घड़ी मुहूर्त का लेखा लेता जीव को भले-बुरे को सहन करना होगा। हे नानक, (हरी ने) गुरु-शब्द (भाव महापुरुषों) को शब्द द्वारा अपने से मिला लिया है (उस प्रभु ने) ऐसा कारण रचा है ॥५॥२॥

[३]

तारा चड़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम।
सेवक पूर करंमा सतिगुरि सबदि दिखालिआ राम ॥
गुर सबदि दिखालिआ सचु समालिआ अहिनिसि देखि बीचारिआ।
धावत पंच रहे घरु जाणिआ कामु क्रोधु बिखु मारिआ ॥
अंतरि जोति भई गुर साखी चीने राम करंमा।
नानक हउमै मारि पतीणे तारा चड़िआ लंमा ॥१॥

मुंध नैण भरदी गुण सारेदी किउ प्रभ मिला पिआरे ।
मारगु पंथु न जाणउ विखड़ा किउ पाईऐ पिरु पारे ॥
सतिगुर सबदी मिलै विछुंनी तनु मनु आगै राखै ।
नानक अंम्रित बिरखु महा रस फलिआ मिलि प्रीतम रसु चाखै ॥३॥

महलि बुलाइड़ीए बिलमु न कीजै ।
अनदिनु रतड़ीए सहजि मिलीजै ॥
सुखि सहजि मिलीजै रोसु न कीजै गरबु निवारि समाणी ।
साचै राती मिलै मिलाई मनमुखि आवण जाणी ॥
जब नाची तब घूघटु कैसा मटुकी फोड़ि निरारी ।
नानक आपै आपु पछाणै गुरमुखि ततु बीचारी ॥४॥४॥

भुलावे में भूलकर (जीवात्मा रूपी स्त्री बार-बार) भटक कर पछताती है। (वह स्त्री) प्रियतम द्वारा छोड़ी गई (सांसारिक प्रपंचों में) सो रही है, (वह) प्रियतम का पता नहीं जानती। (वह) प्रियतम से छोड़ी जाकर सोती है अवगुणों (के कारण वह) छोड़ी गयी है ऐसी स्त्री की रात्रि बिना प्रियतम के है (अर्थात् वह रँडापे की रात्रि बिताती है)। वह काम क्रोध और अहंकार द्वारा नष्ट की गई है इसी से अहंकार में अनुरक्त है। (जब जीव रूपी) हंस (हरी की) आज्ञा से (शरीर से) उड़ कर चला जाता है तो भस्म (नश्वर देह) भस्म में समाहित हो जाती है। हे नानक सच्चे नाम के बिना (जीवात्मा रूपी स्त्री) भटक-भटक कर पछताती है ॥ ४ ॥

(हे मेरे) प्रिय नाथ (स्वामी) मेरी एक विनती सुन। तू तो मेरे ही घर में बसता है (किन्तु इस तथ्य को अनुभव न करने के कारण) मैं भस्म की ढेरी होकर नष्ट हो रही हूँ। बिना अपने नाथ (पति) के कोई भी नहीं चाहता (उस सम्बन्ध में) क्या कहा जाय और क्या किया जाय? (हरी का) अमृत नाम जो रसों का रस है (उसे) गुरु के शब्द द्वारा रसना से पी। बिना नाम के (प्राणी का) कोई भी संगी-साथी नहीं होता (जीव का) आना-जाना अविरल है बना रहता है। हे नानक (परमात्मा की भक्ति का) लाभ सार कर ला (तभी तेरी) सच्ची गति (सिद्ध होगी) ॥ २ ॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री का) पति विदेश चला गया है (वह स्त्री अपने प्रियतम को) संदेशा भेजती है। वह स्त्री उन सज्जनों की याद करती है और नेत्रों में (आँसू) भरती है। स्त्री नेत्रों में (आँसू) भरती है और गुणों को याद करती है, (वह सोचती है) कि प्रियतम प्रभु किस प्रकार मिले? (मैं तो) (प्रियतम के) कठिन मार्ग को नहीं जानती। (जो) प्रियतम (बिल्कुल) पास है, (भला उसे) कैसे प्राप्त किया जाय? (यदि जीवात्मा रूपी स्त्री अपना) तन मन गुरु के आगे रख दे (पूर्ण भाव से आत्म समर्पण कर दे) (तो वह) बिछुड़ी हुई स्त्री सद्गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा से) मिल सकती है। हे नानक, (नाम रूपी) अमृत के वृक्ष में (भक्ति रूपी महान् (फल) फला है (जिसमें अमृतमय) रस है। प्रियतम (हरि) से मिलकर इस रस का आस्वादन कर ॥ ३ ॥

(हे, हरी के) महल में बुलाई गई (स्त्री) (वहाँ जाने में) देर मत कर। प्रतिदिन प्रेम-रंग में रंग रहनेवाली स्त्री, सहज भाव से (प्रियतम हरी से) मिल।

[उपर्युक्त पद में भी भूतकाल की क्रियाओं का प्रयोग वर्तमान काल ही के लिए किया गया है।]

(सच्चे साधक का मन) अवगुणों को भुलाकर गुफा में (अपना) घर बना लेता है। एक (प्रभु ही सर्वत्र) रम रहा है, और कोई दूसरा नहीं है। (एक हरी ही सर्वत्र) रम रहा है और कोई नहीं है, मन से ही मन मान जाता है (शान्त हो जाता है)। जिसने जल स्थल त्रिभुवन तथा घट-घट (प्राणी-प्राणी) का निर्माण किया है वह प्रभु गुरु द्वारा जाना जाता है। (हरी ही) करण और कारण है (वह) अपार तथा सामर्थ्यवान् है, त्रिगुणात्मक माया को मिटाकर समाप्त कर देता है। हे नानक गुरु के द्वारा ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जाती है कि अवगुण गुण में ही समा जाते हैं ॥ ३ ॥

(हरी की कृपादृष्टि से जीव के) आवागमन समाप्त हो जाते हैं और (माया का) भुलावा भी समाप्त हो जाता है। अहंकार के मारने से (शरीर रूपी) चोला सच्चा हो जाता है (अर्थात् सफल हो जाता है)। (जब) गुरु अहंकार को नष्ट कर देता है (तो हरी अपने आप) प्रकट हो जाता है और शोक तथा संताप नष्ट हो जाते हैं। (जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की अनन्त और शाश्वत) ज्योति में लीन हो जाती है (और जीवात्मा) अपने आप को पहचान लेती है। (जीवात्मा रूपी स्त्री) नैहर (इस लोक) में शब्द—नाम से (अपने) घर में निश्चिन्त हो जाती है और ससुराल (परलोक) में प्रियतम (हरी) को अच्छी लगती है। हे नानक (जब) सद्गुरु मिल कर (अपने में) मिला लेता है, तो लोगों की मुहताजी समाप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ १ ॥

[८]

भोलावड़ै भुली भुलि भुलि पछोताणी ।
पिरि छोडिअड़ी सुती पिर की सार न जाणी ।
पिरि छोडी सुती अवगणि मुती तिसु धन विधण राते ।
कामि क्रोधि अहंकारि विगुती हउमै लगी ताते ॥
उडरि हंसु चलिआ फुरमाइआ भसमै भसम समाणी ।
नानक सचे नाम विहूणी भुलि भुलि पछोताणी ॥१॥

सुणि नाह पिआरे इक बेनंती मेरी ।
तू निजघरि वसिअड़ा हउ रुलि भसमै ढेरी ॥
बिनु अपने नाहै कोइ न चाहै किआ कहीऐ किआ कीजै ॥
अंमृत नामु रसन रसु रसना गुरसबदी रसु पीजै ।
विणु नावै को संगि न साथी आवै जाइ घनेरी ।
नानक लाहा लै घरि जाईऐ साची सचु मति तेरी ॥ ॥

साजन देसि विदेसीअड़े सानेहड़े देदी ।
सारि समाले तिन सजणा मुंध नैण भरेदी ॥

[उपर्युक्त पद में भी भूतकाल की क्रियाओं का प्रयोग वर्तमान काल ही के लिए किया गया है ।]

(सच्चे साधक का मन) अवगुणों को भुलाकर गुणों में (अपना) घर बना लेता है । एक (प्रभु ही सर्वत्र) रम रहा है, और कोई दूसरा नहीं है । (एक हरी ही सर्वत्र) रम रहा है और कोई नहीं है, मन से ही मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) । जिसने जल स्थल त्रिभुवन तथा घट-घट (प्राणी-प्राणी) का निर्माण किया है वह प्रभु गुरु द्वारा जाना जाता है । (हरी ही) करण और कारण है (वह) अपार तथा सामर्थ्यवान् है त्रिगुणात्मक माया को मिटाकर समाप्त कर देता है । हे नानक गुरु के द्वारा ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जाती है कि अवगुण गुण में ही समा जाते हैं ॥ ३ ॥

(हरी की कृपादृष्टि से जीव के) आवागमन समाप्त हो जाते हैं और (माया का) भुलावा भी समाप्त हो जाता है । अहंकार के मारने से (शरीर रूपी) चोला सच्चा हो जाता है, (अर्थात् सफल हो जाता है) । (जब) गुरु अहंकार को नष्ट कर देता है (तो हरी अपने आप) प्रकट हो जाता है और शोक तथा संताप नष्ट हो जाते हैं । (जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की अपार और शाश्वत) ज्योति में लीन हो जाती है (और जीवात्मा) अपने आप को पहचान लेती है । (जीवात्मा रूपी स्त्री) नैहर (इस लोक) में शब्द—नाम से (अपने) घर में निश्चिन्त हो जाती है और ससुराल (परलोक) में प्रियतम (हरी) को अच्छी लगती है ॥ हे नानक (जब) सद्गुरु मिल कर (अपने में) मिला लेता है, तो लोगों की मुहताजी समाप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

भोलावड़ै भुली भुलि भुलि पछोताणी ।
पिरि छोडिअड़ी सुती पिर की सार न जाणी ।
पिरि छोडी सुती अवगणि मुती तिसु धन विधण राते ।
कामि क्रोधि अहंकारि विगुती हउमै लगी ताते ॥
उडरि हंसु चलिआ फुरमाइआ भसमै भसम समाणी ।
नानक सचे नाम विहूणी भुलि भुलि पछोताणी ॥१॥

सुणि नाह पिआरे इक बेनंती मेरी ।
तू निजघरि वसिअड़ा हउ रुलि भसमै ढेरी ॥
बिनु अपने नाहै कोइ न चाहै किआ कहीऐ किआ कीजै ॥
अंम्रित नामु रतन रसु रसना गुर सबदी रसु पीजै ।
विणु नावै को संगि न साथी आवै जाइ घनेरी ।
नानक लाहा लै घरि जाईऐ साची सचु मति तेरी ॥२॥

साजन देसि विदेसीअड़े सानेहड़े देदी ।
सारि समाले तिन सजणा मुंध नैण भरेदी ॥

मु ध नैण रतेड़ी गुण सारती किउ प्रभ मिला पिआरे ।
मारगु पंथु न जाणउ विखड़ा किउ पाईऐ पिर पारे ॥
सतिगुर सबदी मिलै विछुंनी तनु मनु आगै राखै ।
नानक अंमृत बिरखु महा रस फलिआ मिलि प्रीतम रसु चाखै ॥३॥

महलि बुलाइड़ीऐ बिलमु न कीजै ।
अनदिनु रतड़ीऐ सहजि मिलीजै ॥
सुखि सहजि मिलीजै रोसु न कीजै गरबु निवारि समाणी ।
साचै राती मिलै मिलाई मनमुखि आवण जाणी ॥
जब नाची तब घूघटु कैसा मटुकी फोड़ि निरारी ।
नानक आपै आपु पछाणै गुरमुखि ततु बीचारी ॥४॥४॥

भुलावे में भूलकर (जीवात्मा रूपी स्त्री बार-बार) भटक कर पछताती है। (वह स्त्री) प्रियतम द्वारा छोड़ी गई (सांसारिक प्रपंचों में) सो रही है, (वह) प्रियतम का पता नहीं जानती। (वह) प्रियतम से छोड़ी जाकर सोती है अवगुणों (के कारण वह) छोड़ी गयी है ऐसी स्त्री की रात्रि बिना प्रियतम के है (अर्थात् वह रँडापे की रात्रि बिताती है)। वह काम, क्रोध और अहंकार द्वारा नष्ट की गई है इसी से अहंकार में अनुरक्त है। (जब जीव रूपी) हंस (हरी को) माया से (शरीर से) उड़ कर चला जाता है तो भस्म (नश्वर देह) भस्म में समाहित हो जाती है। हे नानक सच्चे नाम के बिना (जीवात्मा रूपी स्त्री) भटक-भटक कर पछताती है ॥ ४ ॥

(हे मेरे) प्रिय नाथ (स्वामी) मेरी एक विनती सुन। तू तो मेरे ही घर में बसता है (किन्तु इस तथ्य को अनुभव न करने के कारण) मैं भस्म की ढेरी होकर नष्ट हो रही हूँ। बिना अपने नाथ (पति) के कोई भी नहीं चाहता (उस सम्बन्ध में) क्या कहा जाय और क्या किया जाय ? (हरी का) अमृत नाम जो रसों का रस है (उस) गुरु के शब्द द्वारा रसना से पी। बिना नाम के (प्राणी का) कोई भी संगी-साथी नहीं होता (जीव का) आना-जाना अविरत्ना है बना रहता है। हे नानक (परमात्मा की भक्ति का) लाभ सार घर जा, (तभी तेरी) सच्ची मति (सिद्ध होगी) ॥ २ ॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री का) पति विदेश चला गया है (वह स्त्री अपने प्रियतम को) संदेशा भेजती है। वह स्त्री उन सज्जनों का याद करती है और नेत्रों में (आँसू) भरती है। स्त्री नेत्रों में (आँसू) भरती है और गुणों को याद करती है, (वह सोचती है) कि प्रियतम प्रभु किस प्रकार मिले ? (मैं तो) (प्रियतम के) कठिन मार्ग को नहीं जानती। (जो) प्रियतम (बिल्कुल) पास है (भला उसे) कैसे प्राप्त किया जाय ? (यदि जीवात्मा रूपी स्त्री अपना) तन मन गुरु के आगे रख दे (पूर्ण भाव से आत्म समर्पण कर दे) (तो वह) बिछुड़ी हुई स्त्री सद्गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा से) मिल सकती है। हे नानक, (नाम रूपी) अमृत के वृक्ष में (भक्ति रूपी महान् (फल) लगा है (जिसमें अमृतवत) रस है। प्रियतम (हरि) से मिलकर इस रस का आस्वादन कर ॥ ३ ॥

(हे, हरी के) महल में बुलाई गई (स्त्री) (वहाँ जाने में) देर मत कर। हे प्रतिदिन प्रेम-रस में रंग रहनेवाली स्त्री, सहज भाव से (प्रियतम हरी से) मिल।

(हे जीवात्मा रूपी स्त्री) सहजावस्था के सुख में मिल (किसी प्रकार की) शोक न कर। अहंकार को दूर करके (परमात्मा में) समाहित हो जा। सच्चे (हरी) में अनुरक्त (जीवात्मा रूपी स्त्री गुरु द्वारा मिलाए जाने से हरी में) मिल जाती है; किन्तु मनमुख (भी संसार-चक्र में) आती-जाती रहती है। जब नाचना ही है, तो घूँघट कैसा ? (लोक लज्जा की) मटकी तोड़कर पृथक् होना पड़ता है। [भावार्थ यह कि परमात्मा की भक्ति में लोकलज्जा का त्याग करना ही पड़ता है]। हे नानक (सच्चा साधक) गुरु के द्वारा तत्त्व का विचार करके अपने घर को पहचान लेता है ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

मेरे लाल रंगीले हम लालन के लाले ।
गुर अलखु लखाइआ अवरु न दूजा भाले ॥
गुरि अलखु लखाइआ जा तिसु भाइआ जा प्रभि किरपा धारी ।
जगजीवनु दाता पुरखु बिधाता सहजि मिले बनवारी ॥
नदरि करहि तू तारहि तरीऐ सचु देवहु दीनदइआला ।
प्रणवति नानक दासनि दासा तू सरब जीआ प्रतिपाला ॥१॥

भरि पुरि धारि रहे अति पिआरे ।
सबदे रवि रहिआ गुर रूपि मुरारे ॥
गुर रूप मुरारे त्रिभवण धारे ता का अंतु न पाइआ ।
रंगी जिनसी जंत उपाए नित देवै चड़ै सवाइआ ॥
अपरपरु आपे थापि उथापे तिसु भावै सो होवै ।
नानक हीरा हीरै बेधिआ गुण कै हारि परोवै ॥२॥

गुण गुणहि समाणे मसतकि नाम नीसाणो ।
सचु साचि समाइआ चूका आवण जाणो ॥
सचु साचि पछाता साचै राता साचु मिलै मनि भावै ।
साचे ऊपरि अवरु न दीसै साचे साचि समावै ॥
मोहनि मोहि लीआ मनु मेरा बंधन खोलि निरारे ।
नानक जोती जोति समाणी जा मिलिआ अति पिआरे ॥३॥

सच घरु खोजि लहे साचा गुर थानो ।
मनमुखि नह पाईऐ गुरमुखि गिआनो ॥
देवै सचु दानो सो परवाणो सद दाता वड दाणा ।
अमरु अजोनी असथिरु जापै साचा महलु चिराणा ॥
दोति उचापति लेखु न लिखीऐ प्रगटी जोति मुरारी ।
नानक साचा साचै राचा गुरमुखि तरीऐ तारी ॥४॥५॥

हे मेरे आनन्दी प्रियतम (लाल रंगीले) हे मेरे प्यारे (लालन) हम तेरे गुलाम हैं। [फारसी, धलाम=गुलाम]। (जब) गुरु अलक्ष्य (हरी) को दिखा देता है (तो) औरों के खोजने की (आवश्यकता) नहीं रहती। (जब प्रियतम हरी को) अच्छा लगता है (और वह) कृपा करता है, (तभी) गुरु अलक्ष्य (हरी) का साक्षात्कार कराता है। बनवारी (हरी परमात्मा) जगत् का जीवन और दाता है (वही पूर्ण) पुरुष और रचयिता है और भाग्य भाव से प्राप्त होता है। हे दीनदयालु (गुरु) तू (स्वयं) (संसार-सागर से) तरता है (और जो तेरे सम्पर्क में) आते हैं, उन्हें भी तारता है। (तू) कृपा करके (मुझ) सत्य (हरी) को प्रदान कर। (तेरे) दासों का दास नानक विनती करता है, कि तू सभी जीवों का प्रतिपालक है ॥ १ ॥

विशेष उपयुक्त पद में 'गुलाम' आदि शब्द मुसलमानों के हैं किन्तु उनका प्रयोग बहुत काल से ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

परिपूर्ण (परमात्मा) में अत्यंत प्यारा (गुरु) धारण किया गया है (अर्थात् सद्गुरु पूर्ण ब्रह्म में भलीभाँति स्थित है)। मुरारी (हरी) का स्वरूप गुरु शब्द में रमा हुआ है। गुरु स्वरूप मुरारी (हरी) ने त्रिभुवन धारण कर रक्खा है, उसका अन्त नहीं पाया जा सकता। (हरी ने ही) विभिन्न भाँति के जीवों की सृष्टि की है। (वह उन्हें) प्रतिदिन (दान) देता रहता है; (उन दोनों की संख्या उत्तरोत्तर) सवाई बढ़ती जाती है, (अर्थात् हरी के दानों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है)। अपरंपार (हरी) स्वयं ही निर्माण करता है (और स्वयं ही) नष्ट करता है। (जो कुछ) उसे अच्छा लगता है, वही होता है। हे नानक (सद्गुरु गुणों के) हार में आने को पिरोता है और हारों में हीरा होकर बेधा जाता है ॥ २ ॥

(इस प्रकार) गुण गुण में समा जाते हैं और मस्तक में नाम का निशान पड़ता है अर्थात् भाग्य में नाम जपना लिखा जाता है। (अतएव) सच्चा (साधक) सच्चे (हरी) में समा जाता है (और संसार-चक्र में) आना-जाना समाप्त हो जाता है। सच्चा (साधक) सत्य (हरी) को पहचान कर, सत्य में ही अनुरक्त हो जाता है, (जिसके फलस्वरूप) उसे सत्य प्राप्त होता है, (जो) मन को बहुत ही अच्छा लगता है। (वह) सच्चा (साधक) सच्चे (हरी) में समाहित हो जाता है, (और उस) सत्य (हरी) के ऊपर और (कोई वस्तु) नहीं दिखाई पड़ती (क्योंकि उसी में सभी कुछ प्रतिष्ठित है)। मोहन (हरी) ने मेरे मन को मोहित कर लिया है (वही सांसारिक) पाशों को खोलकर मुक्त करता है। हे नानक जब (साधक) अत्यन्त प्रिय (हरी) से मिलता है (तो वह उसी भाँति एक हो जाता है) (जिस भाँति) ज्योति से ज्योति मिलकर एक हो जाती है। [अर्थात् जब साधक परमात्मा से मिलता है, तो वह एक हो जाता है और उसकी परिच्छिन्न ज्योति परमात्मा की अखण्ड और शाश्वत ज्योति से मिलकर एक हो जाती है] ॥ ३ ॥

सच्चे गुरु के स्थान खोजने से सच्चे घर (हरी के घर) की प्राप्ति होती है। मनमुख होने से (ज्ञान) नहीं प्राप्त होता; गुरु के अनुयायी होने से ही ज्ञान प्राप्त होता है। (जो) सत्य (हरी) का दान देता है, वही प्रामाणिक है वही महान दाता है और वही बुद्धिमान् है। (सद्गुरु के उपदेश से) अमर अयोनि और स्थिर (परमात्मा) (तथा उसका) सच्चा घर (अत्यन्त) शाश्वत महल प्रतीत होने लगता है। (ऐसी अवस्था में साधक के) नित्य क

कर्मों के कर्म का विचार नहीं किया जाता। मुरारी (हरी) की (अगम्य और शाश्वत) ज्योति प्रकट हो जाती है। हे नानक सच्चा (हरी) सच्चे (व्यक्ति) पर ही रीझता है, गुरु के उपदेश द्वारा (संसार-सागर की) तैराकी कर (और उसे तैर कर पार हो जा) ॥४॥५॥

[६]

ए मन मेरिआ तू समझु अचेत इआणिआ राम।
ए मन मेरिआ छडि अवगण गुणी समाणिआ राम ॥
बहु साद लुभाणे किरत कमाणे विछुड़िआ नही मेला।
किउ दुतरु तरीऐ जम डरि मरीऐ जम का पंथु दुहेला ॥
मनि रामु नही जाता साझ प्रभाता अवघटि रुधा किआ करे।
बंधनि बाधिआ इन बिधि छूटै गुरमुखि सेवै नरहरे ॥१॥

ए मन मेरिआ तू छोडि आल जंजाला राम।
ए मन मेरिआ हरि सेवहु पुरखु निराला राम।
हरि सिमरि एकंकारु साचा सभु जगतु जिनि उपाइआ।
पउणु पाणी अगनि बाधे गुरि खेलु जगति दिखाइआ ॥
आचारि तू वीचारि आपे हरिनामु संजम जप तपो।
सखा सैनु पिआरु प्रीतमु नामु हरि का जपु जपो ॥२॥

ए मन मेरिआ तू थिरु रहु चोट न खावही राम।
ए मन मेरिआ गुण गावहि सहजि समावही राम ॥
गुण गाइ राम रसाइ रसीअहि गुर गिआन अंजनु सारहे।
त्रैलोक दीपकु सबदि चानणु पंच दूत संघारहे ॥
भै काटि निरभउ तरहि दुतर गुरि मिलिऐ कारज सारए।
रूपु रंगु पिआरु हरि सिउ हरि आपि किरपा धारए ॥३॥

ए मन मेरिआ तू किआ लै आइआ किआ लै जाइसी राम।
ए मन मेरिआ ता छुटसी जा भरमु चुकाइसी राम।
धनु संचि हरि हरि नाम वखरु गुर सबदि भाउ पछाणहे।
मैलु परहरि सबदि निरमलु महलु घरु सचु जाणहे ॥
पति नामु पावहि घरि सिधावहि झोलि अम्रित पी रसो।
हरिनामु धिआईऐ सबदि रसु पाईऐ वडभागि जपीऐ हरि जसो ॥४॥

ए मन मेरिआ बिनु पउड़ीआ मंदरि किउ चड़ै राम।
ए मन मेरिआ बिनु बेड़ी पारि न अम्बड़ै राम ॥
पारि साजनु अपारु प्रीतमु गुर सबद सुरति लघावए।
मिलि साध संगति करहि रलीआ फिरि न पछोतावए ॥
करि दइआ दानु दइआल साचा हरिनाम संगति पावओ।
नानक पइअम्पै सुणहु प्रीतम गुर सबदि मनु समझावओ ॥५॥६॥

विशेष इस पद की पंक्तियों में 'राम' शब्द का प्रयोग तुक की पूर्ति के लिए किया गया है। गुरु नानक के कुछ पदों में इस प्रकार के शब्द तुकों की पूर्ति के लिए मिलते हैं— यथा, राम' 'जी', बलिराम जीउ' आदि।

हे मेरे मूर्ख और अज्ञानी मन तू समझ। हे मेरे मन तू अवगुणों को त्याग कर गुणी (हरी) में समा जा। किरत कर्मों (किए हुए कर्मों) के स्वभावानुसार तू (शब्द स्पर्श रूप रस गंध) के अनेक स्वादों में लुब्ध है (इस भाँति, हरी से) बिछुड़ गया है और मिलाप नहीं हो रहा है। दुस्तर (संसार-सागर) को किस भाँति तरा जाय ? (संसार-सागर के पार हुए बिना) यमराज के भय से (नित्य) मरना होता है, (वास्तव में) यमराज का मार्ग (अत्यन्त) दुखदायी है। हे मन, (तू ने) राम को नहीं जाना सध्या और प्रभात समय (तात्पर्य यह कि प्रत्येक क्षण) अवघट (दुर्गम मार्ग) में अवरुद्ध है। (भला ऐसी परिस्थिति में तू) क्या कर सकता है ? (तू सांसारिक) पाशों में बँधा हुआ इस भाँति मुक्त हो सकता है—गुरु के उपदेश द्वारा नरहरी (परमात्मा) की आराधना करने से ॥ १ ॥

हे मेरे मन तू घर के (समस्त) प्रपंचों को त्याग दे। हे मेरे मन (तू) निराले (निर्लिप्त) पुरुष हरी की आराधना कर। (तू उस) एककार और सच्चे हरी की आराधना कर, जिसने समस्त जगत् की रचना की है। गुरु (हरी) ने वायु और जल (आदि पंच तत्वों) को बाँधकर रखा है। (और उन्हीं से) जगत् के खेल को दिखाया है (अर्थात् पंचभूतों से सारे जगत् का निर्माण हरी ने ही किया है)। हे आचारवान् (कर्मकाण्डी) तू स्वयं ही विचार करके देख ले कि हरिनाम ही संयम और जप-तप है। हरिनाम ही सखा स्वजन [सहृद स्वजन] और प्यारा प्रियतम है (अतएव उसी के नाम का निरन्तर) जप कर ॥ २ ॥

हे मेरे मन, तू (हरी के नाम में) स्थिर रह (जिससे फिर सांसारिक) चोट नहीं खाएगा। हे मेरे मन तू (हरी के नाम का) गुणगान कर (इससे तू) सहजावस्था में समाहित हो जाएगा। राम के गुण गाकर (तू) प्रेम में रंग जा (और) मन (द्वारा प्रदत्त) ज्ञान के अंजन को (अपने नेत्रों में) लगा जिसके द्वारा तीनों लोकों के दीपक (हरी) का प्रकाश शब्द द्वारा प्राप्त हो जायगा (उसी हरी के प्रकाश से) (सांसारिक) पंचदूतों को मार डालेगा। निर्भय (हरी) (के भय से अपने) मन को मार (इस प्रकार) दुस्तर (संसार) सागर) को (तू) तर जायगा (किन्तु इसके लिए) गुरु से मिल (तभी) कार्य सिद्ध होगा। (जब) हरी आप ही कृपा करता है, (तभी) हरी के प्रेम रंग में प्रेम होता है। [वास्तव में नानक जी के अनुसार हरी तो अकथ और अगम है किन्तु यहाँ प्रेम रंग में अभिप्राय उसके गुणों से है। हरी के सगुण रूप में गुण संभव हैं। गुरु नानक ने निर्गुण सगुण दोनों निर्गुण सगुण दोनों स्वरूप माने हैं। हाँ वे अवतारवाद को मान्य नहीं मानते] ॥ ३ ॥

हे मेरे मन, तू क्या लेकर आया है और क्या लेकर (यहाँ से) जायगा ? हे मेरे मन, तू (सांसारिक बंधनों से) तभी छूटेगा, जब (अपने समस्त) भ्रमों को दूर कर देगा। (तू) हरी रूपी धन का संग्रह कर, गुरु के उपदेश द्वारा हरिनाम रूपी मोती का मूल्य पहचानो। (गुरु के) शब्द द्वारा (मायाविक) मैल दूर करके निर्मल हो जा और अपने महल पर तथा महल में ठिकाना प्राप्त कर ले। (जब) तू अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूपी घर) को जानेगा तो

प्रतिष्ठा और नाम (यश) पायेगा और नाम के अमृत-रस को झकझोर कर पियेगा। (गुरु के) शब्द द्वारा हरिनाम का ध्यान कर (और आनन्द की) रसानुभूति प्राप्त कर हरि के यश का स्मरण बड़े भाग्य से होता है ॥ ४ ॥

हे मेरे मन बिना (साधन की) सीढ़ी के (हरी के) महल तक कैसे चढ़ा जाय ? हे मेरे मन बिना (गुरु रूपी) नाव के (तू) (संसार सागर के) पार नहीं पहुँचेगा। अपार (परमात्मा) साजन और प्रियतम उस पार है गुरु के शब्द की सुरति ही (संसार-सागर के पार) लँघा सकती है। (हे मन तू) साधु-संगति में मिलकर आनन्द मना (ताकि तुझे) फिर न पछताना पड़े। हे दयालु (स्वामी) दया का सच्चा दान कर (जिससे साधुओं की) संगति में हरिनाम की प्राप्ति हो। नानक कहता है कि हे प्रियतम गुरु सुन (अपने) शब्द द्वारा (मेरे) मन को समझा दे ॥ ५ ॥ १ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

भैरउ, रागु महला १, घरु १, चउपदे

सबद

[१]

तुझ ते बाहरि कछू न होइ । तू करि करि देखहि जाणहि सोइ ॥१॥
किआ कहीऐ किछु कही न जाइ । जो किछु अहै सभ तेरी रजाइ ॥१॥ रहाउ ।
जो किछु करणा सु तेरै पासि । किसु आगै कीचै अरदासि ॥२॥
आखणु सुनणा तेरी बाणी । तू आपे जाणहि सरब विडाणी ॥३॥
करे कराए जाणै आपि । नानक देखै थापि उथापि ॥४॥१॥

(हे प्रभु) तुझसे बाहर कुछ भी नहीं है। तू ही (सृष्टि) रच रचकर, (उसकी) जानकारी रखता है, (अर्थात्, उसकी देखभाल करता है) ॥१॥

(हे हरी), (तेरे सम्बन्ध में) क्या कहा जाय? कुछ भी नहीं कहा जा सकता (इस सृष्टि में) जो कुछ भी हो रहा है, सब तेरी ही मर्जी के अनुसार हो रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

(मुझे) जो कुछ भी (प्रार्थना) करनी है वह तेरे ही पास करनी है। और किसके आगे अरदास (प्रार्थना) की जाय? ॥२॥

जो कुछ बोलना या सुनना है तेरी वाणी ही है। हे सब प्रकार के कौतुक करने वाले तू (स्वयं ही) अपने आप को जानता है ॥३॥

(हे स्वामिन्, तू जो कुछ भी) करता या कराता है (उसे) आप ही जानता है। (हे प्रभु, तू) थाप उथाप (बना-बिगाड़) कर आप ही देखता है ॥४॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु २

[२]

गुर कै सबदि तरे मुनि केते इंद्रादिक ब्रहमादि तरे ।
सनक सनंदन तपसी जन केते गुरपरसादी पारि परे ॥१॥

भवजलु बिनु सबदै किउ तरीऐ ।
नाम बिना जगु रोगि बिआपिआ दुबिधा डुबि डुबि मरीऐ ॥१॥ रहाउ ॥
गुरु देवा गुरु अलख अभेवा त्रिभवण सोझी गुर की सेवा ।
आपे दाति करी गुरि दातै पाइआ अलख अभेवा ॥२॥
मनु राजा मनु मन ते मानिआ मनसा मनहि समाई ।
मनु जोगी मनु बिनसि बिओगी मनु समझै गुण गाई ॥३॥
गुर ते मनु मारिआ सबदु वीचारिआ ते विरले संसारा ।
नानक साहिबु भरिपुरि लीणा साच सबदि निसतारा ॥४॥१॥२॥

गुरु के उपदेश से कितने ही मुनि तथा इन्द्र और ब्रह्मादिक तर गए। सनक सनन्दन (सनातन तथा सनतकुमार ब्रह्मा के पुत्र) तथा कितने ही तपस्वी गुरु की कृपा से ही (संसार सागर से) पार हो गए ॥१॥

संसार-सागर (भला) बिना (गुरु के) शब्द के कैसे तरा जा सकता है ? (हरी के) नाम के बिना (समस्त) जगत (दैहिक दैविक तथा भौतिक) रोगों से ग्रसित है और द्वैतभाव में ही डूब डूब कर मर रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु ही देव है, गुरु ही अलक्ष्य और अभेद है; गुरु की सेवा से ही त्रिभुवन की जानकारी (प्राप्त होती है।)। दाता गुरु (जब) स्वयं ही दान करता है, (तभी) अलक्ष्य और अभेद (परमात्मा) प्राप्त होता है ॥२॥

[निम्नलिखित पंक्तियों में मन की पृथक्-पृथक् दशाओं का वर्णन किया गया है क्योंकि सब कुछ मन का ही खेल है। सब से पहले मन को राजा कहा गया है। राजा रजोगुणी वृत्तियों का सूचक है। गुरु के उपदेश से मन की रजोगुणी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, जिससे यह स्थिर एवं संतुष्ट हो जाता है।]

मन राजा है (ज्योतिर्मय) मन से (अहंकारी अथवा रजोगुणी) मन मानता है (और जितनी भी उसकी) इच्छाएँ हैं वे मन में ही विलीन हो जाती हैं। मन ही योगी है (किन्तु यह) मन (हरी से) वियोगी होकर नष्ट हो जाता है, मन (परमात्मा का) गुणगान करके समझ जाता है—शान्त हो जाता है ॥३॥

(जिन्होंने) गुरु के द्वारा (उसके) शब्द पर विचार करके (अहंकारी) मन को मार दिया है, वे संसार में विरले ही हैं। हे नानक (वे लोग) साहब (प्रभु हरी) में पूर्ण रूप से लीन हो गए हैं। सच्चे शब्द के द्वारा उनका निस्तार हो जाता है ॥४॥१॥२॥

[३]

नैनी द्रिसटि नही तनु हीना जरि जीतिआ सिरि कालो ।
रूपु रंगु रहसु नही साचा किउ छोडै जम जालो ॥१॥
प्राणी हरि जपि जनमु गइओ ।
साच सबद बिनु कबहु न छूटसि बिरथा जनमु भइओ ॥१॥ रहाउ ॥
तन महि कामु क्रोधु हउ ममता कठिन पीर अति भारी ।
गुरमुखि रामु जपहु रसु रसना इन बिधि तरु तू तारी ॥२॥

बहरे करन प्रकलि भई होछी सबद सहजु नही बूझिआ।
जनमु पदारथु मनमुखि हारिआ बिनु गुर अंधु न सूझिआ ॥३॥
रहै उदासु आस निरासा सहज धिआनि बैरागी।
प्रणवति नानक गुरमुखि छूटसि राम नामि लिव लागी ॥४॥२॥३॥

विशेष सामान्य व्यक्ति तो रूप रस, सम्पत्तिक के तुच्छ विषयों में ही अमूल्य मानव जीवन नष्ट कर देते हैं। गुरु-द्वारा प्रवर्तित नाम द्वारा ही जीवन सफल होता है।

अर्थ नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता वृद्धावस्था का बीता हुआ शरीर हीन हो गया है और सिर के ऊपर काल (मँडरा रहा है)। रूप, रंग के स्थान सत्य नहीं है (तात्पर्य यह कि झूठे नाशवान रूप-रस के बीच प्राणी लगा हुआ है), (इसलिए भला) यमराज का मार उसे किस प्रकार छोड़ सकता है? ॥१॥

हे प्राणी हरि को जप (तेरा) जन्म (योंही) नष्ट होता जा रहा है। (तू) सच्चे शब्द के बिना कभी नहीं छूट सकता (और बिना मुक्त हुए) तेरा जन्म-धारण करना व्यर्थ ही हुआ ॥१॥ रहाउ ॥

(हे प्राणी तेरे) शरीर में काम क्रोध अहंता और ममता की महान और कठिन पीड़ा हो रही है। गुरु द्वारा जोम स प्रेम स रामनाम जप इस प्रकार (संसार का) तैराकी तैर (और संसार-सागर को पार हो जा) ॥२॥

(हे प्राणी) तेरे कान बहरे हो गए हैं और अकल मोटी हो गई है (जिससे) सहज भाव से शब्द को नहीं समझ रहा है। मनमुख व्यक्ति जन्म रूपी (अमूल्य) पदार्थ को (विषय भोगों में ही) हार जाता है बिना गुरु के उस अंधे को (कुछ भी) सुझाई नहीं पड़ता ॥३॥

नानक विनती करके कहता है कि जो विरक्त आशा और निराशा के प्रति उदासीन रहता है और सहज ध्यान में (लिव) लगाए रहता है (वही) गुरु की शिक्षा द्वारा (संसार से) मुक्त होता है और उसकी लिव *(एकनिष्ठ धारणा) राम नाम में लगी रहती है ॥४॥२॥१७*

(४)

भाखी आस पारख कर विगरे तुवा देहु कुमलानी।
नैणी धु धि करन भए बहरे मनमुखि नामु न जानी ॥१॥
अंधुले किआ पाइआ जगि आइ।
रामु रिदै नही गुर की सेवा चाले मूलु गवाइ ॥१॥रहाउ॥
जिहवा रंगि नही हरि राती जब बोलै तब फीके।
संत जना की निंदा विआपसि पसू भए कदे होहि न नीके ॥२॥
अम्रित का रसु विरली पाइआ सतिगुर मेलि मिलाए।
जब लगु सबद भेदु नही आइआ तब लगु कालु संताए ॥३॥
अन को दरु घरु कबहू न जानसि एको दरि सचिआरा।
गुर परसादि परम पदु पाइआ नानकु कहै विचारा ॥४॥३॥४

वृद्धावस्था में (मनुष्य की) श्वास—गति मंदी हो जाती है हाथ और पैर ढीले हो जाते
है तथा और शरीर कुम्हला जाता है। नेत्र धुंध तथा कान बहरे हो जाते हैं (किन्तु ऐसी
अवस्था में भी) मनमुख (हरी के) नाम को नहीं जानता ॥१॥
(हे) अंधे (मनुष्य), इस जगत् में आकर तूने क्या प्राप्त किया ? न तो (तूने) हृदय
में राम (नाम) को धारण किया न तो गुरु की सेवा ही की। (मनुष्य जीवन रूपी) मूलधन
को गँवा कर (इस संसार से) विदा हो गया ॥१॥ रहाउ ॥
(हे मनमुख, तेरी) जीभ हरी के प्रेम मे नहीं अनुरक्त हुई, (वह) जब भी बोलती है,
तभी फीके (वचन) बोलती है। (हे मनमुख तू) संत-जना की निन्दा में व्याप्त है। तू पशु हो
गया है। (इस प्रकार के गन्दे विचारों से) तू कभी अच्छा नहीं हो सकता ॥२॥
कोई विरला ही (साधक) (हरी नाम के) अमृत-रस को प्राप्त करता है (यह तभी
समव है) जब सद्गुरु इसका भेद मिलाता है। जब तक शब्द—नाम का भेद (रहस्य)
(समझ में) नहीं आ जाता, तब तक काल दुःख देता रहता है ॥३॥
(जो साधक) एक सच्चे परमात्मा के दरवाजे के अतिरिक्त अन्य किसी के घर-द्वार को
नहीं जानता (वह) गुरु की कृपा से परम पद को प्राप्त कर लेता है नानक (इस बात को)
विचारपूर्वक कहता है ॥४॥३॥७॥

[५]

सगली रैणि सोवत गलि फाही दिनसु जंजालि गवाइआ ।
खिनु पलु घड़ी नही प्रभु जानिआ जिनि इहु जगतु उपाइआ ॥१॥
मन रे किउ छूटसि दुख भारी ।
किआ ले आवसि किआ ले जावसि राम जपहु गुणकारी ॥१॥रहाउ॥
ऊंधउ कवलु मनमुख मति होछी मनि अंधै सिरि धंधा ।
कालु बिकालु सदा सिरि तेरै बिनु नावै गलि फंधा ॥२॥
डगरी चाल नेत्र फुनि अंधुले सबद सुरति नही भाई ।
सासत्र बेद त्रै गुण है माइआ अंधुलउ धंधु कमाई ॥३॥
खोइओ मूलु लाभु कह पावसि दुरमति गिआन बिहूणे ।
सबदु बीचारि राम रसु चाखिआ नानक साचि पतीणे ॥४॥७॥५॥

(सांसारिक मनुष्य ने) सोने मे सारी रात भर गले में पाश—बन्धन पड़े रहते है
उस व्यक्ति का दिन भी जंजाला (सांसारिक प्रपंचों में ही) व्यतीत होता है। जिस (प्रभु) ने
इस जगत् को उत्पन्न किया है, उस प्रभु को (उस मूर्ख प्राणी ने) एक पल एक क्षण और एक
घड़ी भर भी जानने की चेष्टा नहीं की ॥१॥
हे मन (तू, मला संसार के) महान् दुःखों से किस प्रकार छूट सकेगा ? (तू) क्या
लेकर (इस संसार में) आया है और क्या लेकर (यहाँ से) जायगा ? (हे मन तू) राम
(नाम) का (यह) अत्यंत गुणकारी है ॥१॥ रहाउ ॥
मनमुख का (हृदय रूपी) कमल उलटा है और उसकी बुद्धि ओछी है। मन अन्धा
होने के कारण उसके सिर पर (संसार के) धंधे पड़े रहते है। जन्म और मरण सदा तेरे सिर

पर बन रहा है [काल=मरण । विकाल का तात्पर्य काल का विपरीत अर्थात् जन्म। काल विकाल=जन्म और मरण] इस प्रकार बिना (हरि के) नाम के तेरे गले में (सदैव) फंदा पड़ा रहता है ॥२॥

(हे मनमुख तेरी) वाद बकवास वाली वाणी है और वेद पढ़े हैं, हे भाई तुझे शब्द—नाम की स्मृति नहीं है। (शब्द—नाम को छोड़कर) समस्त शास्त्र और वेद त्रिगुणात्मक हैं। अथवा (मनुष्य) (त्रिगुणात्मक) माया में ही बंधे रहता है ॥३॥

(मनुष्य जीवन रूपी) मूलधन को (व्यर्थ की सांसारिक बातों में) खो देने से (परमात्मा का भक्ति-रूपी-लाभ कहाँ से) प्राप्त होगा ? (इस प्रकार) दुर्बुद्धि ज्ञान से विहीन है। नानक ने (सच्चे गुरु के) शब्द उपदेश पर विचार करके राम-रस को चख लिया और सच्चे (परमात्मा) में विश्वास कर लिया ॥४॥४॥१५॥

[६]

गुर कै सबदि रहै दिनु राती रामु रसनि रंगि राता ।
अवरु न जाणसि सबदु पछाणसि अंतरि जाणि पछाता ॥१॥

सो जनु ऐसा मै मनि भावै ।
आपु मारि अपरंपरि राता गुर की कार कमावै ॥१॥ रहाउ ॥

अंतरि बाहरि पुरखु निरंजनु आदि पुरखु आदेसो ।
घट घट अंतरि सरब निरंतरि रवि रहिआ सचु वेसो ॥२॥

साचि रते सचु अंम्रितु जिहवा मिथिआ मैलु न राई ।
निरमलु नामु अंम्रित रसु चाखिआ सबदि रते पति पाई ॥३॥

गुणी गुणी मिलि लाहा पावसि गुरमुखि नामि वडाई ।
सगले दूख मिटहि गुर सेवा नानक नामु सखाई ॥४॥५॥१६॥

गुरु नानक देव कहते हैं कि हमें तो वह (मनुष्य) अच्छा लगता है जो दिन रात गुरु का संगति में रहकर शब्द पर विचार करता है। और हरि-रस में रहता हुआ गुरु की सेवा करता है। (ऐसा व्यक्ति परमात्मा को छोड़कर) और कुछ भी नहीं जानता, वह शब्द—नाम को पहचानता है, (वह अपने) अन्तर्गत (परमात्मा को) जान कर पहचान लेता है ॥१॥

नानक कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति मेरे मन को अच्छा लगता है जो अपने अहं को मार कर अपरंपार (परमात्मा) में अनुरक्त होकर, गुरु (द्वारा निर्दिष्ट) कार्यों को करता है ॥१॥ रहाउ ॥

निरंजन पुरुष अन्दर और बाहर (दोनों में व्याप्त है), उस आदि पुरुष को नमस्कार है। हरि सत्य के वेश में सभी के घट-घट में निरन्तर भाव से रम रहा है ॥२॥

(सच्चे साधक) सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त रहते हैं (उनकी) जिह्वा में सत्य (रूपी) अमृत का निवास रहता है, (उनमें) मिथ्या की राई भर की मैल नहीं (रहती)। (वे साधक) निर्मल नाम रूपी अमृत रस का चखते हैं, (वे) शब्द में रत रहते हैं (जिससे उन्हें) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥३॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु भैरउ, महला १, घरु २

असटपदीआ [१]

आतम महि रामु राम महि आतमु चीनसि गुर बीचारा ।
अंम्रित बाणी सबदि पछाणी दुख काटै हउ मारा ॥१॥

नानक हउमै रोग बुरे ।
जह देखां तह एका बेदन आपे बखसै सबदि धुरे ॥१॥रहाउ॥

आपे परखे परखणहारै बहुरि सूलाकु न होई ।
जिन कउ नदरि भई गुरि मेले प्रभ भाणा सचु सोई ॥२॥

पउणु पाणी बैसंतरु रोगी रोगी धरति सभोगी ।
मात पिता माइआ देह सि रोगी रोगी कुटंब संजोगी ॥३॥

रोगी ब्रहमा बिसनु सरुद्रा रोगी सगल संसारा ।
हरि पदु चीनि भए से मुकते गुर का सबदु वीचारा ॥४॥

रोगी सात समुंद सनदीआ खंड पताल सि रोगि भरे ।
हरि के लोक सि साचि सुहेले सरबी थाई नदरि करे ॥५॥

रोगी खट दरसन भेखधारी नाना हठी अनेका ।
बेद कतेब करहि कह बपुरे नह बूझहि इक एका ॥६॥

मिठ रसु खाइ सु रोगि भरीजै कंद मूलि सुखु नाही ।
नामु विसारि चलहि अनमारगि अंत कालि पछुताही ॥७॥

तीरथि भरमै रोगु न छूटसि पड़िआ बादु बिबादु भइआ ।
दुबिधा रोगु सु अधिक वडेरा माइआ का मुहताजु भइआ ॥८॥

गुरमुखि साचा सबदि सलाहै मनि साचा तिसु रोगु गइआ ।
नानक हरिजन अनदिनु निरमल जिन कउ करमि नीसाणु पइआ ॥९॥१॥

गुरु के विचार द्वारा यह बात समझती है कि जीवात्मा में हरी और हरी में जीवात्मा है। गुरु के उपदेश द्वारा अमृत-नाम पहचाना जाता है, जो (समस्त) दुःखों को काट देता है और अहंकार को मार देता है ॥ १ ॥

हे नानक, अहंकार का रोग बहुत ही बुरा होता है। जहाँ भी (मैं) देखता हूँ वहाँ (इसी) एक (अहंकार) का ही दुःख है। (गुरु के) शब्द द्वारा (प्रभु) आप ही आरम्भ से बचाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

परखनेवाला (प्रभु) आप ही (जीवों को) परखता है (प्रभु के परख लेने पर) फिर (जीव भोगावाले) घूमे में (परख) नहीं होती है। [खोटे खरे सोने को परखने क

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु बसंतु, महला १, घरु १, चउपदे, दुतुके

सबद [१]

माहा माह मुमारखी चड़िआ सदा बसंतु ।
परफड़ु चितु समालि सोइ सदा सदा गोबिंदु ॥१॥

भोलिआ हउमै सुरति विसारि ।
हउमै मारि बीचारि मन गुण विचि गुणु लै सारि ॥१॥रहाउ॥

करम पेडु साखा हरी धरमु फुलु फलु गिआनु ।
पत परापति छाव घणी चूका मन अभिमानु ॥२॥

अखी कुदरति कंनी बाणी मुखि आखणु सचु नामु ।
पति का धनु पूरा होआ लागा सहजि धिआनु ॥३॥

माहा रुती आवणा वेखहु करम कमाइ ।
नानक हरे न सूकही जि गुरमुखि रहे समाइ ॥४॥१॥

महीनों में यह महीना मुबारक है, (क्योंकि इसमें) सदा बसन्त चढ़ा रहता है। [इस स्थान पर आत्मिक प्रफुल्लता को 'सदा बसन्त' कहा गया है। बसन्त ऋतु तो साल में केवल दो महीने रहती है, पर आध्यात्मिक बसन्त सर्वकाल के लिए हो जाता है]। हे चित्त गोविन्द का सदा स्मरण करके प्रफुल्लित हो जा ॥ १ ॥

हे भोले, अहंकार में पड़कर (तूने) (हरी की) स्मृति बिसार दी है। (हे साधक), मन में विचार करके अहंकार को मार (तू) गुणों को सँभाल कर (इस से) (अर्थात् गुण गुणों में शुभ गुण को जोड़ दे) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

कर्म तना है हरी (या साधना) उसकी शाखा है धर्माचरण ही फूल है और ज्ञान-प्राप्ति फल है, हरी की प्राप्ति पत्ते हैं और मन के अभिमान का नष्ट हो जाना घनी छाया है ॥ २ ॥

आँखों से (हरी का दर्शन करना) कानों से (उसका श्रवण करना) और मुख से सच्चे नाम की वाणी (उच्चरित करना ही) (सच्ची) सुरत है। सहजावस्था के ध्यान में मगने से ही प्रतिष्ठा का फल पूरा होता है॥ ३॥

महीने और ऋतुएं तो (निरन्तर) आती जाती रहती हैं (अतएव) (हे प्राणी) कर्म कमा कर देख ले। हे नानक जो व्यक्ति गुरु द्वारा (हरी में) लीन रहते हैं, वे सदैव हरे भरे रहते हैं (और कभी) सूखते नहीं॥ ४॥ १॥

[२]

रुति आईले सरस बसंत माहि।
रंगि राते रवहि सि तेरै चाइ।
किसु पूज चड़ावउ लगउ पाइ॥१॥
तेरा दासनिदासा कहउ राइ।
जगजीवन जुगति न मिलै काइ॥१॥रहाउ॥
तेरी मूरति एका बहुतु रूप।
किसु पूज चड़ावउ देउ धूप॥
तेरा अंतु न पाइआ कहा पाइ॥
तेरा दासनिदासा कहउ राइ॥२॥
तेरे सठि संबत सभि तीरथा।
तेरा सचु नामु परमेसरा॥
तेरी गति अविगति नही जाणीऐ।
अणजाणत नामु वखाणीऐ॥३॥
नानकु वेचारा किआ कहै।
सभु लोकु सलाहे एकसै॥
सिरु नानक लोका पाव है॥
बलिहारी जाउ जेते तेरे नाव है॥४॥२॥

(उन्हीं आत्माओं की अर्चना के लिए) वसन्त ऋतु आई है और (वे) (इस वसंत ऋतु में) आनन्दित हैं—(कौन ? इसका कथन आगे की पंक्तियों में है)—जो (तेरे नाम में) अनुरक्त हैं और तेरे ही चाव—उत्साह में रमण करते हैं। (तुझे को छोड़ कर मैं) किस और को क्या पूजा चढ़ाऊं ?॥ १॥

हे राजा (हरी मैं) तेरे दासों का दास हूँ और कहता हूं कि किसी (अन्य साधन) से जीवन की मुक्ति नहीं प्राप्त होती है॥ १॥ रहाउ॥

(हे प्रभु), तेरी मूर्ति (स्वरूप) तो एक ही है (किन्तु) उसके स्वरूप बहुत से हैं। (मैं) किसे पूजा चढ़ाऊँ और (किसे) धूप (आदि सामग्री) निवेदित करूं ? (हे हरी)

तेरा अन्त नहीं पाया जा सकता (उसे) किस प्रकार प्राप्त किया जाय ? (मैं) तेरे दासों का दास हूँ और निवेदन कर रहा हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु) साठ संवत् (तात्पर्य यह कि समस्त वर्ष) और तीर्थ तेरे ही हैं । हे परमेश्वर तेरा नाम सच्चा है । (हे हरी) तेरी भक्ति अव्यक्त है, (यह) जानी नहीं जाती । (अतएव) बिना जाने ही तेरे नाम का गुणगान (और चिन्तन) करना चाहिए ॥ ३ ॥

(हे स्वामी) बेचारा नानक, तेरा क्या वर्णन करे ? सभी लोग उस एक प्रभु की ही स्तुति करते हैं । (जो गुरुमुख अहर्निश उसी उपासना में लीन रहते हैं) (उन) लोगों के चरणों में नानक का सिर (समर्पित है) । जितने भी तेरे नाम हैं, (मैं उन सब की) बलैया लेता हूँ ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

सुइने का चउका कंचन कुआर । रुपे कीआ कारा बहुतु बिसथारु ॥
गंगा का उदकु करंते की आगि । गरुड़ा खाणा दुध सिउ गाडि ॥१॥
रे मन लेखै कबहू न पाइ । जामि न भीजै साच नाइ ॥१॥ रहाउ ॥
दस अठ लीखे होवहि पासि । चारे बेद मुखागर पाठि ॥
पुरबी नावै वरना की दाति । वरत नेम करे दिन राति ॥२॥
काजी मुलां होवहि सेख । जोगी जंगम भगवे भेख ॥
को गिरही करमा की संधि । बिनु बूझे सभ खड़ीअसि बंधि ॥३॥
जेते जीअ लिखी सिरि कार । करणी उपरि होवगि सार ॥
हुकमु करहि मूरख गावार । नानक साचे के सिफति भंडार ॥४॥३॥

(चाहे) सोने का चौका हो और सोने ही की गागरें हों (सोने के चौके के चारों ओर) चाँदी की लकीरें—ऐसा बहुत विस्तार के साथ (खींची गई हों) गंगा-जल (पीने के लिए हो) और यज्ञ की पवित्र अग्नि में (भोजन बनाया गया हो) कोमल भोजन दूध में मिला कर (खाया जाय) ॥ १ ॥

(किन्तु) हे मन (उपर्युक्त ऐश्वर्य-सामग्रियों से) कभी (हरी के यहाँ का) लेखा-हिसाब नहीं पाया जाता । जब तक (हरी के) सच्चे नाम में अनुरक्त न हुआ जाय (उपर्युक्त सम्पूर्ण किसी लेखे में नहीं आती) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अठारह पुराण पास हों जिन्हें लिख रखे हों चारों वेदों का पाठ मुखाग्र (कण्ठस्थ) हो (मनुष्य) त्योहारों पर स्नान किए जायें विभिन्न वर्णों के (नियमानुसार) दान दिए जायें (और साथ ही) अहर्निश नियम-व्रत किए जायें (किन्तु बिना हरी-नाम की प्राप्ति के सभी व्यर्थ हैं) ॥ २ ॥

(चाहे) काजी मुल्ला और शेख हों (अथवा) भगवे वेषधारी जोगी-जंगम हों अथवा कोई गृहस्थी कर्मों को निभाने वाला हो—तात्पर्य यह कि कर्मकाण्डी हो (पर) बिना (हरी को अनुभूति) समझे हुए, सभी लोग बाँध कर (यहाँ से) ले जाए जाते हैं ॥ ३ ॥

जितने भी जीव हैं (सभी के) सिर पर (हरी का) हुक्म लिखा है। (मनुष्य की) करनी के अनुसार ही सत्य—असत्य का निर्णय होगा। (जो लोगों पर) शासन करने (की भावना रखते हैं) वे गँवार और मूर्ख हैं। हे नानक सच्चे (हरी) के यश अथवा कीर्ति के भाण्डार (भरे पड़े हैं) ॥ ४ ॥ २ ॥

[४]

समस्त भवन तेरी माइआ मोहु। मै अवरु न दीसै सरब तोहु ॥
तू सुरि नाथा देवा देव। हरिनामु मिलै गुर चरन सेव ॥१॥
मेरे सुंदर गहिर गंभीर लाल।
गुरमुखि राम नाम गुन गाए तू अपरंपरु सरब पाल ॥१॥ रहाउ ॥
बिनु साध न पाईऐ हरि का संगु। बिनु गुर मैल मलीन अंगु ॥
बिनु हरि नाम न सुधु होइ। गुर सबदि सलाहि साचु सोइ ॥२॥
जा कउ तू राखहि रखनहार। सतिगुरू मिलावहि करहि सार ॥
बिखु हउमै ममता परहराइ। सभि दूख बिनासे रामराइ ॥३॥
ऊतम गति मिति हरि गुन सरीर। गुरमति प्रगटे राम नाम हीर।
लिव लागी नामि तजि दूजा भाउ। जन नानक हरि गुरु गुर मिलाउ ॥४॥४॥

(हे प्रभु) समस्त भुवनों (लोकों) में तेरी ही माया का मोह फैला हुआ है। मुझे और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता सब कुछ तू ही तू है। तू देवताओं का नाथ और उनका भी देव है। गुरु के चरणों की सेवा से ही हरिनाम प्राप्त होता है ॥ १ ॥

हे मेरे सुन्दर गहरे और गंभीर (विचारवाले) स्वामी (साधक) गुरु के उपदेश द्वारा रामनाम का गुणगान करता है। हे अपरंपार स्वामी तू सभी का पालनकर्ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बिना साधु के हरि के संग की प्राप्ति नहीं होती। बिना गुरु के यह मनुष्य का अंग (तात्पर्य यह कि जीवन) मलीन रहता है और उसकी शुद्धि हरिनाम के बिना नहीं हो सकती। (जो साधक) गुरु के शब्द द्वारा हरी की स्तुति करता है वही सच्चा होता है ॥ २ ॥

हे रक्षा करनेवाले (प्रभु) जिसकी तू रक्षा करता है उसे तू गुरु मिला देता है और (इस प्रकार उसकी) संभाल करता है और उसके अहंकार तथा ममता के विष को दूर करता है। राजा राम ही सारे दुःखों का नाश करता है ॥ ३ ॥

शरीर में हरी के गुणों को धारण करने से साधक की गति-मिति (अवस्था) ऊँची हो जाती है। गुरु के उपदेश द्वारा ही राम नाम रूपी हीरा प्रकट होता है। द्वैतभाव के त्यागने से रामनाम की लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग जाती है। भक्त नानक (का कथन है कि) गुरु ही हरी रूपी गुरु को मिलाता है ॥ ४ ॥

[५]

मेरी सखी सहेली सुनहु भाइ । मेरा पिरु रीसालू संगि साइ ॥
ओहु अलखु न लखीऐ कहहु काइ । गुरि संगि दिखाइओ राम राइ ॥१॥

मिलु सखी सहेली हरि गुन बने ।
हरि प्रभ संगि खेलहि वर कामनि गुरमुखि खोजत मन मने ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुखी दुहागणि नाहि भेउ । ओहु घटि घटि रावै सरब प्रेउ ॥
गुरमुखि थिरु चीनै संगि देउ । गुरि नामु द्रिड़ाइआ जपु जपेउ ॥२॥

बिनु गुर भगति न भाउ होइ । बिनु गुर संत न संगु देइ ॥
बिनु गुर अंधुले धंधु रोइ । मनु गुरमुखि निरमलु मलु सबदि खोइ ॥३॥

गुरि मनु मारिओ करि संजोगु । अहिनिसि रावे भगति जोगु ।
गुर संत सभा दुखु मिटै रोगु । जन नानक हरि वरु सहज जोगु ॥४॥५॥

हे मेरी सखी सहेली ध्यानपूर्वक सुन—मेरा रसिक प्रिय (मेरे) साथ ही है । वह अलक्ष्य प्रभु दिखाई नहीं पड़ता (भला) बताओ, (उसकी प्राप्ति) किस प्रकार हो ? गुरु का संग राजा राम को दिखा देता है ॥ १ ॥

(हे सखी सजनी) सखी-सहेलियों से मिल, (उनसे मिलने ही पर) हरि के गुण फबते हैं । प्रभु हरी (रूपी) वर के साथ (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ क्रीड़ा करती हैं गुरु द्वारा (हरी की) खोज करने से मन मान जाता है—शान्त हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

दुहागिनी मनमुखी (स्त्रियाँ—जीवात्माएँ हरी से बिछुड़ी होने के कारण) इस भेद को नहीं जानतीं कि सब का प्रियतम वह (हरी) घट घट में रम रहा है । गुरमुख शिष्य अपने साथ ही हरि देव को स्थिर रूप में जानता है । गुरु ने अपने योग्य हरी के नाम को दृढ़ करा दिया ॥ २ ॥

बिना गुरु के न भक्ति होती है और न भाव । बिना गुरु के (हरी) संतों का साथ नहीं देता । गुरु के बिना मनुष्य (अज्ञान में) अन्धे रहते हैं (और सांसारिक) धन्धों में रोते रहते हैं । मन गुरु के शब्द द्वारा अपनी मैल दूर करके निर्मल हो जाता है ॥ ३ ॥

गुरु ने अपना संयोग (स्थापित करके शिष्य के अहंकारी) मन को मार दिया (जिससे शिष्य) अहर्निश भक्ति योग में लीन रहता है । गुरु और संत-सभा में दुःख और रोग मिट जाते हैं । नानक भक्त कहता है कि सहज योग से हरि रूपी वर प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

आपे कुदरति करे साजि । सचु आपि निबेड़े राजु राजि ॥
गुरमति ऊतम संगि साथि । हरि नामु रसाइणु सहजि आथि ॥१॥

मत बिसरसि रे मन राम बोलि ।
अपरंपरु अगम अगोचरु गुरमुखि हरि आपि तुलाए अतुलु तोलि ॥१॥ रहाउ ॥

गुर चरन सरेवहि गुर सिख तोर । गुर सेव तरे तजि मेर तोर ॥
नर निंदक लोभी मनि कठोर । गुर सेव न भाई सि चोर चोर ॥ २ ॥
गुरु तुठा बखसे भगति भाउ । गुरि तुठै पाईऐ हरि महलि ठाउ ॥
परहरि निंदा हरि भगति जागु । हरि भगति सुहावी करमि भागु ॥ ३ ॥
गुरु मेलि मिलावै करे दाति । गुर सिख पिआरे दिनसु राति ।
फलु नामु परापति गुरु तुसि देइ । कहु नानक पावहि विरले केइ ॥ ४ ॥ ६ ॥

(प्रभु) आप ही कुदरत—प्रकृति की रचना करता है । (वह) अपनी हुकूमत करके सत्य निर्णय करता है । (प्रभु ही) उत्तम गुरमत द्वारा (आध्यात्मिक) संग—साथ (प्रदान करता है) । सहजावस्था में ही नाम रूपी रसायन (प्रकट होता है) । [राजुराजि=राजु=हुकूमत राजि=राज करके हुकूमत जमा कर । आथि<अस्ति=है] ॥ १ ॥

हे मन राम राम कह (इसे) भूल मत । अपरंपार अगम तथा अगोचर हरी अनुपमेय होते हुए भी गुरु के द्वारा अपने को दिखा देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) तेरे गुरमुख व्यक्ति गुरु की आराधना करते हैं । (सच्चे शिष्य) गुरु की सेवा से मेरी-तेरी (भावना) को त्याग कर मुक्त हो जाते हैं । (जो) व्यक्ति निन्दक लोभी तथा कठोर मन के हैं, (उन्हें) गुरु की सेवा नहीं अच्छी लगती और (वे) चोरों में चोर हैं अर्थात् महान् चोर हैं ॥ २ ॥

संतुष्ट होने पर गुरु भक्ति और प्रेम प्रदान करता है । गुरु के संतुष्ट होने पर हरि के महलों में स्थान पाया जाता है । (हे शिष्य) निन्दा त्याग कर हरि भक्ति में जग । हरी की भक्ति का भाग (हिस्सा) (परमात्मा की) कृपा से ही प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(परमात्मा अपनी कृपा से) दान में सद्गुरु का मेल मिलाता है (जिससे परस्पर) सद्गुरु और प्रिय शिष्य दिन रात (एक रहते हैं) । सद्गुरु संतुष्ट होकर (हरि)-नाम प्राप्ति रूपी फल प्रदान करता है । नानक कहता है कि कोई विरले (भाग्यशाली) ही (हरि-नाम को) प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ ६ ॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ बसंतु हिंडोल, घरु २ ॥

[७]

सालग्राम बिप पूजि मनावहु सुकृतु तुलसी माला ।
राम नामु जपि बेड़ा बांधहु दइआ करहु दइआला ॥ १ ॥
काहे कलरा सिंचहु जनमु गवावहु ।
काची ढहगि दिवाल काहे गचु लावहु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
कर हरिहट माल टिंड परोवहु तिसु भीतरि मनु जोवहु ॥
अम्रितु सिंचहु भरहु किआरे तउ माली के होवहु ॥ २ ॥

हे मेरे साहब मैं भ्रम रही (माया के) भ्रम में भटकती फिरती हूँ। मेरे सिर पर जो तेरे हुक्म की लिखावट लिखी गई है, उसी के अनुसार करती हूँ अपनी ओर से अब कोई अन्य बनावट नहीं बन सकती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि (नाम रूपी) कसीदे को काढ़ कर, (प्रेम रूपी) चोली धारण कर, तभी तू (सच्चे घर में) स्त्री जानी जा सकती है। (हे जीवात्मा रूपी स्त्री) यदि (परमात्मा रूपी प्रियतम) तुझे (अपने) घर में रख ले तो तू बुराई नहीं अनुभव कर अपनी ओर स्वामी को (अत्यन्त) प्यारी हो जायगी ॥ २ ॥

(यदि तू) जो अक्षर के दो नामों को पढ़ ले तो तू पवित्र और द्रष्टा हो जायगी। नानक विनय करके कहता है एक (हरी) ही उन्हें (इस संसार-सागर से) पार कर सकता है, जो सच्चे नाम से उस (सच्चे हरी में) समाहित हैं ॥ ३ ॥ २ ॥ ८ ॥

[९]

राजा बालकु नगरी काची दुसटा नालि पिआरो ।
दुइ माई दुइ बापा पड़ीअहि पंडित करहु बीचारो ॥१॥
सुआमी पंडिता तुम्ह देहु मती । किन बिधि पावउ प्रानपती ॥१॥ रहाउ ।
भीतरि अगनि बनासपति मउली सागरु पंडै पाइआ ।
चंदु सूरजु दुइ घर ही भीतरि ऐसा गिआनु न पाइआ ॥२॥
राम रवंता जाणीऐ इक माई भोगु करेइ ।
ता के लखण जाणीअहि खिमा धनु संग्रहेइ ॥३॥
कहिआ सुणहि न खाइआ मानहि तिन्हा ही सेती वासा ।
प्रणवति नानकु दासनिदासा खिनु तोला खिनु मासा ॥४॥ ३॥९॥

(मन रूपी) राजा बालक है (शरीर रूपी) नगरी कच्ची (नश्वर) है और (इसका) प्रेम (कामादिक) दुष्टों से है। (इस शरीर की) दो माताएं (आशा और तृष्णा) और दो पिता (राग और द्वेष) पढ़े जाते हैं। हे पंडित (उपर्युक्त तथ्य पर) विचार कर ॥ १ ॥

(हे) स्वामी (हे) पंडित तू (मुझे) यह बुद्धि दे कि प्राणपति (हरी) को किस प्रकार प्राप्त करूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वनस्पतियों के अन्तर्गत अग्नि है (तथापि) वे हरी की इच्छा से हरी भरी (प्रफुल्लित) रहती हैं सागर भी मर्यादा के भीतर बंधा रहता है चन्द्रमा और सूर्य (दोनों ही अपने काम स्वरूपों) घर में (स्थित हैं) (तथापि) इस प्रकार का ज्ञान नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥

राम का (वास्तविक) स्मरण करनेवाला उसे समझना चाहिये जो माया के भोग में (गूढ़ हो जाय) (भाव यह कि माया के भोगों का अन्तर समझ कर उसमें निपुण हो जाय) उन भोगों में आसक्ति न रखे)। उस (राम में रमण करनेवाले का प्रमुख) लक्षण यह है कि वह क्षमा-धन का संग्रह करता है ॥ ३ ॥

ऐसे व्यक्तियों को बन्धनमुक्त समझना चाहिये जो सदा सुनते नहीं और समझा हुआ मानते नहीं, (वे कृतघ्नी हैं) । (प्रभु के) दासों का दास नानक कहता है कि (यह मन) क्षण में छोटा और क्षण में मोटा हो जाता है, (अर्थात् मन की स्थिति सदैव बदलती रहती है, कभी यह ऊँचा हो जाता है और कभी नीचा) ॥ ४ ॥ ३ ॥ ६ ॥

[१०]

साचा साहु गुरू सुखदाता हरि मेले भुख गवाए ।
करि किरपा हरि भगति द्रिड़ाए अनदिनु हरि गुण गाए ॥१॥

मत भूलहि रे मन चेति हरी ।
बिनु गुर मुकति नाही त्रै लोई गुरमुखि पाईऐ नामु हरी ॥१॥ रहाउ ॥

बिनु भगती नही सतिगुरु पाईऐ बिनु भागा नही भगति हरी ।
बिनु भागा सतसंगु न पाईऐ करमि मिलै हरिनामु हरी ॥२॥

घटि घटि गुपतु उपाए वेखै परगटु गुरमुखि संत जना ।
हरि हरि करहि सु हरि रंगि भीने हरि जलु अंम्रित नामु मना ॥३॥

जिन कउ तखति मिलै वडिआई गुरमुखि से परधान कीए ।
पारसु भेटि भए से पारस नानक हरि गुरि संगि थीए ॥४॥४॥१ ॥

गुरु ही सच्चा साहु और सुख देनेवाला है (वह शिष्य को) हरी से मिला कर (उसकी सांसारिक) भूख मिटा देता है । (सद्गुरु) कृपा करके (शिष्य की) हरि भक्ति दृढ़ करता है (जिससे वह) प्रतिदिन हरि का गुणगान करता है ॥ १ ॥

हे मन भूल मत कर हरी का स्मरण कर । बिना गुरु के तीनों लोकों में (कहीं भी) मुक्ति नहीं मिल सकती । गुरु के उपदेश द्वारा ही हरी का नाम पाया जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बिना भक्ति के सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती और बिना भाग्य के हरि भक्ति नहीं प्राप्त होती । बिना भाग्य के सत्संग भी नहीं पाया जाता । (परमात्मा की कृपा से) हरिनाम मिलता है ॥ २ ॥

(हरी) सृष्टि उत्पन्न करके, (उसकी) देखभाल करता है (वह घट-घट में रमता हुआ भी गुप्त है; (किन्तु) गुरु द्वारा संत-लोगों के बीच प्रकट होता है । (जो व्यक्ति निरन्तर) हरि-हरि करते हैं वे उस हरी के रंग में रंग जाते हैं और उनके मन में हरि-नाम रूपी अमृत जल का (वास होता है) ॥ ३ ॥

जिन्हें (हरी की ओर से) तख्त के ऊपर बैठने की बड़ाई प्राप्त होती है वे गुरु के द्वारा प्रधान बनाए जाते हैं । (वे) (गुरु रूपी) पारस का स्पर्श करके (स्वयं भी) पारस हो जाते हैं । नानक कहता है कि (वे लोग) सदैव हरी रूपी गुरु के साथ ही (एक) हो जाते हैं ॥ ४ ॥ ४ ॥ १ ॥

की भी स्थिति है)। (प्रभु ने) बूँद मात्र से चाक फिरा कर शरीर को बना दिया है। [तात्पर्य यह कि जिस प्रकार कुम्हार अपनी चाक पर अनेक मिट्टी के बरतनों का निर्माण करता है, उसी प्रकार प्रभु ने अपनी चाक पर बिन्दु (वीर्य के एक बूँद) से प्राणियों का शरीर बना देता है]। सारी ज्योतियाँ नाम की ही चेरी हैं ॥ २ ॥

सभी को रचकर, (उनका) सिरमौर तुम (तू ही) है। (तेरी महिमा का अनुमान कर मैं) तेरी भक्ति करता हूँ और (तेरे) चरणों में पड़ता हूँ। (हे प्रभु, मैं तेरे) नाम में मस्त होकर, तेरी ही ओर देखता रहता हूँ। जो नाम का छिपा कर चलता है, वह चोर है ॥ ३ ॥

(नाम को भुलानेवाला व्यक्ति) प्रतिष्ठा खोकर, अन्त में (सांसारिक विषय रूपी) विष पाता है। (जो व्यक्ति) सच्चे नाम में अनुरक्त है (वह) प्रतिष्ठा के साथ (अपने वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर में जाता है। जो कुछ (हरी ने) किया है, वह अपनी मर्जी के अनुसार किया है। हे मेरी माँ जो व्यक्ति हरी के भय को मानता है वह निर्भय हो जाता है ॥ ४ ॥

स्त्री चाहती है कि सुन्दरी (होऊँ) और (विविध प्रकार के) भोग भोगूँ—(यथा) पान (खाऊँ) फूलों (की शय्या पर सोऊँ) मीठे रसों (का आस्वादन करूँ)। (किन्तु वह शोभा में जितना अधिक) खिलती और विकसित होती है, (उतना ही अधिक) शोक (भी) करती है। पर जो प्रभु की शरण में है, (वह जो कुछ भी) करना चाहती है, वह हो जाता है ॥ ५ ॥

(स्त्री खूब सुन्दर सुन्दर) कपड़े पहनती है और खूब शृंगार करती है, (किन्तु उसका भाग्य ऐसा कि) मिट्टी फूली हुई है और विकार रूप हुई है। आशा और मनसा ने (हरी का) दरवाजा रोक रखा है। नाम के बिना दरबार सूना है ॥ ६ ॥

हे पुत्री हे राजकुमारी भागी जाओ। दिन गुजार कर (अनुग्रह वेला अथवा ब्राह्म-मुहूर्त को संभाल कर) सच्चा नाम जपो। (प्रभु के प्रेम के आधार पर प्रियतम (हरी) की सेवा करो। गुरु के शब्दों द्वारा (विषयों के) विष की तृष्णा निवारण करो ॥ ७ ॥

मोहन (हरी) ने मेरा मन मोह लिया है। (हे हरी मैंने) गुरु के शब्द द्वारा तुझे पहचान लिया है। नानक प्रभु के दरवाजे पर खड़ा होकर उसे देखना चाहता है। हे प्रभु, तू यह कृपा कर कि तेरे नाम से (मुझे) संतोष प्राप्त हो ॥८॥१॥

[२]

मनु भूलउ भरमसि आइ जाइ। अति लुबध लुभानउ बिखम माइ ॥
नह असथिर दीसै एक भाइ। जिउ मीन कुंडलीआ कंठि पाइ ॥१॥

मनु भूलउ समझसि साच नाइ। गुर सबदु बीचारे सहज भाइ ॥१॥ रहाउ ॥
मनु भूलउ भरमसि भवर तार। बिल बिरथे चाहै बहु बिकार।
मैगल जिउ फाससि कामहार। कड़ि बंधनि बाधिओ सीस मार ॥२॥

मनु मुगधौ दादरु भगति हीनु। दरि भ्रसट सरापी नाम बीनु ॥
ता कै जाति न पाती नाम लीन। सभि दूख सखाई गुणह बीन ॥३॥

सदैव के लिए मुक्त हो जाता है, (फिर उसे) कोई बाँध नहीं सकता। (ऐसा व्यक्ति) सदैव नाम का ही वर्णन करता है, अन्य किसी (वस्तु) का नहीं ॥ ६ ॥

(जीवन्मुक्त पुरुषों का) मन हरी की आज्ञा में आता जाता है। सभी में एक (हरी ही व्याप्त है) कुछ कहने नहीं बनता। सभी कुछ (हरी के) हुक्म में बरत रहा है (और अन्त में) हुक्म में ही समा जाता है। उसी (हरी) की ही मर्जी से सब दुःख-सुख होते हैं ॥ ७ ॥

(हे प्रभु) तू न भूलनेवाला है और कभी नहीं भूलता। गुरु का शब्द सुनाने से (साधक की) बुद्धि अगाध हो जाती है। (हे ठाकुर) तू बहुत बड़ा है (और गुरु के) शब्द में (विद्यमान) है। हे नानक, सत्य की स्तुति करके मन मान गया (शान्त हो गया) ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

दरसन की पिआस जिसु नर होइ। एकतु राचै परहरि दोइ ॥
दूरि दरदु मथि अमृतु खाइ। गुरमुखि बूझै एक समाइ ॥१॥
तेरे दरसन कउ केती बिललाइ। विरला को चीनसि गुर सबदि मिलाइ ॥१॥
॥ रहाउ ॥
बेद वखाणि कहहि इकु कहीऐ। ओहु बेअंतु अंतु किनि लहीऐ ॥
एको करता जिनि जगु कीआ। बाझु कला धरि गगनु धरीआ ॥२॥
एको गिआनु धिआनु धुनि बाणी। एकु निरालमु अकथ कहाणी ॥
एको सबदु सचा नीसाणु। पूरे गुर ते जाणै जाणु ॥३॥
एको धरमु द्रिड़ै सचु कोई। गुरमति पूरा जुगि जुगि सोई ॥
अनहदि राता एक लिवतार। ओहु गुरमुखि पावै अलख अपार ॥४॥
एको तखतु एको पातिसाहु। सरबी थाई वेपरवाहु।
तिस का कीआ त्रिभवण सारु। ओहु अगमु अगोचरु एकंकारु ॥५॥
एका मूरति साचा नाउ। तिथै निबड़ै साचु निआउ ॥
साची करणी पति परवाणु। साची दरगह पावै माणु ॥६॥
एका भगति एको है भाउ। बिनु भै भगती आवण जाउ ॥
गुर ते समझि रहै मिहमाणु। हरि रसि राता जनु परवाणु ॥७॥
इत उत देखउ सहजे रावउ। तुझ बिनु ठाकुर किसै न भावउ ॥
नानक हउमै सबदि जलाइआ। सतिगुरि साचा दरसु दिखाइआ ॥८॥३॥

जिस व्यक्ति को (हरी के) दर्शन की प्यास—चाह होती है, वह द्वैत का परित्याग करके एकत्व सत्य—परमतत्व में अनुरक्त रहता है। (वह सांसारिक) दुःखों को दूर करके (भक्ति रूपी) अमृत भक्षण कर जाता है। गुरु द्वारा (परमात्मा के रहस्य को) समझ कर (वह) एक हरी में समा जाता है ॥ १ ॥

(हे हरी), तेरे दर्शन के निमित्त कितने ही लोग बिसमाने रहते हैं (किन्तु) गुरु के शब्द के संयोग से—प्रेम से कोई विरला ही (तुझे) पहचान पाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वेद व्याख्या करके कहते हैं कि एक (हरी) को ही कहना चाहिए—जपना चाहिए। वह (हरी) बेअंत है, उसका अंत किसने पाया है? (अर्थात् किसी ने भी नहीं) एक ही कर्ता (पुरुष) है, जिसने जगत् की रचना की है। बिना किसी कला के ही आकाश धारण कर रखा है ॥ २ ॥

एक गुरुवाणी का उच्चारण ही ज्ञान-ध्यान है। एक निरंजन (हरी) की ही अकथनीय कहानी—वार्ता है। (गुरु का) एक शब्द ही सच्चा निशान है। (हे साधक) पूर्ण गुरु से जानने योग्य (हरी को) जान ॥ ३ ॥

यदि कोई धर्म को समझे (तो सारे) धर्म एक हैं। गुरु की बुद्धि द्वारा (यह बोध होता है कि) वही पुरुष (हरी) युग-युगान्तरों में (व्याप्त है)। (जो हरी के) अनाहत शब्द में एकाग्र होकर स्थिर और एकनिष्ठ ध्यान लगाए रखता है, वही गुरमुख अलख और अपार (हरी) को पाता है ॥ ४ ॥

एक पातशाह (बादशाह अर्थात् परमात्मा) का एक ही तख्त है और वह बेमुहताज सभी स्थानों में (रम रहा है)। दोनों भुवनों के रूप उसी द्वारा रचे गए हैं वह (हरी) अगम, अगोचर और एकंकार है ॥ ५ ॥

(हरी का) एक ही स्वरूप—रूप है और उसका नाम सच्चा (अर्थात् वह सत्य नामवाला है)। वहीं पर (उसी के यहाँ) सच्चे न्याय से निर्णय होता है। सच्ची करनी से ही प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता (प्राप्त होती है) और सच्चे दरबार पर मान प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

एक ही भक्ति और एक ही भाव होना चाहिए। बिना (हरी के) भय और भक्ति के (मनुष्य का) आना-जाना (बना रहता है)। (हे साधक) गुरु के द्वारा (परमात्म तत्त्व) समझ कर (इस संसार में) मेहमान की भाँति रह। प्रामाणिक व्यक्ति हरि-रस में अनुरक्त रहते हैं ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), (मैं) इधर उधर देखता हूँ और सहजभाव से—प्रेम से (तुझे ही) स्मरण करता हूँ (क्योंकि) हे ठाकुर (स्वामी) तेरे बिना मुझे कोई और नहीं अच्छा लगता। नानक ने शब्द—नाम के द्वारा अहंकार जला दिया है। सद्गुरु ने मुझे (हरी का) सच्चा ज्ञान करा दिया है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

चचलु चीतु न पावै पारा। आवत जात न लागै बारा॥
दूखु घणो मरीऐ करतारा। बिनु प्रीतम को करै न सारा॥१॥
सभ ऊतम किसु आखउ हीना। हरि भगती सचि नामि पतीना॥१॥रहाउ॥
अउखध करि थाकी बहुतेरे। किउ दुखु चूकै बिनु गुर मेरे॥
बिनु हरि भगती दूख घणेरे। दुख सुख दाते ठाकुर मेरे॥२॥

रोगु वडो किउ बांधउ धीरा। रोगु बुझै सो काटै पीरा ॥
मै अवगण मन माहि सरीरा। ढूढत खोजत गुरि मेले बीरा ॥३॥

गुर का सबदु दारू हरि नाउ। जिउ तू राखहि तिवै रहाउ ॥
जगु रोगी कह देखि दिखाउ। हरि निरमाइलु निरमलु नाउ ॥४॥

घर महि घरु जो देखि दिखावै। गुर महली सो महलि बुलावै ॥
मन महि मनूआ चित महि चीता। ऐसे हरि के लोग अतीता ॥५॥

हरख सोग ते रहहि निरासा। अंम्रितु चाखि हरि नामि निवासा ॥
आपु पछाणि रहै लिव लागा। जनमु जीति गुरमति दुखु भागा ॥६॥

गुरि दीआ सचु अंम्रितु पीवउ। सहजि मरउ जीवत ही जीवउ ॥
अपणो करि राखहु गुर भावै। तुमरो होइ सु तुझहि समावै ॥७॥

भोगी कउ दुखु रोग विआपै। घटि घटि रवि रहिआ प्रभु जापै।
सुख दुख ही ते गुर सबदि अतीता। नानक रामु रवै हित चीता ॥८॥४॥

चित चंचल है, (अतः संसार में ही भटकता रहता है, किन्तु) उसका पार नहीं पाता; (चलायमान चित्त के कारण परमात्मा की समझ नहीं आती जिससे मनुष्य को संसार चक्र में) आने-जाने देर नहीं लगती। हे शरीर, अत्यधिक दुःख होने के कारण (सांसारिक और ममतासक्त प्राणी निरन्तर) मरता रहता है। बिना प्रियतम (हरि) के कोई भी खबर नहीं लेता ॥ १ ॥

(इस संसार में) सभी कोई उत्तम हैं, (मैं) हीन किसे कहूँ? हरि भक्ति (और हरि के) सच्चे नाम में (आप) तृप्त हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बहुत सी औषधियों को करके थक गई, (किन्तु मेरे दुःखों की समाप्ति नहीं हुई) (भला) बिना गुरु के मेरे दुःखों की समाप्ति किस प्रकार हो? बिना हरि भक्ति के दुःखों की अधिकता रहती है। हे मेरे दाता ठाकुर (मालिक) सभी सुख-दुःख तेरे ही हैं ॥ २ ॥

(इस संसार में) बड़े-बड़े रोग हैं (मैं) किस प्रकार धैर्य बाँधूँ? (जो गुरु) रोग को जानता है (वही) व्यथा काट सकता है। मेरे मन और शरीर में अवगुण ही अवगुण हैं। हे भाई (वीर) ढूँढते-खोजते गुरु से मिलाप हो गया ॥ ३ ॥

गुरु का शब्द और हरिनाम ही दवाई है। (हे हरि मुझे) जिस भाँति रखो उसी भाँति रहूँ। (सारा) जगत् ही रोगी है (तो फिर) किसको दिखाकर (अपना) रोग दिखाऊँ? हरी ही पवित्र है और (उसका) नाम निर्मल है ॥ ४ ॥

(जो गुरु) (मन रूपी) घर के अन्दर (हरी का) घर देख कर (औरों को) दिखा देता है वह गुरु के महल द्वारा (हरी के) महल में बुला लेता है। हरी के भक्तगण ऐसे अतीत (वैराग्यवान्) होते हैं कि अपने मन और चित्त के भीतर ही (वास्तविक) मन और चित्त प्राप्त कर लेते हैं। (आशय यह कि अपने ज्योतिर्मय मन द्वारा हरी का साक्षात्कार कर लेते हैं) ॥ ५ ॥

(परमात्मा के भक्तगण) हर्ष और शोक में निराश (उदासीन) हो जाते हैं (वे नाम रूपी) अमृत चखते हैं (और साथ ही) हरिनाम में निवास करते हैं। (वे) अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान कर, (उसी के) ध्यान में लगे रहते हैं। गुरु के उपदेश से वे जन्म (की बाजी) जीत लेते हैं (और उनके समस्त) दुःख भग जाते हैं ॥ ६ ॥

गुरु ने (मुझे) सच्चा (नाम रूपी) अमृत दे दिया है, (मैं उसी को) पीता हूं। (मैं गुरु-कृपा से) सहजावस्था में (स्थित होकर अपने अहंभाव से) मर गया हूं (और अब) जीवित ही जीवन्मुक्त हो गया हूं। हे गुरु (यदि तुम्हें) अच्छा लगे (तो मुझे) अपना समझ कर रख। [कई प्रतियों में यह पाठ 'रखउ' है। पर आगे की पंक्ति के भावानुसार 'राखु' ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है]। (हे प्रभु, जो व्यक्ति) तेरा हो जाता है, वह तुझी में समा जाता है ॥ ७ ॥

दुःख और रोग भोगियों को ही व्यापते हैं। (किन्तु) (जो भाग्यशाली साधक) गुरु के उपदेश द्वारा दुःख-सुख से अतीत हो गए हैं (उन्हें) घट-घट में रमता हुआ प्रभु (स्पष्ट) प्रतीत होता है। नानक तो किसी प्रेम में राम में रमण करता है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

इकतुकीआ

मनु भसम अंधूले गरबि जाहि। इन बिधि नागे जोगु नाहि ॥१॥
मूड़े काहे बिसारिओ तै राम नाम। अंत कालि तेरै आवै काम ॥रहाउ॥
गुर पूछि तुम करहु बीचारु। जह देखउ तह सारिगपाणि ॥२॥
किआ हउ आखा जां कछू नाहि। जाति पति सभ तेरै नाइ ॥३॥
काहे मालु दरबु देखि गरबि जाहि। चलती बार तेरो कछू नाहि ॥४॥
पंच मारि चितु रखहु थाइ। जोग जुगति की इहै पांइ ॥५॥
हउमै पैखड़ु तेरे मनै माहि। हरि न चेतहि मूड़े मुकति जाहि ॥६॥
मत हरि विसरिऐ जम वसि पाहि। अंत कालि मूड़े चोट खाहि ॥७॥
गुर सबदु बीचारहि आपु जाइ। साच जोगु मनि वसै आइ ॥८॥
जिनि जीउ पिंडु दिता तिसु चेतहि नाहि। मड़ी मसाणी मूड़े जोगु नाहि ॥९॥
गुण नानकु बोलै भली बाणि। तुम होहु सुजाखे लेहु पछाणि ॥१० ॥५॥

हे भस्म के अन्धे मन! तू गर्व क्यों करता है? ['भस्म के अन्धे' का भाव यह है कि जिसने भस्म लगाने के अहंकार में वास्तविकता की सुधि बुधि खो दी है और अहंभाव में अन्धा हो गया है। अन्य अर्थ यह है,—मन जल गया]। हे नागे! इस विधि में योग नहीं है ॥ १ ॥

हे मूढ़! तूने राम नाम क्यों विसार दिया? तेरे अन्तिम समय में वही काम आएगा। ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे योगी), गुरु से पूछ कर इस बात पर विचार कर (कि हरि सर्वत्र व्याप्त है)। (मैं तो) जहाँ देखता हूँ, वहाँ हरि (सारंगपाणि) ही (दिखाई पड़ता है)॥ २ ॥

अब मेरा कुछ है ही नहीं तो मैं क्या कह सकता हूँ। (मेरी) जाति और प्रतिष्ठा तो तेरे नाम से ही बनी है ॥ ३ ॥

(हे अहंकारी) माल और द्रव्य देख कर क्या गर्व करता है? (अन्त में) चलते समय तेरा कुछ भी नहीं होगा ॥ ४ ॥

पंच कामादिकों को मार कर, चित्त टिकाने रख। नाम की युक्ति की यही बुनियाद है ॥ ५ ॥

अहंकार का बंधन तेरे मन में है। [पेखड़ु = [illegible] के पैरों को बाँधने की रस्सी जिससे वे अपने स्थान से आगे न बढ़ सकें]। हे मूढ़ हरि का स्मरण नहीं करता (जिससे तू) मुक्त हो जा ॥ ६ ॥

(हे मनुष्य) हरि को मत भूल, यम पास ही बसता है। (हरि का भजन नहीं तो) हे भूल अन्तिम समय में रोएगा ॥७॥

(हे शिष्य) गुरु के शब्दों पर विचार कर, (जिससे तेरा) अज्ञान नष्ट हो जाय और वास्तविक (सच्चा) बोध (तेरे) मन में आ जाय ॥ ८ ॥

(हे मूर्ख) जिस (हरि) ने (तुझे) प्राण और शरीर दिए हैं (तू) उसका स्मरण नहीं करता। हे मूढ़ मड़ी-मसानी में बोध नहीं है ॥ ९ ॥

नानक कुलाचारी अमृत बात (बाणी) कहता है। तू (तो) सुन्दर आँखोंवाला है, इसे (भलीभाँति) पहचान ले ॥ १० ॥ ५ ॥

[६]

दुबिधा दुरमति अधुली कार । मनमुखि भरमै मझि गुबार ॥१॥
मनु अंधुला अंधुली मति लागै । गुर करणी बिनु भरमु न भागै ॥१॥रहाउ॥
मनमुखि अंधुले गुरमति न भाई । पसू भए अभिमानु न जाई ॥२॥
लख चउरासीह जंत उपाए । मेरे ठाकुर भाणे सिरजि समाए ॥३॥
सगली भूलै नही सबदु अचारु । सो समझै जिसु गुरु करतारु ॥४॥
गुर के चाकर ठाकुर भाणे । बखसि लीए नाही जम काणे ॥५॥
जिन कै हिरदै एको भाइआ । आपे मेले भरमु चुकाइआ ॥६॥
बेमुहताजु बेअंतु अपारा । सचि पतीजै करणैहारा ॥७॥
नानक भूले गुरु समझावै । एकु दिखावै साचि टिकावै ॥८॥६॥

दुविधा और दुर्बुद्धि (अज्ञानता की) अन्धी करतूतें हैं। मनमुख (अज्ञानता के) अन्धकार में भटकता फिरता है ॥ १ ॥

अन्धा मन अन्धी बुद्धि में लगता है। गुरु (द्वारा निर्दिष्ट) कार्यों में लगे बिना भ्रम नहीं दूर होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मनमुख अंधे (अज्ञानी) होते हैं (जिससे उन्हें) गुरु द्वारा प्रदत्त बुद्धि अच्छी नहीं लगती। (वे अज्ञानता में) पशु हो गए हैं फिर भी (उनका) अभिमान नहीं दूर होता ॥ २ ॥

मेरे ठाकुर (स्वामी हरि) ने चौरासी लाख जीवों की उत्पत्ति की है, (वह) अपनी मर्जी से (जीवों को) उत्पन्न करके अपने में ही लीन कर लेता है ॥ ३ ॥

(संसार के) सभी (प्राणी) भूल में पड़े हैं (उनके पास) न तो शब्द नाम है और न आचार। जिसके (पास) गुरु रूपी कर्ता-पुरुष है वही (इस रहस्यपूर्ण बात) को समझता है ॥ ४ ॥

गुरु के वाक्य—शब्द ठाकुर के आज्ञानुसार (चलते हैं) (उन सेवकों को हरि) धन्य मना है; (उन्हें) यमराज का भी कोई भय नहीं रहता ॥ ५ ॥

जिनके हृदय में एक (हरि) बस जाता है (उन्हें वह हरि) आप ही अपने में मिला लेता है (और उनका) भ्रम समाप्त कर देता है ॥ ६ ॥

(वह हरि) बेमुहताज बेअंत और अपार है वह कर्तार सत्य से ही प्रसन्न होता है ॥ ७ ॥

नानक कहता है कि (हरि-पथ में) भूले भटकों को गुरु ही समझाता है (गुरु उन्हें) एक (हरि) का दिखा कर सत्य में टिका देता है ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

आपे भवरा फूल बेलि । आपे संगति मीत मेलि ॥१॥
ऐसी भवरा बासुले । तरवर फूले बन हरे ॥१॥रहाउ॥
आपे कवला कंतु आपि । आपे रावे सबदि थापि ॥२॥
आपे बछरू गऊ खीरु । आपे मंदरु थम्हु सरीरु ॥३॥
आपे करणी करणहारु । आपे गुरमुखि करि बीचारु ॥४॥
तू करि करि वेखहि करणहारु । जोति जीअ असंख देइ अधारु ॥५॥
तू सरु सागरु गुण गहीरु । तू अकुल निरंजनु परम हीरु ॥६॥
तू आपे करता करण जोगु । निहकेवलु राजन सुखी लोगु ॥७॥
नानक ध्रापे हरि नाम सुआदि । बिनु हरि गुर प्रीतम जनमु बादि ॥८॥७॥

(हरि) आप ही भौंरा आप ही फूल तथा आप ही बेलि है, आप ही सत्संगति है, आप ही मित्र है और आप ही मिलाता है ॥ १ ॥

(गुरमुख रूपी) भौंरा (प्रभु की महकमयी) सुगन्ध की वास लेता है (जिसके लिए समस्त) तरुवर फूले रहते हैं और (समस्त) बन हरे-भरे बने रहते हैं। [आशय यह है कि उसे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ता है] ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हरि) आप ही माया (कमला है) और आप ही (उस माया का) कंत-स्वामी है। (गुरु के) शब्द की स्थापना करके आप ही उसमें आनन्द करता है ॥ २ ॥

(प्रभु) आप ही बछड़ा है, आप ही गाय और आप ही दूध है। शरीर रूपी मन्दिर का आप ही खंभा है ॥ ३ ॥

(हरि) आप ही करनी और आप ही (उस करनी को) करनेवाला है। गुरु के उपदेश द्वारा आप ही विचार भी करता है ॥ ४ ॥

(हे प्रभु) हे कर्त्ता पुरुष तू (सृष्टि) रच-रच कर (उसकी) देखभाल करता है और असंख्य जीवों को ज्योति का आश्रय देता है ॥ ५ ॥

(हे प्रभु) तू गुणों का गम्भीर सागर है। तू कुल-रहित निरंजन (माया से परे) और महान् हीरा है ॥ ६ ॥

(हे स्वामी) तू आप ही कर्त्ता है और करने योग्य (कर्मों को) है। हे राजन् तू निकेवल है और तेरे (सभी) लोग (प्रजा) सुखी है ॥ ७ ॥

(यमदूतों के) मुद्गर की नित्य मार पड़ना ही (पापियों की) पूँजी है और चार (उनकी) कोतवाली करता है। (हे प्रभु यदि तुझे) रुचे तो अच्छा बना देता है, (और यदि तुझे रुचे तो) मर बना देता है (यह सब तेरी) दृष्टि का (ही परिणाम है) ॥ ४ ॥

(अब) देशों—मुसलमानों की अमलदारी हो गई है (जिससे वे) आदि पुरुष (परमात्मा को) 'अल्लाह' नाम से संबोधित करने लगे हैं। (अब) मन्दिरों और देवताओं पर कर लग गए हैं, इसी प्रकार का रिवाज चल पड़ा है ॥ ५ ॥

अज़ान का स्वर सुनाई पड़ता है मुसल्ले पर नमाज़ (पढ़ी जाती है) और बनवारी (हरी) का स्वरूप भी नीलवर्ण का हो गया है। [मुसलमानों के राज्य में सभी कर्मचारीगण नीले वस्त्र पहनते थे]। घर-घर में 'मियां मियां' होने लगा है और सभी बोली (यहाँ लोगों का तात्पर्य है) की वाणियाँ भी बदल गई हैं ॥ ६ ॥

(हे हरी) तू मालिक महीपति और साहब है (यदि तू ने उपयुक्त सम्पूर्ण दिया ही है) तो उसमें हमारी क्या शक्ति चल सकती है? (अब) चारों दिशाओं में सलाम चल पड़ा है और घर-घर में (मुगलों की) प्रशंसा चल रही है ॥ ७ ॥

हे नानक तीर्थादिकों में जो कुछ दान मजदूरी के तौर पर मिलता था, वह तरह पड़ों के स्मरण में मिल गया है (इस प्रकार) नाम में बड़ाई प्राप्त हो गई है ॥ १ ॥ ८ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु सारंग, महला १, असटपदे, घरु १

सबद [१]

अपने ठाकुर की हउ चेरी ।
चरन गहे जगजीवन प्रभ के हउमै मारि निबेरी ॥१॥ रहाउ ॥
पूरन परम जोति परमेसर प्रीतम प्रान हमारे ॥
मोहन मोहि लिआ मनु मेरा समझसि सबदु बीचारे ॥१॥
मनमुख हीन होछी मति झूठी मनि तनि पीर सरीरे ।
जब की राम रंगीलै राती राम जपत मन धीरे ॥२॥
हउमै छोडि भई बैरागनि तब साची सुरति समानी ।
अकुल निरंजन सिउ मनु मानिआ बिसरी लाज लुोकानी ॥३॥
भूर भविख नाही तुम जैसे मेरे प्रीतम प्रान अधारा ।
हरि कै नामि रती सोहागनि नानक राम भतारा ॥४॥१॥

मैं अपने स्वामी (हरी) की सेविका हूँ । मैंने अपने प्रभु जगत् के जीवन की शरण पकड़ी (और प्रभु ने मेरे) अहंकार को मार कर समाप्त कर दिया ॥१॥ रहाउ ॥

परमेश्वर पूर्ण और परम ज्योतिस्वरूप है वह प्रियतम हमारा प्राण है । मोहन (हरी) ने मेरा मन मोह लिया है (गुरु के) शब्द द्वारा विचार करके (मन उसे) समझता है ॥२॥

मनमुख हीन ओछी और झूठी बुद्धिवाला है (उसके) तन मन और (समस्त) शरीर में पीड़ा ही पीड़ा होती रहती है । जब से (मैं) रंगीले राम में अनुरक्त हो गई हूँ (तब से) 'राम नाम' जपने लगी हूँ और (मेरा) मन धैर्यवान हो गया है ॥३॥

(जब से मैं) अहंकार छोड़कर वैरागिनी हो गई हूँ तब से मैं (हरी की) सच्ची सुरति में समा गई हूँ । (मेरा) मन कुलरहित निरंजन (हरी) से मान गया है और अब (सारी) सांसारिक लज्जा भूल गई है ॥४॥

हे मेरे प्रियतम, प्राणाधार मेरे समान भूत-भविष्य में और कोई नहीं है। हे नानक (मैं) हरि के नाम में अनुरक्त हूँ और पति राम की सुहागिनी हूँ ॥८॥१॥

[२]

हरि बिनु किउ रहीऐ दुखु बिआपै ।
जिहवा सादु न फीकी रस बिनु बिनु प्रभ कालु संतापै ॥१॥ रहाउ ॥
जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी ।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ जल रसि कमल बिगासी ॥१॥
ऊनवि घनहरु गरजै बरसै कोकिल मोर बैरागै ।
तरवर बिरख बिहंग भुइअंगम घरि पिरु धन सोहागै ॥२॥
कुचिल कुरूपि कुनारि कुलखनी पिर का सहजु न जानिआ ।
हरि रस रंगि रसन नही त्रिपती दुरमति दूख समानिआ ॥३॥
आइ न जावै ना दुखु पावै ना दुख दरदु सरीर ।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीर ॥४॥२॥

हरि के बिना (भला) किस प्रकार रहा जाय? (बिना हरी के सम्पर्क के) दुःख व्याप्त हो रहा है। (हरि रूपी) रस के बिना जिह्वा में स्वाद नहीं रहता (और वह) फीकी रहती है, बिना प्रभु के काल संताप देता है ॥१॥ रहाउ ॥

जब तक प्रियतम का दर्शन और स्पर्श नहीं हो जाता तब तक भूख और प्यास (बनी रहती है)। (प्रभु का) दर्शन करते ही मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) (और जीवात्मा इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाती है जिस प्रकार) जल में रसयुक्त कमल खिल जाता है ॥१॥

बादल झुककर गरजते-बरसते हैं, (जिससे) कोयलों और मोरों में प्रेम उत्पन्न होता है। तरुवर, बेल [बिरख<संस्कृत वृक्ष] पक्षी, सर्प आदि (वर्षा ऋतु के आगमन से जिस प्रकार आनन्दित हो जाते हैं, उसी प्रकार) जिसके घर में पति है वह सुहागिनी भी आनन्दित होती है ॥२॥

कुचील (गंदी) कुरूपिणी बुरी तथा कुलक्षणी स्त्री प्रियतम (हरी) के स्वभाव को नहीं जानती। जिसकी जीभ हरि-रस के प्रेम में तृप्त नहीं होती वह दुर्बुद्धि दुःखों में पड़ी रहती है ॥३॥

(जो हरि-रस में आनन्दित है) वह न (कहीं) आता है और न जाता है (वह) दुःख भी नहीं पाता; (उसके) शरीर में दुःख-दारिद्र्य (का निवास) नहीं रहता। नानक कहता है (कि जीवात्मा रूपी स्त्री) प्रभु के सान्निध्य में सहज सुखवाली हो जाती है प्रभु को देख कर (उसका) मन धैर्यवान् हो जाता है ॥४॥२॥

[३]

हरि नामो मेरो प्रभु रिझाता ।
सतिगुरि बचनि मेरो मनु मानिआ हरि नाम मान अपारा ॥१॥ रहाउ ॥

ऐसो रवत रवहु मन मेरे हरि चरणी चितु लाई ॥
बिसम भए गुण गाइ मनोहर निरभउ सहजि समाई ॥३॥

हिरदै नामु सदा धुनि निहचल घटै न कीमति पाई ।
बिनु नावै सभु कोई निरधनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥४॥

प्रीतम प्रान भए सुनि सजनी दूत मुए बिखु खाई ।
जब की उपजी तब की तैसी रंगुल भई मनि भाई ॥५॥

सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवां हरि गुन गाई ।
गुर कै सबदि रता बैरागी निजघरि ताड़ी लाई ॥६॥

सुध रस नामु महारसु मीठा निजघरि ततु गुसाईं ।
तह ही मनु जह ही तै राखिआ ऐसी गुरमति पाई ॥७॥

सनक सनादि ब्रहमादि इंद्रादिक भगति रते बनि आई ।
नानक हरि बिनु घरी न जीवां हरि का नामु वडाई ॥८॥१॥

हे सखि माँ (मैं) हरि के बिना किस प्रकार जिऊँ ? (हे) जगदीश तेरी जय हो (मैं तेरे) यश की याचना करता हूँ हरि के बिना (मुझसे) रहा नहीं जाता ॥१॥ रहाउ ॥

हरि (के प्रेम की) प्यास है (मैं चातक-सा व्यग्र) प्यासा हूँ और समस्त (जीवन रूपी) रात्रि भर (उसकी) प्रतीक्षा करती हूँ। श्रीधर (हरि) तथा नाथ में मेरा मन लीन हो गया है (मेरा) प्रभु पराई पीड़ा जानता है (क्योंकि वह घट घट-वासी है) ॥१॥

हरि के बिना शरीर में चिन्ता [गणत=हिसाब लगाना चिन्ता] और पीड़ा है। गुरु के शब्द द्वारा (मैंने) हरि को पा लिया है। हे हरि जी कृपा करके (मेरे ऊपर) दयालु हो जाओ (ताकि मैं) तुझ में युक्त ही जाऊँ ॥२॥

हे मेरे मन ऐसी रटनी रट कि हरि के चरणों में चित्त लगा रहे। मनोहर (हरि) के गुणों को गा कर मैं आनन्दित हो गया हूँ और सहजावस्था (में स्थित होकर) निर्भय हो गया हूँ ॥३॥

(मेरे) हृदय में हरिनाम की निश्चल लगन (धुनि) सदैव लगी रहती है (यह लगन) न तो घटती है और न इसका मूल्य ही पाया जा सकता है। बिना नाम के सभी कोई निर्धन है—सद्गुरु ने यह समझ (भलीभाँति) समझा दी है ॥४॥

हे सखी (सजनी) सुन हरि मेरे प्राण-प्रियतम हो गए हैं (जिसके फलस्वरूप कामादिक) दूत विष खा कर मर गए हैं [अर्थात् हरि के साक्षात्कार से कामादिक नष्ट हो गए हैं]। जितनी प्रीति उत्पन्न हुई उतनी ही रही (उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई)। (मैं) प्रेम के रंग में मन से रंग गई हूँ ॥५॥

सदैव सहज-समाधि लगी रहती है हरि में ही एकनिष्ठ धारणा (लिव) लगी रहती है और जीव (प्रभु) हरि का ही गुणगान करता है। मैं (समाधिस्थ स्थिति में) वैराग्यवान् होकर गुरु के शब्द में अनुरक्त होकर (अपने) आत्मस्वरूपी घर में ताड़ी—ध्यान लगाए हूँ ॥६॥

शुद्ध रसवाला नाम (मुझे अत्यधिक) मीठा प्रतीत हुआ, (क्योंकि यह महान् रस है और इसी रस से सारी सृष्टि रसमयी है); (इस अनुभूति से) अपने आत्मस्वरूपी घर में तत्त्व रूप गोस्वामी (हरी) प्राप्त हो गया। (हे हरी) जहाँ पर तूने मन को रखा है, वहीं पर (वह) टिक गया है (तात्पर्य यह कि हरी में मन स्थित हो गया है) गुरु के द्वारा (सहजी स्थिति) प्राप्त हो गई है ॥७॥

सनक सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार (ब्रह्मा के पुत्र) ब्रह्मा (विष्णु, महेश) इन्द्रादिक (देवतागण) हरि-भक्ति में लग गए, (जिससे उन सबों का हरी से) मिलाप हो गया। नानक कहता है कि मैं हरी के बिना (एक) घड़ी भी नहीं जी सकता। हरी का नाम ही (सच्ची) बड़ाई है ॥८॥१॥

[२]

हरि बिनु किउ धीरै मनु मेरा ।
कोटि कलप के दूख बिनासन साचु द्रिड़ाइ निबेरा ॥ रहाउ ॥
क्रोधु निवारि जले हउ ममता प्रेम सदा नउरंगी ।
अनभउ बिसरि गए प्रभु जाचिआ हरि निरमाइलु संगी ॥१॥
चंचल मति तिआगि भउ भंजनु पाइआ एक सबदि लिव लागी ।
हरि रसु चाखि त्रिखा निवारी हरि मेलि लए बडभागी ॥२॥
अभरत सिंचि भए सुभर सर गुरमति साचु निहाला ।
मन रति नामि रते निहकेवल आदि जुगादि दइआला ॥३॥
मोहनि मोहि लीआ मनु मोरा बडै भाग लिव लागी ।
साचु बीचारि किलविख दुख काटे मनु निरमलु अनरागी ॥४॥
गहिर गमीर सागर रतनागर अवर नही अन पूजा ।
सबदु बीचारि भरम भउ भंजनु अवरु न जानिआ दूजा ॥५॥
मनूआ मारि निरमल पदु चीनिआ हरि रस रते अधिकाई ।
एकस बिनु मै अवरु न जानां सतिगुरि बूझ बुझाई ॥६॥
अगम अगोचरु अनाथु अजोनी गुरमति एको जानिआ ।
सुभर भरे नाही चितु डोलै मन ही ते मनु मानिआ ॥७॥
गुरपरसादी अकथउ कथीऐ कहउ कहावै सोई ।
नानक दीन दइआल हमारे अवरु न जानिआ कोई ॥८॥२॥

हरि के बिना मेरा मन किस प्रकार धैर्य धारण करे ? (वह हरी) करोड़ों कल्पों के दुःखों का नाश करनेवाला है और सत्य को दृढ़ करा कर मुक्त करनेवाला है ॥१॥ रहाउ ॥

(हरि प्राप्ति से) क्रोध निवृत्त हो गया जिससे अहंता और ममता (की भावना) दग्ध हो गई और सदा नवीन (नवरंगी) प्रेम की प्राप्ति हो गई। (हरी के अतिरिक्त) अन्य भय विस्मृत हो गए; प्रभु की याचना से निर्मल हरी का संगी (के रूप में प्राप्त कर लिया) ॥१॥

चंचल बुद्धि के त्याग से भय को नष्ट करनेवाले (निर्भय हरी) को प्राप्त कर लिया (अब) एक शब्द—नाम में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग गई है। हरि-रस का आस्वादन करके (मैंने) (सांसारिक) तृषा निवृत्त कर दी (मुझ) बड़भागी को हरी ने अपने में मिला लिया ॥२॥

रिक्त (सरोवर नाम रूपी अमृत-जल से) सींचे जा कर लबालब भरे सरोवर हो गए। गुरु के द्वारा सत्य का दर्शन कर लिया। मन की प्रीति (दिली प्रेम) से निरंजन (हरी के) प्रेम में (मैं) रँग गया हूँ। (हरी) आदि युगों (युगान्तरों) से दयालु (हो रहा है) ॥३॥

मोहन (हरी) ने मेरा मन मोह लिया है बड़े भाग्य से (उसमें) लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग गई है। सत्य (हरी) को विचार कर कल्मषों (पापों) एवं दुर्गुणों को (मैंने) काट दिया है और (मेरा) मन निर्मल (हरी) में अनुरक्त हो गया है ॥४॥

(हरी ही) रत्नों की खानि का गहरा और गंभीर समुद्र है (हरी के अतिरिक्त) किसी और तथा अन्य की पूजा (मैंने) नहीं की। (गुरु के) शब्दों पर विचार करके भ्रम तथा भय को दूर करनेवाले (हरी) को ही पहचाना और किसी को नहीं पहचाना ॥५॥

(अहंकारयुक्त) मन को मार कर (परमात्मा के) निर्मल-पद को पहचान लिया और हरि रस में अत्यधिक अनुरक्त हो गया। एक परमात्मा के अतिरिक्त मैंने किसी और को नहीं जाना सद्गुरु ने ही यह समझ समझाई ॥६॥

(मैंने) गुरु द्वारा अगम अगोचर जिसका कोई नाप न हो (सब-स्वतंत्र) अयोनि और एक (हरी) को जान लिया। (अब मेरा हृदय-रूपी सरोवर हरि के अमृत जल से) पूर्ण रूप से भर गया है, (जिससे) चित्त चलायमान नहीं होता और (ज्योतिमय) मन से (अहंकारी) मन मान गया है ॥७॥

गुरु की कृपा से अकथनीय (परमात्म-तत्त्व) का कथन होने लगा (वह प्रभु जो कुछ भी मुझसे) कहलाता है वही कहता हूँ। नानक कहता है कि दीन दयालु (हरी) ही हमारा है (उसे छोड़कर मैंने) किसी और को नहीं जाना ॥८॥२॥

ੴ सतिगुर प्रसादि ॥ सारंग की वार, महला १,

राइ महमे हसने की धुनि

सलोकु न भीजै रागी नादी बेदि।

न भीजै सुरती गिआनी जोगि। न भीजै सोगी कीतै रोइ॥

न भीजै रूपीं मालीं रंगि। न भीजै तीरथि भविऐ नंगि॥

न भीजै दातीं कीतै पुंनि। न भीजै बाहरि बैठिआ सुंनि॥

न भीजै भेड़ि मरहि भिड़ि सूर। न भीजै केते होवहि धूड़॥

लेखा लिखीऐ मन कै भाइ। नानक भीजै साचै नाइ॥१॥

नव छिअ खट का करे बीचारु। निसि दिन उचरै भार अठार॥

तिनि भी अंतु न पाइआ तोहि। नाम विहूणु मुकति किउ होइ॥
नाभि वसत ब्रहमै अंतु न जाणिआ। गुरमुखि नानक नामु पछाणिआ॥२॥

विशेष : महमा और हसना कांगड़े के दो राजपूत सरदार थे। एक बार हसने ने धोखे से महमे को अकबर बादशाह द्वारा कैद करा दिया। किन्तु महमे ने अपने शौर्य-प्रदर्शन से अकबर बादशाह को प्रसन्न कर लिया। अवसर पाकर फौज लेकर उसने हसने के ऊपर आक्रमण कर दिया। दोनों में परस्पर बहुत देर तक द्वन्द्व-युद्ध होता रहा। अंत में महमे की विजय हुई। चारणों ने इस द्वन्द्व-युद्ध पर कविताएँ रची। इस वार के गाए जाने का ढंग निम्नलिखित है—

'महमा हसना राजपूत राइ भारे भट्टी
हसने बेईमानगी नाल महमे वट्टी'

सलोक : प्रभु (हरी) वेदों के रागों और नाद (स्वर) से प्रसन्न नहीं होता, न तो सुरति से, न ज्ञान से और न योग से ही। न तो (वह) नित्य शोक करने से प्रसन्न होता है और न रूप, धन-माल और आनन्द-केलि से ही। न तो (वह) तीर्थस्थानों में नहाने के रूप में भ्रमण करने से प्रसन्न होता है और न दान-पुण्य करने से ही। (हरी) न तो बाहर (जाकर) शून्य-समाधि लगाने में प्रसन्न होता है और न युद्धस्थल में शूरवीरों के साथ लड़कर मरने से ही। (प्रभु) विद्वानों के धूल में होने से भी नहीं प्रसन्न होता है। मन की अवस्था के अनुसार (कर्मों का) लेखा लिया जाता है, [तात्पर्य यह कि हमारे भले और बुरे होने की कसौटी विशिष्ट कर्मों का सम्पादन नहीं है, बल्कि भले और बुरे की कसौटी मन की शुभ अथवा अशुभ भावना है]। नानक कहता है कि प्रभु सच्चे नाम के (स्मरण) से प्रसन्न होता है ॥१॥

(चाहे कोई) नव व्याकरणों, छः शास्त्रों तथा छः वेदांगों—(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) का (नित्य) विचार करे (अथवा) अहर्निश अठारह (पर्वों के) भार वाले (महाभारत) का उच्चारण करे—पाठ करे, (किन्तु) वह तेरा अन्त नहीं प्राप्त कर सका। (भला) नाम के बिना कैसे मुक्ति हो सकती है? (विष्णु की) नाभि (से निकले हुए कमल) में निवास करते हुए ब्रह्मा (परब्रह्म का) अन्त न जान सके। गुरु के उपदेश द्वारा नानक ने नाम-तत्त्व को पहचान लिया ॥२॥

पउड़ी आपे आपि निरंजना जिनि आपु उपाइआ।
आपे खेलु रचाइओनु सभु जगतु सबाइआ॥
त्रैगुण आपि सिरजिअनु माइआ मोहु वधाइआ।
गुर परसादी उबरे जिन भाणा भाइआ॥
नानक सचु वरतदा सभ सचि समाइआ॥१॥

पउड़ी : वह निरंजन (माया से रहित हरी) आप ही आप है और उसी ने अपने आप को (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न किया है। (प्रभु ने) आप ही (सृष्टि रूपी) खेल की रचना की है सारा जगत् (उसी की रचना है।) उसी प्रभु ने त्रिगुणों—सत्त्व, रज तथा तम—की सृष्टि की (और उन्हीं तीनों गुणों के द्वारा) माया के मोह की वृद्धि की। जिन्हें (परमात्मा का) हुक्म अच्छा लग गया (वे) गुरु की कृपा से संसार-सागर से तर गए। नानक कहता है कि (सभी रचनाओं में) सत्य (परमात्मा) बरत रहा है और सभी रचना में वह व्याप्त है ॥१॥

सलोकु : (जीव) जुड़-जुड़ कर बिछुड़ते हैं और बिछुड़-बिछुड़ कर जुड़ते हैं। (वे) जी-जी कर मरते हैं और मर-मर कर (फिर) जीते हैं (अर्थात् जन्म धारण करते हैं)। (सृष्टि परम्परा का यह परिणाम है कि पुनर्जन्मवश म) (न मालूम) कितने लोग कितनों के बाप हुए हैं और कितनों के बेटे कितनों के गुरु हुए हैं और कितनों के चेले। (कितनी योनियों में जीव भटक चुका है, इससे) आगे-पीछे की गणना नहीं हो सकती कि किन किन जातियों (वर्णों में जीव पड़ चुका है और) अब उसे (किन किन वर्णों में) पड़ना है (इसे कोई नहीं जानता)। (मनुष्य की) सभी करनी किए हुए कर्मों के लिखे अनुसार होती है। करता पुरुष (हरी) ही सब कुछ कर-कर के (फिर) करता है। नानक कहता है कि मनमुख तो (संसार के आवागमन के चक्र में) मरता रहता है (किन्तु) गुरमुख (संसार-सागर से) तर जाता है, कृपादृष्टि करनेवाला (हरी ही) (जीवों पर) कृपादृष्टि करता है ॥५॥

पउड़ी : मनमुखि दूजा भरमु है दूजै लोभाइआ ।
कूड़ु कपटु कमावदे कूड़ो आलाइआ ।
पुत्र कलत्रु मोहु हेतु है सभु दुखु सबाइआ ।
जम दरि बधे मारीअहि भरमहि भरमाइआ ॥
मनमुखि जनमु गवाइआ नानक हरि भाइआ ॥१॥

पउड़ी : मनमुखों में द्वैतभाव तथा भ्रम है और वे इसी द्वैतभाव में (अहर्निश) लुब्ध रहते हैं। (वे) झूठ और कपट कमाते हैं तथा झूठ ही बोलते हैं। (उनका) सारा मोह और प्रेम पुत्र और स्त्री के प्रति है; (इसीलिए) (उन्हें) सभी प्रकार के दुःख होते हैं। (वे) यमराज के द्वार पर बाँधे जा कर मारे जाते हैं और नित्य भ्रम में पड़कर भटकते रहते हैं। मन-मुख ने तो अपना (अमूल्य) जन्म (जीवन) (प्रपंचों में पड़ कर) गँवा दिया किन्तु नानक तो हरी को अच्छा लग गया ॥१॥

सलोकु : नानक तुलीअहि तोल जे जीउ पिछै पाइ ।
इकसु न पुजहि बोल जे पूरे पूरा करि मिलै ।
वडा आखणु भारा तोलु । होर हउली मती हउले बोल ॥
धरती पाणी परबत भारु । किउ कंडै तोलै सुनिआरु ॥
तोला मासा रतक पाइ । नानक पुछिआ देइ पुजाइ ॥
मूरख अंधिआ अंधी धातु । कहि कहि कहणु कहाइनि आपु ॥१॥
आखणि अउखा सुनणि अउखा आखि न जापी आखि ।
इकि आखि आखहि सबदु भाखहि अरध उरध दिनु राति ॥
जे किहु होइ त किहु दिसै जापै रूपु न जाति ।
सभि कारण करता करे घट अउघट घट थापि ॥
आखणि अउखा नानका आखि न जापै आखि ॥२॥

सलोकु : नानक कहता है कि (वही व्यक्ति परमात्मा को) तौल सकता है, जो तराजू के एक पलड़े पर अपने आन्तरिक प्रेम को रख दे। (हरी की) स्तुति (बोल) की समता में कोई वस्तु नहीं पहुँच सकती जिन्होंने पूर्ण हरी का पूर्ण रूप से अपने में मिला लिया है। (हरी

की) स्तुति का तोल बहुत बड़ा है, और (सांसारिक) बुद्धि तथा वचन हल्के हैं। (हरी की) स्तुति का तौल भारी, वस तथा पर्वत के समान भारी है। भला सोनार (कर्मकाण्डी) भी (छोटी सी) तराजू पर वह किस प्रकार तोला जा सकता है? (समस्त कर्मकाण्ड) तोले-मासे के समान हल्के मूल्य के हैं किन्तु नानक कहते हैं कि सोनार (अर्थात् कर्मकाण्डी) उन्हें (तोले मासे रूपी कर्मकाण्डों को) बढ़ा बढ़ा कर पूरा कर देता है (परन्तु इससे होता कुछ भी नहीं)। (सांसारिक मायाग्रस्त प्राणी) मूर्ख भी अन्धे हैं उनकी दौड़ भी अन्धी है वे कह कह करके अपने भार को प्रकट करते हैं ॥५॥

(हरी का) कथन कठिन है (और उसका) श्रवण भी कठिन है निरा कथन से अनुभव नहीं होता। कुछ लोग दिनरात कथनी-कथनी (अरथ-उरथ) कथन करते हैं और वचन बोलते हैं। (किन्तु यदि हरी का) कोई स्वरूप हो तो वह दिखाई पड़े (उस प्रभु का कोई) स्वरूप अथवा आकृति नहीं दिखाई पड़ती। कर्तापुरुष ही सभी कारणों को करता है सीधे और दुर्गम (घट घटवट) स्थानों की स्थापना (वह) आप ही करता है। नानक कहता है कि (हरी के संबंध में) कथन करना बहुत कठिन है निरा कथन से अनुभव नहीं होता ॥६॥

पउड़ी   नाइ सुणिऐ मनु रहसीऐ नामे सांति आई ।
              नाइ सुणिऐ मनु त्रिपतीऐ सभ दुख गवाई ॥
              नाइ सुणिऐ नाउ ऊपजै नामे वडिआई ।
              नामे ही सभ जाति पति नामे गति पाई ॥
              गुरमुखि नामु धिआईऐ नानक लिव लाई ॥७॥

पउड़ी नाम का श्रवण करने (और उसके) मन में प्रसन्नता होती है और शान्ति आती है। नाम के श्रवण से मन तृप्त होता है और सभी दुःखों का नाश होता है। नाम के श्रवण से नाम (प्राप्त) होता है—प्रसिद्धि होती है और नाम से ही बड़ाई प्राप्त होती है। नाम में सारी जाति है (और उसी में सब) प्रतिष्ठा है नाम से ही गति प्राप्त होती है। नानक कहता है कि गुरु के उपदेश द्वारा लिव लगा कर नाम का ध्यान कर ॥७॥

सलोकु ः   जूठि न रागीं जूठि न वेदीं । जूठि न चंद सूरज की भेदी ॥
              जूठि न अंनी जूठि न नाई । जूठि न मीहु वरि्ऐ सभ थाई ॥
              जूठि न धरती जूठि न पाणी । जूठि न पउणै माहि समाणी ॥
              नानक निगुरिआ गुणु नाही कोइ । मुहि फेरिऐ मुहु जूठा होइ ॥१॥
              नानक चुलीआ सुचीआ जे भरि जाणै कोइ ।
              सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ ॥
              ब्रहमण चुली संतोख की गिरही का सतु दानु ।
              राजे चुली निआव की पड़िआ सचु धिआनु ॥
              पाणी चितु न धोपई मुखि पीतै तिख जाइ ।
              पाणी पिता जगत का फिरि पाणी सभु खाइ ॥२॥

सलोकु रागों अथवा वेदों में जूठन नहीं है। चन्द्रमा और सूर्य (के कारण ऋतुओं के भेद) में भी जूठन नहीं है। न तो अन्नादिक में जूठन है और न स्नान में ही (वैसा

कि अभी लोग मानते हैं)। मेह के सभी स्थानों के बरसने में भी छुटकारा नहीं है। धरती और जल भी जूठे (मलयुक्त) नहीं हैं। पवन के व्याप्त होने में भी छुटकारा नहीं है। गुणविहीन नानक में कोई भी गुण नहीं है। (हरि की ओर से) मुँह फेरने में—मनमुख होने में ही—मुँह भ्रष्ट होता है ॥७॥

नानक कहता है कि (सही पवित्रता के लिए) कुल्ला (कुल्ला) है, (जिससे आन्तरिक पवित्रता प्राप्त हो जो कोई ऐसे कुल्ले को करता है (वही पवित्र है)। विद्वान (पंडित) की पवित्रता ज्ञान (और विचार) है और योगी की पवित्रता संयम है। ब्राह्मण की पवित्रता संतोष है और गृहस्थी की सच्चाई तथा दान। राजाओं की पवित्रता न्याय है और पढ़ने की (वास्तविक शुद्धि) सच्चा ध्यान है। मुख से पानी (पीने से) से तृषा (भले ही बुझी) जाय किन्तु उससे चित्त निर्मल नहीं होता। पानी सारे जगत् का पिता (मूल कारण) है और अन्त में पानी ही सारी (सृष्टि को) खा जाता है ॥८॥

पउड़ी
नाइ सुणिऐ सभ सिधि है रिधि पिछै आवै।
नाइ सुणिऐ नउ निधि मिलै मन चिंदिआ पावै ॥
नाइ सुणिऐ संतोखु होइ कवला चरन धिआवै।
नाइ सुणिऐ सहजु ऊपजै सहजे सुखु पावै ॥
गुरमती नाउ पाईऐ नानक गुण गावै ॥५॥

पउड़ी (हरि)-नाम के श्रवण से सारी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ (प्राप्त होती हैं) (वे) पीछे पीछे चलती हैं। नाम के श्रवण से नवनिधियाँ एवं मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं। नाम सुनने से संतोष की प्राप्ति होती है और माया (कमला) (उसके) चरणों का ध्यान करने लगती है। नाम के सुनने से सहजावस्था की उत्पत्ति होती है, जिससे सहज—स्वाभाविक सुख प्राप्त होता है। गुरु के द्वारा नाम पाया जाता है नानक तो नाम का गुणगान करता है ॥५॥

सलोकु
दुखि विचि जमणु दुखि मरणु दुखि वरतणु संसारि।
दुखु दुखु अगै आखीऐ पड़ि पड़ि करहि पुकार ॥
दुख कीआ पंडा खुल्हीआ सुखु न निकलिओ कोइ।
दुख विचि जीउ जलाइआ दुखीआ चलिआ रोइ।
नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ।
दुख कीआ अगी मारीअहि भी दुखु दारू होइ ॥१॥
नानक दुनीआ भसु रंगु भसू हू भसु खेह।
भसो भसु कमावणी भी भसु भरीऐ देह ॥
जा जीउ विचहु कढीऐ भसू भरिआ जाइ।
अगै लेखै मंगिऐ होर दसूणी पाइ ॥२॥

सलोकु : (मनुष्य) दुःख में जन्मता है और दुःख ही में मरता है और दुःखों में ही संसार के मध्य व्यवहार करता है। पढ़ पढ़ कर के (पण्डितगण) यही पुकार कर जाते हैं (कि इस संसार में चले जाने के बाद) आगे भी दुःख ही दुःख है। दुःख की गठरियों के खुलने

पर भी (उनसे) कोई सुख नहीं निकलता [आशय यह है कि दुःखों के बीच सुख की आशा रखना भ्रम मात्र है] । (इस संसार में) जीव दुःखों में ही दग्ध किया गया और दुःखों में ही रोकर (यहाँ से) चला भी गया । नानक कहता है (कि परमात्मा की) स्तुति में रत होने में तन मन हरे हो जाते हैं । (जीव) दुःख की आग में मारा जाता है, पर औषधि (दारू) भी दुःख ही होता है ॥१॥

नानक कहता है कि दुनिया भस्म (खाक) का रंगवाली है (दुनिया की सारी वस्तुएँ) भस्म और खाक (हो जानेवाली है) । (सांसारिक) कमाई भी भस्म की भस्म है । (मनुष्य की) देह भी भस्म से ही भरी है, (क्योंकि) यदि जीव (प्राण) (शरीर) से निकाल लिया जाय तो शरीर में भस्म ही भस्म रह जाती है । आगे (हरी के यहाँ कर्मों का) हिसाब माँगने से (जीव अपने पाप-कर्मों के कारण) दसगुनी भस्म और पाता है ॥२॥

पउड़ी नाइ सुणिऐ सुचि संजमो जमु नेड़ि न आवै ।
नाइ सुणिऐ घटि चानणा आन्हेरु गवावै ॥
नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै ।
नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै
नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै ॥६॥

पउड़ी नाम के श्रवण से पवित्रता और संयम (की प्राप्ति होती है) और यमराज समीप नहीं आता । नाम के श्रवण से हृदय में प्रकाश (ज्ञान) हो जाता है और अंधकार (अज्ञान) नष्ट हो जाता है । नाम के श्रवण से (साधक) अपने आप को (अपने आत्म स्वरूप को) समझ लेता है और नाम (रूपी धन) का लाभ पाता है । नाम के श्रवण से (समस्त) पाप कट जाते हैं और निर्मल सत्यस्वरूप (हरी) की प्राप्ति होती है । नानक नाम के श्रवण से मुख उज्ज्वल होता है (इसलिए) सच्चा (शिष्य) गुरु के द्वारा नाम का ध्यान करता है ॥६॥

सलोकु घरि नाराइणु सभा नालि । पूज करे रखै नावालि ॥
कुंगू चंनणु फुल चड़ाए । पैरी पै पै बहुतु मनाए ॥
माणूआ मंगि मंगि पैन्है खाइ । अंधी कंमी अंध सजाइ ॥
भुखिआ देइ न मरदिआ रखै । अंधा झगड़ा अंधी सथै ॥११॥

सभे सुरती जोग सभि सभे बेद पुराण ।
सभे करणे तप सभि सभे गीत गिआन ॥
सभे बुधी सुधि सभि सभि तीरथ सभि थान ।
सभि पातिसाहीआ अमर सभि सभि खुसीआ सभि खान ॥
सभे माणस देव सभि सभे जोग धिआन ।
सभे पुरीआ खंड सभि सभे जीअ जहान ॥
हुकमि चलाए आपणै करमी वहै कलाम ।
नानक सचा सचि नाइ सचु सभा दीबाणु ॥१२॥

सलोकु : (मूर्ति पूजक) अपने घर में नारायण (की मूर्ति), उसको सभा-सहित (रख देता है) (वह मूर्तियों को) स्नान कराकर रखता है (और उनको) पूजा करता है। (वह उन पर) केसर-मिश्रित चन्दन अर्पित करता है, (चढ़ाता है) (और उनके) चरणों में पड़कर अनेक भाँति से मनाता है। लोगों से माँग-माँग कर (वह) पहनता खाता है। अंधे कर्मों की सजा भी अन्धी (मिलती) है। (मूर्ति) न तो भूखों को भोजन देती है और न मरनेवालों की रक्षा ही करती है। (इस प्रकार मूर्तिपूजा) अंधों के साथ अंधे (अविवेक पूर्ण) झगड़े (के समान है)॥ ११॥

सभी सुरतियों, सभी योगों, सभी वेद-पुराणों, सभी कर्मों, सभी तपों, सभी ज्ञान के गीतों, सभी बुद्धियों, सभी सूझियों, सभी तीर्थों, सभी स्थानों, सभी बादशाहियों, सभी शासनों (अमर=हुकुमत शासन) सभी खुशियों, सभी भोजनों, सभी मनुष्यों, सभी देवताओं, सभी योग-ध्यानों, सभी पुरियों, सभी खण्डों तथा संसार के सभी जीवों पर (हरी अपना) हुक्म चलाता है, (सभी जीवों के) कर्मानुसार (हरी की) कलम चलती है। [गुरु नानक देव जी कर्मों का फल देनेवाला परमात्मा को मानते हैं। बौद्धों आदि के अनुसार उनकी दृष्टि में कर्म स्वतः फल नहीं देते]। हे नानक, (हरी) सच्चा है, (उसका) नाम भी सच्चा है, (उसकी) सभा और कचहरी भी सच्ची है॥ १२॥

पउड़ी : नाइ मंनिऐ सुखु ऊपजै नामे गति होई।
नाइ मंनिऐ पति पाईऐ हिरदै हरि सोई॥
नाइ मंनिऐ भवजलु लंघीऐ फिरि बिघनु न होई।
नाइ मंनिऐ पंथु परगटा नामे सभ लोई।
नानक सतिगुरि मिलिऐ नाउ मंनीऐ जिन देवै सोई॥७॥

पउड़ी : नाम के मनन करने से सुख उत्पन्न होता है और नाम से ही गति (शुभ गति—मुक्ति) प्राप्त होती है। नाम के मनन से (लोक-परलोक दोनों में ही) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और हृदय में वह हरि (बस जाता) है। नाम के ऊपर मनन करने से संसार-सागर लाँघ लिया जाता है और फिर (किसी प्रकार के) विघ्न नहीं होते। नाम के मनन करने से (सच्चा) मार्ग प्रकट हो जाता है और नाम में ही समस्त प्रकाश है। हे नानक, सद्गुरु से मिलकर (उसकी शिक्षा द्वारा) नाम का मनन कर, वही (सद्गुरु) उस नाम को प्रदान करता है॥ ७॥

सलोकु : पुरीआ खंडा सिरि करे इक पैरि धिआए।
पउणु मारि मनि जपु करे सिरु मुंडी तलै देइ॥
किसु उपरि ओहु टिक टिकै किस नो जोरु करेइ।
किस नो कहीऐ नानका किस नो करता देइ।
हुकमि रहाए आपणै मूरखु आपु गणेइ॥१३॥
है है आखां कोटि कोटि कोटी हू कोटि कोटि।
आखूं आखां सदा सदा कहणि न आवै तोटि॥
ना हउ थकां न ठाकीआ एवड रखहि जोति।
नानक चसिअहु चुख बिंद उपरि आखणु दोसु॥१४॥

सलोक (चाहे कोई तीर्थयात्रा में विविध) पुरियों और खण्डों में (अपना) सिर रगड़ता फिरे (और चाहे कोई) एक पैर पर (स्थित होकर) ध्यान करे, (अथवा) पवन (के समान चंचल) मन को मार कर जप करे और सिर को गर्दन में धसका कर के नीचे (गिरा दे) (किन्तु इन सब कठोर साधनों से हरी द्रवीभूत नहीं होता)। किसके ऊपर (मनुष्य) अपनी टेक रखता है? (तात्पर्य यह कि उपर्युक्त साधना के ऊपर भरोसा रखना, समीचीन नहीं, क्योंकि उनके आश्रय तुच्छ हैं)। किसके ऊपर अपना जोर समझे? हे नानक किसे कहा जाय कि उसे कर्त्ता पुरुष देता है? (इसका तात्पर्य यह है कि यह नहीं कहा जा सकता कि किसके ऊपर प्रसन्न होकर हरी अपने दान देता है)। (हरी) अपने ही हुक्म में (सभी को) रखता है किन्तु मूर्ख उसे अपना करके मानता है ॥ १३ ॥

यदि मैं करोड़ों बार कहूँ कि (हे हरी तू) है (तू) है (तो भी थोड़ा ही है), मैं सदैव मुह से (तेरा) कथन करता रहूँ (फिर भी तेरे वर्णन में किसी प्रकार की) कमी नहीं आ सकती (क्योंकि तू वर्णनातीत है)। (यदि) मुझमें इतनी शक्ति (ज्योति) दे दे कि मैं वर्णन करने से थकूँ नहीं और न किसी के रोके रुकूँ, तो भी तेरा बहुत अल्प वर्णन कर सकता हूँ क्योंकि तू कथन से परे है। हे नानक, जो यह कहता है कि मैंने थोड़े से कुछ अधिक कहा है, वह दोष करता है। [१५ बार आँख फड़कने को एक 'विसा' कहते हैं १५ विसे का एक 'चसा', ३० चसों का एक पल होता है। ६० पल की एक घड़ी और ७॥ घड़ी का एक पहर। आठ पहर का रात-दिन होता है। 'चसा' की तीसवें भाग को 'चुस' और 'चुस' के आधे भाग को 'बिंद' कहा जाता है] ॥ १४ ॥

पउड़ी नाइ मंनिऐ कुलु उधरै सभु कुटंबु सबाइआ ।
नाइ मंनिऐ संगति उधरै जिन रिदै वसाइआ ॥
नाइ मंनिऐ सुणि उधरे जिन रसन रसाइआ ।
नाइ मंनिऐ दुख भुख गई जिन नामि चितु लाइआ ॥
नानक नामु तिनी सालाहिआ जिन गुरू मिलाइआ ॥८॥

पउड़ी नाम के मनन से समस्त कुल और सारे कुटुम्ब का उद्धार हो जाता है। नाम के (ऊपर) मनन करने से उस संगति का उद्धार हो जाता है, जिसने अपने हृदय में (हरी को) बसा लिया है। जिन्होंने (नाम को) श्रवण करके मनन द्वारा जीभ (नाम के द्वारा) रसमयी बना ली उनका उद्धार हो गया। जिन्होंने मनन द्वारा नाम को अपने चित में धारण कर लिया, उनके दुःख और क्षुधा निवृत्त हो गई। नानक कहता है कि उन्होंने ही नाम का स्मरण किया है, जिन्हें गुरु का मिलाप हो गया है ॥ ८ ॥

सलोक सभे राती सभि दिह सभि थिती सभि वार ।
सभे रुती माह सभि सभि धरती सभि भार ॥
सभे पाणी पउण सभि सभि अगनी पाताल ।
सभे पुरीआ खंड सभि सभि लोअ लोअ आकार ॥
हुकमु न जापी केतड़ा कहि न सकीजै कार ।
आखहि थकहि आखि आखि करि सिफती वीचार ॥
तृणु न पाइओ बपुड़ी नानकु कहै गवार ॥१५॥

अखी परखै जे फिरा देखां सभु आकारु ।
पुछा गिआनी पंडिता पुछा बेद बीचार ॥
पुछा देवा माणसा जोध करहि अवतार ।
सिध समाधी सभि सुणी जाइ देखां दरबारु ॥
अगै सचा सचि नाइ निरभउ भै विणु सारु ।
होर कची मती कचु पिचु अंधिआ अंधु बीचारु ॥
नानक करमी बंदगी नदरि लंघाए पारि ।१९॥

सलोक : सभी रातों, सभी दिनों, सभी तिथियों, सभी वारों, सभी ऋतुओं, सभी महीनों सारी पृथिवी, सारे पदार्थों (भार) समस्त जलों, सारे लोकों और समस्त आकारों (के ऊपर प्रभु का ही हुक्म है)। प्रभु का हुक्म जितना बड़ा है, यह प्रतीत नहीं हो सकता, उसके कार्यों को भी नहीं कहा जा सकता। उसकी स्तुति तथा विचार कह-कहकर (लोग) थक जाते हैं, किन्तु हे नानक, फिर भी वे बेचारे गंवार (प्रभु की अनन्तता का पार) तृणमात्र भी नहीं पा सके ॥ १ ॥

आंखों का सहारा लेकर फिरने से सारे आकारों (मूर्तिमान वस्तुओं) को (मैंने) देख लिया। ज्ञानियों, पंडितों और वेदों के विचारों को भी पूछ लिया। देवताओं और मनुष्यों से भी पूछकर देख लिया (वे लोग जो) योद्धाओं को अवतार बना देते हैं। सिद्धों की समाधि की भी सारी बातें सुन लीं (और बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के) दरबारों को भी जाकर देख लिया (किन्तु इन सब में कोई सार नहीं है)। आगे सच्चा (हरी) और उसका सत्य नाम ही रहता है (अन्य वस्तुएँ यहीं की यहीं रह जाती हैं) (हरी ही) निर्भय है, वह भय से रहित है, (इसी से) श्रेष्ठ है। (हरी को छोड़कर) और बुद्धियाँ कच्ची, थोथी और अन्धी हैं, तथा अन्य विचार भी अन्धे ही हैं। हे नानक, (प्रभु की) बख्शीश द्वारा (उसकी) भक्ति—वन्दना तथा कृपादृष्टि ही पार लंघाती है ॥ १९ ॥

पउड़ी
नाइ मंनिऐ दुरमति गई मति परगटी आइआ ।
नाउ मंनिऐ हउमै गई सभि रोग गवाइआ ॥
नाइ मंनिऐ नामु ऊपजै सहजे सुखु पाइआ ।
नाइ मंनिऐ सांति ऊपजै हरि मंनि वसाइआ ॥
नानक नामु रतनु है गुरमुखि हरि धिआइआ ॥२॥

पउड़ी : नाम के मनन से दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है और (शुभ तथा सात्त्विक) बुद्धि प्रकट होती है। नाम पर मनन करने से अहंभावना नष्ट हो जाती है, (जिससे) सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। नाम पर मनन करने से (हृदय में) नाम उत्पन्न हो जाता है, जिससे सहज ही सुख प्राप्त होता है। नाम पर मनन करने से शान्ति उत्पन्न होती है और मन में हरि बसा लिया जाता है। हे नानक, नाम (वास्तविक) रत्न है और गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का ध्यान किया जाता है।

[विशेष : 'आइआ', 'पाइआ', गवाइआ, धिआइआ आदि शब्द भूतकाल के हैं, किन्तु वर्तमान में प्रयोग करने से अर्थ में स्वाभाविकता अधिक आ जाती है] ॥ २ ॥

सलोकु
होरु सरीकु होवै कोई तेरा तिसु अगै तुधु आखां ।
तुधु अगै तुधै सालाही मै अंधे नाउ सुजाखा ।
जेता आखणु साही सबदी भाखिआ भाइ सुभाई ।
नानक बहुता एहो आखणु सभ तेरी वडिआई ॥१७॥
जां न सिआ किआ चाकरी जां जंमे किआ कार ।
सभि कारण करता करे देखै वारो वार ॥
जे चुपै जे मंगिऐ दाति करे दातारु ॥
इकु दाता सभि मंगते फिरि देखहि आकारु ॥
नानक एवै जाणीऐ जीवै देवणहारु ॥१८॥

सलोकु : यदि कोई और तेरे समान (सरीक) हो तो उसके आगे तेरा वर्णन करूँ (पर तेरे समान कोई और है ही नहीं जिसके आगे मैं तेरा वर्णन कर सकूँ । अपने समान तू स्वयं ही है) । मैं तेरे सम्मुख तेरी प्रशंसा करता हूँ (पर यह संभव नहीं है)। मैं हूँ तो अंधा किन्तु नाम सुन्दर आँखोंवाला (सुजाखा) है । जो कुछ कहना होता है वह सब शब्दों द्वारा ही होता है । कथन करना भी अपने भाव (प्रेम) और स्वभाव के अनुसार होता है । हे नानक, बहुत कुछ कहने (का यही तात्पर्य है कि) सब कुछ तेरी ही बड़ाई है ॥ १७ ॥

जब जीव का अस्तित्व नहीं था, तो वह कौन सी चाकरी—कार्य करता था और जब उसने जन्म ले लिया तो भी वह क्या कर सकता है ? (तात्पर्य यह कि जीव के वश में कुछ भी नहीं है, सभी कुछ परमात्मा के अधीन है) । (अतएव यह समझना चाहिए कि) सभी सृष्टि (कारण) कर्तापुरुष ही रचता है (और उन्हें रच कर) बार-बार (उनकी) देखभाल करता है । चाहे चुप रहा जाए (अथवा) चाहे माँगा जाए, वह दाता (प्रभु अपनी) मर्जी के अनुसार दान करता है । सारी समस्त सृष्टि (आकार) घूम कर देख लें (तो तुम्हें पता चलेगा कि) दाता एक है और सब उससे माँगनेवाले हैं । (समस्त सृष्टि के पर्यटन करने पर) नानक को इतना ही पता लगता है कि दाता (हरी ही) है और वह चिरंजीवी (शाश्वत तथा अमर) है ॥ १८ ॥

पउड़ी :
नाइ मंनिऐ सुरति ऊपजै नामे मति होई ।
नाइ मंनिऐ गुण उचरै नामे सुखि सोई ॥
नाइ मंनिऐ भ्रमु कटीऐ फिरि दुखु न होई ।
नाइ मंनिऐ सालाहीऐ पापां मति धोई ॥
नानक पूरे गुर ते नाउ मंनीऐ जिन देवै सोई ॥१९॥

पउड़ी : नाम पर मनन करने से (हरी की) स्मृति (सुरति) उत्पन्न होती है और नाम से (सद् और असद् का) बुद्धि (ज्ञान होती है) । नाम पर मनन करने से (हरी के) गुणों का उच्चारण होता है और नाम से ही सुख से सोया जाता है । नाम पर मनन करने से (सारे) भ्रम कट जाते हैं (जिससे) फिर दुःख नहीं होता । नाम के मनन से (हरी की) स्तुति होने लगती है और पापमयी बुद्धि धुल कर (पवित्र हो जाती है) । हे नानक, पूरा गुरु से ही नाम के ऊपर मनन किया जाता है (वह नाम उसी द्वारा मनन किया जाता है), जिन्हें वह (हरी) दे देता है ॥१९॥

सलोकु नानक बेद पुराण पड़ता । पुकारता अजाणता ॥
जा बूझै ता सूझै सोई । नानकु आखै कूक न होई ॥१९॥

जा हउ तेरा ता सभु किछु मेरा हउ नाही तू होवहि ।
आपे सकता आपे सुरता सकती जगतु परोवहि ॥
आपे भेजे आपे सदे रचना रचि रचि वेखै ।
नानक सचा सची नाँई सचु पवै धुरि लेखै ॥२०॥

सलोकु (अहंकारी व्यक्ति) वेदों शास्त्रों और पुराणों को पढ़ता है। (वह यह) पुकारता है (कि मैंने वेदा-शास्त्रों को पढ़ा है) (पर अनुभव की दृष्टि से कुछ भी) नहीं जानता। जब (साधक परमात्म-तत्व को) बूझ लेता है, तो उसे (सब कुछ) सुझाई पड़ने लगता है। नानक कहता है (कि ज्ञानावस्था में) चिल्लाना नहीं रह जाता ॥१९॥

जब मैं तेरा (हो जाता हूँ) तो सभी कुछ मेरा हो जाता है, (क्योंकि चाहे मैं रहूँ या) न रहूँ (पर) तू तो (सदैव) रहता है। (हे प्रभु) तू आप ही शक्तिशाली है और आप ही ज्ञानवान (सुरता=सुरति—स्मृति वाला; ज्ञानवान) है। तू अपनी शक्ति में (समस्त) जगत् को पिरोये है। तू (जीवों को इस संसार में) आप ही भेजता है, और आप ही (उन्हें) बुला लेता है तू (सारी) सृष्टि रच रचकर, उसे देखता रहता है—निगरानी करता रहता है। हे नानक सच्चे नाम के कारण (प्रभु) सच्चा है, (जिनके भाग्य में) प्रारम्भ से ही लिखा रहता है, (वे ही) सत्य को पाते हैं ॥२०॥

पउड़ी : नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई ।
नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई ॥
नामु निरंजन वरतदा रविआ सभ ठाई ।
गुर पूरे ते पाईऐ हिरदै देइ दिखाई ॥
नानक नदरी करमु होइ गुर मिलीऐ भाई ॥२१॥

पउड़ी (हे भाई, हरी का) नाम निरंजन (माया से रहित) और अलक्ष्य है (वह) किस प्रकार लखा—देखा जाय? (हरी का) निरंजन नाम (प्रत्येक जीव के) साथ है, (किन्तु) हे भाई, वह प्राप्त किस प्रकार किया जाय? (हरी का) निरंजन नाम (सर्वत्र) बरत रहा है और सभी स्थानों में रम रहा है, (व्याप्त है)। पूर्ण गुरु से ही (वह नाम) पाया जाता है वह (शिष्य के) हृदय में ही (नाम) दिखा देता है। नानक का कथन है कि हे भाई, (प्रभु की) कृपादृष्टि हो तभी गुरु का मिलना होता है ॥२१॥

सलोकु कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु ।
कूड़ु बोलि बोलि भउकणा चूका धरमु बीचारु ।
जिन जीवंदिआ पति नही मुइआ मंदी सोइ ।
लिखिआ होवै नानका करता करे सु होइ ॥२२॥

अंति भलि अखणा झगड़ा झाख ।
झखि झखि जाहि झखहि तिन्ह पासि ॥२३॥
कापड़ काठु रंगाइआ रांगि । घर गच कीते बागे बाग ॥
साद सहज करि मनु खेलाइआ । तै सह पासहु कहणु कहाइआ ।
मिठा करि कै कउड़ा खाइआ । तिनि कउड़ै तनि रोगु जमाइआ ॥
जे फिरि मिठा पेड़ै पाइ । तउ कउड़तणु चूकसि माइ ।
नानक गुरमुखि पावै सोइ । जिस नो प्रापति लिखिआ होइ ॥२४॥

सलोक सारा व्यक्तियों से प्रेम हो और सारी (वर्ष का) जीवन हो (किन्तु फिर भी) खुशियों और उमंगों (चाव) का क्या (मूल्य) है ? (ऐसबों के) बिछुड़ने से वियोग का दुःख (विष) होता है और (सारी खुशियाँ) एक घड़ी में चली जाती हैं। चाहे सौ वर्षों तक मीठा खाया जाय, फिर भी (अन्त में) कड़ुवा खाना ही पड़ता है। (जब कड़ुवा खाना होता है) तो मीठे खाने की ओर चित्त नहीं जाता (अर्थात् जब दुःखों को भोगना होता है, तो पूर्व के सुखों की स्मृति नहीं आती कि मैंने सुख भोगे हैं, तो दुःख भी सुख ही को भोगना है) और बार-बार कड़ुवे की ओर ही दौड़ता है। (इस प्रकार) मीठे और कड़ुवे—सुख-दुःख दोनों ही रोग हैं। नानक का विचार है कि अन्त में दोनों के कारण (जीव) नष्ट होते हैं जो लोग झूठे ही झगड़ा करते हैं वे इसी प्रकार झख मार कर खप जाते हैं। (ऐसे व्यक्ति) झख मार कर नष्ट होते रहते हैं (फिर भी विषयों की ओर) झख मारते जाते हैं ॥ २३ ॥

कपड़ों और लकड़ियों (आदि) को रंगों से रँगा कर (कुरसियाँ आदि बहुत से सामान बनवा लिए)। मकान को चूने आदि से (ऐसा बनाया कि) सफेद ही सफेद (दिखलाई पड़ने लगा)। स्वादों और सुखों के बीच (अपने) मन को क्रीड़ा कराते रहे और तुम मालिक से कहते-कहलाते रहे (अर्थात् हरी से प्रेम करने के बजाय झगड़ा करते रहे)। कड़वी वस्तुओं (विषयों) का मीठा समझ कर खाते रहे, किन्तु उन कड़वी वस्तुओं (विषयों) के कारण शरीर में (नाना भाँति के) रोग संचित हो गए। यदि फिर (हरिनाम रूपी) मीठे वस्तु की प्राप्ति हो तभी माया का कड़ुवापन (विषय-विकार) नष्ट हो सकता है (अन्यथा नहीं)। हे नानक, उस वस्तु को गुरु की शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जाता है; जिसके भाग्य में लिखा होता है (उसी को नाम रूपी मीठी वस्तु की) प्राप्ति होती है ॥२४॥

पउड़ी : जिन कै हिरदै मैलु कपटु है बाहरु धोवाइआ ॥
कूड़ कपटु कमावदे कूड़ु परगटी आइआ ॥
अंदरि होइ सु निकले नह छपै छपाइआ ।
कूड़ै लालचि लगिआ फिरि जूनी पाइआ ।
नानक जो बीजै सो खावणा करतै लिखि पाइआ ॥१३॥

पउड़ी जो (व्यक्ति) बाहर से तो खूब धुले-धुलाए हैं, किन्तु भीतर मन और कपट से भरे हुए हैं वे झूठ और कपट ही कमाते हैं (और अन्त में झूठ और कपट ही) बाहर प्रकट

होते हैं। जो वस्तु भीतर होती है वही बाहर आकर निकलती है छिपाने से (कोई वस्तु) नहीं छिपती। (मनुष्य) झूठ और लालच में सब कर बारम्बार योनि के चक्कर में पड़ता है। हे नानक, जो बोया जाता है, वही खाने को मिलता है कर्मानुसार के यहाँ यह सब लिखा पड़ा है ॥१३॥

सलोकु　　वेदु पुकारे पुंनु पापु सुरग नरक का बीउ ।
　　　　जो बीजै सो उगवै खांदा जाणै जीउ ॥
　　　　गिआनु सलाहे वडा करि सचो सचा नाउ ।
　　　　सचु बीजै सचु उगवै दरगह पाईऐ थाउ ॥
　　　　वेदु वपारी गिआनु रासि करमी पलै होइ ।
　　　　नानक रासी बाहरा लदि न चलिआ कोइ ॥२४॥

सलोकु : वेदों का कथन है कि पुण्य और पाप ही स्वर्ग तथा नरक के बीज हैं। जो बोया जाता है, वही उगता है, (जीव जो कुछ भी बोता है) वही उसे खाने को मिलता है। ज्ञान की भी स्तुति महान रूप में की जाती है सत्य (परमात्मा) का सच्चा नाम है। सत्य के बोने से सत्य ही उगता है और (हरी के) दरबार में सम्मान प्राप्त होता है। वेद तो (निरे) व्यापारी हैं असली चीज तो ज्ञान है, (उस ज्ञान को) वेद अपनी पूंजी बनाकर बरतते हैं, ईश्वर की कृपा से ज्ञान प्राप्त होता है (तात्पर्य यह है कि वेद में मुख्य वस्तु ब्रह्मज्ञान है और वह परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है)। नानक का कथन है कि (ब्रह्मज्ञान रूपी) पूंजी के अतिरिक्त (मनुष्य इस संसार से) कोई और वस्तु लाद कर नहीं जाता ॥ २५ ॥

पउड़ी　　निमु बिरखु बहु संचीऐ अंम्रित रसु पाइआ ।
　　　　बिसीअरु मंत्रि विसाहीऐ बहु दूधु पीआइआ ॥
　　　　मनमुखु अभिंनु न भिजई पथरु नावाइआ ॥
　　　　बिखु महि अंम्रितु सिंचीऐ बिखु का फलु पाइआ ॥
　　　　नानक संगति मेलि हरि सभ बिखु लहि जाइआ ॥१४॥

पउड़ी : नीम के वृक्ष को चाहे सींचा जाए और उसमें से चाहे अमृत रस ही पाया जाय (किन्तु होता है, वह कड़वा ही)। (गारुड़) मंत्र के बल पर यदि सर्प का विश्वास करके (उसे) खूब दूध पिलाया जाय (फिर भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता)। (इसी भाँति) मनमुख कोरे का कोरा ही रहता है वह (उसी भाँति) नहीं भीगता, (जिस भाँति) पत्थर स्नान करने से (नहीं भीगता)। विष (के पेड़) में चाहे अमृत ही डाल कर सींचा जाय पर उसका फल विष ही प्राप्त होगा। नानक का विचार है कि सत्संगति द्वारा हरि की प्राप्ति से सारे विष नष्ट हो जाते हैं ॥१६॥

सलोकु :　　मरणि न मूरतु पुछिआ पुछी थिति न वारु ।
　　　　इकन्ही लदिआ इकि लदि चले इकन्ही बधे भार ।
　　　　इकन्हा होई साखती इकन्हा होई सार ।
　　　　लसकर सणै दमामिआ छुटे बंक दुआर ।
　　　　नानक ढेरी छारु की भी फिरि होई छार ॥२६॥

नानक ढेरी ढहि गई मिटी संदा कोटु।
भीतरि चोरु बहालिआ खोटु वे जीआ खोटु ॥२७॥

सलोक: मरण न तो मुहूर्त पूछता है, न तिथि और न वार। [वह अपने समय पर आ ही जाता है, और जीव को लेकर चला जाता है]। कुछ ने तो अपना (माल-असबाब) लाद लिया और कुछ लोग लाद कर चल दिए हैं और कुछ लोग अपना भार बाँध रहे हैं। कुछ तो (घोड़े के) साथ समान संभाल चुके हैं और कुछ (अपने माल असबाब की) खोज-खबर में पड़े हैं। लश्कर के साथ नगाड़े (बज चुके हैं) और सुन्दर (घर के) द्वार छूट चुके हैं। नानक का कथन है कि (मनुष्य का शरीर) पहले भी मिट्टी का ढेर था (और मर जाने पर भी) (मिट्टी का ढेर हो गया ॥२६॥

नानक कहते हैं (कि मृत्यु के आने पर शरीर रूपी) मिट्टी का किला ढह कर मिट्टी का ढेर हो गया। (शरीर के किले के) भीतर (मन रूपी) चोर बैठा था (अब उसका भी पता नहीं है)। (अतः) हे जीव यह सब कुछ खोटा ही खोटा है ॥२७॥

पउड़ी
जिन अंदरि निंदा दुसटु है नक वढे नक वढाइआ।
महा करूप दुखीए सदा काले मुह माइआ॥
भलके उठि नित पर दरबु हिरहि हरि नामु चुराइआ।
हरि जीउ तिन की संगति मत करहु रखि लेहु हरि राइआ॥
नानक पइऐ किरति कमावदे मनमुखि दुखु पाइआ ॥१५॥

पउड़ी: जिन व्यक्तियों के अन्तर्गत दुष्ट निन्दा (का वास) है (उनकी) नाक कटती है (और वे अपनी) नाक कटाते हैं। माया में (पड़कर) वे महा कुरूप और दुःखी होते हैं और उनका मुँह सदैव काला रहता है। नित्य प्रातःकाल उठकर (वे) दूसरों का द्रव्य चुराते हैं। (इन्होंने) हरि नाम को चुरा रखा है, (मुँह पर नहीं लाते) (अर्थात् हरि नाम मुँह से नहीं निकालते उसे बिसरा दिये हैं)। हे हरि जी ऐसे व्यक्तियों का साथ (मुझे) न प्रदान कर (हे प्रभु उन लोगों से) मेरी रक्षा कर ले। नानक का विचार है कि मनमुख पड़े हुए संस्कार के अनुसार कर्म करते हैं (और इसी से) दुःख पाते हैं ॥१५॥

सलोकु
धनवंता इव ही कहै अवरी धन कउ जाउ।
नानकु निरधनु तितु दिनि जितु दिनि विसरै नाउ ॥२८॥
सूरजु चड़ै विजोगि सभसै घटै आरजा।
तनु मनु रता भोगि कोई हारै को जिणै।
सभु को भरिआ फूकि आखणि कहणि न थम्हीऐ॥
नानक वेखै आपि फूक कढाए ढहि पवै ॥२९॥

सलोक: धनी (मालदार) व्यक्ति तो इस प्रकार कहता है कि मैं और धन लेने के लिए जाऊँ। पर नानक तो उस दिन अपने आप को निर्धन समझता है जिस दिन (उसे) हरि का नाम विस्मृत हो जाए ॥२८॥

सूरज चढ़ने (से लेकर उसके) छिपने (डूबने) तक (तात्पर्य यह कि सारा दिन) आयु घटती रहती है। (इस प्रकार सांसारिक प्राणी) तन, मन के भोग में रत रहते हैं (इस संसार में कोई हारता है और कोई जीतता है। सभी कोई अहंकार से भरे हैं और कहने सुनने से रुकते नहीं—समझाना-बुझाना नहीं मानते। नानक का कथन है कि (प्रभु आप ही सब कुछ देखता है (यदि वह) श्वास (फूंक) निकाल ले तो (मनुष्य) ढह जाता है ॥२९॥

पउड़ी सतसंगति नामु निधानु है जिथहु हरि पाइआ ॥
गुरपरसादी घटि चानणा आन्हेरु गवाइआ ।
लोहा पारसि भेटीऐ कंचनु होइ आइआ ॥
नानक सतिगुरि मिलिऐ नाउ पाईऐ मिलि नामु धिआइआ ॥
जिन्ह कै पोतै पुंनु है तिन्ही दरसनु पाइआ ॥१९॥

पउड़ी सत्संगति में ही नाम निधान (छिपा है) और वहीं से हरी की प्राप्ति होती है। गुरु की कृपा से हृदय में (घट में) प्रकाश (ज्ञान) हो जाता है और अन्धकार (अज्ञान) नष्ट हो जाता है। पारस के स्पर्श से लोहा कंचन के रूप में परिणत हो जाता है। हे नानक सद्गुरु के मिलने पर नाम की प्राप्ति होती है, और उसमें मिलकर नाम का ध्यान होता है। [उपर्युक्त पउड़ी में 'पाइआ' 'गवाइआ' 'आइआ', 'धिआइआ' आदि क्रियाएं भूतकाल की हैं किन्तु इनका अर्थ वर्तमान काल में लिखने से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है]। जिनके खजाने में पुण्य है, वे ही हरी और गुरु का दर्शन प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

सलोकु धृगु तिना का जीविआ जि लिखि लिखि वेचहि नाउ ।
खेती जिन की उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ ॥
सचै सरमै बाहरे अगै लहहि न दादि ।
अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ बादि ॥
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु ।
अकली पड़ि कै बुझीऐ अकली कीचै दानु ॥
नानकु आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु ॥१ ॥

सचु वरतु संतोखु तीरथु गिआनु धिआनु इसनानु ।
दइआ देवता खिमा जपमाली ते माणस परधान ॥
जुगति धोती सुरति चउका तिलकु करणी होइ ।
भाउ भोजनु नानका विरला त कोई कोइ ॥२॥

गिआन विहूणा गावै गीत । भुखे मुलां घरे मसीति ॥
मखटू होइ कै कंन पड़ाए । फकरु करे होरु जाति गवाए ॥
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ । ता कै मूलि न लगीऐ पाइ ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ । नानक राहु पछाणहि सेइ ॥३॥

मनहु जि अंधे कूप कहिआ बिरदु न जाणन्ही ।
मनि अंधै ऊंधै कवलि दिसन्हि खरे करूप ॥

इकि कहि जाणहि कहिआ बुझहि ते नर सुघड़ सरूप ॥
इकना नाद न बेद न गीअरसु रस कस न जाणंति ।
इकना सुधि न बुधि न अकलि सर अखर का भेउ न लहंति ॥
नानक से नर असलि खर जि बिनु गुण गरबु करंति ॥२३॥

सलोकु —उनके जीवन को धिक्कार है, जो हरिनाम को लिख-लिख कर बेचते हैं, (अर्थात् जो व्यक्ति हरिनाम के आधार पर सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनके जीवन को धिक्कार है)। जिसकी खेती उजड़ गई है, (उसके) खलिहान में क्या होगा ? [तात्पर्य यह है कि जिनकी नाम-स्मरण रूपी खेती नष्ट हो चुकी है, उन्हें आध्यात्मिक लाभ क्या होगा ?]। सत्य और श्रम (उद्यम) के बिना आगे (परमात्मा के यहाँ) उनकी कोई भी कदर नहीं होगी। (जो) अक्ल झगड़ा-फसाद (आदि) में नष्ट की जाती है, (उसे) अक्ल नहीं कहना चाहिए। (सच्ची) अक्ल से साहब (हरी) की सेवा की जाती है और (सच्ची) अक्ल से (हरी के यहाँ) मान पाया जाता है। (सच्ची) अक्ल से ही पढ़ कर (उसके मन में) समझा जाता है और उसी अक्ल से दान दिया जाता है। नानक इसी को (वास्तविक) मार्ग कहता है, और बातें तो शैतान (की बातें) हैं ॥ १० ॥

सत्य (जिन व्यक्तियों का) व्रत है, संतोष तीर्थ है, ज्ञान-ध्यान ही स्नान है, दया देवता है, क्षमा जपमाली है वे मनुष्य प्रधान हैं। हे नानक, जिनकी युक्ति (परमात्मा से मिलने की विधि) धोती है, सुरति (हरी की स्मृति) चौका है, (शुभ) करनी जिनका तिलक है, नाम (प्रेम) ही जिनका भोजन है, (ऐसे मनुष्य) कोई-कोई विरले ही होते हैं ॥ ११ ॥

(लोग) ज्ञान के बिना ही गीत गाते हैं। भूखा मुल्ला (रोटी पाने के निमित्त) घर को ही मस्जिद (बना लेते) हैं। (लोग) निकम्मे (आलसी) होकर (अपना) कान फड़वा लेते हैं फकीरी करके अपनी जाति (तात्पर्य यह कि मर्यादा) गँवा देते हैं। (जो लोग) कहलाते तो 'गुरु' और 'पीर' हैं किन्तु माँगने जाते हैं (भिक्षा), उनके चरणों में नहीं पड़ना चाहिए। नानक (के मत में) (जो व्यक्ति) परिश्रम करके खाता है (और अपनी कमाई में से) अपने हाथों से कुछ (दूसरों को) देता है वही (व्यक्ति, वास्तविक) मार्ग पहचानता है ॥ १२ ॥

जो मन से अन्धे हुए हैं, (अर्थात् जो बहुत अज्ञानी हैं)। (अपने) कहे हुए (उपदेश) की मर्यादा नहीं रखते (तात्पर्य यह कि अपनी कही हुई बातों पर स्वतः आचरण नहीं करते) (वे मति हीन हैं)। मन अन्धा होने (के कारण) उनका (हृदय रूपी) कमल उलटा है और नितान्त (निरे) कुरूप दिखाई पड़ते हैं। कुछ लोग कह कर (उसे) जानते और समझते हैं (अर्थात् कही हुई वस्तु पर आचरण करते हैं) ऐसे पुरुष सुन्दर स्वरूपवाले हैं, (वे ही सच्चे मनुष्य हैं)। कुछ लोग ऐसे हैं (जो) नाद वेद तथा गीत का रस (आनन्द) तथा कसैले आदि रस—(भला-बुरा) नहीं जानते। कुछ लोग। (ऐसे हैं) (जिन्हें) सुधि-बुधि तथा अक्ल नहीं है और अक्षर का भेद भी नहीं जानते। नानक (के विचार से) वे मनुष्य असली (निरे) गधे हैं जो बिना (किसी) गुण के ही गर्व करते हैं ॥ २३ ॥

पउड़ी गुरमुखि सभ पवितु है धनु सम्पै माइआ ।
हरि अरथि जो खरचदे देंदे सुखु पाइआ ॥
जो हरिनामु धिआइदे तिन तोटि न आइआ ।
गुरमुखां नदरी आवदा माइआ सुटि पाइआ ॥
नानक भगतां होरु चिति न आवई हरि नामि समाइआ ॥१७॥

पउड़ी गुरमुखों के लिए धन-सम्पत्ति माया—सभी (वस्तुएं) पवित्र हैं। जो हरि के निमित्त व्यय करते हैं और देने में सुख पाते हैं और हरी के नाम का ध्यान करते हैं उन्हें (किसी प्रकार की) कमी नहीं आती। गुरमुखों की दृष्टि में (हरी) आ जाता है, (इसलिए वे माया को पसंद ही नहीं करते), त्याग देते हैं। हे नानक हरि भक्तों के चित्त में (हरी के अतिरिक्त) और कुछ भी नहीं आता, (उनके हृदय में) हरी-नाम ही समाया रहता है ॥ १७ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु मलार, महला १, चउपदे, घरु १

ਧਵਾ

[१]

खाणा पीणा हसणा सउणा विसरि गइआ है मरणा ।
खसमु विसारि खुआरी कीनी ध्रिगु जीवणु नही रहणा ॥१॥

प्राणी एको नामु धिआवहु ।
अपनी पति सेती घरि जावहु ॥१॥ रहाउ ॥

तुधनो सेवहि तुझु किआ देवहि मांगहि लेवहि रहहि नही ।
तू दाता जीआ सभना का जीआ अंदरि जीउ तुही ॥२॥

गुरमुखि धिआवहि सि अम्रितु पावहि सेई सूचे होही ।
अहिनिसि नामु जपहु रे प्राणी मैले हछे होही ॥३॥

जेही रुति काइआ सुखु तेहा तेहो जेही देही ॥
नानक रुति सुहावी साई बिनु नावै रुति केही ॥४॥

खाने पीने हँसने, सोने में ही (मनुष्य) काल को भूल गया है। उसने पति परमात्मा को बिसार कर ख्वारी कर ली है (उसके) क्षणभंगुर जीवन को धिक्कार है ॥ १ ॥

हे प्राणी एक (हरी) के नाम का ध्यान कर ताकि अपनी मर्यादा—प्रतिष्ठा से (अपने आत्मस्वरूपी) घर में जा सके ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु), (जो) तेरी आराधना करते हैं—सेवा करते हैं (वे) तुझे क्या देते हैं ? (कुछ भी नहीं) (वे तुझसे) मांगते रहते हैं और लेने से बाज नहीं आते। (हे प्रभु) तू सभी जीवों का दाता है जीवों के अन्दर्गत (तू ही) जीवन है ॥ २ ॥

(जो) गुरमुख (तेरा) ध्यान करते हैं वे अमृत प्राप्त करते हैं और वे ही पवित्र होते हैं। हे प्राणी अहर्निश (हरी का) नाम जप नाम जपने से अपवित्र (मैले) भी पवित्र (स्वच्छ) हो जाते हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु), (मैं) मेवा और मुरति (परमात्मा की स्मृति) में सदा और प्रसन्नता-पूर्वक (तेरा) गुणगान करूं तथा गुरु की शिक्षा द्वारा ब्रह्मज्ञान पर विचार करूं। जिज्ञासु (तो अपनी साधना से) संपन्न हो जाता है और वाणी (अपने विराटभाव में) मग्न हो जाता है। मैं तो गुरु की कर्ता-पुरुष पर बलिहारी हूँ। (हे सद्गुरु) हम नीच मतिहीन और झूठे हैं तू (अपने) शब्द से सँवारने वाला है। जहाँ आत्मा समझा जाता है—जाना जाता है, हे तारने वाले (सद्गुरु अथवा हरी) वहीं तू उपस्थित रहता है ॥ ३ ॥

(हे हरी, मैं) किस सुन्दर स्थान में बैठ कर तेरे भिन्न-भिन्न प्रकार गुणों का कथन करूं? (तू तो अनन्त है, मैं तेरे गुणों का कथन कर ही नहीं सकता)। (हे स्वामी तू) अलक्ष्य अयोनि और अगम है, तू नाथ—स्वामी (कहलानेवालों) को भी वशीभूत करने वाला (नाथनेवाला) है। मैं किसे देखकर तुझ जैसा कहूँ? सभी (व्यक्ति) तेरे याचक हैं, तू (सभी का) दाता है। (हे प्रभु) तू भक्तिहीन नानक को (उसके) दरवाजे पर लगा (ताकि) उसे नाम प्राप्त हो जाय (और उसे) वह अपने हृदय में धारण कर ले ॥ ४ ॥ ३ ॥

[प्रस्तुत पद को 'गलाइमा', माइमा आदि क्रियाएं भूतकाल की हैं। किन्तु स्वाभाविकता की दृष्टि से इसका अर्थ वर्तमान काल में लिखा गया है]

[४]

जिस धन पिर का साउ न जानिया सा बिलख बदन कुमलानी।
भई निरासी करम की फासी बिनु गुर भरमि भुलानी ॥१॥

बरसु घना मेरा पिरु घरि आइआ।
बलि जावां गुर अपने प्रीतम जिनि हरि प्रभु आणि मिलाइआ ॥१॥रहाउ॥

नउतन प्रीति सदा ठाकुर सिउ अनदिनु भगति सुहावी।
मुकति भए गुरि दरसु दिखाइआ जुगि जुगि भगति सुभावी ॥२॥

हम थारे त्रिभवण जगु तुमरा तू मेरा हउ तेरा।
सतिगुरि मिलिऐ निरंजनु पाइआ बहुरि न भवजलि फेरा ॥३॥

अपुने पिर हरि देखि विगासी तउ धन साचु सीगारो।
अकुल निरंजन सिउ सचि साची गुरमति नामु अधारो ॥४॥

मुकति भई बंधन गुरि खोल्हे सबदि सुरति पति पाई।
नानक राम नामु रिद अंतरि गुरमुखि मेलि मिलाई ॥५॥४॥

जिस (जीवात्मा रूपी) स्त्री ने अपने (परमात्मा रूपी) पति का स्वाद नहीं पाया, वह व्याकुल मुखवाली कुम्हलाई जाती है। कर्म के फंदे में पड़कर निराश हो जाती है, (इस प्रकार) बिना गुरु के वह भ्रमित होकर भटकती रहती है ॥ १ ॥

हे बादल (तू) बरस (तात्पर्य यह कि हे गुरु तू उपदेश कर) मेरा प्रियतम (हरी, मेरे अन्तःकरण रूपी) घर में आ गया है। अपने प्रियतम गुरु की (मैं) बलिहारी हूँ जिसने प्रभु हरी को ले आकर (मुझसे) मिला दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नित्य नवीन ठाकुर (हरी) से वास्तव (सदा की) प्रीति हो गई है और (हरी से) अहर्निश की सुहावनी भक्ति बन गई है। गुरु ने (परमात्मा का) दर्शन करा दिया है, (जिससे मैं जीवात्मा रूपी स्त्री) मुक्त हो गई हूँ। युग-युगान्तरों के लिए भक्ति शोभावाली हो गई है ॥ २ ॥

हम तेरे हैं, तीनों लोकों की सृष्टि तेरी है। तू मेरा है और मैं तेरा हूँ। सद्गुरु के के मिलने से निरंजन (माया से रहित हरी) की प्राप्ति हो गई है; (अब) संसार-सागर में फिर चक्कर नहीं लगेगा ॥ ३ ॥

(मैं) अपने प्रियतम हरी को देख कर विकसित हो गई हूँ यही स्त्री का सच्चा शृंगार है। अकुल (कुलरहित) निरंजन (हरी) की सच्ची (प्रीति में अनुरक्त हो गई हूँ)। गुरु की सच्ची बुद्धि द्वारा (प्रस्त) हरिनाम ही (मेरा) आधार हो गया है ॥ ४ ॥

गुरु ने बंधन खोल दिये हैं (जिससे मैं) मुक्त हो गयी हूँ। शब्द—नाम की सुरति (स्मृति) से प्रतिष्ठा पा गई हूँ। हे नानक, रामनाम हृदय के अन्तर्गत (आ बसा) है। गुरु ने अपनी शिक्षा द्वारा (मुझे पहले अपने में) मिलाकर (अब हरी से) मिला दिया है ॥५॥४॥

[५]

परदारा परधनु परलोभा हउमै बिखै बिकार ।
दुसट भाउ तजि निंद पराई कामु क्रोध चंडार ॥१॥
महल महि बैठे अगम अपार ।
भीतरि अंम्रितु सोई जनु पावै जिसु गुर का सबदु रतनु आचार ॥१॥रहाउ॥
दुख सुख दोऊ सम करि जानै बुरा भला संसार ।
सुधि बुधि सुरति नामि हरि पाईऐ सत संगति गुर पिआर ॥२॥
अहिनिसि लाहा हरिनामु परापति गुरु दाता देवणहारु ।
गुरमुखि सिख सोई जनु पाए जिस नो नदरि करे करतारु ॥३॥
काइआ महलु मंदरु घरु हरि का तिसु महि राखी जोति अपार ।
नानक गुरमुखि महलि बुलाईऐ हरि मेले मेलणहार ॥४॥५॥

अहंकार रूपी विषय-विकारों में (लिप्त होकर सांसारिक प्राणी) पराई स्त्री और पराये धन में लिप्त है। (हे मायासक्त प्राणी) दुष्ट भावों पराई निंदा काम-क्रोध रूपी चाण्डालों का परित्याग कर ॥१॥

अगम और अपार (हरी) (शरीर रूपी) महल में बैठा हुआ है। इस भीतरी अमृत को वही जन—साधक पाता है जिसका आचार गुरु के शब्द रूपी रत्न है (अर्थात् जो गुरु के शब्द रूपी रत्नों की कमाई करता है) ॥१॥ रहाउ ॥

(सच्चा साधक) इस भले-बुरे संसार में दुःखी और सुखी को समान भाव से जानता है। सत्संगति एवं गुरु के प्यार से हरि के नाम की सुधि-बुधि और सुरति (स्मृति) प्राप्त होती है ॥२॥

(वही शिष्य) हरिनाम की प्राप्ति का लाभ अहर्निश प्राप्त करता है (जिसे) दाता और देनेवाले गुरु ने (प्रदान कर दिया है)। उसी जन (भक्त) को गुरु के द्वारा शिक्षा प्राप्त होती है, जिसके ऊपर कर्तापुरुष कृपादृष्टि करता है ॥३॥

यदि कुलीन (प्रतिष्ठित) जाति में कोई (व्यक्ति) (हरी का) सेवक हो तो (उसकी प्रशंसा का) कोई वर्णन नहीं कर सकता। (किन्तु) यदि नीची जाति में (कोई हरी का सेवक हो तो वह नानक (के शरीर के चाम के) जूते पहने ॥८॥१॥६॥

[७]

दुखु विछोड़ा इकु दुखु भूख। इकु दुखु सकतवार जमदूत॥
इकु दुखु रोगु लगै तनि धाइ। वैद न भोले दारू लाइ॥१॥
वैद न भोले दारू लाइ।
दरदु होवै दुखु रहै सरीर। ऐसा दारू लगै न बीर॥१॥रहाउ॥
खसमु विसारि कीए रस भोग। तां तनि उठि खलोए रोग॥
मन अंधे कउ मिलै सजाइ। वैद न भोले दारू लाइ॥२॥
चंदन का फलु चंदन वासु। माणस का फलु घट महि सासु॥
सासि गइऐ काइआ ढलि पाइ। ता कै पाछै कोइ न खाइ॥३॥
कंचन काइआ निरमल हंसु। जिसु महि नामु निरंजन अंसु॥
दूख रोग सभि गइआ गवाइ। नानक छूटसि साचै नाइ॥४॥२॥७॥

एक दुख तो वियोग का दुख होता है और एक दुख भूख का। एक दुख शक्तिशाली यमदूत का होता है और एक दुख शरीर में रोग का बीज कर लगता है। (इस प्रकार संसार में अनेक प्रकार के दुख हैं)। (अतएव) हे भोले वैद्य (तू किस दुख की निवृत्ति के लिए दवा दे रहा है)? (तू), दवा मत दे (क्योंकि तुझे असली रोग का पता नहीं है) ॥१॥

हे भोले वैद्य (तेरी दवा से भी) दर्द होता है और शरीर में दुख होता है। हे भाई तेरी दवा (मुझ पर) लग नहीं रही है (अतः) भोले वैद्य दवा मत दे ॥१॥ रहाउ॥

पति (परमात्मा) को भुलाकर अनेक प्रकार के रसों और भोगों के भोगने से शरीर में (अनेक प्रकार के) रोग उठ खड़े होते हैं। अन्धे (अविवेकी) मन को सजा मिलती है। हे भोले वैद्य दवा मत दे ॥२॥

चंदन की सुगन्धि ही चंदन का (वास्तविक) फल—परिणाम है। शरीर में (घट में) श्वासों का रहना ही मनुष्य जीवन की सार्थकता—फल है। श्वास निकलने पर शरीर ढह जाता है। (शरीरपात हो जाने के) पश्चात्, कोई भी दवा नहीं खा सकता ॥३॥

सोने के शरीर में निर्मल हंस—जीवात्मा (का निवास) है जिस (जीवात्मा) में निरंजन (हरी) का अंश है। (हरी-नाम से समस्त) दुख और रोग नष्ट हो जाते हैं। हे नानक सच्चे (हरी) के नाम से ही छुटकारा मिलेगा ॥४॥२॥७॥

[८]

दुखु महुरा मारण हरि नामु। सिला संतोख पीसणु हथि दानु॥
नित नित लेहु न छीजै देह। अंत कालि जमु मारै ठेह॥१॥
ऐसा दारू खाहि गवार। जितु खाधै तेरे जाहि विकार॥१॥रहाउ॥

राजु मालु जोबनु सभु छाव । रथि फिरंदै दीसहि थाव ॥
देह न नाउ न होवै जाति । ओथै दिहु ऐथै सभ राति ॥२॥

साद करि समधां त्रिसना घिउ तेलु । कामु क्रोधु अगनी सिउ मेलु ॥
होम जग अरु पाठ पुराण । जो तिसु भावै सो परवाण ॥३॥

तपु कागदु तेरा नामु नीसानु । जिन कउ लिखिआ एहु निधानु ॥
से धनवंत दिसहि घरि जाइ । नानक जननी धंनी माइ ॥४॥३॥८॥

तृष्णा के विष को (दूर करने के लिए) हरि नाम ही कुश्ते का मसाला है (अथवा) कुश्ता रूपी विष का मारक हरिनाम है। मारण—(१) कुश्ते का मसाला; (२) मारक (मारने वाला)। (उस मसाले के पीसने के लिए) संतोष ही सिल है और हाथों से दान देना (उसका वास्तविक) पीसना है। (हे साधक), (उस हरिनाम रूपी कुश्ते का) नित्य सेवन कर; इससे तेरी देह नहीं छीजेगी (तू अमरधर्मा हो जायगा)' (ऐसा नहीं करेगा, तो) अंतिम समय में यमराज (तुझे) ठोकर मारेगा ॥१॥

हे गँवार—मूर्ख (तू) ऐसी औषधि खा जिसके खाने से तेरे समस्त विकार नष्ट हो जायें ॥१॥ रहाउ ॥

राज धन (माल) यौवन (आदि) सभी (वस्तुएँ) छाया (के समान क्षणभंगुर हैं)। (सूर्य के) रथ के फिरने से—घूमने से (सारे) स्थान (ठीक ठीक) देखे जाते हैं। (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार अंधकार में कोई वस्तु सूझती नहीं और प्रकाश में सारी वस्तुएं यथा स्थिति में देखी जा सकती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में राज्यादिक वैभव छाया के समान क्षणभंगुर प्रतीत होने लगते हैं)। शरीर नाम (ख्याति, प्रसिद्धि) तथा जाति का आगे चल कर कुछ भी मूल्य) नहीं होता, (क्योंकि) वहाँ दिन है, (ब्रह्मज्ञान का प्रकाश है), (और यहाँ अज्ञानता के कारण) रात्रि है ॥२॥

(गुरु नानक देव आगे की पंक्तियों में यज्ञ का रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि हे साधक तू) स्वादों को तो समिधा (यज्ञ की लकड़ी) तृष्णा को घी-तेल तथा काम-क्रोध को अग्नि (बना) कर और सभी का एकत्र कर (इस यज्ञ में हवन कर)। (ऐसा यज्ञ करने में) यज्ञ होम तथा पुराण (आदि धार्मिक ग्रन्थों के) पाठ का फल प्राप्त हो जाता है। (फिर मनुष्य हरी की रजा-मर्जी का बंदा हो जाता है) और उसके लिए वही प्रामाणिक हो जाता है जो हरी को रुच ॥३॥

(हे हरी, साधक की) तपश्चर्या के कागज पर तेरे नाम का निशान—परवाना लिखा रहता है (पर यह परवाना उन्हीं को प्राप्त होता है) जिनके (भाग्य में) यह भाण्डार (हरी के यहाँ से) लिखा रहता है। (इसी परवाने के बल पर, सच्चे साधक अपने आत्मस्वरूपी) घर में जाकर धनवान दिखाई पड़ते हैं। हे नानक (ऐसे व्यक्तियों की) माता, जननी धन्य है ॥४॥३॥८॥

[९]

बाजे बरादु बोले बैल । जंबा भहु चाले तेरे भैल ॥
चबहु साहिबु देखिआ भैल ॥१॥

उडां उडि चड़ां असमानि । साहिब संम्रिथ तेरै ताणि ॥
जलि थलि डूंगरि देखां तीर । थान थनंतरि साहिबु बीर ॥२॥

जिनि तनु साजि दीए नालि खंभ । अति त्रिसना उडणै की डंझ ॥
नदरि करे तां बंधां धीर । जिउ वेखाले तिउ वेखां बीर ॥३॥

न इहु तनु जाइगा न जाहिगे खंभ । पउणै पाणी अगनी का सनबंध ॥
नानक करमु होवै जपीऐ करि गुरु पीरु । सचि समावै एहु सरीरु ॥४॥४॥६॥

(हे बहिन तेरे) वस्त्र श्वेत हैं (और तू मीठे) वचन बोलती है (तेरी) नासिका लम्बी है (और तेरे) नेत्र काले हैं। हे बहिन (तू इतनी सुन्दर तो है किन्तु) क्या तू ने (अपने) साहब (हरी) को भी कभी देखा है ? ॥१॥

(मैं बहुत ऊँची) उड़ान उड़ कर आकाश में चढ़ गया। हे साहब और सामर्थ्यवान् हरी तेरी ही शक्ति से (मैं ऊँची उड़ान उड़ सका)। हे भाई (वीर) (मैंने) जल स्थल पर्वत और किनारे आदि को देखा और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी) स्थान-स्थानान्तरों में साहब (परमात्मा ही विराजमान है) ॥२॥

उसी (प्रभु) ने शरीर को रचकर उसके उड़ाने के निमित्त (श्वास रूपी) पंखों का (सहारा) दिया है। (किन्तु मनुष्य सामर्थ्यवान् हरी को न समझ कर) अति तृष्णा के कारण उड़ने (भटकने के) दुःख (डंझ<संस्कृत दहन)—प्यास तृष्णा में पड़ा है। (यदि हरी की) कृपादृष्टि प्राप्त हो जाय तभी धैर्य बँध सकता है। हे भाई (मुझे तो प्रभु) जैसा दिखाता है, वैसा ही देखता हूँ ॥३॥

(हे भाई) न तो यह शरीर कहीं जायगा और न (श्वास रूपी) पंखे ही कहीं जायेंगे। (ये तो सब) वायु पानी और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों) के संयोग—संबंध से बने हैं। नानक का कथन है यदि (हरी की) बख्शिश होती है, तभी गुरु रूपी पीर (बना) कर, (उसे) जपा जाता है। (ऐसा करने से) यह शरीर सत्य (हरी) में ही समा जाता है ॥४॥४॥६॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ मलार, महला १, घरु

असटपदीआ   [१]

चकवी नैन नीद नहि चाहै बिनु पिर नीद न पाई ।
सूरु चड़्है प्रिउ देखै नैनी निवि निवि लागै पांई ॥१॥
पिर भावै प्रेमु सखाई ।
तिसु बिनु घड़ी नही जगि जीवा ऐसी पिआस तिसाई ॥१॥रहाउ॥
सरवरि कमलु किरणि आकासी बिगसै सहजि सुभाई ।
प्रीतम प्रीति बनी अभ ऐसी जोती जोति मिलाई ॥२॥

चात्रिक जल बिनु प्रिउ प्रिउ टेरै बिलप करै बिललाई ।
घनहर घोर दसी दिसि बरसै बिनु जल पिआस न जाई ॥३॥

मीन निवास उपजै जल ही ते सुख दुख पुरबि कमाई ।
खिनु तिलु रहि न सकै पलु जल बिनु मरनु जीवनु तिसु तांई ॥४॥

धन वांढी पिरु देस निवासी सचे गुर पहि सबदु पठाई ।
गुण संग्रहि प्रभु रिदै निवासी भगति रती हरखाई ॥५॥

प्रिउ प्रिउ करै सभै है जेती गुर भावै प्रिउ पाई ।
प्रिउ नाले सद ही सचि संगे नदरी मेलि मिलाई ॥६॥

सभ महि जीउ जीउ है सोई घटि घटि रहिआ समाई ।
गुर परसादि घर ही परगासिआ सहजे सहजि समाई ॥७॥

अपना काजु सवारहु आपे सुखदाते गोसांई ।
गुरपरसादि घर ही पिरु पाइआ तउ नानक तपति बुझाई ॥८॥१॥

चकवी (अपने) नेत्रों में नींद नहीं चाहती। बिना प्रियतम के (उसे) नींद नहीं प्राप्त होती। (आकाश में) सूर्य चढ़ने से वह (अपने) प्रियतम को नेत्रों से देखती है और झुक झुककर (उसके) चरणों में लगती है ॥१॥

(मुझे तो) सहायक प्रियतम का प्रेम अच्छा लगता है। उसके बिना जगत् में एक घड़ी भर भी जीना अच्छा नहीं लगता। उसके निमित्त—ऐसी (महान्) तृषा और प्यास है ॥१॥ रहाउ ॥

कमल तो सरोवर में है और सूर्य की किरणें आकाश में हैं, (फिर भी किरणों के छिटकते ही) कमल सहज भाव से विकसित हो जाता है। प्रियतम की आन्तरिक प्रीति उस प्रकार की (एकाकार) होती है जिस प्रकार ज्योति (की प्रीति) ज्योति से मिलकर (एक) हो जाती है ॥२॥

चातक (स्वाती नक्षत्र के) जल बिना 'पी पी' पुकारता है और बिलख-बिलख कर विलाप करता है। घनघोर बादल दसों दिशाओं में बरसता है (किन्तु चातक के लिए व्यर्थ है) (क्योंकि) बिना (स्वाती नक्षत्र के) जल के उसकी प्यास बुझती नहीं। [इसी प्रकार हरि सभी के ऊपर कृपा करके उन्हें नाना भाँति के पदार्थ देता है। किन्तु भक्त रूपी चातक को तो तभी शान्ति मिलती है जब उसे नाम रूपी स्वाती-जल की प्राप्ति होती है] ॥३॥

मछली का निवास जल ही में उत्पन्न होता है। (उसके) पूर्व के कर्मानुसार उसका सुख-दुःख पानी ही में है। (वह) पानी के बिना क्षण भर भी तिल भर भी पल भर भी नहीं रह सकती। उस (जल) पर ही (मछली का) जीवन-मरण निर्भर है ॥४॥

(जीवात्मा रूपी) स्त्री परदेसिन होकर (पति से) बिछुड़ी है (और उसका) पति (अन्य देश में) बस रहा है। सच्चे गुरु के द्वारा (वह अपने प्रियतम परमात्मा) के पास शब्द (संदेशा) भेजती है। (वह) गुणों का संग्रह करती है, (जिससे) प्रभु (हरि) उसके हृदय में निवास करने लगता है और जीवात्मा स्त्री भी (परमात्मा रूपी पति की) भक्ति में अनुरक्त होकर हर्षित होती है ॥५॥

(जितनी भी जीवात्मा रूपी स्त्रियाँ हैं), वे सभी 'प्रिय प्रिय' करती रहती हैं, किन्तु यदि गुरु को अच्छी लगती हैं तभी (हरी) प्रियतम को पा सकती हैं, (अन्यथा नहीं)। प्रियतम हरी के साथ ही शाश्वत और सच्चा संग है, (गुरु ही) कृपा करके (पहले उसे अपने) संग में मिलाकर (तत्पश्चात्) हरी से) मिला देता है ॥६॥

सभी (प्राणियों में) जीव और सभी जीवों में (वह हरी है, (इस प्रकार प्रभु हरी) घट-घट में व्याप्त हो रहा है। गुरु की कृपा से (हृदय रूपी) घर (ज्ञान से) प्रकाशित हो गया (और साधक) सहज भाव से ही सहजावस्था (तुरीयावस्था) में समाहित हो गया ॥७॥

हे सुखदाता गोसाईं तू अपना कार्य आप ही करता है। नानक का कथन है कि गुरु की कृपा से उसने (अपने हृदय रूपी) घर में प्रियतम (हरी) को प्राप्त कर लिया इससे तपन बुझ गई ॥८॥१॥

[२]

जागतु जागि रहै गुर सेवा बिनु हरि मै को नाही।
अनिक जतन करि रहणु न पावै आचु काचु ढरि पांही ॥१॥

इसु तन धन का कहहु गरबु कैसा।
बिनसत बार न लागै बवरे हउमै गरबि खपै जगु ऐसा ॥१॥रहाउ॥

जै जगदीस प्रभू रखवारे राखै परखै सोई।
जेती है तेती तुझ ही ते तुम्ह सरि अवरु न कोई ॥२॥

जीअ उपाइ जुगति वसि कीनी आपे गुरमुखि अंजनु।
अमरु अनाथ सरब सिरि मोरा काल बिकाल भरम भै खंजनु ॥३॥

कागद कोटु इहु जगु है बपुरो रंगनि चिहन चतुराई।
नान्ही सी बूंद पवनु पति खोवै जनमि मरै खिनु ताईं ॥४॥

नदी उपकंठि जैसे घर तरवर सरपनि घरु घर माही।
उलटी नदी कहां घरु तरवर सरपनि डसै दूजा मन मांही ॥५॥

गारड़ गुर गिआनु धिआनु गुर बचनी बिखिआ गुरमति जारी।
मन तन हेंव भए सचु पाइआ हरि की भगति निरारी ॥६॥

जेती है तेती तुधु जाचै तू सरब जीआं दइआला।
तुम्हरी सरणि परे पति राखहु साचु मिलै गोपाला ॥७॥

बाधी धंधि अंध नही सूझै बधिक करम कमावै।
सतिगुर मिलै त सूझसि बूझसि सच मनि गिआनु समावै ॥८॥

निरगुण देह साच बिनु काची मै पूछउ गुरु अपना।
नानक सो प्रभु प्रभू दिखावै बिनु साचे जगु सुपना ॥९॥२॥

(सहजावस्था में) जागनेवाला (साधक) गुरु की सेवा के माध्यम से (अहर्निश) जागता रहता है। बिना हरी के (इस संसार में) मेरा कोई नहीं है। अनेक यत्नों के करने पर भी

(मनुष्य इस संसार में) नहीं रह पाता। (जिस प्रकार अग्नि की भयंकर) आँच कच्ची वस्तुओं को पिघला देती है (उसी प्रकार इस नश्वर संसार में शरीर पिघल जाता है) ॥१॥

(भला बताओ) इस तन और धन का अभिमान किस प्रकार किया जाय? अरे बावरे, (इस तन-धन को नष्ट) होने में देरी नहीं लगती। अहंकार और गर्व में पड़ कर जगत् इसी प्रकार नष्ट होता रहता है ॥१॥ रहाउ ॥

हे प्रभु रक्षक जगदीश (तेरी) जय हो। जीवों की रक्षा और परख वही (जगदीश) करता है। (हे कर्तापुरुष) जितनी भी सृष्टि है सब तुम्ही से उत्पन्न हुई है तेरे समान और कोई दूसरा नहीं है ॥२॥

जीवों को उत्पन्न करके (उनके जीवन की) युक्ति (हरी ने) अपने वश में रखी है। (हरी) नाम ही कल्याणकारी भजन है जो गुरु द्वारा प्राप्त होता है। (हरी) अमर है सर्वस्वतंत्र है [अनाथ=जिसका कोई भी नाथ न हो या सर्व स्वतंत्र हो] सब निरोमणि है जन्म-मरण और भव-भ्रम को नष्ट करनेवाला है। [काल=मरण। बिकाल=काल का विपरीत अर्थात् जन्म] ॥३॥

यह बेचारा जगत् कागज का किला है इस कोट का रंग और चिह्न (बनावटें) चतुराई है। पानी की नन्हीं-सी बूंद अथवा पवन का (थोड़ा सा) चलन से उस कागज के किले की सारी शोभा (पति) नष्ट हो जाती है क्षणमात्र में (प्राणी) जन्म कर मर जाता है ॥४॥

नदी के किनारे पर वृक्ष अथवा घर हो और उस घर में सर्पिणी का घर हो यदि नदी उमड़ कर (बहने लगे) तो वह घर अथवा वृक्ष कहाँ रहता है? (तात्पर्य यह कि नष्ट हो जाता है) सर्पिणी भी (ऐसा अवसर पाकर) मनुष्य को खा डालती है मन में द्वैतभाव (अथवा माया) का होना सर्पिणी है। [तात्पर्य यह कि हमारा शरीर मौत के किनारे हो रहा है। इसे प्रत्यक्ष समय मृत्यु का भय है। काल रूपी सर्पिणी से बचने का एकमात्र उपाय है—गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान] ॥५॥

गुरु द्वारा प्राप्त ब्रह्मज्ञान ही (इस सर्पिणी से बचने का) गारुड़ मंत्र है। गुरु की शिक्षा द्वारा उसके वचनों पर ध्यान करने से (माया के) विष जल जाते हैं और तन मन स्वर्ण के समान शीतल हो जाते हैं सत्य की प्राप्ति में हरि की निराली (निर्लेप) भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥६॥

(हे प्रभु) जितनी भी (सृष्टि) है, वह तुझ ही से माँगती है तू सभी प्राणियों के ऊपर दयालु है। (हे प्रभु) मैं तेरी शरण में पड़ा हूँ (मेरा) प्रतिष्ठा—मर्यादा तेरा शरणागत से ही सोकार प्राप्त होता है ॥७॥

संसार—प्रपंचों में फंसी हुई (दुनिया) अन्धी हो गई है, (जिसने) गुरु की शिक्षा नहीं पकड़ा, (वह दिग्भ्रमित) कपियों का कर्म करती है। सद्गुरु के दिखाने ही पर वह (दुनिया) समझना सूझती है (उस सद्गुरु की शिक्षा से) अपना ज्ञान मन में लगा जाता है ॥८॥

गुणविहीन देह सच (परमात्मा) के बिना कच्ची है मैं (इस गर्व में) अपने दुख से पूछता हूँ। नानक का कथन है कि प्रभु गुरु प्रभु (परमात्मा) को दिखा देता है, (साथ ही यह भी दृढ़ करा देता है कि) बिना सच्चे परमात्मा के यह जगत् स्वप्नवत् है ॥९॥२॥

मुग्ध अन्धे के लिए तो नाम की ज्योति (का ही सहारा) है। हरिनाम गुरु के भय (एवं गुरु द्वारा दिखाए गए) भेद—रहस्य के सहारे में (आध्यात्मिक मार्ग में) चला है ॥१॥ रहाउ ॥

सद्गुरु के शब्द द्वारा मार्ग जाना जाता है। गुरु के सहारे सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति (का बोध होता है)। (सच्चा साधक) सुन्दर वाणी द्वारा नाम समझता है। हे हरी (यदि साधक) तुझे अच्छा लगे, तो (वह) तेरा दरवाजा पहचान लेता है ॥ २ ॥

(सच्चा शिष्य परमात्मा में) एक निरन्तर लगा कर बैठा है (तात्पर्य यह कि एकनिष्ठ ध्यान में लीन है)। गुरु की शिक्षा द्वारा हरिनाम को ही (उसने अपना) आधार बना लिया है। (ऐसे साधक के लिए) न तो (मार्ग में) जल पड़ता है, न पर्वत और न ऊँची धार ही। [उसके साधनमार्ग की सारी कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं]। (वह अपने आत्म स्वरूपी) घर में बस जाता है, उसे फिर मार्ग नहीं चलना पड़ता (तात्पर्य यह कि आवागमन का मार्ग समाप्त हो जाता है) ॥३॥

जिस घर में (हरी) बसता है (हे गुरु), तू ही उसकी विधि जानता है, औरों को (दूसरा को) वह महल नहीं प्रतीत होता। सद्गुरु के बिना समझ नहीं होती सारा जगत (अज्ञानता रूपी) रोग से दबा है। (सांसारिक प्राणी माया के प्रपंचों में फँस कर) क्रन्दन प्रलाप करता है और बिलखता है; बिना गुरु के (उसे) नाम नहीं प्रतीत होता। यदि गुरु के शब्द द्वारा नाम को पहचान लिया जाय तो पंकज रूपी आँखों के पलक मारते ही (तात्पर्य यह कि पलक मारते ही) (वह)—नाम (शिष्य को सांसारिक बन्धनों से) छुड़ा देता है ॥४॥

कुछ लोग तो मूर्ख अन्धे, मुग्ध और गँवार होते हैं, (वे विषयों को ही सब कुछ समझते हैं) और कुछ लोग सद्गुरु के भय से नाम का आश्रय (ग्रहण करते) हैं। (गुरु की) सच्ची वाणी मीठी अमृतधार है; जिसने उसे पिया है, (उसे) मोक्ष-द्वार प्राप्त हो गया है ॥ ॥

(साधकगण) हरिनाम को भय और प्रेम से (अपने) हृदय में बसाते हैं, (वे) गुरु के कार्य करते हैं और सत्य वाणी (पर आचरण करते हैं)। (गुरु-शब्द रूपी) बादल—इन्द्र बरसता है तो (साधक की हृदय-रूपिणी) पृथ्वी सुहावनी लगती है और प्रत्येक घट में (हरी की) ज्योति व्याप्त दिखाई पड़ती है। गुरु-विहीन प्राणी निर्बुद्धि होता है उसकी बुद्धि बालू के खेत (के समान ऊसर होती) है, (उसमें) बोने से (कुछ भी नहीं उगता)—यही उसकी निशानी है। सद्गुरु के बिना घनघोर अंधकार रहता है, (सद्गुरु विहीन प्राणी) बिना पानी के ही डूब मरते हैं ॥६॥

जो कुछ किया जाता है, वह प्रभु की आज्ञा से होता है। जो प्रारब्ध से (हरी की ओर से) लिखा रहता है, वह मेटा नहीं जा सकता। (प्राणी हरी के) हुक्म में बँध कर कार्य करता है। (जो व्यक्ति हरी के) एक शब्द—नाम में अनुरक्त होता है, वह सत्य में समा जाता है ॥७॥

(हे प्रभु) तेरा हुक्म चारों दिशाओं में बरत रहा है चारों दिशाओं तथा पाताल में (तेरा) नाम ही (व्याप्त) है। प्रभु का सच्चा शब्द सभी में बरत रहा है। सदैव स्थिर रहने वाला (हरी) कृपा से ही प्राप्त होता है। जन्म मरण क्षुधा निद्रा और काल सिर के ऊपर खड़े दिखाई पड़ रहे हैं। नानक का कथन है कि स्वामिन् (हरी) की कृपादृष्टि तथा (उसके) मन का रुचने से ही नाम की प्राप्ति होती है ॥८॥१॥८॥

[५]

मरण मुकति गति सार न जानै । कंठे बैठी गुर सबदि पछानै ॥१॥
तू कैसे आड़ि फाथी जालि । अलखु न जाचहि रिदै सम्हालि ॥१॥ रहाउ ॥
एक जीअ कै जीआ खाही । जलि तरती बूडी जल माही ॥२॥
सरब जीआ कीए प्रतपानी । जब पकड़ी तब ही पछुतानी ॥३॥
जब गलि फास पड़ी अति भारी । ऊडि न साकै पंख पसारी ॥४॥
रसि चूगहि मनमुखि गावारि । फाथी छूटहि गुण गिआन बीचारि ॥५॥
सतिगुरु सेवि तूटै जमकालु । हिरदै साचा सबदु सम्हालु ॥६॥
गुरमति साची सबदु है सारु । हरि का नामु रखै उरिधारि ॥७॥
से दुख आगै जि भोग बिलासे । नानक मुकति नही बिनु नावै साचे ॥८॥२॥५॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री) मरण तथा मुक्ति की गति की खबर नहीं जानती। गुरु के समीप बैठकर ही (वह) उसके शब्द को पहचान सकता है ॥१॥

(हे जीवात्मा रूपी) आड़ि तू कैसे जाल में फँस गयी? [आड़ि—बगुले की भाँति का एक पक्षी जो जल के किनारे रहता है]। [अथवा इसका अर्थ यह भी हो सकता है—(हे मछली) तू जाल के आड़ (घेरे में कैसे फँस गई)]? अलक्ष्य (हरी) को हृदय के अन्तर्गत सँभालना नहीं जानती? ॥१॥ रहाउ ॥

एक जीव को (दूसरा) जीव खाता है (अथवा एक जीव अपने जीवन की रक्षा के निमित्त कई जीवों को खाता है)। (इस प्रकार) जल में तरनेवाले (जीव) जल ही में डूब जाते हैं ॥ २ ॥

सारे जीवों को (तू ने) बहुत तपाया है, किन्तु जब (स्वयं) पकड़ी गई तब पछताने लगी ॥ ३ ॥

जब गले में बहुत बड़ी फाँसी पड़ गई, तो पंख फैला कर उड़ नहीं सकती ॥ ४ ॥

मनमुखी गँवारिन (जीवात्मा) स्वाद ले लेकर (चारा) चुगती है (किन्तु) जाल में पड़ कर फँस जाती है। (हे जीवात्मा) तू शुभ गुणों और ज्ञान को विचार कर इस बंधन से छूट सकती है ॥ ५ ॥

(हे जीवात्मा) सद्गुरु की सेवा कर, ताकि यमराज रूपी काल का भय टूट जाय—समाप्त हो जाय। (तू) अपने हृदय में सच्चे शब्द को सम्हाल ॥ ६ ॥

जिस (जीवात्मा) ने गुरु की सच्ची शिक्षा से श्रेष्ठ शब्द धारण किया है वह हरी का नाम अपने हृदय में बसाती है ॥ ७ ॥

जो (सांसारिक) भोगों-विलासों में रत हैं, उन्हें आगे दुःख होता है। नानक का कथन है कि बिना सच्चे नाम के मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ८ ॥ २ ॥ ५ ॥

सलोकु नानक सावणि जे वसै चहु ओमाहा होइ ।
नागां मिरगां मछीआं रसीआं घरि धनु होइ ॥२॥

नानक सावणि जे वसै चहु वछोड़ा होइ ।
गाई पुता निरधना पंथी चाकरु होइ ॥३॥

सलोकु —नानक का कथन है कि यदि सावन बरसता है तो (इन) चार को उत्साह (आनन्द) होता है—साँपों मृगों, मछलियों एवं (उन) भोगियों को जिनके घर में धन होता है ॥ २ ॥

नानक का कथन है कि यदि सावन बरसता है तो (इन) चार को वियोग होता है—गाय के बछड़ों को निर्धनों को पथिकों को और (यदि) नौकर हो (तो उसे) ॥ ३ ॥

पउड़ी : तू सचा सचिआरु जिनि सचु वरताइआ ।
बैठा ताड़ी लाइ कवलु छपाइआ ॥
ब्रहमै वडा कहाइ अंतु न पाइआ ।
ना तिसु बापु न माइ किनि तू जाइआ ॥
ना तिसु रूपु न रेख वरन सबाइआ ॥
ना तिसु भुख पिआस रजा धाइआ ।
गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ ॥
सचे ही पतीआइ सचि समाइआ ॥२॥

पउड़ी —(हे हरी) तू ही (एक मात्र) सच्चा और अति सच्चा है जो (सभी स्थानों में) सत्य रूप से बरत रहा है। (तू) ताड़ी लगा कर—ध्यान लगाकर बैठा है और कमल को छिपा रखा है। [ब्रह्मा का उत्पत्ति-स्थान कमल माना जाता है। यहाँ कमल का अभिप्राय सब की उत्पत्ति के आदि कारण से है]। ब्रह्मा बड़े तो कहे जाते हैं (किन्तु वे भी) तेरा अन्त न पा सके। उस (हरी) के न बाप है और न माँ (हे हरी) तुम्हें किसने उत्पन्न किया है? (अर्थात् किसी ने नहीं तू अयोनि और स्वयम्भू है)। न उस (प्रभु) का (कोई) रूप है न रेखा—चिह्न और न सभी रंगों में से (उसका कोई) रंग ही है। उसे न भूख (सताती) है और न प्यास (वह सदैव) तृप्त रहता है।

[विशेष —'रजा' और 'धाइआ' दोनों शब्दों का अर्थ तृप्त होना है। पुरानी पंजाबी में धाउणा—तृप्त होने के अर्थ में प्रयुक्त होता था भी गुरु ग्रंथ कोष—पृष्ठ ६६६]।

(हे हरी तूने) अपने आप को गुरु में समवा रखा है—प्रविष्ट कर रखा है (और उस गुरु के) शब्द—उपदेश (के माध्यम से) बरत रहा [अपना गुरु में अपने आप को प्रविष्ट करके अपना नाम (शब्द) बरत रहा है]। सत्य (हरी) भक्त (गुरु) पतीजता है—विश्वास करता है (और वह) सत्य में समाता है ॥ २ ॥

सलोकु : वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह ।
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि ॥३॥

कुलहां देंदे बावले लैंदे वडे निलज ।
चूहा खड न मावई तिकलि बंन्है छज ॥
देन्हि दुआई से मरहि जिन कउ देनि सि जाहि ।
नानक हुकमु न जापई किथै जाइ समाहि ॥
फसलि अहाड़ी एकु नामु सावणी सचु नाउ ।
मै महदूदु लिखाइआ खसमै कै दरि जाइ ॥
दुनीआ के दर केतड़े केते आवहि जांहि ।
केते मंगहि मंगते केते मंगि मंगि जाहि ॥५॥

सउ मणु हसती घिउ गुड़ु खावै पंजि सै दाणा खाइ ।
डकै फूकै खेह उडावै साहि गइऐ पछुताइ ॥
अंधी फूकि मुई देवानी । खसमि मिटी फिरि भानी ॥
अधु गुल्हा चिड़ी का चुगणु गैणि चड़ी बिललाइ ।
खसमै भावै ओहा चंगी जि करे खुदाइ खुदाइ ॥
सकता सीहु मारे सै मिरिआ सभ पिछै पै खाइ ।
होइ सताणा घुरै न मावै साहि गइऐ पछुताइ ॥
अंधा किस नो बुकि सुणावै । खसमै मूलि न भावै ॥
अक सिउ प्रीति करे अक तिडा अक डाली बहि खाइ ।
खसमै भावै ओहो चंगा जि करे खुदाइ खुदाइ ॥
नानक दुनीआ चारि दिहाड़े सुखि कीतै दुखु होई ।
गला वाले हैनि घणेरे छडि न सकै कोई ॥
मखी मिठै मरणा ।
जिन तू रखहि तिन नेड़ि न आवै तिन भउ सागरु तरणा ॥६॥

सलोक —विशेष : यह सलोक गुरु नानक की बाल्यावस्था से संबंधित है। गुरु जी बाल्यावस्था में परमात्मा के प्रेम एवं विरह में अत्यधिक व्याकुल थे। वे ईश्वरानुराग में संसार को भूल चुके थे। उनके पिता जी ने उन्हें बीमार समझ कर वैद्य को दिखाया। गुरु नानक जी ने इस सलोक में वैद्य को समझा कर अपने आन्तरिक प्रेम की वास्तविक स्थिति बताई है।

अर्थ — वैद्य इलाज (वैदगी) करने के लिए बुलाया गया। वह बाँह पकड़ कर (नब्ज) ढूँढ़ता है (तात्पर्य यह कि नाड़ी पकड़ कर उसकी गतियों से रोग का पता लगाना चाहता है)। (किन्तु) भोला वैद्य यह नहीं जानता (कि मेरे) कलेजे में दर्द—करक है (अतः उपचारों से मेरी औषधि नहीं हो सकती) ॥ ४ ॥

कुलही (टोपी) देने वाले (तथा शिष्यों से माँग कर) लेनेवाले (गुरु अथवा पीर) बावले और बड़े निलज्ज हैं। चूहा स्वयं तो बिल में समाता नहीं, (किन्तु वह अपनी) कमर में छाज बाँध कर (उसमें प्रविष्ट होना चाहता है)। [इसी प्रकार सांसारिक गुरु स्वयं तो तर पाता नहीं किन्तु औरों का तारने का बीड़ा उठाता है]। (जो दूसरों को) दुआएँ देते हैं वे स्वयं मरते हैं और जिन्हें (दुआएँ) दी जाती हैं (वे भी इस संसार से) चला जाता है। (नानक का कथन है कि सांसारिक मनुष्यों का)

धन अथवा सच्चा [सरमु=(१) संस्कृत श्रम (२) फारसी सज्जा] तथा धर्म (के द्वारा यदि कोई नाम रूपी) धन प्राप्त कर सका है, (तो वही वास्तविक धन है) वह (सांसारिक) धन मित्र नहीं कहला सकता (जिससे अन्त में) सिर पर चोट खानी पड़ती है। जिनके पास (उपर्युक्त सांसारिक) धन है, वे कंगाल—फकीर हैं। (हे प्रभु) जिनके हृदय में तू बसता है, वे मनुष्य गुणी और गंभीर होते हैं ॥ ९ ॥

माया (सम्पत्ति) दुःखों से एकत्र की जाती है और (उसके चले) जाने पर भी दुःख ही होता है (अतएव धन-सम्पत्ति आदि और अन्त दोनों में दुःखदायी हैं)। नानक का कथन है कि बिना (हरी के सच्चे) नाम के किसी की भी भूख मिटी नहीं। सौंदर्य (रूप) द्वारा भी भूख नहीं मिटती, जब वही देखी जाती है भूख ही भूख (दिखाई पड़ती) है। शरीर में जितने ही आनन्द होते हैं (उनके साथ) उतने ही दुःख भी (लगे रहते) हैं ॥ १० ॥

अंधे (अविवेकपूर्ण) कर्मों से मन भी अन्धा (अज्ञानी) होता है, मन के अन्धे होने से शरीर भी अन्धा (अविवेकी) हो जाता है। जहाँ पर पत्थर (का बनाया हुआ) बाँध टूट जाता है, वहाँ कीचड़ स्थापित करने से क्या बन सकता है? [तात्पर्य यह कि सांसारिक साधनों से हरी की प्राप्ति नहीं हो सकती]। बाँध टूट गया है, न तो नाव है, न बेड़ा है और न (जल में) हाथ ही लगता है (तात्पर्य यह है कि थाह नहीं मिलती)। नानक का कथन है कि (ऐसी स्थिति में) नाम के बिना (संसार-सागर में न मालूम) कितने (प्राणी) साथ साथ डूब गए हैं ॥ ११ ॥

(इस संसार में मनुष्य के पास चाहे) लाखों मन सोना हो, लाखों मन चाँदी हो (और वह चाहे) ऐसा बादशाहों का शिरोमणि बादशाह हो (उसके पास) लाखों की भी लश्कर—सेना हो, लाखों बाजे और भाले (तात्पर्य यह कि अस्त्र-शस्त्र) हों और लाखों पाखिआ का बादशाह हो (तात्पर्य यह कि अनेक घुड़सवार हों) (किन्तु) जहाँ (संसार)-समुद्र को पार करना है, वहाँ अग्नि की अथाह जलराशि है, किनारा भी दृष्टि में नहीं आता (और वहाँ) हाय हाय की चीखें (सुनाई) पड़ती हैं (वहाँ इन सांसारिक विषयों में कुछ भी काम नहीं चलेगा। ये तो यहीं के यहीं रह जायँगे)। नानक कहता है कि वहाँ पर (यह वस्तु) जानी जायगी कि कौन सच्चा शाह अथवा बादशाह है ॥ १२ ॥

पउड़ी
इकन्हा गलीं जंजीर बंदि रबाणीऐ।
बधे छुटहि सचि सचु पछाणीऐ॥
लिखिआ पलै पाइ सो सचु जाणीऐ।
हुकमी होइ निबेड़ गइआ जाणीऐ॥
भउजल तारणहारु सबदि पछाणीऐ।
चोर जार जूआर पीड़े घाणीऐ॥
निंदक लाइतबार मिले हड़वाणीऐ।
गुरमुखि सचि समाइ सु दरगह जाणीऐ॥५॥

पउड़ी। कुछ (मनुष्यों) के गले में जंजीर डाली जाती है (और वे) परमात्मा के बंदीखाने में (ले जाए जाते हैं)। [रबाणीऐ=खुदा हरी के]। (किन्तु वे लोग) सत्य में सत्य (हरी को) पहचान कर छूट जाते हैं। जिनके (भाग्य में परमात्मा की कृपा) लिखी

रही है, वही (हरी को) जानता है। (हरी के हुक्म से) मनुष्य के भाग्य का निर्णय होता है इस बात का पता उससे जाकर लगेगा। (हे शिष्य) संसार-सागर का तारने वाला शब्द—नाम को पहचान। चोर व्यभिचारी जुआरी (हरी के बन्दीगृह में नरक में) घानी में पेरे जाते हैं। निन्दकों और अविश्वसनीयों के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ती हैं। (जो) गुरु की शिक्षा द्वारा सत्यस्वरूप (हरी) में समाए रहते हैं वे (उस हरी) के दरबार में माने जाते हैं॥ ॥

सलोकु हरणां बाजां तै सिकदारां एन्हा पड़िआ नाउ।
फांधी लगी जाति फहाइनि अगै नाही थाउ।
सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिन्ही कमाणा नाउ।
पहिलो दे जड़ अंदरि जमै ता उपरि होवै छाउ॥
राजे सीह मुकदम कुते।
जाइ जगाइनि बैठे सुते॥
चाकर नहदा पाइनि घाउ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु॥
जिथै जीआं होसी सार।
नकीं वढीं लाइतबार॥२॥

सलोकु: (लोग) मृगों और बाजों के समान अपनी जाति के लोगों को फँसानेवाले हो गए हैं) (उन्हीं को) सिकदारी (हुकूमत है)। उनका नाम पढ़े लिखों में है, (किन्तु वे लोग) अपनी जाति के लोगों को फाँसी में फँसाते हैं (ऐसे लोगों को) आगे (परमात्मा के यहाँ) स्थान नहीं मिलेगा। जिन्होंने हरिनाम की कमाई की है वे ही पढ़े-लिखे हैं वे ही पंडित हैं और वे ही सयाने—चतुर हैं। पहले (वृक्ष का) बीज ज़मीन के अन्दर जमता है (फिर वह पल्लवित होकर) ऊपर (बढ़ता है) और उसकी छाया होती है। [इसी प्रकार नाम रूपी बीज पहले भीतर जमता है, तत्पश्चात् उसका प्रभाव बाह्य जगत् पर भी पड़ने लगता है]। (इस समय) राजागण सिंह (के समान हिंस्र) तथा चौधरी [मुकद्दम—गाँव के चौधरी] कुत्ते के समान (लालची) हो गए हैं। वे सोती हुई (प्रजा को) जगाकर (उसका शोषण कर रहे हैं)। (राजाओं के) नौकर (अपने) तीव्र नाखूनों से घाव करते हैं (और लोगों का) खून कुत्तों (मुकद्दमों) के द्वारा चाट जाते हैं। जिस स्थान पर प्राणियों के कर्मों की छानबीन होगी वहाँ उन लाइतबारों की नाक काट ली जायगी॥२॥

पउड़ी। आपि उपाए मेदनी आपे करदा सार।
भै बिनु भरमु न कटीऐ नामि न लगै पिआरु।
सतिगुर ते भउ ऊपजै पाईऐ मोख दुआर।
भै ते सहजु पाईऐ मिलि जोती जोति अपार॥
भै ते भैजलु लंघीऐ गुरमती वीचारु।
भै ते निरभउ पाईऐ जिस दा अंतु न पारावारु॥
मनमुख भै की सार न जाणन्ही त्रिसना जलते करहि पुकार।
नानक नावै ही ते सुखु पाइआ गुरमती उरिधार॥४॥

पउड़ी : (प्रभु) आप ही सृष्टि उत्पन्न करता है और आप ही उसकी खोज खबर लेता है (सँभाल करता है)। बिना (हरी के) भय के भ्रम नहीं कटता और नाम में प्रेम भी नहीं उत्पन्न होता। सद्गुरु (के सम्पर्क) से (परमात्मा का) भय उत्पन्न होता है (और उसी से) मोक्षद्वार की प्राप्ति होती है। (परमात्मा के) भय से सहजावस्था की प्राप्ति होती है (और परमात्मा की अगम्य और शाश्वत) ज्योति से (जीवात्मा की) ज्योति मिलकर (एक हो जाती है)। गुरु की शिक्षा पर विचार करने से (भय की उत्पत्ति होती है) और उस भय से भय का समुद्र पार कर लिया जाता है। भय से ही निर्भय (परमात्मा) की प्राप्ति होती है, जिसका न अन्त है, न सीमा। मनमुख भय की खबर नहीं जानते (वे) तृष्णा में जलकर बिलखते रहते हैं। नानक का कथन है कि गुरु की शिक्षा हृदय में धारण करने से नाम के द्वारा सुख की प्राप्ति हो गयी ॥ ६ ॥

सलोकु रूपै कामै दोसती भुखै सादै गंढु ।
लबै मालै घुलि मिलि मिचलि ऊंघै सउड़ि पलंघु ॥
भंउकै कोपु खुआरु होइ फकड़ु पिटे अंधु ।
चुपै चंगा नानका विणु नावै मुहि गंधु ॥१४॥
राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग ।
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज ॥
एना ठगन्हि ठग से जि गुर की पैरी पाहि ।
नानक करमा बाहरे होरि केते मुठे जाहि ॥१५॥

सलोकु काम की रूप से दोस्ती रहती है तथा भूख से स्वाद का संबंध रहता है। लोभ (व्यक्ति) धन से घुल-मिल कर एक हो जाता है। [मिचलि=अभेद एक]। निद्रालु के लिए तंग जगह ही पलंग हो जाती है। क्रोध भूँकता है (अर्थात् क्रोध की दोस्ती बकवास से होती है) (पापी मनुष्य) बरबाद होता है और अन्धा होकर बकवास करता है। नानक का कथन है कि शान्त (व्यक्ति) ही अच्छा होता है बिना नाम (लिए) मुँह में दुर्गन्ध होती है ॥ १४ ॥

राज्य माल (धन-सम्पत्ति) सौन्दर्य जाति और यौवन—ये पाँच ठग हैं। इन (पाँच) ठगों ने (सारे) जगत् को ठगा है, किसी की भी लज्जा नहीं रखी। किन्तु इन (पाँच) ठगों को वे लोग ठग सके हैं जो गुरु के चरणों में पड़ते हैं। नानक कहते हैं कि बिना (हरी की) कृपा के (न मालूम) कितने अन्य व्यक्ति (इन पाँच ठगों द्वारा) ठगे गए हैं ॥ १५ ॥

पउड़ी : पड़िआ लेखेदारु लेखा मंगीऐ ।
विणु नावै कूड़िआरु अउखा तंगीऐ ॥
अउघट रूधे राह गलीआं रोकीआं ।
सचा वेपरवाहु सबदि संतोखीआं ॥
गहर गभीर अथाहु हाथ न लभई ।
मुहे मुहि चोटा खाहु विणु गुर कोइ न छुटसी ॥
पति सेती घरि जाहु नामु वखाणीऐ ।
हुकमी साह गिराह देदा जाणीऐ ॥७॥

उस अकथनीय (प्रभु की) कहानी सुने, तो उसे ऋद्धियाँ बुद्धि सिद्धियाँ तथा ज्ञान (की प्राप्ति होती है और शाश्वत सुख होता है ॥ १६ ॥

यदि (मनुष्य) अक्षर (न बसनेवाले कामादिकों) को बसा दे तो नव गोलक (दो कान दो नासिका द्वार, दो आँखें, एक मुँह, एक लिंगद्वार एक गुदमार्ग) उसके अधीन हो जाते हैं। प्राणों की आराधना करने पर (तात्पर्य यह कि श्वास के आधार पर नाम जप से) शरीर स्थिर हो जाता है। कहाँ से आया है और कहाँ जाना है—(यह झगड़ा) तथा जन्म-मरण समाप्त हो जाते हैं (और साधक) प्रामाणिक हो जाता है। (जो साधक) (हरी के) हुक्म को समझता है, (वह) तत्व समझ लेता है। यह प्रसाद गुरु से ही जाना जाता है। नानक का कथन है कि (हे प्राणी तू इस बात को) जान ले कि (जो कोई कहता है कि) 'मैं हूँ'—(अर्थात् अहंकारी मनुष्य), नष्ट किया जाता है। (जिसकी यह धारणा है कि) 'मैं नहीं हूँ' वह योनि के अंतर्गत नहीं पड़ता ॥ १७ ॥

पउड़ी

पड़ीऐ नामु सालाहु होरि बुधी मिथिआ ।
बिनु सचे वापार जनमु बिरथिआ ॥
अंतु न पारावारु न किनही पाइआ ।
सभु जगु गरबि गुबारु तिन सचु न भाइआ ॥
चले नामु विसारि तावणि ततिआ ।
बलदी अंदरि तेलु दुबिधा घतिआ ॥
आइआ उठी खेलु फिरै उबतिआ ॥
नानक सचै मिलु सचे रतिआ ॥८॥

पउड़ी : हरिनाम को पढ़ा जाय और उसी की स्तुति की जाय—(यही बुद्धि सत्य है) और (सांसारिक) बुद्धियाँ मिथ्या हैं। (हरी के) नाम के सच्चे व्यापार के बिना जन्म निष्फल है। किसी ने भी (हरी का) अन्त और सीमा नहीं पाई है। सारा जगत् गर्व और अन्धकार (अज्ञान) में है, (इसीलिए) उन्हें सत्य (परमात्मा) अच्छा नहीं लगता। (जो व्यक्ति) हरिनाम बिसार कर (यहाँ से) जाते हैं वे कड़ाही में गरम किए जाते हैं—जलाए जाते हैं। उस जलती (कड़ाही में) दुविधा—द्वैतभाव का तेल पड़ता है। (मनमुख व्यक्ति संसार में) आते हैं और उठ कर चल जाते हैं अर्थात् जन्मने-मरते रहते हैं (वे अभागी अमु गवगु माया के) लग में आवारा की भाँति भटकते फिरते हैं। नानक का कथन है कि जो सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त हैं उनका सत्य से मेल है ॥ ८ ॥

सलोकु :

पहिलां मासहु निमिआ मासै अंदरि वासु ।
जीउ पाइ मासु मुहि मिलिआ हडु चंमु तनु मासु ॥
मासहु बाहरि कढिआ ममा मासु गिरासु ।
मुहु मासै का जीभ मासै की मासै अंदरि सासु ॥
वडा होआ वीआहिआ घरि लै आइआ मासु ।
मासहु ही मासु ऊपजै मासहु सभो साकु ॥
सतिगुरि मिलिऐ हुकमु बुझीऐ तां को आवै रासि ।
आपि छुटे नह छूटीऐ नानक बचनि बिणासु ॥१८॥

मासु मासु करि मूरखु झगड़े गिआनु धिआनु नही जाणै ।
कउणु मासु कउणु सागु कहावै किसु महि पाप समाणे ॥
गैंडा मारि होम जग कीए देवतिआ की बाणे ।
मासु छोडि बैसि नकु पकड़हि राती माणस खाणे ॥
फड़ु करि लोकां नो दिखलावहि गिआनु धिआनु नही सूझै ।
नानक अंधे सिउ किआ कहीऐ कहै न कहिआ बूझै ॥
अंधा सोइ जि अंधु कमावै तिसु रिदै सि लोचन नाही ।
मात पिता की रकतु निपंने मछी मासु न खांही ॥
इसत्री पुरख कां निसि मेला ओथै मधु कमाही ॥
मासहु निमे मासहु जमे हम मासै के भांडे ।
गिआनु धिआनु कछु सूझै नाही चतुरु कहावै पांडे ॥
बाहर का मासु मंदा सुआमी घर का मासु चंगेरा ।
जीअ जंत सभि मासहु होए जीइ लइआ वासेरा ॥
अभखु भखहि भखु तजि छोडहि अंधु गुरु जिन केरा ॥
मासहु निमे मासहु जमे हम मासै के भांडे ।
गिआनु धिआनु कछु सूझै नाही चतुरु कहावै पांडे ॥
मासु पुराणी मासु कतेबीं चहु जुगि मासु कमाणा ।
जजि काजि वीआहि सुहावै ओथै मासु समाणा ॥
इसत्री पुरख निपजहि मासहु पातिसाह सुलतानां ।
जे ओइ दिसहि नरकि जांदे तां उन का दानु न लैणा ॥
देंदा नरकि सुरगि लैदे देखहु एहु धिङाणा ।
आपि न बूझै लोक बुझाए पांडे खरा सिआणा ॥
पांडे तू जाणै ही नाही किथहु मासु उपंना ।
तोइअहु अंनु कमादु कपाहां तोइअहु त्रिभवणु गंना ॥
तोआ आखै हउ बहु बिधि हछा तोऐ बहुतु बिकारा ।
एते रस छोडि होवै संनिआसी नानकु कहै विचारा ॥१९॥

सलोकु : सब प्रथम जीव का पेट में टिकना मांस के अन्तर्गत होता है (और फिर [इ]स) मांस (के लोथड़े के रूप में माता के गर्भ में) अंतर्गत वास करता है। (जब उस [श]रीर में) जीव पड़ता है, (जीव का आगमन होता है) तो (उस) मांस का ही मुँह [ब]नता है (उसकी) हड्डियाँ चाम और शरीर भी मांस के बने हैं। (जब मनुष्य गर्भ के [अंद]र से) मांस-निर्मित (माता के गर्भ से) बाहर निकलता है (तो पहला यह करता) [स्त]न—आहार (पान के लिए) मांस (के बने) स्तन को (अपने मुँह में रखता है, ताकि उसे [अप]ने को दूध मिले)। (उसका) मुँह भी मांस का है जीभ भी मांस की है (और उसकी [सा]ँसें भी मांस के ही अंदर (चलती जाती है)। बड़ा होने पर विवाह करने के पश्चात (वह) [मां]स (की बनी हुई स्त्री को) अपने घर में लाता है। मांस से ही मांस की उत्पत्ति होती है [औ]र सारे संबंध भी मांस के ही होते हैं। सद्गुरु से मिलकर (हरि का) हुक्म स्वीकार कर,

मनुष्य को सच्चा रास्ता आता है, (तात्पर्य यह कि वह उच्चे मार्ग पर चलने लगता है)। [राहि—फारसी रास्ता का संक्षिप्त रूप भी, गुरु ग्रंथ कोश पृष्ठ १ ६४]। नानक का कथन है कि मनुष्य अपने बकवासों से (इस संसार से) नहीं छूटता (प्रत्युत ऐसी) बातों से (उसका) नाश होता है ॥१८॥

मूर्ख लोग 'मांस-मांस' कह कर झगड़ा करते हैं, वे ज्ञान-ध्यान (कुछ भी) नहीं जानते। (वे यह नहीं जानते कि) कौन सी वस्तु मांस कहलाती है, (और कौन सी) साग और किस वस्तु में पाप समाया है। देवताओं के स्वभाव (वाले) (यो समझ कर कि वे लोग मांस खाना पसंद करते हैं) गैंडे मार कर होम-यज्ञ किये जाते थे। (जो व्यक्ति) मांस खाना छोड़कर (उसके समीप) बैठने पर नाक पकड़ते हैं (कि बदबू आ रही है) वे रात को मनुष्यों का भक्षण कर जाते हैं। (वे लोग) दम्भ—पाखण्ड करके लोगों को दिखाते हैं, (किन्तु उन्हें) ज्ञान-ध्यान (कुछ भी नहीं) सूझता। नानक का कथन है कि अंधे से क्या कहा जाय? यदि उनसे कहा भी जाय तो कहना (शिक्षा देना) नहीं समझता। वही व्यक्ति अंधा है (अज्ञानी) है जो अंधे (अविवेकपूर्ण) कर्मों को करता है, उसके हृदय में वे (ज्ञान की) आँखें नहीं हैं। माता-पिता के रक्त—रज (और वीर्य) से तो उत्पन्न हुए पर मछली और मांस नहीं खाते। जिस रात्रि में स्त्री-पुरुष का संयोग होता है, तो वहाँ भी मंद ही कर्म करते हैं (तात्पर्य यह कि मांस के ही शरीर से भोग-विलास करते हैं)। वीर्य मांस निर्मित (गर्भ में) स्थित होता है और मांस (के लोथड़े के रूप में मनुष्य का) जन्म होता है (इस प्रकार) हम सब मांस ही के भांडे हैं। ज्ञान-ध्यान तो कुछ सूझता नहीं कहलाते हैं सयाने पंडित। (हे स्वामी) (बकरे आदि का) बाहर से लाया हुआ मांस बुरा होता है (और) घर की स्त्री पुत्रादिका का) मांस प्यारा होता है। (जितने भी) जीव-जन्तु हैं, सभी मांस द्वारा ही (निर्मित) हुए हैं, जीव भी (माता के उदर के अन्तर्गत मांस ही में) निवास करता है। जितना गुरु-अंधा होता है वे न खाने वाली (अखाद्य वस्तुएँ, तात्पर्य यह कि हराम की कमाई) तो खाते हैं, (किन्तु) भक्ष्य वस्तुएँ (तात्पर्य यह कि मांसादिक) त्याग देते हैं। वीर्य मांस निर्मित (गर्भ में) स्थित होता है और मांस (के लोथड़े के रूप में) मनुष्य का जन्म होता है (इस प्रकार) हम सब मांस ही के पात्र हैं। ज्ञान ध्यान तो कुछ सूझता नहीं पर कहलाते हैं सयाने पंडित। (हिन्दुओं के) पुराणों (तथा मुसलमानों के) कतेब (कुरान आदि धार्मिक पुस्तकों) में भी (मांस खाना आया है)। चारों युगों में मांस का प्रयोग होता रहा है। यज्ञ और विवाह (आदि) सुहावने—शुभ कार्य हैं (किन्तु) उन अवसरों पर भी मांस का प्रयोग होता आया है। (जितने भी) स्त्री-पुरुष हैं (सभी) मांस से उत्पन्न होते हैं बादशाह और सुलतान (आदि बड़े बड़े व्यक्ति भी मांस से ही उत्पन्न होते हैं)। (हे पंडित) यदि (तेरी दृष्टि में दान देनेवाले) वे लोग नरक जाते हुए दिखाई पड़ते हैं, तो उनका दान (तुझे) नहीं लेना चाहिए। देनेवाला तो नरकगामी हो और लेनेवाला स्वर्गगामी! यह जबरदस्ती तो देखो! पंडित स्वयं तो बहुत चतुर है और लोगों को (धर्म की बातें) समझाता है (किन्तु) स्वयं (कुछ) नहीं समझता। हे पंडित तू यह जानता ही नहीं कि मांस पानी से उत्पन्न हुआ है। जल से अन्न गन्ने और कपास (की उत्पत्ति होती है) जल से ही त्रिभुवन (की उत्पत्ति भी) गिनी जाती है। जल कहता है मैं अनेक विधि से अच्छा रहता हूँ (यह परम पवित्र है), किन्तु इसमें विकार भी बहुत से हैं, (क्योंकि जल ही अपना स्वरूप

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु परभाती बिभास, महला १, चउपदे घरु १

सबद [१]

नाइ तेरै तरणा नाइ पति पूज । नाउ तेरा गहणा मति मकसूदु ॥
नाइ तेरै नाउ मंने सभ कोइ । बिनु नावै पति कबहु न होइ ॥१॥
अवर सिआणप सगली पाजु । जै बखसे तै पूरा काजु ॥१॥ रहाउ ॥
नाउ तेरा ताणु नाउ दीबाणु । नाउ तेरा लसकरु नाउ सुलतानु ॥
नाइ तेरै माणु महत परवाणु । तेरी नदरी करमि पवै नीसाणु ॥२॥
नाइ तेरै सहजु नाइ सालाहु । नाउ तेरा अंम्रितु बिखु उठि जाइ ॥
नाइ तेरै सभि सुख वसहि मनि आइ । बिनु नावै बाधी जमपुरि जाइ ॥३॥
नारी बेरी घर दर देस । मन कीआ खुसीआ कीचहि वेस ।
जां सदे तां ढिल न पाइ । नानक कूड़ु कूड़ो होइ जाइ ॥४॥१॥

(हे हरी) तेरे नाम के द्वारा (संसार-सागर से) तरा जाता है और तेरे नाम के द्वारा ही (मनुष्य की) प्रतिष्ठा होती है (और वह) पूजा जाता है। तेरा नाम ही आभूषण है; नाम द्वारा ही ज्ञान (मति) का लक्ष्य पूरा होता है। तेरे नाम द्वारा ही (किसी का) नाम सब लोगों द्वारा माना जाता है (तात्पर्य यह कि नाम द्वारा किसी की प्रसिद्धि होती है)। बिना नाम के कभी प्रतिष्ठा नहीं होती ॥१॥

(नाम के अतिरिक्त बाकी) सारी चतुराइयाँ दिखावा (मात्र) है। जिसे (प्रभु) बख्शता है, उसका कार्य पूर्ण होता है ॥१॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) तेरा नाम ही बल है और वही आश्रय है [दीबाणु—वह हाकिम, जिसके पास प्रार्थना की जा सके तात्पर्य यह कि आश्रय]। तेरा नाम ही लश्कर और सुल्तान है। तेरे नाम से ही मान महत्ता—बड़ाई और प्रामाणिकता प्राप्त होती है। तेरी कृपा-दृष्टि और दया से प्रामाणिकता का निशान—चिह्न मिलता है ॥२॥

हे नानक ! तू ही अकेला मूर्ख है, और (सारा) संसार भला है। जिन शरीरों में नाम नहीं उत्पन्न होता (अर्थात् जिन शरीरों से नाम नहीं लिया जाता) वे शरीर नष्ट हो जाते हैं ॥४॥२॥

[३]

जै कारणि बेद ब्रहमै उचरे संकरि छोडी माइआ ।
जै कारणि सिध भए उदासी देवी मरमु न पाइआ ॥१॥

बाबा मनि साचा मुखि साचा कहीऐ तरीऐ साचा होई ।
दुसमनु दूखु न आवै नेड़ै हरि मति पावै कोई ॥१॥ रहाउ ॥

अगनि बिंब पवणै की बाणी तीनि नाम के दासा ।
ते तसकर जो नामु न लेवहि वासहि कोट पंचासा ॥२॥

जे को एक करै चंगिआई मनि चिति बहुतु बफावै ।
एते गुण एतीआ चंगिआईआ देइ न पछोतावै ॥३॥

तुधु सालाहनि तिन धनु पलै नानक का धनु सोई ।
जे को जीउ कहै ओना कउ जम की तलब न होई ॥४॥३॥

जिस (प्रभु की प्राप्ति) के निमित्त ब्रह्मा ने वेदों को उच्चरित किया और शंकर ने माया का परित्याग किया। जिसकी (प्राप्ति के) निमित्त सिद्धगण भी विरक्त हुए, (उसका) रहस्य देवगण भी न पा सके ॥१॥

हे बाबा, सच्चे मन और सच्चे मुख से सत्य (परमात्मा) को कहा जाय—जपा जाय तभी (संसार-सागर से) तरा जा सकता है और सत्यस्वरूप (हरी) प्राप्त (बना) जा सकता है, (अन्यथा नहीं)। (कामादिक) शत्रु तथा (विकार) दुःख समीप नहीं आते; हरि संबंधी बुद्धि कोई (विरला ही) पाता है ॥१॥ रहाउ ॥

(यह जगत्) अग्नि (तमोगुण) जल (सत्त्वगुण) तथा पवन (रजोगुण) से बना हुआ है, ये तीनों नाम के ही दास हैं (अधीन हैं)। जो व्यक्ति नाम नहीं लेते (वे) चोर हैं, और वे (पृथ्वी के) पचासवें कोट में निवास करते हैं। [पृथ्वी के ४९ कोट माने गए हैं। पचासवाँ कोट अति का बना हुआ माना जाता है। उस अति के कोट में खाने पीने को कुछ भी नहीं मिलता। उसी कोट में वे चोर निवास करते हैं और अनेक यातनाएँ पाते हैं—शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी पृष्ठ ११२८] ॥२॥

यदि कोई व्यक्ति एक भी भलाई करता है तो (अपने) मन तथा चित्त में बहुत फूलता है—अभिमान करता है, (पर जरा हरी की ओर तो देखो)। (उसमें) इतने गुण हैं और वह इतनी भलाइयाँ करता है (फिर भी) उसकी चिन्ता नहीं करता ॥३॥

(हे हरी) जो (मनुष्य) तेरी स्तुति करते हैं, उन्हीं के पल्ले (नाम रूपी) धन पड़ता है। नानक का भी वही धन है। यदि कोई प्राणी (जीव) उस (प्रभु) को कहता है (उसका जाप करता है) तो उसे यमराज की तलब—माँग नहीं होती ॥४॥३॥

सद्गुरु ने (कृपा करके जब) नाम रूपी अमृत दे दिया तो (ब्रह्मज्ञान की अखण्ड और वास्तव ज्योति) प्रकट हो गई (और समस्त) अभिमान समाप्त हो गए ॥२॥

ऐसे (उपर्युक्त सन्त) जन के आगमन को कलियुग में (सार्थक) समझना चाहिए। (वे ही लोग हरी के) सच्चे दरबार में मान पाते हैं ॥३॥

उसका कहना सुनना यही है कि वह अकथनीय हरी के घर में जाकर (शाश्वत निवास करता है)। हे नानक (ऐसे व्यक्ति के समस्त) लौकिक बन्धन जल जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

अमृत नीरु गिआनि मन मजनु अठसठि तीरथ संगि गहे।
गुर उपदेसि जवाहर माणक सेवे सिखु सो खोजि लहै ॥१॥

गुर समानि तीरथु नही कोइ।
सरु संतोखु तासु गुरु होइ ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु दरीआउ सदा जलु निरमलु मिलिआ दुरमति मैलु हरै।
सतिगुरि पाइऐ पूरा नावणु पसू परेतहु देव करै ॥२॥

रता सचि नामि तलहीअलु सो गुरु परमलु कहीऐ।
जाकी वास बनासपति सउरै तासु चरण लिव रहीऐ ॥३॥

गुरमुखि जीअ प्रान उपजहि गुरमुखि सिव घरि जाईऐ।
गुरमुखि नानक सचि समाईऐ गुरमुखि निज पद पाईऐ ॥४॥६॥

(साधक को) ज्ञान द्वारा (नाम रूपी) अमृत-जल (प्राप्त होता है) (जिसमें) उसका मन स्नान करता है, (फिर वह इस स्नान से) अड़सठ तीर्थों को (अपने साथ) लिए (रहता है)। सद्गुरु के उपदेश में (अनेक) जवाहर-माणिक्य (रूपी उपदेश छिपे हैं); (प्रत्येक शिष्य गुरु की) सेवा करके उन्हें खोज कर प्राप्त कर सकता है ॥ १ ॥

गुरु के समान कोई (अन्य) तीर्थ नहीं है। संतोष रूपी सरोवर वह गुरु है ॥ १ ॥ ॥ रहाउ ॥

गुरु (पवित्र) दरिया (नद) है, (उसका उपदेश रूपी) जल सदैव निर्मल रहता है। (उस गुरु रूपी पवित्र नद में) मिलने से दुर्बुद्धि की मैल दूर हो जाती है। सद्गुरु की प्राप्ति से पूर्ण स्नान होता है (वह सद्गुरु) पशुओं-प्रेतों (तात्पर्य यह कि तमोगुणी मनुष्यों) को भी देव बना देता है ॥ २ ॥

(जिसका हृदय) तह तक सच्चे (हरी के) नाम में अनुरक्त है उस गुरु को चन्दन (के समान) कहा जाना चाहिए। (जिस प्रकार) उस (चंदन की) सुगन्ध (अपने आस पास की) वनस्पतियों को सुगन्धित कर देती है (उसी प्रकार गुरु की सत्संगति उसके पास रहनेवाले प्राणियों का सँवार देती है)। उस (गुरु के) चरणों में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लगाए रहना चाहिए ॥ ३ ॥

गुरु द्वारा (साधक में नवीन) जीव और प्राण उत्पन्न होते हैं, गुरु की शिक्षा द्वारा शिव-स्थान (ब्रह्म की आत्मस्थ घर में) जाना होता है। नानक का कथन है कि

तू है है वाहु तेरी रजाइ ।
जो किछु करहि सोई पर होइबा अवरु न करणा जाइ ॥१॥रहाउ॥

जैसे हरहट की माला टिंड लगत है इक सखनी होर फेर भरीअत है ।
तैसो ही इहु खेलु खसम का जिउ उस की वडिआई ॥२॥

सुरती कै मारगि चलि कै उलटी नदरि प्रगासी ।
मनि वीचारि देखु ब्रहम गिआनी कउनु गिरही कउनु उदासी ॥३॥

जिस की आसा तिसही सउपि कै एहु रहिआ निरबाणु ।
जिस ते होआ सोई करि मानिआ नानक गिरही उदासी सो परवाणु ॥४॥५॥

न तो आने (जन्म) को कोई रोक सका है और जाने (मरण) को ही कोई रोक सका। (मनुष्य) जिससे उत्पन्न हुआ और जिसमें लीन होता है वह (हरी) ही भलीभाँति इसे जान सकता है (कि जन्म मरण का रहस्य क्या है) ॥ १ ॥

(हे स्वामी) तू ही (अकेला) है, (तू) धन्य है तेरी मर्जी—इच्छा धन्य है। (हे प्रभु, तू) जो कुछ करता है वह जरूर होता है, (उसके अतिरिक्त) और कुछ नहीं किया जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जैसे रहट के पात्रों की माला (चलते समय) एक खाली होती रहती है और एक भरती रहती वैसे ही पति (परमात्मा की सृष्टि का) खेल (निरन्तर चलता रहता है) (अर्थात् इस खेल में कोई आता है और कोई जाता है) यह सब (उस हरी की महत्ता बड़ाई है ॥ २ ॥

(हरी की) सुरति (स्मृति) के मार्ग पर चल कर (हमारी) दृष्टि (माया की ओर से) उलट कर प्रकाशित हुई है। हे ब्रह्मज्ञानी मन में विचार कर इस बात को देख ले—समझ ले कि कौन गृहस्थ है और कौन विरक्त ॥ ३ ॥

जिस (हरी) की आशा है (अर्थात् जिस हरी ने आशा की उत्पत्ति की है) उसी को (इसे) सौंप कर (साधक) निर्वाणपद को पा लेता है। नानक का कथन है जिस (प्रभु) से (सारी वस्तुएँ) उत्पन्न हुई हैं उसे जो व्यक्ति जान लेता है, वह प्रामाणिक हो जाता है, (चाहे वह) गृहस्थ हो (और चाहे) विरक्त ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

द्रिसटि बिकारी बंधनि बांधै हउ तिस कै बलि जाई ।
पाप पुंन की सार न जाणै भूला फिरै अजाई ॥१॥
बोलहु सचु नामु करतार । फुनि बहुड़ि न आवण वार ॥१॥रहाउ॥
ऊचा ते फुनि नीचु करतु है नीच करै सुलतानु ।
जिनी जाणु सुजाणिआ जगि ते पूरे परवाणु ॥२॥
ता कउ समझावण जाईऐ जे को भूला होई ।
आपे खेल करे सभ करता ऐसा बूझै कोई ॥३॥

(मनमुख) कहने पर नहीं समझता; उस अंधे को कुछ सुझाई नहीं पड़ता (वह अंधा) मोह में कर्म करता रहता है। परमेश्वर अपनी प्रीति और प्रेम में आप ही (जीवों को) समझता है। (हरी की) कृपा से ही (साधक को) बड़ाई प्राप्त होती है ॥ २ ॥

(मनुष्य के जीवन के) प्रति दिन (समीप) आते जा रहे हैं, (वह) तिल-तिल करके छीज रहा है, माया और मोह (उसके) मन—हृदय में व्याप्त रहते हैं। बिना गुरु के (वह संसार-सागर में) डूब जाता है (उसे तब तक कोई) ठौर-ठिकाना नहीं प्राप्त होता जब तक रत्ती भर भी द्वैतभाव (उसके अन्तर्गत) रहता है ॥३॥

(हरी) दिन-रात जीवों को देख कर (उनकी आवश्यकताओं को समझ कर) उनकी सँभाल करता रहता है और उनके पूर्व के कर्मानुसार सुख-दुख (देता रहता है)। गुणहीन नानक सत्य की भीख माँग रहा है कि उस (नाम की) महत्ता—बड़ाई प्राप्त हो ॥४॥११॥

[१२]

मसटि करउ मूरखु जगि कहिआ ।
अधिक बकउ तेरी लिव रहीआ ॥
भूल चूक तेरै दरबारि । नाम बिना कैसे आचार ॥१॥
ऐसे झूठि मुठे संसारा । निंदकु निंदै मुझै पिआरा ॥१॥रहाउ॥
जिसु निंदहि सोई बिधि जाणै । गुर कै सबदे दरि नीसाणै ॥
कारण नामु अंतरगति जाणै । जिसनो नदरि करे सोई बिधि जाणै ॥२॥
मै मैलो ऊजलु सचु सोइ । ऊतमु आखि न ऊचा होइ ॥
मनमुखु खूल्हि महा बिखु खाइ । गुरमुखि होइ सु राचै नाइ ॥३॥
अंधौ बोलौ मुगधु गवारु । हीणौ नीचु बुरौ बुरिआरु ॥
नीधन कउ धनु नामु पिआरु । इहु धनु सारु होरु बिखिआ छारु ॥४॥
उसतति निंदा सबदु वीचारु । जो देवै तिस कउ जैकारु ॥
तू बखसहि जाति पति होइ । नानकु कहै कहावै सोइ ॥५॥१२॥

(यदि) मैं चुपचाप मौन रहता हूँ (मस्त मारता हूँ) तो जगत मूर्ख कहता है और यदि अधिक बकवास करता हूँ तो तेरी प्रीति रह जाती है। (हे हरी) भूल-चूक तेरे दरबार में (परखी जाती है)। बिना नाम के आचारों से क्या लाभ ? ॥१॥

सांसारिक प्राणी इसी प्रकार झूठ में मूसे जा रहे हैं। (जो) निंदक निंदा करता है (वह मुझे) प्यारा है ॥१॥ रहाउ ॥

जिसकी निन्दा की जाती है वह (जीवन की युक्ति) जानता है। गुरु के शब्द द्वारा (साधक) हरी के द्वार पर प्रकट होता है। वह कारण रूप (हरी के) नाम को (अपने) अन्तःकरण में जानता है। जिस पर (हरी) कृपादृष्टि करता है वही (उपर्युक्त) विधि को जान पाता है ॥२॥

मैं तो मलिन हूँ, सत्यस्वरूप वह (हरी) उज्ज्वल—पवित्र है। (कोई व्यक्ति) उत्तम कहलाने (मात्र) से ऊँचा नहीं बन जाता। मनमुख गुरु पर—[illegible] रूप से (माया के)

[illegible]

लिक (लिया) है । (मैं हरी रूपी) तत्व को विचार कर (विषय-विकारों की) तरंगों से मुक्त हो गया हूँ ॥३॥

मुझमें क्या ज़ोर—शक्ति है (कि मैं) पद्मनाभ (हरी) का कथन करूँ । (यदि वह हरी) मुझसे भक्ति कराए, तो मैं करूँ । (हरी के) हृदय में बसने से 'मैं' और 'मेरापन' समाप्त हो जाता है । (मैं हरी को छोड़कर और) किसकी सेवा करूँ ? (हरी के अतिरिक्त) और दूसरा कोई है ही नहीं ॥४॥

गुरु का शब्द, अत्यधिक मीठा रस (अमृत) है । (मैंने) ऐसे अमृत को (अपने) अन्तःकरण में देख लिया । जिन्होंने इस अमृत रस को चख लिया, (उन्हें) पूर्ण पद की प्राप्ति हो गई । नानक तो (इस अमृत का आस्वादन करके) तृप्त हो गया (और उसके) शरीर को (आध्यात्मिक) सुख प्राप्त हुआ ॥५॥१४॥

(१५)

अंतरि देखि सबदि मनु मानिआ अवरु न रांगनहारा ।
अहिनिसि जीआ देखि समाले तिस ही की सरकारा ॥१॥
मेरा प्रभु रांगि घणौ अति रूड़ौ ।
दीन दइआलु प्रीतम मनमोहनु अति रस लाल सगूड़ौ ॥१॥रहाउ॥
ऊपरि कूपु गगन पनिहारी अंम्रितु पीवणहारा ।
जिस की रचना सो बिधि जाणै गुरमुखि गिआनु वीचारा ॥२॥
पसरी किरणि रसि कमल बिगासे ससि घरि सूरु समाइआ ।
कालु बिधुंसि मनसा मनि मारी गुर प्रसादि प्रभु पाइआ ॥३॥
अति रंगि रंगि मजीठै राती दूजा रंगु न कोई ।
नानक रसनि रसाए राते रवि रहिआ प्रभु सोई ॥४॥१५॥

(गुरु के) शब्द द्वारा (हरी को) हृदय में ही देखकर (मेरा चंचल) मन मान गया—शान्त हो गया (और मुझे यह अनुभूति हो गई कि मन को) रंगनेवाला (हरी को छोड़कर) कोई और नहीं है । (हरी ही) जीवों को देखकर अहर्निश उनकी सँभाल करता है, (और उसी की) हुकूमत—बादशाही (सर्वत्र) है ॥१॥

मेरा प्रभु घने रंगवाला और अति सुन्दर है । प्रियतम (हरी) दीनदयालु, मन को मोहनेवाला, अति रस—रसिक और पक्का लाल (तात्पर्य यह कि अति अनुरागमय) है ॥१॥ रहाउ ॥

ऊपर आकाश में कुआँ है (अर्थात् ब्रह्मरंध्र के दशम द्वार में अमृत कूप है); (बुद्धि ही उस कुएँ की) पनिहारिन है और उस अमृत को पीनेवाला (मन) है । गुरु की शिक्षा द्वारा (मैंने) इस ज्ञान पर विचार किया है कि जिस प्रभु की सृष्टि है वही (उसके बनाने की) विधि जानता है ॥२॥

(गुरु ज्ञान की) किरणें फैल गईं (जिससे) (हृदय रूपी) कमल रसयुक्त होकर (मकरंद से परिपूर्ण) होकर प्रफुल्लित—विकसित हो गया और चन्द्रमा के घर में सूर्य का निवास हो गया, (तात्पर्य यह है कि शान्ति रूपी चन्द्रमा के अन्तर्गत गुरु ज्ञान रूपी सूर्य

[१७]

संता की रेणु साध जन संगति हरि कीरति तरु तारी ।
कहा करै बपुरा जमु डरपै गुरमुखि रिदै मुरारी ॥१॥
जलि जाउ जीवनु नाम बिना ।
हरि जपि जापु जपउ जपमाली गुरमुखि आवै सादु मना ॥१॥रहाउ॥
गुर उपदेस साचु सुखु जा कउ किआ तिसु उपमा कहीऐ ।
लाल जवेहर रतन पदारथ खोजत गुरमुखि लहीऐ ॥२॥
चीनै गिआनु धिआनु धनु साचौ एक सबदि लिव लावै ।
निरालंबु निरहारु निहकेवलु निरभउ ताड़ी लावै ॥३॥
साइर सपत भरे जल निरमलि उलटी नाव तरावै ।
बाहरि जातो ठाकि रहावै गुरमुखि सहजि समावै ॥४॥
सो गिरही सो दासु उदासी जिनि गुरमुखि आपु पछानिआ ।
नानकु कहै अवरु नही दूजा साच सबदि मनु मानिआ ॥५॥१७॥

(हे साधक तू) यह बैतरणी तैर—संत-जनों की चरण-धूलि (ग्रहण कर) साधु जनों की संगति में हरि के यश (कीर्ति) का (गुणगान कर) (इस विधि से संसार-सागर पार हो जा)। गुरमुख के हृदय में मुरारी (हरी) का वास होता है (इससे) बेचारा यमराज (उसका क्या कर सकता है ? (वह तो इस प्रकार के साधक से) डरता है ॥१॥

हे जीवन (तू) नाम के बिना जल जा। (हे साधक) गुरु की शिक्षा द्वारा (हृदय की) जपमाला—सुमिरनी से हरि का जप कर, (इससे) मन में (विलक्षण) स्वाद आयेगा ॥१॥ रहाउ ॥

जिस गुरु के उपदेश द्वारा सच्चे सुख की प्राप्ति हो गई है, उसकी उपमा क्या कही जाय ? (अर्थात् उसकी किससे उपमा की जाय) ? गुरु की शिक्षा द्वारा खोजने से (नाम रूपी) लाल जवाहर, रत्न तथा (अलौकिक) पदार्थ (हृदय में ही) प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

(गुरु के) एक शब्द में लिव (एकनिष्ठ प्रीति) लगाकर (साधक) ज्ञान, ध्यान और (हरी रूपी) सच्चे धन को पहचानता है तथा आश्रय-रहित निराहारी निष्केवल निर्भय (हरी) में ताड़ी—ध्यान लगाता है ॥३॥

सात सरोवर (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बुद्धि और मन) (हरि नाम रूपी पवित्र) जल से भर गए हैं (साधक) उलटी नाव चला रहा है (तात्पर्य यह कि विषयोन्मुखी वृत्ति को उलट कर हरिमुखी वृत्ति बना लेता है)। (वह) बाहर जाते हुए (मन) को रोक कर (आत्म स्वरूप में) टिकाए रखता है (इस प्रकार) गुरु की शिक्षा द्वारा (वह) सहजावस्था में समा जाता है ॥४॥

जिस (साधक) ने गुरु द्वारा अपने आप को पहचान लिया, वही (वास्तविक) गृहस्थ है वही (सच्चा) दास है और वही (पूर्ण) विरक्त है। नानक कहता है (कि हरी के अतिरिक्त) और कोई दूसरा नहीं है (गुरु के) शब्द से मेरा मन मान गया—प्रसन्न हो गया ॥५॥१७॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ प्रभाती-बिभास, महला १

असटपदीआ

[१]

दुबिधा बउरी मनु बउराइआ । झूठै लालचि जनमु गवाइआ ॥
लपटि रही फुनि बंधु न पाइआ । सतिगुरि राखे नामु द्रिड़ाइआ ॥१॥
ना मनु मरै न माइआ मरै ।
जिनि किछु कीआ सोई जाणै सबदु वीचारि भउसागरु तरै ॥१॥ रहाउ ॥
माइआ संचि राजे अहंकारी । माइआ साथि न चलै पिआरी ॥
माइआ ममता है बहु रंगी । बिनु नावै को साथि न संगी ॥२॥
जिउ मनु देखहि परमनु तैसा । जैसी मनसा तैसी दसा ॥
जैसा करमु तैसी लिव लावै । सतिगुरु पूछि सहज घरु पावै ॥३॥
रागि नादि मनु दूजै भाइ । अंतरि कपटु महा दुखु पाइ ॥
सतिगुरु भेटै सोझी पाइ । सचै नामि रहै लिव लाइ ॥४॥
सचै सबदि सचु कमावै । सची बाणी हरि गुण गावै ॥
निजघरि वासु अमरपदु पावै । ता दरि साचै सोभा पावै ॥५॥
गुर सेवा बिनु भगति न होई । अनेक जतन करै जे कोई ॥
हउमै मेरा सबदे खोई । निरमलु नामु वसै मनि सोई ॥६॥
इसु जग महि सबद करणी है सारु । बिनु सबदै होरु मोहु गुबारु ॥
सबदे नामु रखै उरधारि । सबदे गति मति मोखदुआरु ॥७॥
अवरु नाही करि देखणहारो । साचा आपि अनूपु अपारो ॥
राम नाम ऊतम गति होई । नानक खोजि लहै जनु कोई ॥८॥१॥

बावली दुविधा ने मन को बावला बना दिया है, (जिसने) झूठे लालच में पड़कर (उसने अपना मनुष्य) मानव जन्म नष्ट कर दिया है। (दुविधा मनुष्य से चिपट कर) लिपट गई है फिर इसे कोई रोक नहीं सकता। (ऐसी परिस्थिति में) सद्गुरु ने नाम दृढ़ करा कर (साधक की) रक्षा की ॥ १ ॥

(जब तक) मन नहीं मरता, (तब तक) माया नहीं मरती। जो कुछ उसने किया है उसे वही जानता है। (साधक गुरु के) शब्द को विचार कर संसार से तर जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(बड़े-बड़े) अहंकारी राजागण माया का संग्रह करते हैं (किन्तु प्यारी) प्यारी माया (उनके) साथ नहीं जाती। माया की ममता बहुरंगिनी है। बिना हरिनाम के कोई भी संगी-साथी नहीं होता ॥ २ ॥

जैसा (अपना) मन होता है वैसा ही दूसरों का मन दिखाई पड़ता है। जैसी मन की इच्छा होती है, वैसी ही उसकी दशा भी हो जाती है। जैसे कर्म होते हैं वैसा ही सुरति

(सिव) भी बन जाती है। सद्गुरु से पूछने पर सहजावस्था (सहज घर) की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

(दुनिया के) रागों और माया में लगा हुआ मन द्वैतभाव में रहता है। अन्तःकरण में कपट होने के कारण (मनमुख) बहुत दुःख पाता है। सद्गुरु के मिलने पर समझ आती है, (जिससे साधक) (हरी के) सच्चे नाम में लिव लगाए रहता है ॥ ४ ॥

(गुरु के) सच्चे शब्द द्वारा (साधक) सत्य की कमाई करता है और सच्ची वाणी से हरि का गुणगान करता है। (हरि का गुणगान करने से) (उसका आत्मस्वरूपी) घर में निवास हो जाता है, (जिससे वह) अमर पद पा जाता है और तब (हरी के) सच्चे दरवाजे पर शोभा पाता है ॥ ५ ॥

चाहे कोई अनेक यज्ञों को करे, किन्तु गुरु-सेवा के बिना भक्ति नहीं (प्राप्त) हो सकती। (जो साधक गुरु के) शब्द द्वारा 'अहंकार' और 'मैंपन' (अपने पन) को खो देता है, उसके मन में पवित्र हरिनाम का वास होता है ॥ ६ ॥

इस जगत में (गुरु के) शब्द की कमाई श्रेष्ठ वस्तु है। बिना शब्द के और (वस्तुएँ) मोहयुक्त और अंधकार पूर्ण हैं। (गुरु के) शब्द के द्वारा (साधक) हृदय में हरिनाम धारण कर रखता है। (गुरु के) शब्द से ही मुक्ति (गति) (श्रेष्ठ) बुद्धि तथा मोक्षद्वार प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

(हरी के बिना) और कोई दूसरा नहीं है, (जो उत्पन्न करके) फिर देखभाल करता है। (हरी) आप ही सच्चा अद्वितीय और अपार है। रामनाम से उत्तम गति होती है। नानक का कथन है कि कोई (विरला) ही पुरुष (उस) खोज कर प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

माइआ मोहि सगल जगु छाइआ। कामणि देखि कामि लोभाइआ ॥
सुत कंचन सिउ हेतु वधाइआ। सभु किछु अपना इकु रामु पराइआ ॥१॥
ऐसा जापु जपउ जपमाली। दुख सुख परहरि भगति निराली ॥१॥ रहाउ ॥
गुण निधान तेरा अंतु न पाइआ। साच सबदि तुझ माहि समाइआ ॥
आवा गउणु तुधु आपि रचाइआ। सेई भगत जिन सचि चितु लाइआ ॥२॥
गिआनु धिआनु नरहरि निरबाणी। बिनु सतिगुर भेटे कोइ न जाणी ॥
सगल सरोवर जोति समाणी। आनद रूप विटहु कुरबाणी ॥३॥
भाउ भगति गुरमती पाए। हउमै विचहु सबदि जलाए ॥
धावतु राखै ठाकि रहाए। सचा नामु मंनि वसाए ॥४॥
बिसम बिनोद रहे परमादी। गुरमति मानिआ एक लिव लागी ॥
देखि निवारिआ जल महि आगी। सो बूझै होवै वडभागी ॥५॥
सतिगुरु सेवे भरमु चुकाए। अनदिनु जागै सचि लिव लाए ॥
एको जाणै अवरु न कोइ। सुखदाता सेवे निरमलु होइ ॥६॥
सेवा सुरति सबदि वीचारि। जपु तपु संजमु हउमै मारि ॥
जीवन मुकतु जा सबदु सुणाए। सची रहत सचा सुखु पाए ॥७॥

अंधा भरिआ भरि भरि धोवै अंतर की मलु कदे न लहै।
नाम बिना फोकट सभि करमा जिउ बाजीगरु भरमि भुलै ॥१॥
खटु करम नामु निरंजन सोई। तू गुण सागरु अवगुण मोही ॥१॥ रहाउ ॥
माइआ धंधा धावणी दुरमति कार बिकार।
मूरखु आपु गणाइदा बूझि न सकै कार ॥
मनसा माइआ मोहणी मनमुख बोल खुआर।
मजनु झूठा चंडाल का फोकट चार सींगार ॥२॥
झूठी मन की मति है करणी बादि बिबादु।
झूठे विचि अहंकरणु है खसम न पावै सादु ॥
बिनु नावै होरु कमावणा फिका आवै सादु।
दुसटी सभा विगुचीऐ बिखु वाती जीवण बादि ॥३॥
ए भ्रमि भूले मरहु न कोई। सतिगुरु सेवि सदा सुखु होई ॥
बिनु सतिगुर मुकति किनै न पाई। आवहि जांहि मरहि मरि जाई ॥४॥
एहु सरीरु है त्रै गुण धातु। इस नो विआपै सोग संतापु ॥
सो सेवहु जिसु माई न बापु। विचहु चूकै तिसना अरु आपु ॥५॥
जह जह देखा तह तह सोई। बिनु सतिगुर भेटे मुकति न होई ॥
हिरदै सचु एह करणी सारु। होरु सभु पाखंडु पूज खुआरु ॥६॥
दुबिधा चूकै तां सबदु पछाणु। घरि बाहरि एको करि जाणु ॥
एहा मति सबदु है सारु। विचि दुबिधा माथै पवै छारु ॥७॥
करणी कीरति गुरमति सारु। संत सभा गुण गिआनु बीचारु ॥
मनु मारे जीवत मरि जाणु। नानक नदरी नदरि पछाणु ॥८॥१॥

(योगीगण) निवली कर्म करते हैं तथा सर्पाकार (कुण्डलिनी) को भट्ठी बनाते हैं (जिससे वह जाग्रत हो जाय और दशम द्वार का अनाहत शब्द सुनाई पड़ने लगे) साथ ही (प्राणायाम की) रेचक पूरक और कुंभक—क्रियाएँ करते हैं। (किन्तु) बिना सद्गुरु के कुछ समझ नहीं पाते (वे) भ्रम में भटक कर डूब मरते हैं। अंधा व्यक्ति (पापयुक्त कर्मों) से भरा होने के कारण उन्हें बार-बार धोता है, किन्तु उसकी आन्तरिक मैल कभी नष्ट नहीं होती। हरिनाम के बिना समस्त कर्म व्यर्थ हैं, (वे कर्म हमें उसी भाँति भुलावा देते हैं) जिस प्रकार बाजीगर (दर्शकों को भ्रमित करके) भुलावा देता है ॥ १ ॥

(हरि का) निरंजन नाम ही (योगियों का षट् कर्म है)। [हठयोगियों के षट्कर्म निम्नलिखित हैं—(१) नेती—सूत की महीन डोरी नाक के द्वारा अन्दर ले जाकर, मुँह से निकालना। (२) धोती—कपड़े की पट्टी अन्दर निगल कर बाहर निकालनी। (३) नेवली—पेट को अन्दर खींचकर चारों ओर घुमाना। (४) बस्ती—बाँस की पतली नली गुदा-द्वार में डालकर श्वास से जल ऊपर चढ़ाना और अंतड़ियों को धोकर, फिर उसे निकाल देना। (५) त्राटक—किसी निर्दिष्ट केन्द्र-बिन्दु को एकटक दृष्टि से देर तक देखना। (६) कपालभाति—लोहार की धौंकनी के समान श्वास को अन्दर ले जाना और बाहर निकालना]। (हे हरी) तू गुणों का सागर है मुझमें तो अवगुण ही अवगुण हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया के बंधों—प्रपंचों में डूबी हुई करनी बुद्धि का विकारयुक्त कर्म है। मूर्ख अपनी गणना (बुद्धिमानों में) कराता है किन्तु (सच्चा) कर्म नहीं समझ सकता। (उसकी) इच्छाएँ मोहिनी—मायावाली हो जाती हैं और उसके वचन अवगुणों के समान सारहीन होते हैं। (उस) बाह्याडम्बर का स्नान मिथ्या है और उसके सुन्दर (बाह्य) शृङ्गार भी व्यर्थ हैं (तात्पर्य यह कि समस्त बाह्य कर्मकाण्ड व्यर्थ है)॥ २॥

(अहंकारयुक्त) मन की बुद्धि झूठी है, (उसकी) करनी भी व्यर्थ और झगड़ेवाली है। मूर्खों में (प्रबल) अहंकार होता है, (जिससे वे) पति (परमात्मा) का स्वाद नहीं पा सकते। बिना नाम के अन्य कर्मों का कमाना फीका स्वाद (देने के समान है)। दुष्टों की सभा में (लोगों को) नष्ट हो जाना पड़ता है, (उनका रूप) मुँह में (रखे हुए) विष के समान है। उनका जीवन व्यर्थ है॥ ३॥

ऐ भ्रम में भटके हुए लोगो, (भ्रम में पड़कर) कोई मरो मत। सद्गुरु की सेवा करो (इससे शाश्वत सुख होगा)। बिना सद्गुरु (की आराधना के) किसी व्यक्ति ने मुक्ति नहीं प्राप्त की है। (ऐसे लोग) संसार में आते-जाते और जन्मते-मरते रहते हैं॥ ४॥

यह शरीर त्रिगुणात्मक स्वभाव अथवा तत्त्वोंवाला है। इसे शोक-संताप (सभी) व्याप्त होते हैं। (अतएव शोक-संताप की निवृत्ति के लिए उस परमेश्वर की) आराधना कर जिसके माता-पिता नहीं हैं, तात्पर्य यह कि जो अयोनि है)। (उसकी सेवा करने से मनुष्य के) भीतर से तृष्णा और अहंकार समाप्त हो जाते हैं॥ ५॥

(मैंने) जहाँ-जहाँ देखा है वहाँ-वहाँ उसी (प्रभु को देखा है) किन्तु बिना सद्गुरु के मिले, मुक्ति नहीं हो सकती। हृदय में सत्य (परमात्मा) का ठिकाना यही श्रेष्ठ—सत्यपूर्ण करनी है अन्य सब (बाह्य) पुकारें पाखण्डपूर्ण और भ्रम हैं॥ ६॥

(जब) दुविधा समाप्त होती है, तभी शब्द—नाम पहचाना जाता है और घर बाहर (भीतर-बाहर) एक (परमात्मा) ही समझा जाता है। शब्द (में अनुरक्त) यह बुद्धि ही श्रेष्ठ है। (जो व्यक्ति) दुविधा में रहता है, उसके मत्थे में राख पड़ती है॥ ७॥

गुरु द्वारा (हरि की) कीर्ति (का गुणगान करना) तथा संतों की सभा में (परमात्मा के) गुणों और ब्रह्मज्ञान का विचार करना श्रेष्ठ करनी है। नानक का कथन है कि जो मन मारता है, वह जीवित भाव से मरना जानता है और (उस हरी की) कृपादृष्टि से (हरी को) पहचानता है॥ ८॥ १॥

[४]

प्रभाती दखणी

गोतमु तपा अहिलिआ इसत्री तिसु देखि इंद्रु लुभाइआ ।
सहस सरीर चिहन भग हूए ता मनि पछोताइआ ॥१॥
कोई जाणि न भूलै भाई ।
सो भूलै जिसु आपि भुलाए बूझै जिसै बुझाई ॥१॥ रहाउ ॥
तिनि हरीचंदि प्रिथमी पति राजै कागदि कीम न पाई ।
अउगणु जाणै त पुंन करे किउ किउ नेखासि बिकाई ॥२॥

करउ अढाई धरती मांगी बावन रूपि बहानै ।
किउ पइआलि जाइ किउ छलीऐ जे बलि रूपु पछानै ॥३॥
राजा जनमेजा दे मतीं बरजि बिआसि पड़्हाइआ ।
तिन्हि करि जग अठारह घाए किरतु न चलै चलाइआ ॥४॥
गणत न गणीं हुकमु पछाणा बोली भाइ सुभाई ।
जो किछु वरतै तुधै सलाहीं सभ तेरी वडिआई ॥५॥
गुरमुखि अलिपतु लेपु कदे न लागै सदा रहै सरणाई ।
मनमुखु मुगधु आगै चेतै नाही दुखि लागै पछुताई ॥६॥
आपे करे कराए करता जिनि एह रचना रचीऐ ।
हरि अभिमानु न जाई जीअहु अभिमाने पै पचीऐ ॥७॥
भुलण विचि कीआ सभु कोई करता आपि न भुलै ।
नानक सचि नामि निसतारा को गुर परसादि अघुलै ॥८॥४॥

गौतम तपस्वी की स्त्री अहल्या (थी) । उसे देख कर इन्द्र मोहित हो गया । (गौतम ऋषि के शाप से जब इन्द्र के) शरीर में सहस्र भगों के चिह्न हो गए, तो (वह अपने) मन में पछताने लगा ॥१॥

अरे भाई, जान बूझ कर कोई भूल मत करना । जिसे (हरी) स्वयं भुलवाता है, वही भूल करता है । और जिसे वह समझाता है वह समझ जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

(जो) हरिचन्द्र पृथ्वीपति और राजा थे उन्हें भी अपने (भाग्य के) कागज (की लिखावट की) कीमत का पता न था (अर्थात् वे भी अपनी भाग्य-लिपि नहीं जान सके थे) । (यदि वे विश्वामित्र को दान देने को) अवगुण समझते तब फिर क्यों पुण्य करते (दक्षिणा देते) और क्यों मंडी में (स्वयं परिवार सहित डोम के हाथों) बिकते ? [पैकाणि<फारसी, बकाम=मंडी] ॥२॥

(हरी ने) वामन-रूप के बहाने (राजा बलि से) अढ़ाई पग धरती माँगी । यदि बलि (वामन के उस) रूप को पहचानता होता तो पाताल में जा कर क्यों छला जाता ? ॥३॥

व्यास देव ने राजा जनमेजय को शिक्षा देते समय पढ़ा समझा कर रोक दिया (कि अश्वमेध यज्ञ मत करना) (किन्तु परिणाम को जानते हुए भी उन्होंने प्रारब्धानुसार) यज्ञ किया और अठारह (ब्राह्मणों) को मारा, (जिसके फलस्वरूप उन्हें कोढ़ हो गया अतः यह स्पष्ट है कि) किए कर्मों द्वारा बने हुए भाग्य मिटते नहीं ॥४॥

(मैं) स्वाभाविक रूप से कहता हूँ कि मैं हिसाब-किताब नहीं समझता (गिनती नहीं गिनता) (मैं सीधे सादे) हरी का हुक्म पहचानता हूँ । (हे हरी) जो कुछ भी बरत रहा है (तू ही बरत रहा है) (मैं) तेरी स्तुति करता हूँ कि सब कुछ तेरी ही महत्ता—बड़ाई (सर्वत्र दिखाई पड़ रही है) ॥५॥

गुरमुख (गुरु का अनुयायी) अलिप्त रहता है, (वह) कभी (इस संसार में) लिप्त मान नहीं होता, क्योंकि (सदैव हरि की) शरण में रहता है । मनमुख मूर्ख होता है (वह) आगे (मरने के बाद) नहीं चेतता (अतएव जब अंत में) दुःखी होता है (तब) पछताता है ॥६॥

हे अंधे मूर्ख और गँवार मन (तात्पर्य यह कि अज्ञानी मनुष्य) तुम तुम्हें (पुनः पुनः संसार में) आने जाने में लज्जा नहीं लगती ? बिना गुरु के तू बार बार (इस संसार सागर में) डूब रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

ममता और मोह (के चक्कर में पड़कर) इस मन का विनाश हो जाता है, (अथवा माया में मोहित होकर इस मन का विनाश हो जाता है)। (यदि) प्रारम्भ से ही (हरी का) हुक्म (इसी प्रकार) लिखा गया है, तो किसको कहा जाय ? कोई विरला ही गुरु की शिक्षा द्वारा (नाम-तत्त्व को) पहचानता है। नाम-विहीन व्यक्ति को मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ॥२॥

(मनुष्य) चौरासी लाख योनियों में भटक भटक कर फिरता रहता है। बिना गुरु के उसके यमराज की फाँसी (सदैव गले में पड़ी रहती है)। यह मन क्षण भर में आकाश में (चढ़ जाता है) और क्षण भर में पाताल में (आ गिरता है)। (किन्तु यह) गुरु की शिक्षा द्वारा नाम का स्मरण करके छूट जाता है ॥३॥

(यदि हरी) स्वयं बुलाता है, (तो उसमें) देर नहीं लगती (जो साधक गुरु के) शब्द में मरता है उसी का जीना सफल होता है। बिना गुरु (की शिक्षा ग्रहण किए) किसी को (आध्यात्मिक) समझ नहीं आती। (परन्तु ये सब वस्तुएँ) प्रभु आप ही करता और कराता है, (ये और किसी के बूते की नहीं हैं) ॥४॥

पूरा सद्गुरु (आन्तरिक) झगड़ों—झंझटों को समाप्त कर देता है, (अहर्निश) हरि का गुणगान करता है तथा सहजावस्था में समा जाता है। यदि यह मन डोलता है, तो उसे स्थिर कर रखता है। (वह) सच्ची करनी के आधार पर कर्मों का सम्पादन करता है ॥[illegible]॥

(जिसका) हृदय अपवित्र है, वह किस प्रकार पवित्र हो सकता है ? (गुरु के) शब्द द्वारा कोई विरला ही (साधक) (अपने झूठे—अपवित्र हृदय को) धोता है। कोई (विरला ही साधक) गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य की कमाई करता है। (और इस प्रकार अपने) आवागमन को रोक देता है ॥६॥

(परमात्मा का) भय ही खाना पीना और [illegible] सुख है। हरि भक्तों की संगति से (संसार-सागर से) पार हुआ जा सकता है। (हरी का) भक्त सत्य बोलता है, (क्योंकि यह सत्य उसे) प्यार से बुलवाता है, (तात्पर्य यह कि उस सत्य बुलवानेवाला प्यार ही है। वह सत्य को प्यार करता है, इसीलिए सत्य बोलता है)। गुरु के शब्दों (के ऊपर आचरण करना) उसकी करनी है ॥७॥

जिसने हरियश (के गुणगान को) धर्म कर्म प्रतिष्ठा और पूजा समझ रखी है उसने काम क्रोधादिक (विकारों) को ज्ञानाग्नि में भस्म कर दिया है। नानक विनय करता है कि (जब मैं) हरि-रस को चख लिया तो मन भीग गया (आनन्दित हो गया और मेरी दृष्टि से एक हरी को छोड़ कर) और दूसरा कोई न (रह गया) ॥८॥५॥

[७]

इकि धुरि बखसि लए गुरि पूरै सची बणत बणाई ।
हरि रंग राते सदा रंगु साचा दुख बिसरे पति पाई ॥१॥

झूठी दुरमति की चतुराई । बिनसत बार न लागै काई ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख कउ दुखु दरदु विआपसि मनमुखि दुखु न जाई ।
सुख दुख दाता गुरमुखि जाता मेलि लए सरणाई ॥२॥

मनमुख ते अभ भगति न होवसि हउमै पचहि दिवाने ।
इहु मनूआ खिनु ऊभि पइआली जब लगि सबद न जाने ॥३॥

भूख पिआसा जगु भइआ तिपति नही बिनु सतिगुर पाए ॥
सहजै सहजु मिलै सुखु पाईऐ दरगह पैधा जाए ॥४॥

दरगह दाना बीना इकु आपे निरमल गुर की बाणी ।
आपे सुरता सचु बीचारसि आपे बूझै पदु निरबाणी ॥५॥

जलु तरंग अगनी पवनै फुनि त्रै मिलि जगतु उपाइआ ।
ऐसा बलु छलु तिन कउ दीआ हुकमी ठाकि रहाइआ ॥६॥

ऐसे जन विरले जग अंदरि परखि खजानै पाइआ ।
जाति वरन ते भए अतीता ममता लोभु चुकाइआ ॥७॥

नामि रते तीरथ से निरमल दुखु हउमै मैलु चुकाइआ ।
नानकु तिन के चरन पखालै जिना गुरमुखि साचा भाइआ ॥८॥७॥

कुछ लोगों को पूर्ण गुरु ने ठीक तौर पर बख्श कर (अर्थात् उनके ऊपर गुरु ने कृपा कर के) उनकी सच्ची बनावट बना दी है। हरि के रंग में अनुरक्त होने से उन पर सच्चा रंग सदैव चढ़ा रहता है, उनके दुःख विस्मृत हो जाते हैं और उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥१॥

दुर्बुद्धि की झूठी चतुरता को नष्ट होने में कोई देर नहीं लगती ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख को दुःख-दर्द (बहुत) व्याप्त होता है मनमुखी (बुद्धि से) दुःख दूर नहीं होते। गुरु की शिक्षा द्वारा सुख-दुःख का देनेवाला (हरी) जाना जाता है; (गुरु ही शिष्य को अपनी) शरण देकर (उसे परमात्मा से) मिला देता है ॥२॥

मनमुख से आन्तरिक (दिली) भक्ति नहीं होती (माया के) दीवाने—(वे लोग) अहंकार में पच जाते हैं। जब तक शब्द—नाम को नहीं जान लेता (तब तक) यह मन क्षण मात्र में आकाश (में उड़ता है) और क्षणमात्र में पाताल में (जा गिरता है) [अर्थात् बिना नाम के पाये मन चंचल रहता है] ॥३॥

(सारा) जगत् भूखा प्यासा है (वह) बिना सद्गुरु (की शरण प्राप्त किए) तृप्ति नहीं पा सकता। सहजभाव से ही सहजावस्था मिलती है, (उसके प्राप्त होने पर) आनन्द की प्राप्ति होती है (और परमात्मा के) दरबार में (साधक) प्रतिष्ठा की पोशाक पहन कर जाता है ॥४॥

गुरु की निर्मल वाणी से (साधक को यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि हरी के) दरबार में हरी आप ही अकेला द्रष्टा और ज्ञाता है। [देखा==द्रष्टा। बीना==ज्ञाता]। वह आप ही भोक्ता होकर सत्य के ऊपर विचार करता है और आप ही निर्वाणपद को समझता है ।।५।।

(हरी ने) उपर्युक्त जल अग्नि और पवन—इन तीन तत्त्वों को उत्पन्न करके फिर इनके संयोग से (पंच तत्त्वों द्वारा) जगत् उत्पन्न किया। (हरी ने पंच तत्त्वों को) ऐसा बल प्रदान किया (कि उनके द्वारा सृष्टि निर्मित हो गई) (पर वे सब) उसके हुक्म में स्थिर हैं—(बंधे हैं) ।।६।।

संसार में ऐसे जन विरले ही हैं, (जिन्होंने) परख कर (हरिनाम रूपी) खजाने को प्राप्त कर लिया। (ऐसे महात्मा) जाति एवं वर्ण से अतीत—परे हो जाते हैं (और वे) ममता तथा लोभ को भी समाप्त कर देते हैं ।।७।।

(जो साधक) नाम रूपी रंग में अनुरक्त हैं वे निर्मल हैं, (उन्होंने) दुःख अहंकार एवं (आन्तरिक) मल को समाप्त कर दिया है। नानक ऐसे (लोगों) के चरण धोता है, जिन्हें गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य (परमात्मा) अच्छा लग गया है ।।८।।७।।

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

सलोक सहसक्रिती, महला १

[१]

पढ़ि पुस्तक संधिआ बादं । सिल पूजसि बगुल समाधं ॥
मुखि झूठु बिभूखन सारं । त्रै पाल तिहाल बिचारं ॥
गलि माला तिलक लिलाटं । दोइ धोती बसत्र कपाटं ॥
जो जानसि ब्रहमं करमं । सभ फोकट निसचै करमं ॥
कहु नानक निहचौ ध्यावै । बिनु सतिगुर बाट न पावै ॥१॥

विशेष : यह सलोक 'आसा की वार' में भी आया है ।

अर्थ (पंडित लोग धार्मिक) पुस्तकें पढ़कर संध्या करते हैं और वाद-विवाद में (रत रहते हैं)। (वे) मूर्तिपूजा करते हैं और बगुल-समाधि लगाते हैं। (वे) मुँह से झूठ बोल कर लोहे को (सोने का) आभूषण बना कर दिखा देते हैं, (तात्पर्य यह कि झूठ के बल पर वे बुरी वस्तु को अच्छी की भाँति दिखा देते हैं)। (वे) तीन पादोंवाली (गायत्री) का तीन काल (प्रातः मध्याह्न संध्या) में विचार करते हैं। (उनके) गले में माला तथा ललाट पर तिलक रहता है। (उनके) दो धोतियाँ होती हैं तथा सिर पर पूजा करने के समय (वे) वस्त्र रखते हैं। यदि (वह पंडित) ब्रह्म-कर्म अर्थात् (हरी का आचार) जानता तो सारे (उपर्युक्त बाह्य कर्म) व्यर्थ (जान पड़ते)। नानक का कथन है कि वह तो निश्चय (मन से) (हरी का) ध्यान करता है। बिना सद्गुरु के (ठीक) मार्ग नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥

[२]

निहफलं तस्य जनमस्य जावद ब्रहम न बिंदते ।
सागरं संसारस्य गुरपरसादी तरहि के ।
करण कारण समरथु है कहु नानक बीचारि ।
कारणु करते वसि है जिनि कल रखी धारि ॥२॥

विशेष : यह सलोक वार 'माझ' की २१ वीं पउड़ी के साथ दर्ज है। उस स्थान पर यह सलोक 'महला दूजा' (गुरु अंगद देव) का लिखा गया है।

अर्थ :—(तब तक) उसका जन्म निष्फल है, जब तक ब्रह्म को नहीं जान लेता। कोई विरला ही व्यक्ति संसार-सागर को गुरु की कृपा से तरता है। नानक यह विचार करके कहता है कि (हरी) कारणों का कारण है और सामर्थ्यवान् है। (सभी) कारण उस कर्ता पुरुष के अधीन हैं, जिसने समस्त शक्तियाँ (अपने अन्तर्गत) धारण कर रखी हैं॥ २॥

[३]

जोग सबद गिआन सबद बेद सबद त ब्राहमणह ।
खत्री सबद सूर सबद सूद्र सबद पराक्रितह ॥
सरब सबद त एक सबद जे को जाणसि भेउ ।
नानक ताको दासु है सोई निरंजन देउ ॥३॥

विशेष :—यह सलोक भी 'माझ की वार' में महला दूजा के नाम से लिखा गया है।

अर्थ :—योगियों का तरीका ज्ञान का तरीका है, ब्राह्मणों की विधि वेदों का (पढ़ना-पढ़ाना) है। क्षत्रियों की विधि शौर्य प्रदर्शन है। शूद्रों की प्रणाली अन्य वर्णों की सेवा है। पर यदि कोई व्यक्ति भेद जानता हो तो उसके लिए सारी विधियों की एक विधि है [तात्पर्य यह कि पृथक्-पृथक् धर्म ठीक नहीं है। प्रत्येक मनुष्य में सभी वर्णों के धर्मों का समन्वय हो, अर्थात् उसमें पांडित्य, शौर्य और सेवा आदि का सम्मिश्रण हो]। (जो उपर्युक्त रहस्य जानता है) नानक उसका दास है, (सचमुच ही ऐसा व्यक्ति) निरंजन-स्वरूप देव ही है॥ ३॥

[४]

एक क्रिसनं त सरब देवा देव देवा त आतमह ।
आतम स्री बासदेवस्य जे कोई जानसि भेव ॥
नानक ताको दासु है सोई निरंजन देव ॥४॥

विशेष :—यह सलोक भी माझ की वार में महला दूजा के नाम से लिखा गया है।

अर्थ :—सारे देवताओं का एक कृष्ण (हरी ही सर्वशक्ति) देव है। वही देवताओं के देवत्व की आत्मा है। यदि कोई इस भेद को जानता हो तो उसके लिए यह आत्मा वासुदेव की ही प्रतीत होती है। नानक कहता है कि देव (या मेरा गुरु) का वह दास है, वह व्यक्ति (साक्षात्) निरंजन देव है॥ ४॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

सलोक वारां ते वधीक, महला १

सबद [१]

उतंगी पैओहरी गहिरी गंभीरीए ।
ससुड़ि सुहीआ किव करी निवणु न जाइ थणी ॥
गचु जि लगा गिड़वड़ी सखीए धउलहरी ।
से भी ढहदे डिठु मै मुंध न गरबु थणी ॥१॥

विशेष —कुछ सलोक तो वारों में पउड़ियों के साथ दर्ज हैं। जो बचे थे वे यहाँ दिए गए हैं।

हे उच्च पयोधरवाली (जीवात्मा रूपी स्त्री) (मेरी) गहरी और गम्भीर (शिक्षा सुन और झुक कर पति परमात्मा को प्रणाम कर)। (स्त्री इस प्रकार उत्तर देती है)— "हे सास जी मैं भला, प्रणाम किस प्रकार करूँ ? भारी स्तनों के कारण (मुझसे) झुका नहीं जाता।"—(इस पर सास उपदेश देती है)— पर्वत (गिरिवड़ी<गिरिवर) के समान जो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ चूने से बनी हैं, उन्हें भी मैंने ढहते हुए देखा है। (अतएव) हे मुग्धे स्तनों (तात्पर्य यह कि यौवन) का अहंकार मत कर। ॥ १ ॥

[२]

सुणि मुंधे हरणाखीए गूड़ा वैणु अपारु ।
पहिला वसतु सिञाणि कै तां कीचै वापारु ॥
दोही दिचै दुरजना मित्रां कूं जैकारु ।
जितु दोही सजण मिलनि लहु मुंधे वीचारु ॥
तनु मनु दीजै सजणा ऐसा हसणु सारु ।
तिसु सिउ नेहु न कीचई जि दिसै चलणहारु ॥
नानक जिन्ही इव करि बुझिआ तिन्हा विटहु कुरबाणु ॥२॥

हे हिरणाक्षी (हिरन के समान आँखोंवाली) मुग्धे (मेरे) गूढ़ और अपार वचन सुन—पहले वस्तु समझ कर (पहचान कर) तब व्यापार कर। तू यह दुहाई दे कि

[७]

रे मन डीगि न डोलीऐ सीधै मारगि धाउ ।
पाछै बाघु डरावणो आगै अगनि तलाउ ॥
सहसै जीअरा परि रहिओ माकउ अवरु न ढंगु ।
नानक गुरमुखि छुटीऐ हरि प्रीतम सिउ संगु ॥७॥

अरे मन (इस संसार में) डिग कर भटको मत (हरी की प्राप्ति के) सीधे मार्ग पर चल । (इस संसार में) पीछे तो (सांसारिक भय रूपी) डरावना बाघ है और आगे (तृष्णा रूपी) अग्नि का तालाब है । (मेरा) जी संशय में पड़ा हुआ है (क्योंकि) मुझे (मुक्ति का) ढंग नहीं आता है । नानक का कथन है कि गुरु की शिक्षा द्वारा ही मुक्त हुआ जा सकता है (सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने पर) प्रियतम हरी का संग (सब दिन के लिए) हो जाता है ॥ ७ ॥

[८]

बाघु मरै मनु मारीऐ जिसु सतिगुर दीखिआ होइ ।
आपु पछाणै हरि मिलै बहुड़ि न मरणा होइ ॥
कीचड़ हाथु न बूडई एका नदरि निहालि ।
नानक गुरमुखि उबरे गुरु सरवरु सची पालि ॥८॥

जिस सद्गुरु की दीक्षा होती है, (वही) मन मारता है, (मन के मारने से सांसारिक भय रूपी) बाघ मर जाता है । अपने आप को पहचानने से हरि मिलता है, (जिससे) फिर मरना नहीं होता । यदि कोई साधक एक दृष्टि (समदृष्टि) से देखता हुआ (चलता है), तो (उसका) हाथ (मोह रूपी) कीचड़ में नहीं डूबता । नानक का कथन है कि गुरु की शिक्षा द्वारा ही बचा जा सकता है । गुरु रूपी सरोवर का (अमृत जल पाने के लिए उसकी शिक्षा का) पुल—बाँध बना रहता है । [तालाब के किनारे कीचड़ होता है । कीचड़ से बचने के लिए एक बाँध बाँध दिया जाता है । यदि कोई व्यक्ति कीचड़ से बचने के लिए उस बाँध को लाँघना चाहे, तो उसे एक दृष्टि से देखना चाहिए, नहीं तो यदि ध्यान इधर-उधर चला गया तो वह गिर कर कीचड़ में फँस जायगा, और उसके हाथ कीचड़ से सन जायेंगे] ॥ ८ ॥

[९]

अगनि मरै जलु लोड़ि लहु विणु गुर निधि जलु नाहि ।
जनमि मरै भरमाईऐ जे लख करम कमाहि ॥
जमु जागाति न लगई जे चलै सतिगुर भाइ ।
नानक निरमलु अमर पदु गुरु हरि मेलै मेलाइ ॥९॥

(हे साधक यदि तृष्णा रूपी) अग्नि को बुझाना (मारना) है, तो (नाम रूपी) जल प्राप्त कर (किन्तु यह) जल गुरनिधि के बिना नहीं प्राप्त होता । (गुरु के बिना) चाहे लाखों

[१२]

हैनि विरले नाही घणे फैल फकड़ु संसारु ॥१२॥

(संसार में सज्जन) विरले ही होते हैं अधिक नहीं; (शेष संसार तो निरा दिखावा और बकवास है ॥१२॥

[१३]

नानक लगी तुरि मरै जीवण नाही ताणु ।
चोटै सेती जो मरै लगी सा परवाणु ॥
जिसनो लाए तिसु लगै लगी ता परवाणु ।
पिरम पकाणु न निकलै लाइआ तिनि सुजाणि ॥१३॥

नानक का कथन है (कि जिस साधक को गुरु के उपदेश की चोट लग गयी) वह (अपने अहंभाव से) तुरन्त मर जाता है (और फिर उसे अहंभाव का) बल नहीं रहता। (ऐसी) चोट लगने से जो (अहंभाव से) मर जाता है, वही प्रामाणिक है। (प्रभु की कृपा) जिसे यह (चोट) लगाती है उसी को लगती है (और जिसे यह चोट) लग जाती है, वही प्रामाणिक (समझा जाता है)। प्रेम का (लगा हुआ) तीर (पैकान=फारसी तीर) नहीं निकलता। (यह तीर) चतुरों को ही लगता है ॥१३॥

[१४]

भाडा धोवै कउणु जि कचा साजिआ ।
धातू पंजि रलाइ कूड़ा पाजिआ ॥
भांडा आणगु रासि जां तिसु भावसी ।
परम जोति जागाइ वाजा वावसी ॥१४॥

(हे भाइयो), जो (शरीर रूपी) पात्र कच्चा बनाया गया है, उसे क्या धोता है? पंच तत्त्वों (धातुओं) को मिलाकर (यह शरीर रूपी पात्र) मिथ्या ही (बनाया गया है) (यह) दिखावा मात्र है। यदि गुरु चाहेगा (तो शरीर रूपी) पात्र को दुरुस्त कर देगा। वह (हृदय में हरी की) महान् ज्योति जगा कर (अनहद का) बाजा बजा देगा ॥१४॥

[१५]

मनहु जि अंधे घूप कहिआ बिरदु न जाणनी ।
मनि अंधै ऊंधै कवल दिसनि खरे करूप ।
इक कहि जाणनि कहिआ बुझनि ते नर सुघड़ सरूप ॥
इकना नादु न बेदु न गीअ रसु रसु कसु न जाणंति ।
इकना सिधि न बुधि न अकलि सर अखर का भेउ न लहंति ॥
नानक ते नर असलि खर जि बिनु गुण गरबु करंत ॥१५॥

जो व्यक्ति घनघोर अंधकारयुक्त मनवाले हैं वे (अपने किए हुए (उपदेश) की लज्जा नहीं रखते। मन अन्धा होने से उनका (हृदय रूपी) कमल उलटा है और वे अत्यन्त कुरूप दिखाई पड़ते हैं। कुछ लोग कहना मात्र जानते हैं (आचरण करना नहीं) (किन्तु जो लोग) कह कर समझते हैं, (अर्थात् कही हुई बात पर आचरण करते हैं) वे लोग सुन्दर और स्वरूपवान् हैं, (तात्पर्य यह कि वे ही लोग मनुष्य गिनने योग्य हैं)। कुछ लोग न नाद जानते हैं, न वेद न संगीत के रस और न रसों (अर्थात् छः रस ही)। [तात्पर्य यह है कि न तो योगी हैं, न ज्ञानी हैं, न संगीतज्ञ हैं और भले बुरे का भी उन्हें बोध नहीं है]। कुछ लोग ऐसे हैं, (जिनमें) न तो सिद्धि है, न बुद्धि है, न अक्खरी (सर<सार=श्रेष्ठ) परख है और न (वे) अक्षर का भेद ही जानते हैं। नानक का कथन है वे मनुष्य असली गधे हैं, जो बिना गुणों के ही अभिमान करते हैं ॥१५॥

विशेष : उपर्युक्त 'सलोक' सारंग की वार में भी आया है।

[१६]

सो ब्रहमणु जो बिंदै ब्रहमु।
जपु तपु संजमु कमावै करमु ॥
सील संतोख का रखै धरमु ॥
बंधन तोड़ै होवै मुकतु।
सोई ब्रहमणु पूजण जुगतु ॥१६॥

जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। (ऐसा ब्राह्मण) जप तप और संयम करता है (तथा शुभ) कर्मों को करता है। (वह) व्यक्ति संतोष के धर्म का रक्षक है और (माया के) बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो जाता है। ऐसा ही ब्राह्मण जगत् के पूजने योग्य है ॥१६॥

[१७]

खत्री सो जु करमा का सूरु। पुंन दान का करै सरीरु ॥
खेतु पछाणै बीजै दानु। सो खत्री दरगह परवाणु ॥
लबु लोभु जे कूड़ु कमावै। अपणा कीता आपे पावै ॥१७॥

जो कर्मों का शूरवीर है, वही (वास्तविक) क्षत्रिय है। (वह अपना) शरीर (तात्पर्य यह कि जीवन) को पुण्यदान करनेवाला बना लेता है। (वह) वास्तविक क्षेत्र (पात्र) की पहचान कर दान का बीज बोता है। ऐसा ही क्षत्रिय (परमात्मा के) दरबार में प्रामाणिक समझा जाता है। यदि (कोई क्षत्रिय) लालच लोभ और झूठ की कमाई करता है तो वह अपने किए हुए का फल आप ही पाता है ॥१७॥

[१८]

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि।
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी समालि ॥१८॥

तन्दूर (अंगीठी विशेष) के समान शरीर को मत तपा और न लकड़ी की भाँति हड्डियों को ही जला। (हे मनुष्य) सिर और पैरों ने क्या बिगाड़ा है (कि उन्हें कष्ट दे रहा है)। (अपने) अन्दर से प्रियतम (हरी) को देख ॥१८॥

विशेष उपर्युक्त सलोक फरीद के १२०वें सलोक में भी आया है।

[१९]

सभनी घटी सहु वसै सह बिनु घटु न कोइ।
नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ ॥१९॥

सभी घटों (प्राणियों) में प्रियतम (हरी) वास कर रहा है बिना प्रियतम (हरी) के कोई भी घट (प्राणी) नहीं है। नानक का कथन है (कि) वे ही (जीवात्मा रूपी स्त्रियाँ) सुहागिनी हैं जिन्हें गुरु की शिक्षा द्वारा (प्रियतम हरी) प्रकट होता है ॥१९॥

[२०]

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै ॥२०॥

यदि तुझे प्रेम के खेल खेलने की इच्छा है तो (अपना) सिर हथेली के ऊपर रख कर मेरी गली में आ। इस मार्ग में (तो तब) पैर रख, जब सिर देकर भी अहसान मत जता ॥२०॥

[२१]

नालि किराड़ा दोसती कूड़ै कूड़ी पाइ।
मरणु न जापै मूलिआ आवै कितै थाइ ॥२१॥

(माया के) व्यापारी के साथ दोस्ती करना (मिथ्या होती है)। झूठ के कारण इस दोस्ती (की बुनियाद) झूठी होती है। यह भी बिलकुल पता नहीं रहता की मृत्यु कहाँ से आ जायगी ॥२१॥

[२२]

गिआन हीणं अगिआन पूजा।
अंध वरतावा भाउ दूजा ॥२२॥

ज्ञानविहीन (लोग) अज्ञानता की पूजा करते हैं। द्वैतभाव में (पड़ने के कारण उनके) व्यवहार भी अन्धे (अविवेकपूर्ण) होते हैं ॥२२॥

[२३]

गुर बिनु गिआनु धरम बिनु धिआनु।
सच बिनु साखी मूलो न बाकी ॥२३॥

गुरु के बिना ज्ञान नहीं (होता) धर्म (विश्वास) के बिना ध्यान नहीं होता। सच (की अनुभूति) के बिना साखी (आदि ग्रन्थ की रचना) नहीं हो सकती; मूलधन के बिना बाकी नहीं रह सकती ॥ २३ ॥

[२४]

माण पले उठी चलै ।
सादु नाही इवेही गलै ॥२४॥

इस बात में क्या स्वाद आया कि मनुष्य जिस भाँति आया उसी भाँति चला गया और कमाया कुछ भी नहीं। ॥ २४ ॥

[२५]

रामु झुरै दल मेलवै अंतरि बलु अधिकार ।
बंतर की सैना सेवीऐ मनि तनि जुझु अपारु ॥
सीता लै गइआ दहसिरो लछमणु मूओ सरापि ।
नानक करता करणहारु करि वेखै थापि उथापि ॥२५॥

रामचन्द्र सेना एकत्र करते हैं, बन्दरों की सेना (उनकी) सेवा में है, (उनके) तन मन में युद्ध की अपार (भावना) भी है (उनके) अन्तर्गत बल और अधिकार भी है, (फिर भी वे) दुखी हुए, (क्योंकि) सीता को रावण ले गया और शाप के कारण (शक्ति लगने से) लक्ष्मण मरे (मूर्छित हुए)। नानक का कथन है कि कर्तापुरुष ही करनेवाला है। (वह सृष्टि) बना बिगाड़ कर उसे देखता रहता है ॥ २५ ॥

[२६]

मन महि झूरै रामचंदु सीता लछमण जोगु ।
हणवंतरु आराधिआ आइआ करि संजोगु ॥
भूला दैतु न समझई तिनि प्रभ कीए काम ।
नानक वेपरवाहु सो किरतु न मिटई राम ॥२६॥

सीता और लक्ष्मण के निमित्त मन में रामचन्द्र दुखी हुए। उन्होंने हनुमान का स्मरण किया और संयोगवश वे आ पहुँचे। भूले (अविवेकी) दैत्य (रावण) ने यह नहीं समझा कि स्वयं प्रभु ने (यह सब) काम किया (रामचन्द्र ने नहीं)। नानक का कथन है (कि परमात्मा) बेपरवाह (सर्व स्वतंत्र) है किए हुए कर्मों का फल राम न मेट सके ॥२६॥

[२७]

लाहौर सहरु जहरु कहरु सवा पहरु ॥२७॥

लाहौर शहर में जहरीला जुल्म सवा पहर दिन चढ़े तक रहा।

विशेष [illegible] में गुरु नानक देव ने लाहौर के आक्रमण का जिक्र किया है। बाबर का लाहौर शहर पर यह चौथा आक्रमण था जो १५२४ ई० में हुआ। बाबर न

सैनिकों ने लाहौर की निरपराध और निरीह प्रजा पर जो जुल्म ढाया उसी का इस सलोक में संकेत है ॥२७॥

[२८]

अंधो साहु किआ मीसालो तोटि न आवै अंनी ।
उदोसीअ घरे ही वुठी कुड़ींई रंनी घमी ॥
सती रंनी घरे सिआपा रोवनि कूड़ी कंमी ।
जो लेवै सो देवै नाही खटे दम सहमी ॥२८॥

अहंकारी बादशाह की क्या निशानी है ? (इस प्रश्न का उत्तर अगली पंक्तियों में दिया जा रहा है)—उसके घर में अन्न की कमी नहीं रहती (तात्पर्य यह कि अहंकारियों के हृदय रूपी घर में द्वैतभाव रूपी अन्न की कमी नहीं रहती उनके अंतःकरण में पूर्ण रूप से द्वैत भाव व्याप्त रहता है) । (मन की) अहंकारपूर्ण बादशाही (उसके हृदय में) बस रही है लड़कियों और स्त्रियों की धूम मच रही है (तात्पर्य यह कि कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ चंचल होकर धूम मचा रही हैं) । सैकड़ों स्त्रियाँ (होने के कारण) घर में अशान्ति (छायी रहती है) (वे स्त्रियाँ अपने) मिथ्यापूर्ण कर्मों के कारण रोती रहती हैं, (तात्पर्य यह कि इन्द्रियों की प्रबलता चंचलता और मिथ्याचरण के कारण हृदय दुःखी रहता है, प्रसन्नता का अभाव रहता है) 'जो व्यक्ति उससे (रुपये) लेता है वह देता नहीं (इसी) भय से वह रुपये पैदा करता है ॥ २८ ॥

[२९]

बबर तू हरीआवला कचला कंचन वंनि ।
कै दोखड़ै सड़िओहि काली होईआ देहुरी नानक मै तनि भंगु ॥
जाणा पाणी ना लहां जै सेती मेरा संगु ।
जितु डिठै तनु परफुड़ै चड़ै चवगणि वंनु ॥२९॥

हे कमल तू हरा-भरा है और तेरा वर्ण सोने की भाँति सुन्दर है। (पर तू बता,) किस दोष से तू जल गया है और तेरी देह काली पड़ गई है ? नानक का कथन है (कि कमल उपर्युक्त प्रश्न का इस भाँति उत्तर दे रहा है)—मेरे शरीर में (कोई) वि(ध्न) आ पड़ा है । (वह विघ्न यह है कि मुझे) वह जल नहीं प्राप्त हुआ जिससे मेरा (सहज) साथ है । (वह जल ऐसा है) जिसके देखने से मेरा शरीर प्रफुल्लित होता है और मुझ पर चौगुना रंग चढ़ता है । [उपर्युक्त 'सलोक' में अन्योक्ति अलंकार है । यहाँ कमल जीवात्मा और जल परमात्मा की भक्ति] ॥ २९ ॥

[३०]

रजि न कोई जीविआ पहुचि न चलिआ कोइ ।
गिआनी जीवै सदा सदा सुरती ही पति होइ ॥

सरफै सरफै सदा सदा एवै गई विहाइ ।
नानक किस नो आखीऐ विणु पुछिआ ही लै जाइ ॥३० ॥

(इस संसार में) कोई भी व्यक्ति तृप्ति भर नहीं जी सका (और अपने सारे कार्यों को समाप्त करके (यहाँ से) नहीं जा सका (तात्पर्य यह कि अपने कार्यों को अधूरा ही छोड़कर मनुष्य यहाँ से कूच कर जाता है)। ज्ञानवान् ही सदैव जीवित रहता है जिनकी सुरति (हरि में) लगी रहती है, उन्हीं को प्रतिष्ठा मिलती है। कम खर्च में काम चल जायगा (ऐसा सोचने ही में सारी आयु) समाप्त हो गई। नानक कहता है कि यह बात किससे कही जाय? बिना पूछे ही (यमदूत इस संसार से मनुष्य को) ले जाते हैं (और उसके अधूरे कार्य वैसे ही पड़े रह जाते हैं)॥ ३० ॥

[३१]

दोसु न देअहु राइ नो मति चलै जाँ बुढा होवै ।
गलाँ करे घणेरीआ ताँ अंन्हे पवणा खाती टोवै ॥३१॥

राजा (धनी व्यक्ति) को दोष नहीं देना चाहिए, जब वह बूढ़ा होता है, तो उसकी बुद्धि चली जाती है। अंधा व्यक्ति बातें तो बहुत करता है किन्तु गिरता है गड्ढे ही में ॥३१॥

[३२]

पूरे का कीआ सभ किछु पूरा घटि वधि किछु नाही ॥
नानक गुरमुखि ऐसा जाणै पूरे मांहि समांही ॥३२॥

पूर्ण पुरुष (हरी का) किया हुआ सब कुछ पूर्ण होता है उसमें (कुछ) घट बढ़ नहीं होता। हे नानक! गुरु की शिक्षा द्वारा जो व्यक्ति (उस पूर्ण पुरुष को) इस प्रकार जानता है वह पूर्ण में ही समा जाता है ॥ ३२ ॥

सात वर्ष की आयु में वे पढ़ने के लिए गोपाल अध्यापक के पास भेजे गए। एक दिन वे पढ़ाई से विरक्त होकर अन्तर्मुख होकर आत्मचिन्तन में निमग्न थे। अध्यापक जी ने पूछा 'पढ़ क्यों नहीं रहे हो?' गुरु नानक का उत्तर था 'क्या आप मुझे पढ़ा सकते हैं?' इस पर गोपाल अध्यापक ने कहा 'मैं सारी विद्याएँ और वेद-शास्त्र जानता हूँ।' गुरु नानक देव ने 'मुझे तो सांसारिक पढ़ाई की अपेक्षा परमात्मा की पढ़ाई अधिक आनन्ददायिनी प्रतीत होती है' कह कर निम्नलिखित वाणी का उच्चारण किया—

जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु।
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु।।
लिखु नामु सालाह लिखु अंतु न पारावारु।।१।।६।।
(नानक-वाणी सिरी रागु (सबदु ६)

अर्थात् मोह को जलाकर (उसे) घिस कर स्याही बनाओ, बुद्धि को ही श्रेष्ठ कागज बनाओ और चित्त को लेखक। गुरु से पूछ कर विचारपूर्वक लिखो। नाम लिखो (नाम की) स्तुति लिखो और (साथ ही यह भी) लिखो (कि उस परमात्मा का) न तो अन्त है और न सीमा है।

इस पर अध्यापक जी आश्चर्यान्वित हो गए और उन्होंने बालक नानक को पहुँचा हुआ फकीर समझ कर यह कहा 'तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।'

इसके पश्चात् गुरु नानक ने स्कूल छोड़ दिया। वे अपना अधिकांश समय एकान्त चिन्तन, ध्यान एवं सत्संग में व्यतीत करने लगे। गुरु नानक से सम्बन्धित सभी जन्मसाखियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि उन्होंने विभिन्न सम्प्रदाय के साधु-महात्माओं से सत्संग किया। उनमें से बहुत से ऐसे थे जो धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि गुरु नानक देव ने फारसी का भी अध्ययन किया था। उनकी वाणी में कुछ पद ऐसे हैं जिनमें फारसी भाषा का आधिक्य है। यथा—

यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बेऐब परवदगार।।१।।
दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी।।१।।रहाउ।।
(अर्थ के लिए देखिए रागु तिलंग (सबद) पद १)

गुरु नानक की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति एवं विरक्ति से उनके पिता कालू चिन्तित रहा करते थे। नानक जी को विक्षिप्त समझ कर बाप जी ने उन्हें भैंस चराने का काम सौंपा। एक दिन ऐसा हुआ कि गुरु नानक देव भैंस चराते चराते योगनिद्रा में निमग्न हो गए। भैंसें एक किसान के खेत में घुस गईं और उन्होंने उसकी खेती चर ली। किसान ने इसका उलाहना दिया। किन्तु जब उस किसान का खेत देखा गया तो सभी आश्चर्य में पड़ गये कि उसकी फसल का एक भी पौधा नहीं चरा गया था।

बालक नानक की यह दशा देख कर उनके पिता जी ने कहा 'बेटा खेती की सँभाल कर, घर पर कर तैयार है।' इस पर उन्होंने यह उत्तर दिया—

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु।
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु।।

भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु ॥१॥२॥

सोरठ रागु

(अर्थ के लिए, देखिए, रागु सोरठि सबद ४)

इस पर उनके पिता जी ने कहा "बेटा यदि खेती नहीं करते तो दुकानदारी ही करो।" इस पर नानक देव जी का यह उत्तर था—

हाणु हटु करि आरजा सचु नामु करि वथु।
सुरति सोच करि भांडसाल तिसु विचि तिस नो रखु॥
वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु॥२॥

सोरठ रागु।

(अर्थ के लिए देखिए, रागु सोरठि सबद २)

नानक की बात को सुनकर कालू जी ने कहा 'बेटा यदि तुम्हारा मन खेती और दुकानदारी में नहीं लगता तो सौदागरी अथवा नौकरी कर।" नानक देव जी ने तुरन्त उत्तर दिया—

सुणि सासत सउदागरी सतु घोड़े लै चलु।
खरचु बंनु चंगिआईआ मतु मन जाणहि कलु।
निरंकार कै देसि जाहि ता सुखि लहहि महलु॥३॥
लाइ चितु करि चाकरी मंनि नामु करि कमु।
बंनु बदीआ करि धावणी ता को आखै धंनु॥
नानक वेखै नदरि करि चड़ै चवगण वंनु॥४॥२॥

सोरठि

(अर्थ के लिए देखिए, रागु सोरठि सबद २)

९ वर्ष की आयु में उनके यज्ञोपवीत संस्कार के लिए पुरोहित हरदयाल बुलाए गए। जिस समय पुरोहित जी जनेऊ पहनाने लगे उस समय नानक जी ने कहा—

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु॥
ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ॥

(वार आसा महला १)

अर्थात् "दया कपास हो, संतोष सूत हो, संयम गाँठ हो और (उस जनेऊ) की बट सत्य ही पूरन हो। यही जीव के लिए (आध्यात्मिक) जनेऊ है। हे पाण्डेय (पंडित) यदि इस प्रकार का जनेऊ तुम्हारे पास हो तो मेरे गले में पहना दो। यह जनेऊ न तो टूटता है न इसमें मैल लगती है न यह जलता है और न यह खोता ही है।"

किसी काम में गुरु नानक का मन न लगता हुआ देखकर उनके माता-पिता चिन्तित हुए। उनकी सांसारिक उदासीनता और विरक्ति देखकर उन लोगों ने यह समझा कि वे रोगी हैं। एक दिन एक निपुण वैद्य को बुलाकर गुरु नानक देव की नाड़ी दिखाई। वैद्य ने नाड़ी देख कर उनके रोग का पता लगाना चाहा, किन्तु शरीर में कोई रोग हो तब तो पता चले? वैद्य के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। वह मर्ज का पता न लगा सका। इस पर गुरु नानक देव जी ने कहा—

वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह।
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि॥

(वार मलार महला १)

सन् १४८९ ई० में उनका विवाह बटाला निवासी मूला की कन्या सुलक्खनी से हुआ। उनके वैवाहिक जीवन के संबंध में बहुत कम जानकारी है। २८ वर्ष की आयु में उनके बड़े पुत्र श्रीचंद का जन्म हुआ। ३१ वर्ष की आयु में उनके द्वितीय पुत्र लक्ष्मीचंद अथवा लक्ष्मीदास उत्पन्न हुए।

गुरु नानक के पिता कालू ने उन्हें एक एक करके कई कार्यों में लगाना चाहा, किन्तु उनके सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हुए। घोड़े के व्यापार के निमित्त दिए हुए रुपया को गुरु नानक देव ने साधु-सेवा में लगा दिया। पूछने पर उन्होंने अपने पिता जी से कहा कि यही सच्चा व्यापार है। गुरु नानक देव की इस विरक्ति से ऊब कर, उनके बहनोई जयराम (उनकी बड़ी बहिन नानकी के पति) ने उन्हें अपने पास सुल्तानपुर में बुला लिया। नवम्बर १५०४ ई० से अक्टूबर १५०७ ई० तक वे सुल्तानपुर में ही रहे। अपने बहनोई जयराम के प्रयास से वे सुल्तानपुर के गवर्नर दौलत खाँ के यहाँ मोदी रख लिए गए। उन्होंने अपना कार्य अत्यन्त ईमानदारी से पूरा किया। वहाँ की जनता तथा वहाँ के शासक दौलतखाँ नानक जी की ईमानदारी, कार्य-पटुता से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए। अपनी आमदनी का अधिकांश भाग वे गरीबों और साधुओं को दे देते थे। वे समस्त रात्रि परमात्मा के चिन्तन में व्यतीत करते थे। तलवंडी से आ कर मरदाना उनका सेवक हो गया। वह भी उनके साथ रहने लगा। मरदाना रबाब बजाने में अत्यन्त निपुण था। गुरु नानक जब विचार-सागर में डूब जाते तो कहते मरदाना अपनी रबाब तो उठा। मरदाना रबाब उठा कर बजाने लगता और गुरु नानक देव के हृदयोद्गार दिव्य संगीत-लहरी में प्रवाहित होने लगते। अद्भुत समाँ बँध जाता। जो कोई भी इस दिव्य संगीत को सुनता वही आनन्द-विभोर हो जाता और अपने आप को विस्मृत होकर स्वर्गीय जगत् में विचरण करने लगता। जिस प्रकार कस्तूरी की सुगंधि चारों ओर फैल जाती है उसी प्रकार गुरु नानक देव की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी।

एक दिन एक साधु ने आकर कहा "मोदी जी सीधा तौल दीजिए।" गुरु नानक देव तराजू लेकर सीधा तौलने लगे। जब बारह बार तौल चुके और तेरह की बारी आई तो वे "तेरा तेरा" कहते हुए गंभीर ध्यान में निमग्न हो गए। सीधा तौलते जाते और "तेरा तेरा" कहते जाते। पता नहीं इस वृत्ति में कितने मन तौल गए। पर उनके भण्डार में कमी नहीं हुई, वृद्धि ही हुई। उनकी इस वृत्ति की सामाजिकों ने शिकायत की कि नानक तो दौलतखाँ का भण्डार ही लुटा रहे हैं। किन्तु तौला जाने पर सब सामान बढ़ कर निकला। इस प्रकार यह सच्चे रूप में देने का चमत्कार था। सभी आश्चर्य में पड़ गए।

गुरु नानक देव नित्य प्रातःकाल वेईं नदी में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन वे ब्राह्ममुहूर्त में एक सेवक के साथ स्नान करने गए। वे तीन दिन तक अदृश्य रहे। नदी में जाल डाले गए, बहुत खोज की गई। किन्तु उनका पता न चला। सभी लोगों को विश्वास हो गया कि गुरु नानक नदी में डूब कर मर गए। जब यह बात उनकी बहिन नानकी से बताई गई तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक विश्वासभरी वाणी में कहा "मेरा भाई डूबने वाला नहीं। वह तो दूसरों को तारने वाला है। यदि वह डूबा है तो संसार को तारने के लिए ही।" कहते हैं तो गुरु नानक देव वेईं नदी में डूब कर के आत्मस्वरूप में लीन होकर 'सचखण्ड' में पहुँच गए थे। 'सचखण्ड' में पहुँच कर गुरु नानक देव ने दो वस्तुएँ प्राप्त की थीं—'नाम' और 'दीक्षा'। कहते हैं कि सचखण्ड की स्तुति गुरु नानक देव ने—

"सो दर केहा सो घर केहा जितु बहि सरब समाले" में की थी। (देखिए जपु जी २७वीं पउड़ी तथा रागु आसा शबद १)

राजा, रंक, फकीर, साधु, ठग, वेश्या, सूफी, पापी सभी ने उनके चरणों में अपना मस्तक झुकाया और उन्हें अपना सद्गुरु समझा। गुरु नानक की दी हुई शिक्षाओं और उपदेशों को लोगों ने अपने हृदय में बसाया। उन्होंने लोगों को वही शिक्षाएँ दीं, जो उनके पवित्र अन्तःकरण में परमात्मा की ओर से आईं।

गुरु नानक के व्यक्तित्व में पैगम्बर और दार्शनिक तत्त्वों का अपूर्व सम्मिश्रण था। उन्होंने जो कुछ भी अनुभव किया, उसे दृढ़ और ओजस्वी वाणी में व्यक्त किया। सत्य के निर्भय प्रचारक में वे हिमालय की भाँति अडिग रहे। बड़ी बड़ी तलवारों और तोपों का भय उन्हें सत्य मार्ग से विचलित नहीं कर सका। यह गुण तो उनके पैगम्बर होने का ज्वलन्त प्रमाण है। परन्तु इसके साथ ही वे परमात्मा के प्रेम में सारंग की भाँति व्याकुल थे। वे विराट् प्रकृति को देख कर परमात्मा के प्रेम में निमग्न हो जाते थे। वे 'गगनमै थाल रवि चन्द दीपक बने' के माध्यम से विराट् और अनन्त पुरुष की आरती में अपनी सुध-बुध खो देते थे। यही उनकी महान् दार्शनिकता है।

गुरु नानक देव पूर्ण योगी और आदर्श गृहस्थ थे। मानवता की आर्त पुकार सुनकर, उन्होंने अपना घर-बार, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति का तृण की भाँति त्याग कर दिया। पूर्ण योगी की भाँति वे सर्वदा परमात्मा में निमग्न रहते थे और सभी आसक्तियों का अन्तर्याम कर चुके थे। वे सहज योगी थे। वे त्याग का भी त्याग कर चुके थे। उन्हें जब यह अनुभव हो गया कि उनका विचरण वाला कार्य समाप्त हो चुका है, तो वे तुरन्त 'गृहस्थ योगी' की भाँति जीवन व्यतीत करने लगे। संसार की दृष्टि में वे दो पुत्रों के पिता थे, किन्तु वास्तव में वे समस्त मानव-समाज के पिता थे। वे मानव जाति के उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। वे लोगों की शारीरिक और आध्यात्मिक भूख दोनों ही मिटाते थे। उन्होंने लोगों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की क्षुधाओं की निवृत्ति की। उन्होंने अपने जीवन के द्वारा 'कथनी और करनी' को एक किया।

वे क्रान्तिकारी और दूरदर्शी समाज-सुधारक थे। उन्होंने समाज के उन रोगों का निदान किया, जो उसे खाये जा रहे थे। निदान मात्र करने से ही सन्तुष्ट न होकर, उन्होंने उसकी औषधि भी दी। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का जिस प्रकार समाधान किया, वे उत्तम, सभ्य और सुसंस्कृत देशों के आदर्शों की कसौटी पर खरी उतरती हैं। गुरु नानक देव ने 'परमात्मा से भय रखने वालों का प्रजातन्त्रवाद' प्रतिष्ठापित किया, जिसके अनुसार सभी लोगों को समान भाव से रहने का अधिकार है। जाति, धन, वर्ण आदि में कोई भी भेद न हो। भ्रातृभाव तथा समता समाज के परम आदर्श हैं। गुरु नानक द्वारा उनके शिष्यों की बसाई गई करतारपुर की बस्ती इस बात का आदर्श उदाहरण थी। उसमें सभी लोग समान रूप से रहते थे। कोई अवतार अथवा विशिष्ट वर्ग नहीं था। इतनी प्रसिद्धि पाने पर भी गुरु नानक देव और उनकी सहधर्मिणी पर्याप्त कार्य में रत रहती थीं। सत्तर वर्ष की आयु में भी गुरु नानक देव शारीरिक परिश्रम करते थे। किसी भी स्थान में जाति वर्गभेद नहीं था।

गुरु नानकदेव सहज और प्रतिभासम्पन्न कवि थे। नौ वर्ष की अल्पायु में ही वे असाधारण कविता कर लेते थे। उन कविताओं में अपार आध्यात्मिक भावना सन्निहित थी। वे परमात्मा, प्रकृति एवं मानव-प्रेम के ही अपूर्व कवि थे। उनके काव्य का पर्यवसान परमात्मा में होता था।

वे अपूर्व संगीतज्ञ थे। उनकी स्वर-लहरी में अपूर्व माधुर्य एवं आकर्षण था। उनके संगीत का प्रभाव पशु, पक्षी और मनुष्यों तीनों पर पड़ता था। घोर से घोर अत्याचारी भी

उनकी मनन-शक्ति, क्रिया-शक्ति और सहन-शक्ति अद्वितीय थी। उस युग में कदाचित् ही किसी धर्म-सुधारक ने इतनी लम्बी यात्राएँ करके अपने धर्म का प्रचार किया हो।

गुरु नानक देव में विभिन्न देशों की भाषाओं के समझने की अपूर्व शक्ति थी। इस दृष्टि से उनकी ग्रहण-शक्ति अपार थी। जिस देश में वे गए, उसी देश की भाषा में उन्होंने अपनी बातें कहीं। यदि वे उस देश की भाषा पर इतना अधिकार न रखते होते, तो उनकी शिक्षाएँ इतनी लोकप्रिय न होतीं।

गुरु नानक के व्यक्तित्व में प्रत्युत्पन्नमति एवं विनोद भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। हरिद्वार में गंगा में हिलकर पश्चिम की ओर जल देना, काबा में मस्जिद की ओर पैर फैला कर विश्राम करना और जगन्नाथ जी की आरती से पृथक् होकर विराट् पुरुष की आरती में रत होना ("गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने") आदि घटनाएँ इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

गुरु नानक जी की शिक्षा का मूल निचोड़ यही है कि परमात्मा एक, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सत्य, कर्त्ता, निर्भय, निर्वैर, अयोनि और स्वयंभू है। वह भक्त-वत्सल, घट घट-व्यापी, दाता, रक्षक, सूत्रधार, सर्वनियन्ता है। वह सर्वत्र व्याप्त है। उसकी प्राप्ति के लिए रागात्मिका भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। मूर्तिपूजा आदि निरर्थक हैं। बाह्य साधनों से परमात्मा नहीं प्राप्त होता। आन्तरिक साधन ही उसकी प्राप्ति के उपाय हैं। गुरु-कृपा, परमात्म-कृपा एवं शुभ कर्मों के आचरण से परमात्मा की प्राप्ति होती है। नाम जप परमात्म-प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है और वह नाम गुरु के द्वारा प्राप्त होता है। व्यावहारिक जगत् में 'नाम, दान एवं स्नान' शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धि के लिए आवश्यक है। इस प्रकार गुरु नानक पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं शताब्दी की अमर विभूति हैं। तभी तो गुरु अर्जुन देव ने उनके सम्बन्ध में कहा था— वे परमात्मा की प्रतिमूर्ति थे। बल्कि परमात्मा ही थे।

परिशिष्ट (ख)

नानक-वाणी के कुछ विशिष्ट शब्द

गुरु नानक ने अपनी वाणी में कुछ ऐसे शब्दों के प्रयोग किए हैं जिनकी जानकारी उनके वास्तविक अभिप्राय के समझने के लिए आवश्यक है। इनमें से कतिपय शब्द चुन कर नीचे दिए जा रहे हैं—

ओअंकार :—इसका अभिप्राय ॐ से है। ॐ वेदों और उपनिषदों का सार तत्त्व है। यह ब्रह्म का प्रतीक है। समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी में मानी गई है। भूत, भविष्य, वर्तमान और इन तीनों से परे त्रिकालातीत तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ॐ के ही स्वरूप हैं। माण्डूक्योपनिषद् में इसकी विशद व्याख्या की गई है।

गुरु नानक देव भी ओंकार से ही ब्रह्मादिक की उत्पत्ति मानते हैं—

'ओअंकारि ब्रहमा उतपति। ओअंकारु कीआ जिनि चिति'
(रामकली दखणी ओअंकार)

गुरु नानक की एक विशेष वाणी का नाम भी 'ओअंकार' है, जो रामकली राग में है। यह 'पट्टी' के ढंग पर लिखी गई है। इसके अन्त में 'पट्टी' शब्द भी आया है।

अजपा जाप :—अजपा जप बिना किसी प्रयास का स्वाभाविक जप है। इस जप में बाह्य-साधना का सहारा नहीं लिया जाता। बाह्य साधना का अभिप्राय यह है कि जिह्वा से नामोच्चारण करना, जप-गणना के लिए माला अथवा अँगुलियों का सहारा लेना। बौद्ध सिद्धों की साधना-पद्धति में 'अजपा जप' की साधना पर अधिक बल मिलता है। बौद्ध-सिद्ध अपनी साधना-पद्धति को दृढ़ करने के लिए श्वास प्रश्वास की गति नियमित करने के लिए '[illegible]' प्रज्वलित करते थे। इससे 'श्वास प्रश्वास' में सहज भाव से जप होने लगता था। इसी से अजपा जप को 'सहज जप' भी कहा जाता है। वज्रयानी साधक 'अजपा जप' को 'वज्र जाप' कहते थे। नाथपंथी साधकों ने इस जप को 'अजपा जप' का नाम दिया। सभी संत कवियों ने इस जप की महत्ता स्वीकार की है। इस जप से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार एकदम शान्त हो जाते हैं और जप की अखण्ड धारा अपने आप प्रवाहित होने लगती है। गुरु नानक देव ने 'अजपा जप' का स्थान स्थान पर वर्णन किया है। यथा—

अजपा जापु जपै मुखि नाम
(बिलावल महला १ थिती ११वीं पउड़ी)

तथा "अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ।"
(मलार की वार महला १)

अनहद नाद :—जो अनहद नाद शून्य के अन्तराल और निर्विकल्पावस्था में ध्वनित हो रहा है, उसी को शरीर में स्थित कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करके अपने अन्तर में सुनना ही अनहद नाद या 'अनाहत नाद' है। इस अनाहत नाद के श्रवण से मन स्थिर और चित्त शान्त हो जाता है। इस अनाहत नाद के श्रवण से मन अपने 'मूल स्थान' में स्थित हो जाता है, इसी से उसकी चंचलता शान्त हो जाती है।

करना। इससे नेत्रों की शक्ति बढ़ती है। इस क्रिया से नेत्र के समस्त विकार दूर होते हैं और सिद्धि प्राप्त होती है।

(६) कपालभाति —लुहार की धौंकनी के समान श्वास को जोर से खींच कर शीघ्रता से बाहर निकालना। इससे नाड़ियों की शुद्धि होती है।

खसम —खसम शब्द का प्रयोग कदाचित् सिद्ध साहित्य में सर्वप्रथम मिलता है और इसका अर्थ इस प्रकार है (ख=आकाश, शून्य=सम, समान) अर्थात् शून्यवत। सिद्धों ने 'खसम' शब्द का प्रयोग मन के लिए किया है, जिसका अर्थ शून्यवत, निर्लिप्त एवं व्यापक मन से है। मन की यह स्थिति तब होती है, जब वह नितान्त निरालम्बित हो जाय। योगियों ने इस प्रकार के मन को 'गगनोपम' एवं 'शून्यवत' कहा है। नाथपंथियों ने 'खसम' शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

संत साहित्य में 'खसम' शब्द का प्रयोग बराबर मिलने लगता है। किन्तु इसका प्रयोग भिन्न अर्थ में है। 'खसम' अरबी शब्द है और इसका अर्थ 'पति' होता है। गुरु नानक ने 'खसम' का प्रयोग पति परमात्मा के लिए ही किया है। यथा—

नानक कहीए खसम का सबहु उतरै बेड़।
(रामकली दखणी ओअंकार)

खसमु विसारहि ते कमजाति।
नानक नावै बाझु सनाति।।४।।२।।
(रागु आसा महला १ चउपदे पद २)

खसमै भावै सा करे मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी।
ता दरगह पैधा जाइसी।।
(आसा की वार महला १)

खसमु विसारि खुआरी कीनी धृगु जीवणु नही रहणा।।
(रागु मलार, चउपदे महला १ पद १)

खसमु विसारि कीए रस भोग।
तां तनि उठि खलोए रोग।।
(मलार महला १ पद २)

गिआन खंड (ज्ञान खण्ड) —जपु जी में गुरु नानक देव ने सृष्टि की पाँच भूमिकाएँ बतलाई हैं—धर्म खंड, ज्ञान खंड, सरम खण्ड (लज्जा खण्ड), करम खण्ड (कृपा खण्ड) तथा सच खंड। 'ज्ञान खण्ड' इन पंच भूमिकाओं में से दूसरी भूमिका है। ज्ञान खण्ड की भूमिका में स्थित होने पर प्रभु की शक्तियों का ज्ञान उत्पन्न होता है। यह भौतिक खण्ड नहीं, मानसिक अवस्था है। ज्ञान खंड में कितने ही वायु देव, वरुण देव (जल देवता), अग्नि देव, इन्द्र और महेश हैं। न जाने कितने ब्रह्मा हैं जो अनेक सृष्टि का निर्माण करते रहते हैं तथा नाना रूप-रंग के वेश उत्पन्न करते हैं। इस ज्ञान खण्ड में अनेक कर्मभूमियाँ, अनन्त सुमेरु पर्वत, ध्रुव, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य स्थित हैं। अनन्त मण्डल और अनन्त देश इसमें विराजमान हैं। न जाने कितने सिद्ध, बुद्ध, नाथ, देवी, देवता, दानव, मुनि, रत्न, खानियाँ— (उद्भिज, अण्डज, जेरज, स्वेदज) कितने प्रकार की वाणियाँ, कितने ही राजा, बादशाह उस ज्ञान खंड की भूमिका में स्थित हैं। ज्ञान खंड की सृष्टि का न अन्त है और न सीमा। यह

(४) गुरु की शिक्षा अथवा उपदेश के लिए भी 'सबद' का प्रयोग किया गया है—

जिस कउ नदरि करे गुरु पूरा।
सबदि मिलाए गुरमति सूरा ॥५॥५॥२२॥
(मारू सोलहे महला १)

(५) श्री गुरु ग्रंथ साहिब अथवा गुरु नानक की वाणी में प्रयुक्त आदि के पदों को भी 'सबद' कहा जाता है जैसे 'मारू महला १ सबद'

(६) कहीं कहीं इसका प्रयोग 'हुकम' के अर्थ में भी हुआ है

(७) बहस चर्चा गोष्ठी—

सबदै का निबेड़ा सुणि तू अउधू बिनु नावै जोगु न होई ॥
(सिध गोसटि रामकली)

(८) धर्म—

जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं त ब्राहमणह।
(रागु असावरी मल्हार सहसकृती महला १)

अर्थात् "योगी का धर्म क्या है? —"ज्ञान धर्म है"।

इस प्रकार 'सबद' का प्रयोग गुरु नानक देव ने अनेक अर्थों में किया है।

सरम खंड —सृष्टि रचना के पाँच खण्ड हैं— धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम खण्ड, 'करम खण्ड' और सच खंड। 'सरम खण्ड' भूमिका की दृष्टि से तीसरी भूमिका है। इसका तात्पर्य है—'लज्जा अथवा प्रतिष्ठा के प्रति ध्यान'। उस भूमिका में वाणी द्वारा वस्तुओं की अनुपम रचना होती है। उसकी बातें वर्णनातीत हैं। उसी भूमिका में स्मृति, मति, मन और बुद्धि की रचना होती है। देवताओं एवं सिद्धों की स्मृति की भी रचना उसी मण्डल में होती है।

सहज :—'सहज' शब्द की व्युत्पत्ति 'सह जायते इति सहज' के आधार पर की जाती है अर्थात् वे गुण जो जन्म के साथ उत्पन्न हों और स्वाभाविक रूप में विराजमान हों। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह शब्द चीनी भाषा के 'ताओ' का संस्कृत रूपान्तर है और ताओ चीन देश के एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय को सूचित करता है। चीन के ताओ धर्म के प्रमुख प्रचारक लाओत्से नाम के एक महापुरुष थे जो लगभग महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। कहते हैं कि ईसा की सातवीं शताब्दी के आसपास असम के किसी राजा ने इस धर्म के एक ग्रंथ का चीनी से संस्कृत अनुवाद कराया था। यह भी प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष के पश्चिम प्रान्त की ओर कोई 'भग' अथवा 'भाग' नाम का इस धर्म का एक अनुयायी भी आया था जिसने उस पर अपना प्रभाव डाला। ताओ शब्द की व्याख्या साधारणतः स्वाभाविक प्रवृत्तिमूलक मार्ग से की जाती है जो सिद्धों की सहज विषयक धारणा के भी अनुकूल है। कुछ लोगों ने हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ विष्णुपुराण के अन्तर्गत भी 'सहज' शब्द का लगभग इसी रूप में अस्तित्व पाया है और उसे रूपमय ४ [illegible] की रचना है। (कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार प्रयाग संवत् २०११ वि. संस्करण पृ० २८७)। सिद्धों ने इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक किया है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग 'स्वाभाविक' एवं 'इन्द्रियातीत स्थिति' दोनों ही अर्थों में किया है। सिद्ध लोग 'सहज' शब्द के प्रयोग में बौद्धों के शून्य शब्द से प्रभावित ज्ञात होते हैं।

नाथपंथियों में 'सहज' शब्द का प्रयोग कम पाया जाता है। कदाचित् इसका प्रधान कारण है कि वे लोग 'सहज साधना' की अपेक्षा 'शून्यवाद' के अधिक निकट थे।

गुरु नानक देव ने 'सहज' शब्द का प्रयोग दोनों ही अर्थों में किया है—(१) स्वाभाविक तथा (२) निर्वाण पद। गुरु नानक के अनुसार सहजावस्था, मोक्ष पद, जीवन्मुक्ति-अवस्था, चतुर्थ पद, तुरीयपद, तुरीयावस्था, निर्वाण पद, तत्त्व ज्ञान, ब्रह्मज्ञान और राजयोग सब समस्त एक ही हैं। इनके नामों में विभेद है। पर इन सब की आन्तरिक अनुभूति एक ही है।

'सहज' शब्द के स्वाभाविक अर्थ के प्रमाण में गुरु नानक की निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत की जाती हैं—

सहजि संतोखि सीगारिआ मिठा बोलणी।
(सिरी रागु सबद १०)

बिनु गुर रामु रिदै हरि रासि।
सहजि सुभाइ मिले साबासि।।२।।११।।
(गउड़ी सबद महला १)

सहजि सुभाइ सदा सहु मिलै दरसनि रूपि अपारु।।२।।२।।२।।१९।।
(गउड़ी सबद महला १)

सहजि सुभाइ अपणा भाणिआ।।२।।४।।२७।।
(आसा महला १)

'सहज' शब्द के 'तुरीय' अथवा 'निर्वाण पद' की प्राप्ति के अर्थ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण में दी जाती हैं—

पूरा सतिगुरु सहजि समावै।।५।।५।।
(प्रभाती बिभास असटपदीआ महला १)

सहजे सहजु मिलै सुखु पाईऐ दरगह पैधा जाए।।४।।७।।
(प्रभाती बिभास असटपदीआ महला १)

सहज मिलि रहे अमरा पदु पाई।।१।।१।।
निर्मम महला १ पद २)

गुरु नानक जी ने स्थान स्थान पर इस शब्द का प्रयोग 'सहज समाधि' के लिए भी किया है। यथा—

सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवां हरि गुन गाई।।६।।१।।
(रागु मारू असटपदीआ महला १ पद १)

साकत—साकत की उत्पत्ति संस्कृत के 'शाक्त' से मानी जाती है। इसकी उत्पत्ति अरबी के 'साकित' से भी मानी जाती है जिसका अर्थ होता है गिरा हुआ, 'बुरा'। संस्कृत में शक्ति के उपासक को शाक्त कहते हैं किन्तु सन्त कवियों ने 'शाक्त' का प्रयोग रूढ़ि अर्थ में किया है जिसका अभिप्राय 'माया का उपासक' होता है। अर्थात् वह व्यक्ति जो परमात्मा को छोड़ कर माया की उपासना करता है। कबीर ने भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। गुरु नानक देव ने 'साकत' शब्द का प्रयोग का अर्थ 'विषयासक्त प्राणी' अथवा मायासक्त जीव लिया है।

उदाहरणार्थ—

साकत माइआ कउ बहु धावहि।
नामु विसारि कहा सुखु पावहि।।

गुरमति सिद्धान्त में उपर्युक्त सिद्ध गोष्ठी के पदों में शून्य की व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की है—

वह अटल निश्चल पदवी कैसी है? उसमें कोई फुरना नहीं फुरती। स्फुरण के कारण ही सारे बन्धन, भय, वैर तथा विकार होते हैं। उस अफुर अवस्था में जिसमें आशा, मनसा, तृष्णा, वैर, मोह आदि नहीं होते, शून्यावस्था कहते हैं। शून्यावस्था तीनों गुणों की प्रवृत्तियों से परे की अवस्था है। इसे चौथी अवस्था भी कहते हैं।

अतः गुरु नानक देव का 'शून्य' उपनिषदों का 'ब्रह्म' गीतियों का 'परमात्मा' वेदों के ॐ का ही प्रतीक है। उनका शून्य वह शून्य है जो सर्वभूतान्तरात्मा है, घट-घट-व्यापी है, निरंकार ज्योति के रूप में सभी के भीतर व्याप्त है। वह निरंकार ज्योति वह शून्य ब्रह्म जड़-चेतन सभी में रमा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य की आत्मिक वृत्ति उसका निवास-स्थान है। इसी शून्य का साक्षात्कार करना मनुष्य जीवन की परम सिद्धि और परम पुरुषार्थ है।

गुरु नानक देव ने इस 'सुन्न' को स्थान स्थान पर 'सुन्न समाधि' भी कहा है। उदाहरणार्थ—

सतिगुर ते पाए वीचारा। सुन्न समाधि सचे घर बारा ॥१७॥५॥१७॥
(मारू सोलहे महला १)

कहीं कहीं इसका प्रयोग 'असंप्रज्ञात समाधि' के लिए भी किया गया है। जैसे

सुन्न समाधि सहज मनु राता।
तजि हउ लोभा एको जाता ॥८॥१॥
(रामकली महला १ असटपदीआ)

सुघड़ी —गुरु नानक ने अपनी वाणी में कुछ ऐसे सत्यार्थ शब्दों के प्रयोग किए हैं जो जीवात्मा पर घटित होते हैं। सुचजी भी उन्हीं शब्दों में से एक है। सुचजी का शाब्दिक अर्थ होता है—"सुन्दर आचार वाली" अर्थात् वह स्त्री जिसके आचार सुन्दर हों जिससे पति प्रसन्न हो। 'सुचजी' 'कुचजी' का विपरीत शब्द है। 'सुचजी' का सत्यार्थ ऐसी जीवात्मा से है जिसने अनन्य भाव से अपने को पति-परमात्मा में समर्पित कर दिया हो और अपनी मर्जी को परमात्मा की मर्जी में नियोजित कर दिया हो। (देखिए, रागु सूही महला १ सुचजी)

सुरति —'सुरति' शब्द 'स्मृति' से निकला है। कुछ विद्वान् इसका संबंध 'स्रोत' से जोड़ते हैं। नाम की निरन्तर धारा का द्योतक मानते हैं। किन्तु 'स्रोत' के अर्थ में इसका प्रयोग कहीं नहीं मिलता है। तत्त्व का पुनः पुनः अनुसन्धान ही सुरति है। 'स्मृति' में ज्ञान की प्रधानता परिलक्षित होती है किन्तु 'सुरति' में 'रति' अथवा 'प्रेम' की भी प्रधानता हो जाती है। सन्त-साहित्य में सुरति शब्द का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है।

गुरु नानक देव ने 'सुरति' शब्द के प्रयोग कई अर्थों में किए हैं। सर्वप्रथम 'सुरति' का प्रयोग 'प्रेमपूर्ण स्मरण' के रूप में किया गया है, जैसे

सुरति होवै पति ऊगवै गुर बचनी भउ खाइ ॥४॥१॥
(सिरी रागु सबद महला १)

अर्थात् "जब (साधक) गुरु के वचनों द्वारा (परमात्मा से) भय खाता है तो उसे 'प्रेमपूर्ण स्मृति' (सुरति) प्राप्त होती है (और परमात्मा के यहाँ प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।)"

'सुरति' शब्द का प्रयोग गुरु नानक ने ज्ञान अथवा समझ के अर्थ में भी किया है।

५ धन-संपत्ति सम्बन्धी अहंकार
६ परिवार सम्बन्धी अहंकार
७ रूप-यौवन सम्बन्धी अहंकार।

हुक्म —'हुक्म' अरबी का शब्द है। जिसका अर्थ 'आज्ञा' होता है। गुरु नानक की वाणी में इस शब्द का बहुत बड़ा महत्त्व है। 'हुक्म' का अर्थ डॉ० शेरसिंह ने ईश्वरीय इच्छा (Divino Will) माना है (फिलासफी आफ सिक्खिज्म शेरसिंह पृष्ठ १८२) किन्तु डॉ० मोहनसिंह 'हुक्म' का अर्थ सृष्टि-विधान (Universal Order) मानते हैं (पंजाबी भाखा विगिआन अते गुरमति गिआन मोहनसिंह पृष्ठ २९)। गुरु नानक देव जी ने जपु जी में 'हुक्म' को सृष्टि का मूल कारण माना है (देखिए जपु जी २ री पउड़ी)।

गुरु नानक देव ने मारू राग के सोलहवें सोलहे में 'हुक्म' की विशद व्याख्या की है। उन्होंने 'हुक्म' से जीवों की उत्पत्ति मानी है और 'हुक्म' से ही वे फिर उसी में लीन हो जाते हैं।"

कई स्थलों पर 'हुक्म' का प्रयोग 'मनुष्य की आज्ञा' के लिए भी किया गया है यथा—

हुकमु करहि मूरख गावार।।४।।१।।
(रागु बसंतु, सबद महला १)

हुकम-रजाइ — गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी में 'हुकम रजाई' कर्मों की चर्चा की है। 'हुकम रजाई' कर्म वे हैं जो परमात्मा की प्रेरणा, आज्ञा, मर्जी अथवा इच्छा से होते हैं। मेरी ऐसी धारणा है कि यह कर्म सिद्धावस्था का कर्म है। विशुद्ध अन्तःकरण में ही परमात्मा की अनाहतध्वनि सुनाई पड़ती है। आध्यात्मिक कर्मों के सम्पादन में जिसका अन्तःकरण नितान्त पवित्र हो गया है वही परमात्मा की प्रेरणा के वास्तविक रहस्य को समझ सकता है। 'हुकम रजाई' कर्म बन्धन में नहीं डालते बल्कि गुरु की महान् कृपा और परमात्मा की अनुकम्पा से होते हैं।

प्रभु की 'रजा' में अपनी 'इच्छा शक्ति और क्रियाशक्ति' को मिला देना 'हुकम रजाई' कर्म का वास्तविक रहस्य है। भुना हुआ बीज जैसे उग नहीं सकता वैसे ही 'हुकम रजाई' कर्म बन्धन में बांध नहीं सकते। ऐसे कर्मों के हाथ में मुक्ति की कुंजी है। गुरु नानक जी ने अपनी वाणी में इसकी ओर संकेत किया है—

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।
(जपु जी पउड़ी १)

ता कउ बिघनु न लागई चालै हुकमि रजाई।।१।।२ ।।
(रागु आसा महला १ असटपदीआं घरु १)

हुकमि रजाई जो चलै सो पवै खजानै।।४।।२ ।।
(रागु आसा महला १ असटपदीआ घरु १)

हुकमि रजाई साखती दरगह सचु कबूलु।।
(माझ की वार महला १)

सार।"[1] भाई मनीसिंह की साखी में लिखा है कि यह शब्द पंडित व्रजनाथ के प्रति सर्व प्रथम कहा गया था। शिव और कल्लीनाथ के मतानुसार सिरी राग पहला है, किन्तु भरत और हनुमान के मतानुसार 'भैरउ' राग पहला है।

२ माझ —गुरमत संगीत के अनुसार यह पृथक रागिनी है। इसका प्रयोग 'माझ'—देश में होता था। सिरी राग 'मध-माधवी' मल्हार के संयोग से यह रागिनी बनी है। यह अन्य किसी मत के परिवार में प्रयुक्त नहीं है।

३ गउड़ी —गुरमत संगीत के अनुसार यह सिरी राग की रागिनी है। रागार्णव मत के अनुसार 'गौड़' मालव की रागिनी है। सिद्ध-सारस्वत के अनुसार यह दीपक राग की रागिनी है। हनुमान और भरत के मतानुसार यह 'मालकौंस' राग की रागिनी मानी जाती है। जैतश्री आसावरी तथा शुद्ध सोरठ के मेल से 'गौरी' होती है।

परन्तु गुरमत में 'गउड़ी' के मेल गउड़ी-पूरबी गउड़ी-माला गउड़ी-मालवा गउड़ी बैरागणि गउड़ी-गुआरेरी गउड़ी-पूरबी गउड़ी-दीपकी गउड़ी-माझ गउड़ी चेती आदि में विद्यमान हैं। यह बात अन्य मतों में नहीं है।

४ आसा —यह रागिनी गुरमत-संगीत के अनुसार मेघ राग की रागिनी है उदाहरणार्थ — गुन गावहि आसा गुन गुनी।[2] सिरी राग और माझ के सम्मिश्रण और मेघ की छाया से आसा रागिनी बनती है। गुरमत में आसा और आसावरी इकट्ठी लिखी गई हैं। यह आसावरी मेघ के स्पर्श से आसा के साथ मिलती है। सिरी राग की रागिनी आसावरी उस स्थान पर है जहाँ 'आसावरी अथवा सुधंग' या 'सुघ' की सूचना है जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि 'सुघ' और 'आसावरी' मिली हुई हैं। कल्लीनाथ मत के अनुसार आसावरी पंचम की रागिनी है और 'रागार्णव' के अनुसार मल्हार की रागिनी मानी जाती है। आसा और 'आसावरी' का मेल केवल गुरमत संगीत में प्राप्त होता।

५ गूजरी —गुरमत के संगीत के अनुसार यह दीपक की रागिनी है— कामदी अउ गूजरी संग दीपक के थापि।[3] 'भैरउ' और 'रामकली' के सम्मिश्रण से गूजरी बनती है। परन्तु शिवमत और कल्लीनाथ मतों के अनुसार यह भैरव की रागिनी मानी जाती है। सिद्ध-सारस्वत मत में इसे 'मालकोश' के अन्तर्गत माना गया है। रागार्णव के अनुसार यह पंचम की रागिनी है।

६ बिहागड़ा —बिहागड़ा राग में पूर्ण नानक देव का न कोई सबद है न अष्टपदी और न छंत हैं। इस राग में केवल वार मात्र है। अत कुछ विद्वान् बिहागड़ा में इस राग का नानक के शब्दों के लिए महत्ता नहीं देते हैं। किन्तु वार तो है ही। अतएव इसकी भी गणना करना कुछ अनुचित नहीं है।

गुरमत संगीत के अनुसार यह मिश्र राग है। बैराग और गौरी के सम्मिश्रण से बिहागड़ा बनता है। कल्लीनाथ मत के अनुसार यह भैरव की रागिनी है। भरत मत के अनुसार बिहागड़ा दीपक का पुत्र है।

७ वडहंसु —गुरमत के संगीत के अनुसार यह भी मिश्र राग है। सारंग गौसाणी

---

1 नानक-वाणी सिरी राग सबद ६
2 श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
3 श्री गुरु ग्रंथ साहिब पृष्ठ १४३

हुआ धनासरी और जती के सम्मिश्रण से 'बडहंस' बनता है। प्राचीनों के दृष्टान्तानुसार 'बडहंस' और 'मारू' राग ही गाये जाते हैं। परन्तु अन्य मतों में इस प्रकार की कोई बात नहीं है। भरत मत में 'बडहंसु' सिरी राग का पुत्र है। [illegible] मतानुसार यह पंचम की रागिनी है। 'रागार्णव' में मेघ की रागिनी माना है। सुर-ताल-समूह में इसे मालकोश का पुत्र माना गया है।

८ **सोरठि** —यह रागिनी गुरमत संगीत में मेघ राग की रागिनी मानी जाती है। —सोरठि गाड मलारी धुनी।[1] जिसको कामोद, कान्ही, मल्हार के सम्मिश्रण से सोरठि रागिनी बनती है। परन्तु अन्य मतों में सोरठि रागिनी नट-नारायण की रागिनी मानी गई है। 'मान कुतूहल' में कामोद, गूजरी, पंचम, गंधार, भैरवी के सम्मिश्रण से सोरठि रागिनी बनती है। हनुमान मत के अनुसार सोरठि मेघ की रागिनी है।

९ **धनासरी** —यह रागिनी गुरमत संगीत में मालकोश की रागिनी है उदाहरणार्थ —"धनासरी ए थाबउ माहि।"[2] आसावरी और मारवा का सम्मिश्रण भी इस रागिनी में रहता है। किन्तु कल्लीनाथ मत में यह मेघ की रागिनी मानी गई है। सुरताल-समूह में इसे मालकोश की 'बहू' बताया गया है। नाद-विनोद में इसे दीपक की रागिनी माना गया है।

१० **तिलंग** —गुरमत संगीत-शास्त्र के अनुसार इसे हिंडोल की रागिनी माना गया है— तैलंगी देवगंधारि आई।[3] जिसमें रागिनी श्याम, गौरी एवं पूरबी के सम्मिश्रण से बनती है। हिंडोल की छाया भी रहती है। किन्तु सुरताल-समूह में यह मेघ की रागिनी लिखी गई है। कल्लीनाथ मत में इसे नट-नारायण की रागिनी माना गया है।

११ **सूही** —गुरमत संगीत में यह मेघ राग की रागिनी है — ऊच सुहि सरउ पुनि बैनी।[4] भैरव, सिरी राग, कानड़ा, सारंग के सम्मिश्रण से सूही अथवा सूहवी बनती है और मेघ की छाया भी रहती है। सुरताल-समूह में इसे भैरव की बहू माना गया है।

१२ **बिलावलु** —बिलावल को गुरमत-संगीत में भैरव राग का पुत्र माना गया है— ललित बिलावल गावही अपुनी अपुनी भांति। असट पुत्र भैरव के गावहि गाइन पात्र।[5] देवगिरी और गुणकरी के समान से बिलावल होता है। भरत मतानुसार बिलावल को पुत्र ही माना गया है। परन्तु अन्य मतों में बिलावली रागिनी को बिलावल मानते हैं। यह भ्रामक है। भरत मत के अनुसार बिलावली भैरव की वधू है। हनुमान मत में इसे हिंडोल की रागिनी माना गया है।

१३ **रामकली** —गुरमत संगीत के अनुसार यह मिश्र रागिनी है। [illegible] [illegible] और गौरी के सम्मिश्रण से यह बनती है। किन्तु भरत-मत के अनुसार यह

---

१ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३
२ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३
३ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३
४ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३
५ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३

यह 'हिंडोल' की रागिनी है। हनुमान मत में यह 'सिरी राग' की रागिनी मानी जाती है और इसमें 'भैरव', 'विभास' और 'हिंडोल' का सम्मिश्रण तथा 'सिरी राग' की छाया है। 'रागार्णव' के मतानुसार 'रामकली' 'पंचम' की रागिनी है और इसमें 'ललित', 'रेवा' तथा 'भीमपलासी' का मेल है।

नोट :—रामकरी और रामकली तो एक ही हैं। किन्तु 'रामगिरी' एक पृथक रागिनी है। दक्षिणी रामकली केवल गुरमत संगीत में ही है। अन्य मतों में नहीं।

१४ मारू :—गुरमत संगीत में 'मारू राग' 'मालकौंस' का पुत्र माना गया है—'मारू मस्त अंग मेवारा।'[1] टंक, 'इराक', 'भैरवी', 'आसा' के सम्मिश्रण से यह बनता है। अन्य मतों में यह 'सिरी राग' का पुत्र माना गया है।

१५ तुखारी :—इस रागिनी का गुरमत-संगीत की ओर से ही प्रचार हुआ है। भैरव, रामकली और टोडी के संयोग से यह बनी है। अन्य मतों में 'मुखारी', 'कुमारी', 'पुखारी' और 'तुमारी' आदि तो हैं किन्तु 'तुखारी' उनसे सर्वथा भिन्न है।

१६ भैरउ :—गुरमत-संगीत में यह गिनती के लिए पहला राग है—'प्रथम राग भैरउ वै करही।'[2] इस प्रकार द्वितीय राग 'मालकौशक' है—"दुतीआ मालकउसक आलापहि।"[3] तीसरा 'हिंडोल', चौथा 'दीपक', पाँचवाँ 'सिरी राग' और छठा 'मेघराग' है—"सप्टम मेघ राग वै गावहि।"[4] उपर्युक्त छः रागों में से 'सिरी राग' और 'भैरउ' ही श्री गुरु ग्रंथ साहिब में प्रयुक्त हुए हैं। शेष चार रागों के परिवार तो बरते गए हैं, पर वे स्वयं नहीं। शुद्ध रूप में 'सिरी राग' और 'भैरउ' के ही प्रयोग हुए हैं।

'सोमेश्वर' और 'कल्लीनाथ' के मतानुसार 'भैरउ' तीसरा राग माना गया है। परन्तु 'रागार्णव', 'सिद्ध-सारस्वत', 'भरत' तथा 'हनुमान' मत के अनुसार यह पहला राग है।

१७ बसंत :—गुरमत संगीत के अनुसार 'बसंत' राग 'हिंडोल' राग का पुत्र है—'सारंग सरस बसंत कमोदा।'"[5] यह राग "हिंडोल" और 'मालकौंस' के सम्मिश्रण से बनता है किन्तु 'सोमेश्वर', 'कल्लीनाथ', 'सिद्ध-सारस्वत' मतों में इसे शुद्ध राग माना गया है। 'संगीत-दर्पण' और 'बुद्ध प्रकाश दर्पण' इसे 'हिंडोल' की रागिनी मानते हैं जिसमें 'दरबारी', 'कानड़ा', 'विभास' और 'भैरउ' का मेल है। गुरमत-संगीत में बसंती नामक पृथक रागिनी 'हिंडोल' की ही मानी गई है—'बसंती संपूर सुहाई'।[6] बसंती रागिनी में 'मारवा', 'सोरठ' तथा 'बिलावल' का सम्मिश्रण तथा 'हिंडोल' की छाया है। इसे कुछ लोग 'बहार' कहते हैं। पर यह कहना गलत है क्योंकि 'बसंती', 'अड़ाना' और 'शाहनी' के सम्मिश्रण से 'बहार' रागिनी बनती है। गुरमत संगीत में 'बसंत-हिंडोल' माना गया है किन्तु अन्य मतों में नहीं।

---

१ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
२ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४२०
३ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३०
४ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
५ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
६ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३०

१८ सारग अथवा सारंग —गुरमत-संगीत में यह राग सिरी राग का पुत्र है— सामू सारग सागरा अठग गौड़ गंभीर।[1] 'दरबारी कानड़ा' मध-माधवी 'देवगिरी' मल्हार तथा 'नट' के मेल से सारंग बनता है। पर अन्य मतों में यह बात नहीं है। 'शिव मत' में यह नट-नारायण की रागिनी मानी गई है। और 'भरत मत' इसे मेघ की रागिनी मानता है।

१९ मलार —गुरमत संगीत में यह 'मेघ' की रागिनी मानी गई है— गौरी गाड़ मल्हारी धुनी। यह रागिनी सारंग मध-माधवी तथा कानड़ा—इन तीनों के मेल से बनती है। किन्तु हनुमत आदि मतों में मल्हार राग का पुत्र माना गया है। मेघ गौड़ और सारंग के मेल से यह रागिनी बनती है।

२० प्रभाती गुरमत संगीत के अनुसार यह भिन्न रागिनी है। यह आसा और 'भैरो' के मेल से बनी है। इसका मेल विभास के साथ माना गया है। यह बात अन्य मतों में नहीं पाई जाती। गुरु ग्रंथ साहिब में प्रभाती और विभास दोनों रागनियाँ मिलाकर लिखी गई हैं।

---

१ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३

२ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३

यह 'हिंडोल' की रागिनी है। हनुमान मत में यह 'सिरी राग' की रागिनी मानी जाती है और इसमें 'भैरव' 'विभास' और 'हिंडोल' का सम्मिश्रण तथा 'सिरी राग' की छाया है। रागार्णव के मतानुसार रामकली 'पंचम' की रागिनी है और इसमें 'ललित' 'रेवा' तथा भीमपलासी का मेल है।

नोट —रामकरी और रामकली तो एक ही है। किन्तु 'रामगिरी' एक पृथक् रागिनी है। इसकी रामकली केवल गुरमत संगीत में ही है। अन्य मतों में नहीं।

१४ मारू —गुरमत संगीत में 'मारू राग' 'मालकौस' का पुत्र माना गया है—"मारू मस्त अरु मेवारा।"[1] 'टक' 'इराक' 'भैरवी' 'आसा' के सम्मिश्रण से यह बनता है। अन्य मतों में यह 'सिरी राग' का पुत्र माना गया है।

१५ तुखारी —इस रागिनी का गुरमत-संगीत की ओर से ही प्रचार हुआ है। भैरव रामकली और टोडी के संयोग से यह बनी है। अन्य मतों में 'भुखारी' 'तुंभारी' 'पुखार' और 'तुमारी' आदि तो हैं किन्तु 'तुखारी' उनसे सर्वथा भिन्न है।

१६ भैरउ —गुरमत-संगीत में यह गिनती के लिए पहला राग है— प्रथम राग भैरउ वै करही।[2] इस प्रकार द्वितीय राग 'मालकौस' है— दुतीआ मालकउसक आलापहि।[3] तीसरा 'हिंडोल' चौथा 'दीपक' पाँचवाँ 'सिरी रागु' और छठा 'मेघराग' है—'छमटम मेघ राग वै गावहि।'[4] उपर्युक्त छः रागों में से 'सिरी रागु' और 'भैरउ' ही श्री गुरु ग्रंथ साहिब में प्रयुक्त हुए हैं। शेष चार रागों के परिवार तो बरते गए हैं पर वे स्वयं नहीं। शुद्ध रूप में 'सिरी राग' और 'भैरउ' के ही प्रयोग हुए हैं।

'सोमेश्वर' और 'काल्लीनाथ' के मतानुसार 'भैरउ' तीसरा राग माना गया है। परन्तु 'रागार्णव' 'सिद्ध-सारस्वत' 'भरत' तथा 'हनुमान' मत के अनुसार यह पहला राग है।

१७ बसंत —गुरमत संगीत के अनुसार 'बसंत राग' 'हिंडोल' राग का पुत्र है— "गावहि सरस बसंत कमोदा।"[5] यह राग 'हिंडोल' और 'मालकौस' के सम्मिश्रण से बनता है किन्तु सोमेश्वर काल्लीनाथ 'सिद्ध-सारस्वत' मतों में इसे शुद्ध राग माना गया है। संगीत-रत्नाकर और 'बुद्ध प्रकाश दर्पण' इसे 'हिंडोल' की रागिनी मानते हैं जिसमें दरबारी कानडा 'विभास' और 'भैरउ' का मेल है। गुरमत-संगीत में 'बसंती' नामक पृथक् रागिनी 'हिंडोल' की ही मानी गई है— बसंती संधूर सुहाई।[6] 'बसंती रागिनी' में 'सारग' 'नट' तथा 'बिभास' का सम्मिश्रण तथा 'हिंडोल' की छाया है। इसे कुछ लोग 'बहार' मानते हैं। पर यह कहना गलत है क्योंकि 'बसंत' 'अडाना' और 'मोहनी' के सम्मिश्रण से 'बहार' रागिनी बनती है। गुरमत संगीत में 'बसंत-हिंडोल' माना गया है किन्तु अन्य मतों में नहीं।

---

१ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
२ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४२९
३ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३०
४ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
५ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३
६ श्री गुरु ग्रंथ साहिब रागमाला पृष्ठ १४३

परिशिष्ट (घ)

सहायक ग्रन्थों की सूची

ENGLISH

1 Adi Granth	Eanest Trumpp Wm H Allen & Co; London. 1877
2. A History of the Punjabi Literature.	Mohan Singh University of Punjab, Lahore, Ist, Edition 1932.
3 A Short History of the Sikhs.	Teja Singh & Gan a Singh, Orient Longmans Ltd, Bombay Calcutta and Madras, Ist Ed, 1950
4. Encyclopaedia of Religion	Edited by J mes Hastings (Vol. VI) T and Clark, Edinburg, 1913
5. Essays in Sikhism	Teja Singh, Sikh University Press, Lahore. 1944
6. Evolution of the Khalsa	Vol. I Indu Bhushan Banerjee University of Calcutta 1936.
7 Gorakh Nath & Medieval Hindu Mysticism.	Mohan Singh Oriental College Lahore 1936
8. History of the Sikhs	Cunnigham J D., Oxford University Press. 1918. Revised & New Edition.
9 J R A. S Part XVIII	Calcutta (Fredrick Pincott)
10 Life of Guru Nank Deva	Kartar Singh, Ikh Publishing House Amritsar 1 Ed 1937
11 Philosophy of Sikhism	Sher Singh Sikh University Press Lahore, I Ed 1944
12. The Guru Granth Sahib	(English Trans, Ist 2 Vols) Gopal Sigh Availabl ewith, Missionary Quarterly Agfa Bldg F tz Bazar Delhi—6
13. The Hindu View of Life.	S. Radhakrishnan George Allen & Unwin, London 1937
14 The Philosophy of Yogavasishtha.	B. L. Atreya Theosophical Publishing House. Madras, 1937
15. The Sacred Writings o the Sikhs.	Written under the direction of S. Radhakrishnan, George Allen & Unwin London
16 The Sikh Religion (In 6 Vols)	M A. Macauliffe Clarendon Press, Oxford 1909
17 Transformation of Sikhism	Gokal Chand Narang New Book Society Lahore. III Ed. 1946.

परिशिष्ट (घ)

सहायक ग्रन्थों की सूची

ENGLISH

1 Adi Granth.	Eanest Trumpp Wm H Allen & Co London. 1877
2. A History of the Punjabi Literature.	Mohan Singh, University of Punjab, Lahore, Ist, Edition 1932
3. A Short History of the Sikhs.	Teja Singh & Gan 'a Singh, Orient Longmans Ltd Bombay, Calcutta and Madras, Ist Ed, 1950
4 Encyclopaedia of Religion	Edited by J mes Hastings (Vol. VI) T and Clark Edinburg, 1913
5. Essays in Sikhism	Teja Singh Sikh University Press, Lahore. 1944.
6 Evolution of the Khalsa	Vol. I Indu Bhushan Banerjee, University of Calcutta 1936.
7 Gorakh Nath & Medieval Hindu Mysticism.	Mohan Singh Oriental College, Lahore 1936
8. History of the Sikhs	Cunnigham J D., Oxford University Press. 1918. Revised & New Edition.
9 J R A S Part XVIII	Calcutta (Fredrick Pincott)
10 Life of Guru Nank Deva	Kartar Singh Sikh Publishing House. Amritsar I Ed 1937
11 Philosophy of Sikhism	Sher Singh Sikh University Press Lahore I Ed 1944
12. The Guru Granth Sahib	(English Trans, Ist 2 Vols) Gopal Singh Available with, Missionary Quarterly Agfa Bldg F iz Bazar Delhi—6.
13 The Hindu View of Life.	S. Radhakrishnan George Allen & Unwin London 1937
14 The Philosophy of Yogavashistha.	B L Atreya Theosophical Publishing House. Madras, 1937
15 The Sacred Writings o the Sikhs.	Written under the direction of S. Radhakrishnan; George Allen & Unwin, London
16 The Sikh Religion (In 6 Vols)	M. A. Macauliffe Clarendon Press, Oxford 1909
17 Transformation of Sikhism	Gokal Chand Narang : New Book Society Lahore III Ed. 1946.

परिशिष्ट (घ)

सहायक ग्रन्थों की सूची

ENGLISH

1 Adi Granth	Ernest Trumpp Wm H Allen & Co; London, 1877
2. A History of the Punjabi Literature	Mohan Singh University of Punjab, Lahore, Ist, Edition 1932
3. A Short History of the Sikhs.	Teja Singh & Gan 'a Singh, Orient Longmans Ltd Bombay Calcutta and Madras, Ist Ed 1950
4 Encyclopaedia of Religion	Edited by J mes Hastings (Vol VI) T and Clark Edinburg, 1915
5. Essays in Sikhism	Teja Singh, Sikh University Press, Lahore, 1944
6. Evolution of the Khalsa	Vol. I. Indu Bhushan Banerjee, University of Calcutta, 1936
7 Gorakh Nath & Medieval Hindu Mysticism.	Mohan Singh Oriental College Lahore 1936
8. History of the Sikhs	Cunnigham, J D Oxford University Press. 1918. Revised & New Edition.
9 J R A S Part XVIII	Calcutta (Fredriek l incott)
10 Life of Guru Nank Deva	Kartar Singh ikh Publishing House. Amritsar I Ed, 1937
11 Philosophy of Sikhism	Sher Singh Sikh University Press Lahore, I Ed, 1944
12. The Guru Granth Sahib	(English Trans Ist 2 Vols) Gopal Singh Availabl ewith, Missionary Quarterly, Agfa Bldg F iz Bazar Delhi—6.
13. The Hindu View of Life.	S. Radhakrishnan George Allen & Unwin London 1937
14 The Philosophy of Yogavashistha.	B. L Atreya Theosophical Publishing House. Madras, 1937
15. The Sacred Writings o the Sikhs.	Written under the direction of S. Radhakrishnan, George Allen & Unwin London
16. The Sikh Religion (In 6 Vols)	M A. Macauliffe Clarendon Press, Oxford, 1909
17 Transformation of Sikhism	Gokal Chand Narang New Book Society Lahore. III, Ed. 1946.

परिशिष्ट (घ)

सहायक ग्रन्थों की सूची

ENGLISH

1 Adi Granth	Ernest Trumpp Wm H Allen & Co; London. 1877
2. A History of the Punjabi Literature.	Mohan Singh University of Punjab, Lahore, Ist, Edition 1932
3 A Short History of the Sikhs.	Teja Singh & Gan 'a Singh, Orient Longmans Ltd, Bombay Calcutta and Madras, Ist Ed 1950
4 Encyclopaedia of Religion	Edited by J mes Hastings (Vol. VI) T and Clark Edinburg 1913
5. Essays in Sikhism	Teja Singh, Sikh University Press, Lahore. 1944
6 Evolution of the Khalsa	Vol. I. Indu Bhushan Banerjee University of Calcutta, 1936
7 Gorakh Nath & Medieval Hindu Mysticism.	Mohan Singh Oriental College, Lahore 1936
8. History of the Sikhs	Cunnigham, J D., Oxford University Press. 1918. Revised & New Edition.
9 J R A S Part XVIII	Calcutta (Fredrick Lincott)
10 Life of Guru Nank Deva	Kartar Singh ikh Publishing House. Amritsar I Ed 1937
11 Philosophy of Sikhism	Sher Singh : Sikh University Press Lahore I Ed 1944
12. The Guru Granth Sahib	(English Trans Ist 2 Vols) Gopal Singh Available with, Missionary Quarterly, Agfa Bldg F iz Bazar Delhi_6
13. The Hindu View of Life.	S. Radhakrishnan George Allen & Unwin London 1937
14 The Philosophy of Yogavashistha.	B. L Atreya Theosophical Publishing House. Madras, 1937
15. The Sacred Writings o the Sikhs	Written under the direction of S. Radhakrishnan, George Allen & Unwin London
16 The Sikh Religion (In 6 Vols)	M A. Macauliffe Clarendon Press, Oxford, 1909
17 Transformation of Sikhism	Gokal Chand Narang New Book Society Lahore, III Ed. 1946.

कबीर एक विवेचन—सरनामसिंह शर्मा हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली ६ प्रथम संस्करण १९६० ई

कबीर का रहस्यवाद रामकुमार वर्मा साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद चतुर्थ संस्करण १९४१ ई

कबीर की विचारधारा गोविन्द त्रिगुणायत साहित्य निकेतन कानपुर, द्वितीय संस्करण स० २०१४ वि

कबीरदास विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रतन प्रकाशन मन्दिर आगरा

कबीर साहित्य की परख भारती भण्डार प्रयाग प्रथम संस्करण स० २०११ वि

गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र बाल गंगाधर तिलक (अनुवादक माधवराव सप्रे) तिलक बन्धु सिमला हाउस सैण्डहर्स्ट रोड चौपाटी बम्बई ४ छठा संस्करण १९२८ ई०

गोरखबानी सम्पादक पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वितीय संस्करण स० २०० १ वि

तुलसी दर्शन बलदेव प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रथम संस्करण २०० ५ वि

नाथ-सम्प्रदाय हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दुस्तानी एकेडमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद प्रथम संस्करण १९५० ई

श्री गुरु ग्रन्थ-दर्शन जयराम मिश्र साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड इलाहाबाद प्रथम संस्करण १९६० ई

संस्कृति-संगम क्षितिमोहन सेन साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद द्वितीय संस्करण १९५२ ई

सुन्दर-दर्शन त्रिलोकीनारायण दीक्षित किताब महल जीरो रोड इलाहाबाद प्रथम संस्करण १९५३ ई

हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ प्रथम संस्करण २००७ वि

हिन्दी साहित्य की भूमिका हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई चौथा संस्करण १९५० ई